आन्तरिक पीड़ा दिग्दर्शन

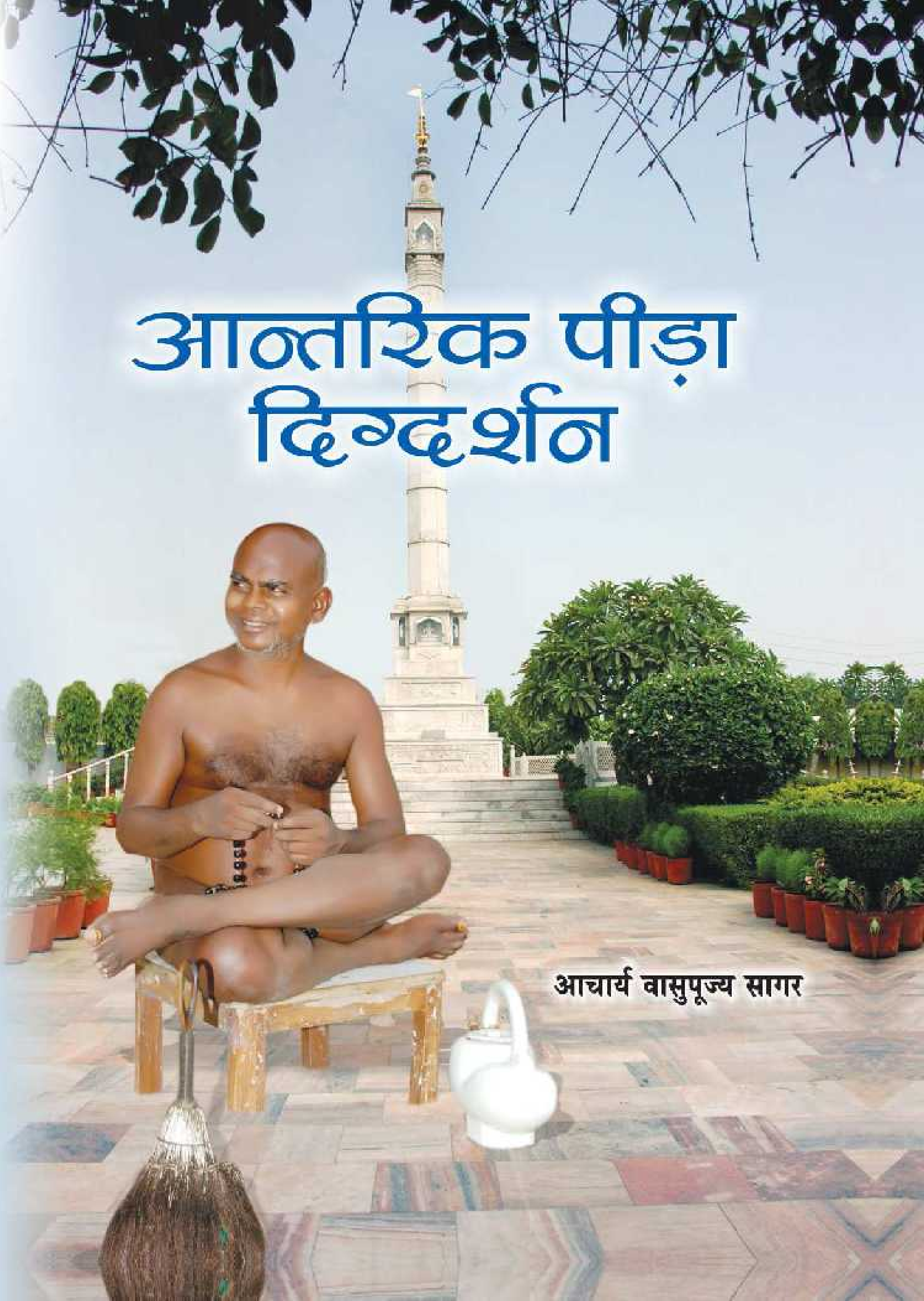

आचार्य वासुपूज्य सागर

मूलनायक भगवान पार्श्वनाथ
अतिशय क्षेत्र वहलना

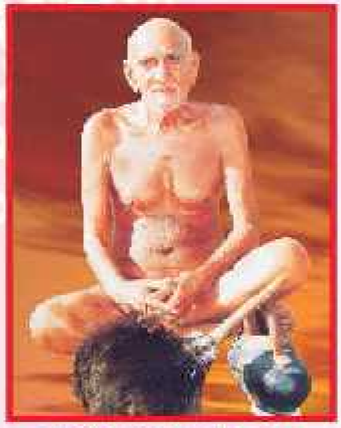

समाधि सम्राट वात्सल्य रत्नाकर
आचार्य श्री 108 विमलसागर जी महाराज

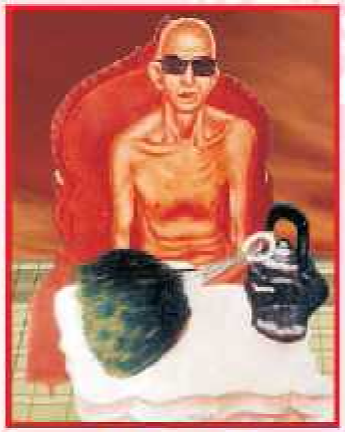

समाधि सम्राट आचार्य
श्री 108 पार्श्वसागर जी महाराज (कोटला वाले)

अध्यात्म योगी 84 लाख मंत्र लेखनकर्ता बा.ब्र. परम पूज्य
आचार्य श्री 108 वासुपूज्य सागर जी महाराज

परम पूज्य आचार्य श्री पार्श्वसागर जी महाराज का जीवन परिचय

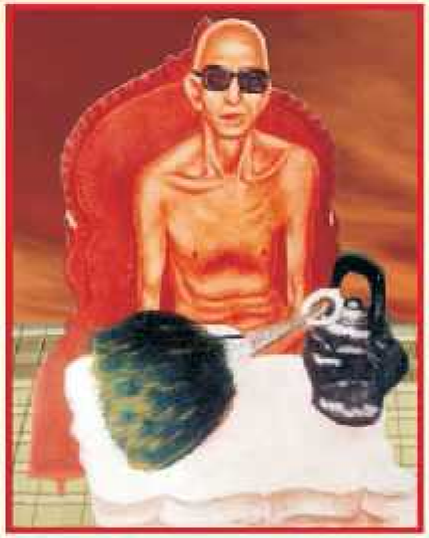

समाधि सम्राट आचार्य श्री 108 पार्श्वसागर जी महाराज (कोटला वाले)

ॐ नमः

अष्ट कर्म को नष्ट कर, शुद्ध अष्ट गुणपाय।
भए सिद्ध निज ध्यान में, नमूं मोक्ष सुखदाय॥
दया रूप जिनवाणी को, गुरु अरिहंत महन्त।
नमो पार्श्व गुरु संत को, स्व-पर को तारन्त॥

कार्तिक सुदी ६ वि.स. १९७२ दिन शनिवार श्रवण नक्षत्र गंड़योग में जन्मे परम पूज्य आचार्य परमेष्ठी श्री १०८ पार्श्वसागर जी महाराज कोटला वालों का जीवन परिचय

परिचय—जाति पद्मावती पोरवाल जिला आगरा में फिरोजाबाद से उत्तर दिशा में कोटल नाम का गांव है जिसमें श्रावकों के १०-१२ घर हैं उसमें एक रामस्वरूप जी व जानकी बाई थीं जिनकी कूख से पुत्र रत्न राजेन्द्रकुमार की उत्पत्ति हुई। बुद्धि की तीव्रता से थोड़े ही समय में मिडिल पास कर विश्वविद्यालय मुरैना में जैन दर्शन, व्याकरण आदि शिक्षण के लिये गये। परन्तु पापोदय से पिताजी की मृत्यु ३६ वर्ष की अवस्था में हो गई। आप मुरैना छोड़कर घर चले गये उस समय आपकी उम्र १८ वर्ष की थी, उस समय से आप का मन संसार से उदास ही रहता था, पर मां की सेवा के लिए आप घर पर रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए न्याय नीति से व्यापार करते थे। अपना जीवन ४३ वर्ष तक मां के साथ रहकर सेवा करके मां की समाधि कराई। समाधि कराने के बाद थोड़े ही समय तक घर में रहे।

वैराग्य का कारण : पर्यूषण पर्व में चर्तुदशी के दिन उपवास किया था। प्रातः काल की दिनचर्या कर अभिषेक पूजन करने के बाद में अपने घर पर चटाई के ऊपर लेटे थे; किन्तु भाग्यवश स्वप्न आता है—स्वप्न में दो जंगली सुअर आमने-सामने खाने के लिए आक्रमण करते हैं। इसमें एक ने तो कंधे पर पैर रखकर खाने की कोशिश की और दूसरा पुनः खाने के लिए झपटता है। इतने ही में नींद खुल जाती है, शरीर कांप जाता है। देखते हैं न यहां सुअर है न यहां कुछ है। मैंने तो उपवास किया है, यह तो निद्रा के कारण स्वप्न आया है जैसे स्वप्न में सुअर ने आक्रमण किया है वैसे ही मेरा जीवन व्यर्थ में जा रहा है, नष्ट हो रहा है। अतः अब आत्मकल्याण करना चाहिए ऐसा निश्चय कर जिसका कर्ज देना था वह सामान बेंचकर कर्ज चुकता किया। आचार्य विमलसागर जी पन्ना, म.प्र. में विराजमान थे। मालूम पड़ने पर आप फरिहा जाकर पं. भगवत् स्वरूपजी से मुहूर्त निकलवा कर सूतक के दिनों में ही गृह त्याग कर आचार्यश्री के पास आ गये। आकर के तीसरे दिन सातवीं प्रतिमा ली उस समय नाम पार्श्वकीर्ति रखा। कार्तिक सुदी १२ सं. २०१६ में गुरुवार ता. १२/११/५९ को पन्ना चातुर्मास में आचार्य महावीरकीर्ति जी के शिष्य विमलसागर जी से प्रतिमा ली। विहार कर फाल्गुन सुदी १४ को वि.सं. २०१६ में शनिवार ता. १२/३/६० को सोनागिरि सिद्धक्षेत्र में जाकर क्षुल्लक दीक्षा ली नाम बाहुबलीसागर रखा। अनेक शहरों देहातों में विहार करके सुखमाल जी के फ्लोर मिल मेरठ उत्तर प्रदेश में जाकर चातुर्मास किया। सावन सुदी ८ सं. २०१८

शनिवार तारीख १९/८/६१ को मुनि दीक्षा हुई नाम पार्श्वसागर रखा। गुरु के पास रहकर ११ वर्ष तक गहन रूप से अध्ययन किया और तपश्चरण कर इस काल में हर कार्य में समर्थ होकर धर्मप्रचार तथा आत्मबल की परीक्षा के लिए गुरु आज्ञा लेकर विहार कर सैंकड़ों व्रती बनाये तथा अनेकों को दीक्षा दी तथा अनेकों को उनकी वय के अनुसार पापों का त्याग कराकर धर्म के मार्ग में लगाया। आपने ११ दीक्षायें दीं जिसमें ३ मुनि दीक्षा ३ ऐलक दीक्षा, दो क्षुल्लक दीक्षा, ३ आर्यिका दीक्षा एक क्षुल्लिका दीक्षा। सागवाड़ा चातुर्मास में सं. २०३६ सन् १९७९ मगसिर में आचार्य विमलसागर जी की आज्ञा से संघ और समाज के द्वारा विमलसागर जी महाराज ने पत्र भेजकर आचार्यपद दिलाया। यह आचार्य पद ६/१२/७९ दिसम्बर सागवाड़ा राजस्थान में दिया। उस समय उपस्थित साधुगण त्यागीवृंदों के नाम थे और पत्र में संबोधन था वे थे पूज्य मुनि श्री वासुपूज्य सागर, आर्यिका सरस्वती माताजी, मुनि उदयकीर्ति, सुपार्श्वमतिजी, ऐलक अनंतसागर, वैराग्यसागर, त्रिलोकसागर, क्षु. आनन्दसागर जी।

ॐ नमः

प.पू. आ. श्री पार्श्वसागर जी महाराज ने श्री मुक्तागिरि क्षेत्र में सन् ८१ फाल्गुन सुदी १५ के दिन १२ वर्ष की समाधि का नियम लिया तथा श्री श्रवणबेलगोला में चार रस का त्याग तो पहले से था किन्तु यहां पर दूध बूरा (शक्कर) का भी आजन्म त्याग किया सन् ८५ में। फिर सन् ८८ में वसगड़े कोल्हापुर महाराष्ट्र में महावीर जयन्ती के दिन धान्य का भी त्याग कर दिया।

१. एक दिन मैंने पूछा कि महाराज जी इस समाज में प्रत्येक जगह झगड़े चल रहे हैं, समाज का क्या होगा? उत्तर मिला कि समाज की बड़ी दुर्गति होनेवाली है क्योंकि रोटी बेटी बिगड़ रही है।

२. शंका - आजकल लोग अजैनों को जैन बनाने में लगे हैं तो क्या इस प्रयास में सफल होंगे या नहीं?

उत्तर—आजकल हजारों की संख्या में जैन अजैन बन रहे हैं इन जैनों को पुनः जैन बनाने के प्रयास तो करते नहीं हैं किन्तु अजैनों को जैन बनाने का प्रयास कर रहे हैं जो पत्थर को पीसकर रोटी बनाने के समान है इससे तो मन्दिरों में चोरियां बहुत होने लगेगी और बेटी व्यवहार भी बिगड़ जायेगा।

३. समाधि के कुछ दिन पूर्व में पूछा कि भगवती आराधना में लिखा है कि समाधि दूसरे संघ में जाकर करनी चाहिए और आप तो अपने ही संघ में हो तब समाधि कैसे ठीक होगी?

उत्तर—जब हमने रसों का धान्यों का तथा संघ का ही त्याग किया है तब समाधि कैसे बिगड़ेगी और अब तो शरीर ही छोड़ने वाले हैं और छोड़ी हुई वस्तु अपनी नहीं कहलाती अतः यह संघ हमारा है ऐसा प्रश्न ही पैदा नहीं होता है।

४. आप तो छोड़कर जाने वाले हैं पर अब हमारा क्या होगा? कौन सम्बोधन करेगा?

उत्तर - हम छोड़कर जाने वाले हैं तो क्या हुआ तुम्हारा रत्नत्रय तो तुमको छोड़कर जाने वाला नहीं है फिर क्या होगा ऐसा प्रश्न ही पैदा नहीं होता तथा तुम स्वयं बुद्धिबल से समर्थ हो। इस समय के बीच में हजारों प्रश्न किए अब समाधि के अत्यन्त निकट सम्बन्धी विषय पर आते हैं वसगड़े में ज्येष्ठ सुदी १३ को सन् ८८ सांयकाल सहर्ष अपने आप ही चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र को साक्षी बनाकर अब आजन्म आहार पानी मट्ठा वगैरह का पूरा त्याग किया था तथा यम संल्लेखना धारण की। बाहर अखंड णमोकार मंत्र का पाठ चालू है समय बड़े प्रेम से गुजर रहा है। आषाढ़ वदी एकम का दिन आया सायंकाल का समय है हमारे जंघे पर आचार्यजी का सिर है एक हाथ से नाड़ी पकड़े हुए हैं दूसरा हाथ सिर पर है। क्षु. सुरत्नसागर जी हृदय पर हाथ रखे हुए हैं। एक आर्यिका और क्षुल्लिका पैरों के पास में और ब्र. शान्ता पास में बैठी हुई है ऊर्ध्व श्वांस चालू हो गया है तब मैंने पूछा कोई तकलीफ है? दोनों हाथ ऊपर उठाकर इशारा किया कोई तकलीफ नहीं है।

प्रथम हिचकी आई तब मैंने कहा अब तो जीवन समाप्त होनेवाला है माला छोड़ दो यह साथ में नहीं जायेगी? उत्तर धीरी आवाज में जवाब दिया कि यह माला साथ में नहीं जायेगी किन्तु संस्कार साथ में जायेगा। बस इतना कहकर बाहर जाकर लोगों को तैयार किया और कहा कि अब केवल दो हिचकी और आने वाली है जो मिनटों का समय है। तुरन्त ही अन्दर जाकर बोले महाराज जी क्या बात है। बोले कुछ नहीं। पुनः दूसरी हिचकी आई तब मैंने माला पकड़ ली और कहा अब तो छोड़ दो गुरुजी पुनः माला को दबा लिया और कहा नहीं छोड़ेंगे, तीसरी हिचकी का आना, आंख का कम्पन बन्द होना और मुंह से लार टपकना, नाड़ी कंपन बन्द होना तथा हृदय का कम्पन भी बंद हो गया।

लिखी : आचार्य पार्श्वसागर जी के शिष्य

परम पूज्य आर्यिका १०५ श्री श्रेणीमती माताजी का जीवन परिचय

जन्म नाम	रामा बाई
जन्म स्थान	बंदिया
जन्म संवत्	1972
पिता का नाम	श्रीमान् लक्ष्मण जी
माता का नाम	श्रीमती छबरानी जी
दीक्षा तारीख	सन् 1998 रक्षा बंधन पर भागलपुर (बिहार) में
दीक्षा गुरु	आचार्य श्री वासुपूज्य सागर जी महाराज
समाधि स्थल	आरा (बिहार)
तिथि	आसोज वदी अष्टमी सन् 2003

परम पूज्य आर्यिका १०५ श्री श्रेयमती माताजी का जीवन परिचय

जन्म नाम	यशवन्ति कुमारी जैन
जन्म स्थान	पाडवा, जिला-डूंगरपुर (राज.)
पिता	श्रीमान हीरालाल जी जैन
माता	श्रीमती केशर बेन जैन
ब्रह्मचर्य व्रत	तपस्वी सम्राट आचार्य श्री सन्मतिसार जी से
दीक्षा गुरु	आ. श्री वासुपूज्य सागर जी महाराज
दीक्षा स्थान	गांधी नगर (गुजरात)
दीक्षा तारीख	सन् 1993, रक्षाबंधन
भाई-बहन	तीन भाई, तीन बहन

कर्मयोगी क्षुल्लकरत्न १०५ श्री समर्पणसागर जी महाराज का जीवन परिचय

जन्म नाम	भरत जैन (सोनू)
जन्म तारीख	28 नवम्बर 1971
जन्म स्थान	धुलिया (महाराष्ट्र)
पिता	स्व. श्रीमान वीरचन्द जी जैन (ज्योतिषाचार्य)
माता	श्रीमती विमला देवी जैन
दीक्षा गुरु	आ. श्री निर्मलसागर जी महाराज
दीक्षा स्थान	सूरत (गुजरात)
दीक्षा तारीख	22 अक्टूबर 1989
भाई-बहन	तीन भाई, एक बहन

क्षुल्लिका १०५ श्री श्रेणीमती माताजी का जीवन परिचय

जन्म नाम	श्रीमती शान्ति बाई
गृहस्थ पति	स्व. श्री ओंकारमल जी जैन
माता	श्रीमती कस्तूरीबाई
पिता	श्री दोहाचन्द जी
जन्म स्थान	पाड़वा, जिला-डूंगरपुर (राजस्थान)
ससुराल	रठौड़ा, जिला-उदयपुर (राजस्थान)
भाई-बहन	तीन
सप्तम प्रतिमा	2003 विजयदशमी
दीक्षा गुरु	आ. श्री वासुपूज्य सागर जी महाराज
दीक्षा स्थान	बनारस (उ.प्र.) 2004 बसन्त पंचमी

बा.ब्र. सुगन्ध भैया जी का जीवन परिचय

जन्म नाम	सुगन्ध कुमार जैन
जन्म स्थान	पाडवा, जिला-डूंगरपुर (राज.)
जन्म तारीख	30 दिसम्बर 1973
पिता	श्रीमान हीरालाल जी जैन (जोदावत)
माता	श्रीमती केशर बेन जैन
ब्रह्मचर्य व्रत	आश्विन शुक्ला चौदस (सम्मेद शिखरजी में) 25.10.1997 में
भाई-बहन	तीन भाई, तीन बहन
सातवीं प्रतिमा	रक्षाबंधन, भागलपुर, बिहार (1998)

संघस्थ जय कुमार भईया जी का जीवन परिचय

गृहस्थ नाम	जय कुमार जैन
जन्म स्थान	महेबा, जिला पन्ना (म.प्र.)
पिता का नाम	श्री कालीचरण जी जैन
माता का नाम	श्रीमती रामा देवी (स्व. आर्यिका श्रेणी मती जी)
भाई-बहन	तीन भाई एवं तीन बहन
ब्रह्मचर्य व्रत	सातवीं प्रतिमा अष्टह्निका पर्व 2009

बा.ब्र. नेहल बहन का जीवन परिचय

जन्म नाम	नेहल जैन
जन्म स्थान	ईडर (गुजरात)
जन्म तारीख	14.06.1973
पिता	श्री चन्द्रकान्त जैन (दोशी)
माता	श्रीमती कुसुम जैन (दोशी)
ब्रह्मचर्य व्रत	02.09.1991
दीक्षा गुरु	आ. श्री वासुपूज्य सागर जी महाराज
भाई-बहन	दो भाई, तीन बहन
पांचवी प्रतिमा	महेबा, चातुर्मास 1995

बा.ब्र. गुंजा बहन का जीवन परिचय

जन्म नाम	गुंजा बेन
जन्म स्थान	टिकैत नगर (उ.प्र.)
शिक्षा	11वीं
पिता	श्री राजेश चन्द्र जैन
माता	श्रीमती मधु जैन
ब्रह्मचर्य व्रत	30.1.2007 मुरादाबाद
दीक्षा गुरु	आ. श्री वासुपूज्य सागर जी महाराज
भाई-बहन	एक भाई, चार बहन

संघस्थ-प्रकाशक अन्य ग्रन्थ

गूढ़ रहस्य चिंतामणि
लेखक : आचार्य वासुपूज्य सागर जी महाराज

सुरक्षा चक्र ज्ञानवर्धिनी छहढाला
लेखक : आचार्य वासुपूज्य सागर जी महाराज

84 लाख उत्तर गुण मंत्र एवं विधान
लेखक : आचार्य वासुपूज्य सागर जी महाराज

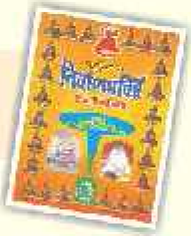

चतुर्विंशति निर्वाण भक्ति
लेखिका : आर्यिका श्रेयमती माताजी

भक्ति संगीत की लहरें
रचना : बा.ब्र. सुगन्ध भैया जी

भक्ति संगीत वर्तमान के गीत
रचना : बा.ब्र. सुगन्ध भैया जी

खुशियों में झूमों रे
राजन जैन एवं अनिता जैन
हल्द्वानी

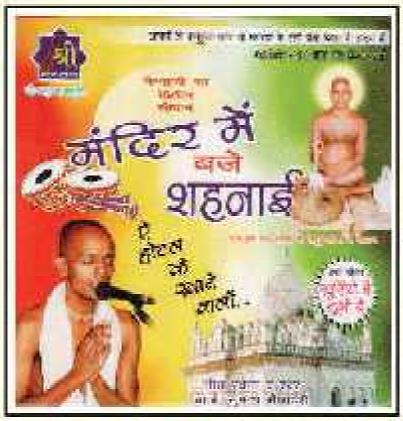

मंदिर में बजे शहनाई
राजन जैन एवं अनिता जैन
हल्द्वानी

देखो बदला जमाना कितना
श्रीमान हीरालाल जी एवं केशर बेन जैन,
कान्तिलाल जी जैन प्रेमलता जैन
विजय कुमार जी प्रेमलता जैन 'पाड़वा'
जिला डूंगरपुर (राजस्थान)

पुष्प संख्या–8

आन्तरिक पीड़ा दिग्दर्शन

लेखक

प0 पू0 108 आचार्य श्री वासुपूज्य सागरजी महाराज

प्रसंग

आचार्य श्री 108 वासुपूज्यसागरजी महाराज के

34वें दीक्षा दिवस समारोह

27 नवम्बर 2009 के अवसर पर प्रकाशित

प्रबन्ध सम्पादक

बा0 ब्र0 भाग्या दीदी (नेहल दीदी)

कृति :

आंतरिक पीड़ा दिग्दर्शन

लेखक :
प0 पू0 108 आचार्य श्री वासुपूज्य सागरजी महाराज

निर्देशिक मंडल :
प.पू. आर्यिका श्री श्रेयमती माता जी
प.पू. क्षुल्लक श्री समर्पणसागर जी महाराज
प.पू. क्षुल्लिका श्री श्रेणीमती माता जी

प्रबन्ध सम्पादक :
बा0 ब्र0 भाग्या दीदी (नेहल दीदी)

प्रकाशन सम्वत् 2064 सन् 2009 मगशिर सुदी दशमी

द्वितीय संस्करण–1100 प्रतियां (संशोधित)

प्राप्ति स्थान :
- आचार्य श्री ससंघ
- अरिहंत साहित्य सदन, 4 रेनबो विहार, (मुजफ्फरनगर) उ.प्र.

पुण्यार्जक :
- **श्रीमती सुमित्रा जैन–श्रीमती त्रिशला जैन**
  (गर्ग डुप्लैक्स परिवार, 4 रेनबो विहार, मुजफ्फरनगर) उ.प्र.
- **श्री सुखबीर सिंह जैन (नावला वाले)**
  वहलना स्टील्स एंड एलाईज प्रा. लि. परिवार (मुजफ्फरनगर) उ.प्र.
- **श्री धनपाल सिंह जैन, सुरेश चन्द जैन, महेश चन्द जैन**
  (विकास पेपर कनवर्टर परिवार, दिल्ली)

मुद्रक :
अरिहन्त ग्रॉफिक्स, दिल्ली
फोन : 011–22467277, 9212019046

आन्तरिक पीड़ा

ॐ आंतरिक पीड़ा का कारण ॐ

सन् 2002 में कलकत्ता हावड़ा बंगाल से चातुर्मास के बाद विहार हुआ, क्रमशः विहार करते करते बिहार गुलजारबाग पटना सिद्धक्षेत्र दि0 जैन मंदिर और धर्मशाला में आकर ठहरे। कुछ समय के पश्चात् धर्मशाला के मैनेजर ने कोरी (कोली) को विवाह के लिए धर्मशाला दे दी और धर्मशाला में घराती और बराती आकर ठहर गये तथा समयानुसार विवाह सम्पन्न हुआ, वो सब चले गये तब बाद में हम कमरे में गये तो वहाँ पर देखा कि शराब की बोतलें पड़ी हैं और अण्डे के छिलके पड़े हुए हैं। मैनेजर को बुलाकर दोनों वस्तुयें दिखाई तो उन्होंने जवाब दिया कि हम क्या करें, हमने मना किया था पर नहीं माने तथा आरा वाले अजय मंत्रीजी ने कहा कि आप वहीं की कमाई से वहीं की पूरी व्यवस्था करो, यहाँ से पैसा नहीं दिया जायेगा। इसी तरह जब मंत्रीजी मिले तो उनसे भी कहा कि क्षेत्रों की व्यवस्था अण्डों और शराब के खाने वालों की कमाई से कर रहे हो, तो उन्होंने भी वही जवाब दिया। बनारस में मैदागिन दि0 जैन धर्मशाला और मंदिर साथ में हैं वहाँ की भी यही कथा है तथा जहाँ जहाँ धर्मतीर्थों में समाज के पदाधिकारियों ने सरकार की अर्थव्यवस्थानुसार धन कमाने के साधन बना लिए हैं सो वहाँ पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इसी तरह की योजनाओं के द्वारा धन कमाया जाता है सो ऐसी घटना को देखकर मन एकदम बेचैन हो गया कि अब कैसे भाग्यहीन मनुष्य पैदा हो रहे हैं कि अपनी उदरपूर्ति के लिऐ मोक्षमार्ग के साधनों का भी उपयोग करने लगे अर्थात् देव शास्त्र और गुरुओं के माध्यम से अपनी आजीविका चलाने लगे पहले श्रावक श्राविकायें अपनी आजीविका के द्वारा थोड़ा थोड़ा धन बचाकर धर्म की, धर्मायतनों की रक्षा व्यवस्था करते थे, जिससे उनका जीवन पूर्णिमा की चांदनी के समान हमेशा प्रसन्न रहता था भले ही धन थोड़ा था पर आजकल धन की अत्यधिक वृद्धि होने के कारण पाप बढ़ा बीमारियाँ और कष्ट, कलह बढ़ीं, जिससे धर्म छूट गया षडावश्यक का पालन व गुरुओं की सेवा कष्ट देने वाली अनुभव में आने लगी। इस प्रकार समाज की दुर्व्यवस्था को देखकर मन घबराया और थोड़ी देर में ही डायरी निकालकर, रबर, पेंसिल लेकर दुःखियों को संबोधन करने के लिए तथा अपने अमूल्य समय को सदोपयोग में, सत्कार्य में लगाने के लिए लेखन कार्य प्रारम्भ कर दिया। प्रश्नोत्तर बनाते बनाते करीब 2651 शंका समाधान में समाप्त हुआ। अतः प्रत्येक परिभाषाओं को समझकर व आत्मसात् कर संसारचक्र की आत्मसंवेदन की पीड़ा को सम्यग्पुरुषार्थ से दूर कर आत्मानंद प्राप्त करो यही सभी को मंगल आशीर्वाद है। इसमें बहुत सारा विषय पूर्वाचार्यों के द्वारा प्रतिपादित है तथा कुछ हमारा मौलिक चिन्तन है।

ग्रंथ कर्ता :- बा0 ब्र0 आचार्य श्री १०८ वासुपूज्य सागरजी महाराज

मेरी अभिव्यक्ति

हर श्वांस के साथ निःश्वांस उभरती है।
हर जिंदगी के आँगन में मौत उतरती है।
कोई समझे या न समझे आचार्यश्री की लेखनी को ....
लेकिन हर शंका के समाधान में नई लेखनी चलती है।

जब शंकाओं के बादल मंडराते हैं तो समाधान की वर्षा शुरू हो जाती है। आचार्यश्री के समाधान भी ऐसे होते हैं कि जो आज दिन तक सुनने में नहीं आये हों। ऐसा भी नहीं है कि समाधान काल्पनिक हों। समाधान ग्रंथों के प्रमाण सहित मिलते हैं। प्रमाण, नय, निक्षेपों के द्वारा किसी भी प्रकार से दोष नहीं आता है तभी तो लगता है कि नए नए समाधान सुनें पढ़ें। आचार्यश्री का कहना है कि पिष्टीपेषण क्या करना, अपनी चिन्तनधारा के द्वारा नया नया समाधान सभी खोजें!

आचार्यश्री जब शंकाओं का समाधान करते हैं, तो लगता है कि जैसे दिमाग के कम्प्यूटर में पहले से फिट किया हो, लेकिन ऐसी कोई बात नहीं है। ये उनके अन्तरंग से ही समाधान होते हैं। जब आचार्यश्री शंका समाधान लिखते थे तो अपने आप ही अंदर से नई नई शंकाओ में नवीन शंकायें उत्पन्न होती थीं और समाधान भी। नहीं चाहते हुए भी 2651 शंका समाधानों का समावेश हो गया। खैर कोई बात नहीं, जो छद्मस्थ होते हैं उन्हें ही शंकाएं होतीं हैं और समाधान की प्रतीक्षा होती है जो अज्ञानी हैं उन्हें क्या शंकाएं होगीं? शंकाएं किसी ने भी की हों, लेकिन समाधान आचार्यश्री ने इस ग्रन्थ में करके हर इंसान तक पहुँचाने का अथक प्रयास किया है। कोई शंका कर सकता है और कोई अंदर ही अंदर सोचता रहता है, बोल नहीं पाता। जो बोल नहीं सकता उसको भी इस ग्रंथ के माध्यम से समझाने की कोशिश की है।

आचार्यश्री के गुणों का वर्णन मैं क्या करूँ आप स्वयं इस ग्रंथ को पढ़ेंगे तो समझ लेंगे। मैं तो अंतिम इच्छा करती हूँ कि आचार्यश्री के सान्निध्य में रहकर ज्ञानार्जन का पूरा पूरा लाभ मिले और उनके ज्ञान की दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि हो।

इन्हीं भावनाओं के साथ आचार्यश्री के चरणों में नमोऽस्तु ..... नमोऽस्तु ..... नमोऽस्तु .....

आचार्यश्री 108 वासुपूज्यसागर महाराजजी संघस्था

बा0 ब्र0 आर्यिका 105 श्रेय मती माता जी

वर्तमान की चाह

परस्परोपग्रहो जीवनाम् परस्परोपग्रहो जीवनाम्

वर्तमान समय में जैन श्रावकों ने जैनी संस्कार छोड़ दिये हैं। रात्रि भोजन करते हैं, नशा हर प्रकार के करते हैं। कंदमूल भी खाते हैं, इनके पास मंदिर जाने का समय कहाँ है, पूजा अभिषेक कब करें, सबेरे उठने का टाइम नहीं है क्योंकि 8–9 बजे उठते हैं। आलसी प्रमादी हो गये, सदाचार धर्म बिल्कुल छोड़ दिया, सो इन नामधारी श्रावकों में से कोई एकाद कुछ ठीक श्रावक श्राविकायें मिल जायें सो बहुत कुछ हो गया परन्तु धर्म करने का समय नहीं, पेट भरने का समय है, त्यागीव्रती, साधुसंत अभी भी समझाते हैं तो फिर बहाना बना कर कहते हैं कि हम दूर रहते हैं, अकेले हैं, समय नहीं हैं, बीमार रहते हैं।

आचार्यश्री ने बहुत मेहनत से यह पुस्तक लिखी है। उसका पठन करो, मनन करो और अपने जीवन में उतारो तो अपना कल्याण हो सकता है।

संघस्थ

क्षुल्लिका 105 श्री श्रेणीमती माताजी

मेरे उद्‌गार

वासुपूज्य गुरुवर की महिमा, जग में अपरम्पार है
ग्रन्थ लिखा निज चिन्तन से, सहायक शास्त्र अपार हैं
पढ़ो सुनो और मनन करो, यह आगम का ही सार है
वासुपूज्य गुरुवर जी देखो, जन जन के हितकार हैं
प्रश्नोत्तर का यह विशाल, बना है देखो हार है
एक बार जो पढ़े, मिटेगा शंकाओं का भार है
ऐसे इस श्री ग्रन्थराज को नमन हो बारम्बार है
मिथ्या खण्डन करने वाली, यह तो पैनी धार है
शिष्य आपका यह सुगन्ध व्यक्त करे आभार है
अल्प बुद्धि से लिखा है आशीष दे दो गुरुवर, सार है।

संघस्थ

बा० ब्र० सुगन्ध कुमार जैन

यदा यदा हिं दिग्धर्मस्य ग्लानिर्भवति भूतले ।
अभ्युत्थानाम् अधर्मस्य विनाशनस्य गुरुर्भवति।।

जब जब भूतल में धर्म का ह्रास होता है तब तब जन जन के हित के लिए सद्गुरु अपनी कला का सर्जन करके मार्गदर्शन देते हैं।

मोक्ष और मोक्षमार्ग की प्राप्ति का उपाय बताने वाले एकमात्र सच्चे देव शास्त्र गुरु ही हैं। वर्तमान में सच्चे देव प्रत्यक्ष रूप से नहीं हैं, सिर्फ उनकी मूर्ति है। जिनवाणी (शास्त्र) भी समय के थपेडों में अधिकांश नष्ट हो गई है। जो कुछ बची है उसके अध्ययन का समय नहीं और है भी तो कहीं कहीं कुछ अहंकारी विद्वानों ने अपने स्वार्थ की तुष्टि पुष्टि के लिए तोड़ फोड़ मरोड़ कर दी हैं। वर्तमान की समाज दिक्भ्रमित हो रही है। एकमात्र अन्याय और स्वयं के स्वार्थ से आतंकित है, स्वयं की सूझबूझ है ही नहीं कि सही गलत का निर्णय ले सकें और ऐसे समय में आवश्यकता होती है एक ऐसे सच्चे गुरु की जो सही दिशा बोध करा सके। चूंकि सच्चे गुरु के भी नियमों की सीमा होती है, इस कारण प्रत्येक जन मन का प्रत्यक्षतः स्पर्श कर पाना कठिन ही नहीं अपितु अतिकठिन हो जाता है। कहावत है **''जहाँ चाह वहाँ राह''।** जब सच्चे गुरु के मन में करुणा अतिउफान मारती है और करुणा श्रोत जब अपनी सीमा तोड़ने लगता है तो श्रावक समुदाय के हितार्थ एक सृजना होती है, एक रचना होती है। जो पक्षपात, पंथवाद रहित, निस्वार्थ, निष्कपट होती है। वह कृति प्रत्येक श्रावक को उपलब्ध हो सके इसलिए अक्षरात्मक जिनवाणी (शास्त्र) का स्वरूप धारण करती है। जिसे पढ़कर मुमुक्षु, भव्य जीव, स्वयं का हित चाहने वालों का तीसरा नेत्र ज्ञानचक्षु खुल जाता है। संसार भ्रमण के मकड़जाल से छूटने का उपाय खोज लेते हैं।

आज भी समय की मांग है, चारों तरफ दीनहीन पुकार है कि हम क्या करें? कहाँ जायें? किसकी शरण प्राप्त करें ? आओ कोई हमें सही दिशाबोध कराओ। इस करुण पुकार को सुनकर जिसका अन्तर्मन द्रवित हो उठा, रो पड़ा ऐसे प. पू. 108 आ. श्री वासुपूज्य सागर महाराजश्री ने आखिर कलम उठा ही ली और एक नयी रचना कर दी, जो न्याय, तर्क, व्याकरण और सिद्धांत से ओतप्रोत हैं। वर्तमान में जिन कुतर्कणाओं से श्रावक पीड़ित है उनका कष्ट दूर करने के लिए आगम के आलोक में ही प्रश्न के अनुसार ही आगमिक, न्यायिक, तार्किक, मौलिक, सैद्धांन्तिक उत्तर दिये। जिस किसी भी उपाय से ये दीनहीन दुःखी प्राणी शान्ति प्राप्त करें इसलिए इस ग्रन्थ की सृजना की। यह प्रश्नोत्तरमाला भूमण्डल के समस्त जीवों के लिए हितकारी है यदि एकाग्र

मन से स्वाध्याय, चिंतन मनन कर जीवन में उतारने की कोशिश की जाय, विचारा जाये तो वस्तुतः पूज्य गुरुवर के तप साधना, ध्यान, चिंतन, मनन द्वारा प्राप्त किया हुआ यह वह खजाना है जिसे पाकर हर कोई अमीर बन सकता है।

अंत में पूज्य गुरुवर से यही प्रार्थना है कि..........

मैं एक भटकी राही हूँ ।
मंजिल की खोज में निकली हूँ
तो, गुरुवर मुझे वो आशीष दो
कि कंटकों से भरी राहों में
मन कभी विचलित न हो।।

प0 पू0 आध्यात्मवेत्ता
आ0 श्री 108 वासुपूज्य सागरजी महाराज
संघस्था
बा0 ब्र0 भाग्या जैन (नेहल दीदी)

मेरी भावना

'आंतरिक पीड़ा दिग्दर्शन' को पढ़ा, इसमें आचार्यश्री द्वारा जनमानस की धार्मिक जिज्ञासाओं को समझते हुए और जनमानस की, जिनधर्म के विपरीत चलने वाली क्रियाओं के अवलोकन से विक्षुब्ध होकर गूणतः से विचार कर उन्हें धर्ममार्ग में दृढ़ करने हेतु तथा सम्यक् क्रिया पालने हेतु इस पुस्तक के माध्यम से उनको सम्यक् दिग्दर्शन कराने का प्रयास किया है। इसे पढ़कर जैन जैनेतर समाज की विचारधाराओं और उनकी जिज्ञासाओं का अवश्य ही शमन होगा।

यही 'मेरी भावना' है।

संघस्था
बा0ब्र0 गुंजा दीदी

आचार्य श्री वासुपूज्यसागर जी महाराज के 34वें दीक्षा दिवस के अवसर पर
चरणों में शत् शत् नमन कोटि-कोटि वंदन

पुण्यार्जक

श्रीमती सुमित्रा जैन

श्रीमती त्रिशला जैन

श्री अरूण जैन

श्री संजीव जैन

श्री राजेश जैन

श्री राजीव जैन

गर्ग डुप्लैक्स परिवार

4 रेनबो विहार, मुजफ्फरनगर, उ.प्र.

पुण्यार्जक

श्री सुखबीर सिंह जैन एवं श्रीमती नगीनी जैन (नावला वाले)

वहलना स्टील्स प्रा. लि. परिवार, मुजफ्फरनगर

श्री देवेन्द्र जैन, श्री राजकुमार जैन, श्री सुधीर जैन, श्री योगेश जैन
श्री विनेश जैन, श्री अनिल जैन, श्री सुनील जैन

अतिशय क्षेत्र वहलना के विहंगम दृश्य

मानस्तम्भ

पाण्डुकशिला

रथयात्रा

पार्श्व नौका विहार

अस्ववन (दीक्षा वन)

समाधि स्थल का मुख्य द्वार एवं वाटिका

पारस चौक

प्राकृतिक चिकित्सालय

आचार्य श्री वासुपूज्य सागर जी महाराज मंगलाचरण करते हुए

मुजफ्फरनगर में वर्षायोग कलश स्थापना समारोह में मंचासीन आचार्य श्री ससंघ

घड़ी मिलन की आ गई रे

ये है वात्सल्य
(आपस में गले मिलते हुए युगल आचार्य श्री)

तीन आचार्य संघों का कलकत्ता महानगर में भव्य स्वागत-
एक झलक कलकत्ता के मुख्य मार्गों से गुजरते हुए

आचार्य श्री वासुपूज्यसागर जी महाराज एवं
उपाध्याय श्री नयनसागर जी महाराज का मंसूरपुर में मंगल मिलन

युगल आचार्य श्री तत्व चर्चा करते हुए (प्रसन्न मुद्रा में)
आचार्य श्री वासुपूज्यसागर जी महाराज एवं
आचार्य श्री पुष्पदंतसागर जी महाराज

काशीपुर, उत्तराखण्ड में
पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव की झलकियां

मेरा मन

धर्म से सुख प्राप्त होता है, जीवन में निर्मलता और पवित्रता का नाम ही धर्म है यदि सन्त के सान्निध्य में मन का कमल नहीं खिलता तो जीवन व्यर्थ है। धर्म की पद्धति से परिणामों की शान्ति नहीं तो धर्म भी नहीं है....क्या है धर्म, पांचों परमेष्ठि हमारे लिये परम आराध्य एवं उपास्य हैं।

बड़े ही भाग्यशाली होते हैं वो लोग जिन्हें साधु, संतों, त्यागी, तपस्विगणों का सान्निध्य मिलता है। इस दृष्टि से हम मुजफ्फरनगर के श्रावक–श्राविकायें अत्यन्त पुण्यशाली हैं कि इस नगर को बड़े–बड़े संघों का चातुर्मास कराने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अनेकों दिगम्बर साधुओं की चरणरज से यहां की धरती पवित्र हुई।

इस बार भी 2009 में चौरासी लाख मंत्र लेखनकर्ता परम पूज्य आचार्य श्री 108 वासुपूज्यसागर जी महाराज प्रेमपुरी मुजफ्फरनगर में ससंघ विराजमान रहें। आचार्य गुरुवर आचार्यरत्न श्री पार्श्वसागर जी महाराज 'कोटला वालों' के शिष्य हैं। आचार्य श्री वासुपूज्यसागर जी महाराज अपनी दृष्टि को भौतिकता से तोड़कर आध्यात्मिकता की ओर मोड़ उस अनंत शक्ति सम्पन्न परम इष्ट की खोज में तल्लीन रहते हैं। वास्तव में आप सचमुच ही अलौकिक प्रतिभा के धनी, दीन दुखियों के मसीहा, पतितों के अवलम्बन, अज्ञानियों के हृदय में ज्ञान का दीप प्रज्ज्वलित करने वाले, स्याद्वाद रूप जिनवाणी को जन–जन में पहुंचाने के लिये सतत् प्रयत्नशील रहते हुए आत्म साधना में रत हैं। इस जिनवाणी का प्रतीक ''आन्तरिक पीड़ा दिग्दर्शन'' वास्तव में प्राणियों की पीड़ा का हरण करने वाली हैं। आप सभी प्राणियों के एक ऐसे वैद्य हैं, हकीम हैं जो जन–जन के प्यारे हैं, दुलारे हैं। ऐसे तप–संयम–साधना में रत जीवदया प्रेमी, समताभावी गुरुवर 108 वासुपूज्य सागर जी महाराज के चरणों में शत्–शत् नमन।

''कंकड़ से हीरा बनता है, गुरु से प्रीति लगाकर देख।
मैंने तो बिन माँगे पाया, आज यही अजमा कर देख।।

नमनकर्ता :

श्रीमती शीला जैन

एवं श्री विनोद जैन (बैंक वाले)

मुजफ्फरनगर

<u>विशेष आभार</u>

श्रीमती सुमित्रा जैन–श्रीमती त्रिशला जैन (गर्ग डुप्लैक्स परिवार, मु.नगर)
श्री सुखबीर सिंह जैन (नावला वाले), वहलना स्टील्स एंड एलाईज प्रा. लि. परिवार (मु.नगर)
श्री धनपाल सिंह जैन, सुरेश चन्द जैन, महेश चन्द जैन (विकास पेपर कनवर्टर परिवार, दिल्ली)

इनकी मैं (संघस्था ब्र. नेहल) विशेष रूप से आभारी हूँ। इस ग्रंथ को सुचारु रूप से तैयार करने में मोहनजी का साथ अविस्मरणीय है। राजकुमार जैन (नावले वाले) ने छपवाने में जो सहयोग दिया है वह प्रसंशनीय है। इनके सहयोग के बिना शायद इतनी शीघ्रता से प्रकाशित होना मुझको कठिन लग रहा था। वर्माजी ने कंपोजिंग की जवाबदारी उठाई जो काबिले तारीफ है तथा श्रीमती सुमित्रा जैन–श्रीमती त्रिशला जैन (गर्ग डुप्लैक्स परिवार, मु.नगर), श्री सुखबीर सिंह जैन (नावला वाले), वहलना स्टील्स एंड एलाईज प्रा. लि. परिवार (मु.नगर), श्री धनपाल सिंह जैन, सुरेश चन्द जैन, महेश चन्द जैन (विकास पेपर कनवर्टर परिवार, दिल्ली) ने प्रकाशित करवाया।

इन सभी को पुनः पुनः धन्यवाद।

पूज्य गुरुजी का सभी को खूब खूब आशीर्वाद।

लि.

प.पू. आध्यात्मयोगी बा.ब्र.108 आ. वासुपूज्यसागर महाराजजी

संघस्था

भाग्यादीदी

मेरे उद्गार

परम पूज्य आचार्य श्री का पावन वर्षायोग 2009 मुजफ्फरनगर की इस धारा पर सानन्द सम्पन्न हुआ आचार्य श्री के तप, त्याग, साधना के बारे में काफी कुछ सुना था अब जब गुरुवर का पावन सान्निध्य प्राप्त हुआ तो गुरुदेव का वात्सल्य, साधना, तप और त्याग को स्वयं देखा और महसूस किया कि इनके सान्निध्य में मन में एक अलौकिक सुखद शान्ति का अहसास होता है जिस प्रकार किसी गूंगे व्यक्ति को मीठा आम का फल खाने को दे दिया जाय तो वह उसके स्वाद का अनुभव अपने अंतःकरण में तो करता है परन्तु उसे शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकता उसी प्रकार गुरुवर की पावन शरण जो भी लेता है उसे वह स्वयं ही महसूस कर सकता है गुरुदेव की प्रशंसा में कुछ भी कहना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है अनेक धार्मिक ग्रन्थों के रचयिता, जैन धर्म का प्रचार–प्रसार भारत के अनेक राज्यों मे करने वाले, भगवान महावीर की वाणी को जन–जन तक पहुंचाने वाले, जैन आगम के अनुसार भगवान महावीर के लघुनन्दन, 84 लाख मंत्र लेखनकर्ता गुरुदेव के बारे में क्या कहूँ–

किस प्रकार उनका परिचय दू मैं तो बस यही कहता हूं
पल भर में उन्हें भर देते हैं जो खाली दिनों की गागर हैं
संताप दुखों के जकड़े हुए इंसान के गिरधर नागर है
आंखों में प्यार झलकता है वाणी से टपकता अमृत है
त्याग की मूरत सन्यासी और नाम से वासु पूज्य सागर है

मैं जब भी गुरुवर के पास आया तो देखा कि गुरुदेव पल प्रतिपल अपनी साधना में लगे रहते हैं इनके लिए सब एक समान है मैंने महसूस किया कि शास्त्रों में जैसे दिगम्बर संत का वर्णन आता है ये वैसे ही है। गुरुवर को किसी से लेना देना नही है ये तो स्वयं संयम के पथ पर चलते हुए सभी को इस मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं मैं तो समझता हूँ कि यह मेरा पूर्व कर्मों का पुण्योदय ही था कि मुझे ऐसे गुरुवर की छत्र छाया प्राप्त हुई गुरुवर की अनुकम्पा मुझ पर रही गुरुदेव का चातुर्मास स्थापना, परम पूज्य आर्यिका श्री श्रेयमती माता जी का जन्म दिवस, दीक्षा दिवस नवरात्रों में नौ दिवसीय जिनेन्द्र महा आराधना मुजफ्फरनगर की धरा पर इतने भव्य रूप में और ऐतिहासिक हुए यह सब आचार्य श्री के आशीर्वाद का ही फल था।

गुरुवर को अपना बनाने के लिए अगर किसी चीज की आवश्यकता है तो वह है सच्ची श्रद्धा, समर्पण, आस्था और विश्वास के साथ जो एक बार इनके पावन पुनीत चरणों में आ जाता है वह इन्हीं का होकर रह जाता है यही एक कारण है कि प्रतिदिन अनेक शहरों से अनेक प्रान्तों से भक्त जन आकर इनकी महिमा के गुणगान करते हैं। इनके विशाल स्वरूप को शब्दों में नहीं बांधा जा सकता चारित्र सम्राट, वात्सल्य दिवाकर अपनो भक्तों पर करुणा बरसाने वाले गुरुवर को मैं सत्–सत् नमन करता हूँ एवं आचार्य श्री के दीक्षा दिवस समारोह दिनांक 27 नवम्बर 2009 के अवसर पर प्रकाशित इस ग्रंथ के द्रव्यदाताओं श्रीमती सुमित्रा जैन–श्रीमती त्रिशला जैन (गर्ग डुप्लैक्स परिवार, मु.नगर), श्री सुखबीर सिंह जैन (नावला वाले), वहलना स्टील्स एंड एलाईज प्रा. लि. परिवार (मु.नगर) एवं श्री धनपाल सिंह जैन, सुरेश चन्द जैन, महेश चन्द जैन (विकास पेपर कनवर्टर परिवार, दिल्ली) का विशेष आभार करते हुए आचार्य श्री के चरणों में शत् शत् नमन करता हूं।

राजकुमार जैन (नावला वाले)
सचिव जैन स्कूल कमेटी (रजि.), मुजफ्फरनगर

मेरी अनुभूति

आचार्यश्री वासुपूज्यसागरजी महाराज ने इस ग्रन्थ की रचना दिगम्बर जैन मन्दिर मैदागिनी धर्मशाला अग्रवाल समाज बनारस में फागुन वदी द्वादशी दिन मंगलवार रात्रि प्रथम प्रहर दिनांक 17.2.2004 से प्रारम्भ किया और बहराईच में रात्रि 8:25 पर पूर्ण किया एवं नहटौर, जिला बिजनौर उ०प्र० में चातुर्मास 2007 के अन्तर्गत संशोधन सहित पूर्ण किया इस ग्रन्थ को लेखन/सुधार करने में लगभग चार वर्षों का समय लगा इन चार वर्षों के दौरान मैंने आचार्यश्री को जब भी देखा इसी ग्रन्थ के लेखन/सुधारने में लगा देखा। मैं समझता हूँ कि आचार्यश्री की तपस्या का फल इस ग्रन्थ के रूप में हमारे सामने है।

आचार्यश्री ने इस ग्रन्थ की मूल प्रति को लिखने में किसी का भी सहयोग नहीं लिया और सबसे विशेष बात यह है कि वर्तमान युग में लेखन कार्य में किसी रेडीमेड स्याही/डॉट पेन का इस्तेमाल न कर केवल मर्यादित स्याही के माध्यम से होल्डर द्वारा अपने बड़े अमूल्य समय, ज्ञान, स्वविवेक और अनेक कष्टों को सहते हुए इस ग्रन्थ/जिनवाणी को हमारे समक्ष रखा ताकि हम अपने जीवन में यदि कुछ भी ग्रहण कर सकें तो अपनी आत्मा का उपकार हो सकता है।

भगवान महावीर स्वामी के काल में राजा श्रेणिक हुए, उन्हें जैनधर्म पर श्रद्धान नहीं था, उनकी धर्मपत्नी रानी चेलना कट्टर जैनधर्म की श्रद्धानी थी। अपनी रानी की समय समय पर प्रेरणा से प्रेरित हो राजा श्रेणिक ने भगवान महावीर से 60000 प्रश्न किये जिनका उत्तर भगवान महावीर ने राजा श्रेणिक को दिया। जिसके कुछ अंश जिनवाणी के रूप में हमारे सामने विद्यमान हैं। राजा श्रेणिक ने भगवान महावीर की वाणी को ग्रहण कर, सोलहकारण भावना भाकर तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध किया और उत्सर्पिणी काल में आने वाली चौबीसी में वे जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर होंगे।

उस समय पूर्वकाल में जिनवाणी को लिपिबद्ध नहीं किया जाता था जिनेन्द्र वाणी गणधर तक, गणधर से आचार्यों तक ही कंठस्थ रहती थी किन्तु काल के प्रभाव से धरषेणाचार्य ने जब यह देखा कि जिनवाणी बिल्कुल लोप होती जा रही है तो उन्होंने आ०पुष्पदन्त और भूतबली को ज्ञान दिया। फल स्वरूप ताड़पत्रों पर जिनवाणी को लिपिबद्ध किया गया फिर उसी जिनवाणी की रक्षा के लिए आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने पूर्व जन्म (ग्वाला) में जिनवाणी की रक्षा की थी और मुनिराज को शास्त्रदान दिया था उसीके फल स्वरूप ग्वाले का जीव आचार्य कुन्दकुन्द के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत हुआ। आचार्य कुन्दकुन्द का उपकार जैनधर्म/जैन श्रावकों के प्रति कितना है हम सभी से छिपा नहीं है। जिनवाणी की रक्षा करने का कितना अचिन्त्य फल है कि एक ग्वाले का जीव आचार्य कुन्दकुन्द बना।

इसी क्रम में प. पू. आचार्य श्री 108 वासुपूज्यसागरजी महाराज ने प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग इन चारों अनुयोगों का सूक्ष्म रूप 2651 प्रश्नोत्तरों के रूप इस ग्रन्थ में समाहित किया है। इस ग्रन्थ में छोटे छोटे प्रश्न बनाकर उनके उत्तर देकर जैन श्रावकों पर/जैनधर्म पर, जैनेतर समाज पर एवं उन व्यक्तियों पर जो जैनधर्म से डिगते/हटते जा रहे हैं उन पर बड़ा उपकार किया है।

वे सभी लोग आचार्य श्री वासुपूज्यसागरजी महाराज के ऋणी रहेंगे जो जो इस ग्रन्थ का स्वाध्याय कर अपने जीवन में ग्रहण कर आत्मकल्याण करेंगे। आप सबकी ओर से, जन जन की ओर से मैं यही मंगल कामना करता हूँ कि आचार्य श्री 108 वासुपूज्यसागरजी महाराज के जीवन में वह दिन अवश्य आये कि वे राजा श्रेणिक की तरह तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध कर, भव्यों को संबोधन कर अंत में मोक्ष रूपी लक्ष्मी का वरण करें।

इस पुस्तक की प्रस्तावना के रूप में मैंने अपने हृदय के उद्गार प्रकट किये हैं इस ग्रन्थ के संबंध में कुछ भी लिखना सूर्य के सामने दीपक दिखाने के समान है।

इन्हीं भावनाओं के साथ आचार्य श्री 108 वासुपूज्यसागरजी महाराज के श्रीचरणों में सादर नमोऽस्तु .....

प्रकाशक :

सुनील कुमार जैन

ट्रस्टी जय अरिहंत चेरिटेबल ट्रस्ट

विद्या पुष्प एकेडमी मार्ग, बरेली रोड, हल्द्वानी

जिला–नैनीताल (उत्तराखण्ड)

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

स्वादिष्ट व्यंजन

ऐसी विषम स्थिति में आज जब सारी दुनिया के लोग विश्वशांति और विश्व बंधुत्व की भावना को लेकर आगे बढ़ रहे हैं, अन्यमति साधु एवं विद्वान विदेशों में जाने लगे हैं। दुनिया इतनी छोटी हो गई है कि हम कुछ ही घंटों में सात समुद्र पार पहुंच जाते हैं या कुछ ही मिनटों में पता चल जाता है कि अमुक स्थान पर अमुक घटना घटी। तो क्या हमारे साधुओं का कर्तव्य नहीं हो जाता कि हम भक्तगणों को कूपमण्डूक वाली मानसिकता से ऊपर उठाकर अपनी धार्मिक भावनाओं एवं मान्यताओं को अक्षुण्ण रखते हुए अहिंसा धर्म के सिद्धांतों को भलीभांति लोगों तक पहुंचायें। आचार्यश्री ने इस ग्रंथ में कितनी सरल विधि से तत्त्व दर्शन और जैनदर्शन के सिद्धांतों को समझाया है इसका वर्णन करना कठिन है। यदि हम इस ग्रंथ का अध्ययन करें तो पाते हैं कि आज तक हमें तत्त्व दर्शन या जैनदर्शन के बारे में बताया या समझाया गया वह कितना संकुचित दृष्टिकोण था या अजानकारी थी।

आचार्यश्री द्वारा लिखित यह ग्रंथ इतना विशाल है कि उस पर अनेक दृष्टियों से स्वतंत्र रूप से अनुशीलन अपेक्षित है। विविध दृष्टिकोणों से उसे वर्गीकृत कर यदि उसकी मीमांसा और समीक्षा की जावे तो पुनः एक विशाल ग्रंथ का निर्माण सहज ही हो सकता है।

जब समाज में कुछ असामान्य घटनायें घटती हैं तो साधु समाज के मन में भी कुछ असामान्य घटनायें घटती हैं और उस वक्त साधु समाज के मन में आंतरिक पीड़ा होती है। आचार्यश्री भी इस पीड़ा से अछूते नहीं रहे। आचार्यश्री ने अपनी पीड़ा को सर्व साधु समाज की और गृहस्थों की पीड़ा समझा। किस खुबसूरती से आपने अपनी पीड़ा को तलाशा फिर उसे तराशा, फिर उस पर अपने ज्ञान तथा अनुभव का मसाला लगाकर आपको एवं हमें यह व्यंजन के रूप में परोसा। कड़वा विषय, उसको व्यंजन के रूप में परोसना आचार्यश्री की लेखनी का कमाल है। आप और हम जब इस व्यंजन को मुँह में रखेंगे (अर्थात् ग्रंथ का अध्ययन करेंगे) तब महसूस करेंगे आचार्यश्री की वास्तविक पीड़ा को।

कहावत है कि प्राचीन इतिहास सुरक्षित रखने के साथ साथ हर युग में नया इतिहास बनाना चाहिए, कहीं ऐसा न हो कि भविष्य के लोग कहे कि इस युग में ऐसे भक्त ही नहीं थे जो नया इतिहास लिखते। नवनिर्माण की दृष्टि में भी युग को समृद्ध होना चाहिए और प्राचीनता को संजोने में भी पीछे नहीं रहना चाहिए। ग्रंथ पढने के बाद आप प्राचीन एवं नवीन विचारधारा का अजीब संयोग पायेंगे। आप देखेंगे कि आचार्यश्री ने आंतरिक पीड़ा के माध्यम से जैनदर्शन को किस नवीनरूप में आपको परोसा है।

—सुनील कुमार वर्मा

धामपुर

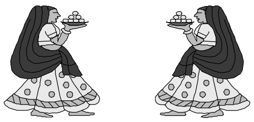

इत्यलम्।

आचार्य वासुपूज्य सागराय नमः

परम पूज्य आचार्य वासुपूज्य सागरजी गुरुवर को शत् शत् नमन

''कुछ लोगों की कुछ बातों में, कुछ तो अंतर होता है।
कुछ मन में उतर जाते हैं, कुछ मन से उतर जाते हैं।''

परम पूज्य अध्यात्मयोगी बाल ब्र. 84 लाख मंत्र और उत्तर गुण लेखन कर्ता आ. श्री 108 वासुपूज्य सागरजी महाराज ने संघ सहित अहिच्छत्र रामनगर (तह. आँवला, जि. बरेली) होकर महावीर जयन्ति 2006 के शुभ अवसर पर पश्चिमी उ0प्र0 रामपुर स्टेट में प्रवेश किया। आचार्य श्री के प्रथम दर्शन और संक्षिप्त परिचयात्मक वार्तालाप का कुछ ऐसा अपूर्व प्रभाव पड़ा की मैं तभी से उनका अन्तेवासी बटुक बनकर रह गया। 4–12–2006 तक रामपुर में और उसके बाद पीतल नगरी मुरादाबाद में पंचकल्याणक तथा विविध धार्मिक आयोजन संपन्न उन्होंने कराये। होलिकोत्सव के पूर्व धामपुर में सिद्धचक्र महामण्डल विधान और सांस्कृतिक आयोजनों में मुझे आचार्यश्री का सामीप्य मिला। महावीरजयन्ति 2007 के शुभ अवसर पर अनेक भव्य आयोजन तथा विधान आदि कार्यों में धर्म नगरी नहटौर (जि. बिजनौर उ0प्र0) में रहने का सौभाग्य तथा आ. श्री के संघ का आशीर्वाद प्राप्त करनेवाला मैं पुराने संस्कारों वाला एक ऐसा शिष्य हूँ जो पूजनीय पं0 कैलासचंद्रजी सिद्धांत शास्त्री, स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस और पं0 जी की जन्मभूमि नहटौर का समान वात्सत्य का भागीदार रहा, दोनों का ही स्नेह मुझे मिला। इनसे जो संस्कार बीजरूप में प्राप्त हुए, आचार्य श्री के संघ ने, आचार्य श्री के आशीर्वाद ने मुझमें पल्लवित किये।

नहटौर के बाद डेढ़ माह तक किरतपुर तथा लगभग एक माह तक नजीवाबाद (बिजनौर उ0प्र0) में संघ सहित आचार्य श्री ने ऐसी अपूर्व धर्म प्रभावना तथा अमृत उपदेशों की वर्षा की कि जिससे जैन समाज नहटौर के 2007 के वर्षायोग के आग्रह और निमंत्रण को आचार्य श्री को स्वीकारना पड़ा। 15–7–2007 से निरंतर संपूर्ण चातुर्मास के शुभ दिनों में आचार्य श्री और संघ की शीतल, सुखद छायाने, मार्गदर्शन ने मुझमें और अभ्यागत तथा स्थानीय समाज में ऐसी उर्वरा शक्ति का आधान किया कि पुराने बीज अंकुरित, पल्लवित और पुष्पित होकर फलदार वृक्ष के रूप में लहलहाने के लिये पर्याप्त ऊर्जा समाये हुए हैं।

भारत में संपूर्ण दिगम्बर जैन समाज के लिये आ. श्री वासुपूज्य सागरजी की प्रसूत 84लाख उत्तरगुण और 84लाख मंत्रों की अपूर्व धरोहर है जिसे कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता है। जो दिगम्बर जैन गृह चैत्यालय महेवा जि0 पन्ना म0प्र0 में सुरक्षित एक निधी के रूप में है। उत्तरगुण मंत्र विधान एवं ब्रह्मचर्य तथा पं0 दौलतरामजी कृत छहढाला ग्रंथ पर एक सुरक्षा चक्र

ज्ञानवर्द्धिनी प्रश्नोत्तरी टीका है। जो अत्यंत उपयोगी सहजगम्य है, संग्रहणीय है, पठनीय है।

अनेक वर्षों के सतत प्रयासों से अनेक आगम ग्रंथों के पठन और मनन से लगभग 2651 प्रश्नोत्तररूप में आचार्य श्री की एक ऐसी अभूत पूर्व अद्भुत रचना सामने आ रही है जिसमें सहज सरल और सुगम भाषा शैली में जैनधर्म, दर्शन, सिद्धांत ग्रंथों का कुछ अंश निहित होगा।

आचार्य श्री का अगाध ज्ञान, तपः पूत, जीवन शैली, सहज, सरल, चारित्रगत विशेषताएँ, जीवन और जगत संबंधी जिज्ञासाओं, रहस्यों को सहज ही सुलझाने में समर्थ है। मेरे लिए तो चिर प्रतीक्षित गुरु सहज ही सुलभ हो गये, कितना अगाध स्नेह वात्सल्य उनमें है, सरलता और गंभीरता की प्रतिमूर्ति आचार्य श्री ज्ञानरूपी सूर्य को मैं कुछ शब्द देकर दीपक दिखाकर उनकी गरिमा को कुछ कम तो नहीं कर रहा हूँ इसका मुझे भय है।

निरंतर स्वाध्याय, मंत्र जाप, लेखन कार्य संयम पूर्वक आराधना तथा संघस्थ साधुओं के, श्रावक श्राविकाओं के पठन पाठन में ही जिनका संपूर्ण समय व्यतीत होता है, तत्त्वचर्चा के लिए जो सबको सहज सुलभ है। ऐसे प्रातः स्मरणीय परम पूज्य आचार्य वासुपुज्य सागर गुरुवर को मेरा शत शत नमन और वंदन है। अनेक आशाओं और आकांक्षाओं के साथ अंतिम विनय है—

उजाले अपनी यादों के हमारे साथ रहने दो।
न जाने किस गली में जिन्दगी की शाम हो जाये।।

विनीत — संघस्थश्रावक
रतनचंद्र जैन,
एमञ्एञ्, आचार्य (प्रवक्ता)
रामपुर (उ.प्र.)

आचार्य श्री वासुपूज्य सागर जी महाराज ससंघ का
प्रेमपुरी मु.नगर में वर्षायोग हेतु मंगल प्रवेश

आचार्य श्री वासुपूज्य सागर जी महाराज ससंघ
वर्षायोग मंगल कलश कलश स्थापना की झलकियाँ

धर्मध्वजारोहण करते हुए श्री जयप्रकाश जैन, नरेन्द्र जैन 'नावला वाले'
एवं श्री विजय जैन 'यू.एस.ए.' आदि

पत्रिका का विमोचन करते हुए श्री सुखबीर सिंह जैन 'द्वारिका पुरी', श्री जयप्रकाश जैन 'नावला वाले'
नगर विधायक श्री अशोक कंसल, श्री भूषण कुमार जैन 'पुनालियान वाले', श्री बाबूलाल जैन के साथ

मुख्य अतिथि श्री सुरेश चन्द जैन 'मुरादाबाद' का सम्मान करते हुए श्री जयप्रकाश जैन, श्री योगेश जैन,
श्री नरेन्द्र जैन, श्री देवेन्द्र जैन 'नावला वाले', श्री जितेन्द्र जैन 'टोनी जी' एवं श्री विनोद जैन 'नावला वाले'

आचार्य श्री से कलश प्राप्त करते श्री दिनेश जैन 'नावला वाले'
वर्द्धमान स्टील्स एंड एलाईज-मुजफ्फरनगर

वर्षायोग कलश स्थापना हेतु जाते हुए श्री अनिल जैन-दिल्ली, श्री जयप्रकाश जैन-श्री नरेन्द्र जैन-श्री देवेन्द्र जैन 'नावला वाले',
श्री रायबहादुर जैन 'जसपुर', श्री सुनील जैन-हल्द्वानी, श्री राजेश जैन 'गर्ग डुप्लैक्स' आदि

आर्यिकारत्न 105 श्री श्रेयमती माताजी 17वें दीक्षा दिवस एवं जन्मदिवस की झलकियाँ

आर्यिकारत्न 105 श्री श्रेयमती माताजी 17वें दीक्षा दिवस एवं जन्मदिवस की झलकियाँ

आर्यिकारत्न 105 श्री श्रेयमती माताजी 17वें दीक्षा दिवस एवं जन्मदिवस की झलकियाँ

मुजफ्फरनगर में वर्षायोग के अंतर्गत

नौ दिवसीय जिनेन्द्र महार्चना के दृश्य

मुजफ्फरनगर में वर्षायोग के अंतर्गत
नौ दिवसीय जिनेन्द्र महार्चना के दृश्य

हिमालय

सिद्धार्थ फर्नीचर

अनुक्रमणिका

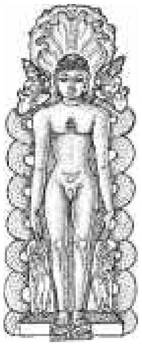

अ –कवर्ग

प्र –2449 ॐकार यह पद क्या स्वर है या व्यंजन? 506

प्र –2450 ॐकार पद में क्या क्या अर्थ सन्निहित है? 506

प्र –2579 अग्नि जलाने से किस प्रकार .... होती हैं? 535

प्र –345 अगुप्तिभय किसे कहते हैं? 79

प्र –634 अगुरु किसे कहते हैं? 148

अ –चवर्ग

प्र –507 अचित्त जल किसे कहते हैं? 123

प्र –829 अचित्त पूजा किसे कहते हैं? 215

प्र –940 अचेतन सर्वघाती स्पर्धक किसे कहते हैं? 242

प्र –1219 अचौर्याणुव्रत किसे कहते हैं? 291

प्र – 1220–21 अचौर्याणुव्रत और अचौर्य ....क्या अंतर? स्वामी कौन हैं? 291

प्र –1260–61 अचौर्याणुव्रत के अतिचार दोष कितने हैं? नाम कौन^2 हैं? 298

प्र– 1300 अचौर्याणुव्रत और अचौर्यमहाव्रत में .....लिए मना किया है? 305

प्र –1432 अचेतन परिग्रह किसे कहते हैं? 329

प्र –1495 अचेतन वाहन किसे कहते हैं? 337

प्र –1498–1500 अचेतन वाहन कौन^2 हैं? नाम कौन^2 हैं? हानि क्या है? 338

प्र –2471 अचेतन द्रव्यों का चिन्तन ....कैसे हो सकती है? 510

प्र –90 अजीव तत्त्व किसे कहते हैं? 13

प्र –749 अजैनों का होने से......पंचामृताभिषेक नहीं करना चाहिए? 181

प्र –2423 अजीवविचय धर्मध्यान किसे कहते हैं? 501

अ – टवर्ग

प्र –1076–77 अणुव्रत किसे कहते हैं? इसके स्वामी कौन हैं? 269

प्र –1091–93 अणुव्रतों के कितने भेद हैं? नाम कौन^2 हैं? लक्षण क्या है? 270

अ – तवर्ग

प्र –1014 अतिक्रम दोष किसे कहते हैं? 258

प्र –1016 अतिचार दोष किसे कहते हैं? 258

प्र –1126–27 अतिभार लादना किसे कहते हैं ?....दोष किसे कहते हैं? 277

प्र –641	अतिव्याप्ति दोष कैसे आता है बताओ?	149
प्र –1488–89	अतिवाहन.....किसे कहते हैं? किस कारण.....होता हैं?	337
प्र –1501	अतिसंग्रह अतिचार किसे कहते हैं?	338
प्र –1502–03	अतिसंग्रह किन वस्तुओं का...है? क्यों किया जाता है?	338
प्र –1513	अतिलोभ किसे कहते हैं?	341
प्र –1516	अतिलोभ के स्वामी कौन[2] जीव हैं?	342
प्र –1519	अतिभार वहन किसे कहते हैं?	343
प्र –1520	अतिभार वहन अतिचार क्यों लगाया जाता है?	343
प्र –1539–41	अतिचार किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन[2] हैं?	346
प्र –1610	अतिचारों की उत्पत्ति किस कारण से होती हैं?	359
प्र –1756	अतितृषा अतिचार किसे कहते हैं?	383
प्र –1757	अतिलौल्य अतिचार किसे कहते हैं?	383
प्र –1758	अतितृषा अतिचार और अतिलौल्य.....क्या अन्तर हैं?	383
प्र –1765–66	अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत.... हैं? पात्र किसे कहते हैं?	384
प्र –1789	अतिथि किसे कहते हैं?	386
प्र –1793	अतिथि के लिए किस प्रकार का संविभाग करना चाहिए?	387
प्र –1794	अतिथिसंविभाग किस विधि से करना चाहिए?	387
प्र –1817–19	अतिथिसंविभाग...भेद हैं? नाम... ? किसे....होते हैं?	391
प्र –1861	अतिचार और अनाचार दोष किस कारण से उत्पन्न होते हैं?	398
प्र –1791	अतिथिसंविभाग व्रत.... मध्यम और जघन्य पात्र कहा है?	387
प्र –2445	अर्थसंक्रान्ति किसे कहते हैं?	505
प्र –1661	अदर्शन परिषह जय किसे कहते हैं?	367
प्र –1619	अधिक वचन प्रयोग किसे कहते हैं?	360
प्र –1620	अधिक वचन मौखर्यवचन की पहचान क्या है?	360
प्र –1621	अधिक बोलने से क्या हानि है?	361
प्र –1724	अध्यात्म सम्बन्धी प्रमाद किसे कहते हैं?	377
प्र –1544–45	अधःव्यतिक्रम....कहते हैं? किस.....उत्पन्न होता है?	347
प्र –200–01	अन्याय किसे कहते हैं? कितने भेद हैं?	37
प्र –356	अन्तर्भाव किसे कहते हैं?	82
प्र –384–85	अन्तरंग अनायतन किसे कहते हैं? कितने भेद हैं?	91

प्र–411–13	अन्यत्व भावना किसे कहते हैं? क्या लाभ है? क्या हानि है?	96
प्र –561–62	अन्तरंग भक्ति किसे कहते हैं? इसके स्वामी कौन हैं?	132
प्र –642	अन्यमति साधु और गृहस्थों के प्रशमादि गुण...सो कैसे?	150
प्र –720	अन्त्याभिषेक किसे कहते हैं?	167
प्र –1084	अन्वय उदाहरण किसे कहते हैं?	270
प्र –1130	अन्नपान निरोध दोष किसे कहते हैं?	278
प्र –1373	अन्यविवाहाकरण अतिचार दोष किसे कहते हैं?	318
प्र –184	अन्तरंग कारण किसे कहते हैं?	33
प्र –1420	अन्तरंग परिग्रह के भेद कितने हैं? तथा नाम कौन^2 हैं?	327
प्र –1422	अन्तरंग आत्म परिणामों को परिग्रह क्यों कहा?	327
प्र –1879–80	अन्यदृष्टि प्रशंसा किसे कहते हैं? ऐसा करने....प्राप्त होती है?	402
प्र –1881	अन्यदृष्टियों की प्रशंसा यह जीव क्यों करता है?	403
प्र –1898	अन्यदृष्टि स्तव किसे कहते हैं?	407
प्र –1218	अन्य किसी की वस्तु गिरी, रखी.... देने को चोरी क्यों कहा?	291
प्र –2469	अन्यत्व भावना और पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान मे क्या अन्तर है?	509
प्र –2297–98	अन्तरंग परिग्रह किसे कहते हैं? बहिरंग परिग्ह ....?	474
प्र –380–83	अनायतन किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? हानि है? त्याग..?	90
प्र –492	अनछने पानी की विराधना करने से....होता है?	120
प्र –1376	अनंगक्रीड़ा नाम का अतिचार दोष किसे कहते हैं?	319
प्र –1381	अनंगक्रीड़ा रूप प्रवृत्ति किस किस......जागृत होती है?	319
प्र –1017	अनाचार दोष किसे कहते हैं?	259
प्र –1849	अंतिम उपसंहार रुप में अणुव्रत किसे कहते हैं?	396
प्र –1589–90	अनर्थदण्ड किसे कहते है और अनर्थदण्ड व्रत किसे कहते हैं?	355
प्र –1592–93	अनर्थदण्ड के भेद कितने हैं ? नाम कौन^2 हैं?	356
प्र –1611–12	अनर्थदण्ड व्रत के अतिचारों के कितने भेद हैं? नाम ...हैं?	359
प्र –572	अनुप्रेक्षा स्वाध्याय में और आम्नाय स्वध्याय में क्या अन्तर है?	134
प्र –8–10	अनात्मभूत....किसे कहते हैं? स्वामी कौन^2 हैं? फल क्या हैं?	2
प्र –44–45	अनादि किसे कहते हैं? अनंत किसे कहते हैं?	6
प्र –1681	अनादर अतिचार किसे कहते हैं?	371
प्र–1682	अनादर भाव क्यों उत्पन्न होता है?	371

प्र –1715–16	अनादर अतिचार किसे कहते हैं? ....अतिचार क्यों कहा?	376
प्र –218	अनिष्टकारक अभक्ष्य किसे कहते हैं?	40
प्र –1456	अनिष्ट विषय अमनोज्ञ विषय किसे कहते हैं?	333
प्र –2010	अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान किसे कहते हैं?	424
प्र –2011	अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान कैसे उत्पन्न होता है?	424
प्र –2533	अनिष्टकारक अभक्ष्य किसे कहते हैं?	523
प्र –400	अनित्य भावना किसे कहते हैं?	94
प्र –401	अनित्य भावना का चिन्तन करने से क्या लाभ है?	94
प्र –219	अनुपसेव्य अभक्ष्य किसे कहते हैं?	40
प्र –368	अनुपगूहन दोष किसे कहते हैं?	86
प्र –376	अनुपगूहन दोष से क्या हानि है?	89
प्र –397–99	अनुप्रेक्षा किसे कहते हैं ? कितने भेद हैं? नाम कौन² हैं?	94
प्र –443	अनुप्रेक्षा और वैराग्य में क्या अंतर है?	102
प्र –640	अनुकम्पा गुण किसे कहते हैं?	149
प्र –1189–90	अनुवीचिभाषण किसे कहते हैं? इसका क्या आधार है?	286
प्र –43	अनुमान आदि का ज्ञान कैसे हो?	6
प्र –570	अनुप्रेक्षा स्वाध्याय किसे कहते हैं?	133
प्र –1751–52	अनुप्रेक्षा अतिचार किसे कहते हैं? ....दोष क्यों कहा?	382
प्र –1753	अनुस्मृति अतिचार किसे कहते हैं?	382
प्र –1754	अनुप्रेक्षा और अनुस्मृति अतिचार में क्या अंतर है?	382
प्र –1755	अनुस्मृति को अतिचार क्यों कहा?	382
प्र –1759	अनुभव अतिचार किसे कहते हैं?	383
प्र –1760	अनुभव और ज्ञान में क्या अन्तर है?	383
प्र –1761–62	अनुभव को अतिचार.....कहा?....अतिचार कहलाते हैं?	384
प्र –2534	अनुपसेव्य अभक्ष्य किसे कहते हैं?	523
प्र –2602–03	अनुमति किसे कहते हैं? कितने भेद हैं?	542
प्र –2273	अनुमोदना चौर्यानन्द रौद्रध्यान किसे कहते हैं?	470
प्र –699	अनेकों जगहों पर आजकल.....सो ठीक है क्या?	164

अ – पवर्ग

प्र –371	अप्रभावना दोष किसे कहते हैं?	87

प्र –379	अप्रभावना दोष से क्या हानि है?	90
प्र –510	अप्रासुक जल और सचित्त जल में क्या अन्तर है?	123
प्र –621–22	अप्रभावना दोष को....प्राप्त होता है ? इस दोष से क्या² ...होती है?	144
प्र –813	अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति किसे कहते हैं?	210
प्र –1151–52	अप्रिय वचन किसे कहते हैं? पाप युक्त वचन किसे कहते हैं?	280
प्र –2031	अप्रिय शब्दों को सुनकर किस प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं?	429
प्र –1701	अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्ग अतिचार किसे कहते हैं?	374
प्र –1706	अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितादान किसे कहते हैं?	375
प्र –1712	अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जित संस्तरोपकरण अतिचार किसे कहते हैं?	376
प्र –499	अप्रासुक जल किसे कहते हैं?	122
प्र –279–80	अपराधी को मारन.....सदोषी ऐसा क्यों? ... क्या फल है?	57
प्र –908	अपने अनुकूल होने से स्वीकार....यह तो अन्याय है?	237
प्र –2145	अपराधी के अपराध को........दण्ड देकर छोड़ देना चाहिए?	448
प्र –2144	अपराधी प्राणियों को.....दोष लगता है या नही?	448
प्र –2376	अपायविचय धर्मध्यान किसे कहते हैं?	489
प्र –1600	अपध्यान अर्नथदण्ड किसे कहते हैं?	358
प्र –2638	अपनी दिनचर्या के........ सम्यग्दर्शन का दोष है या नहीं?	552
प्र –209–10	अभक्ष्य किसे कहते हैं? भेद प्रभेद कौन² हैं?	39
प्र –455	अभव्य जीवों का जन्मान्ध के समान तो....ऐसा क्यों सोचना?	105
प्र –28	अभ्यन्तर अंतरंग प्रमादी किसे कहते हैं?	4
प्र –30–31	अभ्यन्तर प्रमाद किसे कहते हैं? भेद कितने हैं?	4
प्र –666	अभयदान किसे कहते हैं?	157
प्र –2319	अभाव को प्राप्त होता है तो होने दो तब क्या हानि है?	478
प्र –701	अभिषेक किसे कहते हैं?	165
प्र –693	अभिषेक पद का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ क्या है?	161
प्र –694	अभि उपसर्ग का क्या अर्थ है?	161
प्र –695	अभिषेक जिनबिम्ब का .....या तीनों का करना चाहिए?	161
प्र –696–97	अभिषेक मूर्ति की सफाई....क्या? क्या आत्मशुद्धि के.... है?	163
प्र –698	अभिषेक कितनी बार करना चाहिए?	163
प्र –702–03	अभिषेक कितने प्रकार का होता है? उनके नाम बताओ?	165

प्र –735–36	अभिषेक करने......कौन[2] हैं? कैसी....चाहिए?	172
प्र –748(अ)	अभिषेक पाठ तथा पंचामृताभिषेक पाठ....वर्णन बताओ?	176
प्र –778	अभिषेक पूजन रात्रि में करना चाहिए या दिन में?	195
प्र –781	अभिषेक पूजन खड़े होकर....करना चाहिए?	198
प्र –1745–46	अभिषव आहार....हैं? इस प्रकार के आहार.....प्राप्त होती है?	381
प्र –2180	अभी तक सुगंध विषय से....हो सकता है बताओ?	454
प्र –2204	अभी तक हमने झूठ....विरोध है अतः यह कथन मिथ्या हैं?	459
प्र –1710	अभी तक अचेतन् वस्तु को....दोष बताया है?	375
प्र –2132	अभी तक हमने रौद्रध्यान के चार ही भेद.... कथन है?	446
प्र –55	अभेद रत्नत्रय निश्चय रत्नत्रय किसे कहते हैं?	8
प्र –894	अमर्यादित और अनछने पानी से ....सकते हैं क्या?	235
प्र –599	अमूढदृष्टि अंग किसे कहते हैं?	138

अ – अन्तस्थ

प्र –344	अरक्षक भय किसे कहते हैं?	79
प्र –370	अवात्सल्य दोष किसे कहते हैं?	87
प्र –1646	अरति परीषहजय किसे कहते हैं?	364
प्र –1654	अलाभ परीषहजय किसे कहते हैं?	366
प्र –378	अवात्सल्य दोष से क्या हानि है?	89
प्र –619–20	अवात्सल्य भाव को....प्राप्त होता है?....हानि प्राप्त होती है?	143
प्र –992	अविरत सम्यग्दृष्टि श्रावक किसे कहते हैं?	256
प्र –958(अ)	अविवाहित को क्वांरिका कह सकते हैं क्या?	246

अ – उष्म

प्र –58	अंश[2] के थोडे[2] त्याग को निवृत्ति धर्म क्यों नहीं कहते हो?	9
प्र –402–03	अशरण भावना....हैं? ..... क्या लाभ है? क्या हानि है?	94
प्र –404	अशरण भावना का चिन्तन करने से क्या हानि हैं?	95
प्र –543	अंशरूप में कषायों के त्याग को ....प्रकार का होता है?	128
प्र –738	अशुद्ध सामग्री किसे कहते हैं?	172
प्र –1389	अशिष्ट वचनों को व्रती श्रावक क्यों......क्या संबंध है?	321
प्र –1958–59	अशुद्ध ध्यान किसे कहते हैं? इसके स्वामी कौन हैं?	417
प्र –1964–65	अशुद्ध ध्यान का दूसरा नाम क्या है?...स्वामी कौन हैं?	417

प्र –228–30	अशुभ व्यसनों की उत्पत्ति....? ...कहते हैं?....करना चाहिए?	43
प्र –231–32	अशुभ व्यसन के भेद? नाम?	43
प्र –415–17	अशुचिभावना किस...हैं?...क्या लाभ? क्या हानि है?	97
प्र –2514	अशुभ, शुभ और शुद्धध्यान कौन² हैं?	518
प्र–691	अशुभ प्रस्तावना किसे कहते हैं?	160
प्र–1805	अष्टद्रव्य से पूजा भक्ति किसे कहते हैं?	389
प्र –70–72	अस्तिकाय किसे कहते है? ...भेद? ...नाम?	11
प्र –369	अस्थितिकरण दोष किसे कहते हैं?	87
प्र –377	अस्थितिकरण दोष से क्या हानि है?	89
प्र –2637	अस्पर्श शूद्र किसे कहते हैं?	552
प्र –1146	असत् का सद्भाव बताने वाले....वचन किसे कहते हैं?	280
प्र –1622	असमीक्ष्याधिकरण अतिचार दोष किसे कहते हैं?	361
प्र–1917	असमर्थ की, देश की, समाज की रक्षा...... पाप नहीं?	410
प्र –2390	असंयमी पंडित अणुव्रती भी स्वामी हैं, ...ऐसा कहो?	494
प्र –2100	असावधानी किसे कहते हैं?	443
प्र –448	अहम् किसे कहते हैं?	103
प्र –125–26	अहंकार और ममकार किसे कहते हैं? इनका....क्यों कहा?	18
प्र –772	अहिंसावादी समाज में क्षोभ कैसे होता है?	192
प्र –1094–95	अहिंसाणुव्रत किसे कहते हैं? स्वामी कौन² हैं?	271
प्र –1096–98	अहिंसाणुव्रत की रक्षा....कहते हैं? भेद? नाम...?	271
प्र –1113–15	अहिंसाणुव्रत को धारण....के दोष लगते हैं? भेद? नाम ...?	273
प्र –1523	अहिंसाणुव्रत और परिग्रह प्रमाणव्रत..... क्या अंतर है?	344
प्र –850–51	अक्षत किसे कहते हैं? .....को क्यों कहा?	222
प्र –855	अक्षत अखंड चावलों से मोतियों से पूजा करने को क्यों कहा?	223
प्र –858	अक्षत से पूजा करने का मंत्र किस प्रकार है?	224
प्र –859	अक्षत से भगवान की पूजा कर....निदान आर्तध्यान कहलाया?	224
प्र –195	अज्ञान मिथ्यात्व किसे कहते हैं?	35
प्र –924	अज्ञान किसे कहते हैं?	240
प्र –925–27	अज्ञान के कितने भेद हैं? नाम कौन² हैं? स्वामी कौन हैं?	240
प्र –953–954	अज्ञान मिथ्यात्व....है? किस अज्ञान....हानि है? क्या लाभ हैं?	244

प्र —1660 अज्ञान परिषहजय किसे कहते हैं? 367

आ — कवर्ग

प्र —1651 आक्रोश परिषहजय किसे कहते हैं? 365
प्र —1916 आक्रमणकर्ता के सामने ....कर सकते हैं? 410
प्र —347 आकस्मिक भय किसे कहते हैं? 79
प्र —874 आगम के प्रतिकूल मंत्र कौन सा है? जो सदोष है ...है? 230
प्र —907 आगम विरुद्ध कौन सा मंत्र है जो युगलजी ने बनाया है? 237

आ — चवर्ग

प्र —2529 आ. श्री समन्तभद्रानुसार मूल ....करके खा सकते हैं? 522
प्र —208 आजकल अन्यायी प्राणी हर तरह से सुखी ...अन्याय ही श्रेष्ठ है? 38
प्र —247 आजकल अनेक संस्थायें गौहत्या का विरोध... क्या? 50
प्र —461—62 आजकल आ. संघों.....गुरुपना कैसे? लक्षण के बिना लक्ष्य कैसे? 107
प्र —471 आजकल धर्मतीर्थ क्षेत्रों की हानि क्यों हो रही है? 112
प्र —484—86 आजकल म्युनिसिपाल्टी की टंकी...सो ठीक है क्या? 117
प्र —535—37 आजकल रात्रिभोजन... नहीं?...क्यों कराया?.·· व्यर्थ चला गया? 127
प्र —528 आजकल श्रावकगण मुनियों......मानने में क्या आपत्ति है? 126
प्र —739 आजकल कहीं कहीं जल से, पंचामृत से......हैं या गलत? 172
प्र —745—46 आजकल मुनिजन....उपदेश करते हैं? तदनुकूल....हैं क्या? 175
प्र —758 आजकल कोई शान्तिधारा थाली में,....सो ठीक है क्या? 186
प्र —780 आजकल अनेक जगहों पर ...पूजन होता है सो क्या ठीक है? 196
प्र —792 आजकल गायें भैंसें मनुष्यों का मल......होने से दूध भी अशुद्ध है? 202
प्र —844 आजकल पूजक का मन पूजा में......से समझाओ? 220
प्र —852—53 आजकल मोती मिलते नहीं.....सो योग्य हैं ? या नहीं? 222
प्र —856 आजकल जैनी भाई बाजार से पूजा.....कैसे हो सकता है? 223
प्र —963 आजकल धूप शुद्ध न .....धूप दहन करना अयोग्य है? 247
प्र —958 (स) आजकल मुनिसंघ क्यों बदनाम हो रहे....बताओ? 246
प्र —1117 आजकल जैन लोग पशु पालते नहीं ....दोष कैसे लगेगा? 274
प्र —1246 आजकल कम्पनी से ..... शुद्ध हैं क्या? 298
प्र —1448 आजकल शेष परिग्रह का प्रमाण तो....कैसे किया जाये? 332
प्र —1512 आजकल साधुवर्ग..... है तो क्यों? 340

प्र–1522	आजकल यह दोष मुनि आदि के....सत्य है या गलत?	343
प्र –1792	आजकल किसी धनवान आदि को अतिथि......है क्या?	387
प्र –1822	आजकल तो यह दोष लग नहीं.....काम करते हैं?	391
प्र –1828	आजकल दाताओं के द्वारा सचित्त ....है या अनुचित?	393
प्र –1884	आजकल त्यागी वर्ग राजनेताओं....ठीक है या गलत?	403
प्र –2202	आजकल लोग मृत्युभोज का विरोध.....उचित है क्या?	459
प्र –2240–41	आजकल .... आर्तध्यान देखा जा रहा है? तुम्हें कैसे मालूम?	466
प्र –2251	आजकल मुनियों के अनुकूल ......आपत्ति है?	468
प्र –2344	आजकल मुनिजन आहार...... में क्या आपत्ति है?	484
प्र –2545	आजकल सूर्य के समान लाईट के...तो क्या आपत्ति है?	526
प्र –2555	आजकल दिन में शादी सगाई ......सो ठीक है क्या?	528
प्र –2560	आजकल बालक बालिकायें स्वयं .... सो ठीक है क्या?	530
प्र –2597	आजकल गृहत्यागी ......कह सकते हैं क्या?	540
प्र –2620	आजकल श्रावकगण शुद्ध ..... उद्दिष्ट दोष लगता ही हैं?	545

<u>*आ – टवर्ग*</u>

प्र –652	आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्त काल में मोक्ष की ...सकती है?	154
प्र –2574–76	आठवीं प्रतिमा....क्या है? आरंभ किसे कहते है? ....भेदवाला हैं?	534
प्र –6–7	आत्मभूत स्वभाव धर्म किसे कहते हैं? .....कौन से जीव हैं?	01
प्र –40	आत्मा किसे कहते हैं?	06
प्र –65	आत्मा में अनन्त गुण .....क्यों कहा जाता है?	10
प्र –109	आत्मशांति आत्मसुख कैसे प्राप्त हो?	16
प्र –113	आत्मस्वभावभूत धर्म से आत्मशांति....सकती है?	16
प्र –2523	आत्मगत स्वनिमित्तक नव कोटियां किस प्रकार से होती है?	520
प्र –1108–9	आदाननिक्षेपण समिति किसे कहते हैं? आदाननिक्षेपण ....कहते हैं?	272
प्र –154	आदि की चार लब्धियों .....और कौन सा असत्य?	25
प्र –2498	आदि के दो शुक्लध्यानों के स्वामी कौन हैं?	516
प्र –1046	आध्यात्म धर्मनीति किसे कहते हैं?	263
प्र –2220	आनन्द भी मन में आयेगा.....रौद्रध्यान क्यों कहा?	463
प्र –1565	आनयन अतिचार किसे कहते हैं?	350
प्र –1569	आनयन प्रयोग क्यों..... पड़ा?	351

आ –पवर्ग

प्र –825	आप्त और प्रमत्तसंयत मुनि में क्या अन्तर है?	214
प्र –235	आपने सम्यग्दर्शन या रत्नत्रय को प्राप्त.......क्यों खेला?	45
प्र –595	आपने कहा है.......दोनों सत्य नहीं हो सकते हैं?	137
प्र –730	आपने ऊपर के प्रश्नोत्तर में .....कथन नहीं करना चाहिए?	170
प्र –903	आपने इन धनवानों को अपशब्द असैनी क्यों कहा?	236
प्र –1066	आप अनाचारी शिथिलाचारी गृहस्थों का...प्रोत्साहन क्यों न मिलेगा?	267
प्र –1067	आपकी मान्यता में और कांजी की .....विधि को सोचो?	267
प्र –1069	आपके पास आडम्बर क्यों नहीं....और ये सदोष यह कैसे?	267
प्र –1147	आपके पास शास्त्रजी नहीं हैं...... झूठ वचन क्यों कहा?	280
प्र –1149	आपके पास कुछ वस्तु हैं........वचन क्यों कहा?	280
प्र –2316	आपने रागरूप कषायों से परिणतावस्था में.......आपत्ति है?	477
प्र –419	आमाशय किसे कहते हैं?	98
प्र –571	आम्नाय स्वाध्याय किसे कहते हैं?	134

आ– अन्तस्थ

प्र –2495	आयु कर्म का उदीरणाकरण कहाँ से कहाँ तक होता है?	515
प्र –2625	आर्यिका पूज्य नहीं हो सकती है....देशसंयती हैं?	547
प्र –2629	आर्यिका श्राविका हो सकती है क्या?	550
प्र –1971–72	आर्तध्यान किसे कहते हैं?.....अशुभ ध्यान क्यों कहा?	418
प्र –1028	आरम्भी हिंसा किसे कहते हैं?	260
प्र –1517	आरम्भ परिग्रह के त्यागी महाव्रती.....हो सकते हैं?	342
प्र –2146–47	आरम्भीहिंसा किसे कहते हैं? आरम्भी हिंसा जन्य...कहते हैं?	448
प्र –2577	आरम्भ करने से क्या हानि है? क्या फल प्राप्त होता है?	535
प्र –2595	आरम्भ और परिग्रह में क्या अन्तर है?	540
प्र –67–69	आराधना किसे कहते हैं? ...भेद हैं? नाम क्या है? फल...?	11
प्र –167	आलाप किसे कहते हैं?	27
प्र –323	आलू आदि खाना भी व्यसन है ....से पूछ रहा है।	73
प्र –1034	आलू आदि का व्यापार करना उद्योगी हिंसा है या संकल्पी हिंसा है?	262
प्र –1111	आलोकितपान भोजन नाम की भावना किसे कहते हैं?	273
प्र –576–80	आवश्यक.....हैं?....भेद हैं? नाम? कब? किस प्रकार.........?	134

प्र –653	आवश्यक कर्तव्य किसे कहते हैं?	154
प्र –654	आवश्यक कर्तव्य के कितने भेद हैं	155

<u>*आ –ऊष्म*</u>

प्र –91	आश्रव तत्त्व किसे कहते हैं?	13
प्र –425–27	आश्रव भावना किसे कहते हैं?....क्या लाभ है?...हानि है?	98
प्र –1895	आशा किसे कहते हैं?	406
प्र –759–60	आह्वानन कर्म किसे कहते हैं? क्यों करना चाहिए?	187
प्र –664	आहारदान किसे कहते हैं?	157
प्र –518–20	आहार किसे कहते हैं? कितने प्रकार का है? स्वामी कौन[2] हैं?	124
प्र –1810	आहार शुद्धि भक्ति किसे कहते हैं?	390
प्र –2078–79	आहार संज्ञा और .... में क्या अन्तर है? स्वामी कौन[2] हैं?	439
प्र –472	आज्ञा का पालक हो ऐसा क्यों कहा?	112
प्र –2356	आज्ञाविचय धर्मध्यान किसे कहते हैं?	486
प्र –2359–60	आज्ञाप्रधानी किसे कहते हैं? परीक्षाप्रधानी किसे कहते हैं?	486

<u>*इ –तवर्ग*</u>

प्र –21	इन उत्तम क्षमादि दस धर्मों की उत्पत्ति किस क्रम से होती है?	3
प्र –132	इन बीसपंथ तेरापंथ कांजी पंथियों .....क्या हानि है?	20
प्र –134	इनका श्रद्धान करना मिथ्यादर्शन क्यों कहा?	21
प्र –267–69	इन वेश्याओं को कटु शब्दों में क्यों कहा?....क्यों किया?	55
प्र –442	इन भावनाओं के चिन्तन का क्या फल है?	102
प्र –594	इन आठ अंगों के नाम कौन[2] हैं?	137
प्र –624	इन परिणामों की प्राप्ति के बाद.....कितना समय लगता है?	146
प्र –668	इन चारों प्रकारों के दानों को कौन देता है और स्वामी कौन है?	157
प्र –724	इन्द्र इन्द्राणी देवगति में होते हैं, ...श्राविकायें अभिषेक.....?	167
प्र –777	इन्द्र ने अभिषेक किया.........करते हैं ऐसा कैसे कहते हैं?	194
प्र –1018	इन चारों दोषों को उदाहरण देकर समझाइये?	259
प्र –1203	इनको पढ़ सुनकर क्या करना चाहिए कि......से पालन हो सके।	288
प्र –1204	इन अतिचारों का त्याग पूर्ण रूप.....थोड़े रूप में?	288
प्र –1345–46	इन सामग्रियों को वृष्यरस क्यों कहा? या वृष्यरस ....किया?	314
प्र –1315	इन तीनों वेदों की कामाग्नि किसके समान होती है?	307

प्र —1380	इन मनुष्य मनुष्यनी के अलावा शेष जीव स्वामी क्यों नहीं?	319
प्र —1386—87	इन वचनों को कौन बोलता है? कौन नहीं बोलता है?	321
प्र —1397	इत्वरिका गमन नामक अतिचार किसे कहते हैं?	324
प्र —1398	इत्वरिका किसे कहते हैं?	324
प्र —1405	इन इत्वरिका स्त्रियों के साथ....दोष क्यों कहा?	325
प्र —1413	इन संगतियों का क्या फल है?	326
प्र —1408	इन इत्वरिका स्त्रियों की..... ऐसा क्यों नहीं कहते हो?	325
प्र —1453	इन भावनाओं के नाम कौन कौन हैं?	332
प्र —1484	इन विषयों के प्राप्त होने पर क्या करना चाहिए?	336
प्र —1524	इन दोनों अतिचारों में कषायाधार......मालूम हुआ?	344
प्र —1598	इन इन साधनों से आत्महत्या ....कैसे मालूम हो?	357
प्र —1730	इन अतिचारों को जानकर क्या करना चाहिए?	378
प्र —1639	इन 22 परिषहों के नाम कौन कौन हैं?	363
प्र —1662	इन आपत्तियों के प्राप्त होने पर क्या....करना चाहिए?	367
प्र —1947	इन ध्यानों का सामान्यतया क्या फल है?	415
प्र —2018	इन जीवों के रसनेन्द्रिय अनिष्ट .....उत्पन्न नहीं होता?	426
प्र —2008	इन्द्रिय विषयों के बिना भी केवल मन से......होता है क्या?	424
प्र —2105—06	इन .....प्रमादों के स्वामी कौन जीव हैं? कौन² जीव नहीं हैं?	443
प्र —2107	इन दोनों प्रकार के प्रमादों का त्याग कौन² जीव कर सकते हैं?	444
प्र —2307	इन उपरोक्त 5 ज्ञानों के विषय को परिग्रह क्यों कहा?	475
प्र —2342	इन दोनों रौद्रध्यान और आर्तध्यान का क्या फल है?	484
प्र —2345	इन दोनों आर्तध्यान और रौद्रध्यान को ....करना चाहिए?	484
प्र —2454—55	इन तीनों योगों का द्रव्य और भावरूप से .....लक्षण है?	507
प्र —2456	इन तीनों योगों के स्वामी कौन जीव हैं?	507
प्र —2635	इन उच्च कुलीन वालों को भी सत्शूद्रसंज्ञा क्यों दी?	552
प्र —2641—42	इनकी आहारचर्या......होती है? घृणा करने से...प्राप्त होती है?	554
प्र —1347—49	इष्टरस किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन² हैं?	314
प्र —1454	इष्टविषय मनोज्ञविषय किसे कहते हैं?	333
प्र —1462	इष्टानिष्ट विषयों के प्राप्त होने पर.....से करना चाहिए?	333
प्र —1975—77	इष्ट किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन² हैं?	418

प्र –1982	इष्ट वियोगज आर्तध्यान किसे कहते हैं?	420
प्र –2247	इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग.....आर्तध्यान कैसे संभव है?	468
प्र –34	इस प्रमाद का क्या फल है?.	5
प्र –114	इस प्रकार इन धर्मों की प्राप्ति कैसे हो सकती है?	17
प्र –156	इस रत्नत्रय को प्राप्त करने वाले जीव कौन....जीव नहीं हैं?	26
प्र –319–20	इस टी० वी० में क्या दिखाया जाता है क्या[2] हानि है?	70
प्र –341	इस लोक भय किसे कहते हैं?	79
प्र –437	इस प्रकार चिन्तन करने से क्या फल प्राप्त होता है?	101
प्र –452	इस पर क्या उदाहरण हैं?	104
प्र –493	इस पाप कार्य को दूर .....क्या प्रायश्चित्त होना चाहिए?	121
प्र –603	इस जीव का श्रद्धान से.....क्या कारण है?	139
प्र –608	इस जीव का मोक्षमार्ग से पतन क्यों.....से होता हैं?	141
प्र –861	इस मंत्र ने कौन से न्याय का उल्लंघन किया है?	226
प्र –889	इस प्रकार मिष्ठान पकवान खाद्यान्न.....कहाँ पर आया है?	234
प्र –893	इसका अनुभव कैसे हो?	236
प्र –910–11	इस दीपक से क्या करते हैं? क्यों करते हैं?	239
प्र –948–49	इस प्रकार का ज्ञान...को होता है? किस जीव को नहीं होता है?	243
प्र –1110	इस प्रकार की प्रतिज्ञा का पालन ....सकता है?	273
प्र –1222–23	इस व्रत को निर्दोष पालन....करना चाहिए? वो किस प्रकार की है?	292
प्र –1235–36	इस विमोचितावास में गृहस्थ ....सकता है? या क्वचित् .....?	294
प्र –1295	इस दोष के अधिकारी ....कैसे हो सकते हैं?	304
प्र –1321–22	इस व्रत को निर्दोष ....? नाम कौन[2] हैं?	308
प्र –1326	इस भावना का चिन्तन....करना चाहिए?	309
प्र –1356	इस प्रकार वृष्येष्ट रस युक्त आहार....हानि क्या है?	315
प्र –1377–78	इस अनंगक्रीड़ा को ......? अनाचार दोष...?	319
प्र –1379	इस अनंगक्रीडा नामक अतिचार के स्वामी कौन हैं?	319
प्र –1395	इस दोष का स्वामी कौन सा जीव है और कौन जीव नहीं है?	323
प्र –1396	इस दोष के अधिकारी मुनिजन क्यों नहीं होते?	323
प्र –1244	इस प्रकार की भावनारूप से.....कर सकता है?	295
प्र –1360	इस प्रकार वृष्येष्ट रस युक्त आहार करने से क्या हानि है?	316

प –1433–34	इस अचेतन परिग्रह के कितने भेद हैं? नाम कौन² हैं?	329
प्र –1451–52	इस व्रत के निर्दोष पालने के लिए क्या करना चाहिए? भेद?	332
प्र –1514	इस जीव को अतिलोभ है कैसे मालूम होगा?	341
प्र –1538	इस दिग्व्रत को निर्दोष पालन करने के लिए क्या करना चाहिए?	346
प्र –1567	इस विषय में दृष्टान्त कौन सा है?	350
प्र –1591	इस प्रकार के कार्यों का त्याग क्यों कराया?	356
प्र –1601	इस प्रकार दूसरों को .....अनर्थदण्ड क्यों कहा?	358
प्र –1609	इस व्रत को निर्दोष पालन करने के लिए क्या करना चाहिए?	359
प्र –1602	इस प्रकार का विचार कौन सा जीव करता है?	358
प्र –1624	इस असमीक्ष्यादि करण को दोष क्यों कहा?	361
प्र –1702	इसको अतिचार दोष क्यों कहा?	374
प्र –1707–09	इसको अतिचार ... कहा? किस वस्तु .... चाहिए? किसको......?	375
प्र –1727	इसको अतिचार दोष क्यों कहा?	377
प्र –1747	इस प्रकार गरिष्ठ आहार को अतिचार दोष युक्त क्यों कहा?	381
प्र –1824	इस प्रकार का आहार त्यागी व्रती ....खा सकता है?	392
प्र –1846	इस कालातिक्रम को अतिचार दोष क्यों कहा?	395
प्र –1869	इस विषय में कैसा चिन्तन करें कि जिससे ...बना रहे?	400
प्र –1910	इस प्रकार के परिणाम सल्लेखना....उत्पन्न होते हैं?	408
प्र –1912	इस प्रकार मरण के परिणाम क्यों उत्पन्न हो जाते हैं?	409
प्र –2029–30	इस आर्तध्यान के स्वामी कौन² जीव हैं ? कौन जीव नहीं हैं?	429
प्र –1968	इस धर्मध्यान के स्वामी मिथ्यादृष्टि जीव ...क्यों नहीं?	418
प्र –1973–74	इस आर्तध्यान के कितने भेद हैं ? नाम कौन कौन हैं?	418
प्र –1999	इस विषय में क्या उदाहरण है...विषय स्पष्ट हो जाय?	422
प्र –1763–64	इस प्रकार का अनुभव.....? दोष क्यों कहा?	384
प्र –2017	इस रसनेंद्रियजन्य अनिष्टसंयोगज.....कौन नहीं हैं?	426
प्र –2009	इस प्रकार का प्रसंग कब प्राप्त होता है .....मन रहता है?	424
प्र –848–49	इस कहानपंथी ने.....क्यों बनाया? क्या इच्छा थी?	222
प्र –2086	इस चक्षु इंद्रियजन्य निदान आर्तध्यान के कितने भेद हैं?	440
प्र –2209	इसके स्वामी कौन² जीव हैं?	460
प्र –2212	इस प्रकार वचन बदलकर....रौद्रध्यान क्यों कहा?	461

प्र –2215	इस रसनेंद्रियजन्य मृषानंद रौद्रध्यान....देव अहमिंद्र क्यों नहीं?	462
प्र –2245	इसमें क्या हेतु है कि जो ख्याति....और मिथ्याचारित्र है?	466
प्र –2400–01	इस पदस्थ धर्मध्यान....फल क्या है? परम्परा फल क्या है?	497
प्र –2414	इस विषय पर क्या उदाहरण है?	499
प्र –2466	इस ध्यान में क्या और किसका चिन्तन किया जाता है?	509
प्र –2465	इस पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान में कितने योग.......सकते हैं?	509
प्र –2467	इस ध्यान का क्या फल है?	509
प्र –2470	इस पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान का.......ध्यान करता है?	510
प्र –2479	इस एकत्ववितर्क शुक्लध्यान में ....है या नहीं?	511
प्र –2480	इस ध्यान में योग कौन सा होता है?	512
प्र –2481	इस ध्यान में एक योग होता है तो उसका नाम बताओ?	512
प्र –2482	इस एकत्ववितर्क शुक्लध्यान का विषय क्या है?	512
प्र –2490–91	इस ध्यान का काल कितना है? उदाहरण सहित बताओ।	514
प्र –2492	इस सुक्ष्मक्रियाप्रतिपाती....का क्या फल है?	514
प्र –2494	इस विषय को उदाहरण देकर स्पष्ट करो।	515
प्र –2497	इस ध्यान के स्वामी कौन हैं?	516
प्र –2501–02	इस व्युपरतक्रिया निवृत्ति.....सा होता है? काल कितना है?	516
प्र –2503	इस ध्यान का इतना काल है ....सहित समझाओ?	516
प्र –2504	इस व्युपरतक्रिया निवृत्ति शुक्लध्यान का क्या फल है?	516
प्र –2505	इस ध्यान के द्वारा कर्मों का क्षय क्रम से होता है या अक्रम से?	516
प्र –2508	इस गुणस्थान में अघातियों की सत्ता वाले जीव के कितने भेद हैं?	517
प्र –2522	इस प्रतिमा में सचित्त त्याग स्वनिमित्तक है......किया है?	520
प्र –2535	इस अनुपसेव्य भोजनपान से क्या हानि है?	523
प्र –2536	इसके अलावा और भी 22 अभक्ष्य गिनाये.....नहीं कराया?	523
प्र –2552	इस प्रतिमा का दूसरा नाम क्या है?	527
प्र –2567	इस छठवीं प्रतिमा के दो नाम....क्यों बतायें?	532
प्र –2592	इस प्रकार इस प्रतिमा में संपूर्ण परिग्रह.....घर में क्यों रहता है?	539
प्र –2649–50	इस कर्म का आश्रव किस.....होता है? स्वामी कौन हैं?	556

<u>*ई –वर्ग*</u>

प्र –1104–05	ईर्यासमिति किसे कहते हैं? ....भावना किसे कहते हैं?	272
प्र –1106–07	ईर्यासमिति गृहस्थ को हो सकती है क्या?..भावना होती है?	272

<u>*उ – कवर्ग*</u>

प्र –884	उक्त भोज्य पदार्थ शुद्ध होने पर भी..... सकते हैं क्या?	232
प्र –1035	उक्त कन्दमूल आदि का व्यापार उद्योगी......हिंसा क्यों?	262
प्र –1278	उक्त चार नीतियों में से किस नीति के.....कहलाता है?	301
प्र –1574	उक्त कथनानुसार गृहस्थ और मुनिजन तो फोन.....सकते हैं?	352
प्र –1604	उक्त वचन व्यवहार को दुश्रुति अनर्थदण्ड पाप क्यों कहा है?	381
प्र –1607	उक्त कार्यों को अनर्थदण्ड पापरूप क्यों कहा?	359
प्र –1608	उक्त कार्यों से विरक्त...कहते हैं? अनर्थदण्ड ..किसे कहते हैं?	359
प्र –1674	उक्त विचारों को अतिचार दोष क्यों कहा?	370
प्र –1713	उक्त सामग्रियों को रखने में......क्यों लगता है?	376

<u>*उ – चवर्ग*</u>

प्र –1803	उच्चस्थान भक्ति किसे कहते हैं?	389
प्र –2643	उच्च आचरण किसे कहते हैं?	554
प्र –2647	उच्च आचरण से क्या लाभ है? ....क्या हानि होती है?	555

<u>*उ – तवर्ग*</u>

प्र –18–20	उत्तम क्षमादि धर्म? भेद? स्वामी?	03
प्र –784	उत्तर भारत में अनेकों जगहों .....नियम है सो वह.....?	199
प्र –650	उत्तम मध्यम जघन्य भोगभूमिज .... संस्कार हीन क्यों कहा?	153
प्र –818	उत्तम पात्र किसे कहते हैं?	212
प्र –1139	उत्पाद किसे कहते हैं?	279
प्र –1769–72	उत्तम पात्र किसे कहते हैं? भेद? नाम? उत्तम पात्र में....कहते हैं?	384
प्र –1773	उत्तम पात्र में मध्यम पात्र किसे कहते हैं?	385
प्र –1774	उत्तम पात्र में जघन्य पात्र किसे कहते हैं?	385
प्र –2506–07	उत्तर प्रकृतियों....क्रम से होता है? मूल प्रकृतियों....कैसे होता है?	517
प्र –1029	उद्योगी हिंसा किसे कहते हैं?	261
प्र –2608–09	उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा किसे कहते हैं?....किस नम्बर की है?	544
प्र –2610	उद्दिष्ट आहार किसे कहते हैं?	544
प्र –2611	उद्देश्य किसे कहते हैं?	544
प्र –2612	उद्देश्य के कितने भेद हैं?	544
प्र –2616–17	उद्देश्य का स्वामी कौन है? कौन नहीं है?	545

प्र –2618	उद्दिष्ट दोष का स्वामी कौन हैं?	545
प्र –2619	उद्देश्य और उद्दिष्ट दोष में क्या अन्तर है?	545
प्र –2622	उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा के कितने भेद हैं?	546
प्र –62	उदर पूर्ति का हेतु बनाकर धर्मआचरण....कह सकते हैं क्या?	10
प्र –97	उदाहरण देकर समझाओ?	14
प्र –2150–51	उद्योगी हिंसा किसे कहते हैं? उद्योगी हिंसाजन्य....किसे कहते हैं?	449
प्र –445	उदासोऽहं किसे कहते हैं?	102
प्र –755	उन ग्रहों की शान्ति के लिए ....किसके लिए करते हैं?	185
प्र –1081–83	उदाहरण किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन[2] हैं?	269
प्र –271	उन वेश्याओं ने शत प्रतिशत सही...दोष है बताओ?	56
प्र –276	उन वेश्याओं का प्र. 270 नं. के ....या अयुक्त...?	56
प्र –839	उन्होंने अपने में मिथ्यादृष्टित्वपने को कैसे सूचित किया है?	217
प्र –1224–25	उन भावनाओं के नाम कौन कौन हैं? उन भावनाओं....चाहिए?	292
प्र –1287	उन्मान किसे कहते हैं?	302

उ – पवर्ग

प्र –87	उपादेय तत्त्व किसे कहते हैं?	13
प्र –148	उपयोग में लाना किसे कहते हैं?	24
प्र –166	उपदेश किसे कहते हैं?	27
प्र –272–75	उपकार...कहते हैं?...भेद हैं? नाम कौन[2] हैं? स्वामी...कौन हैं?	56
प्र –600	उपगूहन अंग किसे कहते हैं?	138
प्र –604	उपगूहन अंग और स्थितिकरण अंग में क्या अन्तर है?	139
प्र –637	उपशम गुण किसे कहते हैं?	148
प्र –638	उपशम गुण प्रशमभाव क्या कषायों के मन्दोदय से होता है?	148
प्र –763	उपचार विनय सरागियों का करना चाहिए या वीतरागियों का?	189
प्र –821	उपरोक्त पात्रों में आर्यिका कौनसी पात्र है?	212
प्र –882	उपरोक्त सभी व्यंजन पूजा में चढ़ा सकते हैं?	231
प्र –1595	उपरोक्त कथन को पापोपदेश अनर्थदंड क्यों कहा?	357
प्र –1625	उपभोग परिभोगानर्थक्य अतिचार दोष किसे कहते हैं?	361
प्र –1626	उपभोग वस्तु किसे कहते हैं?	362
प्र –1632–34	उपसर्ग किसे कहते हैं? ....किये जाते हैं? कितने भेद हैं?	362

प्र —1663	उपसर्ग और परीषह में क्या अन्तर है?	368
प्र —1676—77	उपरोक्त कथन को वचन.....क्यों कहा? क्या हानि है?	370
प्र —1717	उपवास का अनादर करने से क्या हानि प्राप्त होती है?	376
प्र —1731—33	उपभोग परिभोग शिक्षाव्रत किसे कहते हैं? भेद हैं? नाम...कौन हैं?	389
प्र —1739—40	उपभोग परिभोग....कितने भेद हैं? नाम कौन² हैं?	380
प्र —1750	उपभोग परिभोग प्रमाण व्रत का.....सभी इन्द्रियों से?	382
प्र —1799	उपकरण दान किसे कहते हैं?	388
प्र —2309	उपरोक्त समस्त प्रकार के परिग्रह से ....रौद्रध्यान होता है?	476
प्र —2513	उपरोक्त चार प्रकार के.........हेय, उपादेय, ज्ञेय है?	518
प्र —459	उपादेय तत्त्व किसे कहते हैं?	106
प्र —2421	उपायविचय धर्मध्यान किसे कहते हैं?	501
प्र —2428	उपायविचय धर्मध्यान और कारण विचय ....अन्तर हैं?	502
	उ — उष्म	
प्र —732	उस स्त्री के समान रचना वाली....लो तो क्या दोष है?	170
प्र —1643	उष्ण परिषह जय किसे कहते हैं?	364
	ऊ — तवर्ग	
प्र —1542—43	ऊर्ध्व व्यतिक्रम....कहते हैं? किस कारण से होता है?	340
प्र —1551	ऊर्ध्वदिशा का नियम करने....गमनागमन कर सकता है?	347
प्र —779	ऊपर कहा गया है कि अभिषेक.....होता है यह अन्याय है?	195
	ए — कवर्ग	
प्र —193	एकान्त मिथ्यात्व किसे कहते हैं?	35
प्र —408—10	एकत्व भावना किसे कहते हैं? ...क्या लाभ है? क्या हानि है?	96
प्र —414	एकत्व भावना और अन्यत्व भावना में क्या अन्तर है?	97
प्र —449	एकदेश शुद्ध हैं इसका क्या मतलब है?	103
प्र —785	एकबार के अभिषेक का नियम बनाने....मूर्तियों पर मिट्टी.....?	199
प्र —1696	108 कोटि कौन कौन हैं कि जिनके.........आती है?	373
प्र —2472—73	एकत्ववितर्क शुक्लध्यान किसे कहते हैं?.....सहित समझाओ?	510
प्र —2474	एकत्ववितर्क शुक्लध्यान वालों के कौनसा संहनन होता है?	510
प्र —2475	एकत्ववितर्क शुक्लध्यान प्रतिपाती है या अप्रतिपाती?	511
प्र —2476	एकत्ववितर्क शुक्लध्यान का काल कितना है?	511

प्र –2477	एकत्ववितर्क शुक्लध्यान वालों के जघन्य....कितना होता है?	511
प्र –2484	एकत्ववितर्क शुक्लध्यान का फल क्या है?	512
प्र –1915	एक राजा असमर्थ राजा पर....या अनाचाररूप है?	409
प्र –2295	एक प्रकार का परिग्रह कौन सा है?	474
प्र –2499	एकत्ववितर्क शुक्लध्यान और एकत्व भावना में क्या अन्तर है?	516
प्र –2486	एकत्व अवितर्क....और जघन्यकाल कितना है?	513
प्र –1229	एकान्त स्थान को प्राप्त कर.....यहाँ पाप नहीं होगा?	292
प्र –2519	एकाशन और उपवास करने का क्या फल है?	519
प्र –2559	ऐसा क्यों, वे बालक बालिकायें.....तलाश नहीं कर सकते हैं?	529
प्र –2623	ऐलक किसे कहते हैं?	546
प्र –178	ऐसा क्यों कहा कि ये......अनंत गुणधर्मों का पिण्ड है?	33

औ – स्वर

प्र –928–30	औदयिक भावरूप अज्ञान किसे कहते हैं? स्वामी? किसके समान है?	240
प्र –955	औदयिकभाव रूपी अज्ञान..... में क्या अन्तर है?..सारणी।	244
प्र –1952	औदयिकादि पाँच भावों में से....ध्यान होता है?	516
प्र –2242	और क्या क्या करते हैं?	466
प्र –2564	और भी अन्तर हो सकते हैं क्या?	531
प्र –665	औषधिदान किसे कहते हैं?	157

क ए

प्र –487	कुएं को सब छूते हैं, अनेक जीव जन्म मरण...कुएं शुद्ध कैसे?	118

क –कवर्ग

प्र –322	क्रिकेट हॉकी आदि शर्त लगाकर खेलना व्यसन क्यों कहा?	73
प्र –395	कुगुरु अनायतन किसे कहते है?	93
प्र –396	कुगुरु भक्त अनायतन किसे कहते हैं?	93
प्र –635	कुगुरु किसे कहते हैं?	148

क –चवर्ग

प्र –878	काजू आदि मेवाओं को पकाकर ....कह सकते हैं क्या?	231
प्र –252	कुछ डॉक्टर भी शराब पीने की सलाह देते हैं सो क्या बात है?	51
प्र –2651	कुछ प्रश्न पुनः पुनः क्यों लिख गये या कहे गये हैं?	556

क –टवर्ग

प्र –1033	किडनी का, नेत्रों का, रक्त का, बीजारोपण के.....कर सकते हैं?	262

प्र –1048	कूटनीति किसे कहते हैं?	264
प्र –1198	कूटलेख क्रिया किसे कहते हैं?	287
प्र –1202	कूटलेख क्रिया और रहोभ्याख्यान में क्या अन्तर है?	288
प्र –1275	कूटनीति किसे कहते हैं?	300
प्र –1280	कूटनीति के विरुद्ध तो जा सकते हैं?	301
प्र –2580	कूटने पीसने से किस प्रकार का........आश्रव बंध होता है?	535

क –तवर्ग

प्र –1942	कृतिकर्म किसे कहते हैं?	415
प्र –388	कुदेव अनायतन किसे कहते हैं?	91
प्र –390	कुदेव भक्त अनायतन किसे कहते हैं?	92
प्र –1159	क्रोध त्याग नाम की भावना किसे कहते हैं?	281
प्र –1162–63	क्रोध, मान कषाय से क्या हानि है ?....से क्या लाभ है?	282
प्र –435	किन परिणामों से निर्जरा भावना होती है?	99
प्र –1613–14	कन्दर्प अतिचार किसे कहते हैं? किनसे उत्पन्न होता है?	359
प्र –1615	कन्दर्प अतिचार कब उत्पन्न होता है?	360
प्र –1736	किन किन वस्तुओं का यमरूप से त्याग किया जाता है?	379
प्र –1616	कौत्कुच्य अतिचार किसे कहते हैं?	360
प्र –1006	क्रोध शल्य किसे कहते हैं?	257
प्र –1737	किन किन वस्तुओं का नियम रूप से त्याग किया जाता है?	379
प्र –1859	किन विषयों में शंका उत्पन्न होती है?	398
प्र –77	कौन से द्रव्य चेतन और कौन से द्रव्य अचेतन हैं?	12
प्र –78	कौन से द्रव्य मूर्तिक और कौन से द्रव्य अमूर्तिक हैं?	12
प्र –2511–12	कौन सा ध्यान किस गति का हेतु है? हेतु किसे कहते हैं?	518

क –पवर्ग

प्र –1247	कंपनी का भोजन न सही.... भोजन तो शुद्ध है?	396
प्र –1441	कुप्य अचेतन परिग्रह किसे कहते हैं?	330
प्र –711	कमराभिषेक किसे कहते हैं?	166
प्र –1032	कमजोर स्थिति होने के....आदि का क्रय विक्रय कर सकते हैं?	261
प्र –2370–71	कमजोर असमर्थ होने के कारण.....देकर समझाओ?	488
प्र –2005	कामी कामिनी की वार्ता को क्या कहते हैं?	423
प्र –2563	कामतीव्राभिनिवेष अतिचार और दिवामैथुन त्याग.....अंतर है?	531

क – अन्तस्थ

प्र –41	क्या यह आत्मा दृष्टिगोचर या इंद्रियगोचर होती है या नहीं?	6
प्र –133	क्या बीसपंथाम्नाय तेरापंथाम्नाय........करना सम्यग्दर्शन है?	20
प्र –165	क्रिया किसे कहते हैं?	27
प्र –266	क्या सभी वेश्यायें इस प्रकार होती हैं?	54
प्र –823	क्या हमेशा दाता दाता ही रहता है....परिवर्तन भी होता है?	213
प्र –754	क्या सूर्य, चन्द्र, नवग्रहों की....शान्तिधारा करते हैं?	185
प्र –786	क्या नाभि के नीचे, आसन के..... क्या हानि है?	200
प्र –1160–61	क्या गृहस्थ क्रोध का.....सकता है? या केवल....सकता है?	282
प्र –1165	क्या गृहस्थ लोभ और माया कषाय.....ही कर सकता है?	282
प्र –789	क्यों दूध में मांस का दोष....दूध मांस का ही अंश है?	201
प्र –1169–70	क्या गृहस्थ भय ....सकता है? .....भावना कर सकता है?	283
प्र –1192	क्या आगम ज्ञान के बिना....बोल सकता है?	286
प्र –1193	क्या गृहस्थों के यह अनुवीचिभाषण.....बन सकती है?	287
प्र –1299	क्या प्राणी दूसरों को वास्तव में.....डाल सकता है?	305
प्र –1318	क्या पंचम गुणस्थानवर्ती समस्त श्रावक ......हैं या नहीं?	307
प्र –1325	क्या मुनिजन इस भवना का चिन्तन कर सकते हैं?	309
प्र –1331	क्या शरीर के किसी एक अंग.......नाम मनोहरांग है?	310
प्र –1357	क्या वृष्येष्टरस युक्त आहार ग्रहण न .....को आती है?	315
प्र –1394	क्या मैथुन क्रिया के अलावा शेष......आता?	322
प्र –1552–54	क्यों वर्ज्य है? क्या विद्याधर राजा ......कर सकते हैं?	348
प्र –1698	क्या उदाहरण है कि जिससे दृढ विश्वास उत्पन्न हो जाय?	373
प्र –1678	काययोग दुष्प्रणिधान किसे कहते हैं?	370
प्र –1748	क्या भोजन का नाम अतिचार दोष है?	381
प्र –1809	कायशुद्धि भक्ति किसे कहते हैं?	389
प्र –1882	क्या वैद्यों की, पुलिस की.....कर सकते हैं?	403
प्र –1993–94	क्या सुगंध से..... होता है? या दुर्गन्ध से भी आर्तध्यान...?	421
प्र –2014	क्या पदार्थ इष्ट और अनिष्ट होते हैं?	425
प्र –2067–68	क्यों और किस कारण....होता है? इसका क्या फल है?	436
प्र –2268	कायगत चौर्यानंद रौद्रध्यान किसे कहते हैं?	470

प्र –152–53	करणलब्धि? इसका फल? किसे प्राप्त होता है?	25
प्र –296	क्वांरिका किसे कहते हैं?	62
प्र –676	केवल पंचपरमेष्ठि ही पूज्य हैं शेष नहीं.....क्या आपत्ति है?	159
प्र –791	केवल मालिक या पीनेवालों के भाग्य से दूध.....क्या हानि है?	202
प्र –863	कल्पवृक्षों में फूल लगते हैं ऐसा पढा है........बताओ?	225
प्र –1174–75	केवल भय का त्याग करना है ? या भय के ......करना है?	284
प्र –1403	क्वांरिका व्यभिचारिणी स्त्री किसे कहते हैं?	324
प्र –1481–83	कर्णेंद्रिय किसे कहते हैं ?... विषय कितने हैं? नाम...?	336
प्र –2001	कर्णेंद्रिय जन्य इष्टवियोगज ....कहते हैं?	423
प्र –2002–03	कर्णेंद्रिय जन्य इष्टवियोगज.....भेद हैं? नाम कौन[2] हैं?	423
प्र –2004	कर्णेंद्रिय जन्य इष्ट वियोगज....उत्पन्न होता है?	423
प्र –2027	कर्णेंद्रिय जन्य अनिष्ट संयोगज.....कहते हैं?	429
प्र –2028	कर्णेंद्रिय जन्य अनिष्ट संयोगज....उत्पन्न होता है?	429
प्र –2056–57	कर्णेंद्रियजन्य वेदना आर्तध्यान किसे कहते हैं? कैसे उत्पन्न होता है?	434
प्र –2058	कर्णेंद्रियजन्य वेदना आर्तध्यान कितने प्रकार का है?	434
प्र –2091	कर्णेंद्रियजन्य निदान आर्तध्यान किसे कहते हैं?	441
प्र –2092	कर्णेंद्रियजन्य निदान आर्तध्यान के कितने भेद हैं?	441
प्र –2093	कर्णेंद्रियजन्य निदान आर्तध्यान से क्या हानि हैं?	441
प्र –2188	कर्णेंद्रियजन्य रौद्रध्यान किसे कहतें हैं?	455
प्र –2189	कर्णेंद्रियजन्य रौद्रध्यान के कितने भेद हैं?	455
प्र –2228	कर्णेंद्रियजन्य मृषानंद रौद्रध्यान किसे कहते हैं?	464
प्र –2229–30	कर्णेंद्रियजन्य मृषानंद.....भेद हैं? नाम कौन[2] हैं?	464
प्र –2232	कर्णेंद्रियजन्य मृषानंद रौद्रध्यान के स्वामी कौन[2] जीव हैं?	464
प्र –2285	कर्णेंद्रियजन्य चौर्यानंद रौद्रध्यान किसे कहते हैं?	473
प्र –2286	कर्णेंद्रियजन्य चौर्यानंद रौद्रध्यान के कितने भेद हैं? नाम....?	473
प्र –2272	कारित चौर्यानन्द रौद्रध्यान किसे कहते हैं?	470
प्र –2334	कर्णेंद्रिय जन्य परिग्रहनंद रौद्रध्यान किसे कहते हैं?	481
प्र –2335–36	कर्णेंद्रिय की विषय सामग्री....... उत्पन्न होता है? भेद?	481
प्र–2427	कारण विचय धर्मध्यान किसे कहते हैं?	502
प्र–2338	कर्णेंद्रियजन्य परिग्रहनंद रौद्रध्यान के स्वामी कौन हैं?	482

प्र –2337	कर्णेंद्रियजन्य परिग्रहनंद रौद्रध्यान क्यों उत्पन्न होता है?	481
प्र –2385	कर्म के फल का विचार करना......स्थिर होना.......?	493
प्र –1728	करने योग्य आवश्यक कार्यों का....हानि है?	378
प्र –1531	काल संबन्धी दिग्व्रत नामक गुणव्रत किसे कहते हैं?	345
प्र –1845	कालातिक्रम अतिचार किसे कहते हैं?	395
प्र –1187–88	केवल हास्य.....कराया है? या सभी कषायों का?	286
प्र –2378	केवल दुःख से ....क्यों नहीं? वकीलों.....मान लो?	490
प्र –2377	केवल दुख से बचाने का नाम......कोई विशेष हेतु है?	490
प्र –2379	केवल चिन्तन करने का नाम धर्मध्यान है क्या?	490
प्र –2386	केवल विचार करने को विपाक विचय ....कहते हो?	493

<u>*क – उष्म*</u>

प्र –391–92	कुशास्त्र अनायतन....हैं? इनकी.....क्या हानि है?	92
प्र –394	कुशास्त्र भक्त अनायतन किसे कहते हैं?	93
प्र –1301	कुशीलपाप किसे कहते हैं?	305
प्र –1316–17	कुशीलपाप के अधिकारी कौन² जीव हैं?....से पाप लगता हैं?	307
प्र –1123	कसाई कत्लखाने में, बाजार में.....चाहिए या नहीं?	276
प्र –2118–20	कषाय किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन² हैं?	446
प्र –2587	कसाई कहता है कि परिवार.....किसी भी तरीके से पालूं?	538
प्र –1368	किस भावना की उत्पत्ति......से होती है?	317
प्र –1485	किस प्रकार से विचार कर त्याग करना चाहिए?	336
प्र –1703	किस प्रकार से.... जिससे दोष न लगे?	374
प्र –1814	किसकी वस्तु का दान नहीं देना चाहिए?	390
प्र –1941	किस प्रकार से आत्मा का ध्यान करना चाहिए?	414
प्र –2098	किसका पालना अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान कहलाया?	443
प्र –2187	किस प्रकार के विचारों से वस्तु को.....प्राप्त होता है?	455
प्र –2487	किस ध्यान का कौनसा....ध्यान किसे कहते हैं?	514
प्र –2509	किस गुणस्थान में या कहा [illegible]......का क्षय होता है?	517
प्र –270	किसी ने वेश्या सम्मेलन में जाकर......आलोचना क्यों की?	55
प्र –1510	किस साधू के त• ध्यानाध्यन......आश्चर्य भी दोष है?	340
प्र –1815	किसी दूसरे की सामग्री को दान में देने से क्या दोष आता है?	390

प्र –494	कैसे मालूम हो कि असिधाराव्रत....पूरा हो गया?	121
प्र –1986	कैसे मालूम हो कि हमारे .....हो रहा है?	440
प्र –1844	कैसे पता चले कि यह.....दान दे रहा है?	395
प्र –1890	कहीं पर भी आदर सम्मान करो ..... बन जायेगा?	405
प्र –355	कैसे पहचाना जाये कि यह मूर्ख है?	82

क – क्ष

प्र –365	कांक्षा दोष किसे कहते हैं?	85
प्र –373	कांक्षा दोष से क्या हानि हैं?	88
प्र –1864	कांक्षा अतिचार किसे कहते हैं?	399
प्र –1865	कांक्षा नाम का अतिचार कैसे उत्पन्न होता है?	399
प्र –1866	कांक्षा की पूर्ति के लिए यह.....उपाय करता है?	399

ख

प्र –2069	ख्याति पूजा लाभ रूप निदान आर्तध्यान.......उत्पन्न होता हैं?	436
प्र –2243–44	ख्याति पूजा लाभ.....आर्तध्यान हैं? या और कुछ भी हैं?	466
प्र –782	खड़े होकर अभिषेक पूजन ...... विनय होता है?	198
प्र –881	खाद्यान्नाहार नैवेद्य किसे कहते हैं?	231
प्र –524	खाद्याहार किसे कहते हैं?	125
प्र –1424	खेत मकान आदि दसों को बाह्य परिग्रह क्यों कहा?	328
प्र –1437	खेत किसे कहते हैं?	329
प्र –2581	खेती करने से अनेक....... आरम्भी हिंसा किसे कहते हैं?	536

ग – टवर्ग

प्र –1242	गाडी ट्रेन आदि वाहनों में .....को बैठा सकते हैं........?	295
प्र –1526–28	गुणव्रत किसे कहते हैं इसके कितने भेद हैं? नाम कौन2 हैं?	344
प्र –1020	ग्रन्थकारों ने अतिचार......जाना चाहिए?	259
प्र –1142	गुण किसे कहते हैं?	279
प्र –2648	गोत्र कर्म किसे कहते हैं? भेद कितने हैं? नाम कौन2 हैं?	556
प्र –1850	गुणव्रत किसे कहते हैं?	396

ग – अन्तस्थ

प्र –1213–14	गिरी रखी पड़ी भूली हुई ....दोष नहीं है? क्या हानि है?	290
प्र –359	गुरुमूढता किसे कहते हैं?	83

प्र –423	गर्भस्थ बालक किस प्रकार से ....कर पुष्ट होता है?	98
प्र –424	गर्भस्थ बालक किस प्रकार से आहार का ग्रहण करता है?	98
प्र –460	गुरु किसे कहते हैं?	106
प्र –583–84	गुरु उपासना....कहते हैं? गुरु किसे......उपासना की जाय?	135
प्र –632	गर्हागुण किसे कहते हैं?	148
प्र –633	गुरु किसे कहते हैं?	148
प्र –710	ग्रीवाभिषेक किसे कहते हैं?	166
	ग – ऊष्म	
प्र –145–46	ग्रहण करना ऐसा.....क्यों कहा ? ग्रहण करना किसे कहते हैं?	23
प्र –330	गोशाला आदि किसे कहते हैं?	75
प्र –655 –57	गृहस्थों के षडावश्यक कर्तव्यों के नाम..? देवपूजा? गुरुपूजा?	155
प्र–1071–1073	गृहस्थ किसे कहते हैं? गृहस्थ....कहते हैं? यह जीव गृहस्थ पद को....?	268
प्र –1324	गृहस्थ श्रावकों के ......संबंध बना रहता है?	308
प्र –1414	गृहस्थ इन इत्वरिका स्त्रियों....... कर सकता है?	326
प्र –1623	गृहस्थों को सामग्री.....ही चाहिए? यदि नहीं......पर क्या करेगा?	361
प्र –38	गृहत्यागी श्रावक बाह्य .....त्याग प्रतिमा वाला है?	5
प्र –2157	गृहस्थों के विरोधी हिंसा का ..... विरोध कर सकता है?	450
प्र –2158–59	गृहस्थ कितनी प्रकार की हिंसा का त्यागी होता....नहीं होता है?	451
प्र –2249	गृहस्थ और मुनियों के वेदना आर्तध्यान......रूप से होता है?	468
प्र –1078	गृहत्यागी और गृहरागी से क्या मतलब है?	269
प्र –1276–77	गृहमालिक किसे कहते हैं? गृहनीति किसे कहते हैं?	301
प्र –1283–84	गृहनीति किसे कहते हैं? समाजनीति किसे कहते हैं?	302
प्र –1693	गृहस्थ होने के कारण बिना स्नान के दान पूजादि कैसे करते हैं?	372
प्र –1788	गृहत्यागी और गृहरागी किसे कहते हैं?	386
प्र –2148	गृहकार्य समिति पूर्वक करने.....ग्रहण किया?	448
प्र –2367	गृहस्थ बनने आजीविका चलाने......सदोष है या निर्दोष ?	487
प्र –2615	गृहत्यागियों के उद्देश्य से........उद्देश्य दोष है क्या?	544
	घ –टवर्ग	
प्र –712	घुटनाभिषेक किसे कहते हैं?	166
प्र –1369	घ्राणेन्द्रिय को वश में करने के.....क्यों नहीं बताई?	317

प्र –1468–70	घ्राणेन्द्रिय किसे कहते हैं? ...प्रकार के हैं? नाम ....?	334
प्र –1471	घ्राणेन्द्रिय के विषयों के प्राप्त होने पर क्या करना चाहिए?	335
प्र –1473	घ्राणेन्द्रिय के विषयों के प्राप्त होने पर ...... करना चाहिए?	335
प्र –1987	घ्राणेन्द्रियजन्य इष्ट वियोगज आर्तध्यान किसे कहते हैं?	421
प्र –1988–89	घ्राणेन्द्रियके विषय कितने हैं? नाम कौन कौन हैं?	421
प्र –1992	घ्राणेन्द्रिय जन्य इष्ट वियोगज आर्तध्यान कैसे उत्पन्न होता है?	421
प्र –2019	घ्राणेन्द्रिय जन्य अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान किसे कहते हैं?	427
प्र –2020	घ्राणेन्द्रिय जन्य अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान कैसे उत्पन्न होता है?	427
प्र –2023	घ्राणेन्द्रिय के माध्यम से अनिष्ट .....और कौन नहीं हैं?	428
प्र –2049–51	घ्राणेन्द्रिय जन्य वेदना आर्तध्यान .....प्रकार का है? नाम कौन^2 हैं?	433
प्र –2081–82	घ्राणेन्द्रिय जन्य निदान .....कहते हैं? इसके स्वामी कौन^2 हैं?	439
प्र –2083	घ्राणेन्द्रिय जन्य निदान आर्तध्यान के कितने भेद हैं?	439
प्र –2084	घ्राणेन्द्रिय जन्य निदान आर्तध्यान कैसे उत्पन्न होता है?	440
प्र –2178	घ्राणेन्द्रिय जन्य रौद्रध्यान किसे कहते हैं?	453
प्र –2179	घ्राणेन्द्रिय जन्य रौद्रध्यान के कितने भेद हैं?	453
प्र –2181	घ्राणेन्द्रिय जन्य रौद्रध्यान किस प्रकार से उत्पन्न होता है?	454
प्र –2183	घ्राणेन्द्रिय जन्य रौद्रध्यान के स्वामी कौन^2 हैं?	454
प्र –2216	घ्राणेन्द्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान किसे कहते हैं?	462
प्र –2217	घ्राणेन्द्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान के कितने भेद हैं?	462
प्र –2221	घ्राणेन्द्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान क्यों उत्पन्न होता है?	463
प्र –2218	घ्राणेन्द्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान कैसे उत्पन्न होता है?	462
प्र –2280	घ्राणेन्द्रिय जन्य चौर्यानन्द रौद्रध्यान किसे कहते हैं?	472
प्र –2281	घ्राणेन्द्रिय जन्य चौर्यानन्द रौद्रध्यान के कितने भेद हैं?	472
प्र –2327	घ्राणेन्द्रिय जन्य परिग्रहानन्द रौद्रध्यान किसे कहते हैं?	480
प्र –2328	घ्राणेन्द्रिय जन्य परिग्रहानन्द.....भेद है और नाम कौन^2 हैं?	480
प्र –2330	घ्राणेन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय का......उत्पन्न हो सकता है?	480

<u>च – तवर्ग</u>

प्र –1426–28	चेतन परिग्रह किसे कहते हैं? भेद कौन^2 हैं? नाम कौन^2 हैं?	328
प्र –1493	चेतन वाहन सवारी किसे कहते हैं?	337
प्र –2627	चेतन पंच परमेष्ठी की पूजा.....अन्य से नहीं?	548

प्र –2562	चौथे काल में भी विवाह के पहले........ इसमें क्या आपत्ति है?	531
प्र –842	चन्दन केसर कर्पूर आदि किसे कहते हैं?	219
प्र –846	चन्दन से पूजा करने का मंत्र कौन सा है?	222
प्र –847	चन्दन से पूजन करने का .....जो कहानपंथी पंडितों ने बनाया?	222

<u>*च – अन्तस्थ*</u>

प्र –2257	चौर्यानन्द रौद्रध्यान के जो दो भेद बतलाये हैं उनके नाम कौन[2] हैं?	469
प्र –2264–65	चौर्यानन्द रौद्रध्यान के तीन भेद कौन[2] हैं? कैसे उत्पन्न होते हैं?	470
प्र –2432	चरमशरीरी मुनियों का भी .....हो सकता है क्या?	503
प्र– 2460–61	चरमशरीर किसे कहते हैं? चरमशरीरी किसे कहते हैं?	508
प्र –1648	चर्या परिषह जय किसे कहते हैं?	365
प्र –1723	चर्यासंबंधी प्रमाद किसे कहते हैं?	377
प्र –282–84	चोरी पाप किसे कहते हैं? क्या लाभ है? क्या हानि है?	59
प्र –285	चोरी व्यसन किसे कहते हैं?	60
प्र –286	चोरी पाप और चोरी व्यसन में क्या अन्तर है?	60
प्र –1262	चोरप्रयोग नाम का अतिचार दोष किसे कहते हैं?	299
प्र –1263	चोरी उपाय बताने को अचौर्याणुव्रत का अतिचार क्यों बताया हैं?	299
प्र –1264	चोरार्थादान अतिचार किसे कहते हैं?	299
प्र –1266	चोरार्थादान को अतिचार दोष क्यों कहा?	299
प्र –1205–06	चोरी पाप किसे कहते हैं? चोरी पाप के कितने भेद हैं?	288
प्र –2254–55	चोरी में सफलता मिलने....क्या कहते हैं? कितने भेद हैं?	468
प्र –2252	चोरी किसे कहते हैं?	468
प्र –309–13	चाय किसे? हानि? क्या प्रकृति? किस मौसम की? क्यों पीता है?	67
प्र –314–15	चाय पीने से कमजोरी कैसे आती है? रोग कैसे उत्पन्न होते हैं ?	68
प्र –1687–88	चारों प्रकार के.....उपवास है? या कुछ के त्याग का नाम उपवास है?	372
प्र –2303–6	चार[2] प्रकार का परिग्रह....? 8 प्रकार का....? 148 प्रकार का....? संख्यात असंख्यात...?	475
प्र –2233–34	चारों प्रकार के आर्तध्यानों के स्वामी कौन[2] हैं? कौन[2] जीव नहीं हैं?	464
प्र –1841–43	चल मुर्दा किसे... हैं? अचल मुर्दा...कहते हैं? कौन अपूज्य...पूज्य हैं?	395
प्र –854	चावल ही शुद्ध हैं क्योंकि ये अंकुरित...है ऐसा...........क्या दोष है ?	223

च – क्ष

प्र –1474	चक्षुइन्द्रिय किसे कहते हैं?	335
प्र –1475–76	चक्षुइन्द्रिय के विषयों के कितने भेद हैं? नाम कौन² हैं?	335
प्र –1479	चक्षुइन्द्रिय के विषयों के प्राप्त होने पर क्या करना चाहिए?	336
प्र –1480	चक्षुइन्द्रिय के विषयों के प्राप्त होने पर.....चाहिए?	336
प्र –2025	चक्षुइन्द्रियअनिष्ट संयोगज आर्तध्यान कैसे उत्पन्न होता है?	428
प्र –2024	चक्षुइन्द्रियअनिष्ट संयोगज आर्तध्यान किसे कहते हैं?	428
प्र –2026	चक्षुइन्द्रियजन्य अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान के स्वामी...कौन नहीं हैं?	428
प्र –2053	चक्षुइन्द्रियजन्य वेदनाआर्तध्यान किसे कहते हैं?	434
प्र –2054	चक्षुइन्द्रियजन्य वेदनाआर्तध्यान कैसे उत्पन्न होता है?	434
प्र –2055	चक्षुइन्द्रियजन्य वेदनाआर्तध्यान के कितने भेद हैं, नाम कौन² हैं?	434
प्र –2085	चक्षुइन्द्रियजन्य निदान आर्तध्यान किसे कहते हैं?	440
प्र –2087	चक्षुइन्द्रियजन्य निदान आर्तध्यान से हानि क्या है?	440
प्र –2184	चक्षुइन्द्रियजन्य रौद्रध्यान किसे कहते हैं?	454
प्र –2185	चक्षुइन्द्रियजन्य रौद्रध्यान के कितने भेद हैं?	455
प्र –2222	चक्षुइन्द्रियजन्य मृषानन्द रौद्रध्यान किसे कहते हैं?	463
प्र –2223–24	चक्षुइन्द्रियजन्य मृषानन्द रौद्रध्यान के कितने भेद हैं? नाम कौन² हैं?	463
प्र –2225	चक्षुइन्द्रियजन्य मृषानन्द रौद्रध्यान क्यों उत्पन्न होता है?	463
प्र –2226	चक्षुइन्द्रियजन्य मृषानन्द रौद्रध्यान के स्वामी कौन हैं?	463
प्र –2227	चक्षुइन्द्रियजन्य मृषानन्द रौद्रध्यान के स्वामी तिर्यंच क्यों नहीं हैं?	463
प्र –2282	चक्षुइन्द्रियजन्य चौर्यानन्द रौद्रध्यान किसे कहते हैं?	472
प्र –2283–84	चक्षुइन्द्रियजन्य रौद्रध्यान के कितने भेद हैं? नाम कौन² हैं?	472
प्र –2331	चक्षुइन्द्रियजन्य परिग्रहानन्द रौद्रध्यान किसे कहते हैं?	480
प्र –2333	चक्षुइन्द्रियजन्य परिग्रहानन्द रौद्रध्यान के कितने भेद हैं?	481
प्र –1995	चक्षुइन्द्रियजन्य इष्टवियोगज आर्तध्यान किसे कहते हैं?	422
प्र –1996–97	चक्षुइन्द्रिय के विषय के कितने भेद हैं? नाम कौन² हैं?	422
प्र –1998	चक्षुइन्द्रियजन्य इष्टवियोगज आर्तध्यान कैसे उत्पन्न होता है?	422

छ वर्ग

प्र –2548	छठवीं प्रतिमावाली अपने गोद के बच्चे को रात्रि में ....है या नहीं?	527
प्र –2549	छठवीं प्रतिमावाली मा बच्चे को खिलाये.......करा सकते हैं क्या?	527

प्र –1215 छापामारों में और डाकुओं में क्या अन्तर है? 290

प्र –1298 छल कपट किसे कहते हैं? 304

प्र –2275 छह प्रकार का चौर्यानंद रौद्रध्यान किस प्रकार का होता है? 471

<u>ज – स्वर</u>

प्र –233–34 जुआ खेलना व्यसन किसे कहते हैं? हानि क्या है? 44

ॽ –1797 जो औषधि आयुर्वेदीय औषधिशाला में ......ले सकते हैं क्या? 388

<u>ज – कवर्ग</u>

ॽ –360 जो गृहस्थ शिक्षा गुरु हैं •डित हैं....सकते हैं क्या? 83

प्र –820 जघन्य पात्र किसे कहते हैं? 212

प्र –1782–84 जघन्यपात्र किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन[2] हैं? 386

प्र –1785 जघन्यपात्र में उत्तम पात्र किसे कहते हैं? 386

प्र –1786 जघन्यपात्र में मध्यम पात्र किसे कहते हैं? 386

प्र –1787 जघन्यपात्र में जघन्यपात्र किसे कहते हैं? 386

ॽ –547–49 जो कर्मबन्ध किया है......•ड़ेगा ऐसा कहना चाहिए? 130

<u>ज–टवर्ग</u>

प्र –912 जड दीपकों से पूजा करने पर भाव अंधकार कैसे दूर हो सकता है? 238

<u>ज – तवर्ग</u>

प्र –300 जन्म देने वाली माँ को पुत्र परस्त्री कहकर पुकार सकता है? 63

प्र –473 जन्मदाता माँ बाप स्वार्थी होने से इनकी .....क्या हानि है? 113

प्र –705 जन्माभिषेक किसे कहते हैं? 165

प्र –722–23 जन्माभिषेक कौन किसका करता है ? क्यों करता है? 167

प्र –715 जिनाभिषेक किसे कहते हैं? 166

ॽ –768–69 जिनबिम्ब वेदी •र...... स्था•ना क्यों करना?...योग्य है या अयोग्य? 190

ॽ –783 जिनॽतिमा का अभिषेक एक बार करना.......चाहिए? 198

ॽ –793–94 जिनका •त्नीव्रत है....दोष नहीं आता क्या? ...नहीं सकता? 203

प्र –2366 जिनेन्द्र भगवान ने क्या आज्ञा दी है? 487

ॽ –2375 जिनेंद्र भगवान ने कर्मोदय जन्य.........या नहीं? 489

ॽ –986–87 जैनों के यहा मूर्ति...... ॽारंभ हुआ? अन्यमतियों......जैनों ने क्या? 255

प्र –1036 जैन लोग ईंट खप्पर का ....भट्ठा लगवा सकते हैं या नहीं? 263

प्र –761 जो निषेध करते हैं तब उनके साथ किस प्रकार से .... चाहिए? 188

ॽ –303–04 जो आर्यिकायें हैं, ब्रह्मचारिणी हैं........सकते है क्या? 63

ज –पवर्ग

प्र –2398–99	जप किसे कहते हैं? इन मंत्रों का जाप करने को क्या कहते हैं?	497
प्र –159	जब उक्त जीवों के......रत्नत्रय के लिए अपात्र हैं ऐसा क्यों कहा?	27
प्र –770	जब आचार्यों ने अतदाकार स्थापना का .....आगम विरोध है?	191
प्र –405	जब कोई किसी का शरण.......ऐसा क्यों •ढते हैं?	95
प्र –841	जब जल से पूजा करने पर ....पूजा करने को क्यों कहा गया?	218
प्र –644	जब मिथ्यात्व गुणस्थान में ही ......करने के लिए क्या बचा?	151
प्र –1265	जब अपन खरीदकर लाये हैं तो.....दोष क्यों कहा?	299
प्र –1423	जब ये परिणाम आत्मा के हैं तो इनको परिग्रह क्यों कहा?	327
प्र –1823	जब जंगल में बिना बर्तन के ....दोष नहीं लगता?	391
प्र –2113	जब इंद्रियों को प्रमाद कहा है ...प्रमाद कहना चाहिए?	445
प्र –2076	जिस प्रकार •र के लिए....स्वयं के लिए क्यों नहीं होता ......?	438
प्र –2111	जब कषाय प्रमाद है तो दसवें गुणस्थान.....कहना चाहिए?	445
प्र –2318	जब यह बाह्य सामग्री वास्तव .....त्याग क्यों कराया?	478
प्र –2408	जब हमारी आत्मा •ूर्ण रू• से......इसका उ•ाय क्या है?	498
प्र –2496	जब आयुकर्म का उदीरणाकरण ..... मोक्ष कैसे हो सकता है?	515
प्र –2527–28	जब सचित्त त्याग प्रतिमा है.......दयामूर्ति क्यों कहा कैसे कहा?	521
प्र –2571	जब दोनों नवकोटियों से ....अंतर है तो कैसे?	534
प्र –2626	जब आर्यिका पंचपरमेष्ठी पद में नहीं है....पद की प्राप्ति कैसे हो?	548
प्र –967	जो •ूजन सामग्री सचित्त है.......नहीं चढाना चाहिए?	250

ज – अन्तस्थ

प्र –480–83	जल किसे कहते हैं? अनछना....कहते हैं? ...हानि है? ....कराया?	115
प्र –512–13	जल के कितने भेद हैं? नाम कौन² हैं?	124
प्र –514	जल किसे कहते हैं?	124
प्र –515	जलकाय किसे कहते हैं?	124
प्र –516	जलकायिक किसे कहते हैं?	124
प्र –517	जल जीव किसे कहते हैं?	124
प्र –916–17	जलता हुआ दीपक जड़ है या चेतन......? जीव किसे कहते हैं?	239
प्र –716	जलाभिषेक किसे कहते हैं?	166
प्र –833	जल किसे कहते हैं? जल किसके समान है?	216

प्र –837 जल से पूजा करने का मंत्र कौन सा है? 217
प्र –80 जीव द्रव्य को मूर्तिक क्यों कहा जाता है? 12
प्र –89 जीव तत्त्व किसे कहते हैं? 13
प्र –538–41 जीव किसे कहते हैं? जीव दया? भेद? नाम कौन^2 हैं? 128
प्र –2138 जीवन समाप्त करने को हिंसा कहते हैं ....हिंसा कहते हैं? 447
प्र –2422 जीवविचय धर्मध्यान किसे कहते हैं? 501
प्र –1909 जीविताशंसा अतिचार किसे कहते हैं? 408
प्र –2538 जो वस्तुयें अचित्त कर ग्रहण के योग्य हो जाती हैं वे कौन^2 हैं? 524
प्र –307 जो विधवा हैं ...... करे तो क्या गुण है या हानि है? 64

<u>*ज – उष्म*</u>

प्र –305 जिस प्रकार स्त्रियों की माँ बहनों की.... क्यों नहीं बताई? 64
प्र –509 जिस प्रकार प्रत्येक वनस्पति जीव के....ही जल के क्यों नहीं? 123
प्र –890 जिस समय ये पूजायें बनाई गयी थीं.... अशुद्ध सामग्री........? 233
प्र –902 जो संपन्न स्त्री पुरुष दानपूजादि धर्म कार्य नहीं करते हैं तो ....? 236
प्र –1333 जिस प्रकार यहा प्रश्न मुनियों क.....भी हो सकता है या नहीं? 311
प्र –1374 जिसका कोई सहायक नहीं है असमर्थ है ......सकते हैं? 318
प्र –2510 जिस क्रम से कर्म प्रकृतियां..................क्रम किस प्रकार है? 517
प्र –1064 जो समर्थ साधु हैं उनसे जाकर किसी ने पूछा .....क्यों नहीं मिलते? 266
प्र –1580 जिसने मौन व्रत ले रखा है तब बिना बोले यह दोष कैसे लगेगा ? 353
प्र –1790 जिसके आने का समय निश्चित ना हो उसे अतिथि....? 386
प्र –2583 जिस प्रकार आरम्भ की आज्ञा.......वाला महापुण्यात्मा? 536
प्र –2628 जिस प्रकार ऐलक के एक लंगोटी है.....को ऐलिका कहना चाहिए? 549
प्र –1816 जिसके पास में धन नहीं हैं तो वह दान दे नहीं सकता है क्या? 390
प्र –1239 जहाँ पर ठहरे हैं वहाँ दूसरे यात्री को न ठहराने में क्या दोष है? 294

<u>*झ – वर्ग*</u>

प्र 1132 झूठ पाप किसे कहते हैं? 278
प्र –1133–34 झूठ पाप के कितने भेद हैं? नाम कौन^2 हैं? 278
प्र –2582 झाडू लगाने को आरम्भ क्यों कहा? झाडू लगाने....सकती है? 536

ट – वर्ग

प्र –317	टी.वी. के देखने को व्यसन में क्यों ग्रहण किया?	69
प्र –1129	डीजल गाड़ी, पेट्रोल गाड़ी, बिजली गाड़ी........दोष कैसे लगेगा?	277

त – कवर्ग

प्र –39	तो क्या ये षडावश्यक कर्तव्य स्वयं धर्म नहीं कहलाये?	5
प्र –625	तो क्या सम्यग्दर्शन प्राप्त करने वाले जीवा....ऐसा नियम है क्या?	147
प्र –803	तो क्या सभी आचार्य यह कार्य.....त्यागी महाव्रती हैं?	207
प्र –838	तो क्या किन्हीं ने प्राचीन मंत्र के........क्यों बनाया?	217
प्र –1319	तो क्या मुनिजन इस कुशील पाप के अधिकारी हो सकते हैं क्या?	307
प्र –1887–88	तो क्या धर्म मंच और राजनेताओं का......? यदि नहीं कर.......?	405
प्र –2372	तो क्या भगवान ने शादी करने की......दी है?	488
प्र –2558	तो क्या बालक बालिकायें विवाह......वार्तालाप करें?	529

त – टवर्ग

प्र –1656	तृणस्पर्श परीषह जय किसे कहते हैं?	366

त – तवर्ग

प्र –81–84	तत्त्व...कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम ...हैं? इनको....करना चाहिए?	12
प्र –1329	तन्मनोहरांग निरिक्षण त्याग भावना किसे कहते हैं?	310
प्र –1183	तीन प्रकार का हास्य कौन सा हैं?	285
प्र –2299–2302	तीन प्रकार....कौनसा है? सचित्त अचित्त ......किसे कहते हैं?	475

त – पवर्ग

प्र –591	तप किसे कहते हैं?	136
प्र –661–62	तप किसे कहते हैं? कितने भेद हैं?	156
प्र –1670	तो फिर क्यों कहा कि वस्त्रधारी.......हो जाता है?	369
प्र –1886	तो फिर प्रचार किसका होता है?	404
प्र –2646	तो फिर किस आचरण का नाम भ्रष्टाचार शिथिलाचार है?	555
प्र –135	तो फिर किसका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहा जाता है?	21
प्र –142	तो फिर देशनालब्धि में सामान्य सर्वज्ञ केवलियों को ग्रहण करना चाहिए?	22
प्र –1148	तो प्रथम वचन को झूठ वचन क्यों कहा?	280
प्र –1358–59	तो फिर कर्मकाण्ड में ऐसा क्यों कहा? रूक्खाहार बल हरं दव्वं ...?	315
प्र –2639	तो फिर आजकल स्पर्शशूद्रों को दीक्षा क्यों नहीं दी जाती है?	553

त – अन्तस्थ

प्र –144	तीर्थंकर सर्वज्ञकेवली के समवशरण में और सामान्यकेवलियों की....?	23
प्र –293	त्यक्ता स्त्री किसे कहते हैं?	61
प्र –1401	त्यक्ता व्यभिचारिणी इत्वरिका स्त्री किसे कहते हैं?	324
प्र –2097	त्याग धर्म केशलोंचादि दुख के.....आर्तध्यान कह सकते हैं क्या?	442
प्र –2197	तरण परण मरण के वचनों का......सकते हैं क्या?	457
प्र –2198–2200	तरण वचन परण वचन मरण वचन किसे कहते हैं?	457
प्र –1546–47	तिर्यग्व्यतिक्रम...कहते हैं? यह अतिचार...उत्•न्न होता है?	347
प्र –2203	तेरही या दसवां के भोजन के......करना चाहिए?	459
प्र –2485	तेरहवें सयोगकेवली नामक.....या ध्यान ही नहीं होता है?	512
प्र –2043	तो वेदना आर्तध्यान किसे कहना चाहिए?	431
प्र –2621	त्यागीव्रती भी साधुओं के निमित्त......दोष लगता ही है?	545
प्र –465–66	तीर्थ किसे कहते है? तीर्थों की उत्•त्ति कैसे हुई?	111
प्र –756	तीर्थंकर •भु वीतरागी हैं फिर भी व....सुखी कैसे कर सकते है?	186
प्र – 757	तीर्थंकर •भु ही हित में सहायक हैं यह......किन्तु अहित में.......?	186
प्र –2368	तीर्थंकरों ने गृहस्थ................उ•देश क्यों दिया?	487

त – उष्म

प्र – 1641	तृषा•रिषह जय किसे हैं?	363
प्र–1848	तीसरे और चौथे शिक्षाव्रत में क्या अंतर हैं?	396
प्र –2121–22	तीसरे नं. के प्रमाद के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?	446
प्र –1936–39	तीसरी प्रतिमा का नाम? स्वरूप? स्वामी? कितनी.....चाहिए?	413

द –कवर्ग

प्र –1529	दिग्व्रत गुणव्रत किसे कहते हैं?	345
प्र –1534	दिग्व्रत में दिशा सम्बन्धी नियम.....आ•ने क्यों कहा?	345
प्र –1535	दिग्व्रत को धारण करने से क्या लाभ है?	345
प्र –1729	दिग्व्रत में स्मृत्यन्तराधन अतिचार तथा....में कहा है..... अन्तर?	378
प्र –1749	दुःपक्वाहार किसे कहते हैं?	381
प्र –2022	दुर्गन्ध विषय के पदार्थ कितने प्रकार के होते हैं?	427
प्र –2052	दुर्गन्ध से वेदना आर्तध्यान तो.....समझ में नहीं आई?	433
प्र –977	देखा जा रहा है .....ऐसा कहना चाहिए?	252

द – टवर्ग

प्र —1053	दंडनीति किसे कहते हैं?	264

द – तवर्ग

प्र —663	दान आवश्यक कर्तव्य किसे कहते हैं?	156
प्र —592	दान आवश्यक किसे कहते हैं?	136
• —2589	दान •ूजा .... त्याग कराया है क्या?	539
• —2149	दान •ूजा .... कर सकते हैं क्या?	449
प्र —815	दाता किसे कहते हैं?	212
प्र —2613	दान सम्बन्धी उद्देश्य किसे कहते हैं?	544
प्र —2543	दिन किसे कहते हैं?	525
• —2553	दिन में मैथुन सेवन करने से इतना........से •ा• नहीं लगता?	528
• —2554	दिन में मैथुन का त्याग कराया........करा सकते हैं?	528
• —2556	दिन में विवाहादि करने ....का खर्च बच जाता है?	529
• —740	दूधादि .... •ंचामृताभिषेक नहीं करना चाहिए?	173
• —787	दूध शुद्ध है या अशुद्ध?	200
• —788	दूध •ाणिज है अतः अशुद्ध है......का दोष आता है?	200
प्र —790	दूध बच्चों के भाग्य से बनता है न कि मनुष्यों के भाग्य से ?	201
प्र —879	दूध से बनाये गए व्यंजनों को मिष्ठान्न कह सकते हैं क्या?	231
प्र —180	दोनों केवलियों को ...... प्राप्त करना शेष बचा है?	33
प्र —800	दोनों प्रकार की पूजा करने का अधिकारी कौन है?	204
• —984	दोनों विरुद्ध •र्यायें एकसाथ ......गुणस्थान बन नहीं सकता?	253

द – पवर्ग

प्र—1052	दाम नीति किसे कहते हैं?	264
प्र —909	दीप या दीपक किसे कहते हैं?	238
प्र —915	दीपक के जलाने पर त्रस.....से पूजा नहीं करना चाहिए?	238
प्र —918	दीपक की जगह नारियल की.......पूजा कर सकते हैं क्या?	239
• —919—20	दी•क से •ूजा करने का मंत्र कौनसा है? ....फल •ाप्त होता है?	239
प्र —1181—82	दो प्रकार का हास्य कौन सा है? सामान्य से कितने भेद वाला है?	285
• —2296	दो •कार का •रिग्रह कौनसा है?	474
प्र —73—76	द्रव्यों के भेद? किसे कहते हैं? नाम? विभाग?	11
प्र —998	दर्शन प्रतिमा किसे कहते हैं?	256

द – अन्तस्थ

प्र –192	द्रव्य मिथ्यात्व किसे कहते हैं?	35
प्र –221	द्रव्य हिंसा में पाप नहीं है तो......में क्यों पाप होगा?	42
प्र –213–14	द्रव्य अभक्ष्य किसे कहते हैं? कितने भेद हैं?	39
प्र –339–40	द्रव्य भय किसे कहते हैं? इसके स्वामी कौन हैं?	78
प्र –558	द्रव्य भक्ति किसे कहते हैं?	132
प्र –683	द्रव्य निक्षेप पूजा किसे कहते हैं?	160
प्र –798	द्रव्य पूजा किसे कहते हैं?	204
प्र –901	द्रव्य पूजा कौन कौन करते हैं?	236
प्र –1024	द्रव्य हिंसा किसे कहते हैं?	260
प्र –1314	द्रव्य नपुंसक वेद किसे कहते हैं?	307
प्र –1875	द्रव्य विचिकित्सा किसे कहते हैं?	401
प्र –2258	द्रव्य चौर्यानन्द रौद्रध्यान किसे कहते हैं?	469
प्र –2310–11	द्रव्य कर्म क्या दुर्ध्यानों में कारण है? उदाहरण सहित समझाओ?	476
प्र –1811–13	द्रव्य किसे कहते हैं? दाता किसे कहते हैं? पात्र किसे कहते हैं?	390
प्र –1532	द्रव्य सम्बन्धी दिग्व्रत किसे कहते हैं?	345
प्र –2261–63	द्रव्य कितने हैं? नाम कौन कौन हैं? किस द्रव्य....पाया जाता हैं?	469
प्र –1144	द्रव्य किसे कहते हैं?	279
प्र –1210	द्रव्य चोरी पाप किसे कहते हैं?	289
प्र –1305	द्रव्य स्त्रीवेद किसे कहते हैं?	306
प्र –1309	द्रव्य पुरुषवेद किसे कहते हैं?	306
प्र –2136–37	द्रव्य हिंसा किसे कहते हैं? भाव हिंसा किसे कहते हैं?	447
प्र –131	देव शास्त्र गुरु ....या कह सकते हैं?	19
प्र –358	देवमूढ़ता किसे कहते हैं?	83
प्र –450	देव शास्त्र गुरु का भक्त हो ऐसा क्यों कहा?	103
प्र –451	देव किसे कहते हैं?	104
प्र –581	देवपूजा किसे कहते हैं?	135
प्र –887–88	दूर से सामग्री ...... क्यों नहीं चढ़ा सकते?	232
प्र –2214	देव नारकी जीवों में यह रसनेंद्रिय ......लेते नहीं ?	261
प्र –2289	देवों के और भोगभूमिजों में.....आर्त रौद्रध्यान कैसे सम्भव है?	473
प्र –2373–74	देव शास्त्र गुरु की आज्ञा को सुनकर....उदाहरण देकर समझाओ	489

<u>*द – उष्म*</u>

प्र –1457	द्वेष किसे कहते हैं?	333
प्र –1472	द्वेष और दोष में क्या अन्तर है?	335
प्र –1603	दुश्रुति अनर्थदण्ड किसे कहते हैं?	358
प्र –1644	दंशमशक परीषहजय किसे कहते हैं?	364
प्र –136–37	देशनालब्धि? इसका अधिकारी कौन है....की प्राप्ति होती है?	21
प्र –138–39	देशना देने वाला और देशना किस प्रकार की होती है?	21
प्र –140–41	देशनालब्धि में....क्यों किया? तीर्थंकरादि.....क्यों न किया?	22
प्र –936	देशघाती स्पर्धक किसे कहते हैं?	241
प्र –941–42	देशघाती स्पर्धकों के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?	242
प्र –943	देशघाती चेतन स्पर्धक किसे कहते हैं?	242
प्र –944	देशघाती अचेतन स्पर्धक किसे कहते हैं?	242
प्र –993–95	देशव्रती श्रावक किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?	256
प्र –1558	देशव्रत में गुणव्रत किसे कहते हैं?	349
प्र –1562	देशव्रत को निर्दोष पालन करने के लिए क्या करना चाहिए?	350
प्र –149	देशना और देशनालब्धि में क्या अन्तर है तथा स्वामी कौन कौन हैं?	24
प्र –1563–64	देशव्रत के अतिचारों के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?	350
प्र –1913	देशसैनिक राजा प्रजादि की रक्षा के.....हैं सो यह दोष है या नहीं?	409
प्र –155	दृष्टि भेद क्या है?	25
प्र –1011–13	दोष किसे कहते हैं? कितने भेद हैं नाम कौन कौन हैं?	258
प्र –2599–2600	दसवीं प्रतिमा का नाम क्या है? इस प्रतिमा का लक्षण क्या हैं?	542
प्र –1431	दास परिग्रह किसे कहते हैं? पिता पुत्र....को परिग्रह क्यों नहीं?	328
प्र –1444	दास दासी को आदि लेकर भाण्ड पर्यन्त वस्तुओं को क्या कहते हैं?	330
प्र –1429–30	दासी किसे कहते हैं? यहां मां बहन.............परिग्रह क्यों नहीं कहा?	328
प्र –446	दासोऽहं किसे कहते हैं?	102
प्र –1217	दहेज लेना चोरी पाप है या नहीं?	291
प्र –714	दीक्षाभिषेक किसे कहते हैं?	166

<u>*ध – तवर्ग*</u>

प्र –1439	धन किसे कहते हैं?	330
प्र –1440	धान्य किसे कहते हैं?	330

ध – पवर्ग

प्र –959–60	धूप किसे कहते हैं? कितने पदार्थों को मिलाकर बनाई जाती है?	247
प्र –961–62	धूप अग्नि दहन करने से ....? जहाँ हिंसा हो वहाँ ....कैसा ?	247
• –966	धू• से •ूजा करने का युगलजीकृत....फिर भी ग्राह्य है?	250

ध – अन्तस्थ

प्र – 1943	ध्यान किसे कहते हैं?	415
• –1944–46	ध्यान के स्वामी ..कौन हैं? किस....होता है? कितने समय..होता है?	415
प्र –1948	ध्यान क्या संहनन वालों के है....भी होता है?	415
प्र–1953–54	ध्यान का फल क्या है? ध्यान के कितने भेद हैं?	416
• –1969	ध्यान अन्तरंग त• है फिर इसे कुध्यान दुर्ध्यान क्यों कहा?	418
प्र –1970	ध्यान के जो चार भेद गिनाये हैं तो उनके नाम कौन^{2} है?	418
प्र –88	ध्येय तत्त्व किसे कहते हैं?	13
प्र –1–5	धर्म किसे कहते हैं? किसमें? कब से? कब तक? किस आत्मा में?	1
प्र –46–47	धर्म के कितने भेद हैं? नाम कौन^{2} हैं?	7
प्र –106–08	धर्म किसे कहते हैं? फल क्या हैं? किस जीव को प्राप्त होता है?	15
प्र –110	धर्म के अनेक भेदों में से किस धर्म.....प्राप्ति होती है?	16
प्र –441	धर्म भावना किसे कहते हैं?	102
प्र –1042–44	धर्मनीति किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन^{2} हैं?	263
• –1253–54	धर्म सहित को सधर्म कहते हैं ऐसा.....है? क्या हानि है?	297
प्र –1271–72	धर्म राजा किसे कहते हैं? धर्मनीति किसे कहते हैं?	300
प्र –1279	धर्मनीति के विरुद्ध जाने पर क्या आपत्ति आती है?	301
प्र –1568	धर्म कार्य तो करा सकते हैं जिससे अतिचार दोष न लगे?	351
प्र –52	धर्मों के इतने भेद हैं इसलिये....इसलिये भेद हैं?	8
प्र –467–69	धर्मतीर्थों के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं? लक्षण किसे कहते हैं?	111
प्र –573	धर्मोपदेश नामक स्वाध्याय किसे कहते हैं?	134
• –2006	धर्म के वचन सुनने में उत•न्न हुई बाधा.....आर्तध्यान क्यों नहीं कहते हो?	423
• –2096	धर्मगुरु या धर्मायतन के वियोग .... कह सकते हैं क्या?	442
• –2156	धर्म •र आये हुये संकट ..... या नहीं?	450
• –2346–50	धर्म किसे..हैं? ...भेद हैं? स्वामी कौन^{2} हैं? फल? किसको •ाप्त...?	484
प्र –2429	धर्मध्यान का साक्षात् फल क्या है? और परम्परा फल क्या है?	502

प्र –2351–53 धर्मध्यान किसे...? स्वामी ? कौन जीव नहीं? 485
प्र –2354–55 धर्मध्यान के कितने भेद हैं? नाम कौन[2] हैं? 485
प्र –147 धारण करना किसे कहते हैं? 24
प्र –1141 ध्रौव्य किसे कहते हैं? 279
प्र –2155 धर्मादि कार्यों में आये हुए...... क्यों कहा? 450

न – कवर्ग

प्र –2586 नौकरी करना आदि को आरम्भ क्यों कहा? 537
प्र –1332 नग्नदिगम्बर मुनियों के सामने ..... तब मुनिजन क्या सोचते हैं? 311
प्र –1645 नग्न परीषह जय किसे कहते हैं? 364

न – चवर्ग

प्र –2644 नीच आचरण किसे कहते हैं? 554
प्र –1406 निज पत्नी का भी त्याग करना चाहिए....त्याग करना श्रेष्ठ है? 325

न – तवर्ग

प्र –2089 नेत्रेन्द्रिय जन्य आर्तध्यान से क्या फल प्राप्त होता है? 441
प्र –2090 नेत्रेन्द्रिय जन्य निदान आर्तध्यान कैसे उत्पन्न होता है? 441
प्र –2332 नेत्रेन्द्रिय की विषय सामग्री कौन[2] है कि....रौद्रध्यान उत्पन्न होता है? 481
प्र –1268–70 नीति किसे कहते हैं? कितने प्रकार की होती है? नाम कौन हैं? 300
प्र –1039–41 नीति किसे कहते हैं? नीति के कितने भेद हैं? नाम कौन[2] हैं? 263
प्र –717 नित्याभिषेक किसे कहते हैं? 166
प्र –1005 निदान शल्य किसे कहते हैं? 257
प्र –2123–25 निद्रा किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं? 446
प्र –1928 निदान अतिचार किसे कहते हैं? 412
प्र –1929 निदान आर्तध्यान और निदान अतिचार में क्या अन्तर है? 412
प्र –174 निद्रा और प्रमाद में क्या अन्तर है? 31
प्र –2061 निदान किसे कहते हैं? 435
प्र –2062–63 निदान आर्तध्यान किसे कहते है? निदान का यहाँ....अभिष्ट है? 435
प्र –2064 निदान आर्तध्यान कब उत्पन्न होता है? 435
प्र –2075 निदान आर्तध्यान राग से होता है या द्वेष से होता है? 438
प्र –2094 निदान आर्तध्यान और निदान शल्य में क्या अन्तर है? 442
प्र –2095 निदान आर्तध्यान और कांक्षा दोष में क्या अन्तर है? 442

प्र –2237–38	निदान आर्तध्यान का साक्षत फल क्या है? परम्परागत फल क्या है?	465
प्र –2239	निदान आर्तध्यान से क्या हानि प्राप्त होती है?	465
प्र –1930	निदान शल्य और निदान अतिचार में क्या अन्तर है?	412
प्र –332–35	निन्दा किसे कहते हैं? हानि? क्या लाभ? स्वामी कौन कौन हैं?	77
प्र –630–31	निंदागुण किसे कहते हैं? निंदादोष किसे कहते हैं?	147
प्र –1150	निंद्य वचन किसे कहते हैं?	280
	न – पवर्ग	
प्र –1310–12	नपुंसक वेद ? इसके कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?	306
प्र –1806	नमस्कार भक्ति किसे कहते हैं?	389
प्र –681	नाम निक्षेप से नाम पूजा किसे कहते हैं?	159
प्र –2493	नामादि तीन कर्मों का स्थिति सत्व .....किससे होता हैं?	515
प्र –718	नैमित्तिकाभिषेक किसे कहते हैं?	166
	न– अन्तस्थ	
प्र –1199	न्यासापहार अतिचार किसे कहते हैं?	287
प्र –49	नय किसे कहते है?	7
प्र –50	नय के कितने भेद हैं?	7
प्र –488	नल के पानी की जीवानी तो.......सकते हैं?	118
प्र –2590–91	नवमीं प्रतिमा का नाम क्या हैं? नवमीं प्रतिमा का लक्षण क्या हैं?	539
प्र –1735	नियम किसे कहते हैं?	379
प्र –432–34	निर्जरा भावना किसे कहते हैं? हानि? लाभ? स्वामी कौन जीव हैं?	99
प्र –94	निर्जरा तत्त्व किसे कहते हैं?	14
प्र –598	निर्विचिकित्सा अंग किसे कहते हैं?	138
प्र –497	निर्दयी दया रहित गृहस्थों ने क्या किया?	121
प्र –629	निर्वेग गुण किसे कहते हैं?	147
प्र –57	निवृत्ति धर्म किसे कहते हैं?	9
प्र –876	नैवेद्य किसे कहते हैं?	230
प्र –905–06	नैवेद्य से पूजा करने का मंत्र कौन सा है? क्या फल प्राप्त होता है?	237
प्र –885–86	नैवेद्य बनाने का स्थान कैसा हो? बनाने वाला कैसा हो और कैसा न हो?	232
	न – उष्म	
प्र –2048	नासिका इन्द्रिय से उत्पन्न वेदना आर्तध्यान किसे कहते हैं?	433

प्र –53	निश्चय धर्म किसे कहते हैं?	8
प्र –596	निशंकित अंग किसे कहते हैं?	138
प्र –597	निकांक्षित अंग किसे कहते हैं?	138
प्र –1504	निष्प्रयोजन वस्तु किसे कहते हैं?	338
प्र –1649	निषद्या परिषहजय किसे कहते हैं?	365

प – कवर्ग

प्र –880	पक्वान्नाहार नैवेद्य किसे कहते हैं?	231
प्र –420	पक्वाशय किसे कहते हैं?	98

प – चवर्ग

प्र –2007	पंच परमेष्ठी की मूर्ति के स्पर्श में ......या विषमता है ?	424
प्र –719	पंचामृताभिषेक किसे कहते हैं?	166
प्र –741	पंचामृताभिषेक बीसपंथियों का है......करना चाहिए?	173
प्र –956	पंचा० और कल्याणमन्दिर में ....अपेक्षा से ज्ञानी कहा?	245
प्र –2139	पाँचों इन्द्रियों के विषयों में..........हिंसानन्द रौद्रध्यान क्यों कहा?	447
प्र –2274	पाँच प्रकार का चौर्यानन्द रौद्रध्यान किसे कहते हैं?	471
प्र –2314	पाँचों इन्द्रियों और मन से परिग्रहानन्द.....से उत्पन्न होता है?	477
प्र –2231	पाँचों इन्द्रियों के विषय शुभ और अशुभ.....या अशुभ विषय से?	464
प्र –2588	पाँचों इन्द्रियों से नाना क्रियाय.... भी क्या हिंसा पाप होता है?	538
प्र –2537	पाँचवी प्रतिमा के कथन में अभक्ष्य....उबालकर नहीं खा सकते?	523
प्र –795–96	पूजा किसे कहते हैं? पूजा करने के स्वामी कौन हैं?	204
प्र –797	पूजा के कितने भेद हैं?	204
प्र –832	पूजा करने की विधि? सामग्री के नाम कौन[2] हैं?	216
प्र –679–80	पूजा के भेद? नाम?	159
प्र –685–86	पूजा के अंग? नाम कौन हैं?	160
प्र –670–71	पूज्य पद का अर्थ? पूज्य किसे कहते हैं?	158
प्र –672 –73	पूजक का अर्थ? पूजक किसे कहते हैं?	158
प्र –674–75	पूजा का अर्थ? पूजा किसे कहते हैं?	158
प्र –677–78	पूजा फल किसे कहते हैं? पूज्य, पूजक, पूजा का सामान्य अर्थ क्या है?	159
प्र –569	पृच्छना स्वाध्याय किसे कहते हैं?	133

प – टवर्ग

प्र –700	पंडितों ने, समाज ने एक बार .....ठीक है?	164
प्र –762	पंडित सेठ लोग बोलते हैं कि......जब वो गमनागमन नहीं करते हैं?	188

प्र –708 पट्टाभिषेक किसे कहते हैं? 166
प्र –1802 पड़गाहन भक्ति किसे कहते हैं? 389
प्र –1038 पाठशालादि से और ब्याज से आजिविका चला सकते हैं क्या? 263
प्र –324–27 पाठशाला किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम? परिभाषा क्या है? 74
प्र –2402 पिण्डस्थ धर्मध्यान किसे कहते हैं? 497
प्र –2409–10 पिण्डस्थ धर्मध्यान कैसे हो? उदाहरण देकर बताओ? 498
प्र –2420 पिण्डस्थ धर्मध्यान दूसरे नं० ...अतः दूसरा श्रेष्ठ हैं चौथा नहीं? 500
ॽ –974–75 •ुण्यकर्मोदय से •ुण्य•रिणाम और..... ऐसा नियम है या नहीं? 251
प्र –1079–80 पुण्य किसे कहते हैं? व्रत किसे कहते हैं? 269
प्र –1697 पुण्य पापकर्मों के आश्रव बन्ध में क्या हेतु है? 373
प्र –2606 पुण्यानुमोदना किसे कहते हैं? 543
प्र –102 पुण्य किसे कहते हैं? 15

प – तवर्ग

प्र –617–18 पतन का क्या कारण है? किन किन साधनों से पतन को प्राप्त होता है? 143
ॽ –810–11 ॽत्येक.....किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन....हैं? 210
प्र –1399 पतिसहित व्यभिचारिणी स्त्री किसे कहते हैं? 324
प्र –1400 पतिरहित व्यभिचारिणी स्त्री किसे कहते हैं? 324
प्र –294 पतिरहित स्त्री किसे कहते हैं? 62
प्र –295 पति सहित स्त्री किसे कहते हैं? 62
प्र –297 पति किसे कहते हैं? 62
ॽ –2415 •तित जीवों का ध्यान करने से मोक्षमार्ग.....सकता है? 499
प्र –318 पत्रिका के प्रचार में और टी.वी. के प्रचार में क्या अन्तर हैं? 69
प्र –996–97 प्रतिमा किसे कहते हैं? स्वामी कौन हैं? 256
प्र –2546 प्रतिमा किसे कहते हैं? 526
प्र –1293 प्रतिरूपक व्यवहार अतिचार दोष किसे कहते हैं? 303
प्र –1294 प्रतिरूपक व्यवहार दोष क्यों लगाया जाता है? 303
प्र –2462–63 प्रतिपात किसे कहते हैं? अप्रतिपात किसे कहते हैं? 508
प्र –2550 पति ने छठवीं प्रतिमा वाली पत्नी से कहा ...... हमें भी खिलाओ? 527
प्र –816–17 पात्र किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन[2] हैं? 212
प्र –1767–68 पात्र के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं? 384

ॄ —2109—10	•न्द्रह ॄकार के ॄमाद.....कौन करता है? नाम कौन कौन हैं?	444
प्र —713	पदाभिषेक किसे कहते हैं?	166
ॄ —1804	•ाद ॄक्षालन भक्ति किसे कहते हैं?	389
प्र —2392	पदस्थ धर्मध्यान किसे कहते हैं?	495
प्र —2393	पद किसे कहते हैं? मंत्र किसे कहते हैं?	595
प्र —99—101	पदार्थ किसे कहते हैं? कितने भेद? नाम कौन कौन हैं?	15
ॄ —489	•ानी छानने की विधि क्या है?	119
ॄ —748	•ानी से अभिषेक करना अहिंसा है ...... •ा• है?	176
प्र —2578	पानी भरना या जल का आरंभ किस प्रकार से होता है?	535
प्र —1507	पुद्गलपिण्ड आकाश में रहता है....... अतिसंग्रह दोष क्यों नहीं कहा?	339
प्र —1584	पुद्गलक्षेप अतिचार दोष किसे कहते हैं?	354
प्र —1049—50	पुनः राज्यनीति कितने प्रकार की होती है? नाम कौन2 हैं?	264
ॄ —2478	ृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान और....किस क्षेत्र के मुनियों के होता है?	511
ॄ —2458—59	ृथक्त्व वितर्क.....होता हैं या नहीं? अॄति•ात होता है या नहीं?	508
ॄ —2441	ृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान किसे कहते हैं?	505
ॄ —2457	ृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान के स्वामी कौन जीव हैं?	507
प्र —103	पाप किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन² हैं?	15
प्र —1087—89	पाप किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन² हैं?	270
प्र —1594	पापोपदेश अनर्थदण्ड किसे कहते हैं?	356
प्र —2605	पाप की अनुमोदना किसे कहते हैं?	543
प्र —23—24	प्रमाद किसे कहते हैं? प्रमादी किसे कहते हैं?	4
प्र —25—26	प्रमादियों के भेद कितने हैं? नाम कौन² हैं?	4
प्र —29	प्रमाद के कितने भेद हैं? नाम कौन² हैं?	4
प्र —48	प्रमाण किसे कहते हैं?	7
प्र —2101	प्रमाद कितने प्रकार का होता है?	443
प्र —1720—22	प्रमाद किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?	377
प्र—217	प्रमादकारक अभक्ष्य किसे कहते हैं?	40
प्र—2532	प्रमादकारक अभक्ष्य किसे कहते हैं?	522
प्र —606	प्रभावना अंग किसे कहते हैं?	139
प्र —1605	प्रमादचर्या अनर्थदण्ड किसे कहते हैं?	358

प्र —1606	प्रमादचर्या नाम का अनर्थदण्ड किस प्रकार से किया जाता है?	359
प्र —1010	ि••ासा शल्य किसे कहते हैं?	258
प्र —1009	प्रेम शल्य किसे कहते हैं?	258
प्र —2339	पाप पाँच हैं रौद्रध्यान चार ...बताकर चार बताना चाहिए?	482
प्र —2099	प्रमाद किसे कहते हैं?	443
प्र —2112	प्रमाद के 80 भेद किस प्रकार से होते हैं?	445
प्र —2128—29	प्रमाद का क्या फल है? किसको प्राप्त है?	446

<u>प — अन्तस्थ</u>

प्र —17	परमयथाख्यात चारित्र कैसै उत्पन्न होता है और कितने भेद हैं?	3
प्र —127—30	•रम्•रा किसे कहते हैं? •थवाद? •क्ष•ात? इनका...क्यों कहा?	18
प्र —287—88	परस्त्री किसे कहते हैं? क्वांरिकाओं को परस्त्री कह सकते हैं क्या? 61	
प्र —291	परस्त्री किसे कहते हैं?	61
प्र —306	परस्त्री व्यसन सेवन किसे कहते हैं? और इससे क्या हानि हैं?	64
प्र —342	परलोक भय किसे कहते हैं?	79
प्र —544	परदया किसे कहते हैं?	129
प्र —822	•रमेष्ठी •द में आर्यिका का अंतर्भाव न होने से ....अतः अ•ूज्य है?	212
प्र —965	•रम्•रागत धू• से •ूजा....कौनसा है? फल कौन सा प्राप्त होता है?	249
प्र —1829	परव्यपदेश नामक अतिचार किसे कहते हैं?	393
प्र —1830	परव्यपदेश नाम का अतिचार दोष किस प्रकार से लगता है?	393
प्र —2566	परगत नव कोटियां किस प्रकार से होती हैं?	532
प्र—2524	परनिमित्तक परगत नव कोटियां किस प्रकार से होती हैं?	520
प्र —1143	•र्याय धर्म किसे कहते हैं?	279
प्र —2032	प्रिय वचनों को........हो सकता है?	430
प्र —2426	•र्याय के चिन्तन .....•रसमय कहा?	501
प्र —1416	•रिग्रह और •रिग्रह •ा• किसे कहते हैं?	327
प्र —1417	•रिग्रह •ा• किस कारण से उत्•न्न होता हैं?	327
प्र —1418—19	परिग्रह पाप के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?	327
प्र —2290	परिग्रह किसे कहते हैं?	474
प्र —2291—94	परिग्रह पाप के कितने भेद हैं? नाम कौन² हैं? स्वामी कौन² नहीं हैं?	474
प्र —2308	परिग्रहानंद रौद्रध्यान किसे कहते हैं?	476

प्र –2312	परिग्रहानंद रौद्रध्यान के कितने भेद हैं?	476
प्र –2315	•रिग्रहानंद रौद्रध्यान •ाँचों इंद्रिय......प्रकार उत्पन्न होता हैं?	477
प्र –2593	परिग्रह त्यागाणुव्रत और परिग्रह त्याग प्रतिमा में क्या अंतर हैं?	539
प्र –1446	•रिग्रह •ा• है तो धनवानों को .....सर्वत्र सम्मान क्यों •ाता हैं?	331
प्र –1447	•रिग्रह •रिमाणाणुव्रत किसे कहते हैं?	332
प्र –1486–87	परिग्रह परिमाणाणुव्रत के अतिचार कितने हैं? नाम कौन कौन हैं?	336
प्र –1627	परिभोग वस्तु किसे कहते हैं?	362
प्र –1636–38	परिषह किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? किस....उत्पन्न होते हैं?	363
प्र–2594	परिग्रह त्याग प्रतिमा और परिग्रह त्याग महाव्रत में क्या अंतर हैं?	540
प्र –2596	•रिग्रह के 24 भेदों में से ....सद्भाव है?	540
प्र –2598	परिग्रह किसे कहते हैं?	542
प्र –150–51	प्रायोग्य लब्धि किसे कहते हैं? इस लब्धि का फल क्या हैं?	24
प्र–1237	परोपरोधाकरण भावना किसे कहते हैं?	294
प्र –1832–33	परप्रेरणा से दान दिया ..... दोष कहना होगा?	393
प्र –747	पुराकर्म किसे कहते हैं?	176
प्र –1306–07	पुरुष वेद किसे कहते हैं? कितने भेद हैं?	306
प्र –59–60	प्रवृत्ति धर्म किसे कहते हैं? स्वामी कौन कौन हैं?	9
प्र–1119	•ुलिस कोर्ट अ•राधियों को ....दोष नहीं हैं क्या?	275
प्र–1336	पूर्वरतानुस्मरण त्याग नाम की भावना किसे कहते हैं?	312
प्र –529	पेय आहार किसे कहते हैं?	126
प्र –2361–62	परीक्षा कहाँ तक...? आज्ञा कब मानना चाहिए?	486

प–उष्म

प्र –1128	•शुवाहन न कर कुली करने से.......तो मनुष्य है?	277
प्र –1497	•शुवाहन रखने में कष्ट है.....अधिक रख सकते हैं?	338
प्र –1031	•शु•क्षियों का, दास दासी ....कह सकते हैं क्या?	261
प्र –862	•ु•ष्• किसे कहते हैं?	225
प्र –865	•ु•ष्• कैसे होना चाहिए.......वनस्•ति के होना चाहिए?	226
प्र –867	•ु•ष्• सचित्त हैं क्योंकि...जाते हैं? अतः निर्दोष होने....चढ़ाना चाहिए?	227
प्र –868	पुष्प की जगह पीले चावलों में.....सकते हैं क्या?	227
प्र –872	पुष्प से पूजा करने का मंत्र कौनसा है .....बतलाने वाला हो?	229

प्र –871 पुष्प से पूजा करने पर क्या फल प्राप्त होता हैं? 229
प्र –870 पुष्प से पूजा करने का क्या उद्देश्य है? 229
प्र –1570 प्रेष्य प्रयोग अतिचार किसे कहते हैं? 352
प्र –1686 प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत किसे कहते हैं? 371
प्र –1689–90 प्रोषधोपवास ....करना चाहिए? किस प्रकार....व्यतीत करना चाहिए? 372
प्र –1691 प्रोषधोपवास के दिन तेल साबुन.....सकते हैं क्या? 372
प्र –1699–1700 प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत के अतिचारों के कितने भेद हैं? नाम कौन² हैं? 374
प्र –2516 प्रोषधोपवास प्रतिमा किसे कहते हैं? 519
प्र –2517–18 प्रोषध किसे कहते हैं? उपवास किसे कहते हैं? 519
प्र 2520 प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत और प्रोषधोपवास प्रतिमा में क्या अन्तर है? 519
प्र –1353–55 पौष्टिक रस किसे कहते हैं? भेद? नाम ?. 315
प्र –731 प्रश्नकर्ता से प्रश्न है आपके ..... अनेक स्त्रियां हैं? 170
प्र –733 प्रश्नकर्ता के समाधान पर ......समाधान होना चाहिए? 171
प्र –687–88 प्रस्तावना किसे कहते हैं? कितने.........? 160
प्र –2191 प्रसन्नता अप्रसन्नता तो .....कथन क्यों किया? 456
प्र –2269 प्रसन्नता मन में होती है फिर वचनगत.....क्यों कहा? 470
प्र –505 प्रासुक जल किसे कहते हैं? 122
प्र –506 प्रासुक जल को ही अचित्त ......हानि है बताओ? 123
प्र –511 प्रासुक जल और अचित्त जल में क्या अन्तर है? 124
प्र –1659 प्रज्ञा परीषह जय किसे कहते हैं? 367

<u>*फ– अन्तस्थ*</u>

प्र –968–70 फल किसे कहते हैं ? कब प्राप्त होता है ?...चढ़ाना चाहिए? 251
प्र –971–73 फलों से क्या करना चाहिए? किसकी करना चाहिए? क्यों ....चाहिए? 251
प्र–981 फल से पूजा करने का मंत्र कौन सा है? 252

<u>*ब –तवर्ग*</u>

प्र –1116 बंध अतिचार दोष किसे कहते हैं? 274
प्र –92 बंध तत्त्व किसे कहते हैं? 13
प्र –438–40 बोधि दुर्लभ भावना किसे कहते हैं? ....लाभ है? क्या हानि है? 101
प्र –1240–41 बिना पहचान के व्यक्ति को......ठहरा लेवे? घर में....कैसा नहीं? 295

ब —अन्तस्थ

प्र —1124	बालक बालिकाओं के नाक....यह श्रृंगार है दोष नहीं?	276
प्र —1342	बाल ब्रह्मचारी मुनियों के ....किया ही नहीं?	313

ब — उष्म

प्र —582	बर्तन मांजना झाडू लगाना..... इनको पूजा में क्यों कहा ?	135
प्र —873	ब्रह्मचर्य धर्म का घात वेदोदय से होता है ......फल को बताता है?	229
प्र —1370—72	ब्रह्मचर्याणुव्रत के....कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन2 हैं?	318
प्र —2569	ब्रह्मचर्याणुव्रत और ब्रह्मचर्य प्रतिमा में क्या अन्तर है?	533
प्र —2570	ब्रह्मचर्य प्रतिमा में और ब्रह्मचर्य महाव्रत में क्या अन्तर है?	533
प्र —1019	ब्रह्मचर्यव्रत के सम्बन्ध में चारों दोषों को किस प्रकार समझना चाहिए?	259
प्र —1320	ब्रह्मचर्याणुव्रत किसे कहते हैं?	308
प्र —1404	ब्रह्मचारिणी त्यागिनी साध्वी को व्यभिचारिणी स्त्री किसे कहते हैं?	324
प्र —386—87	बहिरंग अनायतन किसे कहते हैं? कितने भेद हैं?	91
प्र —1421	बहिरंग परिग्रह के भेद और नाम कौन कौन हैं?	327
प्र —2531	बहुविघात अभक्ष्य किसे कहते हैं?	522
प्र —216	बहुविघात अभक्ष्य किसे कहते हैं?	40
प्र —27	बाह्य प्रमादी किसे कहते हैं ?	4
प्र —560	बाह्य भक्ति किसे कहते हैं?	132
प्र —593	बाह्य में सम्यग्दर्शन के आठ......क्यों कहा?	137
प्र —771	बाह्य में निषेध कर ....अयोग्य है?	192
प्र —1425	बाह्य परिग्रह को कितने भागों में बांटा गया है?	328
प्र —1509	बाह्य वस्तुओं को देखकर आश्चर्य क्यों होता है?	339
प्र —1566	बाहिर से बुलाकर काम कराने को अतिचार दोष क्यों कहा?	350
प्र —32—33	बाह्य प्रमाद किसे कहते हैं? कितने भेद हैं?	5
प्र —546	बाह्य मंत्र तंत्र यंत्र औषधि आदि से .... हो सकता है ?	129

भ —कवर्ग

प्र —551—54	भक्ति किसे कहते हैं? क्यों की जाती है? किसकी? किसलिए?	131
प्र —639	भक्ति गुण किसे कहते हैं?	149
प्र —555—57	भक्ति कौन? कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?	131
प्र —1588	भक्तों को पत्र लिखने लिखवाने में क्या दोष हैं?	355

प्र –729 भगवान की प्रतिमाओं का....... कर सकती हैं या नहीं? 169

प्र –857 भगवान खाते नहीं .... प्रश्न किया? 224

प्र –321 भांग चरस गांजा ..... व्यसन क्यों कहा? 72

प्र –1738 भोग और उपभोग सामग्री...........किया जाता है? 380

प्र –2539 भोगोपभोगप्रमाणव्रत और अतिथिसंविभाग....में क्या अन्तर ....? 525

भ – चवर्ग

प्र –328 भोजनशाला किसे कहते हैं? 74

भ – टवर्ग

प्र –1442 भाण्ड किसे कहते हैं? 330

भ – तवर्ग

प्र –56 भेदरत्नत्रय या व्यवहार रत्नत्रय किसे कहते हैं? 9

प्र –1054 भेदनीति किसे कहते हैं? 264

भ – पवर्ग

प्र –645 भूमिका पूर्ण रूप से त्याग हो जाने पर रत्नत्रय की प्राप्ति कब होती है? 151

भ – अन्तस्थ

प्र –336–38 भय किसे कहते हैं? भेद? किस कारण से उत्पन्न होते हैं? 77

प्र –2645 भ्रष्टाचार शिथिलाचार किसे कहते हैं? 554

प्र –348 भयों से क्या हानि प्राप्त होती है? 80

प्र –1172–73 भयकषाय से क्या हानि? भय के त्याग से कौनसे गुण प्राप्त होते हैं? 284

प्र –1171 भय कषाय के त्याग के साथ साथ.....जाता है? 283

प्र–1891–94 भय किसे कहते हैं? कैसे...होता है?...प्रकार का है? नाम कौन[2] हैं? 406

प्र –453 भवनत्रिक और वैमानिक देव....... देवाधिदेव में क्या अन्तर है? 104

प्र –503 भविष्य या भाविनय की अपेक्षा सचित्त जल किसे कहते हैं? 122

प्र –2066 भविष्य किसे कहते हैं? 435

प्र –2412 भव्यअभव्य सम्यग्दृष्टि ......धर्मध्यान क्यों कहा? 499

प्र –2425 भवविचय धर्मध्यान किसे कहते हैं? 501

प्र –1883 भले ही उक्त जीव ....क्या हानि है? 403

प्र –191 भावमिथ्यात्व किसे कहते हैं? 35

प्र –211–212 भाव अभक्ष्य किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? 39

प्र –340–(1) भाव भय किसे कहते हैं? 78

प्र –1211	भाव चोरी पाप किसे कहते हैं?	289
प्र –684	भाव निक्षेप पूजा किसे कहते हैं?	160
प्र –799	भाव पूजा किसे कहते हैं?	204
प्र –900	भाव पूजा कौन कौन जीव करते हैं?	236
प्र –1025	भाव हिंसा किसे कहते हैं?	260
प्र –1304	भाव स्त्रीवेद किसे कहते हैं?	305
प्र –1308	भाव पुरुषवेद किसे कहते हैं?	306
प्र –1313	भाव नपुंसकवेद किसे कहते हैं?	306
प्र –559	भाव भक्ति किसे कहते हैं?	132
प्र –2259–60	भाव चौर्यानन्द रौद्रध्यान किसे कहते हैं? भाव चौर्यानंद....कहते हैं?	469
प्र –1099	भावना किसे कहते हैं? ये भावनायें क्या सभी व्रतों की होती हैं?	271
प्र –1533	भाव सम्बन्धी दिग्व्रतगुणव्रत किसे कहते हैं?	345
प्र –1874	भावविचिकित्सा अतिचार किसे कहते हैं?	401
प्र –742–44	भावी नय से वर्तमान मे तीर्थकर...... संशोधन किया कि ऐसा करो?	174
प्र –1168	भीरूत्व त्याग भावना किसे कहते हैं?	283

भ – क्ष

प्र –1245	भैक्ष्य शुद्धि भाव किसे कहते हैं?	296

म – कवर्ग

प्र –220	मूंगफली सौंठ हल्दी भी जमीकंद..........क्या आपत्ति है?	41
प्र –1618	मौखर्य अतिचार दोष किसे कहते हैं?	360

म–टवर्ग

प्र–351–54	मूढता किसे कहते हैं? भेद? हानि ? क्यों त्याग कराया?	81
प्र –367	मूढदृष्टि दोष किसे कहते हैं?	86
प्र –375	मूढ़दृष्टि दोष से क्या हानि है?	88

म – तवर्ग

मंगलाचरण

नमन करूं.......... दूर भगत दुर्गन्ध।

प्र –704	मंत्र संस्काराभिषेक या गर्भाभिषेक किसे कहते हैं?	165
प्र –1776–78	मध्यम पात्र किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन[2] हैं?	385
प्र –1779	मध्यम पात्र में उत्तम पात्र किसे कहते हैं?	385

प्र –1780	मध्यम पात्र में मध्यम पात्र किसे कहते हैं?	385
प्र –1781	मध्यम पात्र में जघन्य पात्र किसे कहते हैं?	385
प्र –2397	मंत्र सही है या गलत इसकी जानकारी कैसे हो?	496
प्र –418	मनुष्यों के शरीर की उत्पत्ति किस क्रम से होती है?	97
प्र –1807	मन शुद्धि भक्ति किसे कहते हैं?	389
प्र –1365	मनुष्य जानता हुआ भी यह कार्य क्यों करता हैं?	317
प्र –1494	मनुष्य को क्या वाहन कह सकते हैं?	337
• –2464	मनुष्य को केवलज्ञान ....सो यह कैसे ?	508
प्र –2394–95	मंत्र के कितने भेद हैं? किस मंत्र का जाप करना चाहिए?	496
प्र –477	मद्यत्याग नामक मूलगुण किसे कहते हैं?	114
• –819	मध्यम•ात्र किसे कहते हैं?	212
प्र –845	मन स्थिर नहीं, अर्थ समझ में आता नहीं...क्या प्रयोजन सिद्ध होगा?	221
प्र –2266	मनगत चौर्यानन्द रौद्रध्यान किसे कहते हैं?	470
• –2287	मन से चौर्यानन्द रौद्रध्यान किस तरह उत•न्न होता हैं?	473
प्र –1673	मनोयोग दुष्प्रणिधान अतिचार किसे कहते हैं?	369
प्र –1330	मनोहरांग किसे कहते हैं?	310
प्र –1102	मनोगुप्ति भावना किसे कहते हैं?	272
प्र –479	मधुत्याग नामक मूलगुण किसे कहते हैं?	114
प्र –2033	मानसिक अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान किसे कहते हैं?	430
प्र –1835	मात्सर्य अतिचार किसे कहते हैं?	394
प्र –1836–37	मात्सर्य को अतिचार क्यों कहा? यह दाता.....दोष क्यों लगाता है?	394
प्र –1007	मानशल्य किसे कहते हैं?	258
प्र –1286	मान कषाय किसे कहते हैं?	302
प्र –188–90	मिथ्यात्व किसे कहते हैं? भेद? नाम?	34
प्र –470	मिथ्या देव शास्त्र गुरु की आराधना से क्या फल प्राप्त होता हैं?	111
प्र –1004	मिथ्यात्व शल्य किसे कहते हैं?	257
प्र –1919	मित्रानुराग अतिचार दोष किसे कहते हैं?	410
प्र –1920	मित्र किसे कहते हैं?	411
प्र –1921	मित्रों के प्रति अनुराग करने को अतिचार दोष क्यों कहा?	411
• –2201	मृत्युभोज अशुभ होने से ...... क्योंकि दुखी परिवार का है?	458

प्र –1196	मिथ्योपदेश अतिचार किसे कहते हैं?	287
ॽ –2236	मिथ्यात्व गुणस्थान से ......भिन्न भिन्न ॽकार है क्या ?	465
ॽ –2341	मैथुनसेवन से ....कैसे उत•न्न हो सकता है?	483
प्र –35–37	मुनियों के और श्रावकों के .....? आवश्यक किसे कहते हैं?...भेद हैं?	5
प्र –63–64	मुनिधर्म किसे कहते हैं? श्रावक धर्म किसे कहते हैं?	10
प्र –463	मुनियों को किस स्थान पर कितने .....कब तक नहीं?	109
प्र –464	मुनिजन क्षेत्रों में अधिक समय तक या हमेशा रह सकते हैं या नहीं?	109
ॽ –647	मुनि साधु किसे कहते हैं?	152
ॽ –651	मुनिधर्म की ॽवृति अनादि काल से .... सादि काल से?	154
ॽ –1587	मुनिजन चातुर्मास के अन्तर्गत ...... •त्र व्यवहार कर सकते हैं क्या?	354
प्र –2070	मुनियों के निदान आर्तध्यान होता है या नहीं?	437
प्र –2071	मुनियों के निदान आर्तध्यान किस प्रकार से उत्पन्न होता है?	437
प्र –2235	मुनियों के निदान आर्तध्यान क्यों नहीं होता हैं?	465
प्र –643	मैत्री आदि चार भावनाओं से सहित हो ऐसा क्यों कहा?	150
ॽ –1062–63	मुनि किसे कहते हैं? मुनि किस.....नहीं होना चाहिए?	266
प्र –1775	मुनिजन केवल आत्म कल्याण में लगे रहते हैं इसमें क्या उदाहरण हैं?	385
प्र –79	मूर्तिक किसे कहते हैं? और अमूर्तिक किसे कहते हैं?	12
प्र –643	मैत्री आदि भावनाओं से सहित हो ऐसा क्यो कहा?	150
प्र– 1070	मुनि पक्षपात और पंथवाद का त्यागी होना चाहिए ऐसा क्यों कहा?	268

<u>म – अन्तस्थ</u>

प्र –1571	मर्यादा के बाहर भेजने को कार्य कराने को अतिचार दोष क्यों कहा?	352
प्र –1838–40	मुर्दा किसे कहते हैं? कितने प्रकार के? नाम कौन कौन हैं?	395
प्र –346	मरण भय किसे कहते हैं?	79
प्र –474–76	मूलगुण किसे कहते हैं? भेद? नाम कौन कौन हैं?	113
प्र –725	मूलोत्तर गुणों का पालन करने वाल....स्थापना क्यों करते कराते हैं?	167
ॽ –726–27	मूलगुणों का.....कर सकते हैं?.....•ालन नहीं करना चाहिए?	168
ॽ –168	मलेच्छाचरण और मलेच्छ खण्डोत•न्न....अयोग्य हैं ऐसा क्यों कहा?	29
ॽ –2253	मालिक के सामने या .... •ा• है या नहीं?	468
प्र –1208	मालिक की वस्तु का अपहरण करना....चोरी पाप न कहलाया?	288
प्र –1657	मल परीषह जय किसे कहते हैं?	366

प्र –1911 मरणाशंसा अतिचार किसे कहते हैं? 409
प्र –1003 माया शल्य किसे कहते हैं? 257
प्र –1166 माया कषाय और लोभ से क्या हानि ? इन दोनों के त्याग का लाभ? 283

<u>*म – उष्म*</u>

प्र –831 मिश्र पूजा किसे कहते हैं? 216
प्र –1960–61 मिश्रध्यान किसे कहते हैं? इसके स्वामी कौन कौन जीव हैं? 417
प्र–1966–67 मिश्रध्यान का दूसरा नाम क्या है? इसके स्वामी कौन हैं? 417
प्र –1443 मिश्र परिग्रह किसे कहते हैं? 330
प्र –877 मिष्ठान्न आहार नैवेद्य किसे कहते हैं? 230
प्र –892 मिष्ठान्न •क्वान्नादि की जगह......चढ़ा सकते हैं क्या? 234
प्र –2194 मृषानन्द रौद्रध्यान किसे कहते हैं? 457
प्र –2195–96 मृषानन्द रौद्रध्यान के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं? 457
प्र –2288 मृषानन्द रौद्रध्यान और चौर्यानन्द रौद्रध्यान म क्या अन्तर है? 473
• –2193 मृषावचन झूठवचन किसे कहते हैं? 456
प्र –236–38 मांस किसे कहते हैं? कैसे उत्पन्न होता है? किसके उत्पन्न होता है? 46
प्र –239–42 मांस खाना व्यसन? कौन खाता है? कहाँ के खाते हैं? कैसे खाते हैं? 46
• –243 मांसाहारी मनुष्य ....इसलिए कोई दोष नही है? 47
प्र –244 मांसाहारी कहते हैं ..... इनको मारने से मनुष्यों की रक्षा होती है? 47
प्र –245 मांसाहारी कहते हैं कि मांस ताकत .....खाने योग्य है ? 48
प्र –478 मांस त्याग नामक मूलगुण किसे कहते हैं? 114
• –498 मुसलमान खटीकादि ....बदनाम क्यों नहीं? 121
प्र –1074–75 महाव्रत किसे कहते हैं? इसके स्वामी कौन कौन हैं? 269
• –1536 महाव्रत किसे कहते हैं? 346
प्र –709 महामस्तकाभिषेक किसे कहते हैं? 166
• –864 महा•राणादि ग्रन्थों में •ढ़ा है...... कहा ा सिखाया कैसे बताया? 226
• –2468 मोहनीयकर्म का क्षय किससे होता है? 509

<u>*म – क्ष*</u>

• –495–96 मोक्षमार्गी श्रावक .... कैसा •योग नहीं करते? 121
प्र –95 मोक्ष तत्त्व किसे कहते हैं ? 14
प्र –2357–58 मोक्षमार्गी श्रद्धानी और ज्ञानी जीव कितने प्रकार के हैं ? नाम ....? 486

य– स्वर

प्र –454	ये आप्त देव किस प्रकार से भव्यजीवों को मार्गदर्शन देते हैं?	105

य – कवर्ग

प्र –921–22	युगलजी कृत दी•क ....मंत्र कौनसा है? उसका फल क्या है?	240
प्र –982	युगलजी कृत फल का मंत्र कौन सा है?	253
प्र –983	युगलजी ने पूजा के मंत्र स्वयं नहीं बनाये हैं ....कवि का नहीं?	253
प्र –1560	योगों के द्वारा आत्मप्रदेशों में ..... अन्तर पड़ता है?	349
प्र –2451	योग किसे कहते हैं?	507
प्र –2452–53	योग के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?	507
प्र –2453–(1)	योग संक्रान्ति किसे कहते हैं?	507
प्र –389	ये कुदेव हैं, यह कैसे पहचान हो?	92
प्र –2434	योग्यता किसे कहते हैं?	504

य – चवर्ग

प्र –1653	याचना परीषह जय किसे कहते हैं?	365
प्र –2108	ये जीव प्रमाद त्याग करते हैं इसका खुलासा करो?	444

य – तवर्ग

प्र –51	यदि निश्चय नय का विषय अखण्ड....तब नय क्यों कहा?	7
प्र –117	यदि लब्धि का यह अर्थ है तो फिर समस्त....प्रसंग आता है?	17
प्र –176	यदि अज्ञान से कर्मबंध होता है तो.....हो सकती है?	32
प्र –181	यदि ऐसा है तो प्रश्नोत्तर 178 के साथ विरोध आता है?	33
प्र –508	यदि ऐसा है तो अचित्त जल को मुर्दा कहना चाहिए?	123
प्र –660	यदि अविरत सम्यग्दृष्टि जीव के....संयमी कहना चाहिए?	156
प्र –728	यदि कोई त्यागीव्रती अ•ने में .... तो क्या दोष हैं?	169
प्र –775	यदि सतत हमारे मन में ......निर्जरा कैसे होती है?	193
प्र –814	यदि हरे या सूखे फलादि सचित्त.....को खिला सकते हैं?	211
प्र –826	यदि पात्र में अंतर हैं तो फल में अन्तर अवश्य होना चाहिए?	215
प्र –840	यदि कवि के ....ऐसा क्यों कहा?	218
प्र –891	यदि कहो कि भगवान तो खाते..... नहीं किसके लिए चढ़ाना?	234
प्र –1027	यद्यि• भोजन शुद्ध है तो भी इतने ...यह कैसे सम्भव हैं?	260
प्र –1037	यदि जो जीव सम्यग्दृष्टि ......मन्दिर कैसे बनवायेंगे?	263

• –1065	यदि ऐसा है ......क्या साधू का?	266
• –1445	यदि ये दासादि .... क्यों कहा जाता हैं?	331
• –1118	यदि •शुओं को....... अतः बांधना योग्य है?	275
प्र –1125	यदि बालक बालिकाओं के......भी आपत्ति आती हैं?	276
प्र –1327	यदि अकेला या अकेली इस भावना का...आपत्ति है?	309
• –1328	यदि ऐसा है तो गृहस्थ कभी भी.......अनुमति न देगा?	310
• –1341	यदि •ूर्वभुक्त ....किया जायेगा?	313
प्र –1375	यदि गृहस्थ ब्रह्मचर्याणुव्रती .....क्या हानि है?	318
• –1518	यदि •त्येक कषाय का ...... दोनों समान हुए?	342
प्र –1694	यदि स्नान आदि किये बिना ही ....क्या दोष होगा?	373
• –1695	यदि स्वास्थ्य खराब है ....कर सकते हैं?	373
• –1834	यदि •रव्य•देश ....दोष कहलाया ?	394
• –1853	यथावत् वस्तु स्वरू• की........ लेना चाहिए?	397
प्र –1885	यदि इन राजनेताओं को ....लाना आवश्यक है?	404
प्र –1868	यदि मोक्ष के साधनों को भोग का साधन बना लिया तो क्या दोष है?	400
प्र –1899	यदि ये दोनों अतिचार .... अलग है?	407
• –1918	यदि मरण की इच्छा नहीं हैं.........क्यों करता है?	410
• –1922	यदि ऐसा है तो मित्रानुराग......दोषदायक नहीं?	411
• –2042	यदि ऐसा है तो शारीरिक ..... आर्तध्यान कहो?	431
प्र –2160	यदि गृहस्थ घर में रह कर भी ......क्या हानि है?	451
• –2192	यदि केवल भावेंद्रिय....•ाप्त होता है?	456
• –2407	यदि अ•नी आत्मा •ूर्णरू• से अशुद्ध ....नहीं बन सकता है?	498
• –2561	यदि दोष है तो •हले भी स्वयंवर........दोष होना चाहिए?	530
प्र –2640	यदि आगम पर विश्वास है तो स्पर्शशूद्र को दीक्षा देना चाहिए?	553
प्र –1339	याद आना जानना ....सब कुछ जानता है?	312
प्र –1340	याद आना और याद करना इन दोनों में क्या अंतर है?	313
• – 504	योनिभूत जीव को भी.......क्या आ•त्ति है?	122
प्र – 1055	ये नीतियां केवल राजाओं की होती है या किसी और की भी होती हैं?	265
प्र – 246	यदि मांसाहार योग्य नहीं है तो ईश्वर ने ब्रह्मा ने इनकी रचना क्यों की?	48

य–पवर्ग

प्र –1734	यम किसे कहते हैं?	379
प्र –875	ये पूजायें किसने बनाईं? क्यों बनाईं?	230
प्र –985	ये पूजा के मंत्र अति प्राचीन भी नहीं .....अतः अप्रमाण हैं?	254
प्र –1537	ये महाव्रत कैसे उत•न्न होते हैं?	346

य –अन्तस्थ

प्र –706	युवराजपदाभिषेक किसे कहते हैं?	165
प्र –262–63	यौवन किसे कहते हैं? यह यौवन किस किस गति के जीवों में होता हैं?	53

य –उष्म

प्र –609	यह जीव धर्मायतनों में संदेह को किस कारण से प्राप्त हो जाता हैं?	141
प्र –610	यह जीव कांक्षा दोष को कैसे प्राप्त होता है?	141
प्र –612	यह जीव मूढदृष्टिपने को किस प्रकार से प्राप्त होता है?	142
प्र –613–14	यह जीव अनु•गूहन दोष .....फल •ाता है?	142
प्र – 615–16	यह जीव अस्थितिकरण दोष को ....? किस.....•ाप्त होता हैं?	142
प्र –801	यह द्रव्य पूजा गृहस्थों के होती है....क्यों किया?	205
प्र –563	यह भक्ति किस हेतु से करना चाहिए?	132
प्र –898	यह क्षुधा रोग किस कारण से होता है?	235
प्र –945	यह कैसे जानकारी हो कि.....दो प्रकार के होते हैं?	242
प्र –1288–89	यह मानोन्मान नाम का ....क्या ऐसा है?	302
प्र –1291–92	यह अतिचार दोष ....? या •तिमारहित....लगता है?	303
प्र –1296–97	यह दोष मुनियों में क्यों आया? किस कारण से आया?	304
प्र –1337–38	यह भोगवासना ....के नहीं? जिसने .....याद करेगा?	312
प्र –1382	यह अनंगक्रीड़ातिचार ......नहीं लगता है?	320
प्र –1383	यह अतिचार दोष क्यों लगता है?	320
प्र –1449–50	यह •रिग्रह •माणाणुव्रत कितनी कोटियों.....? त्याग किया जाता है?	332
प्र –1511	यह विस्मय नाम का अतिचार गृहस्थों....को भी लगता है?	340
प्र –1515	यह जीव जानता हुआ भी अतिलोभ को क्यों प्राप्त होता है?	342
प्र –1521	यह दोष गृहस्थों के सम्भव है किन्तु त्यागियों के कैसे सम्भव है?	343
प्र –1559	यह व्रत...किया जाता है? जबकि दिग्व्रत स्वीकार कर लिया गया है?	349
प्र –1577	यह शब्दानुपात अतिचार दोष क्यों लगाया जाता है?	353

प्र –1599	यह मूर्ख प्राणी आत्महत्या क्यों कर लेता हैं?	357
प्र –1582	यह अतिचार दोष अलग से क्यों कहा?	354
प्र –1585–86	यह देशव्रती श्रावक .....? कर सकते हैं? पत्र डाल सकते हैं?	354
प्र –1617	यह अतिचार कब उत्पन्न होता है?	360
प्र –1704–05	यह दोष क्यों नहीं लगता है? क्यों लगता है?	374
प्र –1711	यह कैसे मालूम हो कि बालिकाओं....देखा जाता है?	375
प्र –1068	यह मुनि शिथिलाचारी ....किया बताओ?	267
प्र –1826–27	यह अतिचार दोष........................ से लगता है? यह दोष क्यों कहा?	392
प्र –1831	यह अतिचार दोष क्यों लगता है?	393
प्र –1847	यह व्रती प्रतिमाधारी दोष क्यों लगाता है?	396
प्र –1876	यह जुगुप्सा अतिचार किस कारण से उत्पन्न होता है?	401
प्र –2313	यह संसारी असंयमी प्राणी..........से करता है?	476
प्र –2074	ये स्पर्शेंद्रिय के आठ विषय मनोज्ञ हैं या अमनोज्ञ?	438
प्र –2391	यह कैसे जाना कि संस्थान विचय.....के नहीं होता है?	495
प्र –2430	यह धर्मध्यान कहाँ और किन जीवों के होता है?	502
प्र –2431	यह धर्मध्यान निर्वृत्यपर्याप्तक जीवों के कैसे हो सकता है?	503
प्र –2433	यह धर्मध्यान समस्त कालों में होता है.....कालों में होता है?	504
प्र –2614	यह उद्देश्य दोष केवल आहार के......सभी दानों में?	544
प्र –111–12	यहाँ किस धर्म से प्रयोजन हैं? धर्म क्यों करना?	16
प्र –161	यहाँ पर आदि शब्द से किसको ग्रहण करना चाहिए?	27
प्र –206–07	यहाँ पर किस अन्याय का त्याग कराया है? एक का या दोनों का?	38
प्र –521–23	यहाँ किस आहार से प्रयोजन है? केवलाहार के भेद? नाम?	125
प्र –692	यहाँ कौन सी प्रस्तावना हेय है और कौनसी प्रस्तावना उपादेय है?	161
प्र –721	यहाँ पर अनेक प्रकार के अभिषेकों में ....प्रयोजन है?	167
प्र –934	यहाँ पूजा पाठ में किस अज्ञान के विनाश .....याचना की है?	241
प्र –951–52	यहाँ पर किस अज्ञान से प्रयोजन है?...मिथ्यात्व से प्रयोजन है?	243
प्र –1131	यहाँ निरोध का अर्थ अन्नपानी का अभाव ऐसा क्यों नहीं करते?	278
प्र –1257–58	यहाँ पर सधर्म के .....प्रयोजन है? .... या दोनों से?	298
प्र –1334	यहाँ प्रसंग तो गृहस्थ का.....आर्यिकाओं का कथन क्यों ले आये?	311
प्र –2601	यहाँ केवल अनुमति का त्याग कराया है......ऐसा है क्या?	542

प्र –1980	यहाँ किस इष्ट से प्रयोजन है?	419
प्र –1981	यहाँ लोकोत्तर इष्ट से प्रयोजन क्यों नहीं है?	419
	र – कवर्ग	
प्र –1455	राग किसे कहते हैं?	333
प्र –1655	रोग परीषह जय किसे कहते हैं?	366
	र – चवर्ग	
प्र –707	राज्याभिषेक किसे कहते हैं?	165
प्र –1047	राज्यनीति किसे कहते हैं?	264
प्र –1273–74	राज्यनीति किसे कहते हैं? देशराजा किसे कहते हैं?	300
प्र –1889	राजमंच किस प्रकार का होना चाहिए और कहाँ पर होना चाहिए?	405
प्र –626–27	राजमार्ग किसे कहते हैं? अपवाद मार्ग किसे कहते हैं?	147
	र – टवर्ग	
प्र –883	रोटी दाल भातादि .... उत्तर भारत की नहीं?	231
	र – तवर्ग	
प्र –14–15	रत्नत्रयधर्म किसे...? स्वामी कौन कौन जीव हैं?	2
प्र –16	रत्नत्रय धर्म की उत्पत्ति? स्वामी कौन से जीव हैं?	2
प्र–157	रत्नत्रय धर्म को प्राप्त करने के लिए.....ऐसा क्यों कहा?	26
प्र –158	रत्नत्रयधर्म को प्राप्त करने ....ऐसा क्यों कहा?	26
प्र –169	रत्नत्रयधर्म को प्राप्त करने वाला भव्य जीव हो ऐसा क्यों कहा?	29
प्र –170	रत्नत्रयधर्म को प्राप्त करने वाला सैनी पंचेंद्रिय जीव हो ऐसा क्यों कहा?	30
प्र –171	रत्नत्रयधर्म को प्राप्त करने लिए पर्याप्तक जीव हो ऐसा क्यों कहा?	30
प्र –172	रत्नत्रयधर्म को प्राप्त करने वाला मिथ्यादृष्टि जीव हो ऐसा क्यों कहा?	30
प्र –173	रत्नत्रयधर्म को प्राप्त........ऐसा क्यों कहा?	30
प्र –175	रत्नत्रयधर्म को प्राप्त करते समय ..... ऐसा क्यों कहा?	31
प्र –182–83	रत्नत्रयधर्म को प्राप्त करने के लिए कितने कारण हैं? नाम कौन[2] हैं?	33
प्र –185–86	रत्नत्रयधर्म को प्राप्त....कारण कौन[2] हैं? कौन कहाँ पर होता है?	34
प्र –530	रात्रि किसे कहते हैं?	126
प्र –531	रात्रि भोजन किसे कहते हैं?	126
प्र –532–34	रात्रिभोजन त्याग किसे? क्यों कराया? क्या दोष है?	126
प्र –646	रत्नत्रय युक्त श्रावक .....बताना चाहिए?	152

प्र –2541–42 रात्रि किसे कहते हैं? या कितने काल को रात्रि कहते हैं? 525
प्र –2547 रात्रिभोजन त्याग मूलगुण में क्या.....में क्या अन्तर है? 526
प्र –2540 रात्रिभोजन त्याग ......क्यों कहते हैं? 525
प्र –2551 रात्रिभोजन न कराये सो ठीक है ....खिला सकती है? 527
प्र –2161 रौद्रध्यान किसे कहते हैं? 451
• –2162 रौद्रध्यान कैसे उत्•न्न होता है? 451
प्र –2130–31 रौद्रध्यान के कितने भेद हैं? नाम कौन² हैं? 446
प्र –2250 रौद्रध्यान क्या मुनियों के होता है या नहीं? 468

र – पवर्ग

प्र –1581 रूपानुपात अतिचार किसे कहते हैं? 354
• –1583 रू•ानु•ात नामक अतिचार को.....सकते हैं क्या? 354
प्र –2411 रूपस्थ धर्मध्यान किसे कहते हैं? 499
• –2417 रू•ातीत धर्मध्यान किसे कहते हैं? 500
• –2418 रू•ातीत धर्मध्यान में निश्चयनय....सकते हैं क्या? 500
प्र –2419 रूपातीत धर्मध्यान में अरहन्तों का ध्यान कर सकते हैं क्या? 500

र – उष्म

प्र –1463 रसनेंद्रिय किसे कहते हैं? 334
प्र –1464–65 रसनेंद्रिय के विषय कितने प्रकार के होते हैं? नाम कौन कौन हैं? 334
प्र –1466 रसनेंद्रिय के विषयों के प्राप्त होने पर क्या करना चाहिए? 334
• –1467 रसनेंद्रिय के विषयों के •ाप्त......करना चाहिए? 334
प्र –1984 रसनेंद्रिय जन्य आर्तध्यान किसे कहते हैं? 420
प्र –1985 रसनेंद्रिय जन्य इष्ट वियोगज आर्तध्यान कैसे उत्पन्न होता है? 420
प्र –2015 रसनेंद्रिय जन्य अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान किसे कहते हैं? 426
प्र –2016 रसनेंद्रिय जन्य अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान किस प्रकार उत्पन्न होता है? 426
प्र –2045 रसनेंद्रिय जन्य वेदना आर्तध्यान किसे कहते हैं? 432
प्र –2046 रसनेंद्रिय जन्य वेदना आर्तध्यान के कितने भेद हैं? 432
प्र –2077 रसनेंद्रिय जन्य निदान आर्तध्यान किसे कहते हैं? 439
प्र –2080 रसनेंद्रिय जन्य निदान आर्तध्यान कितने प्रकार का है? 439
प्र –2173 रसनेंद्रिय जन्य रौद्रध्यान किसे कहते हैं? 452
प्र –2174 रसनेंद्रिय जन्य रौद्रध्यान के कितने भेद हैं? 453

प्र —2175 रसनेंद्रिय जन्य रौद्रध्यान के बारह भेद कौन से हैं? 453
प्र —2176 रसनेंद्रिय जन्य रौद्रध्यान कैसे उत्पन्न होता है? 453
प्र —2177 रसनेंद्रिय जन्य रौद्रध्यान के स्वामी कौन जीव हैं? 453
प्र —2210 रसनेंद्रिय जन्य मृषानंद रौद्रध्यान किसे कहते हैं? 460
प्र —2211 रसनेंद्रिय जन्य मृषानंद रौद्रध्यान कैसे उत्पन्न होता है? 461
प्र —2213 रसनेंद्रिय जन्य मृषानंद रौद्रध्यान के कितने भेद हैं? 461
प्र —2278 रसनेंद्रिय जन्य चौर्यानंद रौद्रध्यान किसे कहते हैं? 471
प्र —2279 रसनेंद्रिय जन्य चौर्यानंद रौद्रध्यान के कितने भेद हैं? 471
प्र —2323 रसनेंद्रिय जन्य परिग्रहानंद रौद्रध्यान किसे कहते हैं? 479
• —2324—26 रसनेंद्रिय जन्य •रिग्रहानंद ......? कैसे उत•न्न? कितने भेद हैं? 479
प्र —1201 रहोभ्याख्यान और साकारमंत्र भेद अतिचार मे क्या अंतर है? 288
प्र —1197 रहोभ्याख्यान अतिचार दोष किसे कहते हैं ? 287

ल — स्वर

प्र —2544 लाईट के प्रकाश को दिन कह सकते हैं क्या? 526

ल — कवर्ग

प्र —202 लौकिक अन्याय किसे कहते हैं? 37
• —203 लौकिक अन्याय से क्या हानि है? 37
प्र —204 लोकोत्तर अन्याय किसे कहते हैं? 38
प्र —205 लोकोत्तर अन्याय से क्या हानि है? 38
प्र —316 लौकिक पत्रिकायें पढ़ना इसको व्यसन क्यों कहा? 68
प्र —331 लोकनिंदा से भयभीत हो ऐसा क्यों कहा? 76
प्र —357 लोकमूढ़ता किसे कहते हैं? 82
• —393 लौकिक •त्रिकायें........ कुशास्त्र हैं या नहीं? 92
प्र —436 लोक भावना किसे कहते हैं? 100
प्र —607 लोकव्यवहार में इन अंगों का पालन.......आती हैं? 140
प्र —1207 लौकिक चोरी पाप किसे कहते हैं? 288
प्र —1209 लोकोत्तर चोरी पाप किसे कहते हैं? 289
प्र —869 लौंग फल है क्योंकि फल की जगह चढ़ाते हैं सो ठीक है ना? 228
प्र —2604 लौकिक कार्यों का तथा....अनुमति का त्याग कराया है? 543
प्र —1978—79 लौकिक इष्ट किसे कहते हैं? अलौकिक... इष्ट किसे कहते हैं? 418

प्र –2388 लोकाकाश के आकार आत्मा के.....फल प्राप्त होता है? 494
प्र –1101 लौकिक वचनों के त्याग से अहिंसाव्रत का पालन कैसे हो सकता है? 271

<u>*ल–पवर्ग*</u>

प्र –115–16 लब्धि किसे कहते हैं? किसकी प्राप्ति को लब्धि कहते हैं? 17
प्र –118–20 लब्धि के भेद? नाम? काल? 17
प्र –1008 लोभ शल्य किसे कहते हैं? 258
प्र –1164 लोभ कषाय त्याग भावना किसे कहते हैं? 282
प्र –1897 लोभ किसे कहते हैं? 406

<u>*ल – उष्म*</u>

प्र –526 लेह्याहार किसे कहते हैं ? 125
प्र –527 लेह्याहार की जगह लेपाहार पढ़ा जाय या कहा जाय तो क्या आपत्ति है? 125
प्र –1435 लोहा, तांबा, पीतल आदि को परिग्रह क्यों नहीं कहा है? 329

<u>व–कवर्ग</u>

प्र –899 वे कौन से जीव हैं कि जिनको यह रोग नहीं....होता है? 236
प्र –2115–17 विकथा किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन^{2} हैं? 445
प्र –2526 वे कौन सी वस्तुयें हैं जो सचित्त को अचित्त कर ग्रहण की जाती हैं? 521
प्र –958(ब) विकार युक्त होने के कारण उसे पति सहित विवाहित कहना चाहिए? 246

<u>*व – चवर्ग*</u>

प्र –648 वचन से मार्गदर्शन क्यों नहीं देते? 152
प्र –1100 वचन गुप्ति किसे कहते हैं? 271
प्र –1154 वचन तो कान से सुने जाते हैं फिर....... आपने ऐसा क्यों कहा? 281
प्र –1675 वचनयोग दुष्प्रणिधान अतिचार किसे कहते हैं? 370
• –1808 वचनशुद्धि भक्ति किसे कहते हैं? 389
प्र –2219 वचन तो मुख से बोले जाते हैं......क्यों कहा? 462
प्र –2267 वचनगत चौर्यानंद रौद्रध्यान किसे कहते हैं? 470
प्र –568 वाचना स्वाध्याय किसे कहते हैं? 133
प्र –366 विचिकित्सा दोष किसे कहते हैं? 85
• –374 विचिकित्सा दोष से क्या हानि है? 88
प्र –611 विचिकित्सा दोष को यह जीव कैसे प्राप्त होता है? 141
प्र –1871 विचिकित्सा अतिचार किसे कहते हैं? 400

प्र –1872–73	विचिकित्सा अतिचार के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?	401
प्र –2442–44	वीचार किसे कहते हैं? वितर्क किसे कहते हैं? पृथक्त्व किसे....?	505

<u>*व – टवर्ग*</u>

प्र –1384	विटत्व अतिचार दोष किसे कहते हैं?	320
प्र –1385	विटत्ववचन क्यों बोले जाते हैं?	320
प्र –1390	विटत्ववचन के स्वामी कौन से जीव हैं......बोल सकते हैं क्या?	321
प्र –1391	विटत्ववचनों के प्रयोग से क्या हानि है?	321

<u>*व – तवर्ग*</u>

प्र –999	व्रतप्रतिमा किसे कहते हैं?	257
प्र –1060–61	व्रतों के भेद कितने हैं? किस व्रत का कौन सा जीव स्वामी है?	266
प्र –1090	व्रत और अव्रत का क्या फल है?	270
प्र –1555	व्रती लोग पानी के जहाजों से समुद्र.......हैं क्या?	348
प्र –1556–57	व्रती प्रतिमाधारी......या नहीं? क्या हानि है?	348
प्र –1652	वध परीषह जय किसे कहते हैं?	365
प्र –605	वात्सल्य अंग किसे कहते हैं?	139
प्र –1402	विधवा व्यभिचारिणी स्त्री किसे कहते हैं?	324
प्र –1800–01	विधि किसे कहते हैं? कितने प्रकार की होती है?	389
प्र –1120	वध अतिचार किसे कहते हैं?	276
प्र –1121–22	वध का अर्थ जान.....नहीं करते? ऐसा स्वीकार करना चाहिए?	276
प्र –289	विधवा किसे कहते हैं?	61
प्र –824	वीतरागी मुनि भी दाता और....नहीं? वीतरागी मुनियों के कितने भेद हैं?	213
प्र –343	वेदना भय किसे कहते हैं?	79
प्र –2034–35	वेदना किसे कहते हैं? किस कारण से उत्पन्न होती है?	430
प्र –2036	वेदना आर्तध्यान किसे कहते हैं?	430
प्र –2037	वेदना आर्तध्यान किसमें उत्पन्न होता है?	431
प्र –2038	वेदना आर्तध्यान किन किन साधनों से उत्पन्न होता है?	431
प्र –2248	वेदना आर्तध्यान भेद विज्ञानी महाव्रती दिगम्बर मुनियों के कैसे संभव है?	467
प्र –773	वेदी मे मूर्ति विराजमान है......लाना क्या न्याय है?	192
प्र –197	वैनयिक मिथ्यात्व किसे कहते हैं?	36

व —पवर्ग

प्र —194	विपरीत मिथ्यात्व किसे कहते हैं?	35
प्र —2380—81	वि•ाक किसे कहते हैं? वि•ाकविचय धर्मध्यान किसे कहते हैं?	491
प्र —2382—83	विपाकविचय धर्मध्यान कौन करता है? कौन नहीं करता है?	491
प्र —2384	वि•ाकविचय धर्मध्यान और निदान आर्तध्यान में क्या अंतर है?	491
प्र —1392	विपुलतृषा अतिचार किसे कहते हैं?	322
प्र —1393	वि•ुलतृषा नामक....या वचन से या काय से है?	322
प्र —1157—58	वे भावनायें कितनी हैं? उनके नाम कौन² हैं?	281
प्र —1232—33	विमोचितावास किसे कहते हैं? उसमें क्या करना चाहिए?	293

व — अन्तस्थ

प्र —54	व्यवहार धर्म किसे कहते हैं?	8
प्र —2446	व्यंजनसंक्रांति किसे कहते हैं?	505
प्र —222—224	व्यसन किसे कहते हैं? कितने भेद...सेवन से क्या फल....?	42
प्र —1015	व्यतिक्रम दोष किसे कहते हैं?	258
प्र —1045	व्यवहार धर्मनीति किसे कहते हैं?	263
प्र —1085	व्यतिरेक उदाहरण किसे कहते हैं?	270
प्र —1216	व्या•ारी से या अ•राधियों से.......यह चोरी है या नहीं?	290
प्र —1290	व्यापारी तो अनेक प्रकार के होते हैं....अधिकारी हैं या नहीं?	303
प्र — 1415	व्यभिचारिणी स्त्रियों का....वेश्याओं को क्यों ग्रहण नहीं किया?	326
प्र —2500	व्यु•रतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान किसे कहते हैं?	516
प्र —2585	व्यापार करने को आरम्भी हिंसा में .....उद्योगी हिंसा होती है क्या?	537
प्र —1140	व्यय किसे कहते हैं?	279
प्र —502	वर्तमान नय की अपेक्षा से सचित्त जल किसे कहते हैं?	122
प्र —2065—66	वर्तमान काल किसे कहते हैं? भविश्य काल किसे कहते हैं?	335
प्र —2406	वर्तमान काल में अपनी आत्मा उक्त तीन .....किया जा सके?	497
प्र —1086	विरति किसे कहते हैं?	270
प्र —2424	विराग विचय धर्मध्यान किसे कहते हैं?	501
प्र —860	विरुद्ध मंत्र कौनसा है जो धारण....करने योग्य नहीं?	225
प्र —1267	विरुद्धराज्यातिक्रम अतिचार दोष किसे कहते हैं?	300
प्र —1056	विरोधी हिंसा किसे कहते हैं?	265

प्र –2153–54	विरोधी हिंसा किसे कहते हैं? ....रौद्रध्यान किसे कहते हैं?	450
प्र –290	विवाहित परस्त्री किसे कहते हैं?	61
प्र –298	विवाहित पुत्री को परस्त्री कह सकते हैं क्या?	62
प्र –299	विवाहित बहिन को परस्त्री कह सकते हैं क्या?	62
प्र –1388	विवाहित गृहस्थ दम्पत्ति विटत्व भंड वचन तो बोल सकते हैं क्या?	321
प्र –1249–50	वैर और विरोध में क्या अंतर है? वैर विरोध करने से क्या हानि है?	297

<u>*व – उष्म*</u>

प्र –258–61	वेश्या किसे?....कैसे बनती है?..जाति कुल? क्या काम करती है?	53
प्र –264–65	वेश्या सेवन व्यसन किसे कहते हैं? हानि?	54
प्र –277	वेश्याओं के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए?	57
प्र –308	वेश्यासेवन व्यसन और •रस्त्री.....?	65
प्र –1407	वेश्या और परस्त्री में क्या अंतर है.....?	325
प्र – 2557	वेश्या ...या वेश्यागामी बनने का क्या कारण है?	529
प्र–1956–57	विशेष की अपेक्षा शुद्धध्यान किसे कहते हैं? स्वामी कौन? ...हैं?	417
प्र –123–24	विशुद्धिलब्धि किसे कहते हैं? इसके स्वामी कौन हैं?	18
प्र –923	विशेषतया वह क्या अन्तर है जो कहा गया है?	240
प्र –1343	वृष्येष्टरस त्याग भावना किसे कहते हैं?	313
प्र –1344	वृष्यरस आहार किसे कहते हैं?	314
प्र –1361	वृष्येष्टरस आहार के ग्रहण से या......आहार ग्रहण करना चाहिए?	316
प्र –1477–78	विषयी किसे कहते हैं? विषय किसे कहते हैं?	335
प्र –2182	विषय के प्राप्त होने •र किस प्रकार....उत•न्न हो जाता है?	454
प्र –2186	विषय को देखने मात्र से रौद्रध्यान उत्पन्न होता हैं क्या?	455
प्र –2317	विषय और विषय की साधनभूत...सकते हैं क्या?	478
प्र –11–13	वस्तु तत्त्व धर्म किसे कहते हैं? स्वामी? फल?	2
प्र –1714	वस्तु संस्तरादि को किस प्रकार......कर्मों का आश्रव बंध न हो?	376
प्र –1862	वस्तु किस प्रकार की है कि जिस पर विश्वास किया जाये?	398
प्र –421–22	वस्ति•टल जरायु किसे कहते हैं? किससे पुष्ट होता है?	98
प्र –2246	वास्तविक प्रभावना किसे कहते हैं?	467
प्र –1438	वास्तु किसे कहते हैं?	329
प्र –1508	विस्मय अतिचार किसे कहते हैं?	339

प्र –1550	विस्मरण अतिचार किसे कहते हैं?	347
प्र –1798	वसतिका दान किसे कहते हैं?	488
प्र –2102–04	वह प्रमाद दो प्रकार का कौनसा है? नाम कौन कौन हैं? लक्षण ...?	443
प्र –2396	वह कौनसा मंत्र है कि जिसका जा•........रक्षण हो?	496
प्र –1496	वाहनों को अधिक रखने का निषेध क्यों किया?	337
प्र –1490–92	वाहन किसे कहते हैं? कितने प्रकार के हैं? नाम कौन कौन हैं?	337

<u>व – ज्ञकार</u>

प्र –490–91	वैज्ञानिकों ने एक बूंद पानी.... है? तीर्थकरों ने...बताये हैं?	120

<u>श – कवर्ग</u>

प्र –361–62	शंकाकांक्षा आदि परिणामों को क्या कहते हैं? क्यों कहते हैं?	84
प्र –363	शंकादि आठ दोषों को...... क्यों कहा?	85
प्र –364	शंकादोष किसे कहते हैं?	85
प्र –372	शंकितदोष से क्या हानि है?	88
प्र –1863	शंका करने से क्या हानि होती है?	398
प्र –1858	शंका किन कारणों से उत्पन्न होती है?	397
प्र –1857	शंका अतिचार किसे कहते हैं ?	397
प्र –278	शिकार खेलना किसे कहते हैं?	57
प्र –281	शिकार खेलना व्यसन..... का क्या संबंध है?	58
प्र –2435–36	शुक्लध्यान किसे कहते हैं? स्वामी कौन कौन हैं?	504
प्र –2437	शुक्लध्यान का काल कितना है?	504
प्र –2438	शुक्लध्यान का विषय क्या है?	505
प्र –2439–40	शुक्लध्यान के भेद कितने हैं? नाम कौन कौन हैं?	505

<u>श – तवर्ग</u>

प्र –2369	श्रोता में मुनि बनने की ताकत............न हो तो क्या करे?	487
प्र –1642	शीत परीषहजय किसे कहते हैं?	364
प्र –737	शुद्ध सामग्री किसे कहते हैं?	172
प्र –1795	शुद्ध आहार किसे कहते हैं?	388
प्र –1796	शुद्ध औषधि किसे कहते हैं?	388
प्र –1962–63	शुद्धध्यान का दूसरा नाम क्या है? इसके स्वामी कौन हैं?	417
प्र –2403–05	शुद्धात्मा का या अशुद्धात्मा का या .....पिण्डस्थ धर्मध्यान है?	497

प्र –2416 शुद्ध का ध्यान करने से शुद्ध की प्राप्ति....कैसे हो सकती है? 500
प्र –2607 शुद्ध की अनुमोदना या शुद्ध अनुमोदना किसे कहते हैं? 543
प्र –2631 शूद्र किसे कहते हैं? 551
प्र –2632–33 शूद्रों के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं? 551
प्र –750–51 शान्तिधारा किसे कहते हैं? क्यों करना चाहिये? 181
प्र –752–53 शान्तिधारा का क्या अर्थ है? क्या फल है? कौन करता है? 182
प्र –1226 शून्यागार किसे कहते हैं? 292
प्र –1227 शून्यागार को प्राप्त कर क्या करना चाहिए? 292
प्र –1228 शून्यागारावास भावना.....करना चाहिए? निवास क्यों करना चाहिए? 292
प्र –1230 शून्यागार में निवास करने से क्या फल प्राप्त होता है? 293
प्र –1234 शून्यागारावास और विमोचितावास में क्या अंतर है? 293
प्र –1238 शून्यागार में या विमोचितावास में....तो क्या दोष है? 294

श – पवर्ग

प्र –1575 शब्दानुपात अतिचार किसे कहते हैं? 353
प्र –1576 शब्दानुपात को अतिचार दोष क्यों कहा? 353
प्र –1578–89 शब्दानुपात आनयन प्रयोग में...क्या अंतर है? यदि अंतर नहीं....? 353
प्र –177 शुभ लेश्याओं से युक्त हो ऐसा क्यों कहा? 32
प्र –225–27 शुभ व्यसन? फल? जानकर क्या करना चाहिए? 43
प्र –689–90 शुभ प्रस्तावना किसे कहते हैं? शुभ प्रस्तावना के कितने भेद हैं? 160
प्र –1051 शाम नीति किसे कहते हैं? 264

श – अन्तस्थ

प्र –1650 शय्या परीषहजय किसे कहते हैं? 365
प्र –649 श्रावक धर्म की उत्पत्ति अनादिकाल से या सादिकाल से है? 153
प्र –669 श्रावकों को किन किन कार्यों को जानना आवश्यक है? 158
प्र –988 श्रावक किसे कहते हैं? 255
प्र –989–90 श्रावकों के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं? 255
प्र –248–51 शराब किसे कहते हैं? उत्पन्न...विधि? कौन पीता है? क्या हानि है? 51
प्र –253–55 शराब व्यसन किसे कहते हैं? ...किसे कहते हैं? ...कौन सा है? 52
प्र –256 शराब तो औषधि है ....पीने से शान्ति मिलती है? 52
प्र –257 शराब तो एक मौनव्रत का साधन है ....अतः पीने में पाप नही है? 52

प्र –1030	शराब का, मांस,...... उद्योगी हिंसा कह सकते हैं क्या?	261
प्र –1364	शरीर को संस्कारित करने का क्या फल है?	316
प्र –1366	शरीर संस्कार का त्याग क्यों कराया?	317
प्र –1679–80	शरीर के कंपन को अतिचार दोष क्यों कहा? क्या हानि है?	370
प्र –2040	शरीर में कांटा चुभना ....वेदना आर्तध्यान कह सकते हैं?	431
प्र –2059	शरीर और इंद्रिय वेदना के...... आर्तध्यान उत्पन्न होता है क्या?	434
प्र –2321	शरीर संबंधी परिग्रह ....परिग्रहानंद रौद्रध्यान उत्पन्न होता है?	479
प्र –1000	शल्य किसे कहते हैं?	257
प्र –1001–02	शल्यों के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?.	257
प्र –843	शारीरिक संताप को दूर करने के लिए....पूजा करते हैं ?	219
	श – ऊष्म	
प्र –456	शास्त्र किसे कहते है?	106
प्र –2000	शिष्य या भक्त देव को....... कह सकते हैं क्या?	423
प्र –545	श्री समयसारजी के बंधाधिकार .....भाव रखना ठीक है?	129
	श – क्ष	
प्र –164	शिक्षा किसे कहते हैं?	27
प्र –1628–30	शिक्षाव्रत किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन² हैं?	362
प्र –1851	शिक्षाव्रत किसे कहते हैं?	396
प्र –2088	शिक्षा संगति और संस्कार कैसे बिगड़ते हैं?	440
	ष– टवर्ग	
प्र –22	षटकायिक जीवों की रक्षा करने को धर्म क्यों कहते हैं?	4
	स – कवर्ग	
प्र –1026	संकल्पी हिंसा किसे कहते हैं?	260
प्र –866	संकल्पानुसार ही शुभाशुभ फल की प्राप्ति.....क्यों कहा?	227
प्र –1409–12	संगति किसे कहते हैं? भेद? नाम? प्रत्येक की परिभाषा बताना चाहिए?	326
प्र –2142–43	संकल्पी हिंसा किसे कहते हैं? ....रौद्रध्यान किसे कहते हैं?	447
प्र –1200	साकारमंत्र भेद किसे कहते हैं?	287
प्र –1923	सुखानुबंध अतिचार किसे कहते हैं?	411
प्र –1924–26	सुख किसे कहते हैं?...प्राप्त होता है?....किस प्रकार का है?	411
प्र –1927	सुखानुबंध को अतिचार क्यों....स्वभाव गुण है?	412

ॽ –636	सुगुरु किसे कहते हैं?	148
ॽ –1990–91	सुगन्ध किसे कहते हैं? दुर्गन्ध किसे कहते हैं?	421
प्र –2021	सुगन्ध विषय के कितने भेद हैं?	427
ॽ –2329	सुगंध से •रिग्रहानंद रौद्रध्यान तो सुना है........हो सकता है?	480
ॽ –830	सूखी सामग्री फल फूल आदि से.....नहीं कहते हो?	216
ॽ –828	सूखे फल फूल आदि ......तो इनका ॽयोग कर सकते हैं?	215
प्र –827	सूखे फल फूलों से भी तो पूजा कर सकते हैं क्योंकि वे अचित्त हैं?	215
प्र –978 –80	सूखे फलों से या हरे फलों से पूजा.......कर सकते हैं?	252
प्र –42	सो कैसे उदाहरण देकर समझाओ?	6
प्र –802	सो कैसे मुनिजन आरम्भ परिग्रह के त्यागी.....कैसे चढ़ायेंगे?	206
ॽ –803(1)	सो कैसे ठीक है?	207
प्र –2340	सो कैसे चिंतन करें कि.....समझ में आ जाये?	482

स – चवर्ग

प्र –500–01	सचित्त जल किसे कहते हैं? सचित्त जल के कितने भेद हैं?	122
प्र –804–05	सचित्त पूजा किसे कहते हैं? सचित्त की पूजा ...किसे कहते हैं?	208
प्र –806–07	सचित्त से क्यों पूजा करना? जीवों की ...... धर्म नहीं रहा?	208
ॽ –2521	सचित्त आहार त्याग ॽतिमा किसे कहते हैं?	519
प्र –1741	सचित्ताहार किसे कहते हैं?	380
ॽ –1742	सचित्त सम्बन्धाहार किसे कहते हैं?	380
प्र –1743	सचित्त सम्मिश्राहार किसे कहते हैं?	380
प्र –1744	सचित्त संबंध और सचित्त सम्मिश्राहार में क्या अंतर है?	381
प्र –1820	सचित्तनिक्षेपातिचार किसे कहते हैं?	391
प्र –1821	सचित्त पत्रादि पर रखकर आहारादि के देने को अतिचार क्यों कहा? 391	
प्र –1825	सचित्तपिधान नाम का अतिचार किसे कहते हैं?	392

स – तवर्ग

प्र –1145	सत् के अभाव रूप प्रथम झूठ वचन असत्वचन किसे कहते हैं?	279
ॽ –1155	सत्याणुव्रत किसे कहते हैं?	281
ॽ –1156	सत्याणुव्रत का निर्दोष •ालन........क्या करना चाहिए?	281
प्र –1194–95	सत्याणुव्रत के अतिचारों के कितने भेद हैं? नाम कौन२ हैं?	287

प्र –1658	सत्कार पुरस्कार परीषह जय किसे कहते हैं?	366
प्र –2568	सातवीं प्रतिमा किसे कहते हैं?	533
प्र –2572	सातवीं प्रतिमावाला नव कोटियों से.......करा सकता है?	534
प्र –2573	सातवीं प्रतिमावाला दूसरों का ....दोष लगता ही है क्या?	534
प्र –2630	सत्शूद्र को भी क्षुल्लक क्षुल्लिका दीक्षा दी जाती थी ....सो क्या...?	550
प्र –2634	सत्शूद्र किसे कहते हैं?	551
प्र –292	स्त्री किसे कहते हैं?	61
प्र –1647	स्त्री परीषहजय किसे कहते हैं?	364
प्र –1302–03	स्त्रीवेद किसे कहते हैं? कितने भेद हैं?	305
प्र –1323	स्त्री रागकथा श्रवणत्याग या •ुरुष......किसे कहते हैं?	308
प्र –301–02	स्त्री वेदी मनुष्यनियों .... क्या हानि है?	63
प्र –734	सन् 89 के चातुर्मास .... स्त्रियों के हाथ से गोचरी लेते हैं या नहीं?	171
प्र –764–65	सन्निधिकरण किसे कहते हैं? क्यों किया जाता है?	189
प्र –1914	संथारा ग्रहण .... आत्महत्या होने से अक्षम्य अ•राध नहीं है क्या?	409
प्र–1231	सूने मकान में क्या गृहस्थ ठहर सकता है?	293
प्र –682	स्थापना निक्षेप पूजा किसे कहते हैं?	159
प्र –766–67	स्थापना किसे कहते हैं? क्यों करना चाहिए?	190
प्र –776	स्थापना करने के बाद किस प्रकार का विचार करना चाहिए?	193
प्र –601–02	स्थितिकरण अंग किसे कहते हैं? यह जीव किससे गिरता है?	139
प्र –1248	सधर्म अविसंवाद भावना किसे कहते हैं?	297
प्र –1251–52	सधर्म किसे कहते हैं? साधर्मी किसे कहते हैं?	297
प्र –913–914	साध्य किसे कहते हैं? साधन किसे कहते हैं?	238
प्र –809	साधारण वनस्पति किसे कहते हैं?	209
प्र –904	साधारण वनस•ति ....मनुष्यों को क्यों कहा?	237
प्र –1896	स्नेह किसे कहते हैं?	406
प्र –66	सूत्रकारजी ने या ...... आगम विरोध दोष है?	11
प्र –1103	सूत्रानुसार गृहस्थ को क्या वचनगुप्ति......सकती है या नहीं?	272
प्र –1167	सूत्रकार ने क्रोध और ......त्याग क्यों बताया?	283
प्र –1191	साधू •द मुनि •द का वाचक ....वाला अर्थ क्यों किया?	286
प्र –1212	साधुओं में भी दिगम्बर साधुवर्ग ....चोरी •ा• करने वाले.....?	289

प्र –1692	स्नान किये बिना ....कर सकते हैं?	372
प्र –2126–27	स्नेह किसे कहते हैं? मोह किसे कहते हैं?	446

<u>*स – टवर्ग*</u>

प्र –2114	साढ़े सैतीस हजार प्रमाद के भेद किस प्रकार से उत्पन्न होते हैं?	445

<u>*स – पवर्ग*</u>

प्र –1458–60	स्पर्शेंद्रिय किसे कहते हैं? इसके कितने विषय हैं? नाम कौन[2] हैं?	333
प्र –1461	स्पर्शेंद्रिय के विषयों के प्राप्त होने पर क्या करना चाहिए?	333
प्र –1983	स•र्शेंद्रिय जन्य इष्ट वियोगज आर्तध्यान कैसे उत्पन्न होता है?	419
प्र –2012	स्पर्शेंद्रिय जन्य अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान किसे कहते हैं?	425
प्र –2013	स्पर्शेंद्रिय जन्य अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान कैसे उत्पन्न होता है?	425
प्र –2039	स्पर्शेंद्रिय जन्य वेदना आर्तध्यान किसे कहते हैं?	431
प्र –2047	स्पर्शेंद्रिय और रसनेंद्रिय संबंधी वेदना.....उत्पन्न होता है?	432
प्र –2072	स्पर्शेंद्रिय जन्य निदान आर्तध्यान किसे कहते हैं?	437
प्र –2073	स्पर्शेंद्रिय जन्य निदान आर्तध्यान कितने प्रकार का है?	438
प्र –2168	स्पर्शेंद्रिय जन्य हिंसानंद रौद्रध्यान किसे कहते हैं?	452
प्र –2041	स•र्शेंद्रिय जन्य आर्तध्यान और तज्जन्य अनिष्ट.....क्या अन्तर है?	431
प्र –2044	स्पर्शेंद्रिय जन्य वेदना आर्तध्यान कितने प्रकार का है?	432
प्र –2169–70	स•र्शेंद्रिय जन्य रौद्रध्यान...भेद हैं? इस ध्यान के •हचानने के....है?	452
प्र –2171	स•र्शेंद्रिय जन्य रौद्रध्यान कैसे उत•न्न होता है?	452
प्र –2172	स्पर्शेंद्रिय जन्य रौद्रध्यान के स्वामी कौन हैं ?	452
प्र –2205	स्पर्शेंद्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान किसे कहते हैं?	460
प्र –2206–8	स्पर्शेंद्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान क्यों उत्पन्न....? भेद? नाम?	460
प्र –2276	स्पर्शेंद्रिय जन्य चौर्यानन्द रौद्रध्यान किसे कहते हैं?	471
प्र –2277	स्पर्शेंद्रिय जन्य चौर्यानन्द रौद्रध्यान के कितने भेद हैं?	471
प्र –2320	स्पर्शेंद्रिय जन्य परिग्रहानन्द रौद्रध्यान किसे कहते हैं?	479
प्र –2322	स्पर्शेंद्रिय जन्य परिग्रहानन्द रौद्रध्यान के कितने भेद हैं?	479
प्र –2636	स्पर्शशूद्र किसे कहते हैं?	552
प्र –61	सभी आजीविका सम्बन्धी व्यापार ....प्रवृति धर्म कह सकते हैं क्या?	9
प्र –1683	स्मृत्यनुपस्थापन अतिचार दोष किसे कहते हैं?	371
प्र –1684	स्मृत्यनुपस्थापन अतिचार दोष क्यों कहा?	371

प्र –1725–26	स्मृत्यनुपस्थापन अतिचार किसे कहते हैं? किस कारण से होता है?	377
प्र –1525	समस्त पापकर्मों का मूल कारण प्रमाद...भेद प्रभेदों का कथन क्यों?	344
प्र –1561	समयप्रबद्ध किसे कहते हैं?	350
प्र –104–05	सम्यग्दर्शन...... ? सम्यग्दर्शन के आठ अंग और आठ गुण .....?	15
प्र –187	सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने वाले जीवों की....की होना चाहिए?	34
प्र –895	सामान्य क्षुधा और क्षुधारोग में क्या अन्तर है?	235
प्र –1932–35	सभी...कितने हैं? कौन करता है? फल? कहाँ तक जाता है?	413
प्र –1685	स्मृत्यनुपस्थापन दोष से क्या हानि है?	371
प्र –143	समवशरण के बिना अलग से विहार...हो सकते हैं क्या?	23
प्र –550	समस्त कार्य अपने अपने कर्मानुसार होते हैं...... तो क्या दोष है?	131
प्र –1852	सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं?	396
प्र –1854	सम्यग्दर्शन को सुरक्षित रखने के लिए क्या करना चाहिए?	397
प्र –1860	सम्यग्दर्शन का विषय........हो जाता है?	398
प्र –1867	समस्त प्रमादी असंयमी......क्या बुरा है?	399
प्र –1870	समस्त प्रमादी......तो क्या सभी दोषी हुए?	400
प्र –1877	सम्यग्दर्शन के सभी भेदो में ये दोष......लगते हैं?	401
प्र –2413	समस्त आत्माओं का अर्थ संसारस्थ चार....क्या आपत्ति है?	499
प्र –1335	सम्बोधन वाक्य किसे कहते हैं?	312
प्र –1855–56	सम्यग्दर्शन के अतिचारों के कितने भेद हैं? नाम कौन² हैं?	397
प्र –1878	सम्यग्दर्शन में या मोक्षमार्ग में जुगुप्सा करने से क्या हानि है?	402
प्र –1940	सामायिक किस प्रकार से करना चाहिए?	414
प्र –2515	सामायिक शिक्षाव्रत और सामायिक प्रतिमा में क्या अन्तर है?	518
प्र –1955	सामान्य की अपेक्षा से ध्यान किसे कहते हैं जो एक प्रकार का है?	417
प्र –2256	सामान्य से चौर्यानन्द रौद्रध्यान.....कैसे होता है?	469
प्र –2343	सामान्यतः आर्तध्यान कैसे उत्पन्न होता है?	484
प्र –349	सप्तभयों का त्यागी हो .... ऐसा क्यों कहा?	80
प्र –812	सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति किसे कहते हैं?	210
प्र –1243	सफर करते समय...... ठहरा सकते हैं या नहीं?	295
प्र –976	सबके बाद में फल से पूजा करने को क्यों कहा?	252
प्र –1255–56	समान धर्म वाले होने से सधर्म .....गुण और दोष हैं?	297

प्र –1259	समान धर्म वालों के साथ ......विसंवाद कर सकते हैं ?	298
प्र –1631	सामायिक शिक्षाव्रत किसे कहते हैं?	362
प्र –1664	सामायिक कब करना चाहिए?	368
प्र –1665	सामायिक किस प्रकार करना चाहिए और क्यों करना चाहिए?	368
प्र –1666	सामायिक कहाँ करना चाहिए?	368
प्र –1667	सामायिक करते समय किस प्रकार चिंतन करना चाहिए?	368
प्र –1668	सामायिक करते समय श्रावक .... की क्या अवस्था होती है?	369
प्र –1669	सामायिक काल में वस्त्रधारी यदि मुनियों...हो जाता है?	369
प्र –1671–72	सामायिक शिक्षाव्रत के अतिचार कितने हैं? नाम कौन कौन हैं?	369
प्र –1718–19	सामायिक शिक्षाव्रत और.....में क्या अंतर है?.... दोनों एक ही हैं?	376

स – अन्तस्थ

प्र –428–29	संवर भावना किसे कहते हैं? इसके चिन्तन से क्या लाभ है?	99
प्र –430–31	संवर किन परिणामों से होता है? वे परिणाम कौन[2] हैं?	99
प्र –93	संवर तत्त्व किसे कहते हैं?	14
प्र –957–58	स्वभाव ज्ञान के कितने भेद हैं? नाम कौन[2] हैं? स्वामी कौन[2] जीव हैं?	246
प्र –1135	स्वद्रव्य किसे कहते हैं?	279
प्र –1136	स्वक्षेत्र किसे कहते हैं?	279
प्र –1137	स्वकाल किसे कहते हैं?	279
प्र –1138	स्वभाव किसे कहते हैं?	279
प्र –542	स्वदया किसे कहते हैं?	128
प्र –1362	स्वशरीर संस्कार किसे कहते हैं?	316
प्र –1367	स्वशरीर संस्कार त्याग नाम की भावना...जीव करता हैं?	317
प्र –2060	स्व •र और उभय की वेदना....धर्मध्यान कहा है और........?	435
प्र –2270	स्वकृत या परकृत चोरी को करके हर्ष मानने को क्या कहते हैं?	470
प्र –2271	स्वकृत चौर्यानंद रौद्रध्यान किसे कहते हैं?	470
प्र –2447–48	स्वर किसे कहते हैं? व्यंजन किसे कहते हैं?	505
प्र –2525	स्वगत और परगत ....कर सकता है क्या?	521
प्र –2565	स्वनिमित्तिक नव कोटियाँ किस प्रकार से होती हैं?	531
प्र –659	संयम किसे कहते हैं?	155
प्र –587–90	संयम....भेद हैं? नाम कौन[2] हैं? •रिभाषा क्या[2] है?...पालना चाहिए?	136

प्र —198	सर्वप्रथम भावमिथ्यात्व का त्याग होगा या द्रव्यमिथ्यात्व का....?	36
प्र —835—36	सर्वप्रथम जल से पूजा....क्यों कहा? जल से...का क्या फल है?	217
प्र —935	सर्वघाती स्पर्धक किसे कहते हैं?	241
प्र —937—38	सर्वघाती स्पर्धकों के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?	241
प्र —964	सिर्फ मंत्र बोलकर लौंग........ तो क्या दोष है?	248
प्र —1112	सूर्य के प्रकाश के बिना ....तो क्या दोष है?	273
प्र —1281—82	सरकार को टैक्स नहीं देना चोरी पाप है? ...दुःखी क्यों न होगा?	301
प्र —939	सर्वघाती चेतन स्पर्धक किसे कहते हैं?	241
प्र —525	स्वाद्याहार किसे कहते हैं?	125
प्र —658	स्वाध्याय किसे कहते हैं?	155
प्र —1350—52	स्वादिष्ट रस किसे कहते हैं? भेद? नाम कौन कौन हैं?	314
प्र —564	स्वाध्याय करने वाला हो ऐसा क्यों कहा?	133
प्र —565—67	स्वाध्याय किसे कहते हैं? कितने भेद? नाम कौन² हैं?	133
प्र —585—86	स्वाध्याय आवश्यक किसे कहते हैं? संयम आवश्यक...कहते हैं?	136
प्र —623	संवेग निर्वेद आदि सम्यक्त्व के आठ गुणों....क्यों कहा?	146
प्र —628	संवेग गुण किसे कहते हैं?	147
प्र —2152	सावधानीपूर्वक समितिपूर्वक व्यापार करने को भी हिंसा क्यों कहा?	449
प्र —1900—02	सल्लेखना....हैं? समाधि...हैं? इन दोनों में क्या अंतर है?	407
प्र —1903—04	सल्लेखना क्यों धारण की जाती है? किसके लिए धारण की जाती है?	407
प्र —1905	सल्लेखना कब धारण की जाती है?	408
प्र—1906	सल्लेखना को निर्दोष पालने के लिए क्या उपाय करना चाहिए?	408
प्र —1907—08	सल्लेखना व्रत के अतिचारों के कितने भेद हैं? नाम कौन² हैं?	408
प्र —1931	सल्लेखना के समय शृंगारादि....मना किया जाता है?	413
प्र —574—75	स्वाध्याय किसके समान है? इसका क्या फल है?	134

<u>**स – ऊष्म**</u>

प्र —196	संशय मिथ्यात्व किसे कहते हैं?	36
प्र —2387	संस्थानविचय धर्मध्यान किसे कहते हैं?	494
प्र —2389	संस्थानविचय धर्मध्यान के स्वामी कौन हैं?	494
प्र —350	संसार का सुख बिना वैभव के ....तो क्या आत्म सुख भी...?	81
प्र —406—07	संसार भावना किसे कहते हैं? इसके चिन्तन से क्या लाभ है?	96

प्र –444	संसार शरीर भोगों से विरक्त हो ऐसा क्यों कहा?	102
ॽ –96	संसारस्थ दु:खियों की करुणामय......आ सकते हैं क्या?	14
प्र –98	संसार में कुछ मतमतांतर हैं जो पुनः....हैं सो ठीक है क्या?	14
प्र –991	सासादन नामक दूसरे गुणस्थान वालों....चाहिए था?	255
ॽ –1505–06	संसार में ॽत्येक वस्तु किसीने...? तब निष्ॽयोजन क्या रहा?	339
प्र –1949–51	संसार में ऐसे भी हैं....? सिद्ध ध्यान करते हैं? सिद्धों में ध्यान होता है?	416
प्र –1153	संसारवर्धक वचन किसे कहते हैं?	281
प्र –1363	संसारी प्राणी शरीर को क्यों सजाता है?	316
प्र –1635	सहन करने में और जीतने में क्या अन्तर है?	362
प्र –447	सोऽहम् किसे कहते हैं?	102
ॽ–2488–89	सूक्ष्मक्रियाॽति•ाती शुक्लध्यान.....? योग कौनसा होता है?	514

ह – टवर्ग

प्र –329	होटल किसे कहते हैं?	74
प्र –834	हैंडपम्प, नल का पानी दान पूजा अभिषेकादि के काम में ले सकते हैं क्या?	216

ह – तवर्ग

प्र – 1285	हीनाधिक मानोन्मान अतिचार किसे कहते हैं?	302

ह –पवर्ग

प्र –199	हम लोग गृहस्थ हैं.....और क्या न करें?	36
ॽ –1572–73	हम किसी को न बुलायेंगे.....? हमने न बुलाया....क्यों लगेगा?	352
प्र –774	हमारे हृदय में भगवंत सदा विराजमान हैं अतः स्थापना क्यों करना?	192
प्र –2584	हमतो झाड़ू पोता लगाते नहीं......क्यों लगेगा?	537

ह – अन्तस्थ

प्र –86	हेय तत्त्व किसे कहते हैं?	12
प्र –458	हेय तत्त्व किसे कहते हैं?	106
प्र –1436	हीरा मोती माणिक रत्न आदि को परिग्रह क्यों नहीं कहा?	329
प्र –808	हरे फल फूलों से पूजन को सचित्त पूजन....नहीं कहते हो?	209

ह – ऊष्म

प्र –1176–77	हास्यकषाय किसे कहते हैं? इसका त्याग क्यों करया?	284
प्र –1184–85	हास्य का त्याग क्या गृहस्थ कर सकता है?...कर सकता है?	285
प्र –1186	हास्य कषाय के चार भेद कौन[2] हैं?	286

प्र –1021–23	हिंसापाप किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन[2] हैं?	260
प्र –1057–59	हिंसा के त्याग...कहते हैं? व्रत किसे कहते हैं? स्वामी कौन हैं?	266
प्र –1596	हिंसादान अनर्थदण्ड किसे कहते हैं?	357
प्र –1597	हिंसा के साधनों को देकर या लेकर .....पाप क्यों कहा?	357
प्र –2133–35	हिंसा किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन[2] हैं?	447
प्र –2140–41	हिंसा कितने प्रकार की होती है? नाम कौन[2] हैं?	447
प्र –2163–64	हिंसानन्द रौद्रध्यान किसे कहते हैं? ....किसे कहते हैं?	451
प्र –2165	हिंसानन्द रौद्रध्यान कैसे उत्पन्न होता है?	451
प्र –2166–67	हिंसानन्द रौद्रध्यान के कितने भेद हैं? नाम कौन[2] हैं?	452
प्र –2190	हिंसानन्द रौद्रध्यान केवल.....मन से भी होता है?	456
प्र –1178	हास्य कषाय की उत्पत्ति कैसे होती है?	284
प्र –1179	हास्य कषाय की उत्पत्ति सभी प्राणियों में ...होनी चाहिए?	285
प्र –1180	हास्य कषाय कितने प्रकार की होती है?	285

<u>क्ष – वर्ग</u>

प्र –179	क्षपकश्रेणी वाले मुनियों को भी अपात्र ...उत्पन्न नहीं करते?	33
प्र –121–22	क्षयो•शमलब्धि? इसका स्वामी कौन है?	17
प्र –931–32	क्षायोपशमिक भावरूप अज्ञान किसे कहते हैं? कितने भेद हैं?	241
प्र –933	क्षायोपशमिक भावरूप अज्ञान के स्वामी कौन हैं?	241
प्र –2483	क्षीणमोह 12वें गुणस्थान में......सो यह आगम से विरोध है?	512
प्र –896	क्षुधा किसे कहते हैं?	235
प्र –897	क्षुधारोग किसे कहते हैं?	235
प्र –1640	क्षुधा परीषहजय किसे कहते हैं?	363
प्र –2624	क्षुल्लक किसे कहते हैं?	546
प्र –2624(अ)	क्षुल्लिका किसे कहते हैं?	547
प्र –1530	क्षेत्र संबंधी दिग्व्रत नामक गुणव्रत किसे कहते हैं?	345
प्र –1548–49	क्षेत्रवृद्धि नामक अतिचार किसे कहते हैं? किस कारण से उत्पन्न होता है?	347

<u>त्र – वर्ग</u>

प्र –215	त्रसविघात अभक्ष्य किसे कहते हैं?	39
प्र –2530	त्रसविघात अभक्ष्य •दार्थ किसे कहते हैं?	522

ज्ञ – वर्ग

• –160	ज्ञान और मन एक ही वस्तु है अलग नहीं....तब अयोग्य कैसे?	27
प्र –162–63	ज्ञान किसे कहते हैं? मन किसे कहते हैं?	27
प्र –167	ज्ञान और मन भिन्न भिन्न हैं इसकी सारणी?	27
प्र –667	ज्ञानदान किसे कहते हैं?	157
प्र –946–47	ज्ञान का परिणमन कितने प्रकार से होता है? नाम कौन[2] हैं?	242
• –950	ज्ञान गुण •र्याय चेतन है या अचेतन......या अचेतन?	243
प्र –85	ज्ञेयतत्त्व किसे कहते हैं?	12
प्र –457	ज्ञेयतत्त्व किसे कहते हैं?	106
प्र –2363–65	ज्ञेयतत्त्व किसे कहते हैं? हेय तत्त्व किसे कहते हैं? उपादेय तत्त्व किसे कहते हैं?	486

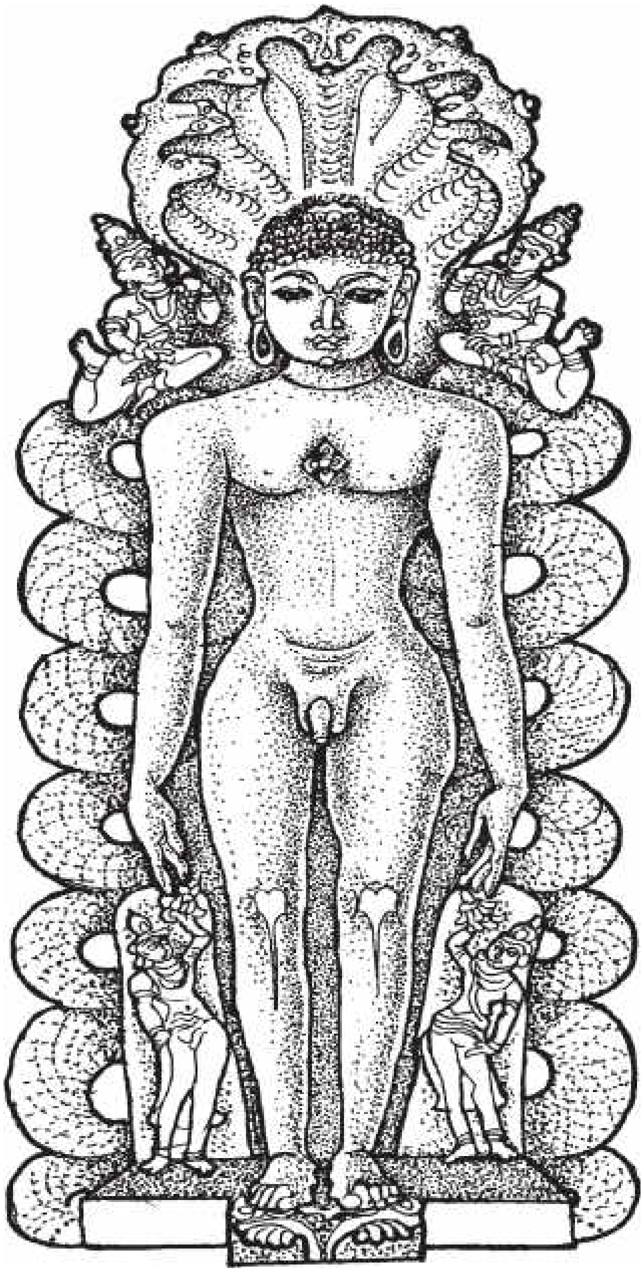

।। प० पू० श्री आ० पार्श्वसागराय नमः।।

आ. श्री वासुपूज्य सागर जी महाराज द्वारा प्रणीत

आन्तरिक पीड़ा दिग्दर्शन

दि० जैन मंदिर और दिगम्बर जैन मैदागिनि धर्मशाला अग्रवाल समाज, बनारस (उ०प्र०)
लेखन समय फाल्गुन वदी द्वादशी मंगलवार, रात्रि प्रथम प्रहर ता. 17.2.2004

मंगलाचरण

नमन करूं गुरु पार्श्व को, पुलकत नयन जिनन्द।
मन सरोज खिल जात है, दूर भगत दुर्गन्ध।।

प० पू० देवाधिदेव 1008 श्री पार्श्वनाथजी जिनदेव को, धर्मगुरु और शिक्षागुरु श्री प० पू० आ० पार्श्वसागरजी महाराज को नमस्कार करने से ज्ञाननेत्र और द्रव्यनेत्र खुल जाते हैं, मन प्रसन्न होता है, विषयवासना, ख्याति पूजा लाभ की दुर्भावना, मिथ्याचारित्र रूपी दुर्गन्ध दूर भाग जाती है अथवा भगवान श्री पार्श्वनाथजी को, वर्तमान चौबीसी को तथा त्रिकाल सम्बन्धी और त्रैलोक्य सम्बन्धी समस्त तीर्थंकरों को, अरिहन्तों को, अरहन्तों को, अरूहन्तों को, पंचपरमेष्ठियों को पूज्य गुरुवर्य पार्श्वसागरजी महाराज को नमस्कार करने से नेत्र पवित्र हो जाते हैं, खुल जाते हैं, मन प्रसन्न होता है, विषयवासना रूपी दुर्गन्ध नष्ट हो जाती है, आत्मा की शुद्धि होती है, अहंकार ममकार रूपी कषायों का मर्दन होने से, शाश्वतसुख, आत्मसुख, मोक्षसुख प्राप्त होता है अतः समीचीन आप्त महापुरुषों को नमस्कार करना चाहिए।

प्रश्नोत्तर पूर्वक शंकाओं का समाधान धर्मसंग्रह रत्नत्रयधर्म की प्राप्ति का उपाय

प्रश्न— 1—5 धर्म किसे कहते हैं? किसमें होता है? कब से है? कब तक रहेगा? किस आत्मा में उत्पन्न होता है?

उत्तर जो वस्तु का आत्मभूत स्वभाव हो अथवा सापेक्ष स्वभाव हो उसे धर्म कहते हैं अथवा जो वस्तु तत्त्व को प्राप्त कराये उसे धर्म कहते हैं अथवा रत्नत्रय को, उत्तम क्षमादि धर्म भावों को, षट्कायिक जीवों की रक्षा करने को अथवा आत्मा में उत्पन्न हुए प्रमादों को क्षय करने के लिए अथवा पराधीनता से छुड़ाकर स्वाधीनता को प्राप्त कराये अथवा मुनियों के ध्यानाध्ययन को, तप को और श्रावकों के दान पूजादि षडावश्यक कर्तव्यों को या इनके पालन करने को धर्म कहते हैं। धर्म चैतन्य स्वरूप आत्मा में होता है। द्रव्य की अपेक्षा धर्म अनादिकाल से है और अनन्तकाल तक रहेगा तथा पर्याय की अपेक्षा सादिसान्त है जो संसारस्थ जीवों की अपेक्षा से है और सादिअनन्त है जो मुक्त जीवों की अपेक्षा से कहा है। निकट भव्यात्माओं में उत्पन्न होता है, अभव्य आत्माओं में उत्पन्न नहीं होता है।

प्रश्न— 6—7 आत्मभूत स्वभाव धर्म किसे कहते हैं? इसके स्वामी कौन से जीव हैं?

उत्तर परनिरपेक्ष स्वभाव सापेक्ष अनादिकाल से प्रत्येक द्रव्यों के अपने अपने निजभाव को आत्मभूत

धर्म कहते हैं, आत्मभूत धर्म सभी द्रव्यों में पाया जाता है। संख्या की अपेक्षा अनन्त हैं, अनादिकाल से हैं और अनन्त काल तक रहेंगे। संसारी जीव और पुद्गल अशुद्ध से शुद्ध, शुद्ध से अशुद्ध परिणमन करते रहते हैं, शेष चार द्रव्य एकमात्र शुद्ध ही परिणमन करते हैं। यह कथन उपादान उपादेय की अपेक्षा समझना। इस धर्म के भव्यजीव, अभव्यजीव, सैनी, असैनी, सकलेंद्रिय, विकलेंद्रिय, एकेंद्रिय जीव स्वामी हैं। यह धर्म समस्त अवस्थाओं में, समस्त जीवों के सर्वकाल सर्वक्षेत्रों में पाया जाता है।

प्रश्न— 8—10 अनात्मभूत स्वभाव धर्म किसे कहते हैं? स्वामी कौन कौन हैं? फल क्या है?

उत्तर परसापेक्ष, स्वनिरपेक्ष अनादिकाल से जीव और पुद्गल इन दो द्रव्यों में आगन्तुक विकारी भावों को अनात्मभूत धर्म कहते हैं। यह अशुद्ध पारिणामिकभाव और औदयिकभाव स्वरूप है। इस धर्म के स्वामी संसारी विकारी जीव और पुद्गल द्रव्य है यह संसारस्थ समस्त अवस्थाओं में सर्वकाल सर्वक्षेत्रों में पाया जाता है। अशुद्धावस्था की प्राप्ति होना इसका फल है।

प्रश्न— 11—13 वस्तुतत्त्व धर्म किसे कहते हैं? इसके स्वामी कौन कौन जीव हैं? फल क्या है?

उत्तर सभी वस्तुओं के पारिणामिकभावों को तथा पारिणामिकभावों से अविनाभावी सम्बन्ध रखने वाले सभी भावों को वस्तुधर्म कहते हैं अथवा वस्तुतत्त्व की यथानुरूप की प्राप्ति जिन परिणामों से या जिस उपाय से हो उसे वस्तुतत्त्व धर्म कहते हैं और वह उपाय परमयथाख्यातसंयम, व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान है, अयोगकेवली नामक चौदहवें गुणस्थान वाले महायोगी स्वामी हैं, सिद्धावस्था सिद्ध पद प्राप्त होना इसका फल है।

प्रश्न— 14—15 रत्नत्रय धर्म किसे कहते हैं? स्वामी कौन हैं और कौनसा भाव है?

उत्तर सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को रत्नत्रयधर्म कहते हैं, जो आत्म तत्त्व की प्राप्ति का साधकतम उपाय है, इसके बिना संसार में और कोई दूसरा उपाय नहीं है जो शाश्वत सुख प्राप्त करा सके, असंयम पूर्वक असंयत सम्यग्दृष्टि जीव, देशसंयत पंचम गुणस्थानवर्ती, प्रमत्तसंयत नामक छठवें गुणस्थान से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक के महामुनिजन इस रत्नत्रय धर्म के स्वामी हैं यह रत्नत्रयधर्म गुणों की अपेक्षा पारिणामिक भाव है और पर्याय की अपेक्षा क्षायिकभाव, औपशमिकभाव और क्षायोपशमिकभाव है। भव्यजीव स्वामी हैं।

प्रश्न— 16 रत्नत्रय धर्म की उत्पत्ति कैसे होती है?

उत्तर दर्शनमोहनीय कर्म और अनन्तानुबन्धी चौकड़ी के उपशम से औपशमिक सम्यग्दर्शन, क्षय से क्षायिक सम्यग्दर्शन और क्षयोपशम से क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन होता है। ज्ञानावरण कर्म के देशघाति स्पर्धकों के क्षयोपशम से सम्यग्ज्ञान उत्पन्न होता है। सम्यक्चारित्र की उत्पत्ति चारित्रमोहनीय कर्म के उपशम से औपशमिकचारित्र, क्षय से क्षायिकचारित्र और क्षयोपशम से क्षायोपशमिक चारित्र होता है। समस्त मोहनीय कर्म के क्षय से परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन और यथाख्यातचारित्र, ज्ञानावरण कर्म की देशघाती और सर्वघाती प्रकृतियों के क्षय से केवलज्ञान, मोक्ष के सम्मुखावस्था के प्राप्त होने पर अघातिया कर्मों को क्षय करने के लिए योगों के अभाव

होने पर अर्थात् आत्मप्रदेशों का निष्कंप होने पर परमयथाख्यातचारित्र उत्पन्न होता है। अर्थात् अपने–अपने प्रतिपक्षी कर्मों के अभाव होने पर अनुकूल आत्मगुणों की उत्पत्ति होती है, यह शाश्वत नियम है।

प्रश्न– 17 परमयथाख्यातचारित्र कैसे उत्पन्न होता है और कितने भेद हैं?

उत्तर आत्मप्रदेशों में उत्पन्न हुए परिस्पन्दन के अभाव से या योगों के अभाव से परमयथाख्यात चारित्र उत्पन्न होता है। चौदहवें गुणस्थान के समयों के बराबर संसारावस्था में परमयथाख्यातचारित्र के भेद हैं तथा इससे आगे सिद्धों के जितने समय हैं उतने ही सिद्धों के परमयथाख्यातचारित्र के भेद हैं। यह पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से कहा है।

प्रश्न– 18–20 उत्तम क्षमादि धर्म किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? स्वामी कौन हैं?

उत्तर मोहनीय कर्म के या इसकी अवान्तर प्रकृतियों के समूल क्षय से उत्पन्न हुए विशिष्ट परिणामों को अथवा शेष घातिया अघातिया कर्मों के क्षय से उत्पन्न हुए परिणामों को उत्तम क्षमादि धर्म कहते हैं। इनके उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य ये दश भेद धर्म के व्यवहार नय से कहे गये हैं। पुनः इन्हीं दश भेद स्वरूप धर्मों के सामान्यधर्म और विशेष धर्म या व्यवहारधर्म निश्चयधर्म ये दो दो भेद भी हैं। इन सामान्यधर्म की आराधना करने वाले अविरतसम्यग्दृष्टि को आदि लेकर प्रमत्तसंयत नामक छठवें गुणस्थान तक के जीव हैं। संयम सहित प्रमादरहित मुनिजन आत्म स्थिरता के सम्मुख ध्यान करने वाले क्षीणमोही गुणस्थान तक के जीव हैं तथा केवलज्ञानी आत्मस्थिरता पूर्वक मोक्ष के लिए परिणमन कर रहे हैं। विशेष धर्म की या विशेष धर्मों की परिणति क्रिया से युक्त तेरहवें गुणस्थान से लेकर सिद्धभगवन्त तक हैं क्योंकि प्रत्येक धर्म के साथ में उत्तम विशेषण लगाया है अतः ये धर्म अप्रतिपाती तद्भव मोक्षगामी चरमशरीरी क्षपकश्रेणी आरोहण करने वाले मुनिजन ही प्राप्त करते हैं, अन्य नहीं। जब ये ही धर्म प्रमाद सहित होते हैं तो व्यवहार धर्म कहलाते हैं तथा ये ही धर्म जब निवृत्ति पूर्वक क्षपकश्रेणी गत अवस्था में अप्रमत्त भाव को प्राप्त होते हैं तब निश्चय धर्म कहलाते हैं। अर्थात् परसाहचर्य से व्यवहारधर्म और स्वसाहचर्य से निश्चयधर्म कहलाते हैं।

प्रश्न– 21 इन उत्तम क्षमादि दस धर्मों की उत्पत्ति किस क्रम से होती है?

उत्तर नौवें अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के नव भागों में से सातवें भाग में क्रोध का समूल प्रकृति स्थितिअनुभाग और प्रदेशबन्ध का क्षय होने से उत्तम क्षमाधर्म, आठवें भाग में मानकषाय का क्षय होने से उत्तम मार्दवधर्म, नौवें भाग में माया कषाय का क्षय होने से उत्तम आर्जव –धर्म, दसवें गुणस्थान के अंतिम समय में लोभ का क्षय होने से उत्तम शौचधर्म, ज्ञानावरणीयकर्म का समूल क्षय होने से सयोगकेवली के सत्यधर्म, योगों के अभाव होने पर अर्थात् परिस्पंदन क्रिया के अभाव से शील के 18 हजार भंग अयोगकेवली नामक चौदहवें गुणस्थान में प्रवेश करते ही ब्रह्मचर्यधर्म, शुक्लध्यान का चौथा पाया प्रारम्भ होने के साथ साथ अंतिमसमय में उत्तम तपधर्म, उत्तम आकिंचन्यधर्म और संयममार्गणा के संयमों में अंतिम भेद परमयथाख्यात संयम के

प्राप्त होते ही संसार की अंतिम अवस्था प्राप्त होती है। सम्पूर्ण अघातिया कर्मों की मूल उत्तर प्रकृतियों का क्रमशः क्षय होने से त्याग धर्म उत्पन्न होता है। इस उत्तम त्यागधर्म के उत्पन्न होते ही एक समय मात्र में ही सिद्धशिला में जा विराजते हैं। चौदहवें गुणस्थान में संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य, संपूर्ण निर्जरा होने से तप धर्म, सम्पूर्ण कर्मों का क्षय होने से त्याग धर्म और पूर्ण शुद्ध एकत्वावस्था के प्राप्त होने पर संयम धर्म होता है। जो परमयथाख्यात संयम स्वरूप है।

प्रश्न– 22 षट्कायिक जीवों की रक्षा करने को धर्म क्यों कहते हो?

उत्तर अपनी आत्मा ने अनन्तवार इन षट्कायिक जीवों में जन्म और मरण किया है तथा अपनी आत्मा के समान ये जीव अनन्त गुणधर्मों के पिण्ड हैं। जिस प्रकार अपने को अनुकूल प्रतिकूल सामग्री के समागम से, मिलाप से, हर्ष विषाद, सुख दुःख होता है ठीक उसी प्रकार व्यक्त या अव्यक्त रूप से इन त्रस स्थावर जीवों को भी अनुकूल प्रतिकूल अवस्था के प्राप्त होने पर सुख दुःख होता है। अतः अपनी रक्षा करने के लिए इन जीवों की रक्षा करनी चाहिए क्योंकि अहिंसा को धर्म कहा है। इसे ही अभयदान कहा है, अपनी रक्षा करना समस्त प्राणियों को इष्ट है क्योंकि समिति का पालन छठवें प्रमत्तसंयत नामक गुणस्थान पर्यन्त होता है, इसके आगे नहीं, आगे के गुणस्थान निश्चल ध्यानावस्था में होते हैं। प्रमादी जीव स्वामी हैं।

प्रश्न– 23–24 प्रमाद किसे कहते हैं? प्रमादी किसे कहते हैं?

उत्तर असावधान रहने को प्रमाद कहते हैं अथवा सज्जनों के, आप्त पुरुषों के समक्ष की हुई प्रतिज्ञा के पालन करने में अनुत्साही रहने को या बिना मन के पालने को प्रमाद कहते हैं। इस प्रकार की चर्या से या भावना से युक्त होने को प्रमादी कहते हैं अर्थात् आलस्य करने वालों को प्रमादी कहते हैं।

प्रश्न– 25–26 प्रमादियों के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर प्रमादियों के दो भेद हैं। बाह्य प्रमादी और अभ्यन्तर प्रमादी।

प्रश्न– 27 बाह्यप्रमादी किसे कहते हैं?

उत्तर बाह्यचर्या में समिति के पालन करने में, षडावश्यकों के पालन करने में आलस्य करने को या अनुत्साह करने वाले को बाह्यप्रमादी कहते हैं।

प्रश्न– 28 अभ्यन्तर अंतरंग प्रमादी किसे कहते हैं?

उत्तर अप्रमत्तभाव को प्राप्त न करने वालों को या निश्चल निर्विकल्प ध्यान प्राप्त न करने वालों को या विषय कषायों में उपयोग लगाने वालों को अभ्यन्तर अंतरंग प्रमादी कहते हैं।

प्रश्न– 29 प्रमाद के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर प्रमाद के दो भेद हैं। अभ्यन्तर प्रमाद और बाह्यप्रमाद।

प्रश्न– 30–31 अभ्यन्तर प्रमाद किसे कहते हैं? भेद कितने हैं?

उत्तर अनन्तानुबन्धीकषाय, अप्रत्याख्यानावरणकषाय और प्रत्याख्यानावरण कषाय इन तीन चौकड़ी

कषायोदय से युक्त परिणाम को, भाव को या मन को अभ्यन्तर प्रमाद कहते हैं। इसके अंसख्यात लोक प्रमाण भेद हैं।

प्रश्न– 32–33 बाह्यप्रमाद किसे कहते हैं? भेद कितने हैं?

उत्तर उपरोक्त कषायोदय से सहित होकर वचन और काय की प्रवृत्ति करने को बाह्यप्रमाद कहते हैं। उपरोक्त अपने भावों को वचन तथा काय से गुणा करने पर जो गुणनफल प्राप्त हो उतने बाह्यप्रमाद के भेद हैं अथवा 15 भेद, 80 भेद, साढ़े सैतीस हजार (37500) या असंख्यात लोक प्रमाण प्रमाद के भेद हैं।

प्रश्न– 34 इस प्रमाद का फल क्या है?

उत्तर इस प्रमाद का फल हिंसादि पापों की उत्पत्ति होना, निंदा, बदनामी होना, अपयश अपवाद होना, आश्रवबन्ध होना, स्थितिबन्ध अनुभागबन्ध होना, संसार भ्रमण होना आदि है।

प्रश्न– 35–37 मुनियों के और श्रावकों के आवश्यकों को धर्म क्यों कहा? आवश्यक किसे कहते हैं? कितने भेद हैं?

उत्तर जिन कार्य कलापों के बिना मुनियों की या श्रावकों की अवस्था या पद स्थिर नहीं रह सकता है उसे आवश्यक कर्तव्य या अवश्य करने योग्य कार्यों को आवश्यक कर्तव्य कहते हैं। दोनों के आवश्यक कर्तव्यों के 6–6 भेद हैं। इनके बिना मुनि और श्रावकपद का निर्वाह नहीं हो सकता है। मुनिजन अपने आवश्यक कर्तव्यों का आरम्भ परिग्रह तथा बाह्य जड़ सामग्री से रहित होकर पालन करते हैं। जो गृहस्थ श्रावक हैं वे सामग्री सहित पालन करते हैं तथा गृहत्यागी श्रावक आरम्भ परिग्रह रहित, सामग्री सहित या सामग्री रहित आवश्यक कर्तव्यों का पालन करते हैं। किन्तु दोनों के आवश्यक कर्तव्य आत्मशुद्धि कराते हैं, नवीन कर्मों का संवर, पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा कराते हैं। अतः मोक्ष के साधन होने से इनको धर्म कहा है।

प्रश्न– 38 गृहत्यागी श्रावक बाह्य सामग्री कहाँ से लाता है जबकि वह आरम्भ और परिग्रह का त्यागी परिग्रहत्याग प्रतिमा वाला है?

उत्तर गृहत्यागी श्रावक स्वयं आरम्भ परिग्रह का त्यागी है किन्तु गृहरत श्रावक के पूर्ण तैयारी करने के बाद गृहत्यागी श्रावक आ गया या बुलाकर बैठा लिया तथा पूजा या दान के लिए प्रसंगानुसार सामग्री उनके हाथों में गृहरत श्रावक देता जाता है और वे चढाते जाते हैं या उत्तम पात्र के करपात्र में देते जाते हैं ऐसा अभी वर्तमान में भी होता है तथा भूतकाल में भी हुआ था अतः गृहत्यागी श्रावक भी सामग्री सहित षडावश्यकों का पालन करते हैं। सोलहकारण भावनाओं में एक भावना आवश्यकापरिहाणि है। जिसका अर्थ आवश्यकों का समय पर ही पालन करना चाहिए। जिस प्रकार औषधि समय पर दी जाती है तो लाभ होता है समय पर प्रयोग न करने पर सफलता नहीं मिलती उसी प्रकार षड़ावश्यकों का पालन समय पर करने से सफलता मिलती है अन्यथा निष्फलता प्राप्त होती हैं।

प्रश्न– 39 तो क्या षडावश्यक कर्तव्य स्वयं धर्म नहीं कहलाये?

उत्तर नहीं, ये स्वयं धर्म नहीं हैं किन्तु धर्म के साधन हैं जैसे खाद पानी भूमि हवा धूप आदि स्वयं फल नहीं हैं किन्तु फल को प्राप्त कराने में बाह्य साधन हैं, क्योंकि इनके बिना फल की प्राप्ति नहीं हो सकती है, इसीतरह मोक्षफल की प्राप्ति इन षडावश्यक कर्तव्यों के बिना नहीं हो सकती है पर ये स्वयं मोक्ष स्वरूप नहीं है यदि होते तो ध्यान काल में इनका त्याग नहीं होता फिर अरिहन्त और सिद्धों को भी इन आवश्यक कर्तव्यों का पालन करना पड़ता इस कारण ये बाह्य साधन है इसी तरह इनके समान जितने भी कार्यकलाप हैं उनको इसी तरह समझना चाहिए। अथवा सभी साधनों का संग्रह कर लेना चाहिए।

प्रश्न– 40 आत्मा किसे कहते हैं?

उत्तर ज्ञान दर्शन स्वरूप उपयोग लक्षण वाले को तथा इनके साथ अविनाभावी सम्बन्ध रखने वाले अनन्त गुणधर्मों के पिण्ड को आत्मा कहते हैं अथवा भूख प्यास, सर्दी गर्मी, देखने, सुनने, सूंघने आदि सुख दुःख का अनुभव करने वाले को आत्मा कहते हैं।

प्रश्न– 41 क्या यह आत्मा दृष्टिगोचर है या इंद्रियगोचर है?

उत्तर नहीं, न दृष्टिगोचर होती है, न इंद्रियगोचर होती है किन्तु प्रारम्भ में आत्मा अनुमानगम्य होती है और बाद में ज्ञानगम्य, अनुभवगम्य, केवलज्ञानगम्य होती है, पुरुषार्थ करते करते तद्रूप हो जाती है इसी का नाम शुद्धात्मा है।

प्रश्न– 42 सो कैसे उदाहरण देकर समझाओ?

उत्तर देखो अग्नि में धुआं है, ईंधन में अग्नि है, दूध में घी है आदि क्या इंद्रिगोचर होते हैं? नहीं, किन्तु घर्षण से उत्पन्न होकर इंद्रियगोचर इंद्रियों से जानने योग्य हो जाते हैं इसी तरह शरीर में आत्मा है वह इंद्रियगोचर नहीं है किन्तु आगमगम्य, उपदेशगम्य, अनुमानगम्य, ज्ञानगम्य, अनुभवगम्य, केवलज्ञानगम्य है जैसे स्पर्श का, स्वाद का, सूंघने का, देखने का, सुनने का सुख या दुःख का अनुभव करने वाला है, आनंद लेने वाला है वह आत्मा है। इस शक्ति के निकल जाने पर शरीर इंद्रिय और विषय सामग्री के सान्निध्य होने पर भी आनन्द नहीं आता इस अनुमान से सिद्ध होता है कि इंद्रियों के द्वारा जो सुख या दुःख का अनुभव करता है वह अनुभव करने वाला ही आत्मा है, अन्य कोई पदार्थ नहीं।

प्रश्न– 43 अनुमान आदि का ज्ञान कैसे हो?

उत्तर अनुमान आदि का ज्ञान सर्वप्रथम गुरु उपदेश से सत्संगति से और आगम के स्वाध्याय से फिर बाद में तद्रूप परिणमन करने से होता है। जो सम्यक् कहलाता है अथवा तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले महापुरुषों को पूर्व संस्कार वश अपने आप ज्ञान हो जाता है इसी कारण वे स्वयंभू कहलाते हैं इनके अलावा अनुमान आदि ज्ञान मिथ्या असमीचीन कहलाते हैं क्योंकि लक्ष्य के अनुसार ही समीचीनता और असमीचीनता होती है।

प्रश्न– 44–45 अनादि किसे कहते हैं? अनन्त किसे कहते हैं?

उत्तर जिसका आदि नहीं, प्रारम्भ नहीं, उत्पन्न हुआ नहीं, नवीन हुआ नहीं उसे अनादि कहते हैं। बीज वृक्ष या पिता पुत्र आदि की तरह बीज पहले या वृक्ष पहले, पिता पहले या पुत्र पहले यह कहा

नहीं जा सकता कि पहले कौन और बाद में कौन अतः इस सम्बन्ध को अनादि कहते हैं इसी तरह और भी समझना। जिसका अन्त न हो, समाप्ति, सीमा न हो उसे अनन्त कहते हैं जैसे अक्षयअनन्त परन्तु अनन्तों के अनेक भेद प्रभेद हैं कुछ का अन्त भी हो जाता है जैसे युक्तानन्त, अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल आदि ये अन्त सहित हैं फिर भी केवलज्ञान का विषय होने से या क्षायोपशमिक ज्ञानों का विषय न होने से अनंत कहे जाते हैं।

प्रश्न– 46–47 धर्म के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर अभेद नय की अपेक्षा से धर्म के भेद नहीं, धर्म एक ही है क्योंकि अभेद नय का विषय अखंड हैं। अतः इस नय की अपेक्षा धर्म एक ही प्रकार का होता है। भेद नय की अपेक्षा से धर्म के अनेक भेद प्रमेद हो जाते हैं। जैसे निश्चयधर्म, व्यवहारधर्म, अभेद रत्नत्रय, भेद रत्नत्रय, निवृत्ति धर्म, प्रवृत्तिधर्म, मुनिधर्म, श्रावकधर्म। रत्नत्रयधर्म की अपेक्षा से धर्म के तीन भेद हैं, आराधनाओं की अपेक्षा से धर्म के चार भेद हैं, अस्तिकायों की अपेक्षा पाँच भेद हैं अथवा पाँच अणुव्रत या पाँच महाव्रतों की अपेक्षा धर्म के पाँच भेद हैं, द्रव्यों की अपेक्षा से छह भेद हैं अथवा आवश्यक कर्तव्यों की अपेक्षा से छह भेद हैं। सात तत्त्वों की अपेक्षा सात भेद हैं, सम्यग्दर्शन के आठ अंग और आठ गुणों की अपेक्षा से आठ भेद हैं, पदार्थों की अपेक्षा नव भेद हैं, उत्तम क्षमादि भावों की अपेक्षा से दश भेद हैं, दर्शनप्रतिमादि की अपेक्षा ग्यारह भेद हैं आदि। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के विषय की अपेक्षा धर्म के संख्यात भेद हैं, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान की अपेक्षा अंसख्यात भेद हैं तथा केवलज्ञान की अपेक्षा से अथवा वस्तु धर्मों की अपेक्षा से अनन्त भेद हैं।

प्रश्न– 48 प्रमाण किसे कहते हैं?

उत्तर परिपूर्ण वस्तु के ग्रहण करने के उपाय को प्रमाण कहते हैं।

प्रश्न– 49 नय किसे कहते हैं?

उत्तर प्रमाण के द्वारा जाने गये विषय के एक अंश के ग्रहण करने को नय कहते हैं।

प्रश्न– 50 नय के कितने भेद हैं?

उत्तर निश्चयनय और व्यवहारनय ये दो भेद हैं अथवा अनेक भेद हैं।

प्रश्न– 51 यदि निश्चयनय का विषय अखण्ड वस्तु है तो फिर इसे प्रमाण ही कहना चाहिए, नय क्यों कहा?

उत्तर आपका प्रश्न सत्य है कि यदि नय ने सम्पूर्ण वस्तु ग्रहण कर ली तो नय और प्रमाण में कोई अन्तर नहीं रह जाता है। इसलिए एकदेश में भी सर्वदेश का कथन किया जाता है। जैसे शरीर के एक अंग में पीड़ा होने पर पूरे शरीर में पीड़ा कही जाती है अथवा थोड़ा कपड़ा कट जाये फट जाये तो पूरा कपड़ा फट गया कट गया ऐसा कहा जाता है। थोड़ा घाटा हुआ तो पूरा घाटा पड़ गया। थोड़ा जल गया तो पूरा जल गया। इसी तरह प्रधान आ गये तो सब आ गये। आचार्य आ गये तो सब आ गये और चले गये तो सब चले गये। अतः एकदेश में सर्वदेश का कथन किया जाता है। इसलिए निश्चयनय से जो वस्तु को अखण्ड कहा गया है उसका मतलब

पूरी वस्तु न लेकर प्रतिपक्षधर्म सहित एक युगल धर्म लेना क्योंकि यह धर्म युगल अपने आप में पूर्ण है, पूरा है जैसे एक रुपया का नोट अपने आप में पूर्ण है। हजार का नोट, सौ का नोट, पाँच सौ का नोट भी अपने आप में पूर्ण है अधूरा नहीं हैं। पुनः यदि निश्चयनय से प्रतिपक्ष धर्म सहित अनन्त युगलों को एकसाथ एकसमय में ग्रहण कर लिया तो फिर व्यवहारनय का विषय और प्रमाण का विषय क्या शेष रहा तब एक निश्चयनय का ही अस्तित्व रहा क्योंकि बिना विषय के विषयी कैसा और बिना विषयी के विषय कैसा तथा एक ही नय का विषय यदि परिपूर्ण वस्तु हुई तो शेष सभी नयों का अभाव होने से यह नय भी नयाभास बन गया, नय भी अपने प्रतिपक्षी नय को लिए हुए हैं। इसमें क्या आपत्ति हैं?

प्रश्न– 52 धर्मों के इतने भेद हैं इसलिए ज्ञान जानता है या ज्ञान जानता है इसलिए धर्मों के भेद हैं?

उत्तर ज्ञेय ज्ञायक सम्बन्ध है इस कारण ये धर्मों के भेद प्रभेद हैं इसलिए ज्ञान जानता है। कहा है–''णाणं णेय पमाणं'' प्र०सा० ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है। ऐसा नहीं कहा है कि ज्ञेय ज्ञान प्रमाण है अथवा वस्तु का प्रतिबिम्ब दर्पण में पड़ता है जैसी वस्तु होगी वैसा ही प्रतिबिम्ब पड़ेगा इस कारण वस्तु के स्वभाव या धर्म अनन्त होते हैं परन्तु संसारी छद्मस्थ प्राणी अपने क्षयोपशमानुसार जितना अवधारण करले उतना ठीक है और ये सभी धर्म अपनी अपनी अपेक्षा से समीचीन हैं, मिथ्या नहीं।

व्यक्त्यंश की अपेक्षा ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है और शक्त्यंश की अपेक्षा ऐसे लोकालोक अनंतानंत हो जायें तो भी गाय के खुर के समान ज्ञान एक समय में जान ले ऐसी शक्ति है और व्यक्त्यंश की अपेक्षा उभयतः व्याप्ति बन जाती है जितना ज्ञान है उतना ही ज्ञेय पदार्थ है जितना ज्ञेय पदार्थ है उतना ही ज्ञानगुण है।

प्रश्न– 53 निश्चयधर्म किसे कहते हैं?

उत्तर पर की अपेक्षा से रहित स्वसापेक्ष वस्तु के स्वभाव को निश्चय धर्म कहते हैं ये धर्म स्वाधीन शुद्ध और स्वतन्त्र होते हैं चेतन और अचेतन द्रव्यों में होते हैं पर यहाँ चेतन धर्मों से प्रयोजन है। क्योंकि मोक्षफल की प्राप्ति चैतन्य स्वरूपी आत्मा को होती है।

प्रश्न– 54 व्यवहार धर्म किसे कहते हैं?

उत्तर पराधीन, पर की अपेक्षा सहित वस्तु के निमित्त नैमित्तिक भाव को व्यवहार धर्म कहते हैं अथवा भेद नय की अपेक्षा अनादिअनन्त भी होते हैं क्योंकि संसार और मोक्ष भी अनादि अनन्त हैं।

प्रश्न– 55 अभेद रत्नत्रय या निश्चय रत्नत्रय किसे कहते हैं?

उत्तर रत्नत्रय धर्म जब सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र पृथक् पृथक् अनुभव में नहीं आयें उसे अथवा पूर्ण अंशों को अभेद रत्नत्रय कहते हैं। यह अभेद रत्नत्रय निश्चय रत्नत्रय चौदहवें गुणस्थान के चरम समय में होता है और सिद्धों तक रहता है क्योंकि इस अवस्था का रत्नत्रय

अप्रतिपाती है, पूर्णरूप से जो वीतरागी हैं उनका पुनः संसार में पतन नहीं होता है कारण क्षायिकभाव का अन्त नहीं होता, छूटता नहीं है।"**निश्चयनयादयोगकेवलि चरमसमयवर्तिनो रत्नत्रयस्य मुक्ते र्हेतुत्त्व व्यवस्थितेः**"—निश्चयनय से चौदहवें गुणस्थान के अंत समय में अयोगकेवली के रत्नत्रय को मोक्ष का साक्षात् कारणपना व्यवस्थित किया गया है 'श्लो० 51 श्लोकवार्तिक पु.—1' आ० श्री विद्यानन्दि (पात्रकेसरी)।

प्रश्न— 56 भेद रत्नत्रय या व्यवहार रत्नत्रय किसे कहते हैं और स्वामी कौन है?

उत्तर बुद्धिपूर्वक जब यह सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र पृथक्—पृथक् अनुभव में आते हैं अथवा अपूर्ण अंशों में रहते हैं, आवरण सहित हैं या आवरण रहित हैं तो उसे भेद रत्नत्रय या व्यवहार रत्नत्रय कहते हैं। यह रत्नत्रय सरागियों के, वीतरारागियों के, सयोगकेवली के तथा अयोगकेवली के द्विचरम समय पर्यन्त होता है, ऐसा यह नियम कर्मक्षपण विधि का है ऐसा समझना चाहिए।

प्रश्न— 57 निवृत्ति धर्म किसे कहते हैं?

उत्तर अंतरंग में मन के विकल्पों को और बाह्य में वचन काय की चर्चा चर्या रूप क्रिया के त्याग करने को तथा संयम और ध्यानपूर्वक आश्रवबंध के विच्छेद करने को निवृत्ति धर्म कहते हैं। पूर्ण अंश की अपेक्षा अयोगकेवली नामक चौदहवें गुणस्थान में होता है और संसार भ्रमण के कारणभूत सांपरायिक आश्रव बंध का विच्छेद होने से रत्नत्रय के अपूर्ण अंश रहने पर भी परम वीतरागियों के होता है।

प्रश्न— 58 अंश—अंश के थोड़े—थोड़े त्याग को निवृत्ति धर्म क्यों नहीं कहते हो?

उत्तर नहीं कहते हैं क्योंकि यदि अंश अंश के त्याग को या अभाव करने को निवृत्तिधर्म कहा जाय तो संसार के समस्त प्राणी इस धर्म के अधिकारी हो जायेंगे। कारण समस्त पाप के या पुण्य के परिणाम पूर्ण रूप से किसी भी प्राणी में नहीं पाये जाते हैं, कुछ कुछ अंशों की कमी रहती ही है अर्थात् परिणाम नहीं होना इसका नाम निवृत्ति धर्म नहीं है किन्तु समर्थ होकर भी सम्यक्पुरुषार्थपूर्वक, संकल्पपूर्वक त्याग करने को, भविष्यकाल में पुनः विकार प्राप्त न हो, सम्बन्ध न हो उसे निवृत्ति धर्म कहते हैं, इस कारण अंश के त्याग को निवृत्ति धर्म नहीं कहा। कारण जो प्राप्त होने के बाद में पुनः छूट जाय वह निवृत्ति धर्म कैसा?

प्रश्न— 59—60 प्रवृत्ति धर्म किसे कहते हैं? स्वामी कौन—कौन हैं?

उत्तर मन वचन काय की क्रिया पूर्वक सदाचार, सद्विचार पंचपरमेष्ठी की आज्ञा का पालन करना मूलगुणों का, आवश्यक कर्तव्यों का पालन करना तथा जहाँ तक सापेक्ष आश्रव बंध संवर निर्जरा तत्त्व की प्रवृत्ति चलती रहे उसे प्रवृत्ति धर्म कहते हैं। इस धर्म के चौथे गुणस्थान से लेकर सयोगकेवली नामक तेरहवें गुणस्थान पर्यन्त मोक्षमार्गी साधक स्वामी हैं।

प्रश्न— 61 सभी आजीविका सम्बन्धी व्यापार, पालन पोषण आदि क्रियाओं को प्रवृत्ति धर्म कह सकते हैं क्या?

उत्तर ये लोकोपयोगी क्रियायें यद्यपि लोक में कर्तव्य पालन की अपेक्षा प्रवृत्ति धर्म कहा जाता है जैसे परिवार का पालन पोषण करना, बालक बालिकाओं का पाणिग्रहण संस्कार कराना, उनकी शिक्षा भरणपोषण का साधन जुटाना आदि सब लोक व्यवहार में कर्तव्य को प्रवृत्ति धर्म कहा जाता है किन्तु मोक्षमार्ग सम्बन्धी प्रवृत्ति धर्म नहीं है, आत्म धर्म नहीं है।

प्रश्न– 62 उदरपूर्ति का हेतु बनाकर दानपूजा, वैयावृत्य करना, प्रतिष्ठा करना, कराना, विधिविधान करना कराना आदि कार्यों को तो प्रवृत्ति धर्म कह सकते हैं क्या, क्योंकि ये कार्य तो मोक्षमार्गोपयोगी होते हैं न?

उत्तर यद्यपि ये कार्य मोक्षमार्गोपयोगी अवश्य हैं परन्तु हेतु, लक्ष्य, अभिप्राय भिन्न होने से, लौकिक होने से धर्म के अंग नहीं कहे जायेंगे जैसे कफ के रोगी को छोड़कर दूध हर प्रकार से मंगलकारी है किन्तु जहर के संसर्ग से जहर के समान मारक प्राणहर्ता हो जाता है, अमंगलकारी हो जाता है इसी तरह ये मंगलकार्य मंगलप्रद होने पर भी आजीविका का साधन बनाने से संसार के कारण बन जाते हैं अतः हेतु गलत होने से धर्म नहीं कहते हैं।

प्रश्न– 63–64 मुनि धर्म किसे कहते हैं? श्रावक धर्म किसे कहते हैं?

उत्तर जिन्होंने समस्त प्रकार से आरम्भ परिग्रह का त्याग नहीं किया, विषय कषायों का त्याग नहीं किया, आजीविका के साधनों से लिप्त हैं, अणुव्रतों का, मूलगुणों का पालन करते हैं ऐसे मोक्षमार्गस्थ श्रावकों के उचित आचरण को तथा तदनुकूल विचारों को श्रावक धर्म कहते हैं उपरोक्त कार्यों के त्यागी स्वाध्याय ध्यानादि कार्यों में रत, आसक्त, प्रीतिवान को मुनि कहते हैं और इनके गंगा नदी के निर्मल, स्वच्छ जल के समान आचार विचारों को मुनि धर्म कहते हैं।

प्रश्न– 65 आत्मा में अनन्त गुण हैं जो रत्न स्वरूप हैं फिर भी तीन को ही रत्न क्यों कहा जाता है?

उत्तर आत्मा में अनन्त गुणधर्म हैं जो हीरा मोती माणिक्य पन्ना पुखराज आदि रत्नों के समान पूर्ण रूप से निर्दोष हैं, शुद्ध हैं, ठोस हैं, सामान्य गुणधर्म हैं जो सभी छहों द्रव्यों में पाये जाते हैं। परनिरपेक्ष हैं, पूर्ण स्वतन्त्र हैं, संकर व्यतिकर दोष से रहित होने के कारण शुद्ध हैं, सभी कालों में सभी अवस्थाओं में पाये जाते हैं इसी कारण सभी धर्म जो अनन्त हैं वे मोक्ष के कारण नहीं मोक्ष के साधन नहीं, सुख के साधन नहीं। यदि हों तो सभी द्रव्यों को, सभी पदार्थों को मोक्ष की प्राप्ति हो जाये, सभी सुखी हो जायेंगे और ऐसा होने पर सभी द्रव्यों को अशुद्ध संसारी तथा विकारी मानने का भी प्रसंग आयेगा क्योंकि जो बंधेगा वही छूटेगा, जो दुःखी होगा वही सुख प्राप्त करेगा। अतः मोक्ष के साधन, सुख के साधन सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र हैं इस कारण इनके साथ तीन विशेषण लगाना उपयुक्त ही है, तीन ही मोक्ष के साधन है इसलिए तीन ही रत्न हैं, तीन ही प्रधान हैं, जैसे बरात में बराती कितने धनवैभव, यौवन, वस्त्राभूषण से सम्पन्न होने पर भी दूल्हा प्रधान होता है, मुख्य होता है इसी प्रकार वस्तु में अनन्तगुण अनन्तधर्म होने पर भी तीन ही प्रधान है इसलिए तीन ही रत्न हैं, अन्य नहीं, एक नहीं दो नहीं और इसके विपरीत तीन मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र ये संसार के साधन हैं, दुःख के साधन हैं।

प्रश्न— 66 सूत्रकारजी ने या ग्रन्थकारों ने संसार के कारण, आश्रव बंध के कारण मिथ्यादर्शन अविरति प्रमाद कषाय और योग ये 5 बताये हैं और यहाँ पर संसार के साधन तीन बताये जा रहे हैं तब यह तो पूर्वाचार्यों के कथन के साथ विरोध आ रहा है अतः यह आगम विरोध दोष क्यों नहीं हैं?

उत्तर विरोध दोष नहीं हैं किन्तु विवक्षा भेद है, शिष्य श्रोतागण तीन प्रकार के होते हैं। ग्रन्थकारों ने कहीं पर केवल एक मिथ्यादर्शन को ही संसार का साधन कहा है, 'त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि किंचित् मिथ्यात्वसमं तनूभृताम् अश्रेयः न र.क. 34' और संसार है अनेक प्रकार से अनर्थकारी ऐसा कहा है सो यह संक्षेप में समर्थ तीक्ष्ण बुद्धि वाले शिष्यों को, श्रोताओं को लक्ष्य में करके कहा है। कहीं पर तीन को अर्थात् मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र को संसार का साधन बताया। जैसे —''यदीय प्रत्यनीकानि भवन्ति भव पद्धति''—इस समीचीन सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के विपरीत तीन को संसार का साधन बताया, यह कथन मध्यम रुचि रखने वाले शिष्यों की और श्रोताओं की अपेक्षा से समझना। कहीं पर पाँच को साधन बताया जैसे कि मिथ्यादर्शन अविरति प्रमाद कषाय और योगों को संसार का कारण बताया यह कथन विस्तार रुचि वाले शिष्यों की अपेक्षा से कहा है ऐसा समझना। ये पाँच कारण उपरोक्त तीन कारणों में अन्तर्भाव को प्राप्त हो जाते हैं जैसे मिथ्यादर्शन मिथ्यादर्शन में, शेष चार कारण मिथ्याचारित्र में अन्तर्भाव को प्राप्त हो जाते हैं। बचा बीच का, मध्य का मिथ्याज्ञान। यह किसी में भी अन्तर्भाव को प्राप्त नहीं होता है यह ज्ञान न मिथ्या है न सम्यक्, सिर्फ ज्ञान ज्ञान स्वरूप ही है। मिथ्यात्वोदय अनंतानुबंधी कषायोदय के साहचर्य से मिथ्याज्ञान, सम्यक्मिथ्यात्वोदय से मिश्रज्ञान तथा मिथ्यात्वोदय आदि का अभाव होने से समीचीन कहलाता है। जैसे दूध जहर के साहचर्य से मारक और जहर के अभाव में जीवनदाता पुष्टिकारक हो जाता है। अतः जैसा आदि और अन्त होगा वैसा ही मध्य का होगा ऐसा न्याय है। इस कारण आचार्य के और आगम के अनुकूल कथन है, प्रतिकूल नहीं ऐसा समझना चाहिए।

प्रश्न— 67—69 आराधना किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम और फल क्या है?

उत्तर उत्कृष्ट पद मोक्षपद प्राप्त कराने के साधनभूत परिणामों या चर्या को आराधना कहते हैं। चार भेद हैं। सम्यक्त्वाराधना, ज्ञानाराधना, चारित्राराधना, तथा तपाराधना। संसार में उत्कृष्टपद पाना, धनवैभव, आधिपत्य प्राप्त होना यह ऐहिक फल है पुनः तप ग्रहण कर तदनुकूल तपश्चरण कर मोक्षसुख, आत्मसुख प्राप्त होना इनका मुख्य फल है।

प्रश्न— 70—72 अस्तिकाय किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन—कौन हैं?

उत्तर बहुप्रदेश, नाना अंश होने को अस्तिकाय कहते हैं। पाँच भेद हैं। जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय। अस्ति—सत् है, मौजूद है, अनादिकाल से है और अनन्तकाल तक रहने वाला है। काय— बहुप्रदेश है, नाना अंशों का एक अखण्ड पिण्ड है इसलिए दोनों को मिलाकर अस्तिकाय कहते हैं।

प्रश्न— 73—76 द्रव्य किसे कहते हैं? द्रव्य कितने हैं? नाम कौन—कौन हैं? विभाग

किस प्रकार है?

उत्तर सत् लक्षण वाले को, उत्पाद व्यय ध्रौव्य वाले को, गुण पर्याय वाले को, गुणों के समुदायों को अथवा त्रिकाली पर्यायों के पिण्ड को द्रव्य कहते हैं। द्रव्यों के छह भेद हैं। जीवद्रव्य, पुद्गलद्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य और काल द्रव्य चेतन, अचेतन, मूर्तिक, अमूर्तिक आदि भेद हैं।

प्रश्न– 77 कौन से द्रव्य चेतन हैं और कौन से द्रव्य अचेतन हैं?

उत्तर जीव द्रव्य चेतन है शेष पाँच द्रव्य अचेतन हैं क्योंकि ये पाँच द्रव्य सुख दुःख का अनुभव नहीं करते हैं।

प्रश्न– 78 कौन से द्रव्य मूर्तिक हैं और कौन से द्रव्य अमूर्तिक हैं?

उत्तर पुद्गल द्रव्य और संसारी जीवद्रव्य मूर्तिक हैं शेष पाँच द्रव्य अर्थात् सिद्धपरमेष्ठी और चार द्रव्य अमूर्तिक हैं।

प्रश्न– 79 मूर्तिक किसे कहते हैं और अमूर्तिक किसे कहते हैं?

उत्तर दृष्टिगोचर हो इंद्रियगोचर हो, रूप रस गंध स्पर्श वाला हो उसे मूर्तिक कहते हैं तथा जिसमें ये न पाये जायें उसे अमूर्तिक कहते हैं।

प्रश्न– 80 जीवद्रव्य को मूर्तिक क्यों कहा जाता है?

उत्तर जीवद्रव्य कर्मबन्ध की अपेक्षा संसारस्थ होने से मूर्तिक कहा जाता है किन्तु लक्षण की अपेक्षा अमूर्तिक है अतः सर्वथा न मूर्तिक है न अमूर्तिक है। सर्वथा एकरूप मानने से संसार मोक्ष, पुण्य पाप, धर्म अधर्म का अभाव हो जायेगा जिससे सर्वशून्यता का प्रसंग आता है अर्थात् लक्षण की अपेक्षा जीवद्रव्य अमूर्तिक है और कर्मबन्ध की अपेक्षा मूर्तिक है।

प्रश्न– 81–84 तत्त्व किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन–कौन हैं? इनको जानकर क्या करना चाहिए?

उत्तर परिणमन स्वभाव वाले को या भाववान् को तत्त्व कहते हैं। चार भेद हैं अथवा छह भेद हैं अथवा सात भेद हैं। ज्ञेय, हेय, उपादेय और ध्येयतत्त्व ये चार नाम तत्त्व के हैं। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल इन छह को भी तत्त्व कहा है। जीवतत्त्व, अजीवतत्त्व, आश्रवतत्त्व, बन्धतत्त्व, संवरतत्त्व, निर्जरातत्त्व और मोक्षतत्त्व ये सात तत्त्व हैं। इन सभी को स्व स्व लक्षण से जानकर भेद ज्ञान रूप से परिणमन कर 'सब तज हर भज' कहावत के अनुसार सभी का त्याग कर आत्म तत्त्व को प्राप्त करना चाहिए। यही परिश्रम का फल है।

प्रश्न– 85 ज्ञेयतत्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर गुरु उपदेश से अर्थात् आप्त, आचार्य, उपाध्याय और मुनियों के उपदेश से या इनके अभाव में, आगम के अध्ययन से तथा स्वयं के अभ्यास चिन्तन मनन से जीव और अजीव ये दो तत्त्व अपने अपने स्वसंयोगी, परसंयोगी या असंयोगी लक्षणों से जानने योग्य होने से ज्ञेयतत्त्व कहलाते हैं।

प्रश्न– 86 हेयतत्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर जो दुःख के कारण हैं, पतन के, भ्रमण के मलिनता के कारण हैं ऐसे आश्रवतत्त्व और बन्ध तत्त्व

गुरु उपदेश से, आगम के अध्ययन से और स्वसंवेदन ज्ञान से जानकर छोड़ने योग्य होने से हेयतत्त्व हैं।

प्रश्न– 87 उपादेयतत्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर जिस आचरण से या विचारों से स्वाधीनता प्राप्त हो, आत्मशुद्धि हो, सुख की प्राप्ति हो, मलिनता अशुद्धता दूर हो, संसार भ्रमण समाप्त हो उसको गुरुउपदेश, आगम अध्ययन और स्वसंवेदन ज्ञान से जानकर संवर निर्जरा तत्त्व को आत्मसात् करने को उपादेयतत्त्व कहते हैं।

प्रश्न– 88 ध्येयतत्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर जो प्राप्त करने योग्य है, चिन्तन मनन तद्रूप परिणमन करने योग्य है, संसार से अजीवद्रव्य अजीवतत्त्व के स्वभाव से विलक्षण स्वभाव वाला है, स्वाधीन है, पूर्ण स्वतन्त्र है ऐसे को गुरु उपदेश, आगम, अभ्यास और स्वसंवेदन ज्ञान से जानने योग्य मोक्षतत्त्व को ध्येयतत्त्व कहते हैं।

प्रश्न– 89 जीवतत्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर ज्ञाता दृष्टा जानने देखने वाले को, शुभाशुभ कार्य करने वाले को, इसका फल भोगने वाले को, संसार में भ्रमण करने वाले को तथा छूटने वाले को जीव तत्त्व कहते हैं।

प्रश्न– 90 अजीवतत्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर जीव तत्त्व के लक्षण से भिन्न विपरीत लक्षणवाले को अजीवतत्त्व कहते हैं।रूप रस गन्ध और स्पर्श स्वभाव वाले को अजीव पुद्गल तत्त्व कहते हैं। जीव और पुद्गल को क्षेत्रान्तर गमन क्रिया में उदासीन रूप से सहायक हो उसे धर्म अजीवतत्त्व कहते हैं। जो जीव और पुद्गल को स्थिररूप होने में, ठहरने में छाया की तरह उदासीनभाव से सहायक हो उसे अधर्म अजीवतत्त्व कहते हैं। जो समस्त द्रव्यों को अवगाहन देने में उदासीन रूप से सहायक हो उसे आकाश अजीव तत्त्व कहते हैं। जो समस्त द्रव्यों को पदार्थों को अपने अपने स्वभाव में परिणमन करने के लिए या विभाव विकार रूप में परिणमन करने के लिए बाह्यसाधन हो उसीको काल अजीवतत्त्व कहते हैं।

प्रश्न– 91 आश्रवतत्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर जब यह संसारी आत्मा अपने निज स्वभाव को भूलकर अजीव के साथ अथवा जीव और अजीव अपने–अपने स्वभाव को छोड़कर विकार रूप में परिणमन करने से भविष्य के लिए जो नवीन पुद्गलकर्म या भाव संस्कार आते हैं उसे आश्रव कहते हैं अथवा दोनों जीव और अजीव परस्पर में विकार रूप होकर तीसरी अवस्था को प्राप्त होते हैं उसे आश्रव तत्त्व कहते हैं जैसे हल्दी और चूना ये दोनों परस्पर में मिलकर अपने अपने पीले और सफेद रंग को छोड़कर एक तीसरे लाल रंग को प्राप्त हो जाते हैं अथवा इसी तरह बालक बालिका अपने अपने शील स्वभाव को छोड़कर परस्पर में मिलकर एक तीसरी कामवासना रूप विकार को प्राप्त कर संतान को जन्म देते हैं अर्थात् संतान पैदा करते हैं। इसी तरह आश्रव तत्त्व को समझना चाहिए।

प्रश्न– 92 बन्धतत्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर जब जीव और पुद्गल ये दोनों अपने अपने स्व स्वभाव को छोड़कर विकार रूप में परिणमन कर

दूध पानी या दूध और शक्कर की तरह एक क्षेत्रावगाही सम्बन्ध को प्राप्त होते हैं उसे ही बन्ध कहते हैं अथवा परस्पर के मिलन से जो कर्म या भावसंस्कार आत्मा के साथ स्थिरता को प्राप्त होते हैं उसे ही बन्धतत्त्व कहते हैं।

प्रश्न— 93 संवरतत्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर जो मन वचन और काय के व्यापार के द्वारा भविष्य के लिए कर्म और भाव संस्कार आ रहे थे उनको अपने उपयोग को आत्मोन्मुख लगाने से तथा विषय कषायों का त्याग कर सम्यक्रत्नत्रय से परिणत होकर बाह्य और अंतरंग विकार के रोकने को अर्थात् आने वाले द्रव्यकर्म तथा भावकर्मों के रोकने को संवर तत्त्व कहते हैं।

प्रश्न— 94 निर्जरातत्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर विषय कषायों के त्याग रूप, लौकिक स्वार्थ भाव को छोड़कर तप के द्वारा, ध्यान के द्वारा भूतकालीन कर्मों को तथा विकार रूप दुर्भावना के त्याग को, तद्रूप विकार स्वरूप परिणमन न करने को अर्थात् विकार रूप कर्म और पुद्गल कर्मों को एकदेश निकालकर फेंकने को निर्जरातत्त्व कहते हैं।

प्रश्न— 95 मोक्षतत्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर समस्त प्रकार से मन वचन और काय के व्यापार को समाप्त कर अपने निज रूप में पूर्ण रूप से स्थिर होकर अनन्तकाल के लिए द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मों को पृथक् कर देने को या पूर्ण रूप से शुद्धावस्था के प्राप्त कर लेने को मोक्षतत्त्व कहते हैं।

प्रश्न— 96 संसारस्थ दुःखी प्राणियों की दुःखमय, करुणामय पुकार को सुनकर क्या सिद्ध भगवान मोक्ष से पुनः संसार में आ सकते हैं?

उत्तर नहीं, कभी नहीं, सेंकड़ों कल्पकालों के व्यतीत हो जाने पर भी संसार में नाना तरह के कलह, कष्ट, उपद्रव संकट आने पर भी दुःखी प्राणी कितनी भी पुकार करें, आराधना करें, जप तप करें फिर भी वो मुक्त जीव संसार में नहीं आते क्योंकि संसार में आने के लिए विकार को प्राप्त करना होगा, मलमूत्र से भरे नरक के समान गर्भावास में रहना होगा, गर्भ की, जन्म की पीड़ा भोगनी पड़ेगी अतः इस कारण संसार में नहीं आते।

प्रश्न— 97 उदाहरण देकर समझाओ न?

उत्तर इस संसार में दूध से घी बनते सबने देखा है बहुतों ने बनाया भी है पर लाख प्रयत्न करने पर भी घी से दूध बनते किसी ने न देखा है न बनाया है इसी तरह संसार से मोक्ष होना पढ़ा है सुना है किन्तु मोक्ष से पुनः संसार में आना न पढ़ा है न सुना है न देखा है।

प्रश्न— 98 संसार में कुछ मतमतान्तर हैं जो पुनः संसार में मोक्ष से आना मानते हैं सो वह ठीक है क्या?

उत्तर उन्होंने मोक्ष नाम तो माना है, स्वीकार किया है किन्तु मोक्ष का क्या स्वरूप है, क्या अवस्था व्यवस्था है यह नहीं समझी तथा वैकुण्ठ को, स्वर्ग को ही स्वर्ग के अमरपद, अमरपर्याय को

देवपर्याय को मोक्षपद मानकर कथन किया इसी प्रकार विश्वास किया इसलिए पुनः संसार में मनुष्य पर्याय में आकर जन्म धारण करने को अवतार लेते हैं ऐसा विश्वास उन्होंने किया यदि वो ही सही परिभाषा समझ ले तो पुनः संसार में मोक्ष से आना जन्म मरण करना आदि दुःखमय हो जाना स्वीकार नहीं करेंगे न विश्वास करेंगे।

प्रश्न— 99—101 पदार्थ किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर भाव या पर्याय सहित को या पर्याय और गुण सहित द्रव्य को पदार्थ कहते हैं उपरोक्त सात तत्त्वों में ही पुण्य और पाप के मिलाने को पदार्थ कहते हैं, नव भेद हैं। जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध संवर निर्जरा मोक्ष पुण्य और पाप।

प्रश्न— 102 पुण्य किसे कहते हैं?

उत्तर जो आत्मा को पवित्र करें स्वयं पवित्र हो तथा सांसारिक उत्तमपद प्राप्त कराये इंद्रियजन्य सुख तथा विषय सामग्री अनुकूल वातावरण प्राप्त कराये उसे पुण्य कहते हैं। यह पुण्य लक्ष्यानुसार मोक्ष और संसार का साधन बन जाता है किन्तु यह पुण्य द्रव्य और भावरूप से पवित्र है, शुभ है, उत्तम है।

प्रश्न— 103 पाप किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर जो आत्मा को सत्कार्य से सद्विचारों से समीचीन वचनों से अलग कर दे लोकनिन्दित, मोक्षमार्ग के तथा मोक्षमार्ग की भूमिका के विरुद्ध आचार विचार हों उसे पाप कहते हैं अथवा प्रमादपूर्वक मोक्षमार्ग के विरुद्ध कार्य करने को पाप कहते हैं। पाप के पाँच भेद हैं। हिंसा पाप, झूठ पाप, चोरी पाप, कुशील पाप, और परिग्रह पाप।

प्रश्न— 104—05 सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं? सम्यग्दर्शन के आठ अंग और आठ गुण कौन—कौन हैं?

उत्तर प्रत्येक वस्तुयें अनादि अनन्त हैं इनकी अवस्थायें भी अनादिअनन्त, अनादिसान्त, सादिसान्त और सादिअनन्त हैं। इनके स्वभाव स्वसापेक्ष और परसापेक्ष भी हैं तथा स्वपरसापेक्ष या निरपेक्ष सर्वांगणीय यथावत् जैसी अवस्था स्याद्वादांकित दर्शायी गई है वैसी ही तथा देवशास्त्रगुरु की आज्ञा से और ये ही मोक्षमार्ग में, आत्मकल्याण में सहायक हैं ऐसा विश्वास करने को सम्यग्दर्शन कहते हैं।

आठ अंग— निःशंकित अंग, निःकांक्षित अंग, निर्विचिकित्सा अंग, अमूढ़दृष्टि अंग, उपगूहन अंग, स्थितिकरण अंग, वात्सल्य अंग और प्रभावना अंग।

आठ गुण—संवेग, निर्वेद, निन्दा, गर्हा, उपशम, भक्ति, अनुकम्पा और वात्सल्य। इन आठ अंग और गुणों को अपनी आत्मा में दिनचर्या में उतारना चाहिए क्योंकि ये स्वपर प्रत्यय हैं। इनके माध्यम से स्वपर का कल्याण होता है। आत्मा की शुद्धि होती है तथा मोक्षमार्ग की प्रभावना होती है, मोक्ष की प्राप्ति होती है।

प्रश्न— 106—08 धर्म किसे कहते हैं? फल क्या है? किस जीव को प्राप्त होता है?

उत्तर जो संसारी प्राणियों को जन्म मरण, मान अपमान आदि नाना तरह के दुःखों से छुड़ाकर आत्म सुख प्राप्त कराये उसे धर्म कहते हैं। विषयकषाय रूपी आकुलता के अभाव को, त्याग करने को, मोक्ष प्राप्ति को आत्मशान्ति को धर्म का फल कहते हैं। यह फल वीतराग सर्वज्ञ मुनियों को तथा सिद्ध भगवन्तों को प्राप्त होता है। इसको प्राप्त करने वाला भव्यजीव ही होना चाहिए, अभव्य जीव नहीं।

प्रश्न– 109 आत्मशान्ति आत्मसुख कैसे प्राप्त हो?

उत्तर उक्त धर्म को आत्मसात् करने से अर्थात् तद्रूप परिणमन करने से या परिणति के मार्ग में गमन करने से आत्मशान्ति की, आत्मसुख की प्राप्ति होती है अथवा सर्व विकल्प जालों को छोड़कर स्वसन्मुखता होने से आत्मशान्ति की प्राप्ति होती है।

प्रश्न– 110 धर्म के अनेक भेद बताये हैं उनमें से किस धर्म के अवलम्बन से आत्मशान्ति की प्राप्ति होती है, क्या सभी के अवलम्बन से आत्मशान्ति की प्राप्ति होती है?

उत्तर उपरोक्त सभी धर्मों की परिभाषाओं में केवल एक वस्तु के स्वभाव को धर्म कहते हैं इस परिभाषा को छोड़कर शेष सभी धर्मों की परिभाषाओं को अपने पद के और अभ्यास के अनुसार धारण करने से, तद्रूप परिणमन करने से आत्मशान्ति की, मोक्ष की प्राप्ति होती हैं। इस कारण सतत अभ्यास करते रहना चाहिए।

प्रश्न– 111–112 यहाँ किस धर्म से प्रयोजन है? धर्म क्यों करना चाहिए?

उत्तर यहाँ पर आचरण धर्म से प्रयोजन है क्योंकि मोक्ष की प्राप्ति साक्षात् परम यथाख्यातचारित्र से होती है। परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन से और केवलज्ञान से नहीं क्योंकि परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन और केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद आयु पर्यन्त संसार में रहना पड़ता है किन्तु जिस समय परमयथाख्यात चारित्र प्राप्त होता है। उसी समय शीघ्र ही मोक्ष के लिए गमन होता है अतः कर्म बन्धन को छोड़ने के लिए, आत्मसुख शान्ति की प्राप्ति के लिए आचरण धर्म को स्वीकार कर आत्मसात् करना चाहिए।

प्रश्न– 113 आत्मस्वभावभूत धर्म से आत्मशान्ति की प्राप्ति क्यों नहीं हो सकती?

उत्तर नहीं हो सकती है क्योंकि आत्मस्वभावभूत धर्म पारिणामिकभाव है और पारिणामिक भाव संसार मोक्ष का कारण नहीं। यदि पारिणामिक भाव को मोक्ष का कारण माना जाय तो अचेतन जड़ स्वभाव वाले पुद्गल द्रव्य धर्मादि द्रव्यों को और अभव्यों को भी मोक्ष प्राप्त हो जाये, आत्मशान्ति की प्राप्ति हो जाये या होनी चाहिए किन्तु मोक्ष की प्राप्ति संसार पूर्वक होती है, संसार आश्रव बन्ध पूर्वक होता है, आश्रव बंध विकार पूर्वक होते हैं जिससे धर्मादि द्रव्यों को अशुद्ध और संसारी मानने का भी प्रसंग आयेगा जो आगम से अनुमान से प्रत्यक्ष से विरोध आता है अतः पारिणामिक भाव द्रव्य स्वरूप है, स्वाभाविक है, निष्क्रिय है, परनिरपेक्ष है, कारण कार्य या कार्य कारण भाव से रहित है इस कारण वस्तु स्वभाव धर्म से आत्मशान्ति की, मोक्ष सुख की प्राप्ति नहीं होती है।

आत्मसुख शान्ति की प्राप्ति उपशमवेदक और क्षायिक भाव से होती है।

प्रश्न– 114 इस प्रकार इन धर्मों की प्राप्ति कैसे हो सकती हैं?

उत्तर कर्मसिद्धान्तानुसार क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि और करणलब्धि के साधकतम परिणामों से रत्नत्रय धर्म, उत्तम क्षमादि धर्मों की प्राप्ति होती है जो नियमतः भव्य जीव ही होना चाहिए, अभव्य नहीं। चरणानुयोगानुसार सदाचार, सद्विचारों का पालन, मूलगुण, मोक्षमार्ग संबंधी षडावश्यक रूप में परिणमन करने से, मिथ्यात्व, अन्याय और अभक्ष्य का त्याग करने से, आत्मगत मायाचार का, परगत मायाचार पूर्वक कपट व्यवहार का त्याग करने से, पक्षपात पंथवाद का त्याग करने से तथा आध्यात्म की अपेक्षा अन्तर बाह्य विकल्पजालों का त्याग करने से इन रत्नत्रय आदि अनन्तचतुष्टय रूपी धर्मों की प्राप्ति होती है।

प्रश्न– 115–16 लब्धि किसे कहते हैं? किसकी प्राप्ति को लब्धि कहते हैं?

उत्तर प्राप्ति को लब्धि कहते हैं। मोहनीय कर्म के कुछ अंशों में उदय होने पर तीव्रोदय के अभाव में तथा ज्ञानावरण कर्म का विशेष क्षयोपशम होने पर जो तत्त्वों के और आत्मा के सम्बन्ध में तद्नुरूप परिणमन करने के विचारों को लब्धि कहते हैं अथवा विशेष ज्ञान की प्राप्ति को लब्धि कहते हैं।

प्रश्न– 117 यदि लब्धि का यह अर्थ है तो समस्त संसारी प्राणियों में लब्धि प्राप्ति का प्रसंग क्यों प्राप्त न होगा?

उत्तर सामान्य ज्ञान की प्राप्ति का नाम लब्धि नहीं है किन्तु जिस ज्ञान के द्वारा आत्म तत्त्व की खोज का समीचीन प्रमाण नय निक्षेपों के द्वारा सतत प्रयत्न हो, प्राप्त करने की तीव्र लालसा हो, आत्मा के शाश्वत सुख की प्राप्ति के लिए तीव्र लगाव झुकाव हो उसे लब्धि कहते हैं।

प्रश्न– 118–120 लब्धियों के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं? प्रत्येक का समुच्चय काल कितना है?

उत्तर भेद पाँच हैं। नाम क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि और करणलब्धि। प्रत्येक का अलग अलग काल अन्तर्मुहूर्त है और सबको मिलाकर भी अन्तर्मुहूर्त काल होता है तथा लब्धियों की सन्तति परम्परा की अपेक्षा से काल आयु पर्यन्त होता है। जिससे जीव मोक्षमार्ग को, आत्मसुख को प्राप्त होता है।

प्रश्न– 121–22 क्षयोपशमलब्धि किसे कहते हैं? इसका स्वामी कौन है?

उत्तर दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय कर्म के मन्दोदय होने पर तीव्रोदय के अभाव में तथा मतिज्ञानावरण कर्म और श्रुतज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर परिणामों में निर्मलता, पाप कर्म की प्रकृतियों में तीव्रोदय का अभाव, आत्म सम्मुख उपयोग को लगाने से जो भाव हुए उसे क्षयोपशमलब्धि कहते हैं। यह लब्धि चारों गतियों के सैनी, पंचेंद्रिय, पर्याप्त, मिथ्यादृष्टि, शुभ लेश्या वाला, अशुभ लेश्या वाला, जागृत, श्रुताज्ञानोपयोग से परिणत होता है तथा सापेक्ष धर्मयुक्त आत्मा को प्राप्त करने का तीव्र लालसी होता हैं क्योंकि इष्ट की प्राप्ति तीव्र लगन से होती है।

प्रश्न– 123–124 विशुद्धिलब्धि किसे कहते हैं? इसका स्वामी कौन है?

उत्तर जिन परिणामों से नवीन पाप कर्म प्रकृतियों की स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध में हीनता हो तथा आत्मसुखशान्ति की प्राप्ति में सहायभूत पुण्य कर्म प्रकृतियों के स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध में वृद्धि हो उसे विशुद्धिलब्धि कहते हैं। इस लब्धि वाले के परिणाम अहंकार, ममकार, पंथवाद, पक्षपात, परम्परावाद जो विकारी हैं, संसारी हैं, संसारमार्गी हैं, अशुद्ध हैं, पतित हैं आदि इन परिणामों का त्यागी होना चाहिए और सरल परिणामी निष्कषाय, स्वच्छ परिणाम वाला, संक्लेश रहित होना चाहिए, अशुभ परिणामों में हीयमान परिणाम वाला होना चाहिए तथा मोक्षमार्गस्थ तत्त्वों का चिन्तन करने वाले को विशुद्धिलब्धि वाला कहते हैं।

प्रश्न– 125–26 अहंकार ममकार किसे कहते हैं? अहंकार ममकार का त्यागी हो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर ज्ञान, पूजा, जाति, कुल आदि के माध्यम से मद घमण्ड करने को अहंकार कहते हैं मानी रावण के समान कहते हैं। ममकार लोभी को विषय भोगों में तथा विषय भोगों की सामग्री में तीव्र लोलुपी होने को ममकार कहते हैं। अतः जो तीव्र अहंकारी ममकारी है या इन अहंकार ममकार में उपयोग लगा रहा है उसके परिणाम आत्म सम्मुख कैसे हो सकते हैं? परिणाम निर्मल कैसे हो सकते हैं? अतः विशुद्धिलब्धि में अहंकार ममकार का त्यागी हो ऐसा कहा है क्योंकि जो अपनेको बड़ा, महान मानकर तथा दूसरों को छोटा मानकर निकृष्ट समझता है, तिरस्कार, अपमान करता है ऐसा अहंकारी तथा त्रिकाल और त्रिलोक सम्बन्धी विषय भोगों की सामग्री चेतन अचेतन और मिश्र वस्तुओं में जो मोही होता है ऐसे ममकारी का परिणाम तत्त्व चिन्तन में मन स्थिर कैसे हो सकता है इसलिए जो संसार पतन से बचना चाहते हैं उन्हें अहंकार और ममकार का त्याग करना चाहिए अथवा मान कषायोदय से उत्पन्न मैं हूँ इस भाव को अहंकार तथा लोभ कषायोदय से उत्पन्न ये मेरे हैं मैं इनका हूँ इस भाव को ममकार कहते हैं।

प्रश्न– 127–30 परम्परा किसे कहते हैं? पंथवाद किसे कहते हैं? पक्षपात किसे कहते हैं? इनका त्यागी हो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर संसारमार्ग को बढ़ाने वाली लौकिक पद्धति को, जन्म मरण शरीर के अलंकार शृंगार विवाह आजीविका सम्बन्धी सन्तति को परम्परा कहते हैं। लौकिक अंसयमी विषय कषायी आर्तध्यानी रौद्रध्यानी ख्याति पूजा लाभ से युक्त मोहियों के द्वारा चलाये गये मार्ग को पंथवाद कहते हैं। जो अपने विषय भोगों में लौकिक कार्यों में सहायक थे, हैं उनके गलत कार्यों को देखकर सुनकर भी उत्साहित करना, सहायक होना, बल पहुंचाना आदि को पक्षपात कहते हैं। जो विवेकहीन होकर असंयमी विषयकषायी जीवों की सन्तति से बंधा हुआ है, प्रीतिवान है वह उग्र परिणामी तत्त्व का चिन्तन कैसे कर सकता है इसलिए ऐसी लौकिक परम्पराओं का त्यागी हो, वैराग्य युक्त हो। पंथवाद का अर्थात् तेरापंथ, बीसपंथ, मुमुक्षुमण्डल कहानजीपंथ का त्यागी हो, आग्रह रहित होना चाहिए। जो इनका आग्रही है वह जिनेन्द्र का मतानुयायी अनुगामी कैसे हो सकता है? जब ये तीनों जैन हैं, देवशास्त्रगुरु के भक्त हैं और एक दूसरे का परस्पर में खण्डन करते हैं

मिथ्यादृष्टि पापी कहते हैं तो क्या जलता हुआ दीपक किसी दूसरे दीपक का विरोध करता है? कि तूँ अभी प्रकाश मत कर। दीपक कभी विरोध नहीं करता पर ये जैन जिनेंद्र मतानुयायी बनकर भी जिनेन्द्र के मत का ही विरोध करते हैं तो वे धर्मात्मा कैसे? जो धर्म का, धर्मात्मा का विरोध कर जिनेन्द्र के द्वारा निर्ग्रन्थ दिगम्बराचार्यों के द्वारा प्ररूपित नहीं, स्थापित नहीं, असंयमी गृहस्थ विषय कषायी जीवों की कषाय के फल हैं, ये तीनों ही नामधारी जैन शास्त्रों को लेकर बताते हैं। समस्त मतमतान्तर किसी न किसी नय के विषय हैं फिर भी प्रतिपक्षी धर्म का, नियम का सर्वथा सर्वत्र निषेध कर देने से, स्वीकार न करने से मिथ्या और मिथ्यादृष्टि बन जाते हैं ऐसे ही ये जैन परस्पर में खण्डन करते हुए अपने आप को ही खंडित कर लेते हैं, दूषित हो जाते हैं और निर्दोष निष्कलंक जिनवाणी का अवर्णवाद करते हैं। जब हर तरह से प्रमाण नय निक्षेप से प्रत्यक्ष और अनुमान से निर्दोष सिद्ध होने पर भी विश्वास न कर सदोष विश्वास कर लेते हैं तब देव और गुरु को कैसे मानेंगे कैसे विश्वास करेंगे? अर्थात् इन पंथवादियों ने देवशास्त्रगुरु का अवर्णवाद किया और भोले प्राणियों को भी मिथ्यामार्ग में लगाया और लगा रहे हैं। सूत्रकारजी ने कहा है– **''केवलि श्रुत संघ धर्म देवावर्णवादो दर्शन मोहस्य मिथ्यात्वकर्मस्य''– सयोगकेवलि, अयोगकेवलि और सिद्धकेवलियों में झूठा असद्दोष लगाना, श्रुत शास्त्रों में अपनी कल्पना से मिथ्यादोष लगाना, चतुर्विध मुनि संघ में अनर्गल दोषारोपण करना, आचरण धर्म और चारों निकायों के देवों में मिथ्या आरोप लगाने से मिथ्यात्व कर्म का आश्रव होता है। अभी वर्तमान में इन विषय कषायी जीवों ने देव शास्त्र और गुरुओं का ही जैसे अपने बेटों में पूर्ण सम्पत्ति का बटवारा कर दिया फिर बाद में बेटों ने धक्का मार निकालकर बाहर कर दिया इसी तरह पंथवादियों ने मंदिरों का, शास्त्रों का और मुनियों का अवर्णवाद किया बंटवारा कर दिया कि यह हमारा मंदिर है और वह तुम्हारा मंदिर और इसी तरह गुरु। इसी कारण इन पथंवादियों ने मोक्षमार्ग के साधनों का बटवारा कर रखा है। पाप कार्यों में लौकिक विवाहादि व्यापारादि कार्यों में सब मिलकर एकसाथ रहते हैं और मोक्ष के साधनों में मंदिर तथा गुरु में पंथ भेद लगाकर अलग अलग साक्षात् गुरुओं में भी पंथवाद का दोषारोपण करके गुरुओं में भी हिस्साबाट बटवारा कर लेते हैं। इस कारण कहे अनुसार विशुद्धिलब्धि में पंथवाद का दूर से ही त्याग कर देना चाहिए या पूर्व की भूमिकानुसार त्यागी होना चाहिए। जो मोक्षमार्ग के विरुद्ध आचरण करनेवाले हैं उनकी ख्याति पूजा लाभ की दुर्भावना रखकर गलत कार्य का, गलत करने वालों का, गलत करते रहने वाले पंडितों का भी आदरसम्मान, प्रशंसा, गुणकीर्तन संगति का त्याग करना चाहिए। तभी निष्पक्ष निरपेक्ष परिणाम हो सकते हैं, विशुद्धिलब्धि होती है और गलत का पक्ष लेने से तीव्र कषाय होती है प्रायः कर नीति न्याय लुप्त हो जाती है अतः पक्षपात का भी त्यागी होना चाहिए अथवा मोक्षमार्ग के बाहर अनेकांत के विरोधी असंयमी विषय कषायी मनुष्यों की परम्परा को पंथवाद कहते हैं तथा असत्मार्ग, विषय भोगों का मार्ग तथा अन्य इनमें लम्पटी जीवों को साथ देकर उनके अनुकूल अपने को समर्पण करने को पक्षपात कहते हैं। इसलिए इन तीनों परम्परा, पथंवाद, पक्षपात का त्यागी हो ऐसा कहा है।**

प्रश्न– 131 देव शास्त्र गुरु या चेतनाचेतन धर्मायतन में मैं इनका हूँ मैं हूँ इसे

अहंकार और ये मेरे हैं इसे ममकार कहते हैं या कह सकते हैं?

उत्तर नहीं, इस अर्थ को अहंकार ममकार नहीं कहते हैं, न कह सकते हैं उक्त साधन मोक्ष के लिए, मोक्षमार्ग में आने के लिए होते हैं, आत्मशान्ति के लिए कारणभूत हैं अतः इनके प्रति मेरापन होने को ममकार न मानकर वात्सल्य अंग कहना चाहिए, मानना चाहिए जो सम्यग्दर्शन का अंग है। यदि आप वात्सल्य को ममकार, मानकषाय, लोभकषाय कहोगे तो साधर्मियों के साथ वैर विरोध लड़ाईझगड़े को क्या कहोगे? यदि साधर्मियों के प्रति प्रेम को ममकार और साधर्मीपने को अहंकार कहते हो तो विषय भोगों में साथ निभानेवालों को जो अधोगति का मार्ग प्रशस्त करते हैं ऐसे परिवार के सदस्यों को और इनके प्रेम को क्या कहोगे? यदि दोनों के प्रेम को ममकार कहोगे तो जिस प्रकार परिवार का प्रेम स्वार्थपूर्वक होता है, पापवर्धक होता है, संसार में भ्रमण करानेवाला है वैसा ही प्रेम देवशास्त्रगुरु का भी संसार में भ्रमण करायेगा, पाप की वृद्धि होगी तब देवशास्त्रगुरु और परिवार के सदस्य एक ही हुए तो संसारमार्ग और मोक्षमार्ग में क्या अन्तर रहा?

प्रश्न— 132 इन बीसपंथ तेरापंथ कांजियों के पथंवाद और परम्परावाद से मोक्षमार्ग में क्या हानि है?

उत्तर इन पंथवादों से व्यवहार में समाज की शक्ति नष्ट होती है, धर्मायतन भी दूसरों के हाथ में जाते रहे हैं, जा रहे हैं और जाते रहेंगे, अपमान तिरस्कार होता है, सर्वत्र हीनदृष्टि से देखे जाते हैं। राज्य सरकार में भी सम्मान नहीं मिलता, परिणाम प्रेम बिगड़ने से पाप कर्मों में स्थिति अनुभाग शक्ति बंधरूप में अधिक पड़ती है, रत्नत्रय उत्पन्न होने की भूमिका नहीं बन पाती तथा रत्नत्रय हो तो छूट जाता है और भी अनेक हानियां होती है रोटीबेटी विवाहादि में भी परेशानियां आने लगती हैं। यहाँ तक की मोक्षमार्ग से अत्यन्त विपरीत आचरण करने वाले हीनजातियों के साथ बेटी का लेनदेन भोजन आदि कार्य प्रारम्भ होने से जातिसंकर वर्णसंकर दोष भी उत्पन्न होने लगते हैं तथा अनेकान्तवाद स्याद्वादधर्म की हानि होती है और यह बड़ा आश्चर्य है कि इस कलिकाल में या कलिकाल के प्रभाव से साधुवर्ग अनेकान्तवादी जैनों को अनेकान्तधर्म को समझाने में असमर्थ हैं किन्तु अन्यमति या विपरीत मिथ्यादृष्टि या एकान्त मिथ्यादृष्टि जैनाभासी जो वास्तविक जैन नहीं हैं वे परीक्षाप्रधानी या परम्परागत आज्ञाप्रधानी जैनों को समझाने के लिए अनेकान्त का चोला धारण करके आ गये और बीच में ही जैनों की अखण्ड समाज की अखण्ड शक्ति को तोड़फोड़ कर नया अपना पंथ बनाकर मरण को प्राप्त हुए और वह समाज आज भी पंथवाद का जहर पीकर मोक्षमार्ग से पतित हो चुकी और हो रही हैं। जैसे जलती हुई सिगडी को हटा देने से भी वह भूमि जलती हुई सिगड़ी के समान ही जलाने का काम करती है। अतः पापभीरु दुःख से भयभीतों का कर्तव्य है कि वे सावधान रहें और सतत पठनपाठन में लीन हों।

प्रश्न— 133 क्या बीसपंथाम्नाय का या तेरापंथाम्नाय का या कानजीपंथाम्नाय का या परम्परा का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है?

उत्तर नहीं, जिनोपदेश न होने से इनका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन नहीं मिथ्यादर्शन है क्योंकि ये सभी अहंकारी ममकारी बने हुए हैं। परस्पर में शत्रु बने हुए हैं, धर्म को बदनाम करते हैं।

प्रश्न– 134 इनका श्रद्धान करना मिथ्यादर्शन क्यों कहा?

उत्तर इनका श्रद्धान करना मिथ्यादर्शन इसलिए कहा है कि ये सभी अपने आपको सम्यग्दृष्टि मानकर दूसरे को मिथ्यादृष्टि मानते हैं, अपमान तिरस्कार करते हैं, इन उक्त शरीरधारियों ने मंदिर का गुरुओं का भी बटवारा कर लिया है। अपने अपने दुराग्रहानुसार मन्दिरों में नाम डाल दिये हैं और गुरुओं का नाम लेकर पुकारते हैं तथा अपने अभिप्राय के विरुद्ध किसी आर्षग्रन्थ में कुछ लिखा मिल गया तो इनको बोलने में देर नहीं लगती है कि यह तो इस पंथ का शास्त्र है, शीघ्र ही मन विकृत हो जाता है, नाक सिकोड़ लेते हैं या कुत्तों जैसा लड़ने झगड़ने लगते हैं। अतः इनका श्रद्धान करना मिथ्यादर्शन कहा है यह निर्दोष कथन है क्योंकि वर्तमान में इन सब नाम धारी जैनों का विरुद्ध आचार विचार प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है और अनुभव में भी आ रहा है।

प्रश्न– 135 तो फिर किसका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहा है?

उत्तर देवशास्त्रगुरु का, तत्त्वों का, पदार्थ आदि का श्रद्धान करना तथा अपनी आत्मा का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहा है अतः आत्मकल्याण के इच्छुक महात्माओं को इनका दुराग्रह विष के समान जहरीला जानकर दूर से ही छोड़ देना चाहिए।

प्रश्न– 136–37 देशनालब्धि किसे कहते हैं? उपदेश देने का अधिकारी कौन है कि जिसके द्वारा तत्त्वप्ररूपणा सम्यग्दर्शन को रत्नत्रय को प्राप्त कराने में सहायक हो सके?

उत्तर जो परिणामों में निर्मल हो, निर्ग्रन्थ हो, आरम्भ परिग्रह का त्यागी हो, ज्ञान, ध्यान, तप, स्वाध्यायादि कार्यों में संलग्न हो, पक्षपात, पंथवाद, परम्परावाद के आग्रह का तथा इनका भी त्यागी हो, विवेकवान हो, स्वयं निष्पक्ष चिन्तक हो ऐसे परम वीतरागी दिगम्बराचार्य, उपाध्याय, साधु हो इनके उपदेश से, इनके सान्निध्य से रत्नत्रय की उत्पत्ति हो सकती है अतः उपदेश को सुनकर ग्रहण करना, धारण करना और उपयोग में लाना इन तीन कार्यों को देशनालब्धि कहते हैं क्योंकि इससे ही मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति होती है, अन्य प्रकार से नहीं।

प्रश्न– 138–39 देशना देने वाला किस प्रकार का होना चाहिए? देशना भी किस प्रकार की होनी चाहिए?

उत्तर देशना देने वाला दिगम्बराचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठी होना चाहिए क्योंकि इनकी आत्मा स्वच्छ दर्पण के समान निर्मल, पवित्र, संयम, तप, त्याग आदि सहित, विकार रहित होती है, चर्या चर्चा आप्ताज्ञानुसार होती है। इनके द्वारा बताये गये मार्ग से, उपाय से सम्यग्दर्शन की रत्नत्रय की प्राप्ति होती है जैसे स्वच्छ दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब सही स्वच्छ दिखाई देता है तथा मलिन आचरण वाले साधुओं से, गृहस्थों के उपदेश से रत्नत्रय की उत्पत्ति नहीं होती है क्योंकि मलिन दर्पण में प्रतिबिम्ब स्वच्छ न पड़कर मलिन पड़ता है इसी तरह मलिन चर्या चर्चा होने से मलिन आत्माओं के माध्यम से रत्नत्रय की उत्पत्ति न होकर पंथवादादि, विषय कषायों की उत्पत्ति हो जाती है। जो शास्त्रों में पढ़ा जाता है और वर्तमान में देखा जा रहा है। श्री भगवान महावीर के

मोक्ष में जाने के बाद भ्रष्ट आचार विचारवालों से दिगम्बर श्वेताम्बर भेद पड़ा फिर बाद में दिगम्बरों में भेद तेरापंथ का बीज बोने वाले पं० बनारसीदासजी जो कुछ जन्मजात श्वेताम्बर स्थानकवासी थे उन्होंने बीज बोया बाद में इस बीज को फलवान बनाने में पं० टोडरमल्लजी ने या इनके आगे पीछे के पंडितों ने अपने उपदेश से तेरहपंथ बीसपंथ को जन्म दिया अर्थात् अध्यात्म के नाम पर नामकरण हुआ, भेद डाला और इस शताब्धी में जन्में स्थानकवासी मुँहपट्टी वाले साधु कानजी स्वामी ने मुमुक्षुमण्डल या अपने नाम से कांजीपंथ की स्थापना की। यह बड़ा आश्चर्य है कि वर्तमान के जैनों के लिए मोक्षमार्ग को बताने वाले अवास्तविक जैन हुए। जब जब धर्म की गद्दी को असंयमी गृहस्थ सम्भालेंगे तब तब धर्म में भेद, फूट, पंथवाद की उत्पत्ति होती रहेगी इसलिए उपदेष्टा देशना देनेवाला दिगम्बर निर्ग्रन्थ होना चाहिए, गृहस्थ नहीं। उपदेश मोक्षमार्गोपयोगी ऐसे छह द्रव्य, सात तत्त्व, नव पदार्थ, पाँच अस्तिकायों का होना चाहिए, मनोरंजन का नहीं क्योंकि औषधि रोगी की इच्छानुसार न होकर रोग की विरोधी होती है तभी रोग नष्ट होता है अन्यथा रोगी नष्ट हो जाता है। इसी तरह यदि उपदेश भोगियों की इच्छानुसार है तो भोगी मोक्षमार्ग से नष्ट भ्रष्ट हो जाता है इस कारण उपदेश कर्ता पंथवाद, पक्षपात, परम्परावाद का त्यागी हो। उक्त दोष वक्ता और श्रोता दोनों में नहीं होना चाहिए जैसे बीज खाद पानी और भूमि योग्य हैं तो योग्य फल प्राप्त होता है तथा अयोग्य हैं तो अयोग्य फल प्राप्त होता है।

प्रश्न— 140—41 देशनालब्धि में आचार्यादि को क्यों ग्रहण किया? तीर्थंकरादि और सामान्यकेवलियों को ग्रहण क्यों नहीं किया?

उत्तर आचार्यादि तीन परमेष्ठी सर्वत्र विचरण करते हैं इनकी धर्मसभा में भव्य, अभव्य, आर्य, मलेच्छ, सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, जैन, अजैन, गृहस्थ, साधु, सात्विक आहार विहार करने वाला, मांसाहारी शराबी आदि सभी प्रवेश कर धर्मोपदेश सुन सकते हैं, सुनते हैं किन्तु तीर्थंकरकेवली की धर्मसभा में अभव्य मिथ्यादृष्टि विरुद्ध आचार विचार वाले शूद्र प्रवेश नहीं कर पाते हैं तथा लब्धिसार ग्रन्थजी में देशनालब्धि का कथन करते हुए आचार्य श्री नेमिचन्द्रजी सिद्धान्त चक्रवर्ती ने देशनालब्धि के वर्णन में (सूरि पहुदि—आचार्य प्रभृतिः) आचार्यादि का ग्रहण किया है। तीर्थंकरकेवली का ग्रहण नहीं किया क्योंकि इनकी धर्मसभा में एकमात्र सम्यग्दृष्टि ही होते हैं ऐसा तिलोयपण्णत्ति से भी जाना जाता है। और कहावत भी है कि 'जहाँ न पहुंचे रवि वहाँ पहुंचे कवि'। अर्थात् सूर्य के समान तीर्थंकर और आचार्यादि दीपक के समान है क्योंकि जहाँ सूर्य नहीं जाता है वहाँ पर दीपक से काम चल जाता है।

प्रश्न— 142 तो देशनालब्धि में सामान्य सर्वज्ञकेवलियों को ग्रहण करना चाहिए?

उत्तर जो सामान्य सर्वज्ञकेवली तीर्थंकर प्रभु के साथ विहार करते हैं तथा समवशरण के अन्दर चैत्यभूमि चैत्यवृक्ष और भी अनेक कूटस्थानों में विराजमान होकर गन्धकुटी में भव्य सम्यग्दृष्टियों को उपदेश देते हैं यहाँ पर भावमिथ्यादृष्टि जीव हो सकते हैं पर द्रव्य मिथ्यादृष्टि अन्यलिंगी पाखण्डी सम्भव नहीं हैं क्योंकि समवशरण के चारों दिशाओं के चारों दरवाजों पर चार मानस्तम्भ

मौजूद हैं जिनको देखकर तीव्र भावमिथ्यात्व, द्रव्यमिथ्यात्व वाले अन्य लिंगी भी नहीं पहुंच पाते। इस कारण देशनालब्धि में सामान्य सर्वज्ञकेवली को ग्रहण नहीं किया है।

प्रश्न– 143 समवशरण के बिना अलग से विहार करने वालों की गंधकुटी में द्रव्य मिथ्यादृष्टि पहुंच सकते हैं क्या?

उत्तर नहीं, वहाँ भी नहीं पहुंच पाते क्योंकि सामान्यकेवलियों के विहार की वार्ता का प्रचार प्रसार ज्यादा नहीं हो पाता कि सामान्य प्रजा को मालुम हो जाय जैसे आजकल जिस संघ के साथ प्रतिष्ठा प्राप्त सेठ और पंडित लग गये उन संघों का प्रचार प्रसार खूब हो रहा है सभी को मालूम हो जाता है कि संघ का विहार हो रहा है, गाजे बाजे के साथ, वैभव के साथ अगवानी होती है या विहार कराया जाता है उनकी सभा में श्रोताओं की संख्या अधिक होती है, सामान्य जनता सामान्य श्रावक श्राविकाओं को दर्शन दुर्लभ हो जाते हैं। इसी तरह सामान्यकेवलियों के विहार की वार्ता सभी को मालुम नहीं हो पाती, न धर्मसभा में श्रोताओं की संख्या अधिक होती है जैसे सामान्य मुनियों के विहार तथा धर्मसभा में श्रोताओं की संख्या बहुत कम होती है। कोई ऐसा मत समझना कि वर्तमान बीसवीं शताब्दी के मुनियों की तुलना के समान तीर्थंकर सर्वज्ञकेवली या सामान्यसर्वज्ञकेवलियों की तुलना कर दी। केवल वैभव वालों की संगति से यह बाह्य प्रचार प्रसार में विषमता होती है। इसी तरह तीर्थंकर सर्वज्ञ केवली के साथ इन्द्र चक्रवर्ती आदि होने से प्रचार प्रसार अधिक होता है किंतु सामान्य सर्वज्ञकेवली के साथ इन्द्रादि देवगण न होने से इतना प्रचार प्रसार नहीं हो पाता है ऐसा अनुमान ज्ञान लगाया है विशेष तो विशेष ज्ञानीजन जाने। इसमें हमारे लिए कोई खेद की बात नहीं है।

प्रश्न– 144 तीर्थंकर सर्वज्ञ केवली के समवशरण में और सामान्यकेवलियों की गन्धकुटी में अर्थात् दोनों की धर्मसभा में क्या अन्तर है?

उत्तर समवशरण और गन्धकुटी की धर्मसभा में कोई अन्तर नहीं है, दोनों ही केवली मोक्षमार्ग का, छह द्रव्यों का, सात तत्त्वों का, नव पदार्थों का, पंचास्तिकायों का उपदेश करते हैं दोनों ही सर्वज्ञकेवली हैं, तद्भव मोक्षगामी हैं, वीतरागी हैं, हितोपदेशी हैं इस कारण कोई अन्तर नहीं है, दोनों ही पुण्य के फल हैं पुण्यफला अरहंता इतना अवश्य है कि तीर्थंकर प्रकृति के बन्ध, उदय और सत्व की अपेक्षा अन्तर अवश्य है सो यह अन्तर आत्मकृत नहीं किन्तु कर्मकृत है। अतः धर्मोपदेश की अपेक्षा कोई अन्तर नहीं बाह्य वैभव की अपेक्षा अन्तर अवश्य है। क्षेत्र विस्तार की अपेक्षा भी अन्तर माना जा सकता है। इसलिए देशनालब्धि में आचार्य उपाध्याय और साधु परमेष्ठी को ग्रहण किया है शेष को नहीं ऐसा समझना चाहिए।

प्रश्न– 145–46 ग्रहण करना ऐसा देशनालब्धि में क्यों कहा? ग्रहण करना किसे कहते हैं?

उत्तर स्थिर मन से गुरु के उपदेश को सुनकर समझने को तथा उपदेश को मन में रोककर रखने को ग्रहण करना कहते हैं। केवल सुनने का नाम ग्रहण करना नहीं किन्तु नय सापेक्ष समझने को ग्रहण करना कहते हैं। जैसे भोजन ग्रहण किया और उल्टी कर दी तो उससे क्या लाभ होने

वाला है अर्थात् भोजन को उदर में रखना ऐसे ही गुरु के उपदेश को सुनकर याद रखने को ग्रहण करना कहते हैं। इसलिए देशनालब्धि में उपदेश को ग्रहण करना कहा हैं।

प्रश्न– 147 धारण करना किसे कहते हैं?

उत्तर समझकर, स्थिर रखकर, भूल न कर संस्कार को रोककर रखने को, कभी कभी चिन्तन मनन करने को धारणा कहते हैं जैसे जो भोजन किया उसे उदराग्नि से पाचन क्रिया के चालू होने से पुष्टि होती है भोजन सार्थक होता है इसी तरह उपदेश को सुनकर चिन्तन करने से पाप की हानि होती है, पुण्य की वृद्धि होती है, आत्मपरिणामों में निर्मलता आती है।

प्रश्न– 148 उपयोग में लाना किसे कहते हैं?

उत्तर गुरु उपदेश को सुनकर उपदेशानुसार मन वचन काय की एकरूप में परिणति होने को उपयोग में लाना कहते हैं। आपने भरपेट भोजन किया और शीघ्र ही उल्टी कर दी या अपच भोजन मलद्वार से वैसे ही निकाल दिया तब पुष्टि तुष्टि कैसे हो इस कारण उपदेश को ग्रहण किया और भूले नहीं स्थिर रखा अर्थात् धारण किया। जैसे भोजन को पचाने से ताकत आती है उसी तरह उपदेशानुसारी अपने योग उपयोग को तद्रूप में परिणमन कराने को मन वचन काय की एकरूप परिणति होने से सही रूप में देशनालब्धि कहलाती है। अन्यथा पंडितों के समान देशना प्राप्त की किन्तु देशनालब्धि नहीं कहलायेगी जैसे पंडित लोगों ने दूसरों को समझाने के लिए अध्ययन, मनन, पठन किया हैं। आजीविका का साधन बनाया है, आत्मकल्याण का उपाय, साधन नहीं बनाया। ख्याति पूजा लाभ के लिए, आजीविका के लिए अध्ययन, चिन्तन, मनन किया है न कि आत्मकल्याण के लिए। अतः आत्मकल्याण का हेतु बनाकर गुरु उपदेश सुनकर तद्रूप परिणमन करने से प्रायोग्य लब्धि की अवस्था प्राप्त होती है।

प्रश्न– 149 देशना और देशना लब्धि में क्या अन्तर है तथा स्वामी कौन हैं?

उत्तर वक्ता की अपेक्षा उपदेश में, देशना में और देशनालब्धि में कोई अन्तर नहीं है किन्तु यह अन्तर श्रोता की, पात्र की अपेक्षा है। यह उपदेश, देशना मोक्षमार्गियों के लिए केवल देशना कहलाती है और जो मोक्षमार्ग में प्रवेश करने के इच्छुक है ऐसे भद्र परिणामी, सरल स्वभावी, मिथ्यादृष्टि, जिनेन्द्र भक्त देशनालब्धि के स्वामी है क्योंकि देशनालब्धि मिथ्यादृष्टियों को होती है और देशना उपदेश मोक्षमार्गी असंयमी, देशसंयमी सकलसंयमी महाव्रतियों को होता है यह विभाग पात्र की अपेक्षा से है ऐसा समझना चाहिए।

प्रश्न– 150–51 प्रायोग्यलब्धि किसे कहते हैं? इसका फल क्या है?

उत्तर देवशास्त्रगुरु की आज्ञा से मन वचन काय की सरलता पूर्वक निष्कपट निःस्वार्थ पूर्वक पालन करने को प्रायोग्यलब्धि कहते हैं जिससे वर्तमान में परिणाम इतने सरल हो जाते हैं कि नवीन पाप प्रकृतियों का स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध अन्तः कोटाकोटी सागर के अन्दर होता है। पूर्वबद्ध स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध सत्व स्वरूप में घटता जाता है तथा पुण्य प्रकृतियों का स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध वृद्धि को प्राप्त होता जाता है तथा स्वयं में उत्साह भी प्रतिक्षण अनन्तगुणा अनन्तगुणा बढ़ता जाता है। देशनालब्धि का परिणाम कारण है प्रायोग्यलब्धि कार्य है अथवा

देशनालब्धि फूल है तो प्रायोग्य लब्धि फल है।

प्रश्न— 152—53 करणलब्धि किसे कहते हैं? इसका फल किसे प्राप्त होता है और फल क्या है?

उत्तर प्रायोग्यलब्धि की अवस्था में मन वचन और काय की क्रिया स्थूल होती है, कदाचित् गमनागमनादि क्रिया भी हो सकती है किन्तु करण लब्धि में वचन और काय की क्रिया बाह्य रूप में समाप्त हो जाती है। केवल मन की क्रिया विचार आगे आगे सूक्ष्म सूक्ष्म होते जाते हैं, पंचपरमेष्ठियों के द्रव्य गुण और पर्यायों का, जीवादि द्रव्यों का, अस्तिकायों का, तत्त्वों का, पदार्थों का चिंतन होता है। स्थिर आसन होता है, मौन होता है, विशेष निर्मल परिणाम होते हैं इसे करणलब्धि कहते हैं। इस करणलब्धि में तीन अवस्थाए होती हैं प्रथम अधःकरण परिणाम, दूसरा अपूर्वकरण परिणाम और तीसरा अनिवृत्तिकरण परिणाम जैसे किसी के पास हजार रुपया हैं तो उसे हजारपति कहते हैं। आगे इसीके पास जब धन में वृद्धि हुई तो लखपति कहा और अधिक वृद्धि हुई तो कोटिपति अरबपति कहा। इसी तरह मोक्षमार्ग में आने वाले के प्रथम विशेष निर्मल परिणाम प्रारम्भ अवस्था के अधःकरण कहलाते हैं। वृद्धि होते होते आगे आगे नवीन परिणाम होने लगे तो वे ही परिणाम अपूर्वकरण कहलाते हैं और जब मणिकान्ति के समान स्थिर परिणाम हुए तब वे ही परिणाम अनिवृत्तिकरण कहलाते हैं। इन्हीं परिणामों से असंख्यात गुणश्रेणी पाप कर्मों की निर्जरा होती है, नवीन पाप कर्मों का विशेष संवर होता है, सत्ता में स्थित पाप प्रकृतियों का स्थितिकाण्डकघात अनुभागकाण्डकघात होता है, संक्रमण होता है, पुण्यकर्मों की और परिणामों की वृद्धि होती है, मिथ्यात्व कर्म का उपशम खण्डन विभाग होता है और क्षय अवस्था होती है तभी रत्नत्रय की प्राप्ति और वृद्धि होती है। उपशम—बेहोश अचेत अवस्था के समान दब जाना। खण्डन—टुकड़े टुकड़े हो जाना। विभाग—बटवारा हो जाना और उसका नाम मिथ्यात्वकर्म, सम्यक्मिथ्यात्व कर्म और सम्यक्त्व प्रकृति रूप होता है। करणलब्धि का फल मिथ्यादृष्टि को प्राप्त होता है और वह फल असंयम सहित देशसंयम सहित और सकलसंयम सहित रत्नत्रय हैं।

प्रश्न— 154 आदि की चार लब्धियां भव्य और अभव्यजीवों के सामान्य रूप से होती हैं और करणलब्धि भव्य के होती है ऐसा कथन आ० श्री पुष्पदन्त भूतबलि आदि करते हैं तथा आ० श्री यतिवृषभादि पाँचों लब्धियां भव्यों के ही होती हैं ऐसा कथन करते हैं इसमें कौन सत्य है और कौन असत्य?

उत्तर कथनभेद है, दृष्टिभेद हैं, मतभेद नहीं क्योंकि मतभेद मानने पर मोक्षमार्ग में भी भिन्नता हो जायेगी अलग अलग मोक्षमार्ग हो जायेगा अतः मतभेद न मानकर दृष्टिभेद मानना चाहिए विवक्षाभेद है।

प्रश्न— 155 दृष्टिभेद विवक्षा भेद क्या है?

उत्तर आ० श्री पुष्पदन्त भूतबली के अभिप्राय अनुसार वर्तमान नय से अभव्य जीवों के शुभलेश्याओं से परिणत होने पर सातिशय पुण्य बंध होता है। जिससे वह 31 सागर की आयु को बांधकर नौवें ग्रैवेयिक पर्यन्त चला जाता है। यदि उस अभव्य जीव के मोक्ष की चाहना नहीं है तो मुनि पद

क्यों धारण करें, घोर उपसर्ग परीषह क्यों सहन करें, क्यों जीते इस कारण अभव्य जीवों के आदि की चार लब्धियों का कथन किया किन्तु आ० यतिवृषभ ने भविष्य में कभी भी रत्नत्रय प्राप्त नहीं करेगा, परिणमन नहीं करेगा अतः अभव्य जीवों के लब्धियों का निषेध किया क्योंकि जो कार्य को उत्पन्न नहीं करेगा वह कारण कैसे कहा जाये अथवा कौन कहेगा क्योंकि कारण उसे कहते हैं जो कार्य को उत्पन्न करने में सहायक हो इसलिए अभव्य जीव करणलब्धि को प्राप्त नहीं करता ऐसा कहा है। अतः मतभेद नहीं है विवक्षा भेद है। **''अर्पितानर्पित सिद्धेः'' त. सू. अ. 5 सू. 32। इस सूत्र की योजना लगा लेना चाहिए। जिससे निर्दोष व्यवस्था बन सके।**

प्रश्न– 156 इस रत्नत्रय को प्राप्त करने वाले कौन कौन जीव हैं और कौन जीव नहीं हैं?

उत्तर अभव्य जीव, एकेंद्रियपर्याप्तक जीव, विकलत्रय जीव, असैनी पंचेंद्रिय जीव, लब्ध्यपर्याप्तक जीव, मलेच्छाचरण करने वाला, मलेच्छखण्ड में उत्पन्न हुए जीव के रत्नत्रय को प्राप्त करने की शक्ति से सहित होने पर भी इस अवस्था में, इस पर्याय को उत्पन्न करने के लिए अयोग्य हैं अर्थात् रत्नत्रय को प्राप्त करने के लिए असमर्थ हैं, अपात्र हैं, अधिकारी नहीं हैं तथा भव्य जीव सैनी पंचेंद्रिय जीव, पर्याप्तक जीव, मिथ्यादृष्टि जीव, जागृत साकारोपयोग शुभलेश्यावाला अथवा अशुभलेश्यावाला, मन्दकषायी हो तथा मलेच्छखण्ड, निगोदस्थान, वातवलय सिद्धक्षेत्र, अनुदिश और अनुत्तर विमानों के स्थान न हो क्योंकि इन स्थानों में रत्नत्रय की उत्पत्ति नहीं होती।

प्रश्न– 157 रत्नत्रय धर्म को प्राप्त करने के लिए अभव्य अयोग्य है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर अभव्य जीवों में रत्नत्रय धर्म शक्तिरूप में गुणरूप में विद्यमान होने पर भी पर्यायरूप में उत्पन्न करने के लिए अयोग्य हैं। जिस प्रकार नाव जलाशय में रहती हुई भी यात्रियों को इस किनारे से उस किनारे तक पार लगा देती है, पहुंचा देती है पर स्वयं जलाशय का त्याग नहीं कर पाती, उल्लंघन नहीं कर पाती उसी प्रकार अभव्य जीव अनेक भव्यों को सन्मार्ग का मोक्षमार्ग का दर्शन कराकर, रत्नत्रय उत्पन्न कराकर मोक्ष में पहुंचा देता है पर स्वयं संसार का उल्लंघन नहीं करता, संसार को नहीं छोड़ता क्योंकि उसमें रत्नत्रय धर्म की शक्ति रूप में योग्यता होने पर भी व्यक्त करने की उत्पन्न करने की योग्यता नहीं है। कारण जिन परिणामों से रत्नत्रय धर्म की उत्पत्ति होती है वे परिणाम अभव्य जीव के पाये नहीं जाते हैं, न उत्पन्न होते हैं यदि वे परिणाम अभव्य जीव के उत्पन्न हो जायें तो फिर उसे अभव्य जीव कैसे कह सकते हैं?

प्रश्न– 158 रत्नत्रय प्राप्त करने के लिए एकेंद्रिय से असैनी पंचेंद्रिय तक, लब्ध्यपर्याप्तक जीव अनधिकारी हैं, ऐसा क्यों कहा?

उत्तर नहीं, जब तक यह जीव इन पर्यायों में मौजूद है तबतक रत्नत्रय को प्राप्त करने के लिए अयोग्य है क्योंकि इन जीवों के पास हिताहित, शुभाशुभ, पुण्यपाप, सुखदुःख, कल्याणाकल्याण, संसार मोक्ष, कर्तव्याकर्तव्य आदि का विचार करने की शक्ति स्वरूप मन न होने से ये मोक्षमार्ग के अधिकारी नहीं है। यद्यपि इनके कुमतिज्ञान कुश्रुतज्ञान है, आहारादि संज्ञा रूप ज्ञान है तत् तत् इन्द्रिय सुखरूप विचारणशक्ति है तो भी द्रव्यमन और भावमन न होने से तत्त्वविचार नहीं हो पाता

इस कारण इन जीवों को रत्नत्रय प्राप्त करने के लिए अनाधिकारी कहा है।

प्रश्न– 159 जब उक्त जीवों के विचारण शक्ति मौजूद है सुख दुःख का अनुभव भी करते हैं, कर्मचेतना कर्मफलचेतना भी है, हिताहित का विचार भी है तभी तो आहारादि संज्ञायें बन सकती है अन्यथा नहीं फिर रत्नत्रयधर्म को प्राप्त करने के लिए अयोग्य हैं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर यद्यपि इन जीवों के कुमतिज्ञान कुश्रुतज्ञान है तद्रूप विचारण शक्ति है जिसका उपयोग भी करते हैं फिर भी मन नहीं है क्योंकि ज्ञान अलग है और मन अलग कारण मन से ही तीव्र पुण्यपाप के आत्म सम्बन्धी कल्याण के परिणाम उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न– 160 ज्ञान और मन एक ही वस्तु है अलग अलग नहीं मनन करने को मति कहते हैं आदि तब अयोग्य कैसे?

उत्तर 'मननं मतिः' यह लक्षण मतिज्ञान का है, मन का नहीं। संज्ञायें भी चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से होती हैं तथा साथ में ज्ञान भी परिणमन करता है अतः मन और ज्ञान एक नहीं हो सकते हैं क्योंकि दोनों के लक्षण और स्वामी अलग अलग हैं कार्य भिन्न भिन्न है क्षेत्र, संख्या भी अलग अलग है तब ज्ञान और मन एक कैसे हो सकते हैं?

प्रश्न– 161 यहाँ प्रश्न में आदि शब्द कहा है उससे किसको ग्रहण करना चाहिए?

उत्तर यहाँ पर आदि शब्द से मतिज्ञान के और श्रुतज्ञान के अवान्तर भेदों को ग्रहण करना चाहिए जैसे संज्ञा, स्मृति, चिन्ता, आभिनिबोधिक ज्ञान तथा श्रुतज्ञान के विशेष भेदों को भी ग्रहण करना चाहिए।

प्रश्न– 162–163 ज्ञान किसे कहते हैं? मन किसे कहते हैं?

उत्तर बाह्य विषय के जानने के उपाय को ज्ञान कहते हैं। हृदय में अष्टदल कमल के समान आकार जो द्रव्यमन की रचना होती है उसके माध्यम से जो हिताहित, कर्तव्याकर्तव्य, सुख दुःख, संसार मोक्ष आदि को शिक्षा क्रिया उपदेश आलाप के द्वारा विचार विमर्श करने को मन कहते हैं।

प्रश्न– 164 शिक्षा किसे कहते हैं?

उत्तर जिस संकेत के द्वारा जीव के हित का ग्रहण और अहित का त्याग हो उसे शिक्षा कहते हैं।

प्रश्न– 165 क्रिया किसे कहते हैं?

उत्तर इच्छा पूर्वक, विचार पूर्वक हाथ पैर आदि के चलाने को क्रिया कहते हैं।

प्रश्न– 166 उपदेश किसे कहते हैं?

उत्तर वचन या चाबुक आदि के द्वारा बताये गये कर्तव्य के पालन करने को उपदेश कहते हैं।

प्रश्न– 167 आलाप किसे कहते हैं?

उत्तर श्लोक गाथा गद्य पद्य के याद करने को पठन करने को आलाप कहते हैं।

ज्ञान और मन भिन्न भिन्न हैं इसकी सारणी

ज्ञान	मन
1. ज्ञान गुण और पर्याय दोनों रूप है।	1. केवल पर्याय रूप है।
2. केवल जानना कार्य है, संसार मोक्ष का कारण नहीं।	2. विचारना रूप है, ध्यान का, मोक्ष का और संसार का कारण है।
3. ज्ञानी जीव पूर्ण लोकाकाश तथा वातवलयों में मौजूद हैं।	3. सातवें नरक से लेकर सर्वार्थसिद्धि तक के जीवों में पाया जाता है।
4. अक्षय अनन्तानन्त जीव स्वामी हैं।	4. संख्यातासंख्यात प्राणी स्वामी हैं।
5. चारों गतियों में और सिद्धों में पाया जाता हैं।	5. चारों गतियों में पाया जाता हैं।
6. एकेंद्रिय से लेकर पंचेंद्रिय पर्यन्त जीवों के पाया जाता है।	6. सैनी पंचेंद्रिय जीवों के पाया जाता है।
7. त्रस और स्थावर जीवों के होता है।	7. त्रस जीवों के होता है।
8. समस्त संसारी प्राणी और सिद्ध भगवन्त ज्ञान के स्वामी हैं।	8. समस्त सैनी पंचेद्रिय छद्मस्थ अल्पज्ञ जीव स्वामी हैं।
9. मन वचन काय इन तीनों योगियों के पृथक् पृथक् और एक साथ भी होता है।	9. जिन जीवों के ये तीनों योग एक साथ पाये जाते हैं उनके होता है।
10. तीनों वेद वालों के होता है।	10. तीनों वेद वालों के होता है।
11. सभी कषायों के साथ में ज्ञान होता है।	11. सभी कषायों के साथ में मन होताहै।
12. सभी पूर्ण ज्ञानमार्गणाके साथ में ज्ञान होता है। केवल दर्शनमार्गणा के साथ केवलज्ञान होता है। छद्मस्थों के शेष तीन दर्शनमार्गणा के साथ उपयोग रूप में कोई ज्ञान नहीं होता है। किन्तु शक्ति और लब्धि रूप में सातों ज्ञान होते हैं क्योंकि छद्मस्थों के दोनों मार्गणायें क्रम से होती है, युगपत् नहीं।	12. केवलज्ञान मार्गणा के साथ भाव मन नहीं होता हैं केवल दर्शनमार्गणा के साथ शक्ति लब्धि और उपयोग रूप से भाव मन नहीं होता है तथा तीन शेष दर्शन मार्गणाओं के साथ मन शक्ति और लब्धि रूप में होता है। उपयोग रूप में नहीं होता क्योंकि मन विकल्पात्मक है और दर्शन निर्विकल्प हैं अतः दोनों के एक साथ रहने में विरोध है।
13. पूर्ण संयम मार्गणा के साथ में ज्ञान होता है।	13. क्षीणमोही उपशांतमोही गुणस्थान के यथाख्यात संयममार्गणा के साथ तथा शेष संयममार्गणा के साथ भाव मन होता है। किन्तु सयोगकेवली अयोगकेवली के भाव मन और सिद्धों के यथाख्यात संयम के साथ भाव सहित द्रव्य मन नहीं होता। शेष के होता है।
14. सभी लेश्याओं में ज्ञान पाया जाता है।	14. सभी लेश्याओं में मन पाया जाता है।

15. भव्य और अभव्य जीवों के पाया जाता है।	**15.** सभी भव्य और अभव्य जीवों में पाया जाता है। किन्तु सयोगी भव्य और अयोगीभव्यों के मन नहीं पाया जाता है।
16. सभी सम्यक्त्वमार्गणा में ज्ञान पाया जाता है।	**16.** छद्मस्थावस्था तक सभी सम्यक्त्वमार्गणा में पाया जाता हैं।
17. सैनी असैनी जीवों में पाया जाता है।	**17.** सैनी जीवों में पाया जाता है।
18. आहारकानाहारक जीवों के पाया जाता है।	**18.** आहारक जीवों के पाया जाता है, अनाहारकों के भी भाव मन पाया जाता है।
19. सभी गुणस्थानों में और गुणस्थानातीत सिद्धों में पाया जाता है।	**19.** क्षीणमोही गुणस्थान तक के जीवों में पाया जाता है आगे के गुणस्थानों में तथा सिद्धों के मन नहीं होता है।
20. सभी जीवसमासों में पाया जाता है।	**20.** सैनीपंचेंद्रियजीव समास में मन पाया जाता है, शेष 13 जीवसमासों में नहीं पाया जाता है।

प्रश्न– 168 मलेच्छाचरणवाले तथा मलेच्छखण्ड में स्थित जीव रत्नत्रय के लिए अयोग्य हैं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर आर्यखण्ड का हो या मलेच्छखण्ड का हो यदि हीनाचारी है, मिथ्यात्व, अन्याय और अभक्ष्य का भोजी है तो रत्नत्रय को प्राप्त नहीं कर सकता है। इसी तरह मलेच्छखण्ड में रहकर आर्य या मलेच्छ मनुष्य भी रत्नत्रय को प्राप्त नहीं कर सकता है किन्तु यदि मलेच्छाचरण का त्याग कर दे तथा मलेच्छखण्ड का त्याग कर आर्यखण्ड में आ जाये तो कदाचित् मोक्षमार्गोपदेशी और मोक्षमार्गोपयोगी सामग्री के मिलने पर रत्नत्रयधर्म को प्राप्त कर सकता है किन्तु दोनों की चर्या और चर्चा जिनाज्ञानुसार होनी चाहिए। हीनाचार तीव्र कषायोदय से होता है और मलेच्छखण्ड में देव शास्त्र गुरु का समागम नहीं, सन्मार्ग उपदेशक नहीं, मार्गदर्शक के अभाव में मोही प्राणी मोक्ष को, मोक्षमार्ग को कैसे समझे कैसे जाने? योग्यता के होने पर भी अंतरंग और बहिरंग योग्य सामग्री के मिलने पर कार्य होता है अन्यथा नहीं क्योंकि ऐसा यह वस्तु का निजी स्वभाव है।

प्रश्न– 169 रत्नत्रय धर्म को प्राप्त करने वाला भव्यजीव होना चाहिए ऐसा क्यों कहा?

उत्तर जिस प्रकार दूध में घी है तो प्रयत्न करने पर दूध से घी निकाल लिया जाता है किन्तु पानी में घी की योग्यता न होने के कारण लाख प्रयत्न करने पर भी पानी से घी निकलता नहीं क्योंकि पानी में घी की योग्यता का अभाव है। उसी प्रकार भव्यजीव में रत्नत्रयधर्म से परिणत होने की योग्यता है तो वह योग्य सामग्री के मिलने पर, प्रयत्न करने पर रत्नत्रय को प्राप्त कर लेता है, पर अभव्यजीव नहीं क्योंकि इस अभव्यजीव में व्यक्त करने की योग्यता का अभाव है। पानी में

घी की तरह अभव्यजीव में रत्नत्रयधर्म से परिणत होने की योग्यता का अभाव होने से लाख प्रयत्न करने पर भी रत्नत्रयधर्म प्राप्त नही ं करता यह इसका निजी स्वभाव है।

प्रश्न 170 रत्नत्रयधर्म को प्राप्त करने वाला सैनी पंचेंद्रिय जीव होना चाहिए ऐसा क्यों कहा?

उत्तर हाँ, सैनी पंचेंद्रिय जीव होना चाहिए क्योंकि गुरु के द्वारा बताये गये मार्ग को, दिये गये उपदेश को समझने में, धारण करने में, तद्रूप में परिणमन करने की सामर्थ्य मन सहित प्राणी में होती है, असैनी, अमनस्क में नहीं क्योंकि मन रहित प्राणी सुनने, समझने, धारण करने, परिणमन करने में असमर्थ है, साधनविहीन है वह साधन रहित जीव रत्नत्रय स्वरूप साध्य को कैसे प्राप्त कर सकता है? अतः रत्नत्रयधर्म को प्राप्त करने के लिए सैनी पंचेंद्रिय जीव होना चाहिए।

प्रश्न– 171 रत्नत्रय धर्म को प्राप्त करने के लिए पर्याप्तक जीव हो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर पर्याप्तक हो इसका मतलब है कि चार पर्याप्तियों से युक्त एकेंद्रिय जीव, पाँच पर्याप्तियों से युक्त विकलत्रय और असैनी पंचेंद्रिय पर्याप्तक ये पर्याप्तक हैं फिर भी मन न होने के कारण उपदेश को ग्रहण, धारण परिणमन करने में असमर्थ होने से रत्नत्रयधर्म को उत्पन्न करने में असमर्थ हैं तथा पर्याप्त नाम कमो र्दय से युक्त जीव निवृत्यपर्याप्तकावस्था में भी रत्नत्रयधर्म को प्राप्त करने में असमर्थ हैं अतः सैनी पंचेंद्रिय पर्याप्तक छह पर्याप्तियों से युक्त हो तो वह जीव रत्नत्रयधर्म को प्राप्त करने में समर्थ होता है, शेष जीव असमर्थ हैं।

प्रश्न– 172 रत्नत्रय को प्राप्त करने के लिए मिथ्यादृष्टि जीव होना चाहिए ऐसा क्यों कहा?

उत्तर यहाँ पर सामान्य रत्नत्रयधर्म को प्राप्त करने की विवक्षा है, विशेष रत्नत्रय की नहीं क्योंकि विशेष रत्नत्रय की प्राप्ति सम्यग्दृष्टि संयमी वीतरागी मुनि ही करते हैं अर्थात् क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव क्षीणमोही मुनि परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन को, वीतरागीज्ञानी क्षीणमोही केवलज्ञान को और सामान्य यथाख्यातचारित्री परमयथाख्यातचारित्र को प्राप्त करते हैं यह सब उत्कृष्ट विशेष रत्नत्रय है। सामान्य रत्नत्रय को प्राप्त करने वाला जीव मोहनीयकर्म की छव्वीस या अठ्ठाईस प्रकृतियों की सत्तावाला होना चाहिए जो अनादि मिथ्यादृष्टि जीव हो या सादिमिथ्यादृष्टि जीव हो। कारण जो पतित है वही पावन होगा, जो गिरा है वही उठेगा ऐसे ही जो मिथ्यादृष्टि जीव है वही सम्यग्दृष्टि बनेगा, रत्नत्रय प्राप्त करेगा। अन्धकार को दूर करने के लिए ही दीपक जलाया जाता हैं, प्रकाश दूर करने के लिए नही ं। मिथ्यादर्शन और सम्यग्दर्शन ये दोनों परस्पर में प्रतिपक्षी पर्यायें हैं। एक के होने पर दूसरी नहीं होती प्रकाश और अन्धकार की तरह अतः रत्नत्रयधर्म को प्राप्त करने के लिए मिथ्यादृष्टि जीव होना चाहिए ऐसा कहा है।

प्रश्न– 173 रत्नत्रयधर्म को प्राप्त करते समय अन्तर्मुहूर्त काल तक जागृत होना चाहिए ऐसा क्यों कहा?

उत्तर सम्यग्दर्शन या रत्नत्रय प्राप्त करते समय या रत्नत्रय धर्म को उत्पन्न करते समय निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि इन तीन निद्राओं का द्रव्यकर्म और भावकर्म रूप से परिणाम नहीं

होना चाहिए क्योंकि आत्म संवेदन निराकारोपयोग दर्शनोपयोग से होता है, साकारोपयोग ज्ञानोपयोग से नहीं। इस समय यदि उदय रूप से या उदय में लाने के लिए परिणाम होगा तो तत्त्व का चिन्तन नहीं हो सकता है क्योंकि सुप्तावस्था में विशेष रूप से बुद्धि पूर्वक चिन्तन धारा चल नहीं सकती, बन नहीं सकती और जब चिन्तन धारा नहीं तो भूल का विचार नहीं, तो भूल का सुधार कैसे होगा, भूल का, गल्ती का त्याग कैसे करेगा? दोषों को त्यागेगा नहीं तो गुणों को कैसे प्राप्त करेगा? सफेद वस्त्र में नील लगाना है तो पहले सर्वप्रथम मैल साफ करते हैं, बाद में नील लगाते हैं तो सुन्दरता आती है, अन्यथा परिश्रम और सामग्री व्यर्थ जाती है नष्ट हो जाती है इसी प्रकार सर्वप्रथम असावधानी को, निद्रा को, प्रमाद को, दूर करें तब बाद में रत्नत्रयधर्म प्राप्त होता है। देखो जब इन्द्रिय सुख प्राप्त करना है तो अचेत अवस्था न हो क्योंकि अचेतावस्था में इंद्रियसुख का भी अनुभव नहीं होता है तो आत्म सुख का अनुभव कैसे होगा अतः आत्मनिधि प्राप्त करने के लिए निद्रा में हो, जागृत न हो ऐसा कैसे हो सकता है? इस कारण जागृत हो सावधान हो ऐसा कहा है।

प्रश्न– 174 निद्रा और प्रमाद में क्या अन्तर है?

उत्तर कारण में अन्तर होने से कार्य में अन्तर हो जाता है। निद्रायें दर्शनावरणीय कर्मोदय से आती हैं तथा प्रमाद ज्ञानावरणीय कर्मों के क्षयोपशम से भावेंद्रिय प्रमाद कषाय से मिश्रित होने से तथा विकथायें वचनात्मक होने से नाम कर्मोदय के कारण चारित्रमोहनीय के कषायवेदनीय रूप तीव्र मोहोदय से उत्पन्न होता है। निद्रानिद्रादि तीन प्रकृतियों के तीव्रोदय में परिणत आत्मा की पूर्ण अचेतावस्था होती है इसमें चिन्तनधारा तीव्र गति से नहीं चलती है और प्रमाद में होने पर भी चिन्तनधारा चल सकती है, विवेक होता है, सावधानी भी रहती है, धर्मध्यान भी तीव्रगति से होता रहता है क्योंकि आदिनाथ तथा बाहुबली मुनि अवस्था में 1000 वर्ष तथा एक वर्ष तक स्थिर या खडे होकर निश्चल ध्यान करते रहे जितना काल सातवें गुणस्थान का है उससे दुगुणा काल छठवें गुणस्थान का है। और छठवाँ गुणस्थान क्रोधादि 4, विकथायें 4, इंद्रियविषय परिणत अवस्था 5, निद्रा और प्रणेय इन 15 प्रकार के परिणामों में से एक परिणाम तीव्र हो तभी बनता हैं, अन्यथा नही ं अर्थात् बाहुबली एक वर्ष में चार महीने सातवें गुणस्थान में और आठ महिने छठवें गुणस्थान में रहे प्रमाद सहित निद्रानिद्रादि तीन परिणामों से रहित या सहित थे। यदि तीव्रता सहित होते तो खड़े खड़े ध्यान नहीं बन सकता नीचे गिर जाते अथवा रत्नत्रय प्राप्त करते समय प्रायोग्यलब्धि के परिणामों में निद्रानिद्रादि तीन की उदय व्युच्छित्ति हो जाती है। प्रमाद भाव धर्मध्यान नहीं, आर्तध्यान रौद्रध्यान हैं।

प्रश्न– 175 रत्नत्रयधर्म को प्राप्त करते समय जीव साकारोपयोग से सहित हो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर रत्नत्रयधर्म को प्राप्त करने वाला जीव साकारोपयोग ज्ञानोपयोग से परिणत होना चाहिए, दर्शनोपयोग से परिणत नहीं होना चाहिए क्योंकि दर्शनोपयोग निर्विकल्प है विचारात्मक नहीं है अनुभवात्मक है दर्शनोपयोग से चिन्तन, मनन ध्यान नहीं होता है क्योंकि यह विचार विमर्श रहित

है किन्तु इस ज्ञानोपयोग में जानने की चिन्तनमनन करने की शक्ति है और इस शक्ति का उपयोग भी करता हैं अतः कर्म से कर्म कटते हैं फिर भी गुणों का परस्पर में अविनाभावी संबंध होने से कहा जाता है कि अज्ञान से कर्मबन्ध और ज्ञान से मोक्ष होता है तथा प्रत्येक गुण अपना अपना कार्य करते हैं, एक दूसरे का नही ं स०सा० में कहा है– **"उवयोगे उवयोगो कोहादिसु णत्थि कोवि उवओगो। कोहे कोहो चेव हि उवओगो णत्थि खलु कोहो"।। 8।।** संवर. उपयोग में उपयोग है, क्रोधादि में उपयोग नहीं क्रोध में क्रोध है, क्रोध उपयोग में नहीं ऐसा निश्चयनय से कहा है। इस गाथा से प्रत्येक गुण का कार्य स्वतंत्र है, परतंत्र नहीं पराधीन नहीं । ऐसा समझना चाहिए।

प्रश्न– 176 यदि अज्ञान से कर्मबंध होता है तो जीव को फिर कभी भी मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती?

उत्तर मोह सहित विषयकषायों से सहित अज्ञान से कर्मबन्ध होता है, केवल अज्ञान से नहीं क्योंकि बंध का मूल कारण मोहकर्म है मोह के अभाव में क्षीणमोही, उपशांतमोही मुनियों के अज्ञान होने पर भी कर्मबंध स्थिति अनुभाग रूप में नहीं होता है।

प्रश्न– 177 शुभलेश्याओं से युक्त हो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर गन्दे पानी की तरह यदि कलुषित परिणाम हैं तो यथानुरूप तत्त्व का चिन्तन कैसे हो सकता है? अतः स्वच्छ परिणाम होने से यथावत् आत्म चिन्तन कर सकता है, अन्यथा नहीं। जैसे मलिन जल में मलिन चेहरा दिखाई देता है और स्वच्छ जल में स्वच्छ प्रतिबिम्ब दिखाई देता है वैसे ही यदि अपना मन अशुभ लेश्याओं से मलिन है तो आत्मदर्शन मलिन होगा जो मिथ्यारूप में, विषयकषाय रूप में आत्मा देखा जायेगा और स्वच्छ पीत शुभ लेश्या का जघन्य अंश है तो आत्मा में निजस्वभाव का दर्शन सही होगा यह कथन आर्यखण्ड की कर्मभूमि की अपेक्षा समझना। भोगभूमियों में भी उत्तमभोगभूमि– में शुक्ललेश्या से, मध्यमभोगभूमि में पद्म लेश्या से और जघन्य भोगभूमि में पीतलेश्या से सम्यग्दर्शन या रत्नत्रय प्राप्त करते हैं। नरकगति– रत्नप्रभापृथ्वी में कापोत लेश्या के जघन्य अंश से, शर्करापृथ्वी में कापोत लेश्या के मध्यमांश से, बालुकापृथ्वी में कापोतलेश्या के उत्कृष्ट अंश से और नील लेश्या के जघन्यांस से, पंकप्रभापृथ्वी में नीललेश्या के मध्यमांश से, धूमप्रभापृथ्वी में नीललेश्या के उत्कृष्ट अंश और कृष्ण लेश्या के जघन्य अंश से, तमप्रभा पृथ्वी में कृष्णलेश्या के मध्यमांश से और महातमप्रभा पृथ्वी में कृष्ण लेश्या के उत्कृष्ट अंश से। भवनत्रिक– देव पीत आदि लेश्याओं के जघन्य अंश से, सौधर्म ऐशान स्वर्ग के देव पीतलेश्या के मध्यमांश से, सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्ग के देव पीतलेश्या के उत्कृष्ट अंश से तथा पद्मलेश्या के जघन्य अंश से, ब्रह्म ब्रह्मोत्तर लान्तव और कापिष्ठ स्वगों के देव पद्मलेश्या के मध्यमांश से, शुक्रमहाशुक्र शतारसहस्रार स्वर्ग के देव पद्मलेश्या के उत्कृष्ट अंश से तथा शुक्ललेश्या के जघन्य अंश से, आनतप्राणत आरण अच्युत तथा नवग्रैवेयिक तक के देव और अहमिंद्र शुक्ललेश्या के मध्यम अंश से तथा उत्कृष्ट अंश से रत्नत्रय को प्राप्त करते हैं। छहों लेश्याओं से युक्त अभव्य जीव, नवअनुदिश, पाँचअनुत्तर विमानवासी, दोनों उपशम और

क्षपकश्रेणीवाले, सयोगकेवली, अयोगकेवली और सिद्धपरमेष्ठी ये जीव रत्नत्रय को उत्पन्न नहीं करते हैं क्योंकि ये उत्पन्न करने के लिए अपात्र हैं अयोग्य हैं। अशुभ लेश्याओं में भी हीयमान परिणाम होना चाहिए, वर्द्धमान परिणाम नहीं।

प्रश्न– 178 ऐसा क्यों कहा कि ये अपात्र हैं अयोग्य है ये भी तो आत्मा है अनन्त गुणधर्मों का पिण्ड है?

उत्तर अभव्य जीव में तो रत्नत्रयधर्म को उत्पन्न करने की शक्ति का ही अभाव है जैसे नपुंसक में पुरुषत्वशक्ति सन्तान को उत्पन्न करने की शक्ति का अभाव है तथा शेष महान आत्मायें पूर्व से ही रत्नत्रय युक्त होती है। रत्नत्रय से युक्त जन्म धारण करती हैं और स्नातक मुनियों ने केवलियों ने रत्नत्रय का फल प्राप्त कर लिया है तथा कुछ प्राप्त करने वाले हैं।

प्रश्न– 179 क्षपकश्रेणीवाले मुनियों को भी अपात्र कहना चाहिए क्योंकि ये भी [illegible] न्न नहीं करते?

उत्तर आपका प्रश्न सत्य है क्योंकि ये नवीन उत्पन्न नहीं करते इस अपेक्षा से ठीक है किन्तु इन्हें अभी परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन, केवलज्ञान और परमयथाख्यातचारित्र तथा सिद्धपद प्राप्त करना है अतः पात्र हैं।

प्रश्न– 180 दोनों केवलियों को भी पात्र कहना चाहिए क्योंकि अभी इनको सिद्ध पद प्राप्त करना शेष बचा है?

उत्तर यह भी कहना आपका सही है सत्य है कि उभय केवलियों को सिद्ध पद प्राप्त करने की अपेक्षा से पात्र हैं।

प्रश्न– 181 यदि ऐसा है तो प्र० 178 के साथ विरोध आता है?

उत्तर नहीं आता है, क्योंकि वहाँ सामान्य से प्रश्न किया था तो सामान्य से उत्तर दिया अतः विरोध नहीं है किन्तु निर्दोष है।

प्रश्न– 182–83 रत्नत्रय प्राप्त करने के लिए कितने कारण हैं? नाम कौन–कौन हैं?

उत्तर रत्नत्रयधर्म को प्राप्त करने के लिए दो कारण हैं। अंतरंगकारण[1] बहिरंगकारण[2]।

प्रश्न– 184 अंतरंगकारण किसे कहते हैं?

उत्तर जिस कार्य या कारण को सामान्य प्रमादी जीव न जान सकें उसे अंतरंग कार्य कारण कहते हैं तथा स्वयं के कदाचित् विशेष क्षयोपशम होने पर अंतरंग कारण अनुमानगम्य हो सकता है कार्य से कारण का अनुमान लगाया जा सकता है क्योंकि "कार्य लिंगं हि कारणम्" कहा है कि कार्य कारण का नियामक है किन्तु कारण कार्य का नियामक नहीं है। इस कारण अंतरंग कारण चारों गतियों में समान है। दर्शनमोहनीय और अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ इनका उपशम क्षय और क्षयोपशम तथा उपशम और क्षय होने पर रत्नत्रय की प्राप्ति अवश्य होती है। अनंतानुबंधी का क्षयोपशमकरण नहीं होता है इसी तरह मिथ्यात्व कर्म का भी तथा सम्यग्मिथ्यात्वकर्म का क्षयोपशमकरण नहीं होता है कि जिससे रत्नत्रय की प्राप्ति हो सके। मिथ्यात्व का और

अनन्तानुबन्धी कषाय का उपशम और क्षय ये दो करण होते हैं। सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृति का उदय होता हैं पर मोक्षमार्ग इससे नहीं बनता हैं।

प्रश्न– 185–86 रत्नत्रयधर्म को प्राप्त करने के लिए बहिरंग कारण कौन–कौन हैं? कौन कहाँ पर होता है?

उत्तर नरकगति में तीन कारण हैंः– कोई नारकी जातिस्मरण से, कोई नारकी वेदना के अनुभव से, कोई नारकी धर्मोपदेश को सुनकर प्रथम नरक से लेकर तीसरे नरक तक ये तीन कारण हैं। चौथे नरक से सातवें नरक तक कोई नारकी वेदना के अनुभव से तथा कोई नारकी जातिस्मरण से रत्नत्रय को प्राप्त कर लेते हैं। तिर्यंचगति में तिर्यंच प्राणी कोई जातिस्मरण से, कोई धर्मोपदेश सुनकर, कोई जिनबिम्बदर्शन जिनमहिमादर्शन पंचकल्याणकोत्सव को देखकर सम्यग्दर्शन को, रत्नत्रय को या देशसंयम को प्राप्त कर लेते हैं। मनुष्यगति में मनुष्य कोई जातिस्मरण से, कोई धर्मोपदेश को सुनकर, कोई जिनबिम्ब को देखकर या गर्भादिकल्याणकों को देखकर सुनकर रत्नत्रय को उत्पन्न करते हैं। देवगति में देवगण बारहवें स्वर्ग तक कोई जातिस्मरण से, कोई धर्मोपदेश को सुनकर, कोई जिनमहिमा और जिनबिम्बदर्शन और कोई हीन पुण्यात्मा देव उत्तम ऋद्धियों को देखकर रत्नत्रय को प्राप्त करते हैं। 13वें से 16वें स्वर्ग तक के देव कोई जातिस्मरण से और कोई धर्मोपदेश से, कोई जिनमहिमा और कोई जिनबिम्ब को देखकर रत्नत्रय को प्राप्त कर लेते हैं। नौग्रेवेयिकों में कोई जातिस्मरण से और कोई धर्मोपदेश से रत्नत्रय को प्राप्त कर लेते हैं।

प्रश्न– 187 सम्यग्दर्शन या रत्नत्रय को प्राप्त करने वाले जीवों की भूमिका किस प्रकार की होना चाहिए?

उत्तर द्रव्य मिथ्यात्व का, अन्याय का, अभक्ष्य का, सप्त व्यसनों का, अनायतनों का त्यागी हो, अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन करने वाला हो, संसार शरीर और भोगों से विरक्त हो, देवशास्त्रगुरु का भक्त हो, भक्ति करने वाला हो, आज्ञाकारी हो, मूलगुणों का पालन करने वाला, पानी छानकर पीने वाला, रात्रिभोजन का त्यागी, मदों का त्यागी, स्थूल रूप से शंकादि दोषों का त्यागी, जीवरक्षा करने वाला, आवश्यकों का पालन करने वाला हो, शंकादि दोषों को यह जीव किस कारण से प्राप्त होता है, शंकादि दोषों से हानि, प्रशमादि आठ गुण और मैत्री आदि भावनाओं से सहित हो, जैसे किसान अन्य घासादि को निकालकर फैंक देता है बाद में खाद पानी डालकर उत्तम बीज बोता है, फल प्राप्ति पर्यन्त रात्रिदिन प्रमाद छोड़कर रक्षा करता है तभी अन्त में फल पाता है उसी प्रकार जीव आत्मरूपी खेत में विषयकषाय रूपी विरुद्ध सामग्री को निकाल फैंकता है, बाद में सद्गुण रूपी खादपानी डालता है तब कहीं रत्नत्रय उत्पन्न होता है बाद में सावधानी पूर्वक मोक्षमार्ग का पालन कर मोक्ष प्राप्त करता है अतः मोक्ष प्राप्ति के लिए यही भूमिका है।

प्रश्न– 188–190 मिथ्यात्व किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर अनन्तधर्मात्मक वस्तु के धर्मों में यथावत् विश्वास नहीं करने को या संसार के कारणों में अथवा आश्रव बन्ध के परिणामों को कल्याणकारी सुखकारी मानकर विश्वास करने को मिथ्यात्व कहते

हैं। इसके दो भेद हैं– भावमिथ्यात्व,[1] द्रव्यमिथ्यात्व[2] पुनः भावमिथ्यात्व के पाँच भेद हैं। इसी तरह द्रव्यमिथ्यात्व के भी पाँच भेद हैं। नाम – एकान्तमिथ्यात्व, विपरीतमिथ्यात्व, संशयमिथ्यात्व, अज्ञानमिथ्यात्व, वैनयिकमिथ्यात्व अथवा मिथ्यात्व कर्मोदय से उत्पन्न हुए धर्म के सम्बन्ध में अन्यथा रूप विश्वास करने को मिथ्यात्व कहते हैं। इस प्रकार के परिणामों के होने पर देवशास्त्रगुरु पर अन्यथा विश्वास करने को मिथ्यात्व कहते हैं। इस मिथ्यात्वकर्म के परिणाम मतिज्ञान श्रुतज्ञान की अपेक्षा संख्यात भेद हैं, अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान की अपेक्षा असंख्यात भेद तथा केवलज्ञान की अपेक्षा अनन्त भेद हैं।

प्रश्न– 191 भावमिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उत्तर मोक्ष और मोक्षमार्ग में तथा मोक्षमार्ग के साधनों में और संसार, संसार के मार्ग में तथा संसारमार्ग के साधनों में यथावत् विश्वास न करने को या मोक्षमार्ग को मोक्ष को या संसार का मार्ग, संसार मानकर अथवा संसार को मोक्ष और संसार के मार्ग को मोक्षमार्ग समझकर विश्वास करने को भावमिथ्यात्व कहते हैं अथवा आत्मकल्याण के उपायों के प्रति उदासीन रहने को तथा विषय भोगों के साधनों में, विषयभोगों में आसक्ति भाव को लगाव, झुकाव को भावमिथ्यात्व कहते हैं। इस भावमिथ्यात्व के उदय होने पर ज्वर से पीड़ित पित्त से युक्त जिह्वा वाले को दूध के स्वाद के समान समीचीन धर्म में रुचि नहीं होती हैं, आनन्द नहीं आता।

प्रश्न– 192 द्रव्यमिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उत्तर उस भावमिथ्यात्व के साथ वचन और काय के प्रयोग करने को द्रव्यमिथ्यात्व कहते हैं। मोक्ष और मोक्षमार्ग की निन्दा करना, बदनामी करना, देवशास्त्रगुरु का अवर्णवाद करना और कराने को अथवा संसारमार्ग की वचन से गुणकीर्तन करना, प्रशंसा करना, उत्साहित करना, काय से नमस्कार करना, हाथ जोड़ना, सेवा करना, नौकरी करना, संसारी मोही प्राणियों को यथार्थ मार्गदर्शन न देना, संसारमार्ग में लगाना, फंसाना आदि को या लौकिक देवीदेवता लिंगधारी इनके भक्तों के प्रति समर्पण भक्ति आदि करने को द्रव्यमिथ्यात्व कहते हैं।

प्रश्न– 193 एकान्तमिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उत्तर अनन्त धर्मात्मक वस्तु को एकधर्मी मानकर या एक ही धर्म को प्रतिपक्षी धर्म का निराकरण कर धर्मी या वस्तु मानकर विश्वास करने को यही समीचीन है यही सब कुछ है इसे ही एकान्तमिथ्यात्व कहते हैं।

प्रश्न– 194 विपरीतमिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उत्तर परद्रव्य के संयोग से उत्पन्न धर्म को धर्मी मानकर या परद्रव्य को आत्मधर्म मानकर विश्वास करने को विपरीतमिथ्यात्व कहते हैं। जैसे नय निरपेक्ष होकर पुद्गल कर्मों के निमित्त से उत्पन्न हुए भावों को आत्मा का निजी भाव स्वभाव मान लेना विश्वास करने को विपरीत मिथ्यात्व कहते हैं।

प्रश्न– 195 अज्ञानमिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उत्तर आजकल देखा जा रहा है कि जो ज्ञानी साधु पंडित हैं, शास्त्रों के जानकार हैं उन ज्ञानियों के ज्ञान के कारण रागद्वेष वैरविरोध मुकदमें आदि खूब हो रहे हैं, मूर्ख क्या लड़ेगा अतः ज्ञान से

कषायों की उत्पत्ति होती है, ज्ञान से ही विषयवासना की उत्पत्ति होती है। यदि जानकारी नहीं है तो विषयवासना रागद्वेष की वैर विरोध की उत्पत्ति नहीं हो सकती है इसलिए नहीं जानना ही श्रेष्ठ है, उत्तम है इस प्रकार के विषय पर विश्वास करने को अज्ञानमिथ्यात्व कहते हैं या अज्ञान से मोक्ष होता है या अज्ञान का नाम ही मोक्ष है ऐसा विश्वास अज्ञानमिथ्यात्व है।

प्रश्न– 196 संशयमिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उत्तर हेय उपादेय, कर्तव्य अकर्तव्य, पुण्य पाप, शुभ अशुभ, कल्याण अकल्याण आदि संसार मोक्ष में सम्यक्मिथ्या का निर्णय न होने को, निर्णय करने का विचारविमर्श न कर यह ठीक है या वह ठीक है इस प्रकार इन युगलों में हिंडोला के समान डोलायमान विचार विश्वास होने को संशय मिथ्यात्व कहते हैं।

प्रश्न– 197 वैनयिकमिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उत्तर सबको नमस्कार करो, सबका विनय/आदर सत्कार करो, सबको एक समान समझो, छोटा बड़ा पूज्य अपूज्य भेद मत करो, सब साधुवर्ग एक बराबर है, क्या दिगम्बर क्या श्वेताम्बर क्या हिन्दू साधू, क्या शुद्ध शाकाहारी क्या अशुद्ध शाकाहारी या मांसाहारी सब साधू एक हैं इनको एक समान मानकर एक जैसा ही विनय करो इस विश्वास को वैनियिकमिथ्यात्व कहते हैं। इस प्रकार ये मिथ्यात्व के आधार भेद से पाँच भेद बतलाये हैं। इन भेदों में या इनके भी प्रभेदों में मन की स्थिरता होने को भावमिथ्यात्व कहते हैं और वचन काय का योगदान होने को और इनमें वचन काय का प्रयोग करने को तन्मयता होने को या मिथ्यात्व कर्म के पुद्गल पिण्ड को द्रव्यमिथ्यात्व कहते हैं। सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की भूमिका में द्रव्यमिथ्यात्व का त्यागी हो और भाव मिथ्यात्व में तीव्रता न हो अथवा कुदेव कुशास्त्र कुगुरु की तथा इनके भक्तों की संगति का फल कल्याणकारी है सुख प्राप्त कराने वाला है इनके साहचर्य से हमें कुछ गुणों की प्राप्ति हो ऐसी भावना का त्यागी हो।

प्रश्न– 198 सर्वप्रथम भावमिथ्यात्व का त्याग होगा या द्रव्यमिथ्यात्व का?

उत्तर नहीं, सर्वप्रथम द्रव्यमिथ्यात्व का त्याग होगा इसके बाद में भावमिथ्यात्व का त्याग होगा। हाँ इतना अवश्य है कि त्याग की भावना पहले होगी, बाद में त्याग होगा जैसे भोजन करने की भावना और भोजन करना में कितना अन्तर है ठीक उतना ही अन्तर यहाँ समझना चाहिए। भोजन करने की भावना से न तो भोजन का स्वाद आता है, न पेट भरता है, न तुष्टि पुष्टि होती है किन्तु भोजन करने से स्वाद भी आता है, पेट भरता है, तुष्टि पुष्टि होती है अथवा जिस प्रकार सर्वप्रथम धान्य का बाहर का छिलका निकाला जाता है बाद में अन्दर का लाल छिलका निकाला जाता है बाद में सफेद चावल निकलता है ठीक इसी तरह सर्वप्रथम बाह्य मिथ्यात्व का त्याग होगा इसके बाद में अंतरंग भाव मिथ्यात्व का त्याग होगा अनंतर सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। बाह्य छिलका के समान द्रव्यमिथ्यात्व, भावमिथ्यात्व लाल छिलका के समान और सफेद चावल के समान सम्यग्दर्शन है।

प्रश्न– 199 हम लोग गृहस्थ हैं व्यापारी हैं जानते हैं कि ये राजनेता या

राजकर्मचारी समीचीन धर्म से रहित हैं सद्विचार से रहित हैं, दुराचारी हैं, मांसाहारी हैं, शराबी हैं, चोरी आदि करते कराते हैं, सारे व्यसन सेवन करते हैं अतः धर्मदृष्टि से इनका आदर सत्कार, कुर्सीदान, नमस्कार वगैरह नहीं करना चाहिए, न कराना चाहिए फिर भी करना पड़ता है कराना पड़ता है तो क्या यह दोष है? नहीं करते हैं तो लौकिक जीवन में कठिनाई आती है और नमस्कारादि करते हैं तो मोक्षमार्ग में परेशानी होती है अनाचार दोष आता है लगता है तो क्या करें और क्या न करें?

उत्तर भय से, आशा से, स्नेह से और लोभ से मिथ्यादृष्टि जीवों की मनुष्यों की, राज्य कर्मचारियों की जो अनाचारी हैं उनको सम्यग्दृष्टि महापुरुष नमस्कार न करें, न विनय करें, न तिरस्कार करें, न दुःखी करें, न कष्ट दें किन्तु माध्यस्थभाव रखें तथा अपने जीवन को सदाचार सद्विचार से युक्त परिपूर्ण करें, न चोरी आदि अपराध करें, न अपराध को छिपाने के लिए रिश्वत देवें जैनधर्म कहता है कि न अपराध करो, न अपराध करने वालों का साथ दो, न उनकी प्रशंसा करो, न निन्दा करो किन्तु लोक व्यवहार चलाने के लिए लोकदृष्टि से उन राजनेताओं का आदर सम्मान करें तो हानि नहीं। यदि धर्म समझकर करें या मोक्षमार्ग समझकर करें तब कदम कदम पर हानि है, मोक्षमार्ग की हानि है तेरे ही संसार का विच्छेद नहीं होगा किन्तु अनन्त संसार बढ़ेगा, दुःख की प्राप्ति होगी, दुःख से कौन बचाने वाला होगा? जैनधर्म कहता है कि प्रत्येक प्राणी का यथायोग्य विनय करो, आदर सम्मान करो, सदाचार का भी पालन करो, दुराचार का त्याग करो, दुर्विचार मत करो। गलत कार्य करके भी उद्दण्डता करोगे तो पापी महापापी कहलाओगे।

प्रश्न– 200–201 अन्याय किसे कहते हैं? कितने भेद हैं?

उत्तर जिन आचार विचारों के द्वारा अपना जीवन, अपना धर्म, अपनी समाज, परिवार, जाति, कुल, बदनाम हो जाये, निन्दा को प्राप्त हो अथवा देवशास्त्रगुरु, मातापिता, राजा आदि की आज्ञा के विरुद्ध कार्य करने को अन्याय कहते हैं। इसके दो भेद हैं। नामः– लौकिक अन्याय और लोकोत्तर अन्याय।

प्रश्न– 202 लौकिक अन्याय किसे कहते हैं?

उत्तर मातापिता की, ग्राम, तहसील, जिला, प्रान्त देश, राष्ट्र के नियमों का निदोर्ष आज्ञा का उल्लंघन कर मनमानी करना, देश समाज आदि को कलंकित करने वाली चेष्टायें करना, क्रियाओं का पालन करना आदि को लौकिक अन्याय कहते हैं।

प्रश्न– 203 लौकिक अन्याय से क्या हानि है?

उत्तर लोक में किसी भी प्रकार से व्यापार सम्बन्धी, आजीविका सम्बन्धी, सामाजिक सम्बन्धी नियमों का जो निर्दोष हैं, हितकारी हैं उनका उल्लंघन करने से जीवन, समाज, धर्मायतन भोगायतन आदि सब संकट में पड़ जाते हैं, आजीविका में आपत्तियां आने लगती हैं, रोटी बेटी व्यवहार बिगड़ जाता है, निन्दा होती है, जगह जगह परिवार वालों को, समाज को तथा स्वयं आदि को भी लोगों

के सामने लज्जित होना पड़ता है, मुँह नीचे हो जाता है, अपमानजनक वचन सुनने पड़ते हैं यहाँ तक कि लौकिक प्राणी मनुष्य साथ में उठने बैठने से, वार्तालाप करने से घबराते हैं। यही कारण है कि आजकल प्रत्येक प्राणी का जीवन संकट में पड़ा हुआ है। सभी असुरक्षितपने का अनुभव कर रहे हैं। बुरी मौत मरते हैं, विद्यार्थियों का जीवन आचार विचारहीन हो रहा है।

प्रश्न– 204 लोकोत्तर अन्याय किसे कहते हैं?

उत्तर वीतरागी, निर्दोष, निष्पक्ष निष्कपट देवशास्त्रगुरु की, चतुर्निकाय देवों की धर्मात्मा मातापिता राजादि की मोक्षमार्ग के अनुकूल समीचीन आज्ञा का उल्लंघन करने को की हुई प्रतिज्ञा के पालन न करने को लोकोत्तर अन्याय कहते हैं अथवा समर्थ होने पर भी अपने पद के प्रतिकूल आचार विचार का पालन करने को लोकोत्तर अन्याय कहते हैं अथवा मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्र रूप से परिणत होने को लोकोत्तर अन्याय कहते हैं।

प्रश्न– 205 लोकोत्तर अन्याय से क्या हानि है?

उत्तर लोकोत्तर अन्याय से परिणाम बिगड़ते हैं इस भव में इस पर्याय में नाना प्रकार से दुःखी होता है, पाप क्रियाओं से, अशुभ करने से अशुभ कर्मों का आश्रव बन्ध होता है जिससे नरक निगोद का पात्र होता है वहाँ जन्म लेकर पुनः पुनः जन्म और मरण करता रहता है। अतः वर्तमान नय से ऐसे प्राणधारी जीवों का यह भव और आगे का भव भी बिगड़ता है संसार बन्धन से छुटकारा रूप मोक्ष तो बहुत दूर हो गया मोक्षमार्ग की प्राप्ति असम्भव है। अतः यह महान हानि है। कदाचित् लौकिक निर्दोष आज्ञा का उल्लंघन करने पर भी जीवन संकट में न पड़े बदनामी न हो तो भी लौकिक जीवन की अपेक्षा लोकोत्तर जीवन की यात्रा लोकोत्तर अन्याय से सब कुछ नष्ट भ्रष्ट हो जाता है।

प्रश्न– 206–07 यहाँ किस अन्याय का त्याग कराया है? एक का या दोनों का?

उत्तर यहाँ पर दोनों अन्यायों का त्याग कराया है क्योंकि अन्यायी प्राणी कहीं पर भी किसी समय में सुख से, चैन से, आनन्द से खाना पीना, जाग्रत होना, सोना, उठना बैठना, व्यापारादि में सफलता नहीं पाता है कदाचित् पूर्वकृत् तीव्र पुण्योदय से कुछ सफलता मिल भी गई तो भी आन्तरिक शान्ति नहीं मिल पाती है मन बैचेन शंकित बना ही रहता है।

प्रश्न– 208 आजकल अन्यायी प्राणी हर तरह से सुखी और न्यायी दुःखी देखा जा रहा है अतः अन्याय ही श्रेष्ठ है?

उत्तर नहीं ऐसा ठीक नहीं है। आजकल जो अन्यायी प्राणी दुराचारी, दुर्विचारी सुखी देखे जा रहे हैं उनका वर्तमान में दुष्कर्म से, अन्याय से सुखीपना नहीं हैं किन्तु पूर्व में यानि पूर्वभव में जो सम्यक् रीति से सदाचार का पालन किया था उस पूर्वबद्ध पुण्य कर्म का फल है उस तीव्रोदय से सुखी हो रहा है फलफूल रहा है किन्तु जब पूर्वबद्ध पुण्यकर्म क्षीण होता है तब उनका जीवन वर्तमान में ही कितना दुःखी, अपमानजनित होता है यह सब प्रत्यक्ष है। अतः इस कारण न्याय ही श्रेष्ठ है, अन्याय नहीं। अपना मन एकदम साफ कर लेना चाहिए। कहा भी है–''जब तक तेरे पुण्य का बीता नहीं करार। तब तक तेरे माफ हैं औगुन करो हजार''। इस

कहावत के अनुसार अपने जीवन को अहंकारी ममकारी, दुराचारी अन्यायी नहीं बनाना चाहिए किन्तु पाप से दुःख और पुण्य से धर्म से सुख होता है इस प्रकार दृढ़ विश्वास करना चाहिए। भौतिकयुगानुसार विश्वास उल्टा नहीं बनाना चाहिए।

प्रश्न– 209–10 अभक्ष्य किसे कहते हैं? भेद प्रभेद कौन कौन हैं?

उत्तर जो भोजन करने के योग्य नहीं हैं तथा जिस भोजन सामग्री में संख्यात असंख्यात और अनन्तजीव उत्पन्न होते हैं और मरते हैं उसे अभक्ष्य कहते हैं अथवा जिसके सेवन से आत्मा में कामवासना आदि विषय कषायों की उत्पत्ति हो उसे भी अभक्ष्य कहते हैं। इससे मोक्षमार्ग बिगड़ता है आत्मसाधना प्रायः कर लुप्त हो जाती है यहाँ पर भुज् धातु से ण्यत् प्रत्यय करने पर भुज+ण्यत्। भुज् के उ का गुण ओ करके भोज् और इस भोज् में ण्यत् प्रत्यय का य जोड़ने से भोज्य बना तथा निषेध परक अ आदि में लगाने से अभोज्य बना। जिसका अर्थ होता है खाने योग्य नहीं, भोजन करने योग्य नहीं ऐसा भोजन पदार्थ भोज्य सामग्री। पुनः यदि भुज्धातु से ण्यत् प्रत्यय लगाकर चजोः कु घिण्यतोः सूत्र से ज् का ग् करके भुज् की उपधा का गुण होकर भोज्+ण्यत् करके सबको मिलाने से भोग्य बना। पुनः पहले निषेध परक अ लगाने से अभोग्य, इसका अर्थ होता है जो भोगने के योग्य न हो उसे अभोग्य कहते हैं जो पाँचों इंद्रियों के विषय हैं। वे आत्मा का पतन कराते हैं, दुर्गति में ले जाते हैं, दोनों भवों को बिगाड़ते हैं किन्तु ये इंद्रियविषय विष से भी अधिक हानिकारक हैं भव भव को बिगाड़ते हैं। अतः भोजन के समान इंद्रिय विषय भी अभक्ष्य हैं सेवने योग्य नहीं हैं इसके द्रव्यअभक्ष्य और भावअभक्ष्य ये दो भेद हैं।

प्रश्न– 211–12 भावअभक्ष्य किसे कहते हैं? इस भावअभक्ष्य के कितने भेद हैं?

उत्तर अपने अपने पद गुणस्थानानुसार पद को, गुणस्थान को बिगाड़कर, मोक्षमार्ग से छुड़ाकर संसारमार्ग में जो भाव, मन लगा दे संसार भ्रमण के कारण हो ऐसे इन विचारों को भावों को भावअभक्ष्य कहते हैं इस भावअभक्ष्य के असंख्यात लोक प्रमाण भेद हैं जो स्थितिबंध अध्यवसायस्थानभाव और अनुभागबंधाध्यवसायस्थान कहलाते हैं।

प्रश्न– 213–14 द्रव्य अभक्ष्य किसे कहते हैं? कितने भेद हैं?

उत्तर रसनेंद्रिय के खट्टा, मीठा, कषायला, कडुवा, चिरपरा ये पाँच भेद हैं। जब त्रस जीवों से युक्त हो जाते हैं तब इन्हें अभक्ष्य कहते हैं अथवा भोजन सामग्री अपनी मर्यादा छोड़कर या मर्यादा के अन्दर भी जब जीव राशी इसमें उत्पन्न हो जाती है या आकर मिल जाती है तब उसे अभक्ष्य पदार्थ कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं। नामः– त्रसविघात, बहुविघात, प्रमादकारक, अनिष्टकारक और अनुपसेव्य अभक्ष्य।

प्रश्न– 215 त्रसविघात अभक्ष्य किसे कहते हैं?

उत्तर जिस भोजन सामग्री में द्वीन्द्रिय जीव, त्रीन्द्रियजीव, चौंद्रियजीव, पंचेंद्रियजीवों ने अपना जन्म स्थान बना लिया है, निवासस्थान बना लिया है और सेवन करने से इन जीवों की विराधना होती है, मृत्यु हो जाती है, दुःखों को प्राप्त होते हैं अतः इसे त्रसविघातअभक्ष्य कहते हैं जैसे मांस,

मधु, पाँचउदुम्बर फल, घुनेधान्य, मर्यादा के बाहर रोटी दाल, पूरी शब्जी, अचार मुरब्बा, सड़ी गली वस्तुये, बड़ी पापड़ औषधि आदि को त्रसविघात अभक्ष्य कहते हैं क्योंकि इन अमर्यादित वस्तुओं के खाने से द्वीन्द्रियादि असंख्यात संख्यात त्रसजीवों की विराधना होती है।

प्रश्न— 216 बहुविघात अभक्ष्य किसे कहते हैं?

उत्तर जिस भोजन सामग्री के सेवन करने से अनन्त जीवों की विराधना होती है। ऐसे आलू, मूली, गाजर, शकरकंदी, प्याज, लहसुन, पिण्डालु, रतालु, अरबी आदि जमीकन्द के खाने से अनन्त जीव मृत्यु को प्राप्त होते हैं अतः इसे बहुविघातअभक्ष्य कहते हैं। इनके अलावा और भी अनन्तकायिक साधारण वनस्पति जिस सब्जी फल की रेखायें अव्यक्त अप्रकट हैं बीज रचना प्रारम्भ हुई है किन्तु पूर्ण नहीं हो पायी, परिपक्व नहीं हो पायी, अत्यन्त छोटा बीज हैं उसे बहुविघातअभक्ष्य कहते हैं क्योंकि इन अनन्तकायिक कन्दमूलादि के भक्षण से अनन्त जीवों की विराधना होती है।

प्रश्न— 217 प्रमादकारक अभक्ष्य किसे कहते हैं?

उत्तर जिस भोजन के करने से प्रमाद उत्पन्न हो, आलस्य उत्पन्न हो, नशा उत्पन्न हो उसे प्रमादकारक अभक्ष्य कहते हैं जैसे शराब, गांजा, भांग, चरस, अफीम, चाय, बीड़ी, सिगरेट, हुक्का, हेरोइन आदि इनके खाने पीने से नशा आता है जिससे मनुष्य का अपने आप के हिताहित, कर्तव्याकर्तव्य, हेय उपादेय का विवेक लुप्त हो जाता है तथा माँ, बहिन, बहु, बेटी आदि के सामने भी क्या बोलना क्या नहीं बोलना इसका भी विवेक नष्ट हो जाता है।

प्रश्न— 218 अनिष्टकारकअभक्ष्य किसे कहते हैं?

उत्तर जिस भोजनपान चर्या के द्वारा स्वास्थ्य खराब हो जाय, बिगड़ जाय, आकुलता उत्पन्न हो, आर्तध्यान रौद्रध्यान उत्पन्न हो जाये उसे अनिष्टकारक अभक्ष्य कहते हैं। ये पदार्थ कदाचित् भक्ष्य शुद्ध मर्यादित भी हो सकते हैं, सात्विक भी हो सकते हैं फिर भी इनके सेवन करने से स्वास्थ्य की हानि होती है और स्वास्थ्य गड़बड़ होने से मन की स्थिति सही न होकर आर्तध्यान रौद्रध्यान होने लगता है अतः इन भोज्यपदार्थों को अभक्ष्य कहा है जैसे कफ बन रहा है तब दूध घी का सेवन करना हानिकारक है, सर्दी हो रही है तब हरे फल, रस, शिकंजी, शर्बत पीना हानिकारक है। गर्मी का मौसम है, पित्त का शरीर है फिर भी रूखा, सूखा मिर्च मसाला अधिक मात्रा में सेवन करना, उष्णवीर्य वाला भोजन करना, कमजोरी है फिर भी कामसेवन करना, गैस का शरीर है फिर भी वायुकारक मटर उड़द चना आदि खाना आदि चर्या अनिष्टकारक है। इसलिए त्याज्य है।

प्रश्न— 219 अनुपसेव्यअभक्ष्य किसे कहते हैं?

उत्तर जिन भोजन सामग्रियों के सेवन करने से सज्जनों में, धर्मात्माओं में घृणा पैदा हो, निन्दित हो, लोक में निन्दित हो उसे अनुपसेव्य अभक्ष्य कहते हैं। जैसे मूत्र, मुँह की लार, गोबर, जूँठा भोजन आदि। आयुर्वेदीय दवाईयों में आठ प्रकार के पशुओं का मूत्र तथा दूध काम में लिया जाता है जैसे घोड़ी का दूध, गधी का, गाय का, बकरी का, हथनी का, ऊंटनी का, मनुष्यनी का, भैंस का

दूध तथा गाय का, भैंस का, बकरी का, गधी का, घोड़ी का, ऊंटनी का, हथनी का, भेड़ का मूत्र दवाईयों के काम आता है। कामी कामिनी परस्पर में कामवासना के राग में रंगे होने के कारण परस्पर की आपस में जिह्वा से मिलाकर लार का पान करते हैं यह भी अभक्ष्य है। इसके अलावा और भी जो अभक्ष्यों की बावीस 22 संख्या बताई गई है वह सब इन्हीं पाँच भेदों में अन्तर्भाव को प्राप्त हो जाती है। बिना छना जल, छना जल अन्तर्मुहूर्त के बाद जिसमें दाने पड़ने लगे बाष्प भाप बाहर निकलने लगी ऐसा जल 12 घंटे के बाद तथा उबला हुआ जल 24 घंटे के बाद, अमर्यादित भोजन, जिस जल की सावधानी पूर्वक बिनछानी या जीवानी यथास्थान जिस जलाशय का है वहाँ न पहुंचाई जा सके ऐसा जल, बाजार का भोजन, आम जनता के द्वारा पीसे गये मिर्चमसाले, आटा, मैदा, सूजी आदि, इनके द्वारा बनाये गये या बनवाये गये बड़ी पापड़, रोटी दाल, भातादि अचार मुरब्बा, कम्पनी में तैयार की गयी औषधियां, रक्त चर्बी आदि के मिश्रण से तैयार की गई श्रृंगार सामग्रियां, चमड़े के जूते, चप्पल, बैल्ट, पर्स आदि रेशम के वस्त्र, चमड़े के वस्त्र, ऊन के वस्त्र, डालडा घी, रसचलित पदार्थ ऐसे घी, तेल, मक्खन, वासा भोजन, मट्ठा दही रात्रिभोजन, रात्रि का बनाया गया भोजन या दिन में बनाया गया भोजन रात्रि में करना, कृत्रिम प्रकाश में भोजन करना। देखो श्रृगाल ने रात्रिभोजन का त्याग किया था तो वह बावड़ी में पानी पीने गया वहाँ स्वाभाविक प्रकाश न होने से, अन्धकार होने से दिन में भी पानी नहीं पिया तथा मरण कर प्रीतिंकरकुमार कामदेव होकर भगवान महावीर के समवशरण में दीक्षा लेकर तपकर कर्मों को नष्ट कर मोक्ष प्राप्त किया किन्तु मनुष्य तो बुद्धिमान बन करके भी विवेकहीन होकर पतन के मार्ग में जा रहा है। आजकल मनुष्यों को स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए पशुपक्षियों से सीखना चाहिए क्योंकि पशुपक्षी किसी भी विद्यालय में नहीं पढ़े हैं, न लिखे हैं, न इनका कोई गुरु है फिर भी इन्होनें अपनी चर्या परम्परानुसार सही बनाये रखी है और आचरण करते हैं। अतः स्वस्थ्य रहते हैं क्योंकि ये सड़ा गला भोजन नहीं करते, असमय में मैथुन क्रिया नहीं करते, न हमेशा करते हैं इसलिए बीमार नहीं पड़ते है, न इनके डॉक्टर हैं, न दवाईयां, न चश्मा लगता है। कदाचित् बीमारी आ भी गई तो अपने स्वास्थ्य को ये अपने मूत्र से, थूँक से, सूर्य की गर्मी से या चन्द्र किरणों से या घासपत्ती से ठीक कर लेते हैं या भोजनपान छोड़कर के ठीक कर लेते हैं तथा जिन पशुपक्षियों के डॉक्टर बन चुके हैं वे पशुपक्षी चारित्रहीन धर्मविहीन मनुष्यों के आधीन होने से बीमार होने लगे हैं तब उनको गन्दी आदत वाले मनुष्यों ने डॉक्टरों से दवाईयां करा दी और ऐसे ही पशु भयंकर बीमारी के शिकार हुए यह बड़ा आश्चर्य है। इस प्रकार जो जीव रत्नत्रय प्राप्त करने की भूमिका बनाना चाहते हैं या रत्नत्रय प्राप्त करना चाहते हैं उनको अभक्ष्य भक्षण का त्याग करना चाहिए।

प्रश्न– 220 मूँगफली सोंठ हल्दी भी जमीकंद हैं सतावर, श्वेतमूसरी, पंजामूसरी औषधि आदि भी जमीकंद हैं किन्तु सूखने पर इनका प्रयोग करते हैं तो हम भी आलू–गाजर आदि भी सुखाकर चिप्स बनाकर खा सकते हैं तो इसमें क्या आपत्ति है?

उत्तर जैन सिद्धान्त के अनुसार भावों में हिंसा और अहिंसा होती हैं इस कारण अपने को देखना है

किस भोग्य सामग्री में कितना राग है और कितना नहीं मूँगफली तिलहन रूप में या स्वाद के लिए थोड़ी मात्रा में ग्रहण की जाती है इसी तरह सोंठ हल्दी भी औषधि मानकर ग्रहण की जाती है। ये तीनों भोजन के समान, भोजन की मात्रा के समान ग्रहण नहीं किये जाते क्योंकि तीनों उष्णवीर्य हैं रक्त शोधक हैं। ज्यादा लेने से बीमारी भी पैदा हो जाती है। गर्मी बढ़ जाती है इनको खाने के लिए दूसरी वस्तु का भी योग चाहिए। इनको खाने में गृद्धता नहीं होती है, न ये भर पेट खाये जाते हैं, न हर मौसम में खाये जाते हैं। इसी तरह भूमि के अन्दर होने वाली औषधियों को भी समझना। आलू मूली, गाजरादि भोज्य पदार्थ भर पेट भी खा लिये जाते हैं। राग की तीव्रता भी होती है। रोटी दाल साग के साथ भी खाते हैं और अलग से भी खाते हैं। स्वाद से गृद्धता पूर्वक दिन प्रतिदिन भी खाते हैं। आगम में इन्हें अनंतकायिक कहकर पुकारा है। अनंत जीवों का पिण्ड हैं साधारण वनस्पति है। इन कंदमूलों के प्रत्येक अंश में अनंतजीवों का निवास माना है। आलू आदि चाहे जिस रूप में हों या आधे भाग में हों या पूरे भाग में हों सूखे हों या गीले हों जिस किसी भी अवस्था में हो अनन्त जीवों को साथ में लिए हुए हैं तथा स्वाद की तीव्र लालसा होने से भी पाप का ही आश्रव होता है। कदाचित् किसी किसी अवस्था में सेवन करने से द्रव्यहिंसा में समानता होने पर भी भावहिंसा में अंतर पड़ जाता है जैसे जितनी आसक्ति और स्वाद अदरक में है उतनी सोंठ में नहीं होगी न रुचि होगी अतः खाने में मोक्ष नहीं मिलता त्याग धर्म है, भोगपाप है, त्याग से मोक्ष मिलता है तथा अपनी गृद्धता किसमें है, राग किसमें है यह देखो।

प्रश्न– 221 द्रव्यहिंसा में पाप नहीं है तो फिर आलु आदि खाने में क्या पाप होगा?

उत्तर **ऐसा नहीं है, बिना भाव के ग्रहण नहीं किया जा सकता। यदि बिना इच्छा के ग्रहण किया जाय तो अंधेरे उजेले में भी ग्रास मुँह में ही क्यों जाता है? नाक, कान, आँख में क्यों नहीं जाता। बिना मन के सामग्री गले के अंदर जा ही नहीं सकती, उल्टी हो जाती है। चिरायता, नीम कडवी है मिर्च अत्यंत तीक्ष्ण है तो खाते ही उल्टी आने लगती है। उल्टी हो भी जाती है। गुलाबजामुन में मक्खी चिपकी हो तो कोई भी नहीं खाता। राम का सीता के प्रति, पवन का अंजना के प्रति राग हट चुका था तो स्वीकार नहीं किया, त्याग कर दिया। इसी तरह राग नहीं है तो त्याग कर देना चाहिए। राग है तो ही खाया जाता है। यदि बिना राग के बिना इच्छा के खाते हैं तो संसार में बहुत सारी वस्तुयें हैं उनका भी भक्षण करो पर नहीं क्योंकि वहाँ पर इच्छा नहीं है। इस कारण भाव हिंसा से केवल अपना ही पतन होता है, स्वयं दुखी होते हैं और द्रव्य हिंसा से दोनों का या अनेकों का पतन होता है और अनेक दुःखी होते हैं इसलिए द्रव्य हिंसा का भी पूरा का पूरा महत्व है। मुख्यता और गौणता वक्ता की अपेक्षा रखता है किंतु दोनों का अपने प्रतिपक्ष सहित अवस्थान रहता है। इस कारण द्रव्यहिंसा और भावहिंसा दोनों अपने अपने स्थान पर पूर्ण महत्व रखे हुए हैं।**

प्रश्न– 222–24 व्यसन किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? इनके सेवन से क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर जिस आदत या चर्या आचरण के बिना रात्रिदिन मनुष्यों को चैन न पडे, आकुलित हो, दुःखी हो,

बीमार पड़ जाये, मरने के सम्मुख हो जाये तो उस तीव्र आदत को व्यसन कहते हैं। व्यसनों के दो भेद हैं। शुभव्यसन और अशुभव्यसन। शुभव्यसन का फल उत्थान होना जीवन सुखी होना है तथा लोक में प्रशंसा प्राप्त होना, भावी पर्याय में उत्तम पद, वैभव, अधिकार प्राप्त होना और अशुभ व्यसन का फल पतन होना, दुःखी होना, धन वैभव परिवार से भी अपमानित होना, निन्दित होना तथा भावी भव में नरकगति, तिर्यंचगति के दुःख नाना प्रकार की यातना प्राप्त होना है। अंगहीन, दरिद्री, दुर्गन्धयुक्त अवस्था की प्राप्ति होना अशुभव्यसन का फल है।

प्रश्न– 225–27 शुभव्यसन किसे कहते हैं? इसका फल क्या है? इनको जानकर क्या करना चाहिए?

उत्तर मोक्षमार्ग में, मोक्षमार्ग के बाह्याभ्यन्तर साधनों में, आयतनों में निष्कपट, निःस्वार्थ, विवेक पूर्वक, प्रेम वात्सल्य भाव से परिणत होने को शुभप्रशस्तव्यसन कहते हैं जैसे जल के विना मछली तड़फती है वैसे ही धर्म के विना, धर्मायतनों के बिना धर्मात्मा भी दुःखी होता है, आकुलव्याकुल होता है यहाँ तक कि इनके मिलन के लिए अपने आहार पानी को छोड़ देता है। फिर भी यह आदत नरक तिर्यंचगति के दुःखों से बचाती है, निन्दा से, कष्ट से बचाती है, ऊर्ध्वगमन होता है, उत्कृष्ट सुख प्राप्त होता है, सब तरफ से आदर सम्मान प्राप्त होता है, सुख मिलता है, यह आदत श्रेष्ठ है, पवित्र है, श्रावकों की अपेक्षा दानपूजा आदि षडावश्यकों का पालन करना, तीर्थयात्रा, प्रतिष्ठा, शास्त्र वितरण करना कराना, बिना कीमत के बालक बालिकाओं में धर्म के गाढ़ संस्कार डालने के लिए पाठशाला चलाना चलवाना आदि कार्यो ं से पाप की हानि और पुण्य की सातिशय वृद्धि होती है। इस प्रकार इनको जानकर दुष्कर्म, दुराचार, अशिष्ट विचारों का त्याग करना चाहिए क्योंकि इनके त्याग से ही आत्मा सुखी होता है, अन्यथा दुःखी होता है।

प्रश्न– 228–30 अशुभव्यसनों की उत्पत्ति के उपाय क्या–क्या हैं? किसे कहते हैं? क्या फल है? जानकर क्या करना चाहिए?

उत्तर लौकिक आचार विचारहीन मनुष्यों की संगति, नंगे चित्र देखना, विकारयुक्त मूर्तियों को देखना उसके अंगों को रिकार्ड, सी०डी०, पिक्चर देखकर विकार युक्त होना व्यभिचारी पुरुषों की, व्यभिचारिणियों की, वेश्याओं की संगति से, संसार में भ्रमण कराने वाली आदतें उत्पन्न होती है, अतः इन आदतों को अशुभव्यसन कहते हैं। जैसे जुआ खेलना, मांस खाना, शराब पीना, वेश्या सेवन, शिकार खेलना, चोरी करना, परस्त्रीसेवन करना आदि ये सभी कार्य अशुभ हैं। अहिंसा धर्म के विरोधी हैं, दुःख प्राप्त कराते हैं, सज्जनों से निन्दित हैं, मोक्ष प्राप्ति या मोक्षमार्ग में गमन करने के लिए अर्गला के समान है, अलम् इन आदतों से! अन्यथा इन आदतों से पूजापाठ, खाना पीना, नींद आना आदि सत्कार्य भी सब कुछ हराम हो जाते हैं, आत्मा का अधः पतन होता है, दुःखी होता है, उभयलोक में निन्दा प्राप्त होती है, बदनामी होती है। धर्म की, स्वयं की, परिवार की, समाज की, देश की, तन, मन, धन और मोक्षमार्ग की हानि होती है ऐसा सोच विचार कर कष्ट देने वाले समझकर लौकिक फल की चाह के बिना त्याग करना चाहिए।

प्रश्न– 231–32 अशुभव्यसनों के कितने भेद हैं? उनके नाम कौन–कौन हैं?

उत्तर दुर्गति में जाकर कष्ट देने वाले अशुभव्यसन के प्राचीन परम्परागत सात भेद हैं और वर्तमान काल की अपेक्षा इनके सिवाय और भी अनेक भेद प्रभेद हैं। जुआ खेलना[1], मांस खाना[2], शराब पीना[3], वेश्यासेवन करना[4], शिकार खेलना[5], चोरी करना[6], परस्त्रीसेवन करना[7] ये सात व्यसनों के नाम है तथा वर्तमान काल की अपेक्षा चाय पीना, लौकिक पत्रिका पढ़ना, टी०वी० देखना, भांग चरस गांजा पीना, क्रिकेटादि खेल खेलना, आलू आदि खाना और भी ऐसी आदतें हैं कि परिवार के लोग भूंखे मर जाये, खाने को नहीं हो, लोगों को दिखाने के लिए क्रीम लगाना, उग्रता लाने वाले स्नोपाउडर लगाना, ब्यूटीपार्लर में जाकर शृंगार करना, शरीर संस्कार करना, संस्कार कराना, होटलों में, घरों में चायनास्ता, भोजन करना आदि व्यसन हैं क्योंकि इनके विना मनुष्य अपने आप में मरने जैसा अनुभव करते हैं या करने लगते हैं, कमजोरी का अनुभव करते हैं स्वादहीन भोजन न कर भूंखा ही रह जाता है।

प्रश्न– 233–34 जुआ खेलना व्यसन किसे कहते हैं? इससे क्या हानि है?

उत्तर शर्त लगाकर तास के पत्तों से, चौपड़ से, पासा आदि से हार जीत को माध्यम बनाकर तथा शादी के लिए शर्त रखवाकर मंगनी करके शादी करने को जुआ खेलना कहते हैं। बिना मांगे दहेज के जो शादी करते हैं उनका प्रेमव्यवहार, रिश्ता सम्बन्ध, परस्पर में एक दूसरे के सुख दुःख में सामिलपना, सेवा वैयावृत्य, निष्कपट निःस्वार्थ, वात्सल्य भाव अंत तक चलता रहता है मृत्यु के बाद में भी यदि व्यवस्था अवस्था नही ं है तो भी समस्या का हल कर लिया जाता है तथा यदि मांगकर दहेज लेकर शादी की है या सामर्थ्य से अधिक मांगकर लड़कीवालों को निचोड़कर, चूसकर दहेज लिया है तो उस दम्पत्ति का आपस में प्रेम थोड़े समय के बाद में टूट जाता है, मन फट जाता है, ससुराल वालों को भी घृणा हो जाती है, समाज में बदनामी, मारपीट, केस लड़ते रहते हैं, एक दूसरे को कितना दुःख देते हैं, परेशान करते हैं, नीचा दिखाते हैं। हमेशा ताना सहन करना पड़ता है, मौत भी हो जाती है, जेल की सजा भी भोगनी पड़ती हैं। कोर्ट से दहेज वापिस करा दिया जाता है। कहावत है–'बाँस के बाँस खाये उतराई की उतराई दी। बदनामी हुई, कष्ट हुआ और धन भी खर्च हुआ, इज्जत भी नष्ट हुई अतः जो सुखी होना चाहते हैं, रत्नत्रयधर्म की प्राप्ति की भूमिका बनाना चाहते हैं, रत्नत्रय है तो उसकी रक्षा करना चाहते हैं तो वे दहेज मांगकर, चूसकर, परेशान कर शादी नहीं करें किन्तु धर्मविवाह करें। कहा है–'बिन मांगे से दे दूध बराबर मांगे से दे पानी। वह देना है खून बराबर जामें खेंचातानी'। शादी में बिना मांगे जो दिया या लिया जाता है वह तो दूध के समान है। शक्ति से ज्यादा मांगने पर बिना इच्छा के दिया या मन कठोर कर लिया जाता है तो वह पानी के समान है तथा परस्पर में प्रेम तोड़कर मन फाड़कर झगड़ा करके दहेज लिया जाता है या दिया जाता है वह खून के, रक्त के बराबर है अतः हार जीत की, हानि लाभ की शर्त लगाकर जुआ खेलना पाप है, अधर्म है अधर्मविवाह है। आ. श्री गुरुवर्य पार्श्वसागरजी महाराज कोटला वाले साक्षात् घटी घटना बताया करते थे। वह घटना लखनौ लखनऊ की है। एक वकील थे जो सात्विक आचार विचार वाले थे, खोटे व्यसनों से विमुक्त थे, जिनधर्म का पालन करते थे। उनकी

तीन पुत्रियां थी। आय न्यायनीति की थी, रिश्वत नही ं लेते थे, गरीब अमीर के सुख दुःख को समझते थे और उनकी तीनों पुत्रियां विवाह के योग्य थी परन्तु दहेज प्रथा होने के कारण धनाभाव से विवाह नही ं कर पा रहे थे जैसे तैसे अपने रहने के मकान को गहने गिरवे रखकर प्रथम बड़ी पुत्री का विवाह कानपुर में सेठ के पुत्र के साथ 20000 में पक्का किया और समय पर शादी हो गई जब बारात के विदा का समय आया तो वकील साहब फूट–फूट कर रोने लगे, तब पुत्री ने सोचा कि इतना समय हो गया हमने आजतक पिताजी को रोते नहीं देखा आज मेरी विदाई पर इतने दुःखी क्यों हो रहे हैं? पिताजी से पूछा कि आप इतने दुःखी क्यों हो रहे है? यह तो संसार की प्रथा है कि पुत्री का विवाह कर ससुराल भेजना, तब पिताजी बोले कि हे बेटी मैं तेरे विवाह से दुःखी नहीं हूँ किन्तु तुम्हारे जाने के बाद मकान खाली करना पड़ेगा तथा बाद में तुम्हारी दो बहिने और शादी के योग्य हैं उमर हो चुकी है उनके लिए क्या व्यवस्था होगी इस चिन्ता से दुःखी हूँ। पिताजी की बात सुनकर पुत्री सोचने लगी कि मेरा ऐसा जन्म क्यों हुआ मेरे जन्म को धिक्कार है कि मेरे कारण माँ बाप को इतना दुःखी होना पड़ रहा है, मेरे जीवन को धिक्कार है, गर्भ से ही मर जाती, जन्म से मर जाती तो अच्छा था। इनका दुःख कैसे दूर हो, क्या उपाय करूं ऐसा सोचकर पिताजी को धैर्य बंधाकर सम्बोधन किया कि आप दुःखी मत हो, आप चैन से रहें, चिन्ता न करें इस प्रकार पिता को आश्वासन बंधाकर थोड़ी देर के बाद में विदा हुई। बाराती बड़ी गाड़ी में बैठे और श्वसुर, पति, स्वयं, छोटी ननंद और नौकर छोटी गाड़ी में बैठे। बारात रवाना हुई बीच रास्तें में पहुंची कि बहू ने पैर से चप्पल निकालकर नीचे गिरा दी और आवाज लगाई पिताजी चप्पल गिर गई। श्वसुर ने गाड़ी रूकवाई और नौकर से कहा कि बहू की चप्पल गिर गई उठा लाओ। बहू बोली कि ये मेरे नौकर हैं क्योंकि मेरे जन्मदाता पिताजी ने 20000 में खरीदा है ये मेरी चप्पल उठायेंगे तब पति ने कहा पिताजी जितना रुपया दहेज में लिया है वह सब वापिस करो, अन्यथा हम इसी जंगल में मर जायेंगे बस सेठ ने जीप वापिस मोड़कर पुत्रवधु के पिता से क्षमा मांगी और दहेज का पूरा पैसा वापिस किया इसीप्रकार आजकल ऐसी घटनायें घटे तो दहेज लेने वालों के मुँह अपने आप काले हो जाय, दहेज मांगना अपने आप बंद हो जाय। इस दहेज रूपी जुआ के कारण कितनी बालिकायें क्वांरी रह जाती है ं, जीवित जलकर मर जाती है, जहर खाकर मर जाती हैं, फांसी लगा लेती हैं, पति वियोग का कष्ट अंतपर्यन्त भोगती रहती हैं। जुवारियों का तथा इनके परिवार वालों का जीवन बड़े कष्ट से व्यतीत होता है जो वर्तमान में देख सकते हैं तथा ग्रन्थों में पाण्डवों की कथा पढ़ी जाती है कि इन्होंने जुआ खेलकर अपना सर्वस्व खोया, बदनामी हुई नानातरह से दुःखी हुए अतः जो सुखी होना चाहते हैं और रत्नत्रय प्राप्त करना चाहते हैं वे जुआ का त्याग करें।

प्रश्न– 235 आपने सम्यग्दर्शन या रत्नत्रय प्राप्त करने की भूमिका में जुआ का त्याग कराया फिर सम्यग्दृष्टि युधिष्ठिर ने जुआ क्यों खेला?

उत्तर **स्वेच्छा से स्वतन्त्रता पूर्वक युधिष्ठिर ने जुआ नहीं खेला था किन्तु जब दुर्योधन आदि दुष्ट राजाओं ने बलात् जुआ खेलने के लिए आग्रह किया तब राज्य पर आये हुए संकट को दूर करने के लिए विरोधी हिंसा को अपनाया संकल्पी हिंसा को नहीं। यदि सामान्य हिंसा भी सम्यग्दर्शन**

की या रत्नत्रय की विराधना करने वाली मानी जाये तो कोई भी नारकी सम्यग्दृष्टि, तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकते हैं क्योंकि नरक में निरन्तर मार काट चालू रहती है आर्तध्यान रौद्रध्यान सतत पाया जाता है इसी तरह भोगभूमिजों में, देवों में हमेशा भोगविलास चालू रहता है जिसप्रकार अनन्तानुबन्धी क्रोध मोक्षमार्ग का विरोधी है उसीप्रकार अनन्तानुबन्धी मान माया और लोभ भी मोक्षमार्ग के विरोधी हैं। शत्रुओं का आकांक्षा पूर्वक विरोध करना संकल्पी हिंसा है, जो मोक्षमार्ग के विरुद्ध है। अन्तरंग हेतु असमर्थ जीवों की रक्षा करना है, अभय दान देना, अहंकारी, समर्थों का निग्रह करना क्षत्रिय धर्म है। जो उद्दण्ड हैं शत्रु हैं उनका निग्रह करने में भले ही शिरच्छेद करना पड़े क्योंकि गृहस्थावस्था में संकल्पी हिंसा का त्याग होता है, विरोधी हिंसा का, आरम्भी हिंसा का, उद्योगी हिंसा का त्याग नहीं होता इस कारण युधिष्ठिर ने जुआ खेला नहीं किन्तु खेलना पड़ा। अतः जुआ का तथा संकल्पी हिंसा का त्याग करना चाहिए तभी रत्नत्रय की प्राप्ति होगी, अन्यथा नहीं।

प्रश्न— 236—38 मांस किसको कहते हैं? कैसे उत्पन्न होता है? किसके होता है?

उत्तर धातु और उपधातुओं के मिलने से जो शरीर की रचना होती है, पिण्ड रूप में मनुष्यों के और तिर्यंचों के जो शरीर उत्पन्न होता है उसे मांसपिण्ड कहते हैं। रजोवीर्य से उत्पन्न होता है। मांस द्वीन्द्रिय जीवों से लेकर पंचेंद्रिय और सैनीपंचेंद्रिय तक के तिर्यय और मनुष्यों के पाया जाता है विकलत्रय जीवों में सम्मूर्च्छन जन्म से तथा असैनी पंचेन्द्रिय और सैनी पंचेंद्रिय जीवों को प्राप्त हुए शरीर में मांस उत्पन्न होता है। तिर्यंच प्राणियों के और मनुष्य के शरीर में होता है। विकलत्रय जीवों के मांस को कोई भी जानवर नहीं खाता है, केवल पंचेन्द्रियजीवों का मांस खाने के काम में लिया जाता है, सम्मूर्च्छन मनुष्य और सम्मूर्च्छन लब्ध्यपर्याप्तक पंचेंद्रिय जीवों का मांस भी खाने में नहीं आता है।

प्रश्न— 239—42 मांस खाना व्यसन किसे कहते हैं? कौन खाते हैं? कहाँ के खाते हैं? कैसे खाते हैं?

उत्तर जिस प्रकार लौकिक सज्जनों को सात्विक आहार के विना चैन नहीं मिलता है उसी प्रकार मांस खाये बिना मांसाहारी को चैन नहीं मिलता है। उसकी तीव्र लालसा को, आसक्ति को मांस खाना व्यसन कहते हैं। जिनको नरकनिगोद में जाना है वे खाते हैं जो अत्यन्त निर्दयी हैं किसी दूसरे के दुःख को नहीं समझते हैं ऐसे निर्दयी मनुष्य आर्यखण्ड के, मलेच्छखण्ड के तीव्र कषायी मनुष्य और तिर्यंच खाते हैं। अत्यन्त लोलुपता पूर्वक खाते हैं। मांस पेड़ पौधों में उत्पन्न नहीं होता है किन्तु गर्भ जन्म और सम्मूर्च्छन जन्म से उत्पन्न होने वाले पशुपक्षियों से उत्पन्न होता है। मांस अंडे पेड़ पौधों से मिट्टी पत्थर से पैदा नही ं होते हैं और न शाकाहार है, न अचेतन हैं किन्तु जीव का शरीर है। मातापिता के रजोवीर्य से उत्पन्न होता है, मांस खाने से नाना तरह की बीमारियां होती हैं, शाकाहार से नहीं। मांसाहारी निर्दयी होते हैं, क्रूर, दुष्ट परिणामी, तीव्र कामी होते हैं। शाकाहारी सात्विक, शुद्ध हल्का आहार करते हैं, राजसी और तामसी आहार के त्यागी हैं क्योंकि सात्विक शाकाहारी जीवों में काम की मात्रा प्रसंग आने पर जागृत होती हैं सकारण

होती है किन्तु मांसाहारियों के असमय में भी और अधिक मात्रा में कामवासना जागृत होती है इस कारण जो सुख शान्ति से रहना चाहते हैं उनको राजसी और तामसी आहार त्याग कर शुद्ध, मर्यादित ताजा हल्का जो आसानी से पाचन हो सके ऐसा भोजन करना चााहिए। मांसाहार का तथा मांसादि धातुओं से निर्मित सामग्री का त्याग आत्महित के लिए कर देना चाहिए। जिनका होनहार बुरा है ऐसे नीचगोत्री नीचाचरण करने वाले, घृणा रहित, निर्लज्ज खाते हैं और उपयोग में लाते हैं। कर्मभूमि के मनुष्य खाते हैं, भोगभूमि के नहीं क्योंकि भोगभूमि के मनुष्यों में अशुभलेश्यायें और तीव्र कषाय नहीं होती हैं अतः ये मांसाहारी नहीं होते हैं।

प्रश्न– 243 मांसाहारी मनुष्य कहते हैं कि यदि मांस नहीं खाया जाये तो पशुपक्षी जीवों की संख्या अत्यधिक हो जायेगी तथा ईश्वर ने भोज्य मानकर खाने योग्य समझकर ही पक्षियों की रचना की है अतः ईश्वराज्ञा का पालना हानिकारक नहीं? इस कारण हम लोग ईश्वर की आज्ञा मानकर खाते हैं अतः दोष कैसे लग सकता है?

उत्तर जब लोग मांस नहीं खाते थे तथा अभी जहाँ मांस नहीं खाते हैं वहाँ की संख्या नहीं बढी तथा ईश्वर ने मनुष्य भी बनाये हैं आपकी भी मान्यतानुसार आजकल मनुष्यों की संख्या बहुत बढ़ रही है उनको भी मारकर खा जाना चाहिए बिचारे इन मूक प्राणियों ने, घासपत्ति खाने वालों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है तुम तो क्षत्री हो असमर्थ प्राणी जीवों की रक्षा करना चाहिए यही क्षत्रीय धर्म है। देखो पिताजी ने कोई वस्तु आपको धरोहर रूप में दी अब आपका कर्तव्य है कि उसको सम्भालना अगर धरोहर को नष्ट करोगे तो पिताजी को दुःख होगा, यदि रक्षा करोगे तो पिताजी प्रसन्न होंगे तो मंगल आशीर्वाद देंगे कि सुख से जीवित रहो अन्यथा दुःख होगा तो वे कैसा आशीर्वाद देंगे? इस कारण यदि ईश्वर ने इन प्राणियों को बनाया है और तुमको रक्षा करने के लिए सौंपा है। रक्षा करोगे तो इनके द्वारा रक्षा को प्राप्त होंगे, अन्यथा इनके द्वारा मारे जाओगे। इसमें ईश्वर का क्या दोष है? इन मूक प्राणियों को मारने के लिए शस्त्र का सहारा लेते हो और अपनी रक्षा के लिए ईश्वर को, अल्लाह को याद करते हो यह कोई न्याय नहीं कहलाया क्योंकि असमर्थ प्राणियों की रक्षा करना क्षत्रीधर्म है, अन्यथा कार्यों में उपयोग लगाना अपने जीवन और कर्तव्य का पालन नहीं करना यह हीनबुद्धि वालों का कार्य है। ईश्वर ने तुमसे कहा है कि तुम मारकर इनको खा लो और पशुओं से पक्षियों से कहा कि तुम इनसे रक्षा करो यदि ये तुमको मारने के लिए आयें तो अपने दांतों से, नाखूनों से, पैरों से, हाथों से मारकर अपनी रक्षा करो। क्या ईश्वर अल्ला वकीलों का काम करते थे या करते हैं?

प्रश्न– 244 मांसाहारी कहते हैं कि ये पशु पक्षी जानवर मांसाहारी हैं अतः इनको मारने से मनुष्यों की रक्षा होती है ऐसा क्यों नहीं कहते हो?

उत्तर पशु पक्षी जानवर यदि मांसाहारी हैं उनको मारने से मनुष्यों की रक्षा होती है तो कहने वाला भी मांसाहारी है, उसको मारने से देश, समाज, तन, मन, धन और धर्म की रक्षा क्यों नहीं होगी? मांसाहारी भी केवल मांस नहीं खाते उनको भी धान्य पानी की आवश्यकता होती है। अधिकतर

सरल स्वभावी कमजोर घासपत्ती पानी खाने पीने वाले भीरू स्वभाव वाले पशु पक्षी जानवर जैसे गाय, बैल, भेड़, बकरी, भैंस, हिरण, खरहा, मुर्गा, मछली, कबूतर आदि को मारकर खाते हैं ये पालतु पशुपक्षी हैं, रक्षा के पात्र हैं, दया के लायक हैं अतः अनाचारी मांसाहारी मनुष्यों के निग्रह से देश, समाज, तन, मन, धन और धर्म की रक्षा हो सकती है तभी सुखी हो सकते हैं।

प्रश्न– 245 मांसाहारी कहते हैं कि मांस खाने से ताकत आती है अतः पौष्टिक होने से खाने योग्य क्यों नहीं है?

उत्तर आप जिस पशु पक्षी, जानवर का मांस खाते हैं उनमें ताकत कहाँ से आई वह क्या खाता है, क्या गाय बैल भैंस हिरण बकरी घोड़ा गधा मांस खाते हैं? उपरोक्त शरीरधारी घासपत्ती खाते हैं। साधु सन्यासी शुद्ध सात्विक शाकाहारी एकबार भोजन करने वाले हैं। कहावत है–"एकबार खाये योगी दो बार खाये भोगी, ज्यादा खाये रोगी"। एक बार खाने वाला योगी, दो बार खाने वाला भोगी गृहस्थ और ज्यादा खाने वाला रोगी बीमार व्यक्ति। फिर भी अपने लक्ष्य से चलायमान नहीं होते हैं चाहे कितना संकट आये। मांसाहार न करते हुए भी इस प्रकार की ताकत दृढता कहाँ से आई। आजकल अभी भी बहुत प्रजा जनता मांसाहार नहीं करती है फिर भी उसमें कितनी ताकत है। इसका परिचय तो आपको होगा। राम लक्ष्मण कृष्ण पाण्डव आदि ये महापुरुष महात्मा गांधी, विनोबाभावे, लालबहादुर शास्त्री आदि मांसाहारी नहीं थे और इनमें कितनी शक्ति थी कि विना शस्त्र के अंग्रेजों को देश छोड़ने के लिए बाध्य कर दिया। इसलिए जिस सामग्री से मांस उत्पन्न होता है उस सामग्री पर रिसर्च करो, उसका प्रयोग न करो क्योंकि मांस जहर है मारक है तन मन धन धर्म इन चारों को नष्ट करता है। शुद्ध सात्विक शाकाहारी आर्य कहलाते हैं तथा मांसाहारी राक्षस मलेच्छ कहलाते हैं। मांस बलात् पशुओं को मारकर, दुःखी कर प्राप्त किया जाता है ऐसा व्यवहार अपने साथ या परिवार के साथ में कोई करे तब कैसा लगेगा? इसका थोड़ा चिन्तन करो, स्थिर निष्पक्ष मन से विचार करो।

प्रश्न– 246 यदि मांसाहार योग्य नहीं है तो ईश्वर ने इनकी रचना क्यों की है?

उत्तर आप थोड़ा विचार करें क्या ईश्वर ने ब्रह्मा ने आजकल के वकीलों जैसा काम किया है या पुलिस जैसा कि दोनों पक्षों को लड़ाभिड़ा कर मौज किया है। 'चोर से कहे चोरी करना और साहूकार से कहे जागते रहना' या वे ईश्वर ब्रह्मा दलाल जैसे हैं क्या? दलाल माल बेचने वाले से और खरीदने वाले से कमीशन लेता है। घाटा मुनाफा, क्रय विक्रय करने वालों को होता है किन्तु मुनाफा एकमात्र दलाल को ही, जैसे कहावत है–"या मरै के लेवा या मरै के देवा मौज करै बलदेवा"। क्या ईश्वर ने, ब्रह्मा ने तुमसे कहा है कि इन मूकप्राणी, असमर्थ जीवों को मारकर खा जाओ और पशुओं से कहा कि तुम इन लोगों को नख, दांत, पैर, पूंछ आदि से मारकर अपनी रक्षा करना, भय दिखाना, उनको मारकर भी खा लेना ऐसी शिक्षा दी। देखो माँ बाप के जितनी सन्तानें होती हैं वे सभी प्यारी होती हैं। सभी को एक समान देखते हैं, भेदभाव नहीं करते यदि करने लगें तो वे सही सज्जन माँ बाप कहलायेंगे क्या? पूरा परिवार परस्पर में सेव्यसेवक, रक्ष्यरक्षक भाव से रहता हैं, भाईबहिनों को या बहिन भाई को परेशान करें, दुःखी करें

तो वे भाई बहिन कैसे? जो माँ बाप की आज्ञा का पालन करे वह सुपुत्र है, अन्यथा अनाज्ञाकारी, कृतघ्नी पुत्र कुलनाशक है इसी तरह आप सभी पशु पक्षी जानवर जब ब्रह्मा की, ईश्वर की, अल्लाह की सन्तान हैं ब्रह्मा आदि ने बनाया है तो उदारचित्त होकर सबके साथ अपने कुटुम्बी जैसा व्यवहार करो। कुछ पुलिस जैसा नहीं। जैसे आजकल कुछ वर्दी वाले पुलिस उग्रवादियों से अपहरणकर्ताओं से मिलकर काम करवाते हैं घटना की सूचना मिलने पर भी समय पर पुलिस घटनास्थल पर नहीं पहुंचती बाद में आती है और उल्टी दिशा में पकड़ने को दौड़ती है जब घटना करने वाले भाग गये तब पुलिस आई अब पूंछती है क्या हुआ, किस पर शक है, कब आये, कैसे आये, कहाँ से आये नाना तरह के प्रश्न कर रिश्वत लेकर रिपोर्ट लिखती है इसके बाद में यदि बड़े नेताओं का दबाव पड़ा तो सही जानकारी कर लेती है फिर भी सेठों को, धनवानों को, बहु बेटियों को परेशान किया जाता है। इसप्रकार पुलिस की तरह ईश्वर ब्रह्मा आदि का काम करता है क्या? यदि नहीं तो मांस के समान चमड़े के चप्पल, पर्स, टोप, कोट, जूते का प्रयोग करना, अण्डे खाना, रक्तपान करना, रक्त चढ़वाना, किडनी, नेत्र दूसरों को धन का लोभ देकर खरीदकर अपने भोग विलासों के साधन लगवा लेना, धातु उपधातुओं से निर्मित शृंगार अलंकार की सामग्री का उपयोग करना। इसी तरह की औषधियों का उपयोग करना आदि मांस खाने के बराबर है। देखो जब मुर्दा घर में पड़ा हो, रखा हो तो खाना पीना, धर्मानुष्ठान, विवाहादि लौकिक मंगलकार्य भी नहीं किये जाते हैं तब आपके शरीर में, घर में पशुपक्षिओं को मारकर उनके अंग से निर्मित सामग्री पहने हुए हैं, लगाये हुए हैं, रखे हुए हैं । नेलपॉलिश, स्नोपाउडर, लिपिस्टिक लगाये हुए हैं। द्रव्य (शरीर) क्षेत्र (स्थान) काल (समय) भाव (परिणाम) ये चारों अशुद्ध हैं तो शरीर से, वचन से, पूजापाठ, जपतप, साधना आदि के करने पर भी सफलता कैसे मिलेगी? सही फल कैसे प्राप्त हो सकता है? आजकल 95% जैन लोग या सामान्य प्रजा धर्मानुष्ठान करते हुए भी सफलता नहीं पा रहे हैं क्योंकि अपने आचार विचार पर ध्यान नहीं देते। चालनी न्याय के अनुसार दिनचर्या, रोटी बेटी बिगड़ जाने से पूजापाठ जपतप आदि इष्ट फल प्रदान करने में समर्थ नहीं हो पाते अथवा हेतु गलत होने से पाप का ही अर्जन करते हैं। हिन्दू धर्म के साहित्य में गाय के शरीर में 33 करोड़ देवों का निवास माना गया है। यदि आपका निवासस्थान कोई छुड़ा दे, विना घर के रहने दे तो आपको आश्रयस्थान के बिना कितने कष्ट का अनुभव होता है। अपनी सामर्थ्यानुसार मन्त्र तन्त्र या अन्य किसी की सहायता से अपना स्थान वापिस लेने का प्रयत्न करते हैं, उपद्रव करते हैं। अन्यथा आगे या अगले भव में वापिस लेने का निदान बन्ध कर लेते हैं इसी तरह गाय के काटने कटवाने से उसके शरीर में रहने वाले 33 करोड़ देवतागण आश्रयविहीन हो जाने से रुष्ट होकर दुःखी होते हुए, इधर उधर भटकते हुए, देश में, राजा, प्रजा, कर्मचारी आदि पर अदृश्य होकर बीमारी, धनाभाव, सन्तान विहीनता और भी अनेक प्रकार से कष्ट पहुंचाते हैं। यही कारण है कि आजकल सारी देश की प्रजा नेतागण दुःखी असुरक्षितपने का अनुभव करते हैं और कर रहे हैं। एक दूसरों के द्वारा मारे जाते हैं, चारों तरफ त्राहि त्राहि मच रहा है, जगह जगह प्रकृति का विकार, गृहयुद्ध, भूकम्प, अतिवृष्टि, अनावृष्टि आ रहे हैं, हो रहे हैं आदि यह सब जीवहत्या का फल है जब तुमने समर्थ होकर किसी

को मारा है तो वो कल या अगले भव में समर्थ होकर मारेगा बदला चुकाना ही पड़ता है तभी तो कहा है—निधत्त और निकाचित कर्म बिना फल दिये नष्ट नहीं होते इनका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। इसलिए मांस खाने की लोलुपता से मूक प्राणियों को निर्दयतापूर्वक न मारना चाहिए, न मरवाना चाहिए और न मारे गये मरवाये गये पशु पक्षियों का, जानवरों का मांस खाना चाहिए, न खिलाना चाहिए। पुनः विचार करो कि अपने को कोई मारे कांटा चुभाये या अपने परिवार वालों को, सन्तान को कोई मारे तो कैसा अनुभव होगा? कैसा लगेगा? अतः हितेच्छुओं को अपने कष्ट के समान मूक प्राणियों का कष्ट समझना चाहिए। इसलिए रक्षा के पात्र हैं, जीवनदान के पात्र हैं।

प्रश्न— 247 आजकल अनेक संस्थायें गोहत्या का विरोध करती हैं ठीक है क्या?

उत्तर विरोध करना ठीक नहीं है, योग्य नहीं है, विरोध करने से उनका विना विज्ञापन के प्रचार हो जाता है, आजकल जिसका जितना विरोध किया जायेगा उतना ही प्रजा में, जनता में देखने का, ग्रहण करने का, आकर्षण बढ़ता है। इस कारण यदि आप हार्दिक मन वचन काय से स्व पर जीवों की रक्षा चाहते हैं, अहिंसा धर्म का पालन करना चाहते हैं तो पशु हत्या, जीव हत्या का विरोध किये विना पशुओं के शरीर से उत्पन्न चर्म से, बालों से, नख, हड्डी धातुओं से या उपधातुओं से निर्मित भोग्य सामग्री का त्याग करें और त्याग करायें, उपयोग में मत लाओ तब बिना परिश्रम के आपके संकल्पित कार्य में असीम सफलता मिलेगी क्योंकि विरोध करने से दुगुनी शक्ति का अपव्यय होता है, प्रथम विरोध करने में तन मन धन और धर्म नष्ट होते हैं फिर पुनः नष्ट होने के बाद में उसकी पूर्ति करने के लिए परिश्रम करना होता है, शत्रुता बढ़ती है, समय बरबाद होता है अपनी दिनचर्या का, पूजा पाठ का क्रियाक्रम भी बदल जाता है। इसलिए पशु हत्या, जीव हिंसा समाप्त कराने के लिए प्राणिजधातु उपधातुओं से निर्मित सामग्री सप्लाई नहीं होंगी तो गोहत्या क्या, सभी पशु पक्षी जानवरों की भी रक्षा होगी, और तन मन धन धर्म भी बचेगा। जब मांस चर्म निर्मित वस्तुयें सप्लाई नहीं होगी, प्रजा उसका उपयोग नहीं करेगी तो माल को कम्पनी वाले कहाँ तक रोककर रखेंगे, अगर नहीं बिकेगी, घाटा पड़ेगा, कसाई पशुओं को क्यों काटेगा? किसान क्यों बिक्री करेगा? इस पद्धति से संसार के सारे पाप समाप्त हो जायेंगे ''सांप मरै न लाठी टूटे न''। कहावत चरितार्थ होगी, इसलिए अहिंसावादी समाज विरोध किये बिना प्राणिज हिंसाजन्य सामग्री का त्याग करें तो अपने संकल्पित कार्य में असीम सफलता मिलेगी विरोध की अपेक्षा शोध करना श्रेष्ठ है और भी देखो जन्मदात्री माँ थोड़े समय तक ही पालन पोषण करती है फिर भी लौकिक स्वार्थ निहित रहता है, निःस्वार्थ भाव से, निष्कपट भाव से नहीं किन्तु पशुपक्षी, जानवर, गोमाता निःस्वार्थ, निष्कपट भाव से जीवन पर्यन्त दूध दही घी मट्ठा मक्खन दे देकर, मूत्र गोबरखाद आदि जीवन पर्यन्त देकर उपकार करती है किन्तु यह ज्ञानी ध्यानी धर्म का चोला पहनकर उत्तम कहलाकर मनुष्य भी उपकार की जगह अपकार से बदला चुकाता है, कृतघ्नी बना हुआ है यह बड़े आश्चर्य की बात है। पशुओं को धन कहकर, गाय को माँ कहकर, धर्मानुष्ठानों में गायों आदि की पूजा पाठ, नमस्कार करके भी थोड़े से पैसों के लोभ में कसाई को बेच देते हैं। कसाई लोग और निर्दयीजन बेरहमी से काट काटकर मारकर

खा लेते हैं, खिला देते हैं, पैरों में पहन लेते हैं, होठों में लाली लगा लेते हैं। अपने हृदय पर हाथ रखकर मन से पूंछो कि जब तुम किसी का उपकार करते हो तो वह तुम्हारा उपकार की जगह अपकार से बदला चुकाता है तब तुम्हें कैसा मन में धक्का लगता है। दुःख का अनुभव करते हो। तब मूक प्राणी बिचारे तुम्हारे आधीन होकर जीवन व्यतीत करने वालों की आत्मा क्या कहती होगी? अन्दर ही अन्दर कितने रोते हैं, आंसु निकालते हैं, कोई अश्रु पोंछने वाला नही ं होता है। मांसाहारी की आत्मा जितना कर्म बांधती है उतना ही कर्म का बंध पशुपक्षी और मनुष्यों का क्रय विक्रय करनेवाले, दलाली करने वाले, कसाईयों को व्यापार के लिए पैसा देने वाले, शस्त्र देने वाले, जगह देनेवाले, परमिट देने वाले, पशुहत्या की शिक्षा देने वाला, उपाय बतानेवाला आदि इन्हीं कार्यों को करने वाला, कराने वाला, प्रोत्साहित करनेवाला, उपयोग में लानेवाला ये सभी सामूहिकरूप से एक ही समान एक ही मात्रा में पाप कर्म का बन्ध करते हैं और उदय में आकर पूर्वकृत कर्म अपना फल देते हैं तब प्राणी कष्ट भोगता हुआ कहीं पर भी, किसीके साथ में भी, किसीभी अवस्था में सुख शान्ति का अनुभव नहीं कर पाता गुरुओं के पास जाकर भी मंत्र तन्त्र औषधि आदि का उपयोग करके, देवी देवताओं की आराधना करके भी दुःख से मुक्ति नहीं मिल पाती, न सुख प्राप्त हो रहा है अतः समस्त प्रकार से मांसाहार का त्याग कर, सबकी रक्षा करना चाहिए।

प्रश्न– 248–51 शराब किसे कहते हैं? कैसे तैयार किया जाता है? कौन पीता है? क्या हानि है?

उत्तर **सड़े गले दुर्गन्धित संख्यात असंख्यात और अनंत जीवों के जन्म मरण के स्थान स्वरूप रसीले शर्बत को, तरल पदार्थ को शराब कहते हैं। गेहूँ जौ, चावल, महुआ आदि सड़ाकर अनेक त्रस जीवों के उत्पत्ति के स्थान स्वरूप उस पदार्थ को भट्टी पर चढ़ाकर उबालकर भाप बाष्प तैयार कर एक बर्तन में रख ली जाती है जो मादक है, नशा लानेवाली है नीचलोग, नीचाचरण करने वाले हैं वे पीते हैं, यद्यपि कुछ उच्चगोत्री नीचों की संगति से नीचाचरण करने वाले हो गये हैं मान मर्यादा को नष्ट कर तन मन धन धर्म को नष्ट कर अपनी माँ बहिन बेटी पत्नी आदि की भी लज्जा मर्यादा का भी ध्यान नहीं रखते और शराब पीने में मस्त रहते हैं। शराब पीने से तन, मन, धन, धर्म स्वास्थ्य, परिवार में प्रेम की हानि, बदनामी, निन्दा, अपमान, अविश्वास, भय, तृष्णा, घृणा अरति, शोक आदि दोष उत्पन्न होते हैं तथा उस रस में उसी जाति के जीव उत्पन्न होते हैं और मरते हैं, पीने से जीव हिंसा होती है, कामवासना की तीव्रता होती है, विवेकहीन हो जाता है यहाँ तक की अपनी बहु बेटी माँ आदि के साथ अशिष्ट वचन बोलने लग जाता है, क्वचित् कदाचित् कामक्रीड़ा भी करने लग जाता है और भी अनेक प्रकार के दुष्कर्म करने लग जाता है जिससे हानि ही हानि होती है। इस हानि को पीने वाले भी जानते हैं, कुछ डॉक्टर भी जानते है और त्याग भी कराते हैं इसलिए जो लज्जा मर्यादा की रक्षा करना चाहते हैं वे जीवन पर्यन्त के लिए त्याग कर दें इसी में हित है, अन्यथा अहित है।**

प्रश्न– 252 कुछ डॉक्टर भी शराब पीने की सलाह देते हैं सो क्या बात है?

उत्तर **जो डॉक्टर सलाह देते हैं कि शराब पियो सो उनका अभिप्राय यह है कि यह व्यक्ति ऐसा काम**

करेगा ऐसा भोजनपान करेगा बीमार पड़ेगा तो हमारे पास आयेगा, व्यापार चलेगा बीमार पड़ेगा नहीं तो फिर हमारे पास कौन आयेगा अतः उल्टी सलाह देने से ही हमारा व्यापार चल सकता है, अन्यथा नहीं क्योंकि शराब पीने से नशा चढ़ेगा तो उल्टा बोलेगा तब लड़ाई झगड़ा होगा, मारपीट होगी तभी हमारे दवाखाने में आओगे, हमारे दास बनोगे, धन दोगे, व्यापार अच्छा चलेगा अतः धन के लोभी डॉक्टर शराब पीने की सलाह देते हैं।

प्रश्न– 253–55 शराब किसे कहते हैं? शराब व्यसन किसे कहते हैं? शराब का परिवार कौन कैसा है?

उत्तर जिस मादक आसव द्रव पदार्थ से पीने वाला मतवाला हो जाय अपने आपको भूल जाये उसे शराब कहते है और इस प्रकार की आदत हो कि जिसके पिये बिना मरने जैसी हालत हो जाय या पीने से बैचेनी हो जाये, किसी कार्य के करने में स्फूर्ति न हो उसे पुनः पुनः पीने की आकांक्षा तीव्र लगी रहे उसे शराब पीना व्यसन कहते हैं। शराब पीने से मन मोहित होता है, मन मोहित होने से कार्य अकार्य को, श्रेय अश्रेय को भूल जाता है, धर्म को भूल जाता है। जिससे बिना संकोच के, बिना लज्जा के, डर के पाप कार्यों में मस्त हो जाता है। शराब पीने वाले के मान, भय, जुगुप्सा, कामवासना, क्रोध, वैर, छलकपट, चोरी, परस्त्री सेवन, वेश्या सेवन, आदि दुष्कार्य निकटवर्ती परिवार हैं, सदस्य हैं।

प्रश्न– 256 शराब तो औषधि है, कितनी थकावट, चिन्ता, ठण्डी गर्मी हो तो पीने से शान्ति मिलती है, कष्ट दूर हो जाता है तो क्या अमृत है?

उत्तर यह आपका आपकी दृष्टि से कहना ठीक है पर इसी तरह के कार्य करने वाले कुछ न कुछ गुण अच्छा फल बतायेंगे, दोष छिपायेंगे तो क्या दुनिया में कोई पाप ही नहीं है, न रहेगा तब पुण्य, धर्म, पूजापाठ, यात्रा, व्रतउपवास क्यों करना पड़ेगा। बीमारी नहीं तो डॉक्टर, वैद्य, मन्त्र तन्त्र, नरक के कष्ट नहीं, कारण पाप नहीं तो पाप का फल भी नहीं। तो संसार और मोक्ष भी क्यों? त्याग और साधना क्यों? सारे कष्ट चिन्तायें तो रहती हैं पर शराब के नशे में थोड़ी देर के लिए मालूम नहीं पड़ती किन्तु नशा दूर हो जाने पर और दुगुणी तकलीफ देती हैं जो प्रत्यक्ष देखा जा रहा है। थोड़े से कष्ट को मिटाने के लिए पुनः पाप बढ़ाना बुद्धिमानी का काम नहीं है तन मन धन और धर्म नष्ट करना अच्छा नहीं, इनका नाश कर किंचित् सुख की कल्पना करना रक्त के धब्बे को रक्त से धोने की कल्पना के समान है। यदि शराब पीना औषधि है धर्म है तो अपथ्य क्या होगा? पाप क्या होगा? थोड़े नशे को, प्रमाद को दूर करके चिन्तन करो।

प्रश्न– 257 शराब मौन रखने का, मनोरंजन का, मस्ती मौज का, शान्ति का साधन है अतः पीने में पाप नहीं है तो क्या सद्गुण हैं?

उत्तर हाँ ठीक है, जब शराब का तीव्र नशा चढ़ता है तब नशे में बेहोश, अचेतन, जड़ के समान हो जाता है, अधमरे के समान हो जाता है, शराब के पीने से शरीर नाना तरह की बीमारियों से युक्त हो जाता है, नशे में व्यक्ति नाली में गिर जाता है, कुत्ते मुँह में पेशाब कर जाते हैं, गन्दी जगह में पड़ा रहता है, माँ बाप की, जाति कुल की कुछ भी मान मर्यादा नहीं रह जाती है यानि शरीर

के थोड़े से घाव को पूरा ठीक करने के लिए दूसरा बड़ा घाव बना लेना है। यदि शराब पीना हानिकारक नहीं है तो क्या लाभदायक है? तन मन धन और धर्म नष्ट नहीं होता तो दूध घी पानी रस शर्बत आदि को पीने से नष्ट होते होंगे? पर शराब से हानि को सभी लोग भी जानते हैं यहाँ तक की पीने वाले भी जानते हैं।

प्रश्न– 258–61 वेश्या किसे कहते हैं? वेश्यायें कैसे बनती हैं? किस जाति कुल की होती हैं? क्या काम करती हैं?

उत्तर जो यौवन से युक्त मदोन्मत्त हाथी के समान विचरण करने वाली हो, विवाहित हो या अविवाहित, जाति कुल का, धर्म अधर्म का, पुण्य पाप का, संसार मोक्ष का, कर्तव्याकर्तव्य का, सुख दुःख का, निन्दा प्रशंसा, मान अपमान का विचार किये विना काम सुख की, धन की अभिलाषा कर शरीर व्यापार कर, योनि व्यापार कर, मैथुन कर्म सेवन करके आजीविका चलाने वाली को वेश्या कहते हैं। कुछ बालिकाओं के पास या स्त्रियों के पास आजीविका के साधन न होने से, आजीविका के लिए योनिव्यापार करने लग जाती हैं, कुछ हर प्रकार से तन धन से सम्पन्न होकर के भी मैथुनकर्म की तीव्र अभिलाषा होने से मनोनुकूल पुरुष की खोज कर मैथुन कर्म करने लग जाती है, कुछ बलात् कामीजनों के द्वारा अपहरण कर वेश्यायें बना दी जाती हैं और कुछ बालिकाओं को, यौवनवती स्त्रियों को अपहरण कर अपहरणकर्ता वेश्या बनाकर धन कमाते हैं अर्थात् कुछ वेश्यायें अपनी आजीविका चलाती हैं, कुछ अपने परिवार का पालन पोषण करती है और कुछ पराधीन होकर उनकी आजीविका चलाती हैं। इनकी कोई कुल जाति गोत्र परम्परा सही नहीं होती है, सही रहती नहीं। आचार विचार क्रियाकर्म से अनभिज्ञ होकर स्वेच्छाचारिणी होती हैं, दूषित अथवा निर्दोष रजोवीर्य से उत्पन्न होती हैं तथा दूषित रजोवीर्य से सन्तान को जन्म देती हैं इनको किसी प्रकार की लज्जा मर्यादा या भविष्य जीवन की चिन्ता भय नहीं होता। निःशंक और निर्भय होकर खुले आम याचना कर बुला बुलाकर अपना व्यापार करती हैं। गर्भ निरोध करने में, गर्भपात करने में निःसंकोच प्रयत्नशील रहती हैं। इन्हें वेश्या कहते हैं।

प्रश्न– 262–63 यौवन किसे कहते हैं? यह यौवन किस किस गति के जीवों में होता है?

उत्तर जब शरीर और इंद्रियां अपने अपने विषयों में पूर्णरूप से रमण करने में समर्थ हो सीमित काल तक थकावट का, कमजोरी का अनुभव न करे अथवा कर्मों को काटने में समर्थ हो, तपत्याग करने में समर्थ हो उसे यौवन कहते हैं। चारों गतियों के जीव स्वामी हैं, यह यौवन जन्मकाल के अन्तर्मुहूर्त बाद से अंतपर्यन्त सभी देवों के होता है। भोगभूमियों में उत्तम भोगभूमि में जन्म से 21 दिन के बाद, मध्यम भोगभूमि में जन्म से 35 दिन के बाद, जघन्य भोगभूमि में जन्म से 49 दिन के बाद से लेकर पूर्ण आयु पर्यन्त तीन पल्य, दो पल्य, और एक पल्य तक यौवन रहता है और कर्मभूमियों में बाल्यावस्था व्यतीत कर दाढीमूंछ आना, स्तन वृद्धि का प्राप्त होना तिरछी, निगाह डालना, शृंगार अलंकार की विशेष भावना होना और करना स्वेच्छा से नाना तरह से शरीर के, नख केश के संस्कार करना। कामवर्द्धक सामग्री की तरफ लगाव झुकाव होना विवाहादि

जीवनसाथी और जीवनसाथिनी की तरफ पुनः पुनः तलाश निगाह खोज करना आदि लक्षणों से यौवनावस्था समझना चाहिए।

प्रश्न– 264–65 वेश्यासेवन व्यसन किसे कहते हैं? इससे क्या हानि है?

उत्तर जिनका यौन व्यापार मैथुनकर्म खुले आम आम जनता के साथ हो रहा है वह चाहे क्वांरी हो जवान हो, या ढलती जवानी हो, विधवा हो, त्यक्ता हो, पति सहित हो या पतिरहित हो, व्यभिचारिणी स्त्रियों के साथ शरीर सम्बन्ध बनाने को अतृप्ति पूर्वक एक या अनेकों के साथ रमण करने को वेश्यासेवन व्यसन कहते हैं। ये अधिकतर कृतघ्नी होती हैं। ये केवल धन से प्रेम करती हैं किसी व्यक्ति विशेष से नहीं, वह चाहे राजा हो या रंक हो, गरीब हो, अमीर हो, कोढ़ी हो, रोगी हो, निरोगी हो, बालक हो, वृद्ध हो या किसी भी नीच ऊँच जातिकुल वाला हो धन के लिए हर एक से रमण कर लेती हैं। ऐसा क्यों करती हैं? इनका व्यापार है और व्यापार धनवृद्धि के लिए किया जाता है तथा यदि धनवृद्धि न हो तो व्यापार कौन करेगा? व्यापार बन्द कर दिया जाता है, दूसरा व्यापार किया जाता है, तीसरा किया जाता है इसी तरह वेश्यायें जो धन दे उससे व्यापार करती हैं उससे प्यार करती हैं। धनाभाव के कारण पतझड़ वाले वृक्ष के समान जैसे पतझड़ वाले वृक्ष को पक्षी छोड़ देते हैं उसी तरह ये भी एक पुरुष को छोड़कर दूसरे को, दूसरे को छोड़कर तीसरे आदि अनेकों को ग्रहण करती हैं। कितने आये कितने गये गिनती नहीं, उनको किसी के तन मन धन और धर्म की चिन्ता नहीं। नाना प्रकार के शारीरिक रोगों से युक्त होती है, धन के लिए गरीब, अमीर, रोगी, कोढ़ी, लूला, लंगड़ा, काना, अन्धा, ऊँच, नीच, बाल, वृद्ध, जवान आदि को आलिंगन कर लेती हैं वही व्यक्ति इनको स्वीकार करता है जिनकी कामवासना अपनी पत्नी के साथ समुद्र के या अग्नि के समान तृप्त नहीं हो पाती तथा बिना सोचे समझे राजसी तामसी भोजन करते हैं, नग्न चित्र देखते हैं, हमेशा विकार उत्पन्न करने वाले गीत संगीत सुनते हैं, कामीकामिनियों की, हीन आचरण वालों की संगति करते हैं उनके यह व्यसन होता है। ये भी तन मन धन और धर्म की चिन्ता नहीं करते हैं किन्तु कामसेवन के पीछे लगकर मान मर्यादा लज्जा आदि को नष्ट कर वेश्यासेवन में रमण करने लग जाते हैं। सबके द्वारा हीनदृष्टि से देखे जाते हैं, मरण कर नरक निगोद के पात्र बनते हैं और चिरकाल तक दुःख भोगते रहते हैं। अतः इस व्यसन का त्याग करना चाहिए।

प्रश्न– 266 क्या सभी वेश्यायें इस प्रकार की होती हैं?

उत्तर नहीं, सभी वेश्यायें इस प्रकार की नहीं होती हैं, किन्तु कोई कोई सत्यवादी भी होती हैं। फिर भी अधिकतर गलत सोचने वाली, बोलने वाली और कार्य करने वाली होती हैं, सभी होती हैं ऐसा हमने नहीं कहा है। जो धर्म को बदनाम करने के लिए माँ बाप की, पति की, सास श्वसुर की, जातिकुल, परम्परा को बदनाम कर विषय भोगों में स्वेच्छा से आसक्त होती हैं, अपना सत्कर्तव्य पालन करने में अकर्मण्य हैं वे हर प्रकार से दूषित आचरण वाली होती हैं किंतु बलात् अपहरणकर, दबाववश जो वेश्यायें बनाई जाती हैं या किसी विकट समस्या के कारण, अपने जीवनयापन के लिए कोई विशेष प्रकार का साधन न होने से बनाई जाती हैं या बन गई फिर

भी पाप से, लोक निन्दा से भयभीत हैं सत्कर्तव्य पालन करना चाहती हैं तो वे किसी एक तन मन धन से सम्पन्न व्यक्ति को अन्तपर्यन्त के लिए स्वीकार कर लेती हैं, पुनः दूसरे को नहीं, जैसे सेठ चारूदत्त को वसन्तसेना ने जीवन पर्यन्त के लिए स्वीकार कर लिया। वसन्तसेना की मां ने खूब समझाया कि अब इसे छोड़ दो इसके पास धन नहीं है सब समाप्त हो चुका है। क्योंकि व्यापार लाभ के लिए किया जाता है। इस पर वसन्तसेना ने उत्तर दिया कि नहीं अब हमारा इस जीवन में यह एक ही स्वामी होगा, अन्य नहीं। संसार की विचित्र गति होती है इन वेश्याओं के सम्बन्ध में दिगम्बराचार्यों ने और अन्य मतावलम्बी विद्वानों ने मन चाही कटु आलोचना की है, निन्दा नहीं की, बदनामी नहीं की, निन्दा करने से नीचगोत्र का आश्रव बंध होता है। इस बंध के स्वामी मिथ्यादृष्टिजीव और सासादन सम्यग्दृष्टि जीव हैं। इसलिए आचार्यों ने जो भव्यप्राणी संसार बन्धन से, कष्ट से, निन्दा बदनामी से भयभीत हैं, मोक्ष के इच्छुक हैं, अपने आप में रहना चाहते हैं उन भव्य जीवों को सम्बोधन किया है, सावधान किया है। सुख से रहना चाहते हो तो ऐसा कार्य मत करो क्योंकि **'बद से बदनाम बुरा होता है।'**

प्रश्न— 267—69 इन वेश्याओं को मर्मच्छेदी शब्दों में क्यों कहा, उसी भाव को मधुर शब्दों में कहते या धर्मात्माओं को कहते? काना को काना कहने से सुधार हो सकता है क्या? अपनी भाषा समिति का उल्लंघन क्यों किया?

उत्तर **कदाचित् शब्दों में कटुता है, भावों में नहीं। देखो सोना जितना तपता है, पिटता है वह उतना ही चमकता है कीमती और शुद्ध होता है तभी तो अलंकार के काम आता है। इसी तरह इन भोगी गृहस्थों को सर्वप्रथम मधुर शब्दों में समझाया, सम्बोधन किया फिर भी नहीं माना अपनी उद्दण्डता नहीं छोड़ी तो करुणाधारी, दयालु गुरुओं ने पाप कार्यों को, दूषित कार्यों को छुड़ाने के लिए इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया। नीति है जब किसी को कुछ कार्य कलाप का त्याग कराना होता है तो उस कार्य के दोष बताये जाते हैं ताकि उस कार्य के प्रति घृणा उत्पन्न हो जाय, उस समय उसके गुण गुप्त रखे जाते हैं क्योंकि पद्धति है कि जब किसी व्यक्ति या वस्तु के सदा सर्व दोष बताये जायेंगे तो सज्जन प्राणी विवेक को प्राप्त कर उसका त्याग कर देवें। इसी तरह वेश्याओं के दोषों का पुनः पुनः वर्णन करने पर सज्जनों के मन में उदासीन भाव पैदा हो जाये इस कारण आचार्यों ने वर्णन किया है। कषाय उत्पन्न हो, नीति बिगड़ जाय, नवीन सम्प्रदाय उत्पन्न हो जाय इस हेतु से वर्णन नहीं किया किन्तु भोगी प्राणी सन्मार्ग में लगें, धर्म की प्रभावना, आत्मप्रभावना करें इस भावना से कथन किया। कहीं कहीं देखा जाता है कि काने को बार—बार मीठे शब्दों में समझाने पर भी नहीं मानता है तो काना कहने पर अपनी हठवादिता छोड़ देता है और हितकारी थोड़े सीमित जितने शब्दों से अर्थ समझ में आ जाये उतने वचनों का प्रयोग करना मित और मोक्षमार्ग के अनुकूल वचन बोलना प्रियवचन अतः समिति का उल्लंघन नहीं किया किन्तु विवेकवान होने से सम्यक्भाषासमिति का प्रयोग किया है।**

प्रश्न— 270 किसी ने वेश्या सम्मेलन में जाकर प्रश्न किया कि ग्रन्थकारों ने आप लोगों की कटु शब्दों में आलोचना क्यों की?

उत्तर वेश्याओं ने एक कहावत कही कि "अंगूर खट्टे हैं या अंगूर खट्टे क्यों हुए?" लोमड़ी घूमती हुई अंगूर के बगीचे में पहुंच गई और अंगूर खाने के लिए खूब प्रयास किया, कोशिश की पर जब खाने को नहीं मिले तो लोमड़ी ने कहा कि अंगूर खट्टे है ठीक इसी तरह इन लेखकों को, कवियों को प्रयास करने पर कोशिश करने पर भी हमलोग मिले नहीं तो इन लोगों ने धनवानों को, जवानों को बहकाने के लिए हम लोगों की ग्रन्थों में, पुस्तकों में बुराई करना, धोबी की शिला के समान, जूँठी थाली के समान, मल मूत्र वीर्य के क्षेपण करने के स्थान के समान आदि कहकर अपमानित कराया और उल्टी के समान कहा आदि शब्दों में कटु आलोचना की पर ध्यान रखना यदि हम लोग नहीं होते तो इन पतिव्रताओं की रक्षा नहीं हो सकती थी, पतिव्रत का या कुवांरिकाओं के शीलव्रत का पालन नहीं हो सकता था। हम लोगों ने इनके पतिव्रत और शीलव्रत का पालन कराया ये कामीजन भी असहनीय काम की वेदना से असमय में मर जाते इस कारण इनको अभयदान दिया औषधिदान दिया और स्वास्थ्य भी अच्छा किया आदि गुणों को देखकर हम लोगों का उपकार मानना चाहिए था किन्तु उपकार का बदला अपकार से दिया, अपमान करके दिया यह कहाँ की बुद्धिमानी? किसी का अपमान तिरस्कार करना ज्ञानी का, सज्जन का लक्षण नहीं।

प्रश्न– 271 उन वेश्याओं ने शत प्रतिशत सही उत्तर दिया तब क्या दोष है बताओ?

उत्तर उनका कहना सत्य है परन्तु उनके इस कथन को सही कसौटी पर कसकर देखा जाय तो वह लाभ लाभ नहीं माना जाता है किन्तु हानि ही मानी जाती है। देखो थोड़ी सी जहर की कणिका सारे दूध को जहरीला बना देती है वह दूध भी जहर के समान मारक हो जाता है इसी तरह अनेक सद्गुण होने पर भी कुछ दुर्गुण होने से वह व्यक्ति, वस्तु अग्राह्य हो जाती तथा स्याद्वाद रूप सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक वस्तु के प्रत्येक धर्म अपने प्रतिपक्ष धर्म सहित ही उपकारी होते हैं अन्यथा अपकारी होते हैं। वास्तव में उपकार वही है जिसके पीछे अपकार प्राप्त न हो।

प्रश्न– 272–75 उपकार किसे कहते हैं? भेद? नाम कौन–कौन हैं? स्वामी कौन हैं?

उत्तर जिन प्रयोगों के द्वारा, वचनों के द्वारा दुःखी प्राणी दुःख से, कष्ट से बचकर, निकलकर आत्म सुख शान्ति का अनुभव करें उसे उपकार कहते हैं अथवा संसार बन्धन से, पराधीनता से छूटकर अनन्तानन्त, अक्षय अनन्तकाल तक के लिए विच्छेद रहित सुख का, आत्मानन्द का अनुभव करे उसे उपकार कहते हैं। दो भेद हैं। लौकिक और लोकोत्तर उपकार। लौकिक उपकार के स्वामी अधिकारी लौकिक पुरुष और लोकोत्तर महापुरुष हैं किन्तु लोकोत्तर उपकार के स्वामी एकमात्र लोकोत्तर महापुरुष हैं। जो आरम्भ परिग्रह के त्यागी, विषय कषायों के त्यागी, ख्याति पूजा लाभ के त्यागी, सम्यक्रत्नत्रयधारी हैं वे लोकोत्तर उपकारी हैं अथवा लौकिक उपकार के स्वामी भव्य अभव्य दोनों तथा लोकोत्तर उपकार के स्वामी उभय मोक्षमार्गी भव्य और अभव्य जीव हैं।

प्रश्न– 276 उन वेश्याओं का 270 नं० के प्रश्नोत्तर के अनुसार समाधान युक्त था या अयुक्त?

उत्तर वेश्याओं का जवाब उनकी अपनी दृष्टि से ठीक था, पर धर्म और धर्मात्माओं की दृष्टि से सही नहीं था। प्रश्न का उत्तर उन्होंने अपने ढंग से दिया था। पर जरा सोचो प्राचीन ऋषियों ने, मुनियों ने, कवियों ने जो ग्रन्थों में लिखा है वह निन्दा/अपमान/तिरस्कार/बदनामी की दृष्टि से नहीं लिखा क्योंकि सज्जन पुरुष, महापुरुष किसी की निन्दा/बदनामी नहीं करते यदि सज्जन पुरुष भी बदनामी करने लगें तो ऊँच नीच में, सज्जन दुर्जन में कोई भेद न रहा फिर दोनों में क्या अन्तर होगा? इसलिए दोनों का जीवन धर्ममय हो, सुखी हो इस दृष्टि से कथन किया है। गाड़ी एक पहिये से नहीं चला करती है। एक हाथ से ताली नहीं बजती, अकेलेपन से सन्तान नहीं होती, दम्पति चाहिए। इसी तरह अकेला पुरुष या अकेली स्त्री या वेश्या कैसे व्यभिचार सेवन, काय से प्रवीचार सेवन करेगी? अकेली वेश्या क्या करेगी? जब व्यभिचारी नहीं होंगे तो वो किससे व्यभिचार करेगी? आजीविका के लिए कोई दूसरा उपाय सोचेगी और धर्म का पालन करेगी, पाप का त्याग करेगी। जिससे धर्म की, समाज की, परिवार की बदनामी नहीं होगी और तन मन धन और धर्म की रक्षा होगी। ऐसे ही यदि व्यभिचारी पुरुष हैं पर वेश्या नहीं है तो वे किससे व्यभिचार करेंगे अपने आप तो कर नहीं सकती हैं, न कर सकते हैं अकेला व्यक्ति कब तक मन से पाप करता रहेगा? सन्तोष प्राप्त होगा नहीं किन्तु आकुलता बढ़ती जायेगी। अतः ग्रन्थकारों ने प्रत्येक प्राणियों को धर्मात्मा बनाने के लिए, सज्जन बनाने के लिए कथन किया है, पुण्य बढ़ाने के लिए, पाप घटाने के लिए धर्मोपदेश दिया है, न कि कर्मोपदेश।

प्रश्न– 277 वेश्याओं के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए?

उत्तर इन वेश्याओं के साथ माँ बहिन बेटी के समान गाढ़ प्रीतिपूर्वक, निष्कपट, निःस्वार्थपूर्वक व्यवहार करना चाहिए जिससे उनका जीवन धर्ममय हो जाय। निष्कपट, निःस्वार्थ, प्रेमवात्सल्य करना चाहिए ताकि उनके मन से दुर्भावना निकल जाये। वो भी कभी अपने परिवार वालों की प्यारी थीं, उदार मन वालों की थीं। सारी पृथ्वी कुटुम्ब के समान हैं अतः अपने कुटुम्बीजन के समान व्यवहार करना चाहिए।

प्रश्न– 278 शिकार खेलना किसे कहते हैं?

उत्तर जो क्रूर स्वभावी तथा कमजोर, मूक, डरपोक, भयभीत तिर्यंच प्राणी घासपत्ती खाकर, छिपकर अपना जीवन व्यतीत करने वाले थोड़ीसी आवाज को सुनकर जीवन रक्षा के लिए इधर उधर भागकर छिपकर रहने वालों को जो निरपराधी हैं उनको मारकर प्रसन्न होने को कि मैंने बहुत अच्छा किया, मारा आदि को शिकार खेलना कहते हैं। इन निरपराधी प्राणियों को मारे बिना चैन न मिलने को, आकुलित होने को और मारने पर प्रसन्न होने को शिकार खेलना व्यसन कहते हैं अपराधी प्राणी तो अपना कल्याण कर सकता है तथा अपराधी प्राणी को मारने वाला भी अपना कल्याण कर सकता है किन्तु निरपराधी प्राणियों को मारने वाला एकमात्र अधोगति का, नरक निगोद का पात्र होता है। इनके अनेक शत्रु बन जाते हैं और स्वयं मारा जाता है। स्वयं भयभीत होता है, उसकी क्रूरता को देखकर पशु पक्षी जानवर भी भयभीत होते हैं।

प्रश्न– 279–80 अपराधी को मारने वाला निर्दोषी और निरपराधी को मारने वाला

सदोषी ऐसा क्यों? संगति का क्या फल हैं?

उत्तर जो धर्म का, परिवार का, समाज का, नगर का, देश का, प्रान्त का और राजा की आज्ञा का नीति नियम का उल्लंघन करने वाला, लोप करने वाला है ऐसे अपराधी व्यक्ति का निग्रह करना, दण्ड देना आदि तथा धर्म, समाज आदि की रक्षा करना समर्थों का क्षत्रीधर्म है, देशसैनिकों का कर्तव्य है, इस कारण निर्दोषियों की रक्षा करना और सदोषियों का निग्रह करना, शूली पर चढ़ाना, फांसी की सजा देना भी राजाओं का धर्म हैं अतः अभयदान देने वाले होने से, कल्याण के मार्ग में स्थित होने से निर्दोषी हैं तथा निरपराधियों, कमजोरों को मारने वाला कायर है छिपकर मारता है, अकेले में मारता है ऐसा व्यक्ति समाज के द्वारा राज्य सरकार के द्वारा सम्यक् नियमानुसार दण्ड का, प्रायश्चित्त का अधिकारी होता है क्योंकि वह सदोषी है किन्तु अपराधी को मार देने वाला अनेकों के सामने, अधिकारियों के सामने इनकी आज्ञापूर्वक मारता है और अपराधी को मारने वाला व्यक्ति लोक व्यवहार में निर्दोषी माना गया है, धर्म का, समाज का, राज्य सरकार दोनों का द्रोही नहीं है, रक्षक है, निर्भीक है, निडर है, इसको अपनी रक्षा का भय नहीं है किन्तु इसके रक्षक स्वयं तैयार हो जाते हैं। सदोषी राजद्रोही व्यक्ति अपनी रक्षा के लिए छिपकर रहता है अपना रक्षक, साथी बनाता है या सरकार को ही सरकार से अपनी रक्षा करने वालों को रुपया पैसा देकर खरीद लेता है और ऐसा व्यक्ति धन के लोभ से समाज को, देश नेताओं को लांच देकर राजद्रोही, समाजद्रोही, धर्मद्रोही बना देता है, कर्तव्यविहीन बना देता है। जैसे कोयला के संसर्ग से स्वच्छ पदार्थ भी, व्यक्ति भी काला, मलिन हो जाता है ऐसे ही सदोष व्यक्ति की संगति से निर्दोष भी सदोषी बन जाता है जैसे स्वच्छ स्फटिक पदार्थ किसी रंगीन पदार्थ की संगति से रंगीला हो जाता है और स्वच्छ पदार्थों की संगति से स्वच्छ रहता है। इसी तरह सदोषी व्यक्ति की संगति से निरपराधी व्यक्ति भी सदोषी माना जाता हैं और निरपराधी व्यक्तियों की संगति से अपराधी भी निर्दोषी माना जाता है ऐसा लोक न्याय है।

प्रश्न– 281 शिकार खेलना व्यसन की अवस्था को सुनकर, देखकर मुमुक्षुओं को क्या करना चाहिए तथा शराब और शिकार का क्या संबंध है?

उत्तर शिकार खेलना व्यसन की दुर्व्यवस्था को सुनकर देखकर मुमुक्षुओं को इस व्यसन का त्याग करना चाहिए अन्यथा जो वर्तमान का पापी जीव दूसरों की माँ बेटी की, बहु की, माँ के सिंदूर को मेटता है, मिटाता है, मिटवाता है, चूड़ियां फुड़वाता है, फोड़ता है उसकी भी दशा दूसरों के द्वारा वैसी ही होती है आज नहीं तो कल अवश्य होती है कहा भी है– ''मर्द को मर्द घनेरे हैं यहाँ नाहीं तो बाहर बहु तेरे हैं।'' तूँ यहाँ मन से, शरीर से कायर है किन्तु किन्हीं बाह्य साधनों से शूरवीर मर्दाना कहलाकर, बनकर अथवा मन से शरीर से भी मर्द बनकर क्या कमजोरों के साथ मर्दाना दिखाता है? तेरे इस मर्दाने को, चाल को बाहर में खण्डन करने वाले बहुत हैं, तूँ घमण्ड मत कर। कदाचित् सामने नहीं भी दिख रहे हैं तो भी तेरा दुष्कर्म तेरे को खुले आम सबके सामने नाच नचायेगा तब कैसा लगेगा? तब तेरी आँखें खुलेंगी अतः यदि अपनी रक्षा चाहते हो तो दूसरों की रक्षा करना सीखो, दूसरों के दुःखों को दूर करो। जैसा व्यवहार

दूसरों से अपने प्रति कराना चाहते हो वैसा व्यवहार स्वयं दूसरों के साथ करो। अन्यथा कहावत है। "बिना विचारे जो करे सो पीछे पछताय। काम बिगारे आपनो जग में होत हंसाय।" जो बिना सोचे समझे गलत मार्ग में गमन करते हैं आचरण करते हैं उनको बाद में पछताना पड़ता है, स्वयं का काम बिगड़ता है, निन्दा बदनामी होती है, संसार में हंसी होती है, लोग नाना तरह से व्यंग करते हैं, मजाक उड़ाते हैं। सिर से जुंये निकाल कर मार देना, धान्य में से कीड़े, घुन आदि निकालकर धूप में डाल देना, दहेज के नाम पर बहुओं को जला देना, हत्या करना आदि भी शिकार खेलना ही हैं। कीटनाशक दवाईयों का प्रयोग करना, गर्भपात करना, कराना शिकार के अंतर्गत समझना चाहिए देखो शराब के नशे में शराबी नालियों में या गन्दी जगहों में जा गिरता है वहाँ मुँह में कुत्ते भी पेशाब कर जाते हैं, मारपीट भी होती है, नशे में मस्त होने से सारा पैसा लुट जाता है। अपने ही घर में माँ बहिन बेटियों के सामने लज्जा मर्यादा छोड़कर मनमानी गालियां बकने लगता है आदि हानियों को समझकर इस शराब का शराब व्यसन का शिकार का घनिष्ट सम्बन्ध समझकर शिकार के साथ शराब को भी छोड़ना चाहिए।

प्रश्न— 282—84 चोरी किसे कहते हैं? इससे क्या लाभ है? क्या हानि है?

उत्तर जिसका मालिक दूसरा है ऐसी चेतन सामग्री स्त्री, नौकरनौकरानी, हाथीघोड़ा, गाय भैंसादि, अचेतन मकान दुकान वस्त्राभूषणादि और मिश्र वस्त्राभूषणादि सहित पुत्रपुत्री, दास दासी आदि को मालिक की इच्छा के बिना, मालिक की रखी हुई, गिरी हुई, भूली हुई, वस्तु या व्यक्ति को स्वयं ग्रहण कर लेना, दूसरों को ग्रहण करा देना या बलपूर्वक मालिक के सामने ही अपहरण कर लेना या अपहरण करा देना आदि को चोरी कहते हैं। इस चोरी से अधिक परिश्रम किये बिना ही इकट्ठा एकसाथ धन मिल जाता है। चोरों के द्वारा प्रशंसा प्राप्त होती है अत्यधिक प्रसिद्धि हो जाती है अनेक भयभीत होते हैं। चोरी करने के लिए घुसे, चोरी नहीं भी कर पाये या चोरी करली पकड़े गये तो मालिक या प्रजा हाथ पैर तोड़ देती है, बांधकर मारते हैं। चोरी कर भागे कि घर में न रहकर जंगलों में, बगीचों में या सूने मकानों में छिपकर रहते है, माँ बाप, पत्नी, पुत्र पुत्री, भाई भतीजे आदि भी दुःखी होते हैं। लोगों की अपमानजनक बातों को सुनकर लज्जित होते हैं, चोर के परिवार वाले भी मारे जाते हैं, पीटे जाते हैं, ये भी प्रेम प्यार के लिये तड़फते हैं, दुःखी रहते हैं, चोर हमेशा आर्तध्यान रौद्रध्यान से तथा अशुभ लेश्याओं से युक्त होकर मरण कर या मार दिये जाने पर संक्लेश भावों से नरक में या तिर्यंचगति में जन्म धारण कर नाना प्रकार के कष्टों को भोगते हैं। इनके उठने बैठने, खाने पीने का कोई निश्चित ठिकाना नहीं रहता। इस एक पाप के कारण सारे पाप अपने आप बिना परिश्रम के बिना बुलाये आ जाते हैं, परिवार के लोग भी बदनाम होते हैं आदि हानि है। आजकल राजनेता, राजकर्मचारी धनवानों से या किसानों से पूंछते हैं कि तुम्हारे पास यह धन कहाँ से आया हिसाब बताओ दिखाओ, जिनके पास पीढियों से धन चला आ रहा है वे क्या लिखा पढ़ी बतायें? न किसी के घर में घुसे हैं, न किसी का गला पकड़ा है, न जेब काटा है, ईमानदारी से चला आ रहा हैं परन्तु इनके पास कोई खोटी आदतें न होने से आमदनी खूब हुई और खर्च कम किया जिससे धन की वृद्धि हुई है। इसके विपरीत

कोई इन्हीं राजनेताओ से पूंछ ले कि आपके पास कुर्सी, गद्दी प्राप्त करने के पहिले तो रहने का मकान, ढंग से वस्त्र आभूषण, वाहन आदि नहीं थे और गद्दी प्राप्त होने के थोड़े से समय में ही ये सारी व्यवस्थायें कहाँ से आ गई तो क्या जवाब होगा? जब की सरकार से पगार सीमित है खर्च अधिक है तो एकमात्र इसका उत्तर होगा कि लांच लेकर इतना धन बढ़ाया है, कमाया नहीं है। हर जगह नौकर पर नौकर, बैंकों में पुत्र पुत्रियों, पत्नी के नाम विदेशों की बैंकों में धन जमा है और यह धन चोरों से, डाकुओं से, बड़े–बड़े धनवान व्यापारियों से, कम्पनियों से, नौकरी करने वालों से, लांच लेकर इकट्ठा किया है न्यायनीति से इन नेताओं के पास धन वृद्धिंगत नहीं हो सकता है, जैसे नदी में बाढ़ स्वच्छ जल से नहीं आती है किन्तु गन्दे जल से आती है। इन नेताओं के पास न खेती है, न व्यापार है, न धन निकालने के लिए घर में कुआं है तो यह भोग विलास की सामग्री कहाँ से आई? तब उत्तर मिलेगा कि गलत मार्ग से धन आया है अतः चोरी पाप ही है।

प्रश्न– 285 चोरी व्यसन किसे कहते हैं?

उत्तर घर में हर तरह से व्यवस्था होने पर भी पूर्व आदतवशात् परके दूसरे के चेतन अचेतन और मिश्र सामग्री के ऊपर नियत खराब होने से और स्वयं की सामग्री में अतृप्ति होने से किन्तु सामग्री के सद्भाव में या असद्भाव में भी आसक्ति भाव से सामग्री के अपहरण में मन लगाने को या चैन न मिलने को चोरी व्यसन कहते हैं।

प्रश्न– 286 चोरी पाप और चोरी व्यसन में क्या अन्तर हैं?

उत्तर चोरी पाप छिपकर किया जाता है, डरता भी है, चोर चोरी कर छिपता हुआ परिवार को छोड़कर यहाँ वहाँ खाने पीने की व्यवस्था न कर, उठने बैठने की सोने की व्यवस्था न कर, भयभीत हुई हरिणी के समान भागकर छिपकर समय व्यतीत करता है। योग्य वस्त्राभूषण न होने से फटे पुराने टूटे फूटे कपड़े जूते चप्पल आदि पहनता है किन्तु चोरी व्यसन सेवन करने वाला व्यक्ति इससे भिन्न होता है। वह अपने विषय भोगों में ऐशोआराम में कामभोग में कभी भी कमी नहीं करता, यह मनोबल से और तनबल से समर्थ होता है, आगे पीछे अनेक साथी और नौकर रहते हैं, निर्भीक होता है, पाप से डरता नहीं है, जाति कुल और धर्म की मर्यादा की भी चिन्ता नहीं करता, बदनामी की परवाह नहीं करता। चोरी पाप थोड़े परिश्रम से भी छूट जाता है क्योंकि इसमें कषायों की तीव्रता नहीं होती है किन्तु चोरी व्यसन में कषायों की तीव्रता होती है, छोड़ने में बहुत कठिनाई होती है आदि यही दोनों में अन्तर है। 'चोर चोर मौसेरे भईया' जैसी कहावत चरितार्थ होती है। चोरी का माल खाने वाले, सहायक बनने वाले, उपाय बताने वाले, अनुमोदना करने वाले आदि समान फल के भागीदार होते हैं और भविष्य में फल बुरा होता है जैसे रावण ने कामवासना से पीड़ित होकर सीता का अपहरण किया था तो उसका फल रावण उसका परिवार और अक्षौहणी की संख्या में सैनिकों को प्राप्त हुआ अर्थात् रणक्षेत्र में मारे गये तथा रावण मरकर तीसरे नरक में चला गया अतः यह चोरी व्यसन पाप महा दुःखदाई है। दोनों का अपयश फैलता है। इनकी सन्तानें भी दुराचारी, रोगी, कोढ़ी, व्यभिचारी, शराबी ज्ञानविहीन होती हैं।

अविनयी संस्कारहीन होती हैं और भी अनेक हानियां होती हैं।

प्रश्न— 287—88 परस्त्री किसे कहते हैं? क्वांरिकाओं को परस्त्री कह सकते हैं क्या?

उत्तर धर्मायतन और धर्मसमाज तथा मातापिता, भाईबन्धु, सगेसम्बन्धियों की साक्षी सहर्ष मन से स्वीकृति मिलने पर वीर्य संकर, वर्णसंकर और जातिसंकर दोष से रहित बालक बालिका के परस्पर में पाणिग्रहण संस्कार होने को, पाणिग्रहण करने को विवाह कहते हैं। इसके अलावा विकारयुक्त कामविकार की तीव्रता वाली पति रहित हो, पति सहित होने पर भी पतिकार्य से रहित अंजना की तरह, पति जीवित है किन्तु आजीविका के निमित्त या अन्य किसी कार्य से वर्षों तक के लिए कहीं बाहर चला गया हैं ऐसी स्त्री दूसरे के लिए परस्त्री होती है अर्थात् इसे परस्त्री कहते हैं। मन से निर्विकार क्वांरी कन्या वर्तमान में स्वस्त्री भी नहीं, परस्त्री भी नहीं, वेश्या भी नहीं किन्तु भविष्य में तन से विकार युक्त होने पर तीनों परस्त्री स्वस्त्री और वेश्या भी हो सकती है अथवा निर्विकारमय जीवन व्यतीत करने के लिए कटिबद्ध हो तो ब्रह्मचारिणी, आर्यिका, त्यागी व्रती बनकर साध्वी भी बन सकती है। अपने निकट सगेसंबंधियों की धर्मपत्नियों को परस्त्री न कहकर, न मानकर चाची, मामी, भाभी आदि कहते हैं। इनके अलावा शेष को परस्त्री कहते हैं।

प्रश्न— 289 विधवा किसे कहते हैं?

उत्तर जिस बालिका ने विवाह किया है मातापिता आदि बन्धुवर्गों की साक्षी या प्रेम पूर्वक स्वयंवरण किया है ऐसे पति के मृत्यु पूर्वक वियोग होने पर उस स्त्री को विधवा स्त्री कहते हैं।

प्रश्न— 290 विवाहित परस्त्री किसे कहते हैं?

उत्तर जिसने धर्मायतन, मातापिता आदि की आज्ञा से या स्वेच्छा से अपना जीवनसाथी बना लिया है, मोक्षमार्ग की साधना करने वाली है या केवल संसारमार्ग का अनुकरण करने वाली है उसे दूसरे के लिए विवाहित परस्त्री कहते हैं।

प्रश्न— 291 परस्त्री किसे कहते हैं?

उत्तर पति सहित, जीवन साथी सहित स्त्री को पर के लिए परस्त्री कहते हैं।

प्रश्न— 292 स्त्री किसे कहते हैं?

उत्तर जो मिथ्यात्व, असंयम, कामवासना से युक्त शृंगार रूपी दोषों से दूषित मनवाली तथा दूसरों के लिए इसी प्रकार के दोषों को उत्पन्न करने वाली, मोक्षमार्ग की विराधना करने वाली, संसारमार्ग में फंसाने वाली हो तो उसे स्त्री कहते हैं या विदारण करने वाली को स्त्री कहते है।

प्रश्न— 293 त्यक्ता स्त्री किसे कहते हैं?

उत्तर पाणिग्रहण होने के पश्चात् किसी कारण से परस्पर में झगड़ा होने से, धनाभाव के कारण, सेवाभाव न होने से, भोजनपान, वार्तालाप आदि की जानकारी न होने से, व्यवहार निपुण न होने से, शारीरिक सौन्दर्य न होने से, आचरण, आदत सही न होने से, पति के प्रति समर्पणभाव, भक्तिभाव न होने से पति ने त्याग कर दिया है उसे त्यक्ता स्त्री कहते हैं। इसमें अंतरंग कारण अनादेयनामकर्म अथवा दुर्भग नाम कर्मोदय कारण है और बाह्यकारण असावधानी है अथवा

सर्वगुण सम्पन्न होने पर भी पूर्वकृत पाप कर्मोदय से पति ने त्याग कर दिया है। जैसे सीता अंजना आदि।

प्रश्न— 294 पति रहित स्त्री किसे कहते हैं?

उत्तर विवाहित है, पति सहित है किन्तु पति कार्य से रहित है अथवा नपुंसक है, असमर्थ है, बीमार है पति प्रेम देने में असमर्थ है, पुरुषत्व शक्ति रहित है ऐसी स्त्री को पति रहित स्त्री कहते हैं।

प्रश्न— 295 पति सहित व्यभिचारिणी स्त्री किसे कहते हैं?

उत्तर पाप कर्म सहित पतियुक्त परपुरुषगामिनी, परपुरुष के साथ रमण करने वाली स्त्री को पति सहित व्यभिचारिणी स्त्री कहते हैं। इसका जीवन पति के साथ काम चेष्टा में तृप्त न होने से परपुरुषगामिनी हो जाती है।

प्रश्न— 296 क्वांरिका किसे कहते हैं तथा क्वांरिका को परस्त्री कह सकते हैं क्या?

उत्तर जो कन्या कामविकार की भावना आकांक्षा से रहित है, कामवासना जागृत नहीं हुई है तथा तत्सम्बन्धी श्रृंगार अलंकार पठन, पाठन, चित्रदर्शन की आकांक्षा से रहित को क्वांरिका कहते हैं। इस कारण क्वांरिका को परस्त्री नहीं कहते हैं। यदि क्वांरिका को परस्त्री कहने लगें तो बताना होगा कि इसका पति कौन हैं यदि पति है तो फिर क्वांरी क्यों कहा?

प्रश्न— 297 पति किसे कहते हैं?

उत्तर जो कष्टों से बचाये, सुख का मार्ग बताये, मोक्षमार्ग दर्शाये, रक्षा करे अथवा माता पिता आदि की सहर्ष आज्ञा पूर्वक अग्नि की साक्षी पूर्वक पाणिग्रहण किया है, जीवनसाथी बनाया है उसे पति कहते हैं अथवा संतानोत्पत्ति की सामर्थ्य सहित जीवनसाथी को पति कहते हैं जो प्रतिज्ञा को निभाने वाला हो उत्तम गुणों का स्वामी हो उसे पति कहते हैं।

प्रश्न— 298 विवाहित पुत्री को परस्त्री कहते हैं क्या अथवा कह सकते हैं क्या?

उत्तर नहीं, यद्यपि विवाहित है पति सहित है, दूसरों के लिए स्वस्त्री है या परस्त्री है पर पिता के लिए वह स्वस्त्री या परस्त्री नहीं, पिता के लिए तो पुत्री धर्म प्रधान है वह परस्त्री कहकर न बुलाता है न परस्त्री जैसा समझकर व्यवहार करता है यदि परस्त्री समझकर व्यवहार करने लगे गृहोचित कार्य करने कराने लगे तो पत्निव्रत में दोष आने लगे। अतः पिता यद्यपि उसमें लोक व्यवहार सम्बन्धी अनेक धर्म मौजूद हैं तो भी पुत्रीधर्म मुख्यधर्म है, शेष धर्म गौण हैं।

प्रश्न— 299 विवाहित बहिन को परस्त्री कह सकते हैं क्या?

उत्तर नहीं, यद्यपि बहिन विवाहित है वह दूसरों के लिए स्वस्त्री या परस्त्री हो सकती है किन्तु भाई के लिए बहिन है। न स्वस्त्री है, न परस्त्री है, न परस्त्री समझकर व्यवहार करता है, न बुलाता है, न लोकव्यवहार सम्बन्धी कार्य करता कराता है। न परस्त्री कहकर दिनचर्या करता करवाता है। वह भाई निर्विकार भाव से तन्मय होकर सहोदरी है जिसने मेरे को जन्म दिया है ठीक उसीने मेरे साथ अथवा पहले या बाद में इसको भी जन्म दिया है अतः मेरी माता और इसकी भी माता वही जन्म देने वाली है अलगअलग नहीं है अर्थात् अलग से जन्म देने वाली नहीं है। इस कारण

भाई के लिए बहिनधर्म प्रधान है, परस्त्री धर्म प्रधान नहीं है। बहिन मानकर ही राखी बंधवाता है, पूज्य मानता है, भोग्य नहीं। भले ही सर्वांग सुन्दर हो, नाना वस्त्रालंकार से युक्त क्यों न हो।

प्रश्न– 300 जनम देने वाली माँ को पुत्र परस्त्री कहकर पुकारता है पुकार सकता है क्या?

उत्तर नहीं, पुत्र माँ कह करके पुकारता है परस्त्री कह करके नहीं, न परस्त्री कह करके भोजनपान करता है, न उठता बैठता है तथा आचार्यों ने ऐसा नहीं कहा है कि पिता पुत्र भाई परस्त्री समझकर व्यवहार करें। परहेज करें किन्तु आंतरिक भावों से माँ बहिन पुत्री समझकर मानकर व्यवहार करें ऐसे ही माँ बहिन पुत्री भी ये परपुरुष हैं ऐसा समझकर मानकर व्यवहार नहीं करती हैं किन्तु पिता पुत्र भाई मानकर ही व्यवहार करती हैं तभी तो दोनों के धर्म की, कर्तव्यपालन की रक्षा होती है, अन्यथा धर्मव्यवहार, लोकव्यवहार नहीं बन सकता है। माँ बहिनों की जो परिभाषायें ऊपर बतला आये हैं ठीक वैसी ही परिभाषायें पिता पुत्र भाईओं की समझना चाहिए।

प्रश्न– 301–02 स्त्री वेदी मनुष्यनियों को थोड़ी देर के लिए या दो चार दिनों के लिए पैसे से, प्रेमव्यवहार से स्वीकार कर लेने को स्वस्त्री कह सकते हैं या नहीं? क्या हानि है?

उत्तर धर्मविवाह दो चार दिन के लिए नहीं किया जाता, जीवन पर्यन्त के लिए किया जाता है, हाँ इतना अवश्य है कि यदि थोड़े दिन के लिए करना है तो छोड़ने के बाद में, त्याग करने के बाद में, पुनः दूसरी स्वीकार नहीं करना तब तो योग्य है, अन्यथा अयोग्य है। जैसे मातापिता के आधीन होकर जम्बूकुमार ने रात्रि में शादी की और प्रातः काल में सपरिवार दिगम्बर दीक्षा ले ली, ऐसा कार्य करना महान उत्तम कार्य है किन्तु विवाह कर दुःखी करने के लिए जैसे पवन अंजना के समान विच्छेद कर लिया अथवा कामक्रीड़ा में अतृप्ति होने से उसको छोड़कर दूसरी तीसरी कर ली यह तो महान पाप है, उच्चवर्ण का कार्य नहीं किन्तु नीचगोत्री प्राणियों का कार्य है। यह अधम में महाअधम कार्य है जैसे किराये के मकान या धर्मशाला में जाकर ठहरे और थोड़े समय तक ठहरकर कार्यकर किराया देकर अन्यत्र चले गये। इसी तरह थोड़े समय के लिए ग्रहण कर छोड़ दिया यह धर्मविवाह नहीं कहलाया किन्तु पाप चेष्टा है यह तो परस्त्री सेवन या वेश्यासेवन व्यसन है। ऐसे कार्यों से पाप कर्म का तीव्र आश्रवबंध होता है, लोक व्यवहार में निन्दा होती है, बदनामी होती है, सम्पत्तिहरण मारपीट, समाज में परिवार में अविश्वास तन मन धन और धर्म नाश होना, धर्म में, समाज में, परिवार में प्रतिष्ठा की हानि होना, अधः पतन होना, वर्तमान में दुःखी होना, भविष्य में दुर्गति में जाकर जन्म धारण करना आदि हानि है। तीव्र कषायोदय से इन्द्रिय सुख का आनंद नहीं आता तो आत्मसुख का आनंद कैसे आयेगा? वर्तमान में भी भयभीत होने से, कषायाधीन होने से सुखानुभव नहीं होता।

प्रश्न– 303–04 जो आर्यिकायें हैं, ब्रह्मचारिणी हैं उन्हें स्वस्त्री या परस्त्री कह सकते हैं क्या या नहीं कह सकते?

उत्तर जिन्होंने विषय विकार का त्याग कर दिया है, मन वचन काय से शृंगार अलंकार का कामविकार

का त्याग कर दिया है उन्हें स्वस्त्री, परस्त्री कैसे कह सकते हैं? वे तो त्यागिनी हैं, धर्म की मूर्ति हैं, जीवन पर्यन्त धर्ममार्ग को चलाने वाली हैं, मोक्षमार्ग को साधना के बल पर अनुभव करने कराने वाली हैं अतः वे जगन्माता हैं, पूज्य हैं, श्रेष्ठ हैं अतः उन्हें स्त्री नहीं कहते हैं, हाँ लोक प्रचलित परिभाषा के अनुसार भले ही स्त्री कहें पर यह सज्जनों का, धर्मात्माओं का लक्षण नहीं हैं क्योंकि मोक्षमार्गी धर्म आयतनों के प्रति लौकिक प्राणियों के समान वचन व्यवहार नहीं करते हैं अतः आर्यिका आदि को स्वस्त्री या परस्त्री विशेषण न लगाना होगा तथा मोक्षमार्ग की दृष्टि से, धर्म की दृष्टि से स्त्री नहीं कह सकते हैं क्योंकि स्त्रीपद भोग्य है तो शेष माता आदि पूज्य पद हैं, आराधने योग्य हैं, मोक्षमार्ग में उत्कृष्ट पुरुषार्थी हैं। इस पर्याय की अंतिम साधना है। दिगम्बर पद के लिए सामर्थ्यविहीन होने से अथवा आंगोपांग नाम कर्मोदय की अपेक्षा या मोहनीयकर्म की नोकषाय वेदोदय से स्त्रीवेदी कहा जाता है पर वह जली रस्सी के समान होने से, स्त्रियों के योग्य आश्रवबंध के परिणाम मिथ्यात्व गुणस्थान और सासादन गुणस्थान में होते हैं किन्तु इनके वे परिणाम ही नहीं उत्पन्न होते हैं यदि ये परिणाम हुए तो आर्यिका, ब्रह्मचारिणी, त्यागीनी नहीं कह सकते हैं। वास्तव में देखा जाय तो ये स्त्री, माता, बहिन, पुत्री, नानी, मामी, चाची, बुआ, ननद, भाभी आदि शरीर के नाम नहीं हैं किन्तु परिणामों के नाम हैं क्योंकि शरीर की रचना सबकी एक समान है कोई अन्तर नहीं है परन्तु परिणामों में अनन्तभेद हैं। इसलिए पूज्य को पूज्य के नाम से और भोग्य को भोग के नाम से पुकारना बुद्धिमानी है, अन्यथा अविवेकता है। नाना धार्मिक, सामाजिक कार्यक्रमों में अपनी माँ बहिनों को स्त्री (महिला) कहकर पुकारते हैं इनको शर्म आना चाहिए।

प्रश्न– 305 जिस प्रकार स्त्रियों की माँ बहिनों की परिभाषायें बताई हैं उसी प्रकार पिता पुत्र आदि की भी हो सकती हैं क्या?

उत्तर जिस प्रकार स्त्रियों की, माँ बहिनों की परिभाषायें बताई गई है उसी प्रकार पिता पुत्र आदि की भी परिभाषायें समझना चाहिए। स्त्रीवाचक प्रत्यय की जगह पुंल्लिंगवाचक प्रत्यय लगाना है और अभिप्राय यथावत् रखना है देखा देखी नहीं बदलना है।

प्रश्न– 306 परस्त्री व्यसनसेवन किसे कहते हैं और इससे क्या हानि है?

उत्तर स्त्री के नामों का जो कथन कर आये हैं उनके साथ रमण करते हुए अतृप्तिभाव को या तृप्ति भाव को या इन परस्त्रियों के त्याग करने में मरने के समान कष्ट का अनुभव करने को तथा रमण की अभिलाषा को परस्त्री व्यसन सेवन कहते हैं। इसी में इतना आसक्त होता है कि अपना हानि लाभ, उत्थान पतन, ऊंचनीच, जातिकुल, निन्दाबदनामी, पुण्यपाप का ज्ञान लुप्त हो जाता है तन मन धन और धर्म को नष्ट कर डालता है तथा मरण कर रावण की तरह अधोगामी होता है।

प्रश्न– 307 जो विधवा है, चूड़ियां फूट चुकी हैं, मांग का सिंदूर मिट गया है तथा पति ने छोड दिया है पुनः उससे कोई विवाह करे तो क्या गुण है या दोष?

उत्तर धर्म दृष्टि से ठीक नहीं है क्योंकि तीर्थंकर, भगवंतों ने, आचार्यों ने, मोक्षमार्ग में आने वालों को सर्वप्रथम सप्त व्यसनों का त्याग बताया है। सप्त व्यसनों में परस्त्री सेवन भी है तो उसका पुनः

पाणिग्रहण कैसे हो सकता है? यदि वह जैन है, अहिंसावादी है, जिनेन्द्र की आज्ञा का पालन करने वाला है, सम्यग्दृष्टि है, मोक्षमार्गी है तो कैसे परस्त्री के साथ विवाह कर सकता है करा सकता है? परस्त्रीसेवन व्यसन और पुनर्विवाह करने कराने और अनुमोदना करनेवाला आर्य मनुष्य कैसे कहला सकता है? वह तो मलेच्छ से, शूद्र से भी गया बीता हो गया। निष्कर्ष यह है कि परस्त्री और वेश्या सेवन व्यसन का त्यागी मोक्षमार्गी अंहिसावादी जैन पुनर्विवाह नहीं कर सकता है क्योंकि वह व्यसनी जैन नहीं, जैनमतानुयायी नहीं है भले ही लोगदृष्टि में ठीक हो पर धर्मदृष्टि से ठीक नहीं है तथा सज्जनों का लोक व्यवहार भी ऐसा नहीं है कि विधवा से, त्यक्ता से पुनः विवाह करे। यदि करता है कराता है तो उसे शब्दकोशों से विधवा तथा त्यक्ता नाम निकाल देना चाहिये और चूड़ियां फुड़वाना, मांग से सिंदूर हटाना आदि कार्य क्यों कराना पडे? जब पुनः उसका विवाह कराना ही है तो उसे विधवा और त्यक्ता क्यों कहना?

प्रश्न— 308 वेश्यासेवन व्यसन और परस्त्रीसेवन व्यसन में क्या अन्तर है?

उत्तर वेश्या आम जनता के साथ खुले आम आजीविका के लिए, किसी के हिताहित को, पुण्य पाप को न जानती हुई सभी के साथ शरीर सम्बन्ध बना लेती है किन्तु परस्त्री किसी एक के साथ आजीविका या मनोरंजन के लिए शारीरिक सम्बन्ध बनाकर छिपकर के मैथुन सेवन करती है किन्तु वेश्या अनेकों से अनेकबार कर लेती है और परस्त्री क्वचित् कदाचित् मौका मिलने पर समागम करती है अतः यह पाप है और आसक्ति पूर्वक पुनः पुनः करे तो यही परस्त्री विषय सेवन व्यसन हो जाता है। पाप छोड़ना आसान है, व्यसन छोड़ना कठिन है क्योंकि व्यसन सेवन में आसक्ति तीव्र होती है निर्भय, निर्लज्ज होता है किन्तु परस्त्रीसेवी भयभीत और कुछ लज्जावान होता है यह अन्तर है जैसे मिठाई के रूप रंग में, नाम में, आकार में, गंध में, स्वाद की मात्रा में अन्तर होने पर भी सामान्य स्वाद में अन्तर नहीं है वैसे ही माँ, बहिन, बेटी, बुआ नातिन पोती आदि के शरीर में, आयु में, ऊँचाई में, मोटाई में, रूप में अन्तर होने पर भी क्रीडा अंग में अन्तर नहीं है पर अनादिकालीन पापी जीव हर किसी के साथ रमण करने की इच्छा करने लगता है। यहाँ लोकव्यवहार की अपेक्षा पुरुषों के दो भेद कर लेते हैं एक सज्जन राम आदि की तरह दूसरा दुर्जन रावण की तरह। सज्जनपुरुष अपनी धर्मपत्नी भोगपत्नी रूपी स्वस्त्री के साथ रमण करता है तथा दुर्जनपुरुष स्वस्त्री, परस्त्री, वेश्या, क्वांरी, साध्वी आदि के साथ रमणकर, रमण के भाव कर अधोगति का पात्र बन जाता है रावण की तरह नरक के दुःख उठाता है, शरीर से मैथुन सेवन करने पर द्रव्य हिंसा में अन्तर नहीं है द्रव्यहिंसा तो समान है क्योंकि सबके शरीर की रचना एक जैसी है जैसे तिल के ढेर में लोहे की अत्यन्त गर्मकर सलाई को डाल देने पर तिल जलकर चटपट चटपट होकर नष्ट हो जाते हैं, जलकर राख बन जाते हैं इसी तरह स्त्रियों के योनिछिद्र में लिंग के प्रवेश करने पर और लिंग के प्रत्येक आघात से, प्रत्येक चोट से सम्मूर्च्छन, लब्धि अपर्याप्तक, पंचेंद्रिय, सैनी मनुष्य माँ के आकार को धारण करने वाले एक अन्तर्मुहूर्त में आठ बार व्याघात के बिना जन्ममरण करने वाले प्राणी नपुंसकवेदी नीचगोत्री नवलाख मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होते हैं तथा असंख्यात लोकप्रमाण और भी क्षुद्रजीव मरते हैं। यदि कोई अत्यन्त छोटी नाबालिका हो तो वह भी मर जाती है अतः द्रव्यहिंसा बराबर होती है, भावहिंसा में अन्तर है सो उसी को

बताते हैं। ध्यान से सुनो, लज्जा नहीं करना जिस प्रकार स्वपत्नी के साथ रमण करने पर लोक में निन्दा नहीं होती है क्योंकि सारा संसार उसी काम में रचापचा है अतः इसमें भावहिंसा कम होती है। जो अविवाहित हैं, विवाहित हैं, जिनकी कामवासना की तृप्ति अपनी पत्नि में नहीं हो पाती है तब वे वेश्या के पास जाकर अपना तन मन धन धर्म, लज्जा मर्यादा नष्ट करते हैं और भावों की अशुभता तीव्रता होने से भाव हिंसा विशेष होती है, लोक में कुछ निन्दा भी होती है, बदनामी होती है लोक में व्यवहारी जन भयभीत होने लगते हैं, बहु बेटियां माँ बहिने लज्जित होने लगती हैं परहेज करने लगती हैं, भावहिंसा विशेष होती है तथा इसके बाद में जब वेश्याओं में तृप्ति प्राप्त नहीं होती है या वेश्यासेवन का साधन नहीं बन पाता है तो भावों में अत्यधिक तीव्रता होने से किसी क्वांरी या विवाहित को फंसाकर या फंसकर उससे सेवन करने की सोचता है और जाता भी है तो पहले उसके घर में कोई है या नहीं, फिर आसपास में देखता है जब घर के अन्दर पहुंचा तो चारों तरफ ढूंक ढूंक कर देखता है, डरता है, किसी की आवाज को सुनकर कांपता हुआ छिपता है, पकड़ा गया, पीटा गया तब चिल्लाता है कि बचाओ बचाओ इस प्रकार पैरों में गिर कर जीवन रक्षा की भीख मांगता है, हाथ पैर तोड़ दिये जाते हैं, आँखें फोड़ दी जाती हैं, सर्वस्व अपहरण कर लिया जाता है, निन्दा बदनामी विशेष होती है, आसपास के प्राणी भी भयभीत होते हैं। तन मन धन और धर्म को नष्ट कर, भावों में आकुलता, भय, लज्जा आदि होने से कामसुख का भी अनुभव नहीं कर पाता है। कदाचित् वह स्त्री नहीं चाहती है, आवाज करती है तो भी सुख नहीं पाता और डरकर भागता है, छिप जाता है, दीन वचन बोलता है, क्षमा मांगता है, पैरों में गिरता है। यदि कामी पुरुष समर्थ है तो वह स्त्री को मार देता है या मारकर कमजोर कर फिर कामसेवन करता हुआ भी कामसुख का अनुभव प्रसन्न मन से नहीं कर पाता है कारण मन आकुलित है, भयभीत है, चिन्तित है जैसे आपको कहीं बाहर जाना है, गाड़ी स्टेण्ड पर आ गई है हॉरन बज रहा है, छूटने का समय हो गया है और आपका भोजन बाकी है तो जाने के लिए आप आकुलित है उस समय जल्दबाजी में आप भोजन कर लेते हैं पर स्वाद नहीं आता मन आकुलित है इसी तरह कामी पुरुष या कामिनी का मन आकुलित होने से या अन्य कार्य में मन लगा होने से कार्य करते हुए भी कामसुख का आनन्द नहीं आता किन्तु अपनी वीर्यशक्ति को असमय में निष्प्रयोजन कार्य में नष्ट कर देता है। **नीतिकारों ने कहा है–"दर्शनात् हरते चित्तं स्पर्शात् हरते बलम् भोगात् हरते वीर्यं स्त्री साक्षात् राक्षसी" वह स्त्री देखने मात्र से मन को हर लेती है, स्पर्श करने से बल को हरती है, कामसेवन से वीर्य को नष्ट करती है अतः यह स्त्री साक्षात् राक्षसी है, राक्षसी व्यन्तरी तो एक भव बिगाड़ती है फिर कदाचित् सम्बोधन भी कर देती है, आत्मा को नहीं बिगाड़ती पर यह स्त्रीवेदी प्राणी कामवासना को, मोह को उत्पन्न कर, विकार में फंसाकर दुर्गति का पात्र बनाती है, तन मन धन और धर्म को अपहरण करके मनुष्य को दूर से छोड़ देती है इसी तरह कामी पुरुष दुर्भावना युक्त साक्षात् प्रत्यक्ष में यम है, यम का दूत है, जो महान त्रैलोक्य पूज्य शीलव्रत को, पतिव्रत को नष्ट कर नरक निगोद का पात्र बनता बनाता है किन्तु इसके पहले यदि दुर्भाग्य वशात् गर्भ रह जाता है तो गर्भ की पीड़ा को, जन्म की पीड़ा को, जन्म देने के कष्ट भुगवाकर,**

बदनामी कराकर बाद में मरण कर दुर्गति में जाता और ले जाता है। जैसे अग्नि लोहे के संसर्ग से घन की मार सहती है वैसे ही कामीकामीनी परस्पर के संसर्ग से कर्म की मार सहते हैं। स्त्री पुरुष का संसर्ग नहीं करें तो वह गर्भ धारण के, जन्म देने के दुःखों को कैसे प्राप्त हो सकती है तथा निन्दा भी नहीं होती है, न बदनामी, न अपमान होता है, न कोई हीनदृष्टि से देखता है।

प्रश्न– 309–13 चाय किसे कहते हैं? क्या हानि है? क्या प्रकृति है? किस मौसम की है? क्यों पीता है?

उत्तर यह वनस्पति की पत्ती है फिर जब इसे सुखाते हैं तब छोटे–छोटे जीव जन्तु इन पत्तियों में जन्म लेते हैं और मरते हैं तथा इन पत्तियों में नाना तरह से अशुद्धियां होती हैं नाना प्रकार के जहर पाये जाते हैं। जो कैंसर आदि भयंकर बीमारी को उत्पन्न करते हैं, पीते ही नींद भाग जाती है, भूख प्यास समाप्त हो जाती है, ठण्डी समाप्त हो जाती है, गर्मी बढ़ती है, रक्त कम हो जाता है, आदत होने पर पीने को नहीं मिली तो चक्कर आना, बैचेनी उत्पन्न होना, किसी भी लौकिक या धार्मिक कार्यों में मन नहीं लगना, कमजोरी होना आदि दोष उत्पन्न होते हैं। उष्ण प्रकृति है, शीत देश की है। यह अपना मध्यदेश सम मौसम वाला है यहाँ सर्दी गर्मी और बरसात ये तीनों मौसम बराबर होते रहते हैं, यहाँ के निवासियों के योग्य नहीं है, फिर भी यहाँ के लोग लाचार होकर इसको पीते हैं। चाय पीने के आधीन रहने वाले व्यक्ति अपने त्यागव्रत, संयमव्रत को पालन करने में असमर्थ रहते हैं। हर किसी के जूँठे बर्तनों में, हर किसी के घर में, दुकानों में पीने के लिए तैयार रहते हैं, जाति कुल, धर्म, शुद्धि अशुद्धि, आचार विचार, सूतक पातक, शाकाहारी, मांसाहारी, ऊँच नीच का विचार किये बिना, मलमूत्र के हाथ साफ किये हैं या नहीं, स्नान किया है या नहीं, हिंसक है या अहिंसक आदि का चिन्तन किये बिना सर्वकाल, सर्व जगह, सबके हाथ से पी लेते हैं तथा इस प्रकार के व्यक्तियों में सदाचार सद्विचार कैसे उत्पन्न हो सकते हैं? यदि पीने वाले स्वास्थ्य और धर्म की दृष्टि से विचार करें तो मन में घृणा अवश्य ही उत्पन्न हो जाये खाना पीना ही छोड़ दे परन्तु जैसे खरगोश अपने दोनों कानों से अपने दोनों नेत्रों को ढक लेता है और सोचता है कि मैं किसी को नहीं देख रहा हूँ। या मेरे को कोई नहीं दिख रहा है ठीक इसी तरह मेरे को कोई नहीं देख रहा है और मैं भी किसी को नहीं दिख रहा हूँ ऐसा सोचकर स्थिर रह जाता है तब शिकारी आकर मारकर जीवन हरण कर लेता है, समाप्त कर देता है ऐसे ही होटलों में, बाजारों में और एकांत में, चाय पीने वाला व्यक्ति इसी तरह सोचकर अपने जीवन को, धर्म को नष्ट कर अपना सर्वस्व खो देता है। चाय के सम्बन्ध में सभी लोग पत्रिकाओं में विज्ञापन के द्वारा, टी०वी० आदि के विज्ञापनों के द्वारा हानि लाभ को जानते हैं, जिनको चाय पीने की आदत है उनको त्यागी व्रती बनने पर चाय कोई श्रावक नहीं पिलायेगा चाय पत्ती में फिलेवर मिलाया जाता है जो एक प्रकार का विदेशी अत्तर सेंट है जो पशुओं के मांस आदि से तैयार किया जाता है। मादक होने से, प्रमादकारक होने से जिनमत में इसके पीने का निषेध किया है तथा स्वास्थ्य विज्ञान वैज्ञानिक, डॉक्टर लोग भी अनेक प्रकार के हानिकारक तत्त्व बताकर पीने के लिए निषेध करते हैं। चाय पीना व्यसन है क्योंकि अनेक प्रयत्न करने पर भी चाय नहीं छूटती है किन्तु ऐसे व्यक्ति धर्म को छोड़ सकते हैं, व्यसन को नहीं जो वर्तमान में

प्रत्यक्ष है। जिनको सुख शान्ति प्राप्त करने की इच्छा नहीं वे सब कुछ खोकर पीते हैं।

प्रश्न— 314—15 चाय पीने से कमजोरी कैसे आती है? रोग कैसे उत्पन्न होते हैं?

उत्तर शरीर में भोजनपान से पुष्टि होती है, धातुउपधातुओं की उत्पत्ति होती है जिससे शरीर में ताकत आती है किन्तु चाय पीने से भूखप्यास शान्त होती हैं, कमजोरी आती है तभी नानाप्रकार की व्याधियां घेरती हैं जैसे जब खेतों में खादपानी नहीं लगाया तो पेड़पौधे मुरझा जाते हैं और कमजोर होनेसे सर्दीगर्मी आदि के द्वारा पेड़पौधे मर जाते हैं इसी तरह मनुष्य के भी शरीर में धातुउपधातुओं की कमी होनेसे शारीरिक कमजोरी, बीमारी पैदा हो जाती हैं जो दिख रहा है।

प्रश्न— 316 लौकिक पत्रिकायें पढ़ने को व्यसन क्यों कहा?

उत्तर आजकल लोगों में पत्र पत्रिकाओं को पढ़ने का इतना व्यसन हो गया है कि जब इनको पढ़ने का समय नहीं मिल पाता तो शौचालय में या लेटे लेटे, भोजन करते हुए, नास्ता करते हुए, सगे सम्बन्धियों से वार्तालाप करते हुए, बीड़ी सिगरेट पीते पीते, चायनास्ता करते करते भी पत्रिकायें पढ़ते जाते हैं। जप तप, स्वाध्याय, ध्यान, पूजापाठ, यात्रा, दानादि कार्यों को करने के लिए समय नहीं मिलता कदाचित् समय मिल भी गया तो आँखें जलने लगतीं हैं, स्थिर आसन नहीं लगा पाते क्योंकि पैरों में दर्द होने लगता है किन्तु पत्रिकाओं को पढ़ने में कुछ भी तकलीफ नहीं होती है इसके लिए पैसा है दान के लिए पैसा नहीं है, परोपकार के लिए पैसा नहीं है। सारे पाप के कार्य इन्हीं पत्रिकाओं के माध्यम से प्रचार में आ रहे हैं, कहीं पर किसी ने पाप किया वहाँ अकेले ने किया कुछ लोगों ने दिखा दिया या देख लिया तब आसपास के लोगों ने जाना था किन्तु पत्रिकाओं में निकाल देने से लाखों लोगों ने तथा देश विदेश में लोगों ने जान लिया उनके मन में भी पाप की भावना जागृत हुई और पाप करने लगे देश की, प्रजा की भी बदनामी हुई। नंगे चित्र या निर्लज्ज वार्ताओं को सुनकर, पढ़कर विद्यार्थी चंचलमन हो जाते हैं। स्कूल की पढ़ाई प्रायः कर नष्ट हो जाती है, परीक्षा में फैल हो जाते हैं पास होने के लिए मास्टरों को पैसा देते हैं या समर्थ हैं तो मारपीट का भय दिखाकर पास होते हैं, डिग्री प्राप्त कर लेते हैं। पत्रिकाओं में या टी०वी० में विज्ञापन देखा या सुना तो जनता उत्तेजित हुई और अपनत्व है तो झगड़ा या रोना चालू हो गया, बदला लेने की भावना उत्पन्न हुई। धर्मदृष्टि से आर्त रौद्रध्यान तथा शृंगार अलंकार को धारण करने वालों में विचार उत्पन्न होता है कि अब मेरा नाम तो उजागर हो गया है, सबको अंतरंग मालुम हो गया अब छिपने छिपाने से क्या? कोई दूसरा अपराध करेगा और नाम हमारा आयेगा तब खुले आम करो, संगठन बनाओ, सब मिलकर बड़े—बड़े काण्ड करो, बड़े बड़े काम करो, अकेले में डर था अब तो संगठन है अब किस बात का डर बदनामी तो हो चुकी है और हो रही है। अतः प्रातः काल उठते ही चाय पी और पेपर आ गया तो पढ़ने के लिए घंटों समय लगा दिया और घंटों समय लग जायेगा इसकी चिन्ता नहीं। बाद में दंतमंजन, नहाना धोना किया, नास्ता या भोजन किया फिर अपने काम में लग गये या कोई थोड़ा धर्म को जानता है तो मंदिर गये घंटा बजाया तिलक लगाया और घर आकर फिर खाना पीना किया फिर काम में लग गये। इनके और पशुओं के जीवन में, दिनचर्या में कोई अन्तर नहीं रहा। पशु खाते खाते आया और सो गया अथवा खाते खाते सो गया और उठते ही खाने के लिए चल दिया खाना

प्रारम्भ कर दिया। इसी तरह मानवता विहीन मनुष्यों की,बालक बालिकाओं की अधिकतर दिनचर्या हो रही है, दोनों की दिनचर्या समान है, दोनों के शरीर में भिन्नता होने पर भी आचारविचार एक हैं, कर्मों के आश्रव बंध में अंतर नहीं है तथा घरों में माँ बाप या सास श्वसुर को, मार्गदर्शकों को भी शरम नहीं आती कि अपने सामने कौन बैठा है? बेटा है या बेटी या बहुओं के सामने नग्न चित्रों को देखते हैं दिखाते हैं, नंगे गीत सुनते सुनाते हैं, पेपर पढ़ते पढ़वाते हैं आदि कार्यों से प्रत्यक्ष हानि दिख रही है फिर भी कहते हैं कि इनके माध्यम से देश विदेश की जानकारी होती है अब पढ़ना चाहिए। इन लोगों को सोचना चाहिए कि घर में आग लग रही है उसको बुझाने की चिन्ता नहीं और गांव की देश विदेश की आग बुझाने चले। घर में बेटा बेटी, नाती पोते, नातनी पोती, भाई बन्धु बिगड़ रहे हैं, बहुयें लज्जा मर्यादा छोड़ रही हैं। पढ़ाई लिखाई, संस्कार शिक्षा बिगड़ रही है, परस्पर के व्यवहार में, गृह के कार्यों में, विनय सम्मान करने में फैल हो रहे हैं, संस्कार हीन हो रहे हैं आदि घर की चिन्ता नहीं किन्तु देश विदेश की चर्चाओं की चर्याओं की चिन्ता है। अपनी हानि को लाभ मानना मूर्खता है। इसलिए मानमर्यादा, आदर सम्मान, संस्कारादि को कायम रखने के लिए पत्रादि के पढ़ने का त्याग करो और त्याग कराना चाहिए। तभी नवीन पीढ़ी में सत्संस्कार और सत्संग सद्विचार का प्रवेश हो सकता है, अन्यथा नहीं अतः नवीन पीढ़ी को सुधारने के लिए बड़ों को सुधरना होगा।

प्रश्न– 317 टी०वी० को व्यसन में क्यों ग्रहण किया?

उत्तर पत्रिकाओं के द्वारा जो पाप का प्रचार हो रहा है उससे भी कहीं अधिक अनंतगुणा पाप का प्रचार पात्रों को बनाकर, क्रिया करके, क्रिया करते हुए, पाप को दिखाते हैं तथा पाप प्रचार के साथ साथ टी०वी० का भी प्रचार है चार्वाक मत का प्रचार है। पाश्चात देशों का प्रचार है। धर्म संस्कार हीनता का, उद्दंडता का प्रचार है।

प्रश्न– 318 पत्रिका के प्रचार और टी०वी० के प्रचार में क्या अन्तर है?

उत्तर पत्रिका में शब्दों के द्वारा या चित्रों के द्वारा वार्ता, प्रेम व्यवहार बताते हैं किन्तु टी०वी० में क्रिया कर्म करते हुए प्रत्यक्ष दिखाते हैं यही अन्तर है जैसे भूंखे व्यक्ति के सामने भोजन कथा करने से जिह्वा में पानी आ जाता है भोजन के लिए मन लालायित हो जाता है और ऐसे प्रसंग पर यदि भोजन सामग्री मिल जाये तो फिर उसकी लोलुपता का कहना क्या? इसी तरह वर्तमान में एक तो पापी जीव पैदा होते हैं, पाप के संस्कार हैं, पाप की पढ़ाई, पापियों की संगति इतने पर भी टी०वी० में पाप प्रत्यक्ष दिखने देखने और दिखाने से बालक बालिकाओं में पाप प्रवृत्ति तीव्र पाई जा रही है कारण टी०वी० में सभी पाप और व्यसन प्रत्यक्ष रूप में देखे जाते हैं, चित्रों के माध्यम से टी०वी० में क्वचित् कदाचित् 1% सद्गुण तो 99% दुर्गुण, दुष्कर्म दिखाये जाते हैं।

प्रश्न– 319–320 इस टी०वी० में क्या दिखाया जाता है? क्या क्या हानि है?

उत्तर इस टी०वी० में क्या–क्या दिखाया जाता है क्या आपको मालुम नहीं है? आप नहीं देखते हैं, नहीं जानते हैं जो पूछते हैं। जिसकी हानि का फल–जातिकुल की मर्यादा, सदाचार की हीनता है। निःस्वार्थ निष्कपट प्रेम व्यवहार की हीनता सामने है। सब प्रकार से आप जानते हुए भी प्रश्न

पर प्रश्न करते जा रहे हैं? सो देखो टी०वी० में साक्षात् हिंसा कर्म करते हुए मारकाट करते हुए दिखाते हैं, अपनी गल्ती को छिपाते हुए झूठ बोलना बताते हैं, चोरी कैसे की जाती है, अपहरण कैसे किया जाता है, कामक्रीड़ा कैसे की जाती है, परिग्रह कैसे संचय किया जाता है, गर्भ कैसे धारण कराया जाता है, गर्भपात कैसे कराया जाता है, डकैती कैसे डाली जाती है, नंगा नाच गान आदि के विज्ञापन दिखाये जाते हैं, इन दृश्यों को जवान बालक बालिकायें देखते हैं और माँ बाप बड़े चाव से सास श्वसुर बड़े प्रेम से देखते और दिखाते हैं ये घर के बड़े मार्गदर्शक होकर के भी ऐसा अनर्थ करते हैं उनको शर्म नहीं आती है तथा साथ में बैठकर के बेटा बेटी बहुओं को दिखाते हैं और प्रसन्न होते हैं किन्तु जब वह घटना अपने घर परिवार में घटती है तब रोते हैं हाय! यह क्या हुआ अब मुँह दिखाने में शर्म आती है, लज्जा आती है, यह पहले से ही सोच लेवें तो ऐसा पछतावा न करना पड़े। यह तो ऐसा है कि अपने हाथ से अपनी अंगुली काटकर दवा कराने के लिए डॉक्टर के पास जाना। बच्चे पढ़ाई लिखाई में बेकार हो रहे हैं जीरो नम्बर आते हैं। जैसे गिलास में चाहे पानी भर दो, दूध भर दो, धान्य भर दो, मिट्टी पत्थर भर दो, फल रस भर दो किन्तु भरने के बाद में क्या भरोगे? अब यदि भरोगे तो कैसे भरोगे पहले कुछ भरे हुए को खाली करो तो बाद में थोड़ा सा भर सकते हो, अन्यथा कैसे भरोगे? ठीक इसी तरह आजकल बालक बालिकाओं के मन में नंगें पिक्चर नंगे गीत नृत्य के सीन भर गये अब क्या पढ़ने में मन लगेगा? जो पहले दिमाग में भर गया वही हर समय दिमाग में घूमता रहेगा पढाई कैसे करेंगे कब करेंगे याद कैसे रहेगा बताओ? यह सब प्रत्यक्ष देख रहे हो कि परीक्षाफल में बालक बालिकायें कितने नम्बर लाते हैं, पास होने के लिए रिश्वत देते हैं रिश्वत देकर पास होते हैं, जो आजकल नाना कर्मचारी नाना तरह से प्रजा को चूसते हैं, मरीजों को बेमौत मारते हैं, कोई मरीज आता है तो डॉक्टर सलाह कैसी देते हैं आपको मालुम है। नहीं तो मैं बताऊं सुनो। जानकारी नहीं हैं इसलिए कहते हैं कि सारी टेस्टें सारी जांच कराओ फिर एकसाथ अनेक दवाईयां दे देते हैं बीमारी कुछ दवाईयां कुछ इससे बीमारी और बढ़ती है धन नष्ट होता है। 20/रु0 की दवाई और टेस्ट में 200/रु0 अब बिचारा गरीब क्या करें कैसे इलाज कराये? पैसा पास में नहीं है तो डांट फटकार कर भगा दिया जाता है और यदि मन साफ स्वच्छ है तो विद्यार्थी अध्ययन करेगा, ध्यान रखेगा, सही ढंग से प्रयोग में लायेगा, अपना जीवन सुधारेगा, देश का, समाज का, परिवार का, सरकार का नाम व्यवस्थित ढंग से प्रचारित करेगा यदि देश प्रजा अपने देश, समाज और परिवार में सुधार लाना चाहता है तो अपने देश से, समाज से, सरकार से इन यन्त्र साधनों का त्याग कर दे, देश से, दिमाग से निकाल दो निकाल दी तो बिना युद्ध के, बिना मारपीट के, बिना खून खराब किये सबका उद्धार होगा पर शर्त है कि देश के सभी नेतागण और समस्त प्रजा को दृढ़ संकल्पित होना होगा क्योंकि एक पहिये से गाड़ी नहीं चलती है इसी तरह एक से न संसार चलता है, न देश, न सरकार न प्रभावी समाज, न सामान्य प्रजा, न गृहस्थधर्म न मोक्षमार्ग अतः राजा प्रजा, साधु गृहस्थ, शिक्षक विद्यार्थी सभी को दृढ़ नियम में बंधना होगा। इस कारण सरकार और प्रजा चाहे कि हमको हमारे देश को पूर्व की तरह राम राज्य कृष्ण राज्य आदि के समान रीति रिवाज को अपनाना है, सभी प्राणियों को सुखी बनाना

है तो जितने भौतिक यन्त्र तन्त्र हैं उन सभी का, पाप का साधन, हानिका, पतन का साधन मानकर त्याग कर दे करा दे तो जीवन, समाज और देश सुखी हो सकता है अथवा दोनों में से कोई एक अपने बलवीर्य को न छिपाकर पूर्ण रूप से सुधर जाये तो दूसरे को अपने आप सुधरना पड़ेगा या सुधर जायेगा जैसे पुनः एक पहिये से गाड़ी नहीं चलती उसी तरह सामान्यतः अकेली प्रजा से या अकेली सरकार से पाप का मार्ग या पुण्य का मार्ग नहीं चल सकता है। किन्तु आजकल राजनेता, माँ बाप, स्वयं धर्म के संस्कार से रहित हैं तो वो हित के सम्बन्ध में कैसे सोच सकते हैं? अपनी असावधानी से ही देश मुस्लिम समाज का, अंग्रेजों का सेवक बना। जब यहाँ के नेता तथा प्रजा ने अपने को दुःखी रूप में अनुभव किया तब अपने देश से ब्रिटिश सरकार को शान्ति के लिए बिना शस्त्र के अहिंसा धर्म के अवलम्बन से निकाल फैंका तो क्या आज की सरकार और प्रजा अपने देश से, सरकार से बेकारी को, यन्त्रों को, तन्त्रों को वाहनों को पाप का साधन, दुःख का साधन मानकर त्याग कर दे, करा दे अतः टी०वी० का तथा टी०वी० के समान चालचलन का सरकार, प्रजा, विद्यार्थी गण अपने देश सरकार और प्रजा को पवित्र बनाने के लिए मन वचन और काय से त्याग कर दे करा दे इसी में हित है। कहावत है–**''जैसे जिसके नदी निवारे तैसे ताके भरका। जैसे जिसके मातपिता वैसे वाके लड़का।।''** **जैसे नदी नाले होंगे वैसे ही वहाँ के गड्ढे होंगे वैसे ही जैसे जिसके माँ बाप होंगे वैसे ही उसके बालक बालिकायें होंगी अतः संतानों को सुसंस्कारित करने के लिए सर्वप्रथम माँ बाप को राजनेताओं को, राजनेता बनने वालों को तथा समाज को समस्त प्रजा को सुसंस्कारित होना होगा किन्तु आजकल माँ बाप राजनेता ही धर्म के संस्कार से रहित हैं तो धार्मिक सन्तान कैसे पैदा कर सकते हैं? न धर्म के लिए धार्मिक विवाह कर सकते हैं किन्तु भोग विलास के लिए शादी करते हैं तो वैसे ही संस्कार हीन संतान पैदा होती है क्योंकि जैसा बीज वैसा ही अंकुर, शाखा प्रतिशाखा, फूलफल। अपनी भोगवासना में मस्त रहते हैं। योग संयोग से जीव गर्भ में आ जाता है तभी तो धर्मविहीन पाप संयुक्त निर्दयी होकर माँ बाप विशेष उपायों के द्वारा गर्भपात कराते हैं नहीं तो क्यों करायें? सन्तान पैदा करें उसका पालन पोषण करें, पढ़ाये लिखायें। इन्हें तो भोग विलास से प्रेम है सन्तान से नहीं, जैसे देखो आजकल माँ बाप सभी पुत्र चाहते हैं, पुत्री नहीं। यदि पुत्री गर्भ में आई है ऐसा सोनोग्राफी से या अन्य साधनों सें मालुम पड़ने पर कसाई की तरह बेरहमी से गर्भ गिरवा देते हैं, गर्भपात करवा लेते हैं तथा लड़का है तो पालन पोषण करते हैं अब सब ऐसा ही सोचते हैं और सभी ने लड़के ही लड़के पैदा किये और लड़कियां समाप्त हो गई तो फिर शादी किससे होगी? पशु पक्षियों से, पेड़ पौधों से, मिट्टी पत्थर से दीवाल से होगी? जिस प्रकार पहले राजा लोग अनेक रानियां रखते थे तो आजकल लड़कियों को अनेक पति रखना पड़ेंगे तो विधवा कैसे बनेगी या वेश्या किसको कहेंगे तथा अनेक पतिवाली को भी सम्यग्दृष्टि अणुव्रती पतिव्रता शीलवती मानना पड़ेगा। देखो मुस्लिम समाज जो हिंसक है वह भी खुदा की सन्तान वरदान मानकर उसकी रक्षा करता है गर्भपात नहीं कराता है किन्तु जिनेन्द्र भक्त, ईश्वर के भक्त, अहिंसावादी, ईश्वर की कृपा मानने वाले पुण्य का फल मानने वाले जैन हिन्दु ब्राह्मण भारतीय धार्मिक समाज गर्भपात भ्रूण हत्या करने कराने में किंचित् मात्र भी**

मन में हिचकिचाते नहीं हैं यह बड़े खेद की बात है और आश्चर्य भी है। पुनः आजकल अनेक उदाहरण देखने में, सुनने में आ रहे हैं कि लड़के माँ बाप को मारते हैं, कष्ट देते हैं, जान से भी मार देते हैं, न्यारा कर देतें हैं या न्यारे हो जाते हैं किन्तु एक भी उदाहरण ऐसा देखने सुनने में नहीं आया कि पुत्री ने माँ बाप को मारा हो या अनर्गल कष्ट दिया हो किन्तु शादी के बाद में भी अपने पीहर आ कर लज्जा, शर्म, घृणा को छोड़कर सेवा की माँ बाप का मलमूत्र साफ किया किन्तु संस्कार हीन मानव उपकार का बदला अपकार से चुकाता है। देखो उपकार करने वाले का अपकार से तथा अपकार करने वाले का उपकार से बदला चुकाते हैं यह कैसी संसार की विचित्र विडम्बना है। गर्भपात कराने वालों को सोचना चाहिए कि हमारे माँ बाप भी यदि हमको गर्भपात से या भ्रूण हत्या के द्वारा मरवा देते तो यह कामभोग, वस्त्रालंकार कौन धारण करता? शृंगार कौन करता? भोग कौन भोगता? यह इन्द्रियजन्य सुख हमें कहाँ से प्राप्त होता? पुनः आजकल के इतिहास का पुराने इतिहास से मिलान करो कि पहले इतने कामभोग के साधन नहीं थे फिर भी पर्याप्त सुखी थे कितने परिवार सन्तान विहीन थे आज कितने परिवार सन्तान विहीन हैं। आज कितने ही लोग परिवार की वृद्धि के लिए सन्तान की प्राप्ति के लिए लालायित हैं। अतः इलाज कराते हैं, रजवीर्य की जाँच कराते हैं, देवी देवताओं की मन्त्रों की आराधना करते कराते हैं, जप करते हैं तन्त्र विधि करते हैं। वर्तमान में हर तरह से परिश्रम करते हैं किन्तु सन्तान की प्राप्ति नहीं होती है कारण उन्होने पहले पूर्वभव में या इसी भव में हरे भरे, फूलेफले वृक्षों को, पौधों को कटवाये थे, कटवाते हैं, नष्ट किये करवाये, गर्भपात कराया, अण्डे खाये, गर्भवतियों को मारा, भयंकर कष्ट दिया, ठुकराया तो वह फल कैसे प्राप्त न होगा? इस प्रकार के दुःख के साधन दुःप्रवृति, दुःप्रचार टी०वी० के माध्यम से अपने को देखने को मिलता है। स्वच्छ मन वाले सन्तान को खोटे मार्ग से नहीं बचा पाते? क्योंकि उसमें स्वयं रचेपचे हैं। एक उदाहरण एक बच्चा स्कूल से पढ़कर बाहर निकला और रास्ते में खड़े खड़े पेशाब करते गुरुजी ने देखा, देखकर बोले अरे बच्चे तूँ खड़ा होकर पेशाब कर रहा है। बालक बालिकायें सामने से निकल रहे हैं शर्म नहीं आती है, चल अभी तेरे पिता से शिकायत करता हूँ तेरे को डर नहीं लगता है तब बालक घबराया, गुरुजी आगे बढ़े तो देखा कि विद्यार्थी के पिताजी छत पर खड़े खड़े पेशाब कर रहे हैं उस समय गुरुजी ने अपना हाथ अपने माथे पर मारा और माथ पीटते हुए बोले देखो जब पिताजी छत पर खड़े खड़े पेशाब कर रहे हैं तो इनका बेटा कम से कम नीचे खड़ा खड़ा पेशाब कर रहा है यह कोई आश्चर्यकारी बात नहीं है। पर यहाँ प्रश्न है कि पहले किसे सुधारा जाय माँ बाप को या सन्तान को। इस विषय को शीलवान स्वयं निर्णय कर सकता है कि गर्भपात करना कराना सहायता करना कराना पुण्य है या पाप? इसी सरकार ने कुछ दसक पूर्व गर्भपात का कानून बनाकर अत्याचार फैलाया अब पुनः गर्भपात को रोकने के लिए छापा मारती है कि लडकियों की संख्या कम हो रही है यह कैसी विडमबना है?

प्रश्न— 321 भांग, चरस, गांजा, धूम्रपान मादक आदि पदार्थों को उपयोग में लाना व्यसन क्यों कहा?

उत्तर ये नशीले प्रमादकारक पदार्थ हैं, कोई अपनी माँ बहिन के सामने अपशब्द बोलता है तो कितना

बुरा लगता है और जब अपन स्वयं बोलते हैं तो कौन समझाये? विवेकहीन होकर, नशे में चूर होकर सबकुछ सदाचार, सद्गुण नष्ट हो जाते हैं। इस नशा से तन मन धन और धर्म नष्ट होता है, लज्जा, मान मर्यादा, आदर सम्मान सब नष्ट हो जाता है, उच्चकुल परम्परा की भी हानि होती है, मृत प्राण हो जाता है। इसमें तन, मन, धन, धर्म, जन, परिवार, समाज कुल परंपरादि की हानि होने से प्रमादकारक व्यसन है और प्रमाद कारक अभक्ष्य भी है जो जैनों को जन्म से ही छोड़ने योग्य हैं। प्रमाद पूर्वक गमनागमन करने से वाहनों से दुर्घटना भी हो जाती है, वार्तालाप करने से परस्पर में झगडे हो जाते है, भोजनपान करने से स्वास्थ्य बिगड जाता है, उल्टियां होने लग जाती है, उठने बैठने से, लेटने से जीवजंतुओं की विराधना हो जाती है यहाँ तक की स्वयं का जीवन संकट में पड जाता है ऐसा दिगंबर जैन धर्माचार्यों ने अनेक जगहों पर विधान किया है।

प्रश्न– 322 क्रिकेट, हॉकी, पतंगादि शर्त लगाकर खेलना व्यसन क्यों कहा?

उत्तर **इन खेलों को खिलाड़ी खेलते हैं तो खेल को देखने में, सुनने में इतने मस्त हो जाते हैं कि पढाई, लिखाई, व्यापार, खाना, पीना, रिश्तेदार, नातेदारों का, गुरुजनों का, मातापिता का और भी बड़ों का आदर सम्मान करना सब भूल जाते हैं दानपूजा, वैयावृत्ति भी समय पर नहीं कर पाते हैं इसी कारण से चोरी, मारपीट तक हो जाती हैं लूटमार, लड़ाई झगड़ा भी हो जाता है। जो प्रत्यक्ष देखा जा रहा है तथा पत्रिकाओं में, दूरदर्शन से टी०वी० के माध्यम से भी देखा जा रहा है कि इन्हीं खेलों में हार जीत का सट्टा, शर्त लगाकर भी खेलने लगते हैं, देखने लगते हैं तथा लड़मरते हैं अतः यह भी हिंसा का, आर्तरौद्रध्यान का, विषय कषायों का साधन होने से व्यसन ही है।**

प्रश्न– 323 आलू आदि खाना भी व्यसन है ऐसा क्यों कहा जोर से पूंछ रहा है?

उत्तर **धीरे से बोलो, धीरे से पूंछो अरे भाई आलू आदि खाना भी व्यसन है जो अहिंसावादी बनते हैं और अनन्त जीवों के पिण्ड स्वरूप आलू आदि कन्दमूल, जमीनकन्दों को प्रतिदिन खाते हैं या जब कभी भी उपलब्ध होता है तो आसक्तिपूर्वक गृद्धता पूर्वक अनेकबार नाना पकवान रूप में, तरकारी रूप में या वैसे ही खाते हैं चाहे कोई पर्व हो या न हो, बीमारी हो डॉक्टर मना करता हो, गुरुजन भी मना करें तो भी खाने वाले नहीं मानते, सुनते भी नहीं तथा समझने की तैयारी भी नहीं है अपने जीवन से, मरण से, दुःख से, पाप से, बीमारी से मतलब नहीं केवल स्वाद से प्रयोजन है खाने के लिए नहीं मिले तो चलेगा पर त्याग नहीं करेंगे। इस विषय में इतनी आसक्ति है कि किसी भी प्रकार से व्रत, संयम, नियम नहीं ले सकते हैं, ये जिह्वा लोलुपी धर्म का, मोक्षमार्ग का त्याग कर सकते हैं पर पाप का नहीं। इसलिए आलू आदि कन्दमूलों का सेवन करना व्यसन कहा है। ये खाने वाले जैन घर में, होटल में खाये तो कुछ देर के लिए पाप क्षम्य हो सकता है पर धर्म क्षेत्रों में, पर्व दिनों में सामूहिक सामाजिक भोजन में, धार्मिक भोजन में जाकर बनवाने लगे, खाने लगे तो क्षेत्रों का अतिशय जाता रहा जब रक्षक भक्त ही भक्षक बन जाये तो देवतागण अपना अतिशय कहाँ तक बतायें। आजकल इन भोगियों के कारण धर्मस्थान, धर्मशाला न रहकर भोगस्थान, भोगशालायें बन गई आजीविका के साधन बन गये। आजकल धर्मायतन धर्म के कार्यों में कम काम में आते हैं भोग के आजीविका के कार्यों में अधिक उपयोग में आने लगे यह एक**

सम्यक् जैन समाज का महान दुर्भाग्य है कि विवाहादि कार्यों में आलू मूली गाजरादि का सेवन तो होता ही है किन्तु साथ में धर्मक्षेत्रों में भी अण्डे, शराबादि का उपयोग होने लगा है वे धर्मक्षेत्र चाहे सिद्धक्षेत्र हो या अतिशयक्षेत्रों की धर्मशाला पटना बिहार गुलजार बाग, बनारस मैदागिनि धर्मशाला और जिनमंदिर साथ में है। यहाँ पर शराब की बोतले, अण्डे के छिलके प्रत्यक्ष देखे गये तथा भाग्यवशात् मैनेजर तथा मंत्री को प्रत्यक्ष दिखा दिया कि यह धर्मशाला विवाह के उपयोग में आने से ऐसा भोजनपान हो रहा है बड़े आश्चर्य की वात है कि नाम धर्मशाला और काम भोगशाला का, इसी तरह जहाँ जहाँ क्षेत्रों में धर्मशालाओं को विवाहादि के द्वारा आजीविका का साधन बना लिया है पर उन कार्यकर्ताओं ने संशोधन के लिए कुछ भी विचार नहीं किया यह बड़ा आश्चर्य है। पहले सत्दातारों ने अपनी न्यायनीति से कमाई गई सम्पत्ति को धर्म साधन के लिए, धर्म कार्यों के लिए धर्म समाज के हितार्थ निर्माण कराई थी, धन कमाने के, आजीविका के उद्देश्य से नहीं बनवाई थी। कारण आजीविका के बहुत साधन हैं सोना चांदी, लोहा तांबा पीतल, हीरा, किराना, कपड़ा, धान्य, तेल, फल, तरकारी आदि के व्यापारों के द्वारा आजीविका चलाई जा सकती है और चलाई जाती है धर्मकार्य धर्मायतनों के माध्यम से नहीं।

प्रश्न– 324–27 पाठशाला किसे कहते हैं? भेद? नाम और परिभाषा क्या हैं?

उत्तर **जहाँ पर स्थिर रहकर अध्ययन किया जाता है इसलोक परलोक का, पुण्य पाप का, सम्यक्ज्ञान मिथ्याज्ञान प्राप्त किया जाता है उसको पाठशाला कहते हैं इसके दो भेद हैं। धार्मिक पाठशाला और आजीविका सम्बन्धी पाठशाला या लौकिक पाठशाला या भौतिक पाठशाला। जहाँ पर आत्मज्ञान, आत्मसाधना, आत्मतत्त्व का ज्ञान प्राप्त किया जाय वह धार्मिक पाठशाला तथा जहाँ पर आजीविका सम्बन्धी, लौकिक सम्बन्धी, भौतिकज्ञान सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त किया जाय उसे लौकिक पाठशाला भौतिक पाठशाला कहते हैं।**

प्रश्न– 328 भोजनशाला किसे कहते हैं?

उत्तर **द्रव्य क्षेत्र काल और भाव की शुद्धि पूर्वक मोक्षमार्ग के अनुकूल संयम में सहायक ऐसे भोजन के स्थान को भोजनशाला कहते हैं इसमें सदाचारी सज्जन श्रावकगण भोजन करते हैं। अजैनों के यहाँ भी भोजनशालायें होती है पर वे अधार्मिक होने से यहाँ ग्रहण करने योग्य नहीं हैं।**

प्रश्न– 329 होटल किसे कहते हैं?

उत्तर **जिस स्थान में लौकिक सदाचारी, दुराचारी, अनाचारी, मांसाहारी, अशुद्ध शाकाहारी रोगी निरोगी धन देकर शुद्धि अशुद्धि का विवेक खोकर, नष्ट कर हर प्रकार से अशुद्धि पूर्वक भोजन किया जाय उसे होटल कहते हैं इसमें भक्ष्याभक्ष्य का विचार नहीं होता है, न जाति कुल की मर्यादा का विचार होता है तथा तन मन धन और धर्म चारों नष्ट होते हैं।**

हिन्दू हो टल + हिन्दू है तो तूँ यहाँ से टल जा चलाजा।

जैन हो टल + जैन है तो तूँ यहाँ से टल जा चलाजा।

हिन्दूः– हिन् + दू हिंसा से दूर रहने वाला हिन्दू।

जैनः– जै + न संसार में जिसको जीतने वाला कोई पैदा नहीं हुआ है वह है जैन या जिसको

जीतने के लिए संसार में अब कुछ शेष न बचा या नहीं है वह जैन।

प्रश्न– 330 गोशाला आदि, घुड़शाला गजशाला, यज्ञशाला अभिषेकशाला आदि किसे कहते हैं?

उत्तर गायों बैलों के रहने के स्थान को गोशाला। आदि से पालतू पशुओं के रहने के स्थान को अर्थात् जिस पशु या पक्षी के रहने के स्थान को उसी उसी नामवाला स्थान कहते हैं। घुड़शाला–घोड़ों के रहने के स्थान को, गजशाला–हाथियों के रहने के स्थान को आदि जंगली पालतू जानवरों के स्थान को उसी उसी नाम वाला स्थान कहते हैं। यज्ञशाला पूजा पाठ हवन आदि सत्कार्य करने के स्थान को यज्ञशाला जपशाला, तपशाला, ध्यानशाला–जप करने के स्थान को,तप करने के स्थान को, ध्यान करने के स्थान को अभिषेकशाला– जिस स्थान पर पूज्य श्रेष्ठ महानुभाव, उत्तम पुरुषार्थी पुरुषों को स्नान कराया जाये उसे अभिषेकशाला कहते हैं। धर्मशाला जहाँ पर ठहर कर मोक्ष के अनुकूल या मोक्षमार्ग के अनुकूल आचरण का पालन किया जाये साधु और श्रावकगण अपने पदानुकूल कर्तव्य का पालन करे उसे धर्मशाला कहते हैं। भोगशाला– विषय भोगों के स्थान को भोगशाला कहते हैं। आदि स्थानों के असंख्यात भेद हैं। इनमें लौकिक स्थानों के कार्यों में कोई परिवर्तन नहीं हो रहा है किन्तु धर्मशाला के कार्यों में परिवर्तन किया जाता है, किया जा रहा है यह पंचम काल कैसी विडम्बना लेकर सामने आ रहा है? कैसे जीव पैदा हो रहे हैं जो धर्म को आजीविका का साधन बना रहे हैं। इन पामर, अकर्मण्य मोहियों की आजीविका की व्यवस्था खेती व्यापार से न होकर, धर्मशाला से, पूजा पाठ से, धर्म के प्रवचन से, प्रतिष्ठाओं से, विधिविधानों को करा करके, शास्त्रों का लेखन सम्पादन संशोधन करके जिनवाणी को माँ कहकर के, पूजा करके फिर माँ को बेंच करके आजीविका चला रहे हैं, रुपया पैसा कमा रहे हैं ऐसे मनुष्यों को धिक्कार है इनको लज्जा भी नहीं आती। इन्होंने मोक्षमार्ग को भोग का मार्ग बना लिया ये शरीरधारी आत्मसिद्धि के लिए कौन सा उपाय करेंगे? आ० श्री शुभचन्द्रजी ने ज्ञाना० में कहा है–"यतित्वं जीवनोपायं कुर्वन्तः किं न लज्जितः। मातुः पण्यमिवालम्ब्य यथा केचिद् गत घृणाः।।" 56 श्लोक–अ०4 जैसे कोई माँ को पूज्य कहकर के भी वेश्याकर्म कराकर उससे धन कमाकर अपनी आजीविका को चलाता है तो उसे ऐसा कार्य करते हुए लज्जा क्यों नहीं आती उसी प्रकार जो मोक्ष के साधनभूत मुनिलिंग या अणुव्रत धारण कर इन व्रतों से अपनी आजीविका चलाता है तो उसे लज्जा क्यों नहीं आती। ये अणुव्रत महाव्रत मोक्ष के लिए, शास्वतपद के लिए धारण किये जाते हैं, आजीविका के लिए नहीं इसी तरह जितने धर्म के अंग हैं वे सब मोक्ष के साधन हैं, आत्मशुद्धि के लिए अपनाये जाते हैं, पेट और पेटी भरने के लिए नहीं। यदि ये धर्मकार्य आजीविका के साधन माने जायें तो भोगों को, शृंगार अलंकारों को मोक्ष के साधन मानने का प्रसंग आयेगा तो फिर इन भोगियों के लिए संसार का मार्ग कौन सा होगा? अतः जो जैन समाज धर्मशाला को दान पूजा, व्रत उपवास, अणुव्रत महाव्रत, मूलगुण उत्तरगुणों को आजीविका का

धन कमाने का साधन बनाते हैं, बना रहे हैं उनके समान अधम, पापी, अनाचारी संसार में और कोई दूसरा नहीं होगा। पहले श्रावकगण धर्म और धर्मायतनों की रचना, रक्षा, वृद्धि, उनकी व्यवस्था अपनी न्यायनीति से कमाई गई सम्पत्ति से करते थे क्योंकि श्रावक दान नाम का एक आवश्यक कर्तव्य का, धर्म का पालन करते थे जन सेवा करने के साथ साथ जिन सेवा करते थे इसलिए पीढ़ियों तक हर प्रकार से संपन्न रहते थे किसी भी प्रकार से धनजन में आपत्तियां नहीं आती थी किन्तु आजकल जनसेवा और जिनसेवा के बिना ये नामधारी नाम निक्षेप से साधु और श्रावक जैन गृहस्थ लोग धर्मशालाओं के माध्यम से विवाह शादी आदि में किराया लेकर, भाड़ा लेकर वहाँ आलू प्याज अण्डे शराब खाये पिये जाते हैं। इन कारणों से कमाये गये धन से किंचित् या पूर्णरूप से मंदिर की, पूजा आदि की व्यवस्था, मुनियों की भी व्यवस्था कर देते हैं फिर भी यह नगण्य है अपना पेट और पेटी प्रधान हैं यह बड़ा आश्चर्य हैं। इन घृणित कार्यों को करते हुए कोई श्रावक या साधु मना करता है तो ये ट्रस्टीगण, कमेटी के कार्यकर्ता कर्मचारीगण उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगते हैं, उनका अपमान तिरस्कार करने से नहीं चूकते। अभी धर्मशाला शादी आदि कार्यों के लिए बुकिंग है अतः आप उस कमरे में ठहर जाओ या सेठ आदि के मकान में आपकी व्यवस्था कर दी है बाद में यहाँ आ जाना ऐसा बोलने लगते हैं या निर्दयतापूर्वक विहार कर जाओ ऐसा भी बोल देते हैं या ये धर्म कें, समाज के विरोधी हैं। इस प्रकार का व्यवहार करने कराने में नहीं चूकते। पत्रिकाओं में भी प्रकाशित करा देते हैं, बदनाम कर डालते हैं, इनको पापकर्म से, नीच गोत्र के आश्रवबंध से भय नहीं हैं। यह सबका सब कार्य कन्दमूलादि अशुद्ध भोजन का है। कहावत है—**''जैसा खाये अन्न वैसा होय मन। जैसा पीवे पानी वैसी बोले वानी।'' इसलिए अहिंसावादी जैनों को इस प्रकार धन कमाकर आजीविका नहीं चलाना चाहिए, न धर्मायतनों की सुरक्षाव्यवस्था करना चाहिए।**

प्रश्न— 331 लोक निन्दा से भयभीत हो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर **वास्तविक मोक्षमार्गियों ने जिन कार्यों को संसार का कारण समझकर त्याग किया है, त्याज्य बताया है, हानिकारक बताया है। दोष बताकर कुम्भकार के समान बाह्य में शब्दों से निन्दा की है ऐसे निन्दित कार्य करने वाला जैन नहीं होना चाहिए। यहाँ कोई ऐसा मत समझना कि समीचीन कार्य भी लोक में मोहियों से निन्दित होते हैं अतः सभी निन्दित कार्य त्याज्य है, छोड़ने योग्य हैं क्योंकि लोक में प्रत्येक पदार्थ यदि किसी से निन्दा को प्राप्त है तो वही कार्य, पदार्थ दूसरों के द्वारा प्रशंसा को प्राप्त होता है। जैसे भोगी योगी की योगियों के कार्यों की निन्दा करता है, व्यभिचारी ब्रह्मचारी की निन्दा करता है, वेश्या पतिव्रता की निन्दा करती है, पापी धर्मात्मा की, चोर पहरेदारों की, दुर्जन सज्जनों की निन्दा करता है तो तीर्थंकर आदि महापुरुषार्थियों ने संसार की और संसार के कारणों की सज्जनों को सम्बोधन करने के लिए दोष को दोष बताकर, दोषवादन किया कि आप लोग खोटे मार्ग को छोड़कर सन्मार्ग में आओ इस कारण संसार में प्रत्येक पदार्थ या कार्य अपने प्रतिपक्ष धर्म सहित है। जैसे कृष्णपक्ष तो शुक्लपक्ष, रात्रिदिन, अन्धकार प्रकाश आदि अपने प्रतिपक्ष सहित हैं। यदि एक बाजू है तो दूसरी बाजू होना ही चाहिए क्योंकि प्रतिपक्ष के बिना स्वपक्ष बन नहीं सकता, एक के बिना दूसरे की सिद्धि नहीं हो सकती**

इसलिए यहाँ सभी प्रकार की निन्दा से भयभीत हो ऐसा मत समझना यदि सत्कार्य का पालन कर रहे हो तो निन्दा होगी तब उस निन्दा से भयभीत होकर सत्कार्य छोड़ नहीं देना किन्तु जो कार्य मोक्षमार्ग के विरोधी हैं, आत्मसाधना में विघ्नबाधा उत्पन्न करते हैं तथा पूज्य महापुरुषों ने संसारपतन का कारण जानकर जिसका निषेध किया है, त्याज्य बताया है वह कार्य नहीं करना चाहिए।

प्रश्न— 332—35 निन्दा किसे कहते हैं? निन्दा का स्वामी कौन है? क्या हानि है? क्या लाभ है?

उत्तर जो दूसरों में असद्भूत दोषों का आरोपण कर बदनामी करता है तथा सबके सामने दोष लगाकर नीचा दिखाया जाता है और अपने में गुण नहीं है तो भी अपने में असत्गुणों का सद्भाव बताकर पूजा प्रतिष्ठा कराना, आदर सम्मान कराना आदि को निन्दा कहते हैं। इसके स्वामी मिथ्यादृष्टि जीव हैं और पतन की अपेक्षा सासादन सम्यग्दृष्टि जीव हैं क्योंकि निन्दा करने में तीव्रकषाय होती है, नीचगोत्र का आश्रवबंध होता है, आर्त रौद्रध्यान परिणाम, अशुभ लेश्यायें होती हैं इससे नरकगति, तिर्यंचगति की प्राप्ति होती है। मलेच्छखण्ड में, सम्मूर्च्छन जीवों में, अल्पायुष्क जीवों में जन्ममरण प्राप्त होता है, लोक में निन्दित कार्य करने वाले के निन्दक हो जाते हैं, शत्रु हो जाते हैं आदि महान हानि होती है। उपरोक्त निन्दित कार्य नहीं करने से उक्त अशुभ अवस्थाओं की प्राप्ति नहीं होती है यही लाभ है। कषायों की तीव्रता के अभाव में तथा मन्दोदय होने से कषायों का दमन होता है, क्षय होता है। पुनः अन्यमतियों ने तीर्थंकरों में नाना तरह के दोषारोपण कर निन्दा की तथा आजकल अनेक लोग मुनियों की निन्दा करते हैं। इसमें कुछ विशेषता है कि आजकल अजैन, अनेक दिगम्बर जैन, दिगम्बरेतर जैन भी निर्ग्रन्थ दिगम्बर जैन मुनियों की निन्दा कम करते हैं किन्तु दिगम्बर जैन निकट भक्त बनकर, पदवीधारी बनकर ज्यादा मुनियों की निन्दा करते हैं। इस काल में अजैनों के द्वारा जैनधर्म का और धर्मायतनों का विनाश नहीं हो रहा है किन्तु जैनों के द्वारा पदवीधारी, चारित्रहीनों के द्वारा, बगुला के समान आचरण करने वाले भक्तजैनों से धर्मायतनों का, मुनियों का नाश और अधःपतन हो रहा है। इसलिए बाह्य निन्दा की चिन्ता न कर धर्मायतनों की, गुरु की निन्दा से निष्प्रयोजन कर्मों का बंध हो अतः उन कार्यों को त्याज्य बताया। क्यों बताया? इस कारण आत्मा को अधः पतन से बचाने के लिए लोक निन्दा से भयभीत हो ऐसा कहा है। यदि लोक निंदा से भयभीत नहीं है तो धर्म साधन हो नहीं सकता क्योंकि धर्म साधन के लिए अंतरंग और बहिरंग सामग्री चाहिये जब बाह्य में भरपूर निंदा होने से कोई सहायक नहीं होगा तो अंतरंग परिणाम भी नहीं धर्मानुकूल नहीं हो पाते।

प्रश्न— 336—38 भय किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? कैसे उत्पन्न होते हैं?

उत्तर मनोबल कमजोर होने के कारण, मन में कम्पित होने को अथवा शारीरिक बल कमजोर होने के कारण, समर्थ होने पर भी भय नोकषाय का तीव्रोदय या उदीरणा होने पर हाय क्या होगा? कैसे होगा? कौन करेगा? व्यवस्था कैसे होगी? कौन सहायक होगा? कौन रक्षक होगा आदि के चिन्तन से लौकिक या लोकोत्तर कार्यों के करने में असमर्थता अनुभव करने को भयकषाय कहते

हैं। भयनोकषाय है, ईषत् कषाय है, चारित्र मोहनीय कर्म की प्रकृति है, सेना के समान है। क्रोधादिकषाय सेनापति के समान है। सेना सेनापति का बल पाकर ही अपना कार्य करने में समर्थ हो पाती है इसी तरह क्रोधादि कषायों का बल पाकर ही हास्यादि नोकषायें अपना कार्य करने में समर्थ हो पाती हैं, अन्यथा नहीं अर्थात् कषाय के बिना नोकषाय अपना कार्य करने में असमर्थ हैं, अकार्यकारी हैं। भय सात प्रकार के होते हैं अथवा ये सातों भय अनन्तानुबन्धी क्रोधादि चारों कषायों से गुणा करने पर 28 भेद, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभकषाय इन चारों से गुणा करने पर 28 भेद, प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया और लोभकषाय इन चारों से गुणा करने पर 28 भेद, संज्वलन क्रोधमान माया लोभकषाय इन चारों से गुणा करने पर 28 भेद इस प्रकार चारों कषायों को मिलाकर सब भयों के 112 भेद होते हैं। अनन्तानुबन्धी कषायों के साथ भय का वासना काल या संस्कार काल संख्यात, असंख्यात और अनन्त भवों तक रहता है, रह सकता है अथवा अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर भी नष्ट हो सकता है। अप्रत्याख्यानावरण कषाय के साथ 6 महिने तक भय का वासना काल, संस्कार काल रह सकता है अथवा अन्तर्मुहूर्त काल में भी समाप्त हो सकता है। प्रत्याख्यानावरण कषाय के साथ भय का वासना काल 15 दिन उत्कृष्ट काल रह सकता है तथा जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त काल है। संज्वलन कषाय के साथ भय का संस्कार काल दोनों अन्तर्मुहूर्त है। भयकषाय नोकषाय है यह क्रोधादि कषायों का बल पाकर ही अपना कार्य करने में समर्थ है, अन्यथा नहीं। भयों के सात नाम हैं – इहलोकभय, परलोकभय, अरक्षकभय, अगुप्तिभय, वेदनाभय, मरणभय, आकस्मिकभय। भय की उत्पत्ति दो कारणों से होती है [1]अन्तरंगकारण [2]बहिरंग कारण। [1]अंतरंग कारण भयकर्म का तीव्रोदय होने से या उदीरणा होने से भाव भय उत्पन्न होता है। बहिरंग कारण अत्यन्त बेढंगे रूप को देखने से, उसमें उपयोग को लगाने से, यह मेरा कुछ बिगाड़ेगा, कष्ट देगा, दुःखी करेगा आदि विचारने से तथा शारीरिक बल कमजोर होने से या अत्यन्त गम्भीर बीमारी रोग बाधा होने से भय उत्पन्न होता है। भय के पहले 7 भेद बतला आये हैं। अब यहाँ सर्वप्रथम भय के दो भेद बतला रहे हैं। नाम – द्रव्यभय और भावभय।

प्रश्न– 339–40 द्रव्यभय किसे कहते हैं? इसके स्वामी कौन कौन जीव हैं?

उत्तर **चारित्र मोहनीय कर्म का जो द्रव्य है वह भय कषाय रूप से परिणमन करता है उसे द्रव्यभय कहते हैं। क्षपकश्रेणी की अपेक्षा नौवें गुणस्थान तक तथा उपशमश्रेणी की अपेक्षा ग्यारहवें गुणस्थान तक के मुनि स्वामी हैं क्योंकि क्षपकश्रेणी की अपेक्षा द्रव्यभय कषाय का सत्त्व मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर नौवें गुणस्थान तक तथा उपशमश्रेणी की अपेक्षा मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर ग्यारहवें गुणस्थान तक होता है। इसके आगे नहीं होता है।**

प्रश्न– 340(1) भावभय किसे कहते हैं?

उत्तर **चारित्र मोहनीय कर्म के भेद स्वरूप भय नोकषाय के उदय से उत्पन्न हुए आत्मा में कम्पन भाव को, भीरु स्वभाव को, डरपोंक भाव को भावभय कहते हैं तथा कार्य रूप में प्रमत्त मुनि पर्यंत भावभय के स्वामी हैं।**

प्रश्न– 341 इसलोकभय किसे कहते हैं?

उत्तर इस भव में, इस पर्याय में कोई बचाने वाले नहीं हैं। मैं अकेला हूँ, असमर्थ हूँ, कमजोर हूँ, कोई सहायक नहीं हैं, मैं किसकी शरण में जाऊँ, जो मेरा साथ निभायेगा, मेरा रक्षक होगा, कष्ट से बचायेगा आदि विचारों से उत्पन्न हुई घबराहट को इसलोकभय कहते हैं।

प्रश्न– 342 परलोक भय किसे कहते हैं?

उत्तर इसलोक भयसम्बन्धी विचारों को अगले भव के लिए विचार करने को परलोक भव सम्बन्धी भय कहते हैं। परभव में मैं कहाँ जन्म धारण करूंगा, वहाँ कौन, कहाँ क्या सहायक होगा आदि को परलोक भय कहते हैं।

प्रश्न– 343 वेदनाभय किसे कहते हैं?

उत्तर वात पित्त कफ के विकार के कारण नाना प्रकार से उत्पन्न हुई बीमारी से, व्याधि से, वेदना के कारण भूख प्यास, सर्दी गर्मी, उपसर्ग परीषह, मान अपमान से घबराहट होने को, कम्पित होने को, हाय हाय मरा! अब क्या होगा, इस कष्ट से कौन बचाये आदि भीरु स्वभाव को वेदना भय कहते हैं।

प्रश्न– 344 अरक्षक भय किसे कहते हैं?

उत्तर मेरे को यहाँ वहाँ कहीं पर भी बचाने वाला कोई नहीं है, पहरेदार नहीं है, साथी नहीं है, खुली जगह है, चोरों का, उग्रवादियों का संकट छाया हुआ है, सर्प, बिच्छू, जंगली जानवर, घातक प्राणी न आ जायें, कोई काट न लें, कोई पास में नहीं है, वह न जागता है, अब हम कैसे बैठे, कैसे सोये, क्या करें, कहाँ जायें आदि विचारों से उत्पन्न कम्पन भावों को अरक्षकभय कहते हैं।

प्रश्न– 345 अगुप्ति भय किसे कहते हैं?

उत्तर खुली जगह है, हिंसक प्राणियों का आवागमन हो रहा है, कौन किस समय घात कर दे, बाधा पहुंचा दे अतः किसी गुफा में, तलघर में, भयंकर जंगल की खोहों में, कन्दराओं में, अत्यन्त ऊंचे पर्वतों में चला जाऊं जहाँ पर किसी का आवागमन न हो तभी मेरी रक्षा हो सकती है। अन्यथा जीवित बचना, सुख से रहना कठिन है इस प्रकार गुप्त स्थान न होने के कारण अपने को असमर्थ अनुभव कर कम्पित होने को अगुप्तिभय कहते हैं।

प्रश्न– 346 मरणभय किसे कहते हैं?

उत्तर मरण के सूचक अरिष्ट चिह्नों के उत्पन्न होने पर, यथायोग्य 5 इंद्रिय प्राण, 3 बलप्राण, आयु प्राण, श्वांसोच्छ्वास प्राणों के वियोग का, विच्छेद का प्रसंग आने पर कम्पन परिणाम को कि हाय हाय मरा, कोई मरने से बचाने वाला नहीं ऐसे मृत्यु से भयभीत स्वभाव को मरणभय कहते हैं।

प्रश्न– 347 आकस्मिकभय किसे कहते हैं?

उत्तर हम यहाँ पर सोये हैं, बैठे हैं, खड़े है, पढ़ रहे हैं, ध्यानाध्ययन कर रहे हैं अचानक यह दीवाल, पेड़ पौधा गिर न जाय, ऊपर पत्थर न गिर जाये, एक्सीडेन्ट न हो जाये हो गया तो बड़ा कष्ट होगा अतः पहले से ही कष्टों से सावधान रहना चाहिए, बचने का कोई उपाय चाहिए। इस प्रकार

एकाएक मन में भय रखकर घबराने को, कम्पित रहने को आकस्मिक भय कहते हैं। उपरोक्त सभी भयों का कारण अंतरंग में भय नोकषाय का तीव्रोदय या उदीरणा कारण है और बहिरंग कारणों की अपेक्षा भेद दृष्टि से संख्यात, असंख्यात और अनंत भेद होते हैं। उपरोक्त सभी भय मिथ्यात्वगुणस्थान में अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया और लोभ तथा मिथ्यात्वकर्मोदय से होते हैं। उभय उपशम सम्यक्त्व की विराधनाकर अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ के उदय सेसासादन गुणस्थान में आकर भय से युक्त हो जाते हैं। अप्रत्याख्यानावरण कषाय और सम्यक्मिथ्यात्व कर्म प्रकृति के उदय से तीसरे सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान में तथा चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में अप्रत्याख्यानावरण कषायोदय से उपरोक्त सभी भय होते हैं। प्रत्याख्यानावरण कषायोदय से देशसंयत नामक पंचमगुणस्थान में सभी भय होते हैं और संज्वलन क्रोध मान माया और लोभ के तीव्र उदय से, उदीरणा से छठवें प्रमत्तसंयत गुणस्थान में ये सभी भय कार्य रूप में होते हैं। अप्रमत्तसंयत सातवाँ गुणस्थान, अपूर्वकरण नाम का आठवाँ गुणस्थान और अनिवृत्तिकरण नामक नौवें गुणस्थान के पाँचवें भाग तक क्षपकश्रेणी की अपेक्षा सत्व तथा उपशमश्रेणी की अपेक्षा 8–9–10–11वें गुणस्थान पर्यन्त सत्व की अपेक्षा तथा 7वें–8वें गुणस्थान तक उदय की अपेक्षा भय कषाय कारण रूप में है, कार्य रूप में नहीं। भय कषाय की बंध व्युच्छित्ति आठवें गुणस्थान के सातवें भाग में हो जाती है। फिर भी ध्यानावस्था होने से भय कार्यरूप में परिणत नहीं हो पाता है। इतना सब कुछ होने पर भी यहाँ अनन्तानुबन्धी कषायोदय से युक्त भयों से प्रयोजन है अथवा सादिमिथ्यादृष्टि या अनादिमिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व गुणस्थान से सीधा चौथा या पाँचवां या सातवाँ गुणस्थान प्राप्त करता है अतः सभी भयों से प्रयोजन है। तथा 28 प्रकृतियों की सत्तावाला जीव तीसरे गुणस्थान को और पतन की अपेक्षा दूसरे गुणस्थान को प्राप्त होता है किन्तु इनकी यहाँ विवक्षा नहीं हैं।

प्रश्न– 348 भयों से क्या हानि प्राप्त होती है?

उत्तर मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषायोदय के साथ उत्पन्न भय रत्नत्रयधर्म को उत्पन्न नहीं होने देते, अप्रत्याख्यानावरण कषायोदय के साथ उत्पन्न भय अणुव्रत को उत्पन्न नहीं होने देते, प्रत्याख्यानावरण कषायोदयके साथ उत्पन्न भय मुनिव्रत को उत्पन्न नहीं होने देते हैं, संज्वलन कषायोदय के साथ उत्पन्न भय र्निविकल्पध्यान उपशम या क्षपकश्रेणी आरोहण नहीं करने देते हैं किन्तु आर्तध्यान को, अशुभलेश्याओं को अवश्य ही उत्पन्न करते हैं तथा रत्नत्रय, अणुव्रत और महाव्रतों के मौजूद होने पर भी यदि उक्त भय कार्य रूप से परिणत हो जाये तो तत्तत् गुणों को नष्ट कर दें यही हानि है। इसी तरह यदि संज्वलन कषायोदय से उत्पन्न भय कार्य रूप से परिणत हो जाय तो सातवें आठवें गुणस्थान को नष्ट कर दे किन्तु निर्विकल्प ध्यान रूपी समर्थ योद्धा के कारण भय की शक्ति नष्ट कर दी जाती है।

प्रश्न– 349 सप्त भयों का त्यागी हो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर यदि लोक व्यवहार में, घर में, बाजार में, मित्रमण्डली में, समाज में, सगे सम्बन्धियों के बीच में भय लग रहा है, डरपोंक है, भीरु स्वभाव है तो उसे किसी प्रकार से सफलता नहीं मिलती तथा जीवन सुख से, प्रसन्नता से, कर्तव्यपालन से, परिवार आदि से हताश बना रहता है और मानसिक

नाना तरह की बीमारियां घेर लेती हैं। जिससे जीवन हर तरह से निकम्मा, कर्तव्यविहीन, पलायनवादी हो जाता है अतः भयों का त्यागी होना चाहिए। यदि आप मोक्षमार्ग में, आत्मसुख के मार्ग में रत्नत्रय को प्राप्त करना चाहते हैं तो आपको अंतर्बाह्य दोनों तरह से निर्भय, निर्भीक निडर होना चाहिए तभी तो आत्मशान्ति की प्राप्ति होती है जो व्यक्ति निर्भय है वही मोक्षमार्ग में स्थिर रह सकता है, ध्यानाध्ययन में, जप तप में, स्थिर रह सकता है, फल प्राप्त करता है अन्यथा नहीं। जैसे स्वर्णपाषाण जितना अग्नि में तपाया जाता है, घन से पीटा जाता है उतना ही चमकता है, शुद्ध होता है, अलंकार बनकर शरीर के उत्तमांगों में धारण किया जाता है, उत्तम कीमत को, प्रशंसा को प्राप्त होता है। ऐसे ही जो धर्मात्मा उपसर्ग परीषहों से तप्तायमान होकर पलायनवादी न बनकर कर्मठ रहकर कष्टों को जीतते हैं वे समस्त प्राणियों के शिरमोर बन जाते हैं, मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। जरा सोचो निर्भय हुए बिना सांसारिक सुख नहीं मिलता तो शाश्वत, आत्मानन्द, मोक्ष की प्राप्ति कैसे हो सकती है?

प्रश्न– 350 संसार का सुख बिना वैभव के प्राप्त नहीं होता तो क्या आत्मसुख भी बिना वैभव के नहीं मिल सकता?

उत्तर **सांसारिक सुख भी धन वैभव, परिवार आदि से तभी मिलता है जब आपका पूर्वबद्ध भोगान्तराय उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम हो, अन्यथा नहीं तथा यदि उक्त कर्मों का क्षयोपशम हुआ हो और बाह्य में उक्त सामग्री नहीं भी है तो भी आसपास से वह पर की सामग्री भी अपने सुख में साधन बन जायेगी तथा उक्त सामग्री मौजूद होने पर भी पूर्वोक्त कर्मोदय चल रहा है तो सुख का अनुभव न होकर दुःख का ही अनुभव होता है, कृष्ण पक्ष की भांति, अंधेरी रात्रि की वृद्धि के समान अनन्तगुणा अनन्तगुणा दुःख बढ़ता चला जायेगा। धन खर्च करते हुए भी बीमारी में लाभ नहीं होता, भोजन पान की बूंद भी गले के नीचे नहीं जाती, वस्त्राभूषण भी धारण करने के योग्य शरीरावस्था ही नहीं रहेगी। अतः सांसारिक सुख, इन्द्रियजन्य सुख भी धर्म से, पुण्य से प्राप्त होता है तो मोक्ष सुख भी धर्म से प्राप्त होगा, अन्य कारणों से नहीं। इसलिए भौतिक विश्वास को छोड़कर आत्म विश्वास करना चाहिए। कहा भी है–"धर्म करत संसार सुख धर्म करत निर्वाण। धर्म पंथ साधे बिना नर तिर्यंच समान। आहार निद्रा भय मैथुनानि सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्। धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीना पशुभिर्समाना" ।। आहार, निद्रा, भय, मैथुन कर्म सामान्य से पशु और मनुष्यों में पाये जाते हैं। यदि जिसके पास धर्म विशेष है वही श्रेष्ठ है, शेष हीन है। फिर वह चाहे मनुष्य हो या पशु। इसलिए जो मनुष्य पशुओं जैसा आचरण करते हैं वे मनुष्य होकर भी पशु है तथा जो पशु मनुष्यों जैसा आचरण पालते हैं वे पशु होकर भी मनुष्य हैं इस कारण सतत सुखी होने के लिए धर्माचरण की सहायता लेना चाहिए, अन्य की नहीं। पापाद् दुःखं धर्मात्सुखमिति सर्वजनसुप्रसिद्धमिदम्। आ. 8 अर्थः– पाप से दुःख और धर्म से सुख होता है यह सर्वत्र प्रसिद्ध है अतः सुखार्थिओं को पाप छोड़कर धर्माचरण करना चाहिये ऐसा जिनोपदेश है।**

प्रश्न– 351–54 मूढ़ता किसे कहते हैं? भेद? क्या हानि है? क्यों त्याग कराया?

उत्तर अविवेकता को मूढ़ता कहते हैं अथवा बिना सोचे समझे लौकिक प्राणियों की देखा देखी विवेकहीन होकर लौकिक प्राणियों की संगति से, लौकिक कार्यों को धर्म मानकर, समझकर आत्मकल्याण का साधन मानकर, धर्म का अंग मानकर, विश्वासकर तदनुकूल आचरण करने को मूढ़ता कहते हैं या सज्जन पुरुषों की, मातापिता की निर्दोष नीति के तथा सद्गुरु की आज्ञा के प्रतिकूल चलने को मूढ़ता कहते हैं। मूढ़ता के तीन भेद हैं। मूढ़ताओं का पालन करने से अपना ही मोक्षमार्ग, सुख का मार्ग नष्ट होता है, निन्दा होती है, बदनामी, हंसी मजाक होती है आदि हानि है। मोक्षमार्ग अच्छी तरह से चलता रहे सभी जीव सुखी हो प्रशंसा, कीर्ति, आदर, सम्मान प्राप्त हो इसलिए मूढ़ताओं का त्याग कराया है।

प्रश्न— 355 कैसे पहंचाना जाये कि यह मूर्ख है?

उत्तर 'मूर्खस्य पंच चिह्नानि गर्वो दुर्वचनं तथा। क्रोधस्य हठवादस्य पर वाक्येष्वनादरः'।। इन पाँच चिह्नों से मूखो ॅ को जानना चाहिए। अहंकारी होना[1], अशिष्ट वचन बोलना[2], क्रोध करना[3], दुराग्रह करना[4] और सज्जन पुरुषों की सदाज्ञा का पालन न करना या निदोॅष वचनों का अनादर करना[5]। इस प्रकार आचार विचार वाले व्यक्तियों को या इन चिह्नों से युक्त मनुष्यों को मूर्ख कहते हैं। उक्त मूढ़ताओं के जो तीन भेद बतला आये हैं उनके नाम हैं—लोकमूढ़ता, देवमूढ़ता, गुरुमूढता, इनके अलावा मूढ़ताओं के और भी अनेक प्रभेद हैं जो इन्हीं में हाथी के पैर के समान अन्तर्भाव को प्राप्त हो जाते हैं।

प्रश्न— 356 अन्तर्भाव किसे कहते हैं?

उत्तर जिन वस्तुओं में या नियमों में कुछ या पूर्ण रूप से समानता होने पर परस्पर में मिला देने को अन्तर्भाव कहते हैं। जैसे दूध में दूध या पानी मिला देना, चटनी में चटनी मिला देना, धातुओं में धातु मिला देना उसे अन्तर्भाव कहते हैं।

प्रश्न— 357 लोकमूढ़ता किसे कहते हैं?

उत्तर लौकिक प्राणी अविवेकी पूर्वापर, हिताहित, कल्याणाकल्याण के विवेकहीन होकर विषय भोगों को, श्रृंगारालंकार, आरम्भ परिग्रह, विवाहादि, कन्यादान, गंगास्नानादि को तथा लौकिक कार्यों को मोक्षमार्ग मानकर आचरण में लाने को लोकमूढ़ता कहते हैं। अग्निसंस्कार, गंगास्नान, पितर पिण्ड, वर्षगांठ विवाह संस्कार होलिका दहन, गोदान, भूमिदान आदि को लौकिक मनुष्य आत्मसाधक धर्म मानकर करता है इन्हीं कार्यों को जैन लोग लौकिक कार्य या लोकाचार मानकर करें तो आपत्ति नहीं किन्तु मोक्षमार्ग मानकर करेंगे तो लोकमूढ़ता कहलायेगी।

आ० श्री समन्तभद्रजी ने कहा है— 'आपगा सागर स्नान मुच्चयः सिकताश्मनाम्। गिरिपातोग्नि पातश्च लोकमूढं निगद्यते'।। ''गाथा[22]'' धर्म मानकर मेरे सब पाप दूर हो जावे, मोक्ष की प्राप्ति हो इस भावना के साथ नदी में, समुद्र में स्नान करना, बालू पत्थर का ढेर लगाना, अग्नि में गिरकर जलना, पर्वत से गिरना आदि ये सब लोकमूढ़तायें हैं। जैनी लौकिक कार्य भी वही करें जिससे सम्यक्त्व की विराधना न हो तथा चारित्र में भी अतिचारादि दोष उत्पन्न न हो यदि दोष होने लगें तो ये मूढ़तायें रत्नत्रय को नष्ट कर देगीं।

प्रश्न– 358 देवमूढ़ता किसे कहते हैं?

उत्तर अनन्तानुबन्धी कषाय संबंधी रागद्वेष से सहित, मिथ्यात्व मोहनीय कर्मोदय से युक्त मिथ्यादृष्टि देव देवांगनाओं तथा राजा महाराजा रानी आदि को देव या देव सदृश मानकर उनका आदर सम्मानपूजा आराधना करना, वरदान मांगना इनसे आत्महित की, कल्याण की, सुख की प्राप्ति होगी इस भावना से आदर नमस्कारादि करने को देवमूढ़ता कहते हैं। कहा भी है– 'वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेष मलीमसाः। देवता यदुपासीत् देवता मूढमुच्यते'।। ''गाथा[23]''अनन्तानुबन्धी क्रोधमान माया और लोभरूपी मैल से मलिन मन वाले देव देवांगनाओं की तथा राजाओं की धनाकांक्षा, पदाकांक्षा, पूजा प्रतिष्ठा आदि की आकांक्षा से आदर सम्मान, विनय नमस्कारादि करने को देवमूढता कहते हैं।

प्रश्न– 359 गुरुमूढता किसे कहते हैं?

उत्तर भय आशा स्नेह और लोभ पूर्वक रागी द्वेषी मोही, आरम्भ परिग्रही, विषयलम्पटी, ख्याति पूजा लाभ की भावना से सहित, विकार युक्त वेष धारी करने वाले गंजेड़ी, भंगेड़ी, जटाधारी, पखाधारी, चिमटाधारी, राख लगाने वाले, सांकल बांधनेवाले, वस्त्रधारी साधुओं की वंदना, नमस्कार, पूजाआराधना, दान देना, सेवा करना आदि को गुरुमूढता कहते हैं। कहा भी है– ''सग्रन्थारम्भ हिंसानां संसारावर्त वर्तिनाम्। पाखण्डिनां पुरस्कारो ज्ञेयं पाखण्डि मोहनम्।।'' 24। चेतन, अचेतन और मिश्र परिग्रह, खेतीवाडी आदि आरंभ से सहित, सांसारिक विवाहादि लौकिक कार्यों से सहित साधुओं को सम्यक्गुरु, मोक्षमार्गी, कल्याणमार्ग में सहायक मानकर ख्याति पूजा लाभ की भावना सहित यथा गुरु तथा चेला कहावत के अनुसार उन वेषधारी गुरुओं का आदर सम्मान, नमस्कार, विनयादि करने को गुरुमूढता कहते हैं।

प्रश्न– 360 जो गृहस्थ धर्मशिक्षागुरु हैं, पंडित हैं उनको धर्मगुरु मानकर आदर विनय कर सकते हैं क्या?

उत्तर नहीं, धर्मगुरु मानकर आदर सम्मान नहीं कर सकते हैं किन्तु धर्म की शिक्षा देने वाले मानकर धर्मशिक्षा गुरु समझकर आदर सम्मान कर सकते हैं अतः कोई दोष नहीं हैं किन्तु उन असंयमी गृहस्थों को धर्मगुरु मानकर यदि कोई आदर सम्मान करें तो अवश्य ही मर्यादा का उल्लंघन करने वाले होने से गुरुमूढता का प्रसंग आता है क्योंकि धर्मगुरु तो समस्त प्रकार से आरम्भ परिग्रह के त्यागी, विषय कषायों के त्यागी, दुर्ध्यानों के, दुर्लेश्याओं के त्यागी, रत्नत्रय से सहित, दिगम्बर नग्न वेषधारी हैं उनको धर्मगुरु मानकर भरपूर आदर सम्मान करना चाहिए तो कोई दोष नहीं है। इन मूढ़ताओं को जीवन में उतारने से व्यक्ति मूर्ख कहलाता है, सम्यग्दर्शन या रत्नत्रय मलिन होता है, ये मूढ़तायें अधिक समय तक रह जायें तो रत्नत्रय धर्म को समूल नष्ट कर मिथ्यात्व में ले जाती हैं, यदि ये परम्परागत चली आ रही हैं तो सम्यग्दर्शन को या रत्नत्रय को प्राप्त करने की भूमिका नहीं बन पाती है। कषायों के तीव्रोदय से तथा अविवेकता से मूढ़तायें उत्पन्न होती हैं। इसलिए इनका त्याग कराया है क्योंकि जो जीव इन मूढ़ताओं में आसक्त है वे सम्यग्दर्शन को तथा रत्नत्रय को प्राप्त नहीं कर पाते हैं जैसे कोई अत्यन्त मूर्ख पुत्र हो तो

वह माँ बाप के जीवनकाल में चल अचल सम्पत्ति नहीं पाता कारण पुत्र मूर्ख है, हठवादी है, सामग्री को सम्हालने की अकल नहीं, असमय में ही शीघ्र ही नष्ट कर देगा तो ऐसे मूर्ख बालक को सम्पत्ति देने से क्या लाभ? इसी तरह मोक्षमार्ग में समझना। विद्यालय में एक समय गुरुजी शिष्यों को नैतिक शिक्षा दे रहे थे कि हे शिष्यों तुम लोग नंगे शिर घर से बाहर मत निकलना, सिर पर टोपी, पगड़ी, साफा बांधकर निकला करो क्योंकि नंगा शिर होने से कभी पक्षी ऊपर मलमूत्र क्षेपण कर दे या कोई शिर पर पत्थर, लाठी आदि से मारना पीटना प्रारम्भ कर दे या वृक्ष की डाली से फल टूटकर नीचे से निकलते समय शिर पर गिर पड़ेगा तो शिर पर चोट लग जायेगी सभी शिष्यों ने एकसाथ, एक स्वर से स्वीकार कर लिया और गुरु की आज्ञा का पालन करने लगे। उन शिष्यों में एक था मूर्ख, भुलक्कड़, नासमझ शिष्य बिना चड्डी के लुंगी लगाकर मेला देखने बाजार चल दिया रास्ते में जाते समय कौवे ने शिर पर बीट कर दी तब मालुम हुआ तो साफ कर आगे–आगे बढ़ता चला गया पर शिर नहीं ढका क्योंकि गुरुजी की शिक्षा भूल गया था। मेले में पहुंचकर देखा कि कोई शिर पर पगड़ी बांधे है, कोई रूमाल, कोई शिर पर साफा, कोई टोपी पहने हैं। ये सब शिर ढके हुए हैं और मैं शिर नंगा लिए यहाँ तक चला आया हाय अब कहाँ जाऊँ? छिपकर कहाँ भाग जाऊँ? गुरु ने कहा था कि शिर नंगा मत रखना। यदि बाहर जाना पड़े तो शिर ढक कर जाना और मैं पगड़ी पहनना भूल गया, नंगे शिर यहाँ तक चला आया, बहुत लज्जा आई, सोचते सोचते याद आई कि लुंगी तो पास में हैं शीघ्र ही कमर से लुंगी खोली और शिर पर बांधकर चल दिया। तब बीच में लोग इसको देखकर हंसने लगे कि यह कैसा विचित्र नाटक है कि कमर तो नंगी है और शिर पर लुंगी बांधे है। इसकी मूर्खता पर मेले में लोग खूब हंसे यह भी उनको हंसते हुए देखकर स्वयं हंसने लगा। किसी ने आकर बताया कि तूँ कमर से नंगा और शिर पर कपड़ा बांधे है। ऐसा सुनकर जब उसने ऊपर नीचे देखा कि मैं कमर से नंगा हूँ, शिर पर पगड़ी बांधे हूँ तो अपनी मूर्खता पर पछताया, पश्चाताप किया कि मैं कितना नितान्त मूर्ख हूँ कि अपने वस्त्र को कमर से निकालकर शिर पर बांध लिया इस कारण मुझको हंसी का पात्र बनना पड़ा। अतः मूढ़ताओं का त्याग कराया।

प्रश्न– 361–62 शंकादि परिणामों को क्या कहते हैं? क्यों कहते हैं?

उत्तर शंका कांक्षा आदि परिणामों को दोष कहते हैं इनके अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार के भेद से चार चार प्रकार के भेद होते हैं। सम्यक्त्व मोहनीय प्रकृति के उदय से अतिक्रम, व्यतिक्रम और अतिचार दोष उत्पन्न होते हैं तथा मिथ्यात्व और सम्यक्मिथ्यात्व कर्मोदय से अनाचार दोष उत्पन्न होता है। आदि के तीन दोषों से सम्यग्दर्शन किंचित् मलिन होता है तथा अनाचार दोष से सम्यग्दर्शन या रत्नत्रय पूर्ण रूप से नष्ट हो जाता है। विशेषता यह है कि जब सम्यक्त्व प्रकृति तीव्र शक्ति के साथ जब स्थिरता पूर्वक उदय में आती है तो अनाचार को उत्पन्न कर, मोक्षमार्ग को नष्ट कर मिथ्यात्व में ले आती है। जो अपना पतन नहीं चाहते हैं वे शंकादि दोषों का त्याग करें तथा जो अपना पतन करना चाहते हैं वे इन शंकादि दोषों को नहीं छोड़ें। जो उत्थान चाहते हैं, आत्मसिद्धि करना चाहते हैं वे शंकादि दोष रहित परिणामों को प्राप्त करें। कयोंकि 'संसर्गाजाः दोष गुणाः भवन्ति।' कुसंगति से दोष और सत्संगति से गुण उत्पन्न होते

है जैसे चमड़े के संसर्ग से धागा दुर्गन्धित हो जाता है तथा पुष्प के संसर्ग से सुगन्धित हो जाता है। इसी तरह यदि अपन भी दुर्जनों की संगति से शंकादि दोषों को और सज्जनों की संगति से रत्नत्रय आदि धर्मों को प्राप्त हो जाते हैं। इन शंकादि परिणामों को दोष इसलिए कहा है कि ये परिणाम अभी किंचित् मलिनता उत्पन्न करते हैं और कालान्तर में अनाचार भावों को उत्पन्न कर सम्यग्दर्शन को या रत्नत्रय को समूल नष्ट कर अनन्तसंसारी बना देते हैं।

प्रश्न– 363 शंकादि आठ दोषों का त्यागी हो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर स्थूल रूप से यदि ये शंकादि दोष विद्यमान हैं तो सम्यग्दर्शन को या रत्नत्रय को प्राप्त करने की भूमिका ही नहीं बन पाती है क्योंकि जब मिथ्यात्व का और अनन्तानुबन्धी कषाय का तीव्रोदय चल रहा है तथा उसी प्रकार के परिणाम और तदनुकूल आचरण है तो मोक्षमार्ग का अभ्यास कैसे करेगा? शाश्वत आत्मसुख के सम्मुख कैसे होगा? उपदेश कैसे सुनेगा? आज्ञा का कैसे पालन करेगा? जन्मान्ध के सामने श्रृंगार करने से क्या प्रयोजन सिद्ध होने वाला है? अत्यन्त बधिर व्यक्ति के सामने सुमधुर संगीत से क्या मतलब सिद्ध होने वाला है? अतः मोक्षमार्ग की प्राप्ति के लिए इन दोषों की तीव्रता का त्यागी हो ऐसा कहा है। तभी तो इन दोषों की तीव्रता के अभाव में रत्नत्रय धर्म को प्राप्त करने की भूमिका बनती है, तीव्रता में नहीं ऐसा कहा है।

प्रश्न– 364 शंका दोष किसे कहते हैं?

उत्तर देवशास्त्रगुरु पर, जीवादि तत्त्वों में, नव पदार्थ, छह द्रव्य और पंचास्तिकाय तथा अपनी निज आत्मा में जो अनंत गुणधर्म स्वभाव वाली है उसका या उसपर विश्वास न कर, श्रद्धा न कर डोलायमान मन होने से यह सही है या गलत, फलवाला है या नहीं आदि विचारों को शंकित दोष कहते हैं।

प्रश्न– 365 कांक्षा दोष किसे कहते हैं?

उत्तर मोक्ष के या मोक्षमार्ग के अनुकूल आचरण, ध्यानाध्ययन, तप, व्रत, संयमादि को आजीविका का साधन बनाकर, ख्याति पूजा लाभ की भावना रखकर, माला, मंच, मुकुट और कुर्सी की चाहना को कांक्षित दोष कहते हैं। आत्म तत्त्व की चाह के बिना शेष सांसारिक इस भव संबन्धी या परभवसम्बन्धी भोग सामग्री, पदादि प्राप्त करने की आकांक्षा को कांक्षित दोष कहते हैं।

प्रश्न– 366 विचिकित्सा, घृणा दोष किसे कहते हैं?

उत्तर विषयाभिलाषापूर्वक धर्माचरण से, सदाचार से, दानपूजा, व्रतउपवास, अणुव्रतमहाव्रत, मूलगुण उत्तरगुण आदि से द्वेषबुद्धि, अनुत्साह भाव होने को या अहितकारी, दुःखदायक मानकर दूर भागने को या धारण नहीं करने को विचिकित्सा दोष कहते हैं। आजकल यही कारण है कि मानव दुराचार को पालन करने में निर्भय है, समर्थ है, जागृत है किन्तु धर्माचरण में, सदाचार के पालन करने में भयभीत हैं असमर्थ, अकेलेपन का अनुभव करता है, कमजोर बनता है, पापों को छोड़ने में कम्पित होता है, अभक्ष्य भोजन के त्याग में घबराता है, त्याग करने पर भोजन के लिए क्या मिलेगा? क्या खायेंगे? सगे सम्बन्धियों के यहाँ रिश्तेदार नातेदारों के यहाँ क्या कहेंगे आदि। धर्म के प्रति घृणा भाव होने के कारण ऐसा हो रहा है। परस्पर में एक दूसरे की पीठ

पीछे बुराई बताना, निन्दा करना, सामने आने पर प्रशंसा करना, माला पहनाना, गुणगान करना आदि आचरण से नीचगोत्र कर्म का आश्रवबंध होता है तथा नीचगोत्र कर्म का आश्रव बन्ध मिथ्यात्व गुणस्थान में तथा उपशमसम्यक्त्व की अनन्तानुबन्धी कषायोदय से विराधना कर सासादन गुणस्थान को प्राप्त कर नीचगोत्र कर्म का आश्रव बंध करने लग जाता है। सूत्रकार ने कहा है– **''परात्मनिन्दा प्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य''** अ. **6सू०25 दूसरों की निन्दा करना, बुराई बताना, अपनी प्रशंसा करना, दूसरों के सद्गुणों को ढक देना उसमें ऐसा कोई सद्गुण मौजूद नहीं है कि जिससे उसकी प्रशंसा की जाय तथा अपने में गुण नहीं है फिर भी मैं गुणवाला हूँ, ज्ञानीध्यानी हूँ, तपस्वी हूँ, सरलस्वभावी हूँ। दूसरों के प्रति घृणा है तभी निन्दा की, अन्यथा बुराई क्यों बताना असत्दोष क्यों लगाना?**

प्रश्न– 367 मूढदृष्टि दोष किसे कहते हैं?

उत्तर **अविवेकता, मूर्खता को मूढदृष्टि दोष कहते हैं अथवा जो नियम जहाँ का है उसे वहाँ पर न लगाकर अन्यत्र लगा देना या अध्यात्म पद्धति को जो ध्यान का विषय है उसे चर्चा का विषय बनाना और चरणानुयोग का विषय, प्रथमानुयोग का विषय भूल जाना या प्रथमानुयोग को कथा कहानी कहकर टाल देना, चरणानुयोग को जड़ की क्रिया कहकर उपेक्षा कर देना, करणानुयोग को भूगोल, खगोल या गणित का विषय कहकर, कठिन कहकर या समझ में नहीं आता तथा अनुपयोगी बताकर उपेक्षा करना, अध्ययन नहीं करना यदि कोई पुत्र पिता को माने और पिताजी की आज्ञा का पालन न करें तो उसे पिताजी पुत्र न कहकर कुपुत्र कहते हैं, मानी/ घमंडी/ मूर्ख कहते हैं। यही बात यहाँ पर है कि जिनेन्द्र के उपदेश का एक भाग माने और शेष तीन भाग न माने तो उसे जिनेन्द्र मूर्ख ही कहेंगे, कुशिष्य ही कहेंगे। आजकल दिगम्बर जैन समाज में सत्शास्त्रों के स्वाध्याय की पद्धति प्रायः कर/ अधिकतर समाप्त हो रही है, हो गई है और जो कोई कुछ प्रवचन पुस्तकों का स्वाध्याय करते हैं तो प्रवचन की दृष्टि से, दूसरों को नीचा दिखाने की दृष्टि से, आजीविका की दृष्टि से, पूजा विधान प्रतिष्ठा आदि को धन कमाने का हेतु बनाकर प्रशंसा के लिए अध्ययन करते हैं तब उस अध्ययन से विषय कषायों की पुष्टि होती है किन्तु आत्मा की शुद्धि नहीं होती। यदि आत्मदृष्टि से अध्ययन करते तो जीवन में संयम आता विषयविरक्ति होती अतः धर्मकार्यों को जो आजीविका का साधन बनाते हैं वे मूढ हैं इसलिए उनके विचारों को, क्रियाओं को मूढ़दृष्टि कहते हैं।**

प्रश्न– 368 अनुपगूहन दोष किसे कहते हैं?

उत्तर **धर्म में या धर्मकार्य में, मोक्षमार्ग में या लोकव्यवहार में, सदाचारी या असदाचारी, समर्थ के द्वारा या असमर्थ के द्वारा, क्षायोपशमिक विशेष ज्ञानी के द्वारा या नासमझ के द्वारा उत्पन्न हुई गल्ती को, बुराई को या मोक्षमार्ग को कलंकित करने वाली चेष्टाओं के द्वारा असावधानी को, दोष को, वह दोष चाहे श्रद्धान संबंधी हो या ज्ञान सम्बन्धी हो या चारित्र सम्बन्धी हो चतुर्विध संघ की, समाज की, घर की हो या बाजार की हो उसे आम जनता के सामने या चपलमन वालों के सामने, पत्रिकाओं में, टी०वी० में प्रसारित कर देना, करा देना, खुलासा कर देने को अनुपगूहन**

सम्यग्दर्शन का दोष कहते हैं। हीन संहनन है, हीन परिणाम हैं सबसे गल्तियां होना सम्भव है संसार बुराईयों का भण्डार है। दूसरों की गल्तियों को, दूसरों के सामने प्रकट करने से क्या सुधार हो सकता है? ना, बिगाड़ ही होता है। धर्म की, समाज की बदनामी ही होती है जैसे बीमार को दवाई खिलाने से, लगाने से बीमार को लाभ हो सकता है, बीमारी दूर हो सकती है किन्तु दूसरों को दवाई खिलाने से, लगाने से बीमारी दूर नहीं होती किन्तु बढ़ती जाती है और यहाँ तक कि मृत्यु भी हो जाती है। ठीक इसी तरह इस दोष का पालन करने से देश का, समाज का सुधार नहीं हो सकता है किन्तु धर्म और धर्मायतन पतन की ओर जा रहे हैं धरातल की तरफ जा रहे हैं। यही महान हानि है।

प्रश्न— 369 अस्थितिकरण दोष किसे कहते हैं?

उत्तर जो धर्मात्मा मोक्षमार्ग से, लोक व्यवहार से हताश हो रहा हो, उभयमार्ग से पतित होकर चलायमान हो रहा हो, कर्तव्य विहीन हो रहा हो, मोक्षमार्ग को छोड़ने की आकांक्षा कर रहा हो, गलत मार्ग से जीवन व्यतीत करने की, गलत उपाय से आजीविका चला रहा हो या सोच रहा हो, धर्माचरण को पालन करने में समर्थ हो या असमर्थ हो तथा कुसंगति के कारण मार्ग से च्युत होने के सम्मुख हो तो उसे और भी अनेक हेतुओं से गिरा देने को, गिरने के सम्मुख कर देने को अस्थितिकरण दोष कहते हैं तथा आजकल भी असमर्थ साधुओं के सामने नाना प्रकार की लौकिक समस्याओं को उपस्थित कर मोक्षमार्ग से च्युत करा देने को अस्थितिकरण दोष कहते हैं। यह दोष साधु और श्रावकों के उत्पन्न होता है।

प्रश्न— 370 अवात्सल्य दोष किसे कहते हैं?

उत्तर अपने समान आचरण करने वाले ऐसे साधर्मी भाई बहनों के साथ या हीनाधिक आचरण करने वालों के साथ विसम्वाद, लड़ाई झगड़ा करना, कराना लौकिक स्वार्थ पूर्वक कपट सहित प्रेम करने को या नहीं करने को अथवा मोक्षमार्गियों के प्रति उपेक्षा भाव रखने को, विषय वासना सहित, स्वार्थ पूर्वक, ठग विद्या सहित प्रेम करने को अवात्सल्य दोष कहते हैं अथवा निष्कपट, निःस्वार्थ प्रेम न करने को अवात्सल्य दोष कहते हैं।

प्रश्न— 371 अप्रभावना दोष किसे कहते हैं?

उत्तर जिन आचार विचारों के द्वारा धर्म, धर्मायतन, धर्मात्मासमाज, देश, राजा, प्रजा बदनामी को प्राप्त हो, निन्दा हो, कलंक पैदा हो, अपवाद फैले उसे अप्रभावना दोष कहते हैं अथवा जातिकुल और धर्म, धर्म का प्रभाव लुप्त होता जाय, समाप्त हो जाये उसे अप्रभावना दोष कहते हैं अथवा मोक्षमार्ग में या समीचीन लोकव्यवहार में अविवेकता मोहान्धता, कामान्धता विकार फैल जाय सम्यक् प्रचार प्रसार रूक जाय उसे भी अप्रभावना दोष कहते हैं। देखो खरबूजे पर छुरी गिरे तो खरबूजा कटता है या छुरी पर खरबूजा गिराओ तो भी खरबूजा कटता है। ऐसे ही विषय कषायों में, अनर्गल कार्यों में, धर्मविरुद्ध कार्यों में, जाति कुल के विरुद्ध आचरण में गृहस्थ या साधू प्रवृत्ति करे तो धर्म की, धर्मात्मा समाज की निन्दा होती है, बदनाम होता है, अधःपतन की ओर जाता है और लौकिक प्राणियों के द्वारा ये अहिंसावादी जैन ऐसे ही होते हैं। आजकल जैन

समाज में आचार विचार इतना बिगड़ रहा है जैसे कृष्णपक्ष में अन्धकार वृद्धिंगत होता है अथवा साधु और श्रावकों में आचार विचार की हीनता शिथिलाचार शुक्लपक्ष में चन्द्रमा की चांदनी के समान बढ़ रहा है। आजकल अप्रभावना दोष को दूर करने के लिए प्रवचन किये जाते हैं पर कार्य अप्रभावना वाले किये जाते हैं शिथिलाचार से अप्रभावना की वृद्धि हो रही है।

प्रश्न– 372 शंकित दोष से क्या हानि है?

उत्तर लोकव्यवहार में, घर में, दुकान में, बाजार में, व्यापार में, सगे सम्बन्धियों में, साथियों में, परस्पर में किसी भी प्रकार से किसी भी प्रसंग में सन्देह शंका उत्पन्न हो जाय तब फिर उस अवस्था में कहीं पर भी मन में शान्ति नहीं मिलती, अशान्ति बढ़ती जाती है, दुःख बढ़ जाता है। इसी कारण मोक्षमार्ग में, मोक्षमार्ग के साधनों में, किसी भी प्रकार के रत्नत्रय में किसी प्रकार का सन्देह, शंका, अविश्वास उत्पन्न हो जाय तो पतन होना अवश्यंभावी है तथा चिरकाल तक नरक निगोद में जाकर निवास करना, वहाँ के सर्दी गर्मी, भूख प्यास, मारकाट, छेदन भेदन, जनम मरण के दुःख भोगने पड़ते हैं तथा यहीं पर भी कोई व्यक्ति विश्वास नहीं करता, निन्दा अपमान होता है और हीन दृष्टि से देखा जाता है। यही तो महान हानि है अतः चाहे लौकिक हो या लोकोत्तर दोनों में सन्देह होने पर आत्मा दुःखी होती है।

प्रश्न– 373 कांक्षित दोष से क्या हानि हैं?

उत्तर आकांक्षा यदि श्रद्धान के विषय में है तो सम्यग्दर्शन का दोष है, ज्ञान के सम्बन्ध में है तो ज्ञान का दोष है तथा चारित्र के संबंध में है तो चारित्र का दोष है तथा निदान आर्तध्यान और निदान शल्य है तो यहीं पर दुःखी होता है और परभव में भी दुःखी होता है। भवान्तर में नरक तिर्यंचगति के दुःख को प्राप्त करता है। मन में आकांक्षा होने से प्रत्यक्ष में यहीं दुःखी, प्रयत्न करने पर मनोनुकूल इष्ट वस्तु की प्राप्ति नहीं हुई तो दुःखी, प्राप्त होने पर भी अतृप्ति होने से दुःखी, प्राप्त होने पर भी पूर्ण रूप से तृप्ति न होने से दुःखी, शक्ति न होने से दुःखी, प्राप्त हो गई और शक्ति भी है पर बीच में रुकावट, विघ्न बाधा के होने पर आकुलता रूप दुःख, स्वास्थ्य बिगड़ गया तो दुःख, सब कुछ अनुकूलता होने पर भी बीच में कोई बाधा उत्पन्न हुई तो मन में कुटिलता, कठोरता आने के कारण दुःखी आदि कारणों से जीव दुःखी होता है। अतः कांक्षा दोष के कारण पुनः पुनः दुःख, भय, अपमान, तिरस्कार प्राप्त होता है इस कारण हानि ही हानि है और आकांक्षा के पुनः पुनः प्रकट करने पर भी प्रेम टूट जाता है।

प्रश्न– 374 विचिकित्सा दोष से क्या हानि है?

उत्तर धर्म और धर्मात्माओं में धर्मायतनों में जुगुप्सा ग्लानि होने से उनसे दूर रहेगा तथा दूर रहने से उनके गुणों की जानकारी न मिलने से गुणों की प्राप्ति नहीं होगी। पूर्व अभ्यस्थ दोषों के कारण ज्ञान न होने से दुर्गुणों का निवारण और सद्गुणों का आगमन नहीं होगा यही परम हानि है। घृणा के कारण उभयलोकों में सद्गुणों की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

प्रश्न– 375 मूढदृष्टि से क्या हानि है?

उत्तर मूर्खता पूर्वक अभिमानी, मायावी, लोभी, क्रोधी, अज्ञानी आदि दुर्गुणों के कारण सज्जनों की

सद्गुरुओं की उपेक्षाबुद्धि के कारण सही ज्ञान नहीं हो पाता है, अपात्रता बनी रहती है या गुरुजनों की उपेक्षापात्र बना रहता है। जिससे आत्म विकास रुक जाता है तथा कषाय आदि का उद्रेक होने से नरक निगोद का पात्र बनकर दीर्घ संसारी होता है यही महान हानि है।

प्रश्न— 376 अनुपगूहन दोष से क्या हानि है?

उत्तर दूसरों के दोषों को प्रकट करने से, दोषों को उद्घाटित करने से, दोषवादन करने वाले के अनेक शत्रु बन जाते हैं, हमेशा पिटने का, लुटने का, अपहरण होने का, मरने का भय बना रहता है मानसिक तनाव होने से अनेक बीमारियां भी घेर लेती हैं, छिपा छिपा रहता है, स्वास्थ्य अच्छा न होने से, तन मन धन और धर्म की उत्कृष्टता से, निर्दोषता से प्राप्ति, वृद्धि और रक्षा नहीं होती है तथा जो पास में है वह भी नष्ट हो जाता है और भी उभय लोक सम्बन्धी हानियां प्राप्त होती हैं जो प्रत्यक्ष, आगम और अनुमान से जानी जा सकती हैं।

प्रश्न— 377 अस्थितिकरण दोष से क्या हानि है?

उत्तर जो दूसरों को गिराता है वह स्वयं गिरता है, देखो मिट्टी खोदने वाला मानव सर्वप्रथम स्वयं झुकता है, गड्ढे में गिरता है बाद में मिट्टी खुदती है या न भी खुदे। दूसरा उदाहरण दूसरों को जलाने के लिए जो हाथ में अग्नि का अंगारा लेता है वह पहले स्वयं जलता है तथा बाद में सामने वाला जले या न जले यह उसका स्वयं का अपना भाग्य है। यदि तीव्र पापोदय चल रहा है या संक्रमण कर उदीरणा द्वारा उदय में आकर असावधानी है तो जल सकता है, अन्यथा नहीं। यही अस्थितिकरण दोष से हानि प्राप्त होती है।

प्रश्न— 378 अवात्सल्य दोष से क्या हानि है?

उत्तर परस्पर में प्रेम न होने से, कर्तव्य की, धर्म की हानि होती है जैसे परस्पर में झगड़ा हुआ तो कोई साथ नहीं देता है, वर्तमान में देखा जा रहा है कि लोग वैर विरोध के कारण मंदिर आना, दान देना, पूजा करना, गुरुओं की भक्ति करना, वैयावृत्य करना आदि छोड़ चुके हैं। घर का, परिवार का, सगे सम्बन्धियों का प्रेम टूट जाता है। सुख दुःख में कोई सहानुभूति देने वाला नहीं मिलता है, अनेक शत्रु बन जाते हैं, अकेलापन अनुभव में आने लगता है। कहीं बाहर गये तो घर को, दुकान को बन्द करके जाओ, साथ में परिवार को ले जाओ, दुकान, व्यापार नौकर को सौंपकर जाओ तो अनन्तगुणी चिन्ता सताने लगती है तथा परिवार को साथ में न ले गये तो घर में पत्नी, बच्चे बच्ची अकेले हैं कैसे रहते होंगे? कौन देखने वाला है? कोई घर पर चोर बदमाश न घुस जाये, दुकान से, व्यापार से नौकर रुपया सामान न ले जाये आदि नाना प्रकार के विचार उत्पन्न होते हैं तथा यदि प्रेम है तो ये विचार उत्पन्न नहीं होते हैं क्योंकि परिवार में, समाज में, मोहल्ले में एकता है, प्रेम है तो सब रक्षक बन जाते हैं। सहायक हो जाते हैं। देखो पशु पक्षी परस्पर में घनिष्ट प्रेम से रहते हैं। उनके किसी एक पर संकट आया कि वे सब एकत्रित होकर परस्पर में रक्षा कर लेते हैं किन्तु मनुष्य वैर विरोध के कारण, परस्पर में प्रीति न होने से सांसारिक सुख, इंद्रियजन्य सुख को भी नहीं भोग पाता है फिर आत्मसुख कहाँ से भोगेगा? कैसे प्राप्त कर लेगा? जब अपने परिवार में ही प्रेम वात्सल्य न होने से सुख के बदले दुःख ही प्राप्त होता है। तन मन

धन धर्म ये चारों ही नष्ट हो जाते हैं। इसके अलावा और भी अनेक हानियां परस्पर में प्रेम न होने से आती है। बहू बेटी, बच्चे बच्ची भी बिगड़ जाते हैं, चारित्रहीन बन जाते हैं। कपट प्रेम से भी अनेक दोष आते हैं जो प्रत्यक्ष में दिख रहा है, पोल खुलने पर सारा परिश्रम मिट्टी में मिल जाता है यही हानि है।

प्रश्न– 379 अप्रभावना दोष से क्या हानि है?

उत्तर मनोनुकूल या लोकानुकूल आचरण करने से थोड़ी देर के लिए इन्द्रिय सुख सामग्री की प्राप्ति हो सकती है किन्तु रहस्य के प्रकाशित होने पर विश्वास टूट जाता है, वैरी बन जाते हैं। तन मन धन धर्म भी नष्ट हो जाते हैं, फिर भी बदनामी होती है, लोक में निन्दा होती है, लोक में जिस किसी भी उपाय से विषय भोगों की सामग्री इकट्ठी कर लेते हैं किन्तु थोड़े समय के बाद में घर में कलह हो जाता है, बीमार पड़ जाते हैं, रहस्य खुल जाता है, पकड़े जाते हैं, जेल हो जाती है। सी० बी० आई० पुलिस के द्वारा जांच किये जाने पर सब गुप्त कार्य चर्चा में, प्रकाश में आने से इज्जत बिगड़ जाती है। सबके सामने नीचा देखना पड़ता है, बदनामी होती है, जनता में अविश्वास हो जाता है और जीवन में नाना प्रकार की आपत्तियां आती हैं। धर्म और समाज संकट में पड़ जाता है। इसी अप्रभावना दोष के कारण भगवान पुष्पदन्त से लेकर शान्तिनाथ तक इनके अन्तराल में धर्म के पालन करनेवालों का विच्छेद हुआ तथा अज्ञान, अहंकार, माया मिथ्यात्व का अंधकार, वैर विरोध रूप बाह्याभ्यन्तर अन्धकार के कारण इस काल में जिन धर्म की कितनी अप्रभावना हो रही है। जगह जगह धर्म और धर्मात्मा तथा त्यागीव्रती गृहस्थसमाज अपनी करनी के द्वारा बदनाम हो रहे हैं निन्दा के पात्र बन रहे हैं। रोटी बेटी बिगड़ रही है, आचार विचार हीन हो रहे हैं तथा इसी आदत से पंचमकाल का अंत होगा तथा छठवें काल में जन्म लेने के लिए यही आचरण नास्ता का काम करेगा। आगे भी पूर्व की तरह अवसर्पिणी काल का छठवाँकाल 21000 वर्ष का, उत्सर्पिणी काल का छठवाँ काल 21000 वर्ष का तथा पाँचवा काल भी 21000 वर्ष का इस प्रकार 63000 वर्षो में एक हजार वर्षों को छोड़कर शेष 62000 वर्ष तक आचरण मलेच्छों जैसा या मलेच्छ आचरण रहेगा तथा इतने समय तक मोक्षमार्गियों का भी विच्छेद रहेगा यह सब अप्रभावना का फल है किन्तु अंतिम 1000 वर्ष के अन्दर 14 कुलकर होंगे जो प्रजा को धीरे–धीरे सदाचार का, सुख के मार्ग का निर्देशन करेंगे। रत्नत्रय की प्राप्ति के लिए, जीवन सुखी बनाने के लिए शंकादि दोषों का स्थूलरूप से त्याग करना चाहिए ऐसा कहा है। इन दोषों के सद्भाव में सम्यग्दर्शन की भूमिका नहीं बन पाती तथा रत्नत्रय की और सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं हो पाती। कदाचित् सम्यग्दर्शन या रत्नत्रय मौजूद है और ये शंकादि दोष आ उपस्थित हुए तो मार्ग नष्ट हो जायेगा। समाप्त हो जायेगा। सर्वस्व का नाश होना ही महान हानि है।

प्रश्न– 380–83 अनायतन किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? क्या हानि हैं? इनका त्याग क्यों कराया?

उत्तर जिन परिणामों के माध्यम से या बाह्य साधनों के माध्यम से अपना मोक्षमार्ग नष्ट हो, समाप्त हो जाय अथवा जिन भावों या बाह्य सामग्री के सान्निध्य से रत्नत्रय उत्पन्न न हो उसे अनायतन

कहते हैं तथा मोक्ष, मोक्षमार्ग और इनके साधनों के प्रति द्वेष, अरुचि, वैर बन जाये, जिससे मोक्षमार्ग मलिन हो जाये, विरक्ति हो जाये उसे अनायतन कहते हैं। अन्तरंग अनायतन और बाह्य अनायतन ये दो भेद हैं अथवा 6 भेद हैं। नामः– कुदेव[1], कुदेव भक्त[2], कुशास्त्र[3], कुशास्त्र भक्त[4], कुगुरु[5], कुगुरुभक्त[6] ये जब तक जीवन में इनके प्रति लगाव झुकाव रहता है तब तक मोक्षमार्ग, आत्मसुखशान्ति का सही मार्ग नहीं सूझता, न प्राप्त होता है यही हानि है। इस कारण इनका त्याग कराया क्योंकि साधन के अभाव में साध्य नहीं होता है इस नियम के अनुसार यदि अपने जीवन में अनायतन सेवा, अनायतन परिणमन चल रहा है तो मोक्षमार्ग, आत्मसुख का मार्ग कैसे प्राप्त होगा? अतः आत्मसुख के मार्ग की प्राप्ति के लिए इन अनायतनों का त्याग कराया है।

प्रश्न– 384–85 अन्तरंग अनायतन किसे कहते हैं? कितने भेद हैं?

उत्तर जो स्वयं के परिणाम या साधना, अभ्यास सम्यग्दर्शन या उत्पन्न हुए मोक्षमार्ग को नष्ट कर दे उसे अन्तरंग अनायतन कहते हैं। इसका फल अधःपतन कराना, चारों गतियों में नाना दुःख प्राप्त कराना, भ्रमण कराना है। यह अंतरंग भाव अनायतन मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषायोदय से उत्पन्न होता है अथवा मिथ्यात्व कर्म और समस्त कषायों के उदय से उत्पन्न होता है इसके असंख्यात लोक प्रमाण भेद हैं क्योंकि अध्यवसायस्थान असंख्यात लोकप्रमाण आगममें बताये हैं।

प्रश्न– 386–387 बहिरंग अनायतन किसे कहते हैं? कितने भेद हैं?

उत्तर जिन बाह्य साधनों से मोक्षमार्ग में अविश्वास उत्पन्न हो जाये या सम्यग्विश्वास उत्पन्न न हो उसे बाह्य अनायतन कहते हैं। जैसे शरीर आत्मा की साधना में सहायक न हो या अपने माता पिता, पति पत्नी, पुत्र पुत्री, भाई बहिन आदि ये भले ही देवशास्त्रगुरु के भक्त हों कदाचित् व्रती महाव्रती हों तो भी ये यदि मोक्षमार्ग में बाधा उत्पन्न कर रहे हैं, बाधक हैं मोह से युक्त संयम मार्ग से च्युत कर विषय कषायों में, आरंभ परिग्रह में, संस्था आश्रमादि में फंसा रहे हैं तो इन्हें ही अनायतन कहना चाहिए कारण घर का आडंबर छोडकर जोंक की तरह बाहर का आडंबर संग्रह कर लिया तो यह कहाँ की बुद्धिमानी? क्योंकि दीपक प्रकाशित होते हुए भी दूसरे प्रकाशित होने वाले दीपकों को मना नहीं करता है। ऐसे ही ये उपरोक्त नामधारी धर्मात्मा हैं तो दूसरों के धर्ममार्ग में, कल्याण के मार्ग में, विषय कषायों को उत्पन्न कर मोक्ष में, मोक्षमार्ग में बाधा उत्पन्न कर पतित क्यों करते हैं? पतन क्यों कराते हैं? केवल बाह्य में ही जिनेन्द्र के भक्त हैं अंतरंग से नहीं। यदि ये वास्तविक जिनेन्द्र भक्त हैं तो इन्हें दूसरों के मोक्षमार्ग में, आत्मसाधना में बाधक नहीं बनना चाहिए। रिश्तेदार, नातेदार, सगे संबंधी और भी समाज के भाई बन्धु, मित्रमण्डली भी मोक्षमार्ग में, आत्मसाधना में बाधा उत्पन्न करें, नष्ट करने लगें तो इन्हें बाह्य अनायतन कहते हैं।

प्रश्न– 388 कुदेव अनायतन किसे कहते हैं?

उत्तर वीतराग, सर्वज्ञ और हितोपदेशी स्वरूप आप्त देव से तथा देवगति के देवों से विपरीत लक्षण वाले ऐसे मनुष्यगति के राजा महाराजाओं को समाज ने अपना प्रजापालक, रक्षक, प्रभु, ईश्वर, स्वामी, मालिक, नाथ आदि कहकर गुणगान किया स्तुति की कु–पृथ्वी। देव– पृथ्वी के देव अर्थात् कुदेव। अपने आपको अकर्मण्य मानकर तथा राजाओं को प्रत्येक कार्य में समर्थ हैं इस प्रकार

मानकर जब सामान्य प्रजा ने परावलम्बी जीवन बना लिया तब दिगम्बराचार्यों ने स्वावलम्बी जीवन बनाने के लिए राजा महाराजाओं को कुदेव कहकर तथा इनकी पूजा आराधना मोक्षफल को देने वाली नहीं है यह आराधना लोकाराधना है, संसार फल को देने वाली है ऐसा कहा है। इस कारण रागी द्वेषी मोही होने के कारण राजा महाराजा ही कुदेव और इनकी आराधना कुदेव पूजन आराधना। जिस प्रकार सुदेव, सुशास्त्र, सद्गुरु और इनके भक्त मनुष्यगति में होने से छहों आयतन मनुष्यों में ही होते हैं उसी तरह मनुष्यगति में ही छहों अनायतन होना चाहिए। ऐसा न्याय नहीं है कि 5 अनायतन मनुष्यगति में और एक अनायतन देवगति में क्योंकि जहाँ पक्ष है वहीं सपक्ष और विपक्ष होना चाहिए, अन्यत्र नहीं। कारण बिना विपक्ष के सपक्ष की सिद्धि नहीं हो सकती। इसका विशेष वर्णन सुरक्षाचक्र ज्ञानवर्धिनी प्रश्नोत्तरी टीका छहढाला पं० दौलतरामजी कृत दूसरी ढाल पद्य संख्या 10 प्रश्न– 29–93 तक देखना चाहिए।

प्रश्न– 389 ये कुदेव हैं यह कैसे पहचान हो?

उत्तर **जो मूर्ति राजा की रानी सहित विकार युक्त शृंगार अलंकार वस्त्र, शस्त्र, वाहन आदि सहित हैं, मलिन दर्पण के समान जिनकी दिनचर्या है उसे कुदेव समझो। वर्तमानकाल में केवल सुदेव नहीं है किन्तु इनका प्रतिबिंब है शेष 5 आयतन प्रत्यक्ष है, मौजूद हैं किन्तु 6 अनायतन वर्तमानकाल में मौजूद हैं अर्थात् राजनेतागण कुदेवों के स्थान स्वरूप मौजूद हैं तथा पुराने कुदेवों की, राजाओं की मूर्तियां है, मंदिर हैं, इनके भक्त भी हैं।**

प्रश्न– 390 कुदेव भक्त अनायतन किसे कहते हैं?

उत्तर **राजा महाराजाओं के भक्त, मंत्रीगण, गृहस्थ सभासद, नगरनिवासी जो विवेकहीन नयविवक्षा से अनभिज्ञ हैं उन राजनेताओं के सेवकों को कुदेव भक्त कहते हैं। उन राजनेताओं को तथा उनके भक्तों को केवल राजा, राजनेता तथा राजकर्मचारी मानकर आदर सम्मान करें तो कोई दोष नहीं है किन्तु पूज्य आराध्य देव भगवान मानकर आदर सम्मान करें तो महान हानि है अर्थात् राजा महाराजा आदि के भक्तों को, सेवकों को कुदेव भक्त कहते हैं।**

प्रश्न– 391–392 कुशास्त्र अनायतन किसे कहते हैं? इनकी मान्यता से क्या हानि?

उत्तर **'रागद्वेष मोहाक्रांत पुरुषवचनाज्जातमागमाभासम्।' परी० 51। रागी द्वेषी, मोही, अल्पज्ञ, विषयकषायी, विषयलम्पटी राजा महाराजाओं ने जो प्रजापालन के लिए नीतिनियम बनाये या बताये तथा प्रजा सुख शान्ति से रहे न्यायनीति से धनोपार्जन करने के उपाय को बताने वाले लिपिबद्ध पत्रों को, पुस्तकों को तथा पूर्वापर प्रत्यक्ष और अनुमान से विरोध आने वाले या किसी भी प्रकार से विरोध युक्त शास्त्रों को ही शास्त्राभास या मिथ्याशास्त्र कहते हैं। इनके अध्ययन से मिथ्याज्ञान की, विषय कषायों की, नाना विकारों की उत्पत्ति होती है। यही महान हानि है अथवा शान्तरस को छोड़कर विकारों के उत्पादक ऐसे शेष 8 रसों का वर्णन करने वाले शास्त्रों को कुशास्त्र कहते हैं मिथ्याशास्त्र कहते हैं।**

प्रश्न– 393 लौकिक पत्रिकायें लौकिक शिक्षा के ग्रन्थ पुस्तकें कुशास्त्र हैं या नहीं?

उत्तर **लौकिक पत्र पत्रिकायें, आजीविका सम्बन्धी पुस्तकें ये केवल लौकिक हैं आजीविका सम्बन्धी हैं,**

ये अनुभयवचन है, असत्यमृषा वचन है, न सम्यक् हैं न मिथ्या, न आयतन हैं न अनायतन। हाँ उद्देश्य के अनुसार यदि धर्म से सम्बन्ध जोड़ा जाय तो अवश्य ही कुशास्त्र कहलायेंगे। अपना हेतु किस प्रकार का है वही नाम उन ग्रन्थों का होगा यदि अन्तरंग हेतु समीचीन है तो दुर्गुणों में भी सद्गुण खोज लिए जाते हैं तथा हेतु गलत है तो गुणों में भी दोष या गुणों को ही दोष मान लिया जाता हैं। जैसे निस्सार, नीरस सुखी घासपत्ती को खाकर बकरी, गाय, भैंसादि दूध देते हैं और मिष्ठान्न, पक्वान्न खाकर भी मनुष्य मलमूत्र देता है जो देखने के, सुनने के अयोग्य हो जाता है। इस कारण लौकिक पत्रिकायें, पुस्तकें लौकिक ही है, सम्यक् मिथ्या नहीं।

प्रश्न— 394 कुशास्त्रभक्त अनायतन किसे कहते हैं?

उत्तर मिथ्याशास्त्रों को धर्मशास्त्र मानकर, शान्तरस के कथन को छोड़कर शेष आठ रसों का वर्णन करने वाले शास्त्रों को शाश्वत आत्मसुख का साधन मानकर आदर विनय करने वालों को कुशास्त्रभक्त अनायतन कहते हैं।

प्रश्न— 395 कुगुरु अनायतन किसे कहते हैं?

उत्तर समीचीन गुरु के लक्षण के विरुद्ध लक्षण वाले को कुगुरु कहते हैं, नाना प्रकार के भेष बनाने वाले धूम्रपान, नशा करने वाले, शराबी, गांजा, भांग, चरस पीने वाले, खेती व्यापार करने वाले तथा अपने को धर्मगुरु मानने वाले, मनवाने वाले मनुष्यों को कुगुरु अनायतन कहते हैं जैसे जटाधारी, चमीटाधारी, विकार युक्त लिंगधारण करने वाले आदि नाना वस्त्रधारी साधुओं को कुगुरु कहते हैं।

प्रश्न— 396 कुगुरुभक्त अनायतन किसे कहते हैं?

उत्तर यथार्थ में पूर्णरूप से निर्दोष मोक्षमार्ग के विरुद्ध पदवीधारी कुगुरु की भक्ति करने वाले उक्त कार्यों में सहायक बनने वाले, नशा से युक्त झूमने वाले या बिना नशा के भक्ति करनेवाले, लौकिक भेष धारी साधुओं को सच्चा समीचीन गुरु मानकर भक्ति करने वाले, आदर सम्मान, भक्ति पूजा आरती आदि करने वाले को कुगुरु भक्त अनायतन कहते हैं। इस प्रकार ये 6 अनायतन हैं, जो इनके साथ सम्पर्क बनाते हैं, रखते हैं वे अविवेकी होने से, सम्यक् मिथ्या का ज्ञान न होने से, तीव्र कषाय की प्रवृत्ति होने से, मनोनुकूल पूर्वापर के विवेक से रहित इच्छानुसार पक्षपाती होना यही हानि है। इन आचार विचारों से सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने की भूमिका नहीं बन पाती। इन अनायतनों की सेवा करने से उभयलोक में नाना कष्ट भोगने पड़ते हैं, कुयोनियों में जन्ममरण के दुःख प्राप्त होते हैं यही सबसे बड़ी हानि है। इन हानियों से बचने के लिए अनायतनों की सेवा भक्ति का त्याग करना चाहिए। जैसे आपको दूध का स्वाद लेना है तो सर्वप्रथम दन्तमंजन करने के बाद दूध पीने से दूध का स्वाद आता है। दातौन किये बिना दूध पीने से दूध का स्वाद नहीं आता क्योंकि मुख मलिन है। ऐसे ही अपने जीवन में अनायतन सेवा का त्याग करने से रत्नत्रय का आनन्द आयेगा अन्यथा नहीं अतः बाधक कारणों के अभाव में तथा अनुकूल साधन के सद्भाव में ही यथार्थ कार्य की सिद्धि होती हैं ऐसा सभी लौकिक या लोकोत्तर न्यायाचार्यों ने एक स्वर से स्वीकार किया है। कहा भी है—

''यथास्मिन् प्राणिनि व्याधि विशेषोऽस्ति निरामय चेष्टानुपलब्धेः।'' 18 सू.

तीसरा परि. परि. मु.।

इस प्राणी में कोई रोग विशेष है क्योंकि निरोग चेष्टा की उपलब्धि नहीं हो रही है अर्थात् इस मनुष्य के अनायतन सेवारूप व्याधि विशेष है क्योंकि सम्यक्रत्नत्रयरूपी निरोग चेष्टा रूप परिणाम नहीं पाये जाते यह विरुद्ध कार्यानुपलब्धि हेतु है।

प्रश्न– 397–99 अनुप्रेक्षा किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन–कौन हैं?

उत्तर संसार शरीर भोगों के स्वरूप का पुनः पुनः बार बार उत्कृष्टतापूर्वक चिन्तन करने को अनुप्रेक्षा कहते हैं। 12 भेद हैं। नामः– 1 अनित्यभावना 2 अशरणभावना 3 संसार भावना 4 एकत्वभावना 5 अन्यत्वभावना 6 अशुचित्वभावना 7 आश्रवभावना 8 संवरभावना 9 निर्जराभावना 10 लोकभावना 11 बोधिदुर्लभभावना 12 धर्मभावना। रत्नत्रय पूर्वक चिंतन करने को अनुप्रेक्षा स्वाध्याय कहते हैं।

प्रश्न– 400 अनित्य भावना किसे कहते हैं?

उत्तर इस लोक में जितने इंद्रियगोचर या अगोचर चराचर पदार्थ हैं, बादर सूक्ष्म पदार्थ हैं, शारीरिक बाल यौवनावस्थायें और चेतन अचेतन भोग सामग्री आदि ये सब अस्थिर हैं, परिवर्तनशील हैं, नाशवान हैं, इन्द्रधनुष के समान, बिजली की चमक के समान, पर्वतीय नदी के समान, हाथी के कान के समान चलायमान हैं। ये परिवार के सदस्य धन वैभव, यौवन, क्षायोपशमिक ज्ञानशक्त्यादि अन्त सहित हैं, कर्माधीन हैं, थोड़े समय तक साथ में रहने वाले हैं जैसे अंजुली का पानी या गर्म तवे पर डाला गया पानी शीघ्र ही नष्ट हो जाता है, सूख जाता है, इस अनित्यभावना का चिन्तन करने से आत्म भिन्न पदार्थों में राग द्वेष आदि विकार उत्पन्न नहीं होता है। विरागी सोचता है कि मैं किस पर प्रेम करूं और किस पर द्वेष करूं। भूतकाल में जितने भी मोक्ष गये हैं उन्होंने सर्वप्रथम वैराग्य प्राप्त करने के लिए अनित्यभावना का ही चिन्तन किया था तभी तो जंगल का मार्ग पकड़ा और संयम की साधना की बाद में मोक्ष प्राप्त किया यदि अचरम शरीरी थे तो वे भविष्य में मोक्ष प्राप्त करेंगे किन्तु आजकल साधु और श्रावक दोनों इस भावना का चिन्तन नहीं करते हैं इसलिए वैराग्य उत्पन्न नहीं होता है और जो कुछ वैराग्य जिसके पास है वह भी नष्ट हो जाता है। पतन कर पुनः विषय भोगों में लगकर रमणकर अधोगामी हो जाता है। अतः जो विषयविकार को दूर करते हैं उनकी अनित्यभावना का चिन्तन सार्थक है, अनित्य भावना सार्थक है, शेष निरर्थक है व्यर्थ है।

प्रश्न– 401 अनित्यभावना का चिन्तन करने से क्या लाभ है?

उत्तर अनित्यभावना का चिन्तन करने से किसी भी लौकिक पदार्थों में, विषय भोगों की सामग्री में, उनके संयोग वियोग में, हर्ष विषाद उत्पन्न न होने से आर्तध्यान और रौद्रध्यान उत्पन्न नहीं हो पाता है। न परपदार्थों के प्रति आसक्ति भाव उत्पन्न होता है, न विषय भोगों और शरीर के प्रति रागद्वेष मोह उत्पन्न होता है तथा जो इसका चिंतन नहीं करते हैं वे संसार में फसे रहते हैं।

प्रश्न– 402–03 अशरण भावना किसे कहते हैं? इस भावना के चिन्तन से क्या लाभ प्राप्त होता है?

उत्तर इस परिवर्तनशील संसार में अनादिकाल से अबतक और अब से अनन्तकाल तक लौकिक पदार्थ,

व्यक्ति, राजा महाराजा, नारायण प्रतिनारायण, चक्रवर्ती इन्द्र आदि लोक प्रसिद्ध समर्थ है फिर भी कर्मों के आधीन होकर जनम मरण के दुःख भोग रहे हैं, इनको बचाने वाला कोई भी व्यक्ति उत्पन्न नहीं हुआ है, जो मृत्यु से बचा सके। जब ऐसे समर्थवानों की कोई रक्षा नहीं कर सकता है तो ये किसकी रक्षा कर सकते हैं। जो स्वयं अरक्षक हैं वे दूसरों की क्या रक्षा कर सकते हैं? अतः संसार में प्रत्येक प्राणी अरक्षक हैं। अपने[2] कर्मानुसार चतुर्गतिरूप संसार में असहाय होकर भ्रमण कर रहे हैं। इस भावना के चिन्तन करने से प्राणी अपने आप में कमजोरपने का अनुभव नहीं करता तथा परपदार्थों के प्रति मोहादि विकारों को प्राप्त नहीं होता यही लाभ है।

प्रश्न– 404 अशरणभावना का चिन्तन करने से क्या हानि है?

उत्तर इस भावना का चिन्तन करते समय जब कोई किसी का शरण नहीं है, कोई मेरा सहायक नहीं है तो मैं भी किसी का सहायक नहीं हूँ इस प्रकार चिंतन करने से हीनपने की, कमजोरी की, दीनता आदि की हानी होती है क्योंकि कायरता पूर्वक हीनता के लिए अशरण भावना का चिन्तन करना कि मैं क्या करूं, असमर्थ हूँ मोही प्राणी सांसारिक विषय भोगों के कार्य के लिए ऐसा चिन्तन नहीं करता है वहाँ तो बड़ी वीरता के साथ, कर्मठता पूर्वक रात्रिदिन भरपूर परिश्रम करता है उसमें बहाना नहीं बनाता है। तभी तो सुख शांति की प्राप्ति के लिए नाना प्रकार के परिश्रम करता हुआ भी दुःखी का दुःखी है अतः उत्कृष्ट पुरुषार्थी बनने के लिए अशरण भावना का चिन्तन करना हानिकारक नहीं है किन्तु महानता है, उत्कृष्टता है।

प्रश्न– 405 जब कोई किसी का शरण नहीं है तो चत्तारिशरणं पव्वज्जामि ऐसा क्यों कहा जाता है?

उत्तर इस परिवर्तनशील संसार में कोई किसी का शरण नहीं है ऐसा जो कहा जाता है इसका मतलब है कि संसार में प्रत्येक प्राणी स्वार्थी है और स्वार्थ के कारण अपनी स्वाधीनता को, अपने सत्कर्तव्य को भूलकर यहाँ वहाँ की शरण की चाह में घूम रहा है। जैसे जिस व्यक्ति के दोनों पैर टूटे हैं वह कैसे दूसरों को लेकर पर्वत पर चढ़ सकता है ऐसे ही जो स्वयं अशरण है शरण देख रहा है वह क्या शरण दे सकता है? नहीं दे सकता है किन्तु 'चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि' इस मंगलपाठ में उपकार मानकर पंचपरमेष्ठियों को शरण कहा है कि इन्होंने स्वाधीनता का मार्ग अपनाया है, प्राप्त किया है मोक्षमार्ग बताया, वस्तु स्वरूप का दर्शन कराया, ज्ञान कराया, निर्भय होने का मार्ग बताया है, अपनी आत्मशक्ति का परिचय कराया अतः इनका उपकार मान कर कृतघ्नी न बनने के लिए कहा कि ये शरण हैं इनकी शरण को प्राप्त हो फिर भी ये मृत्यु से नहीं बचा सकते किन्तु मरण के समय जो हाय हाय होती है, वेदना होती है उस वेदना के समय अपना उपयोग शरीर से हटाकर आत्मस्वभाव में या अन्य कहीं पर स्थिर हो। किन्हीं तत्त्वों में, द्रव्यों में, क्षेत्रों में, यात्रा में, पूजापाठ में, सत्कार्यों में मन लगाने से कष्ट का अनुभव नहीं होता है क्योंकि मृत्यु दो प्रकार की होती है। 1. आयुकर्म के उदय क्षय से 2. आयुकर्म की उदीरणा क्षय से। आयुकर्म के उदय

क्षय को टालने में कोई समर्थ नहीं है किंतु उदीरणा से क्षय होने वाली अवस्था को टालने के लिए नाना प्रकार की औषधियां, मंत्रतंत्रादि उपाय हैं जिनके द्वारा प्राणी मरण के समय उत्पन्न होने वाले कष्टों से बचकर, शांतिपूर्वक मरण कर सके अतः उदीरणा टाली जा सकती है।

प्रश्न– 406–07 संसार भावना किसे कहते हैं? इसके चिन्तन से क्या लाभ है?

उत्तर जीव और पुद्गलों की मिश्र रूप अशुद्धावस्था को संसार कहते हैं। इस चतुर्गतिरूप संसार में प्राणी मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषायरूपी असंयम के द्वारा नाना तरह के कर्मों को बांधकर कभी नरक में, कभी तिर्यंचों में, कभी मनुष्यों में, कभी देवों में दुःख भोगते हैं। शरीर से संबंध रखने वाले मन से, वचन से, काय से, क्षेत्र से, काल से, आगन्तुक से, वातपित्तकफ के विकार से उत्पन्न दुःख को भोगते हैं। चारों गतियों में भ्रमण के कारणभूत परिणामों का तथा संसार के स्वरूप का चिन्तन करने को संसारभावना कहते हैं। जैसे वृक्ष से टूटा हुआ पत्ता या धागे से अलग हुई पतंग हवा के झकोरों से उड़ती फिरती है वैसे ही यह प्राणी कर्मरूपी हवा के झकोरों से ताड़ित हुआ भटकता फिरता है। इसलिए इस दुःखमय संसार से भयभीत होने के लिए, वैराग्य प्राप्त करने के लिये, मिथ्यात्व और विषय कषाय रूप असंयम के फल का निरन्तर चिन्तन करने को संसारभावना कहते हैं तथा इस संसार में राग द्वेष मोह उत्पन्न नहीं होना और अपने आपमें संयमित होना ही लाभ है। आत्मसंयम प्राप्त हो जाय इससे बड़ा और कौनसा लाभ चाहिए?

प्रश्न– 408–10 एकत्व भावना किसे कहते हैं? इसके चिन्तन से क्या लाभ है? क्या हानि है?

उत्तर अपनी आत्मा को ऊपर उठाने के लिए, कर्मठता के लिए, हताश नहीं होने के लिए, प्रत्येक प्राणी अपने अपने कर्म का फल भोगते हैं। मैं पर के मोह में फंसकर अपना पतन क्यों कर रहा हूँ? व्यर्थ में विकार को क्यों प्राप्त होता हूँ? मेरे में जो यह दुःख की अवस्था उपसर्ग परीषह उत्पन्न हुआ है यह सब पूर्वकृत अपराध का फल है अब पुनः विकार को प्राप्त हुआ तो नवीन कर्म का बन्ध होगा, वह उदय में आकर पुनः विकार पैदा करायेगा। अतः मैं स्वयं अपने आप में पूर्ण समर्थ हूँ, कर्मों को क्षय करने में अकेला ही पर्याप्त हूँ। ऐसे चिन्तन को एकत्वभावना कहते हैं। इसका चिन्तन करने से अपने उपयोग में दृढ़ता आती है, ध्यानाध्ययन में, उपसर्ग परीषह को जीतने में मजबूती आती है यही महान लाभ है तथा एकत्वभावना का चिन्तन न करने से इसलोक और परलोक संबंधी दुःख ही दुःख प्राप्त होते हैं, परावलम्बी जीवन बन जाता है। परावलम्बी जीवन कोई जीवन है? पशुवत् जीवन है, मोक्षमार्ग नष्ट होता है, संसारमार्ग की वृद्धि होती है, हीन पुरुषार्थी होने से सबकी निगाहों में हीन होकर नीचगोत्री बन जाता है। यही हानि है।

प्रश्न– 411–13 अन्यत्वभावना किसे कहते हैं? क्या लाभ है? क्या हानि है?

उत्तर निषेधरूप में परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभाव से भिन्न स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव को अलग अलग कर पृथक् कर चिन्तन करने को अन्यत्वभावना कहते हैं जैसे आत्मा और शरीर कथंचित् दूधपानी की तरह अथवा दूध शक्कर की तरह एकक्षेत्रावगाही होकर निवास कर रहे हैं फिर भी लक्षण भेद से भिन्न भिन्न हैं। भेद विज्ञान पूर्वक निश्चल आत्मध्यान के द्वारा अलग कर

लिए जाते हैं। अतः अन्यत्व भावना का चिन्तन करने से पर पदार्थों के प्रति किसी भी प्रकार से राग द्वेष मोह, विषय विकार ही उत्पन्न नहीं होता है तब आत्मा आत्मा में रममाण होकर तद्रूप में आत्मसिद्धि कर लेता है इस प्रकार चिन्तन करते करते स्थिरता आने से केवलज्ञान भी प्राप्त कर लेता है यही महान लाभ है। इस भावना का यथार्थ रूप में चिन्तन न करने से राग, द्वेष, मोह, विषयविकार, विषयकषाय उत्पन्न कर तद्रूप परिणमन कर अनन्त संसारी होता हुआ नाना प्रकार की मलिनावस्था को प्राप्त होता है यही महान हानि है।

प्रश्न— 414 एकत्वभावना और अन्यत्वभावना में क्या अन्तर है?

उत्तर एकत्व भावना विधि रूप है कि मेरा यह स्वभाव है, स्वद्रव्य का निज स्वभाव है तथा अन्यत्वभावना निषेधरूप है कि मेरा यह स्वभाव नहीं है क्योंकि परद्रव्य का परस्वभाव है यही अन्तर है।

प्रश्न— 415—17 अशुचिभावना किसे कहते हैं? इसके चिन्तन से क्या लाभ है? क्या हानि है?

उत्तर यह शरीर माता के रज रक्त और पिता के शुक्रवीर्य के मिश्रण से घृणित धातु और उपधातुओं के स्वरूप औदारिक शरीर उत्पन्न होता है, इसीसे पुष्ट होता है, इसीसे वृद्धि को प्राप्त होता है, इन्हीं को निकालता है, संसार में जितने घृणित पदार्थ हैं वे सबके सब इस शरीर में भरे हुए हैं। यह शरीर इतना अपवित्र है कि संसार में जितने पुष्पमाला, सेंट, चन्दन, तेल घी आदि पदार्थ शुद्ध माने जाते हैं वे भी सभी पदार्थ शरीर के सम्पर्क से अपवित्र हो जाते हैं, अग्राह्य हो जाते हैं, कोई कितना ही निकट सम्बन्धी हो पर थोड़ा सा भी विवेकवान हो तो वह भी दूसरे के शरीर से संबंध को प्राप्त हुई सामग्री निकालकर, छुटाकर उपयोग में नहीं लाता है यह शरीर इतना अपवित्र है कि मिष्ठान्न पक्वान्नादि पदार्थ देखने, सुनने, सूंघने, स्पर्श और चखने में अच्छे लगने पर भी शरीर से सम्पर्क होकर या होने के कारण कोई सज्जन खाता नहीं उपयोग में लाता नहीं। इस शरीर के ऊपर मक्खी के पंख के समान चमड़ी नहीं होती तो देखते देखते पक्षी खा लेते। यह शरीर स्वभाव से अपवित्र, घृणित होने के कारण पवित्र वस्तुओं को भी अपवित्र बना देता है। शरीर नाना रोगों का पिटारा है इस शरीर से मलमूत्र रक्त पीव आदि धातुयें ज्यादा निकल जायें तो भी बीमारी और निकलना बन्द हो जाय तो बीमारी। शरीर से प्रेम करना मलमूत्र से प्रेम करना है और शरीर को सजाना मलमूत्र को सजाना है, शरीर को पुष्ट करना, शृंगारादि करना मलमूत्रादि को पुष्ट करना, शृंगारित करना है प्रकारान्तर से देखा जाये तो मलेच्छपना है क्योंकि धर्म और धर्मसंबंधी कार्यों से भ्रष्ट होना या पालन नहीं करना मलेच्छपना ही है।

प्रश्न— 418 मनुष्यों के शरीर की उत्पत्ति किस क्रम से होती है?

उत्तर गर्भ थैली में स्थित रज और वीर्य रूप बीज दस दिन तक कलल रूप में (तांबा और चांदी को गर्मकर पानी बनाकर मिला देने से जो गीली अवस्था होती है वही अवस्था रजो वीर्य की होती है) फिर 10 दिन तक कालिमा रूप होता है। फिर 10 दिन तक स्थिर रहता है इस प्रकार ये तीन अवस्थायें प्रथम मास में होती है। दूसरे मास में स्थिर रहता है इसमें शक्कर की चासनी के बिलबुले की तरह दशा होती है। तीसरे मास में घन रूप कठोर हो जाता है। चौथे मास में मांस

के पिण्ड या अण्डे जैसे आकार में होता है। पाँचवें मास में उस मांस पिण्ड से दो हाथ, दो पैर और एक शिर के रूप में पाँच अंकुर निकलते हैं। छठवें मास में उस बालक के अंग और उपांगों की रचना होती है। सातवें मास में उस गर्भस्थ पिण्ड पर चर्म नख और रोम बनते हैं। आठवें मास में हलन चलन होने लगता है। नौवें अथवा दसवें मास में जन्म लेता है। आमाशय के नीचे और पक्वाशय के ऊपर इन दोनों अशुचि स्थानों के मध्य में गर्भाशय होता है। उसमें वस्तिपटल से वेष्टित होकर बच्चा सात, नौ अथवा दस मास तक रहकर जन्म ग्रहण करता है।

प्रश्न– 419 आमाशय किसे कहते हैं?

उत्तर ग्रहण किया गया, खाया गया भोजन उदराग्नि के द्वारा जो पचता नहीं है उसे आम कहते हैं और उसके स्थान को आमाशय कहते हैं। यहाँ भोजन पचने के सम्मुख होता है।

प्रश्न– 420 पक्वाशय किसे कहते हैं?

उत्तर ग्रहण किया गया, खाया गया भोजन उदराग्नि के द्वारा जो पाचन किया जाय उसे पक्व कहते हैं और उसके स्थान को पक्वाशय कहते हैं। यहाँ उदराग्नि होने से भोजन पचता है।

प्रश्न– 421–22 वस्तिपटल जरायु किसे कहते हैं? किससे पुष्ट होता है?

उत्तर रक्त और मांस के जाल को वस्तिपटल कहते हैं। वस्तिपटल में गर्भस्थ बालक चारों ओर से वेष्टित रहता है, माता के द्वारा खाये गये आहार से तैयार हुए रस रूपी वमन से पुष्ट होता है।

प्रश्न– 423 गर्भस्थ बालक किस प्रकार से आहार को ग्रहणकर पुष्ट होता है?

उत्तर गर्भस्थ बालक नाभिनालिका के उत्पन्न होने से पहले पूर्ण चौथे मास तक किया गया आहार मुख नालिका से और सर्वांग से वात पित्त कफ आदि से मिश्रित भोजनपान को ग्रहण कर पुष्ट होता है तथा नाभिनालिका के उत्पन्न होने पर उस नाभिनालिका के द्वारा मिश्रित आहार से पुष्ट होता है। इस प्रकार समझना चाहिए।

प्रश्न– 424 गर्भस्थ बालक किस प्रकार के आहार को कैसे सर्वांग से ग्रहण करता है और दुःख भोगता है?

उत्तर जैसे शिवपिण्ड के ऊपर रखे हुए घड़े से बूंद बूंद टपकते हुए पानी को ग्रहण गीला रहता है वैसे ही गर्भस्थ बालक जैसा जैसा माता खट्टा मीठा, चटपटा चरपरा, कड़ुवा, गर्म ठण्डा खाती है वैसा ही रस तैयार होकर क्षार सहित या क्षार रहित भोजन को ग्रहण करता है। छटपटाता है, तड़फता है यहाँ तक कि गर्भपात भी हो जाता है। ऐसे दुःखों को भोगता हैं।

प्रश्न– 425–27 आश्रवभावना किसे कहते हैं? चिन्तन से लाभ और हानि क्या है?

उत्तर यह संसारी विकारी आत्मा मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योगों के द्वारा प्रतिक्षण परिणमन कर सिद्धों के अनंतवें भाग और अभव्य जीवों से अनंतगुणे कर्मों को आकर्षित करता और बांधता है जिससे पुनः पुनः चतुर्गति रूप पंचपरिवर्तन स्वभाव वाले संसार में भ्रमण करता रहता है और नाना तरह के दुःख भोगता है जैसे नदी में, समुद्र में नाव नाना छिद्रों सहित होने से पानी अन्दर आता है और भर जाता है तथा पानी का भार होने से जलाशय में डूब जाती है

अथवा छिद्र सहित खिड़की होने से या खिड़की खुली होने से कमरे के अन्दर धूल, धूप, हवा, पानी, धुआं, प्रकाश आदि आते हैं, आ जाते हैं, भर जाते हैं ऐसे ही आत्मा अनन्त कर्मों से बंधती है और संसार में भ्रमण करती है। आत्मा अपने विकारी भावों के द्वारा अशुचि अपवित्र अवस्था को प्राप्त हो जाता है। इस आश्रवभावना के चिन्तन से विरक्त हुए तो लाभ है आत्मशुद्धि होती है तथा इन भावों से परिणमन करने पर भवभवान्तर के लिए दुःख की प्राप्ति होती है अनन्तकाल तक नरक निगोद के दुःख प्राप्त होते हैं। यही महान हानि प्राप्त होती है।

प्रश्न– 428–29 संवर भावना किसे कहते हैं? इसके चिन्तन से क्या लाभ है?

उत्तर जिस प्रकार खिड़की के बन्द कर देने पर या छिद्रों के बन्द कर देने पर बाहर से पानी आदि कोई भी सामग्री अन्दर नहीं आ पाती है जिससे कमरा साफ स्वच्छ बना रहता है। उसी प्रकार आत्मा के विकारीभाव, विषयकषायों के भाव, शृंगारालंकार के भाव, आरम्भ परिग्रह के भाव, ख्याति पूजा लाभ के भाव जैसे जैसे रोकते जाते हैं, घटते जाते हैं या पुरुषार्थ पूर्वक परिणाम रोक दिये जाते हैं जिससे कर्मों का आना रुक जाता है इसी का नाम कर्मों का संवर है। इससे नवीन कर्मों का संवर होता है, कर्मों का बोझा हल्का हो जाता है। स्वयं में विषय कषायों की प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है, आत्म परिणाम निर्मल हो जाते हैं, आत्मानंद में वृद्धि होने लगती है, भविष्य भी सुधरने लगता है, यह अत्युत्तम लाभ है।

प्रश्न– 430–431 संवर किन परिणामों से होता है? वे परिणाम कौन कौन हैं?

उत्तर रत्नत्रय से नवीन कर्मों का संवर होता है तथा अहिंसादि 5 व्रत, ईर्यासमिति आदि 5 समिति, मनोगुप्ति, वचन गुप्ति और कायगुप्ति ये तीन गुप्ति, उत्तम क्षमादि 10 धर्म, 12 अनुप्रेक्षायें, 22 परीषह जीतना, सामायिकादि 5 चारित्र, 12 तप, अप्रमत्तभाव, अकषायभाव आदि भावों से संवर होता है तथा इन्हीं परिणामों से पूर्व संस्कारों के नष्ट होने पर निर्जरा भी होती है।

प्रश्न– 432–34 निर्जरा भावना किसे कहते हैं? इससे क्या लाभ होता है? क्या हानि होती है?

उत्तर जिस प्रकार अपने घर में कमरे के कचरे को इकट्ठा कर बाहर फेंकने से घर शुद्ध हो जाता है, सफाई हो जाती है, डांस, मच्छर, कीड़े, मकोड़े नहीं रहते। उसी प्रकार अपनी सम्यक्साधना के बल से अनादिकालीन विचार, विकार नष्ट हो जाते हैं, पूर्व संस्कार बदल जाते हैं, कर्म भी बिना फल दिये असमय में नष्ट हो जाते हैं। कर्मोदयानुसार उपयोग का परिणमन ना कराकर अन्यत्र उपयोग को केंद्रित करने से कर्म बिना फल दिये नष्ट हो जाते हैं। इस भावना का चिन्तन करने से पूर्व बद्धकर्म पूर्वाभ्यास संस्कार, आदतें नष्ट हो जाती हैं। नवीन संस्कार चैतन्य विकार उत्पन्न नहीं होते हैं, संवर होता है अतः आत्मस्वरूप की प्राप्ति ही महान लाभ है और कर्मों की हानि ही महान हानि है। अतः निर्जरा भावना का सतत चिंतन, मनन, परिणमन करना चाहिये।

प्रश्न– 435 किन परिणामों से निर्जरा होती है?

उत्तर आश्रवभावों के विरुद्ध स्वभाव वाले परिणामों से संवर होता है और जिन परिणामों से संवर होता है उन्हीं परिणामों से निर्जरा होती है। कहा भी है "तपसा निर्जरा च" त.सू. "जेण हवे

संवरणं, तेण दु णिज्जरणमिदि जाण'' द्वादशा.66 आ.श्री कुन्दकुन्द तप से निर्जरा होती है और संवर भी होता है। जिन परिणामों से संवर होता है उन्हीं परिणामों से निर्जरा होती है। कर्मों की निर्जरा तो समस्त प्राणियों के होती है किन्तु वह निर्जरा मोक्ष के लिए न होकर भोगभूमियों के प्राणियों के समान बन्ध पूर्वक होती है जैसे भोगभूमिज प्राणी अपने मरण के पहले युगलियों को जन्म देकर फिर मृत्यु को प्राप्त होते हैं इसी कारण वहाँ भोगभूमिज प्राणियों की सन्तान परम्परा का कभी भी विच्छेद नहीं होता है किन्तु शुरू से अन्तपर्यन्त एक भी युगल की न वृद्धि होती है और न हानि। इसी तरह अकाम निर्जरा, सविपाक निर्जरा से संसार बन्धन का विच्छेद नहीं होता है, न मोक्ष और मोक्षमार्ग की प्राप्ति होती है किन्तु मोक्षमार्गियों की निर्जरा सकामनिर्जरा, अविपाक निर्जरा नपुंसक प्राणियों के समान होती है, नपुंसक प्राणी जन्म धारण कर लेता है किन्तु पुरुषत्व शक्ति न होने से जन्म नहीं देता, सन्तान पैदा नहीं करता, इसी तरह रत्नत्रय युक्त प्राणी पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है किन्तु अब अनन्तसंसार के कारणभूत मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धी कषायादि असंयम परिणाम न होने से भविष्य के लिए तीव्र पापकर्मों को नहीं बांधता, इस कारण मिथ्यादृष्टियों की निर्जरा भोगभूमिजों के समान और रत्नत्रयधारियों की निर्जरा नपुंसक के समान होती है। इसी कारण मिथ्यादृष्टि जीवों के संसार का विच्छेद नहीं होता है और सम्यग्दृष्टि जीवों के संसार का विच्छेद होता है, हो जाता है समाप्त हो जाता है। कारण मोक्षमार्गी जीव ने पूर्वभव में अपराध किया है उस अपराध का फल कर्मोदय सामने आ रहा है किन्तु मिथ्यात्वादि भावप्रत्यय न होने से भविष्य के लिए तीव्र स्थिति और अनुभागवाले कर्मों को नहीं बांधता है यही निर्जराभावना है यही सातिशय लाभ है। संसार बन्धन का क्षय होना शाश्वत मोक्ष की प्राप्ति होना ही उत्तम लाभ है।

प्रश्न— 436 लोक भावना किसे कहते हैं?

उत्तर नदी, समुद्र, पर्वत, जंगल, तालाब, रेगिस्थान, नरकभूमि, भूगोल, खगोल के आकार का, वहाँ की भूमि, सर्दी गर्मी आदि का स्थान किस प्रकार है क्या स्वभाव है आदि विचार करना वहाँ पर जीव ने अनन्तवार जन्ममरण किया है। इस षडद्रव्यमयी लोक को न किसी ने बनाया है, न धारण किया है, न कोई विनाश कर सकता है, अपने आप स्वभाव से निर्मित है, अनादिकाल से अनन्तकाल तक अवस्थित रहने वाला है, परिवर्तनशील है, मिथ्यात्व असंयमादि परिणामों से कर्मों को उपार्जन कर जीव भ्रमण कर रहा है। यह लोक तीन भागों में बंटा हुआ है। अधोलोक में तीव्रपाप के फलस्वरूप नारकी तथा हीन पुण्यात्मा भवनवासी व्यन्तर देव और एकेंद्रिय जीव निवास करते हैं। मध्यलोक में मनुष्य, तिर्यंच, व्यन्तर और ज्योतिषी देव रहते हैं। ऊर्ध्वलोक में वैमानिक देव और सिद्ध भगवन्तों का निवास स्थान है इस लोक की सीमा के चारों तरफ तीन घनवात, घनोदधिवात, तनुवातवलय घेरे हुए हैं इसके बाद में चारों तरफ अनन्त अलोकाकाश है। इन तीनों लोकों के अन्दर अनन्तानन्त जीव हैं जो अपने आप पुण्यपापानुसार इंद्रियजन्य सुख दुःख भोग रहे हैं। इस संसार में प्राणी विषयकषायों से पीड़ित होकर परस्पर में शत्रु या मित्र बनकर दुःख या सुख देने का प्रयास करते हैं पर स्वयं के प्रबल पाप या पुण्य का उदय होने से कार्यकारी हो जाता है तथा प्रबल तीव्र पाप या पुण्य का उदय है तो मित्र की तथा शत्रु की

सहायता या विराधना निष्फल हो जाती है। कार्यकारी नहीं होती है। यह लोकभावना है।

प्रश्न– 437 इस प्रकार चिन्तन करने से क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर इस प्रकार चिन्तन करने से मन में राग द्वेष मोह विकार उत्पन्न नहीं होता है, संस्थान विचयधर्मध्यान के परिणाम उत्पन्न होते हैं, आत्म साधना में स्थिरता आती है, मन में दृढ़ता आती है। संसार शरीर और भोगों से विरक्ति बढ़ती है। उदासीनता आती है। जिस प्रकार अस्पताल के दुःख का, शरीर के अंगों का छेदनभेदन, भूखप्यास आदि के कष्टों को विचार करके विचारशील विरक्त हो जाता है कि हमको अस्पताल में नहीं आना पड़े, न ऐसा कार्य करूंगा न आहार विहार विचार बिगाडूंगा यदि आहार विहार विचार बिगाड़े तो अस्पताल में आना ही पड़ेगा, कोई बचाने वाला नहीं होगा इसी तरह लोक भावना का, भूगोल खगोल का, वहाँ के क्षेत्र काल का, सुख दुःख का चिन्तन करने से मन में कम्पन होगा और कम्पन होने से परिणाम उत्पन्न नहीं होंगे तथा परिणाम न होने से आश्रवबन्ध नहीं होगा तब उदय में कहाँ से आयेगा? नरक निगोद का पात्र कहाँ से बनेगा अतः यह लोक भावना संस्थानविचय धर्मध्यान का अनन्य विषय होने से महान उत्कृष्ट भावना है तथा संस्थान विचयधर्मध्यान शुक्लध्यान का साधकतम कारण है।

प्रश्न– 438–440 बोधिदुर्लभ भावना किसे कहते हैं? इसके चिन्तन से क्या लाभ और हानि होती है?

उत्तर इस संसार में लौकिक हीरा पन्ना माणिक आदि रत्न माने जाते हैं। ये रत्न हर किसी प्राणी को प्राप्त नहीं होते हैं। सोना, चांदी के अलंकार भी कुछ ही प्राणियों को प्राप्त होते हैं, आम जनता को प्राप्त नहीं होते हैं। कदाचित् किसी को प्राप्त होते हैं तो बड़ी कठिनता से मिलते हैं ठीक इसी तरह मनुष्यपर्याय बड़ी कठिनता से प्राप्त होती है। सम्मूर्च्छन मनुष्य, मलेच्छ मनुष्य, मलेच्छखण्ड का मनुष्य, कुभोगभूमिज मनुष्य, जघन्यभोगभूमिज, मध्यमभोगभूमिज और उत्तमभोगभूमिज मनुष्य, आर्यखण्ड का हीनांग विकलांग, वृद्धांग हीनाचारी जातियों में जहाँ पर देव शास्त्र और गुरुओं का समागम नहीं ऐसे क्षेत्रों में निवास करना, जन्म लेना न लेने के बराबर है तथा हर प्रकार से सम्पन्न होकर भी धर्मायतनों का समागम न होने से अथवा समागम हुआ तो भी अपनी आत्मा को रत्नत्रय से, संयम से अलंकृत नहीं किया तो अपने समान और कौन दूसरा अभागा होगा इस कारण परिपूर्ण परिश्रम करके सत्संगति का लाभ उठाकर रत्नत्रय से अपनी आत्मा को अलंकृत कर लेना चाहिए तथा रत्नत्रय को परभव में साथ ले जाने के लिए समाधि की, सल्लेखना की साधना कर काय और कषाय को क्षीण करना चाहिए, जिससे संसार का शीघ्र ही अंत हो, समाप्ति हो तथा मोक्ष की प्राप्ति हो इस प्रकार बोधिदुर्लभ भावना का चिन्तन करना चाहिए कि इतना सब कुछ प्राप्त करने के लिए अनेक भवों में भरपूर परिश्रम करना पड़ा है क्योंकि यह मनुष्य पर्याय महान तप का फल है। परम वैरागी मुनिजन ऐसे दुर्लभ रत्नत्रय को सरलता से प्राप्त कर लेते हैं, सिद्ध कर लेते हैं और इसका फल मोक्ष भी प्राप्त कर लेते हैं यही लाभ है। संसार का छूटना, अशुद्धि दूर होना, द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्म नष्ट होना यही हानि है, जिस रत्नत्रय धर्म को प्राप्त करने के लिए सामान्य प्राणियों को करोड़ों वर्षों तक तप करना

पड़ता है उस रत्नत्रय को तथा इसके फल को मुनिजन अनायास ही प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार चिन्तन करना चाहिए।

प्रश्न— 441 धर्मभावना किसे कहते हैं?

उत्तर जो परिणाम या साधना संसार भ्रमण से बचाये, आत्मशान्ति प्राप्त कराये, पराधीनता छुड़ाये, स्वाधीनता प्राप्त कराये, मोक्ष प्राप्त कराये उस परिणाम को, साधना को धर्म कहते हैं और यह परिणाम रत्नत्रय ही हो सकता है, अन्य नहीं इस कारण रत्नत्रय से परिणमन करने के लिए पूर्ण परिश्रम करना चाहिए। चिड़िया चुन गई खेत फिर पछताये क्या होत है।

प्रश्न— 442 इन भावनाओं के चिन्तन करने से क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर संसार शरीर और भोगों के स्वभाव का बारबार चिन्तन करने से वैराग्य उत्पन्न होता है और वैरागी का मन लोक में शुभाशुभ अवस्था के प्राप्त होने पर भी विकार को, हर्ष विषाद को प्राप्त नहीं होता तथा उदासीनता माध्यस्थता को प्राप्त हो जाता है। जिससे आत्मसाधना में, आत्मध्यान में दृढ़ता आती है वृद्धि होती है, मोक्षमार्ग से, सम्यक्लक्ष्य मार्ग से पतन नहीं होता है, नवीन कर्मों का संवर, पूर्वबद्ध कर्मों की असंख्यात गुणश्रेणी रूप से निर्जरा होती है बाद में मोक्ष फल प्राप्त होता है। अतः जीवन सफल बनाने के लिए शीघ्र ही प्रयत्न करना चाहिए।

प्रश्न— 443 अनुप्रेक्षा और वैराग्य में क्या अन्तर है?

उत्तर अनुप्रेक्षायें कारण हैं, पूर्ववर्ती होती हैं, वैराग्य कार्य है उत्तरवर्ती होता है। यही इन दोनों में अन्तर है तथा और भी अंतर हो सकते हैं जो मंथन करके समझ लेना चाहिये।

प्रश्न— 444 संसार शरीर भोगों से विरक्त हो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर जो जीव या मनुष्य संसार शरीर और भोगों में रचपच रहा है, आसक्त हो रहा है वह धर्म को चाहेगा क्या? जिसने विषय भोगों को ही आत्मसुख समझ लिया वह क्यों छोड़ेगा? आत्म सुख के सन्मुख क्यों होगा? अतः संसार से मोक्ष को जाने के लिए इस जीव को चार अवस्थाओं से गुजरना होता है—1. उदासोऽहम् 2. दासोऽहम् 3. सोऽहम् और 4. अहम्।

प्रश्न— 445 उदासोऽहम् किसे कहते हैं?

उत्तर जो मनुष्य संसार शरीर और भोगों से विरक्त है, भयभीत है, संसार बन्धन से छुटकारा तोते के समान चाहता है, कबूतर के समान जिसकी दृष्टि नहीं रही, मोक्ष का इच्छुक है, चतुर्गति के दुःखों से घबराया हुआ है उसे उदास कहते हैं अथवा साधक बनने का इच्छुक है या उत्कृष्ट पद का इच्छुक है आत्मसाधना की तैयारी कर रहा है उसे उदास कहते हैं।

प्रश्न— 446 दासोऽहम् किसे कहते हैं?

उत्तर रत्नत्रय युक्त मोक्षमार्गी बनकर आत्मसाधना करना चौथे गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान पर्यन्त तारतम्यता से विशुद्धि की वृद्धि को लिए हुए तथा आगे आगे विकल्प सूक्ष्म होते हुए जो अवस्था होती है उसे दासोऽहम् कहते हैं अथवा सेवक को, भक्त को दास कहते है।

प्रश्न— 447 सोऽहम् किसे कहते हैं?

उत्तर बाह्य में स्थूल विकल्पों का अभाव होने से तथा सूक्ष्म विकल्पों का सद्भाव होने से साधक अवस्था होती है और दोनों प्रकार के विकल्पों का अभाव कर घातिचतुष्टयकर्मों का क्षय कर अनन्तज्ञानादि चतुष्टय को प्राप्त करने से सयोगी अयोगी स्वरूप सोऽहम् अवस्था प्राप्त होती है तथा अघातिया कर्मों का सद्भाव होने से साधकावस्था होती हैं, मोक्ष साध्य है, शेष अवस्थायें मोक्ष के लिए साधक हैं, साधनभूत हैं। वर्तमान की सभी अवस्थायें साधक और भविष्य की साध्य होती हैं। मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर अयोगकेवली पर्यंत उदासोऽहम्, दासोऽहम् और सोऽहम् ये तीन अवस्थायें होती हैं तथा सिद्धावस्था परिणति रूप में अहम् अवस्था होती है। जो वह है वही मैं हूँ यह सोऽहम् की अवस्था होती है। इसे ही सोऽहम् कहते हैं।

प्रश्न– 448 अहम् किसे कहते हैं?

उत्तर जो अपने आप में परिपूर्ण है, पूर्ण शुद्धावस्था को प्राप्त है, द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मों को क्षयकर स्वाभाविक सिद्धावस्था को प्राप्त कर चुके हैं यही अहम् अवस्था है जो अपने आप में अचल हैं, स्थिर हैं, कृत्कृत्य हैं। सांसारिक समस्त शुभाशुभ कार्यकारण कारण कार्य भाव को समाप्त कर चुके हैं, ज्ञाता दृष्टा हैं यह अवस्था संसार पर्याय को क्षयकर मोक्ष पर्याय की उत्पत्ति अन्त में होती है संसार में पुनः आगमन नहीं होता है जैसे दूध से घी बनाया जाता है पर घी से पुनः दूध नहीं बनाया जाता वैसे ही संसार से मोक्ष की प्राप्ति तो होती है पर पुनः मोक्ष से संसार की प्राप्ति नहीं होती। यहाँ पर उदासोऽहम् दासोऽहम् सोऽहम् और अहम् इन चारों का सामान्य लक्षण कहा जाता है। उदासोऽहम्– मैं आपकी सेवा करना चाहता हूँ, भक्त बनना चाहता हूँ। दासोऽहम् मैं आपका सेवक हूँ, भक्त हूँ, दास हूँ। सोऽहम्– जैसे आप हैं वैसा ही मैं हूँ, जो अवस्था आपकी है वही अवस्था मेरी है। अहम् मैं ही हूँ। आदि की तीन अवस्थायें भेदनय से अभेद की ओर जाने के लिए हैं और चौथी अवस्था अभेद रूप है तद्रूप है। यहाँ उदासोऽहम् अवस्था से प्रयोजन है क्योंकि जिसने प्रथम सीढ़ी पर कदम नहीं रखा है वह अंतिम सीढ़ी पर कैसे पहुंच सकता है? कैसे प्राप्त हो सकता है, अंतिम सीढ़ी न पाने से छत की प्राप्ति कैसे हो सकती है? इसी तरह जिसने उदासोऽहम् अवस्था नहीं पायी वह दासोऽहम् सोऽहम् अहम् अवस्था को कैसे प्राप्त कर सकता है? आदि की तीन अवस्थायें प्रतिपाती हैं और अंतिमावस्था अप्रतिपाती है। आदि की दो अवस्थायें संसार भ्रमण के लिए प्रतिपाती हैं तीसरी अवस्था मोक्ष के लिए छूटती है और चौथी अवस्था पूर्ण शुद्ध है, सर्वदेश शुद्ध है। उदासोऽहम् दासोऽहम् छद्मस्थों के, सोऽहम् केवलियों के और अहम् अवस्था सिद्धों के होती है।

प्रश्न– 449 एकदेश शुद्ध है इसका क्या मतलब है?

उत्तर घातिया कर्मों का क्षयकर दिया है अघातिया कर्म शेष बचे हैं। अनंत चतुष्टय शुद्ध हैं शेष अनंतगुण अशुद्ध हैं, कर्मोदय रूप भाव विकारों से आच्छादित हैं, मलिन हैं, विकार रूप हैं अतः इसे एकदेश शुद्ध कहते हैं या किंचित् शुद्धि को एकदेश शुद्ध कहते हैं।

प्रश्न– 450 देव शास्त्र गुरु का भक्त हो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर जिस प्रकार ईंधन अग्नि के संसर्ग से स्वयं अग्नि बन जाता है, गरीब अमीर की संगति से धनवान

बन जाता है, सेवक मालिक की भक्ति से, सेवा करने से श्रीमान बन जाता है, मूर्ख विद्वानों की संगति से ज्ञानी बन जाता है उसी तरह भक्तपूर्ण रूप से समर्पित भाव वाला निष्कपट, लौकिक स्वार्थ को छोड़कर, निःस्वार्थ भाव पूर्वक देव की भक्ति से सम्यग्दर्शन, शास्त्र की भक्ति से ज्ञानी सम्यग्ज्ञानी और गुरु की भक्ति से गुरुपद को, देशचारित्र को, सकलचारित्र, दिगम्बर दीक्षा को, मुनि पद को, उपाध्याय पद को और आचार्यपद को प्राप्त हो जाता है। देखो अग्नि ईंधन को अग्नि बना लेती है, गन्ना पानी को मीठा रस बना लेता है जो एकेंद्रिय हैं तो क्या देवशास्त्रगुरु इन एकेंद्रिय जीवों से भी गये बीते हो गये? जब एकेंद्रिय जीव जड़ पुद्गल के उपकार को नहीं भूलता उपकार का बदला उपकार से देता है तो देव शास्त्र गुरु अपने भक्त को अपने जैसा न बना लें तो वे देव शास्त्र गुरु कैसे? क्या ये देव शास्त्र गुरु इतने कृतघ्नी हैं कि जो उपकार का बदला अपकार से चुकायें, उपकार से नहीं? ऐसा नहीं हो सकता। केवल भक्त निष्कपट, निःस्वार्थ, ख्याति पूजा लाभ की दुर्भावना को त्याग कर, निर्मल स्वच्छ भाव से भक्ति करें ऐसा भक्त हो ऐसा कहा है क्योंकि भक्त ही भक्ति करके कालांतर में भगवान बनता है। देवाधिदेव बनता है।

प्रश्न– 451 देव किसे कहते हैं?

उत्तर **जिन्होंने अपने आपकी सम्यक्रत्नत्रय पूर्वक साधना कर भूख प्यास, सर्दी गर्मी, जन्म जरा मरण, राग द्वेष मोह आदि को नष्ट कर दिया है, संसार के समस्त चराचर त्रिकालवर्ती यथानुरूप पदार्थों को केवलज्ञान के द्वारा जान लिया है तथा कर्मोदय का समय पर फल देने वाला उदय, समय के पहले बल पूर्वक, पुरुषार्थ के द्वारा फल देने वाला या निर्जीर्ण होकर झड़ने वाला उदीरणा, अपनी सजातीय प्रकृतियों में बदल कर आने वाला संक्रमण, बढ़कर स्थितिबन्ध से ज्यादा फल देने वाला उत्कर्षण, स्थितिबन्ध से घट कर फल देने वाला अपकर्षण,सत्व को सत्व रूप में आदि को यथावत् जैसा का तैसा काल को काल रूप में, अकाल को अकाल रूप में, नियत को नियत रूप में, अनियत को अनियत रूप में जानने वाले को देव या देवाधिदेव कहते हैं।**

प्रश्न– 452 इस पर क्या उदाहरण है?

उत्तर **जैसे स्वच्छ निर्मल दर्पण में जैसा का तैसा प्रतिबिम्ब पड़ता है वैसे ही यथावत् जानने वाले को, देखने वाले को आप्त देव कहते हैं अथवा जो वीतराग हो सर्वज्ञ हो और हितोपदेशी हो उसे आप्त देव कहते हैं और जिसमें एकसाथ उक्त तीन लक्षण या विशेषण नहीं पाये जायें उसे अनाप्त देव कहते हैं। इन तीनों विशेषणों की उत्पत्ति क्रम से होती हैं। जैसे मोहनीय कर्म के क्षय से वीतराग, ज्ञानावरण कर्म के क्षय से सर्वज्ञ और तीर्थंकर प्रकृति के उदय से हितोपदेश प्राप्त होता है। अतः आप्त में तीनों विशेषण एकसाथ होना चाहिए अन्यथा लक्षण सदोष हो जायेगा।**

प्रश्न– 453 भवनत्रिक और वैमानिक स्वर्गवासियों को भी देव कहते हैं तो चतुर्णिकाय के देवों में और देवाधिदेव में क्या अन्तर है?

उत्तर **ये चार प्रकार के देव देवगति नाम कर्मोदय से होते हैं या हुए हैं। अतः औदयिक भाव स्वरूप है, निरतिशय पुण्य के फल हैं, भोगभूमिज हैं, शृंगार अलंकाररूप भोग कल्पवृक्षों के माध्यम से तथा विक्रिया के द्वारा नाना रूप बनाकर भोग भोगते हुए भी तृप्त नहीं हो पाते हैं। भूख प्यास आदि समस्त दोषों से सहित हैं। मान, अपमान, विषय कषायों से सहित हैं, दुर्लेश्याओं और**

शुभलेश्याओं से, परिग्रहों से, असंयम सहित हैं, संयम रहित, प्रमादी हैं, दाम्पत्य जीवन है अथवा स्वतंत्र जीवन है जैसे अहमिंद्र, लौकान्तिक देव। इन भवनत्रिकों में हीन जाति के देव सामान्य प्रजा को परेशान करते हैं और परेशान होते हैं, विषयकषायों से पीड़ित होने के कारण नाना जगहों पर मनोरंजन के लिए भ्रमणशील हैं, तृष्णा से सहित हैं, कोई कोई 1–4 गुणस्थान तक, जीवसमास पंचेंद्रिय तथा 14 मूल मार्गणाओं से सहित हैं तथा आप्तदेव वीतराग सर्वज्ञ और हितोपदेशी लक्षणों से युक्त, घातिया कर्मों के क्षय से उत्पन्न हुए हैं, क्षायिकभाव स्वरूप है, अघातिया कर्मोदय की अपेक्षा सातिशय पुण्य के फल हैं, कर्मभूमिज हैं, मनुष्यगति के हैं, पुरुषार्थ के फलस्वरूप उत्तम ध्यान के फल हैं अपने ध्यान के बल से भूख प्यास, राग द्वेष, मोह आदि 18 दोषों को नष्ट कर दिया है, शृंगा,र अलंकार आदि के त्यागी हैं, विषयकषायों के आरम्भ परिग्रह के त्यागी हैं, यथाख्यात संयम के मध्यम अंशों से सहित हैं, अप्रमत्त भाव से सहित हैं, अनुत्कृष्ट ब्रह्मचर्य से सहित हैं, अपने स्वभाव से चलायमान न होते हुए भी प्रशस्त विहायोगति नाम कर्मोदय से धर्म क्षेत्रों में भव्यों को मोक्षमार्ग का उपदेश देते हुए विहार करते हैं, कुछ गुणस्थान जीवसमास मार्गणास्थानों से सहित हैं अथवा उपरोक्त देव हैं और ये देवाधिदेव हैं यही अंतर है तथा और भी अंतर हो सकता है।

प्रश्न– 454 ये आप्त देव किस प्रकार से भव्य जीवों को मार्गदर्शन देते हैं?

उत्तर **ये आप्तसर्वज्ञ देव समस्त प्राणियों को निःस्वार्थ, निष्कपट, प्रत्युपकार की अपेक्षा के बिना, अपना पराया, गरीब अमीर, छोटा बड़ा, राजा प्रजा आदि का भेद किये बिना सबको एक समान उपदेश देते हैं जैसे मेघ सबको एक समान जल प्रदान करते हैं, सूर्य प्रकाश को, चन्द्रमा चांदनी को, वृक्ष छाया को एक समान देते हैं इसी तरह तीर्थंकर आप्त सर्वज्ञदेव हितोपदेशी सभी को एक समान मार्गदर्शन करते हैं, देते हैं इसी तरह गुरु भी समस्त प्राणियों को कल्याण का मार्ग बताते हैं, पक्षपात पन्थवाद नहीं करते यदि करने लगें तो देव गुरु नहीं रहे। जब एकेंद्रिय या जड़ पदार्थ भेदभाव किये बिना उपकार करते हैं तो क्या ये परमेष्ठी इनसे भी गये बीते हो गये? यदि देव गुरु भी लौकिक स्वार्थी हो गये तो फिर संसार में निःस्वार्थी कौन होगा? जैसे कौवा भी जब भोजन पाता है तो अपने सभी साथियों को बुलाकर भोजन कराता हुआ करता है ठीक उसी प्रकार मोक्षमार्गी देव गुरु संसारी जीवों को दुःख से बचाते हुए, सुख के मार्ग में लगाते हुए, सुख का अनुभव कराते हुए, आत्मानन्द का अनुभव करते हैं परोपकार करते हुए विहार करते हैं।**

प्रश्न– 455 अभव्यजीवों का हित होना नहीं हैं जैसे जन्मान्ध देख नहीं सकता, अंधपाषाण से स्वर्ण निकलता नहीं, बांझ के पुत्र होता नहीं फिर उनको उपदेश क्यों देना, संबोधन क्यों करना तथा उनका हित हो, सुखी हो, दुःख से बचें ऐसा क्यों सोचना?

उत्तर **अभव्य जीवों का कल्याण नहीं होता हैं। रत्नत्रय को तथा रत्नत्रय के फल को प्राप्त नहीं कर सकता है सो ठीक है वह उसका भाग्य है, पुरुषार्थ है। केवली या वक्ता उसमें पक्षपात क्यों करें? जब सोलह कारण भावनायें भायी थी तब ऐसा विचार नहीं किया था कि इसका भला हो और**

इसका न हो तब केवली बनकर उपदेश में ऐसा पक्षपात क्यों करें? अतः जिस भावना से जिस रूप में भावना के बल पर कर्मबन्ध किया था अब वही परिणाम विशेष विशुद्ध होने से विशेषता आयेगी, हीनता, विपरीतता, अन्यथापना नहीं आ सकता। अतः अभव्य जीवों का भी कल्याण हो ऐसा कहा है तथा अभव्यजीव के माध्यम से अनेक जीवों का कल्याण होता हैं। आ० श्री समन्तभद्रजी ने र०श्रा० में ''कृत्सार्वं'' सबका हित करने वाला हो ऐसा शास्त्र का लक्षण कहा है और शास्त्र की उत्पत्ति आप्त से होती है जैसे मेघ सूर्य चन्द्र आदि सबके उपकार के लिए सामग्री प्रदान करते हैं उस प्रदत्त सामग्री का संसारी प्राणी उपयोग करे या न करे। इनका दुर्भाग्य, कुपुरुषार्थ है जैसे सूर्य चन्द्र का उदय सबके लिए होता है पर उनसे प्रदत्त प्रकाश और चांदनी को उल्लू, चकवा–चकवी आत्मसात् नहीं कर पाते।

प्रश्न– 456 शास्त्र किसे कहते हैं?

उत्तर मनुष्यगति के देवाधिदेव आप्त सर्वज्ञदेव के द्वारा उपदेशित हो, पूर्णरूप से प्रमाण नय निक्षेप से निर्दोष हो, वादी प्रतिवादी जिसका खण्डन नहीं कर सके, प्रत्यक्ष अनुमानादि प्रमाणों से बाधा उत्पन्न न हो, ज्ञेय हेय और उपादेय भूत तत्त्वों का कथन करने वाला हो, सबका मार्गदर्शक हो, सबका हितकारक हो, संसारमार्ग का, मिथ्यामार्ग का, विषयभोगों के मार्ग का शृंगार, अलंकार का निराकरण करने वाला हो उसे समीचीन शास्त्र कहते हैं।

प्रश्न– 457 ज्ञेय तत्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर जानने योग्य भूगोल खगोल, भूतकाल भविष्यकाल का विषय, सूक्ष्मपरमाणु आदि नदी, समुद्र, पर्वत, जंगल, नरक स्वर्ग, असंख्यात द्वीप समुद्र कालान्तरवर्ती रामरावण आदि अनन्त चौबीसी आदि ज्ञेय पदार्थ कहलाते हैं क्योंकि ज्ञेय पदार्थों में हिताहित का विचार नहीं किया जाता है।

प्रश्न– 458 हेयतत्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर जिसके द्वारा या जिन पदार्थों के द्वारा अपनी दिनचर्या, स्वास्थ्य, परिणाम बिगड़ने लगें विकार को प्राप्त हों ऐसा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, नाम, स्थापना, वस्त्र, आभूषण, भोजन पान, मनुष्य पशु आदि त्यागने योग्य हैं क्योंकि इनके द्वारा अपना मोक्षमार्ग बिगड़ सकता है तथा जिस स्थान पर बैठने से, निवास करने से मन में राग द्वेष मोह उत्पन्न हो, डांस मच्छर हो, विकार को उत्पन्न करने वाले स्त्री पुरुषों का निवास हो अथवा चपलमन वाले त्यागी व्रती, ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी बहनों का निवास हो तो वह स्थान और त्यागी आदि द्रव्य क्षेत्रादि त्याज्य हैं त्यागने योग्य हैं, हेय हैं।

प्रश्न– 459 उपादेय तत्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर जो पदार्थ तत्त्व देशना, द्रव्यक्षेत्र, कालभाव अपनी आत्मसाधना में सहायक हो, कल्याण के लिए साधन हो, पाप की हानि हो, पुण्य की वृद्धि हो, कल्याणक क्षेत्र हो, अभ्यास दशा में देव शास्त्र गुरु मोक्षमार्ग के लिए प्रेरणादायक हो तथा जिसके ग्रहण करने से आत्मसाधना हो केवलज्ञान की प्राप्ति हो, मोक्ष की प्राप्ति हो उसे उपादेयतत्त्व कहते हैं।

प्रश्न– 460 गुरु किसे कहते हैं?

उत्तर विषय कषायों की आधीनता का त्यागी हो, कथंचित् संज्वलन कषाय की तीव्रोदयानुसार विषय

कषायों में प्रवृत्ति तो होती है अन्यथा प्रमाद न बनने से न होने से छठवाँ प्रमत्त संयतगुणस्थान नहीं बन सकता तथा विषयकषायों की चर्या भावात्मक होती है, द्रव्यात्मक तद्रूप क्रियात्मक नहीं होती। यदि कोई कहे कि मुनि अवस्था में विषय कषाय रूप से परिणति नहीं होती है सो ठीक नहीं है क्योंकि यदि मन क्रोध मान माया लोभ रूप कषायों में, चार विकथाओं में, पाँच इंद्रिय विषयों में प्रवृत्ति, निद्रा और प्रणेय इन 15 प्रकार के परिणामों में से कोई एकादि प्रकार का परिणाम होना ही चाहिए तभी तो प्रमत्तसंयत नाम का छठवाँ गुणस्थान बन सकता है, अन्यथा नहीं। यदि प्रमाद उत्पन्न न हुआ तो प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना, निन्दा, गर्हा, प्रायश्चित्त आदि किसका करेगा? प्रायश्चित्त क्यों लेगा? आरम्भ परिग्रह का त्याग हो यह लक्षण निषेध रूप है, नग्न रूप हो दिगम्बर हो, केशलोंच करने वाला हो, पीछी कमण्डलु हो, स्वाध्याय में, ध्यान में, तप में, जप में लवलीन हो उसे गुरु कहते हैं यह लक्षण विधि रूप में है। नमक घुलनशील स्वभाव वाला होने से पानी के संसर्ग से पानी बन जाता है उसी तरह भव्यजीव जीवत्त्व होने से देवशास्त्रगुरु की भक्ति से स्वयं सिद्ध हो जाता है।

प्रश्न— 461—62 आजकल मुनिसंघों में चौका है, गाड़ी मोटर है तब उन्हें दि. मुनि कैसे कहें? लक्षण के बिना लक्ष्य कैसे?

उत्तर **प्रश्न पर प्रश्न है, क्या मुनि उपाध्याय आचार्य परमेष्ठी चौका लगाते हैं? नहीं, सामान बर्तन खरीदने बाजार जाते हैं, दुकान में लेने जाते हैं? नहीं, पानी भरने, पानी छानने, पानी गरम करने दिगम्बर मुद्राधारी मुनिजन जाते हैं? नहीं, गाड़ी मोटर महाराज चलाते हैं? नहीं, गाड़ी मोटर खरीदने महाराज गये थे, पैसा रुपया किसने दिया? क्या महाराज ने कोई व्यापार कर, खेती कर नौकरी कर या चोरी कर रुपया पैसा इकट्ठा किया? नहीं, इन खाने पीने की सामग्री, गाड़ी मोटर आदि की साज सम्हाल कौन करता है? परमिट लाईसंस किसके नाम है? महाराज के नाम है या ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी के नाम है? वस्त्रधारी गृहस्थ सम्हालते हैं, और गृहस्थों के नाम है। चौका संघ में ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी बहिनें लगाती हैं क्योंकि दान देना श्रावकों का आवश्यक कर्तव्य है, प्रतिमाधारियों का अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत है। यह तो श्रावकों का धर्म है कर्तव्य है। जो श्रावक श्राविकायें व्रती या अव्रती चौका लगाते हैं जो आहार सामग्री तैयार की है वह क्या पूर्ण रूप से महाराज आदि पिच्छिधारी ग्रहण कर लेते हैं? नहीं। कुछ सामग्री छोड़ देते हैं। तब महाराजादि पिच्छिधारियों को उद्दिष्ट का दोष कैसे लगेगा? बताओ। संघस्थ श्रावक श्राविकायें व्रती अव्रती भाई बहिनें हैं वे भी उस आहार को पूर्णरूप से भरपेट ग्रहण करते हैं। ऐसा नहीं हैं कि महाराजादि को आहार कराकर स्वयं उपवास करते हों या खाने के लिए होटल में, बाजार में या किसी के घर जाते हों? नहीं जाते हैं किन्तु सभी श्रावक श्राविकायें चौके में ही भोजन करते हैं क्योंकि पिच्छिधारियों की भ्रामरीवृत्ति होती है, श्वानवृत्ति नहीं। श्रावकों ने जो भोजन सामग्री तैयार की है वह पूरी की पूरी महाराज ग्रहण कर लेते तो यह उनकी भ्रामरीवृत्ति न होकर श्वानवृत्ति हो जाती है। जो सामान्य गृहस्थ हैं, धनवान हैं वे अधिकतर हीनाचारी है, उनकी रोटी बेटी बिगड़ रही है। किसी घर में विधवाविवाह, त्यक्ताविवाह, अपहरण कर विवाह, जाति कुल की परम्परा का विचार किये बिना प्रेमविवाह, अन्तर्जातीय विवाह हो रहा है अन्याय, अभक्ष्य का, अंडों**

शराबों का, अनन्तकायिक कन्दमूलों का बेरोकटोक सेवन हो रहा है और भी अनेक प्रकार से हीनाचारी हो रहे हैं जो जैन कहने कहलाने के योग्य भी नहीं रहे और उल्टे धर्मायतनों को बदनाम करने में लगे हैं यह बात किसीसे छिपी नहीं है। छिपी है क्या? घरों में चमड़े के जूते, चप्पलादि मुर्दा सामग्री जगह जगह पड़ी है या पड़ी रहती है, शराब की बोतले, अण्डे, चर्बी, रक्त मिली श्रृंगार आदि की सामग्री दवाईंयां रखी हैं, चौके के पास ही शौचालय बाथरूम बना है और भी अनेक द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अशुद्धियां मौजूद हैं। इनके घरों में पैर रखना धर्म नहीं है फिर आहार लेना तो बहुत दूर की बात है। घरों में भोजनपान के बर्तनों में मासिकधर्म वाली रजस्वला अवस्था में खाती हैं, पीती हैं, स्पर्श करती हैं। पूरे घर में भ्रमण करती हैं। व्यवहार शुद्धि में जिस भोजनपान के बर्तनों को कौआ, कुत्ता, चाण्डाल, खटीक, मांसाहारी, शराबी अत्यन्त हीनचारित्री मासिकधर्मवाली, सूतक पातक वाले तथा कसाई स्पर्श कर ले तो उस बर्तन को अग्नि में तपाकर, अच्छी तरह से राख के द्वारा मांजकर, पानी से धोकर फिर अपने भोजनपान के काम में लेना चाहिए, प्रयोग में लाना चाहिए ऐसी पुरानी वृद्धपरम्परा है, आगम परम्परा है। अतः जो अन्दरबाह्य से सज्जन सुद्गृहस्थ हैं उनका परम कर्तव्य है कि वे ऐसा प्रयास करें कि त्यागी व्रतियों की वृत्ति का निर्दोष पालन हो, श्रावक गण पक्षपात, पंथवाद को छोड़कर यथायोग्य मन वचन काय से ऐसी व्यवस्था सुरक्षा करें। इतना करने के बाद में भी फिर त्यागीव्रती साधु अपने आप चौके की व्यवस्था करें तो साधु का अनाचार दोष है। गृहस्थपना है, साधुपना नहीं। आपने यथायोग्य साधन जुटाये नहीं किन्तु छींटे उछालने लगे तो इससे समाधान तो हुआ नहीं किन्तु शिथिलाचार बढ़ता ही गया, बढ़ता ही जा रहा है। इधर कोई साधु कुछ अपनी चर्या का पालन कर रहा है या करता है तो गृहस्थ लोग आकर कहते हैं कि महाराज अब पंचमकाल है छूट दे दो, कुछ त्याग मत कराओ, नियम नहीं दो, हम गृहस्थ हैं, बाहर जाना पड़ता है, होटलों में खाना पड़ता है, आलू मूली, गाजर, लहसुन प्याजादि की सब्जी खानी पड़ती है, अनछना पानी पीना पड़ता है। लोगों के सामने पानी छानकर पीने में शर्म आती है। आजकल गृहस्थ लोग अपने आचार विचार, रोटी बेटी को देखते नहीं हैं किन्तु मुनियों को त्यागियों को दोष देते हैं। इससे शिथिलाचार बढ़ ही रहा है, घटता नहीं है, विरोध करने से धर्म की बदनामी, हानि होती है, समाधान नहीं हो सकता, न हो रहा है। जब मुनि संघ विहार करता है तो संघ का सामान शास्त्रजी, चटाई पाटा या आर्यिका माताओं के कपड़े आदि क्या अपनी पीठ पर ले जाते हैं? नहीं किन्तु श्रावकगण ही गाड़ी पर ले जाते हैं, ये भी पीठ पर, शिर पर नहीं ले जाते हैं। जिन साधुओं को हर जगह, हर क्षेत्रों में, हर किसी के हाथ से सर्वत्र आहार लेना है तब उनको संघ में चौकों की आवश्यकता नहीं है फिर भी जब ये लम्बा विहार करते हैं तो श्रावक व्रती या अव्रती साथ में रहेंगे वे अपनी भोजनपान की व्यवस्था रखेंगे। अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत दान आवश्यक कर्तव्य का पालन करेंगे और स्वयं भोजन करेंगे ऐसा नहीं है कि आहार दान देने के बाद श्रावक श्राविकायें होटल में खाये वे भी भोजन करते हैं तब दोष कैसे लगेगा? किसी का दोष किसी के माथे मढ़ना लगाना यह विशुद्ध परिणाम वाले सज्जनों का लक्षण नहीं किन्तु दुर्जनों का, चारित्रहीनों का लक्षण है अथवा जैसा व्यवहार आप करते हैं वैसा ही व्यवहार आप जब मुनि

बनेंगे तब आपके साथ होगा तब आपको अनुभव होगा कि अब करना क्या? साधु जीवन निभाना या वापिस गृहस्थ बनना? हाँ इतना अवश्य है कि जो अपना मठ आश्रम बनवा रहे हैं उसमें रह रहे हैं तो अवश्य ही उनको अधः कर्म का दोष उद्दिष्टदोष लगता ही है। **'पर कियणिलयणिवासा'** बो.पा. 50 गा. दूसरों के द्वारा बनवाये गये निलय में निवास करना कहा है तब जो अधिष्ठाता सर्वेसर्वा बन बैठे हैं उनमें और गृहस्थों में क्या अन्तर हैं? अतः निंदकों को पक्षपाती, पंथवादियों को निष्पक्ष होकर गुणदोष का विचार करना चाहिए।

प्रश्न— 463 मुनियों को किस स्थान पर कितने समय तक रहना चाहिए और कितने समय तक नहीं रहना चाहिए ?

उत्तर छोटे गांव में जहाँ धर्मात्मा समाज कम हो या जन धन से कम सम्पन्न हो वहाँ पर समयानुसार एक दिन रुकना, जहाँ समाज कुछ ज्यादा हो वहाँ पर तीन दिन और जहाँ समाज अत्यधिक है वहाँ सात दिन तथा जहाँ अत्यधिक उत्कृष्ट जन धन सम्पन्न हो वहाँ अधिक समय तक ठहरते हैं। यह एक सामान्य बात हुई किन्तु जहाँ पर निवास करने से श्रावक और साधुओं के कर्तव्यों का अच्छी तरह से पालन हो, दोनों के परिणामों में किसी प्रकार से गड़बड़ी न हो तथा ध्यानाध्ययन तप जप अच्छी तरह से सुचारू रूप से चलता रहे तब तक रहना चाहिए तथा जहाँ पर ठहरने से साधु और श्रावकों के मन में राग द्वेष मोह विकार उत्पन्न होने लगे, प्रतिज्ञा के पालन करने में बाधा उत्पन्न होने लगे तब शीघ्र ही विहार कर जाना चाहिए। अन्यथा जैसे रुका हुआ जल बिगड़ जाता है, सड़ जाता है, स्थिर रखा हुआ पान सड़ जाता है, तवे पर स्थिर रखी हुई रोटी जल जाती हैं या बिना प्रयोग के स्थिर बंधा हुआ घोड़ा अड़ जाता है। वैसे ही साधु यदि मर्यादा का उल्लंघन कर, राग द्वेष और मोह को प्राप्त कर गृहस्थों के साथ सम्पर्क बढ़ा कर रह जायेगा तो वह साधु साधु न रहकर भावों से अथवा द्रव्य और भावों से गृहस्थ बन जायेगा। पुनः विकार को प्राप्त हो जाता है। अतः मुमुक्षु साधुओं को असंयमी विकारी गृहस्थों से अधिक संपर्क बनाना ठीक नहीं है, योग्य नहीं है। त्यागियों को गृहस्थों से आहार के समय, धर्मोपदेश के समय वैयावृत के समय या कोई विशेष धर्म कार्य हो तो सम्पर्क बनाना योग्य है, शेष समय में नहीं। अन्यथा पतन होना, भ्रष्ट होना अवश्यंभावी है, कोई रोक नहीं सकता।

प्रश्न— 464 मुनिजन क्षेत्रों में तो अधिक समय तक या हमेशा रह सकते हैं क्या?

उत्तर पंच कल्याणक क्षेत्रों में, अतिशय क्षेत्रों में, निर्वाण क्षेत्रों में अपनी इच्छानुसार अधिक समय तक अथवा हमेशा भी रह सकते हैं, जीवन भी व्यतीत कर सकते हैं किन्तु आजकल निर्वाण क्षेत्र अतिशयक्षेत्र धर्मक्षेत्र धर्मक्षेत्र न रहकर भोगक्षेत्र, व्यापार क्षेत्र, आजीविका क्षेत्र हो गये, रोटी रोजी के क्षेत्र बन गये, साधन हो गये क्योंकि कमेटी वाले, ट्रष्टीगण, क्षेत्रीय व्यवस्थापकगण, कर्मचारी गणों ने धन कमाने का साधन बना लिया है। वहाँ साधुओं के पहुंचते ही, प्रवेश करते ही समस्या लेकर सामने आ जाते हैं या कुछ योजनायें लेकर आ जाते हैं। महाराजजी यहाँ पर कोई जैन नहीं है श्रावक चौका लगाने वाला नहीं है या कोई नियम लेने वाला नहीं है या कोई वीर्यसंकर, जातिसंकर, वर्णसंकर दोष से युक्त है अथवा यहाँ पर कुछ काम करवाना बाकी है कोई भक्तगण

आयें तो आप उनको थोड़ी प्रेरणा करें तो अच्छा होगा। मंदिर बनवाना, धर्मशाला बनवाना, पंखा लगवाना, लाईट फिटिंग करवाना, विद्यालय बनवाना, औषधालय, शौचालय, नल, टंकी, पाईपलाईन की, रोड बनवाने की योजना है दर्शकों को प्रेरणाकर बनवा दे तो अच्छा होगा आदि इसका मतलब है कि यदि आप यहाँ पर कुछ व्यवस्था करा सकते हैं तो आप को ठहरने की, भोजनपानादि की व्यवस्था मिल सकती है, अन्यथा विहार कर जायें, अपनी व्यवस्था से आये हो और अपनी व्यवस्था से चले जाओ। अभी धर्मशाला कमरे सभी बुक हैं, खाली नहीं हैं, कोई विशेष कार्यक्रम होने वाला है, वे लोग आने वाले हैं, अतः आप थोड़ी देर के लिए थोड़े समय के लिए यहाँ वहाँ रुक जाओ बाद में आ जाना अर्थात् सेवा वैयावृत्ति के करने से पहले अपनी उदरपूर्ति की सोचते हैं। जैसे गृहस्थों को कमाऊपूत चाहिए वैसे ही आजकल समाज कमाऊ साधुओं को चाहती है तथा जिन साधुओं से कमाई नहीं होती उनको नहीं चाहती, पेपरों में निकलवाती है कि साधुओं में शिथिलाचार बहुत बढ़ रहा है और काम शिथिलाचार को घटाने का नहीं बढ़ाने का करते हैं। जो साधु व्यवस्था करा रहे हैं उनकी व्यवस्था हो रही है। जो आश्रम चलाते चलवाते हैं उनकी व्यवस्था हो रही है, अथवा जो कमा के नहीं दे रहे हैं उनको कुछ नहीं। जो साधु त्यागी वर्ग ऐसा काम करा रहे हैं उनका जीवन गृहस्थों की अपेक्षा कहीं अत्यधिक नीचा हो गया है क्योंकि जिस प्रकार आरम्भ परिग्रह का नव कोटि से त्याग किया जाता है अथवा व्रतों का नियमों का नवकोटियों से पालन किया जाता हैं जिस प्रकार परिग्रहत्याग व्रत का पालन नवकोटियों से किया जाता है उसी प्रकार अहिंसाव्रत का, सत्यव्रत का, अचौर्यव्रत का, ब्रह्मचर्यव्रत का पालन किया जाता है। कहावत है–**"साधु के पास कौड़ी है तो कौड़ी दीन का नहीं और गृहस्थ के पास कौड़ी नहीं है तो कौडी दीन का नहीं।"** कमेटी, ट्रस्टीगण, आरम्भ परिग्रह के त्यागी, गृहत्यागी श्रावक और साधुओं के द्वारा आश्रम चलाना चलवाना, बनाना बनवाना, अनुमोदना करना कराना आदि करते हैं। यदि वे स्वयं कमाई करते तो निज कमाई से इतना नहीं बनवा पाते, न बना पाते अतः क्षेत्रों में भी अपनी वृत्ति को पालने के लिए रहना चाहिए तथा जब बाधा उत्पन्न होने लगें तब क्षेत्रों से विहार कर गांव में रहना चाहिए कहा है– **अन्यक्षेत्रेकृतं पापं तीर्थक्षेत्रे विनश्यति। तीर्थक्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति।"** आरम्भ परिग्रह, कामभोग, व्यापार खेती आदि के क्षेत्रों में किया गया पाप, उपार्जन को प्राप्त हुआ दुष्कर्म धर्मक्षेत्रों में, अतिशय क्षेत्रों में, निर्वाण क्षेत्रों में, कल्याणक क्षेत्रों में जाकर नष्ट किया जाता है, धोया जाता है तथा धर्म क्षेत्रों में किया गया दुष्कर्म, पाप कर्म कहाँ पर जाकर नष्ट किया जाय? क्षय किया जाय? वह तो वज्रलेप के समान हो जाता है परन्तु अब ऐसा पाठ पढना चाहिए। **'तीर्थ क्षेत्रे कृतं पापं श्रावकक्षेत्रे विनश्यति। श्रावकक्षेत्रेकृतंपुण्यं तीर्थक्षेत्रे विनश्यति।।'** वर्तमानकाल में धर्मक्षेत्रों में जाकर साधुवर्ग ने आहार कौन देगा? कपड़े कौन साफ करेगा? बर्तन कौन मांजेगा? व्यवस्था कौन करेगा? आदि आकुलताओं से जो अपने व्रतों में अतिचार अनाचार दोष लगाया है, कर्म का बन्ध किया है वह श्रावकों के यहाँ जाकर निराकुलतामय होने से पापकर्म का अपकर्षण संक्रमण कर नष्ट कर दिया जाता है। श्रावकों के

यहाँ रहकर जो आत्मसाधना कर पापकर्मों का क्षय किया है, सातिशय पुण्यकर्म का उपार्जन किया है वह धर्म क्षेत्रों में जाकर आकुलतामय होने से व्यवस्था की चिन्ता होने से पुण्य का क्षय किया जाता है और पुनः पाप का बन्ध किया जाता है। कारण आजकल समाज के कर्णधार बनने वाले व्यक्ति निरतिशय पुण्य लेकर आये हैं। वे आजिविका के साधनों से उदर पूर्ति न कर, आजीविका के साधनों से आजीविका न चलाकर मोक्षमार्गस्थ आत्मसाधना में रत महापुरुषों के माध्यम से उत्पन्न हुए क्षेत्रों को आजीविका का साधन बना लिया है इसलिए वर्तमान में मुनियों की, त्यागी व्रतियों की आत्मसाधना संकट में पड़ गई निराकुलता आकुलता व्याकुलता में बदल गई है यह महान आश्चर्य है।

प्रश्न– 465–66 तीर्थ किसे कहते हैं? तीर्थों की उत्पत्ति कैसे हुई?

उत्तर जिस परिणाम से, जिस साधना से आत्मशुद्धि हो, पाप की हानि हो, संसार बन्धन से छुटकारा प्राप्त हो या जिस भूमि की शुद्धि आत्मसाधना करने वालों से हुई है या जिस स्थान पर ठहरने से आत्मशुद्धि प्रशस्त हो, पाप कर्मों की हानि हो, नवीन पाप कर्मों का संवर हो उसे क्षेत्र कहते हैं। समस्त आकाश प्रदेश या भूमि प्रदेश को आत्मसाधना करने वालों के माध्यम से क्षेत्रों की उत्पत्ति होती है। समुद्घात करने वालों की अपेक्षा समस्त भूमि प्रदेश और लोकाकाश ही धर्म क्षेत्र है परन्तु वर्तमान की अपेक्षा तीर्थंकरों ने, महापुरुषों ने जहाँ पर स्थिर होकर आत्मसाधना की, मोक्ष की प्राप्ति की उस स्थान को तीर्थ कहते हैं तथा महापुरुषार्थी जीवों के माध्यम से तीर्थों की उत्पत्ति होती है।

प्रश्न– 467–69 धर्मतीर्थों के भेद कितने हैं? नाम और लक्षण किसे कहते हैं?

उत्तर धर्मतीर्थों के दो भेद हैं अतिशयक्षेत्र और सिद्धक्षेत्र अथवा द्रव्यक्षेत्र और भावक्षेत्र। अतिशयक्षेत्र जिस स्थान में कोई आश्चर्यकारी घटना घटे, मोक्षमार्ग में लगाये उसे अतिशय क्षेत्र कहते हैं। सिद्धक्षेत्र– जिस स्थान में निवासकर अपने आत्मध्यान के बल से ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मों को, शरीरादि नोकर्मों को, रागद्वेष आदि भावकर्मों को समाप्त कर मोक्षपद प्राप्त किया है उसे सिद्धक्षेत्र कहते हैं। द्रव्यक्षेत्र– आकाश प्रदेश को या भूमिप्रदेश को द्रव्यक्षेत्र कहते हैं। भावक्षेत्र– आत्म साधना को, रत्नत्रय को, निर्विकल्पध्यान को भावक्षेत्र कहते हैं अथवा जिस स्थान से संसार समुद्र पार किया जाय उसे द्रव्यक्षेत्र और जिस भाव से कर्मों का क्षय हो उसे भावक्षेत्र कहते हैं।

प्रश्न– 470 मिथ्यादेवशास्त्रगुरु की आराधना से, भक्ति से क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर जैसे मलिन दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब मुँह साफ स्वच्छ दिखाई नहीं देता है वैसे ही मिथ्यादेव मिथ्याशास्त्र और मिथ्यागुरु के माध्यम से, उनकी भक्ति से आत्मदर्शन नहीं होगा, न होता है, न आत्मा में निर्मलता आती है, न स्वच्छता आती है, न प्राप्त होती है। जैसे व्यापार खेती नौकरी आदि धन वृद्धि के लिए किये जाते हैं, धन हानि के लिए नहीं किये जाते है वैसे ही दानपूजा आराधना भक्ति आत्मसिद्धि के लिए किये जाते हैं, श्रेष्ठ बनने के लिये किये जाते हैं, पतन के लिए नहीं, दुःखी बनने के लिए नहीं किये जाते हैं। अतः उक्त मिथ्या देव शास्त्र गुरु स्वयं दूषित

होने से मलिन दर्पण के समान भक्तों को निर्दोषता कैसे प्राप्त करा सकते हैं? अतः हितचिन्तकों को भली प्रकार से परीक्षा कर सम्यक् आराधना करना चाहिए।

प्रश्न– 471 आजकल धर्म तीर्थक्षेत्रों की हानि क्यों हो रही है?

उत्तर आजकल धर्म क्षेत्रों की व्यवस्था आचरण हीन गृहस्थों के द्वारा हो रही है क्योंकि ये गृहस्थ तेरापंथ बीसपंथ के व्यामोह के कारण हम क्षेत्रपाल को, यक्ष यक्षणियों को नहीं मानते, हमारे नहीं है, इनको निकालो आदि कहकर तिरस्कार करने लगे तो श्वेताम्बरों ने, हिन्दुओं ने कहा कि ये देवी देवता है जो हमारे थे, मन्दिर भी हमारा था। इन जैनों ने पहले बलात् अपहरण कर लिया था। इस कारण अब न्यायनीति रहित सरकार होने से अन्यमति हड़प रहे हैं, छीन रहे हैं जो वर्तमान में उदाहरण स्वरूप केशरियाजी, गिरनारजी आदि अनेक बड़े बड़े क्षेत्र हैं जो अजैनों ने या श्वेताम्बरों ने ले लिए हैं तथा कुछेक क्षेत्रों में सेकड़ों वर्षों से मुकदमे चल रहे हैं। इस कारण क्षेत्रों की उत्पत्ति गृहस्थों से नहीं होती है किन्तु विराधना अवश्य हो रही हैं। जगह जगह पंथवाद के द्वारा मेरा तेरा आदि के कारण जो पुराने क्षेत्र हैं, तीर्थ हैं वे अस्ताचल को जा रहे हैं तथा जिन स्थानों पर कोई महत्व नहीं है वहाँ पर पंथवादियों के द्वारा या ख्याति पूजा लाभ की दुर्भावना के कारण धन की बदौलत नवीन क्षेत्र बनाये जा रहे हैं अतः गृहस्थों के द्वारा प्राचीनता नष्ट की जा रही है यही महान हानि है।

प्रश्न– 472 आज्ञा का पालक हो, आज्ञाकारी हो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर यदि आज्ञा का पालन नहीं करता है तो कुपुत्र के समान होने से पास में आयेगा नहीं तब उसे कैसे पता होगा कि क्या नीतिनियम है, सही क्या है, गलत क्या है?आदि मनमानी स्वच्छन्दाचरण वाला ही पुत्र कुपुत्र कहलाता है इसी तरह शिष्य भी कुशिष्य कहलाता है सांड की तरह, आवारा बैल की तरह इधर उधर घूमता फिरता है, हर जगह दुतकारा जाता है, मारा जाता है, सप्त व्यसनों के सेवन में फंस जाता है, जातिकुल की क्या मर्यादा है क्या नहीं आदि ध्यान न कर उल्लंघन कर जाता है इसी कारण वह कुपुत्र पूर्णरूप से माँ बाप की सम्पत्ति का अधिकारी नहीं होता है क्योंकि वह अपने दुराचार, पापाचरण के कारण माँ बाप की नजरों से उतर जाता है, गिर जाता है इसी प्रकार कुशिष्य अनाज्ञाकारी होने से स्वच्छन्दी होकर देव शास्त्र गुरु के निकट में न रहकर आजू बाजू इधर उधर घूम फिरकर विषय वासनाओं में आसक्त होकर, विषय लम्पटी बनकर घूमता फिरता है, जगह–जगह अपमानित होकर दुतकारा जाता है, ठगाया जाता है, कोई सदाचारी सज्जन पुरुष उसपर विश्वास नहीं करता है तथा विश्वास पात्र न होने से मानसिक तनाव से सदा दुःखी रहता है। इसी तरह अभव्य जीव शिष्य होकर भी मोक्षमार्ग का अधिकारी न होने से संसार में, नाना योनियों में, नाना तरह से दुःखी होता है। आज्ञाकारी पुत्र माँ बाप की सम्पत्ति का सहर्ष अधिकारी होता है उसी तरह आज्ञाकारी शिष्य देव शास्त्र गुरु की सम्पत्ति स्वरूप मोक्षमार्ग का सहर्ष अधिकारी होता है। अतः शिष्य आज्ञाकारी, आज्ञा का पालन करनेवाला होना चाहिए ऐसा कहा है। जो माँ बाप को माने उनकी आज्ञा का पालन न करे तो उसने माँ बाप को ही नहीं माना तो कुपुत्र है, अनाज्ञाकारी होने से कुपुत्र के समान शिष्य भी

कुशिष्य है। इसी कुशिष्यता के कारण सुखशांति से, मोक्षमार्ग से अछूता रहता है।

प्रश्न– 473 जन्मदाता स्वार्थी माँबाप की सम्पत्ति का अधिकारी स्वच्छन्दी कुपुत्र भले न हो किन्तु देव शास्त्र गुरु तो वीतरागी हैं, निःस्वार्थी हैं उनकी सम्पत्तिरूप रत्नत्रय को स्वच्छन्दी कुशिष्य पा ले तो क्या हानि है?

उत्तर नहीं, भले ही दोनों के मार्ग भिन्न भिन्न हैं, धन तो धन ही है चाहे गृहस्थ का हो या साधू का। स्वच्छन्दी होने से कुपुत्र या कुशिष्य जड़ सम्पत्ति या रत्नत्रय का अनधिकारी है कदाचित् बलात् ले भी ले तो सम्हाल नहीं सकता, निभा नहीं सकता है। जैसे कोई प्रमादी राहगीर धूप से गर्मी से तप्तायमान होने पर भी वृक्ष के पास में न जाय तो उसे छाया कैसे प्राप्त होगी? देखो लोक में माँ बाप विकारी हैं तो उनकी सम्पत्ति नहीं मिलती। क्यों? वह अनाज्ञाकारी है तो मोक्षमार्गस्थ निर्विकारी होने से उनकी सम्पत्ति रत्नत्रय मोक्षमार्ग कैसे प्राप्त होगा? वृक्ष अपनी छाया को देने में पक्षपात नहीं करता। प्रमादी प्रमाद को छोड़कर पास में आये तो छाया मिले, न आये तो कैसे मिले, कैसे प्राप्त हो? वह वृक्ष न बुलाता है न भगाता है किन्तु वह प्रमादी स्वयं नहीं आता तो छाया कैसे प्राप्त करेगा? आप ही बताये। ठीक इसी प्रकार आजकल संस्कारहीन, पक्षपाती, पंथवादी, कूपमन्डूक की तरह पास में न आने से रत्नत्रय प्राप्त नहीं कर पाते, सोचो जब आप बाजार में मिट्टी का बर्तन खरीदने जाते हैं तो उसकी परीक्षा उल्टी उंगलियों से बजाकर करते हैं, आवाज सही है तो खरीदते हैं अन्यथा नहीं। जो समयानुसार थोड़े समय के लिये या जीवन के लिये उपयोगी है तो तीन लोक की सम्पत्ति स्वरूप रत्नत्रय पीछी कमण्डलु प्रदान करना है तो क्या पात्रापात्र की परीक्षा नहीं करनी होगी? अतः मोक्ष को, मोक्षमार्ग को, रत्नत्रय को प्राप्त करने के लिये मान रहित कषाय छोड़कर आज्ञाकारी होकर रहना परमावश्यक है।

प्रश्न– 474–76 मूलगुण किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन–कौन हैं?

उत्तर जिस प्रकार वृक्ष में जड़ें प्रधान होती हैं, मकान में नीव प्रधान होती है। बिना जड़ के, नींव के वृक्ष की,मकान की उत्पत्ति स्थिति वृद्धि और फल की प्राप्ति नहीं होती है। उसी तरह जिस व्रत नियम या विचारों के बिना मोक्षमार्ग की उत्पत्ति स्थिति वृद्धि और मोक्षफल की प्राप्ति नहीं होती है अथवा जिन नियम व्रतों के माध्यम से मोक्षमार्ग की उत्पत्ति स्थिति वृद्धि और फल की प्राप्ति होती है उन यमनियमों को, व्रतों को मूलगुण कहते हैं। गृहस्थ श्रावकों की अपेक्षा आठ भेद होते हैं। मुनियों की अपेक्षा 28 मूलगुण, उपाध्यायों की अपेक्षा 25 मूलगुण, आचार्यों की अपेक्षा 36 मूलगुण, सामान्य केवलियों के 4 मूलगुण, तीर्थंकर रूप अरिहन्तों के 46 मूलगुण, सिद्धों के 8 मूलगुण होते हैं। यहाँ पर श्रावकों की अपेक्षा कथन किया जा रहा है, शेष की अपेक्षा नहीं हैं क्योंकि यहाँ पर सम्यग्दर्शन या रत्नत्रय की प्राप्ति की भूमिका का वर्णन है प्रकरण है। परम पूज्य आचार्यों ने श्रावकों के मूलगुणों का वर्णन अनेक प्रकार से द्रव्य क्षेत्र काल भावानुसार किया है। 1. पाँच उदुम्बर फलों का त्याग 2. मद्य का त्याग 3. मांस का त्याग 4. मधु का त्याग 5. पानी छानकर पीना 6. रात्रि भोजन का त्याग 7. जीव दया 8. पंच परमेष्ठी की भक्ति ये आठ मूलगुण है अथवा 5. पाँच उदुम्बर फलों का त्याग 6. मद्यत्याग 7. मधुत्याग 8.मांस त्याग। ये

आठ मूलगुण हैं अथवा सप्तव्यसनों के त्याग के [7] पाँच उदम्बरों के त्याग का एक ये सब आठ मूलगुण हैं अथवा तीन मकारों के त्याग के तीन [3] और पाँच अणुव्रतों के [5] ये सब आठ मूलगुण श्रावकों के होते हैं। पूर्वाचार्यों ने सभी श्रावकों को आत्मोद्धार के लिए बताये हैं जो हर तरह से पालन करने योग्य हैं। यदि जैन श्रावकगण इन व्रतों का पालन करें तो आज भी सरकार का कोई कानून कष्ट में डालने के लिए समर्थ नहीं है, न हो सकता है, भले ही दुष्काल है। कदम कदम पर सर्वत्र सरकार में, नेताओं में, प्रजा में, समाज में, धर्म क्षेत्रों में धर्म के नाम पर कूटनीति, पापनीति, अत्याचार, अनाचार का साम्राज्य छाया हुआ है। इसी कूटनीति का फल है कि सभी मानसिक तनाव से या शारीरिक रोगों से पीड़ित हैं, क्षणमात्र भी शांति की श्वांस नहीं ले पा रहे हैं, नींद नहीं ले पा रहे हैं, भोजनपान नहीं कर पाते हैं आदि। अतः शर्त है कि जैनों में, धर्मात्मा श्रावकों में दृढ़ता, मजबूती और निर्दोषता निष्कलंकता होनी चाहिए। यहाँ पर प्रत्येक मूलगुणों का वर्णन किया जाता है। **पाँच उदुम्बरफल –बड़फल, पीपलफल, ऊमरफल, पाकरफल और अंजीर ये पाँच उदुम्बरफल कहलाते हैं। इनमें असंख्यात जीव रहते हैं, जो प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते हैं। इनके खाने से त्रस जीवों की हिंसा का, संकल्पी हिंसा का दोष लगता है। इन त्रस जीवों के शरीर में रक्त, मांस, हड्डी, चर्बी, मैदा, मज्जा आदि दुर्गन्धित पदार्थ होते हैं। ये शरीर सात धातुओं और सात उपधातुओं से युक्त होते हैं। इन उदुम्बर फलों को और इनके ही समान और भी फलों को खाने से मांस आदि धातुओं और उपधातुओं के खाने का दोष लगता है, पाप का बंध होता है।**

प्रश्न– 477 मद्यत्याग मूलगुण किसे कहते हैं?

उत्तर **मद्यपान करने से, शराब पीने से नशा आता है जिससे जीव हेय उपादेय का, कर्तव्याकर्तव्य का, मानमर्यादा का, माँ बहिनों के सामने सही गलत का विवेक खो बैठता है। शराब के समान जितने मादक पदार्थ हैं जैसे भांग, चरस, गांजा, तम्बाकू, बीड़ी सिगरेट, चाय, ड्रग्स, कोकिन, हेरोईन आदि पदार्थों को मद्य शब्द से ग्रहण कर लेना चाहिए। इस कारण शराब के साथी सभी नशीले पदार्थों का त्याग करना चाहिए।**

प्रश्न 478 मांस त्याग मूलगुण किसे कहते हैं?

उत्तर **बादर नामकर्म, संहनन नामकर्म, स्थिर अस्थिर नाम कर्मोदय से, आंगोपांग नामक कर्मोदय से तथा औदारिक शरीरनामकर्मोदय से युक्त जीवों की विराधना से, हिंसा से मांस प्राप्त होता है। जो संख्यात असंख्यात और अनन्त जीवों का पिण्ड है तथा प्रतिक्षण इतने जीव जन्म लेते हैं और मरण को प्राप्त होते हैं। इसी तरह पंचेंद्रिय त्रस तिर्यंचों के अण्डे भी संख्यात असंख्यात और अनन्त जीवों के पिण्ड हैं क्योंकि अण्डे गर्भज जीवों के रजोवीर्य के मिश्रण से उत्पन्न होते हैं तथा मांस की उत्पत्ति गर्भजन्म वाले और सम्मूर्च्छन जन्मवालों के शरीर से भी उत्पन्न होता है। अतः ऐसे मांस अंडे आदि के त्याग को मांस त्याग मूलगुण कहते हैं।**

प्रश्न– 479 मधु त्याग नामक मूलगुण किसे कहते हैं?

उत्तर **मधुमक्खियों के वमन स्वरूप मधु को छोड़ना चाहिए क्योंकि मधुमक्खियां अनेक सड़े गले फल**

फूल, मलमूत्र कफ आदि से रस चूस चूसकर लाकर अपने छत्तों में तथा रक्तमांस पीप आदि से चूसकर लाकर अपने छत्ते में रखती हैं, इकट्ठा करती हैं, उस छत्ते में उनके संख्यात असंख्यात आदि अण्डे भी रहते हैं, अपने शरीर के योग्य द्रव्य क्षेत्रकाल और भाव की अनुकूलता के मेल से सम्मूर्च्छन अण्डे और इनके शरीर की रचना हो जाती है इसी से मधुमक्खियां जन्म धारण करती हैं, मधु को प्राप्त करने के लिए शिकारी लोग काला कम्बल लपेटकर छत्ते के पास जाकर नीचे से धुआं करते हैं, जिसके भय से जीवन में आया हुआ संकट समझकर कुछ तो निकल कर इधर उधर भाग जाती हैं, कुछ असमर्थ होकर या लोभ के कारण भाग नहीं पातीं तो वह शिकारी उन मधुमक्खियों को तथा अण्डों को निचोड़ कर रस निकाल लेता है और यह रस मधुमक्खियों का वमन है। महान अशुद्ध है। उस मधु की एक बूंद को खाने से सात गांवों को जलाने से जो पाप होता है उतना पाप एक बूंद शहद को खाने से होता है। फिर खाने वाले तो एक बूंद न खाकर पचासों ग्राम शहद खा लेते हैं तब उन्हें कितना कर्म का बन्ध होता है यह सर्वज्ञ ही जाने। यहाँ एक बूंद शहद की खाने से जो सात गांव जलाने के पाप के बराबर कहा है वह हिन्दु साहित्य से कहा है किन्तु जैनाचार्यों ने कहा है कि यदि ये एक बूंद के जीव चिड़िया बनकर उड़े तो तीनों लोकों में न समाये इतने जीव हैं। इसलिए इस पाप से बचने के लिए अहिंसावादियों को इस मधु का और मधु के समान अन्य वस्तुओं का भी त्याग करना चाहिए तभी यह मूलगुण कहलायेगा, अन्यथा नहीं। मधु के बदले औषधि के साथ गुड़ शक्कर की चासनी का प्रयोग करना चाहिये जिससे धर्म की विराधना नहीं होगी।

प्रश्न– 480–483 जल किसे कहते हैं? अनछना जल किसे कहते हैं? इस अनछने पानी को पीने से क्या हानि है? त्याग क्यों कराया?

उत्तर **जल नाम कर्मोदय से प्राप्त पर्याय को जल कहते हैं अथवा जल ही जिसका शरीर है उसे जल कहते हैं। जिस जल में संख्यात असंख्यात और अनन्तजीव मौजूद हैं, बादर और सूक्ष्म जीवों से युक्त है तथा अनेक जीव प्रतिक्षण उत्पन्न होते हैं और मरते हैं सो उसे अनछना जल कहते हैं। आचार्यों ने पानी छानकर पीने को कहा है या कहा था किन्तु आजकल आलसी जैन पुण्य पाप का, हिंसा अहिंसा का, कर्तव्य अकर्तव्य को बिना विचारे चाय छानने की छन्नी से या प्लास्टिक की जाली से छानकर रख लेते हैं। जब मन में आया तब निकालकर पिया और पिलाया। जबकि आचार्यों ने छने जल की मर्यादा एक मुहूर्त की बताई है, विधि पूर्वक छानकर एक मुहूर्त के अन्दर प्रयोग में लिया तो पानी छानकर पिया पिलाया कहलायेगा अन्यथा अनछना पानी पिया पिलाया। जो होटलों में, बाजारों में, विवाहादि कार्यों में, सामूहिक भोजनों में अनछने पानी का प्रयोग होता है, जिन जैनों ने पानी छानकर पीने का नियम लिया है वे उक्त स्थानों के भोजन का त्याग करें अन्यथा जैनत्वपने में सन्देह है कि ये महाशय जैन हैं या अजैन। मोही प्रमादियों ने नलों की टोंटियों में या हेंडपम्पों में मलमल जैसा या पतला कपड़ा बांध दिया तब टंकी से पानी आया और नल खुला रहने से पानी नीचे गिर गया या गिरा लिया। जीव उसी नल की टोंटी में बंधे हुए कपड़े में रह गये वे नीचे गिर नहीं सकते क्योंकि कपड़ा बांध रखा**

है और वापिस नहीं जा सकते क्योंकि नल बन्द किया है, अतः फांसी की सजा के समान बिना सहारे के बीच बीच में ही घुट घुट कर के मर गये, घोंट घोंट कर मार दिये गये। उनका शरीर भी सप्तधातुओं और सप्त उपधातुओं से रहित या सहित होने के कारण वह पानी जब पुनः उन जीवों के शरीर से स्पर्शकर आ रहा है, मुर्दों पर से आने के कारण मांस, हड्डी, चर्म, रक्त, चर्बी, मैदा आदि के खाने पीने से अपना ही निजधर्म या जिनधर्म नाश को प्राप्त हो जाता है अथवा ऐसे पानी के पीने से अपना मोक्षमार्ग ही नष्ट हो जाता है। **उदाहरण** **राजा जब अपराधी को फांसी की सजा सुनाते थे तो फांसी लगाने वाले अपराधी के गले में फंदा फंसाकर ऊपर नीचे के सहारे को छोड़कर बीच में लटकाकर घोंट घोंट कर मार देते थे, कोई सुनने वाला नहीं, देखने वाला नहीं था। इसी तरह आजकल इन प्रमादी जैनों ने प्रमाद पूर्वक कपड़े की थेली बांधकर उस थेली में आये हुए जीवों को बीच में लटकाकर घोंट घोंट कर मार दिया, वे जीव वापिस जा नहीं सकते क्योंकि नल बन्द कर दिया है और नीचे गिर नहीं सकते अतः वे जीव वहीं पर घुट घुट कर मर गये। जब की राजा अपराधी को मारता है तो ये जैनी निरपराधी को मारते हैं, राजा कभी कभी अपराधी को समाज और देश के सुधार के लिए फांसी की सजा सुनाता है और ये अहिंसावादी बन कर नित्यप्रति संख्यातासंख्यात और अनन्त निरपराधी जीवों को मारता है। यदि फांसी देने वाला राजा नरक का पात्र होता है तो इतने निरपराधी जीवों को मारने वाले नरक के पात्र क्यों न होंगे? नरक में क्यों नहीं जायेंगे? अर्थात् अवश्य ही जायेंगे। ये भगवान महावीर के भक्त अनुयायी बनकर भी 'जिओ और जीने दो' 'महावीर की प्यारी वाणी पिओ छानकर पानी' का नारा लगाकर भी निरपराधी मूक प्राणिओं को बिना संकोच के स्वयं अपने हाथ से मार डालते हैं, मांसाहारियों के समान बिना दया के पी लेते हैं, गीजर में सीधी लाइन जोड़कर अनछने पानी में रहने वाले त्रस जीवों को उग्रवादियों की तरह जलाकर मार डालते हैं, जिस पानी की जीवानी छानने के बाद यथास्थान पहुंचाई जाती है वही पानी छानकर पीना कहा जाता है, शेष नहीं। पानी छानकर पीने का, प्रयोग में लाने का उद्देश्य है जीव रक्षा करना। नल, हैंडपंप आदि का पानी अनछना पानी ही कहलाता है क्योंकि इन स्थानों के पानी की जीवानी यथास्थान नहीं पहुंचाई जाती है, जीव रक्षा नहीं हो सकती है। इन नलादि का पानी पीने वाला केवल नाममात्र से बोलता है कि हम पानी छानकर पीते हैं। इस प्रकार पानी पीने में पाँचों पाप आ जाते हैं। जैसे पानी को हिलाने डुलाने, फैलाने से, पिलाने से, नहाने धोने से जीवों की हिंसा का पाप हुआ, अनछना पानी पिया और बोला गया कि मैंने पानी छानकर पिया अतः झूठ पाप हुआ, देवशास्त्रगुरु की आज्ञा का पालन नहीं किया अतः चोरी पाप हुआ और उपयोग का परिणमन पर के साथ में होने से, प्रमाद सहित परपदार्थों में रमण होने से कुशील पाप, मैथुन पाप हुआ, विषय कषायों में प्रवृत्ति होने से भाव परिग्रह पाप तथा बाह्य सामग्री का ग्रहण होने से द्रव्य परिग्रह पाप इस कारण अनछना पानी पीने से सभी प्रकार के पाप और व्यसन आ जाते हैं क्योंकि आजकल का मानव अपनी खोटी आदत को बदलने में मृत्यु जैसा अनुभव करता है। वे सभी पाप बाह्य में दिखें या न दिखें, स्वीकारें या न स्वीकारें किंतु कहें या न कहें अपने आप बिना बुलाये आ जाते हैं।** आलोचना पाठ में पढ़ते हैं–"जलछान जिवानी कीनी सोहू

पुनः डार जु दीनी। नहिं जल थानक पहुंचाई क्रिया बिन पाप उपाई।।'' जल छानने के बाद जीवानी को जहाँ कहीं डाल दिया, यों ही निचोड़ दिया या छोड़ दिया और यथास्थान नहीं पहुंचाई। इस प्रमाद रूप क्रिया से एकमात्र पाप का ही आश्रवबन्ध होता है जिससे पुनः पुनः संसार भ्रमण करता रहा। दुःखी पर दुःखी हुआ, सुखी नहीं हुआ।

प्रश्न— 484—486 आजकल सर्वत्र नगरपालिका की टंकी के नल से, पम्प, ट्यूबवैल से पानी आता है, कुंए सर्वत्र बन्द हो गये और हो रहे हैं, नदियों का पानी पीने जैसा नहीं रहा तब क्या करें? कुछ साधु वर्ग भी हैंडपम्प का पानी पीने लगे हैं, अभिषेक पूजन भी होने लगा है।किन्हीं गणिनी आर्यिकाओं ने पुस्तकों में हैंडपम्प के पानी का समर्थन किया है, पीने योग्य है ऐसा लिखा है और वे भी अनेक शास्त्रज्ञ लेखक बनकर भी पीने लगी हैं तब ऐसी कठिन समस्या में हम श्रावकगण क्या करें?

उत्तर नहीं, कुंए अपने आप बन्द नहीं हुए हैं किन्तु प्रमादी आलसी जैनों ने ''मैं सेठ तूँ सेठानी कौन भरेगा पानी'' जैसी कहावत के अनुसार कुंए से पानी निकाला नहीं तब खराब हो गया पीने के अयोग्य हो गया जैसे सुस्वादु गंगा का सुन्दर जल भी लवणसमुद्र के साहचर्य से या गन्दे पानी के संसर्ग से पेय पानी अपेय पानी हो जाता है। इसी तरह सब प्रकार से शुद्ध सुस्वादु कुंए का जल भी चारित्रहीन, अविवेकी जनों के आश्रय से गन्दे आचरण वाले मनुष्यों के माध्यम से पीने के लायक नहीं रहा। जहाँ जंगलों में जनता थोड़ी है वहाँ नल नहीं है, हेंडपम्प नहीं है, नगरपालिका की टंकी भी नहीं है तो वहाँ के कुंए भी खराब नहीं हुए किन्तु साफ सुगंधित, सुरक्षित हैं, जंगली मनुष्य उसी का पानी पीते हैं, स्वास्थ्य अच्छा रहता है। कोई बीमारी नहीं आती तथा शहरों के धनवान और प्रमादी जीवों ने अपना जीवन बिगाड़ा तो बिगाड़ा किन्तु पालतु पशुओं का, कुत्तों का भी जीवन बिगाड़ा। यदि कुंए से पानी पर्याप्त मात्रा में निकलता रहता, तो कभी खराब न होता, अपेय नहीं बनता। हैंडपम्प का, ट्यूबवैल का, नल का पानी लोकदृष्टि से या आँखों से देखने पर शुद्ध साफ होने पर भी आगम दृष्टि से, धर्म की दृष्टि से ठीक नहीं है, पाप को बढ़ाने वाला है क्योंकि उसकी जीवानी यथास्थान नहीं पहुंचाई जाती है, न पहुंचाई जा सकती है। इन धातुओं के कृत्रिम यंत्रों की शुद्धि हो सकती है क्या? हेंडपम्प, ट्यूबवैल, नल सार्वजनिक होने से सभी सदाचारी असदाचारी, शराबी मांसाहारी, सूतकपातक वाले, जमादार जमादारिनी, मासिकधर्म वाली, कुत्ते, कौअे, सुअर आदि पशुपक्षी मुँह मारते जाते हैं, खाज खुजाते हैं, पेशाब भी कर जाते हैं। कृत्रिम धातुओं की, बर्तनों की शुद्धि अग्नि में तपाने से होती है। तब जलयन्त्र को या गैस सिलेन्डर को कैसे शुद्ध करोगे? यन्त्र संचालन से, यंत्र पीड़न से जीव तो पहले ही मर गये या मर जाते हैं, जो कुछ भाग्य से बच गये तो वे जीवानी यथास्थान सावधानी पूर्वक न पहुंचाने से मर गये, सूखकर उसी कपड़े की थैली में चिपक गये या विरुद्ध सामग्री के मिल जाने से मारे गये। यदि कहो कि उसी पाइप के बगल में जल की सतह तक दूसरा पाईप लगा दिया जाय तो उसके सहारे जीवानी पहुंचाने की व्यवस्था हो सकती है सो

भी ठीक नहीं है? क्योंकि जीवों की विराधना या मर जाने के बाद क्या पहुंचाना जैसे किसी मनुष्य की मृत्यु के बाद में औषधि खिलाना पिलाना, लगाना व्यर्थ है उसी तरह यन्त्र पीड़न से जीवों के मर जाने के बाद फिर जलाशय में पहुंचाना व्यर्थ है।

प्रश्न— 487 कुंए को भी सब छूते हैं, अनेक जन्तु जन्मते मरते हैं, मलमूत्र क्षेपण करते हैं तो उसकी शुद्धि कैसे हो?

उत्तर नहीं, वो तो जलाशय हैं उसमें कृत्रिम धातु नहीं है जबकी हेंडपम्प आदि कृत्रिम धातुओं से निर्मित हैं जो स्वाभाविक जलाशय हैं उनमें सूर्य की किरणों का, हवा का सीधा सम्बन्ध होनेसे जल स्वच्छ शुद्ध और पेय बना रहता था, अभी भी पेय है। पुनः कोई प्रश्न करें कि आजकल कुंए से पानी भरने वाले, भरने वालीं भी जीवानी बाहर डाल देते हैं या ऊपर से ही पटक देते हैं? आपका प्रश्न सत्य है पर थोड़ा सोचो यह दोष आगम का नहीं है, न परम्परागत पद्धति का है किन्तु यह दोष प्रमादियों का, अधर्माचरण करनेवालों का है। जीवानी को यथास्थान पहुंचाने के लिए कड़े की बाल्टी बनवाना चाहिए या कुंए की दीवार को ऊपर से नीचे पानी की तलहटी तक छने पानी से पूरी गीली कर फिर जीवानी पहुंचाई जा सकती है इस कारण आगम की मर्यादा का उल्लंघन नहीं होगा, न धर्म की हंसी होगी तथा अहिंसा धर्म का पालन होगा, साधुवृत्ति का पालन होगा। कुंए आदि जलाशय को कोई भी मनुष्य पक्षी पशु सीधा स्पर्श नहीं करते क्योंकि जलाशय बहुत गहरे होते हैं पानी स्वयं छन्ना है, गन्दी वस्तु को स्वयं नीचे या किनारे में दबा देता है किनारे में डाल देता है। जो पशु जलाशय को स्पर्श करते हैं वे बाह्य किनारे को छूते हैं। पानी को रस्सी बाल्टी मटकी आदि से निकालते हैं जो बीच का पानी होता है। कुंए आम जनता के लिए नहीं होते हैं, न होते थे। कुंए अपनी अपनी समाज के या घरों में या मंदिरों में होते हैं। सीमित और शुद्ध होते हैं। आम जनता के लिए अलग होते थे उन कुंओं का पानी अहिंसावादी उच्चवर्ग वाले पीने के उपयोग में नहीं लेते थे क्वचित् कदाचित्, प्रयोग में लेते ही थे तो कपड़े धोने में, स्नान करने में, बाह्य में धुलाई आदि के कार्यों में लेते थे धर्मकार्यों में नहीं अतिथिदान में नहीं लेते थे।

प्रश्न— 488 नल के पानी की जीवानी तो जहाँ नल का पानी बहता है वहीं पर कर सकते हैं क्या?

उत्तर नहीं, क्योंकि नल का पानी 24 घंटे तो आता नहीं तथा बीच में सूख जाता है तो जीवानी का जल जब उस पानी में डालोगे तो बीच में ही सूख जायेगा तब उन जीवों की रक्षा कैसे होगी? क्योंकि जो जीव जहाँ का है वह उसी स्थान पर सुरक्षित और जीवित रह सकता है स्थान छुड़ा देने से छोड़ देने से दुःखी होगा, घबरायेगा अथवा मरेगा। कदाचित् मर नहीं पाया तो अवश्य ही भटकता फिरता है, दुःखी होता है और इसमें आपका प्रमाद ही मुख्य कारण है क्योंकि सारे पाप प्रमाद से होते हैं जैसे चींटी, कीड़े, मकोड़े या पशु पक्षियों के बच्चों को उनके मार्ग से, स्थान से थोड़ा हटाकर अन्यत्र छोड़ दो, रुकावट डाल दो फिर देखो वे कैसे तड़फते हैं, घबराते हैं, भटकते हैं, दिग्भ्रमित होते हैं अतः प्रत्येक जीव अपने स्थान में ही सुखी होता है, अन्यत्र दुःखी होता है। इसी कारण आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामीजी ने मूलाचारजी में मुनियों के लिए धूप से

छाया में, छाया से धूप में, भूमि के रंग बदलने के स्थान में सूखी भूमि से गीली भूमि में या गीली भूमि से सूखी भूमि में परिवर्तन करते समय मयूरपिच्छिका से शरीर का, हाथ पैर का प्रतिलेखन कर यानि झाड़ कर जिस स्थान के जीव हैं उनको उसी स्थान में छोड़कर आगे बढ़ना चाहिए अन्यथा प्रमाद होने से महाव्रतों की और की हुई प्रतिज्ञा की विराधना अतिचार अनाचार रूप से हो सकती हैं जिससे अहिंसा महाव्रत घाता जायेगा। शहरों में, देहातों में नल नालियों से, गटरों से होकर आते जाते हैं तथा कभी–कभी नलों की पाइप लाइन टूट फूट और खुल जाती है तब उस समय पानी का परस्पर में आदान प्रदान होकर, सम्मिश्रण कर मलमूत्र के साथ आता है। उस पानी के साथ मेंढक मछलियों के टुकड़े भी आ जाते हैं या इनके शरीर नल में फंस जाते हैं और मांस पिण्ड से स्पर्शित पानी पीने के लिए आता है। इन नलों के कारण, प्रमादियों की महिमा से कुंए बन्द हो रहे हैं तो धर्मायतनों के लिए आहारदान, अभिषेक पूजा के लिए, महापाप से बचने के लिए, अशुद्धि से हटने के लिए, अपने घरों में, मंदिरों में, धर्मशालाओं में कुंए जैसा पक्का गड्ढा सीमेंटेड कराकर फिर वर्षा के समय छत को पूर्ण रूप से साफ स्वच्छ कर प्रथम वर्षा के जल से धोकर पानी बाहर निकाल दे बाद में फिर जितनी वर्षा हो वह पूर्णपानी पाईप द्वारा उस गड्ढा में भर दो वह पानी प्रत्येक धर्मकार्यों में प्रयोग कर सकते हैं जैसे गिरनारजी सिद्धक्षेत्र की प्रथम टोंक के मंदिर और धर्मशाला में, पालीताना के पहाड़ के मंदिर में, गजपंथा के पहाड़ में, अहमदाबाद, गुजरात, कलोल आदि अनेक जगहों पर उसी पानी से धर्मकार्य साधे जाते हैं इसी तरह मारवाड़ में सैकड़ों जगहों में ऐसे टांके बने हुए हैं जिसका श्रावकगण पानी हर वक्त उपयोग में लेते हैं अतः जिस जलाशय की जीवानी यथास्थान सावधानी पूर्वक पहुंचाई जा सकती है वही पानी पीने योग्य है अन्यथा पीने के लिए अयोग्य है।

प्रश्न– 489 पानी छानने की क्या विधि है?

उत्तर सर्वप्रथम आपको जहाँ से पानी लाना हैं वहाँ का रास्ता साफ स्वच्छ हो, मलमूत्र, चमड़ा, हड्डी, कागज, प्लास्टिक, अशुद्ध कपड़ा आदि, जीवजंतु न हों, जमीन एकदम पोली न हो, घास पत्ते पैर रखने की जगह पर न हो क्योंकि यदि ये वस्तुयें बीच रास्ते में हैं, पैर रखने की जगह में हैं तो अपने जीवन की रक्षा करने के लिए क्षुद्र जन्तु आकर छिपकर बैठ गये और आपने पैर रखा कि वे दबकर मर जायेंगे या शक्तिशाली हैं तो निकलकर आपको भी काट सकते हैं अतः समिति पूर्वक, मन को स्थिर कर, मार्ग को चार हाथ प्रमाण भूमि को देखकर, स्वपर की रक्षा करते हुए गमन करना चाहिए। जलाशय के पास पहुंचकर बर्तन को, बर्तन की पैंदी को तथा बर्तन रखने के स्थान को भलीभांति देखकर, मुलायम वस्त्र से झाड़कर फिर बर्तन रखना चाहिए पानी छानने के लिए कौन कौन सी सामग्री चाहिए और कैसा स्थान हो? पैर रखने के स्थान से बर्तन रखने का स्थान ऊंचा है तो उसी स्थान पर बर्तन रखकर पानी छान सकते हैं। यदि पैर रखने का और बर्तन रखने का स्थान बराबर है तो साथ में पाटा चोकी होना चाहिए उस पर बर्तन रखकर पानी छानना चाहिए। यदि भूमि समान है तो पानी के बर्तनों में मनुष्य पशु पक्षियों के पैरों की धूली आकर बर्तन में चिपक जायेगी, अपना स्वयं का अधोवस्त्र, पैर बर्तन में लगेगा, अपना स्वयं का या अन्य का पैर और अधोवस्त्र अशुद्ध होने से पानी को भी

अशुद्ध कर देगा। चौकी पाटा, पानी छानने का पात्र, ढक्कन, जीवानी करने का पात्र, रस्सा बाल्टी छन्ना इतनी सामग्री होनी चाहिए। अपना मन वचन काय भी शुद्ध होना चाहिए अथवा द्रव्यक्षेत्र काल भाव की शुद्धि होना चाहिए तभी सातिशय पुण्य की प्राप्ति हो सकती है और ऐसा आचरण होने से चरणानुयोग शास्त्र का विश्वास सही रूप में माना जायेगा अन्यथा पाप की वृद्धि होगी। छन्ना कैसा होना चाहिए और कितने प्रमाण का होना चाहिए? छन्ना सूती या खादी का होना चाहिये। छन्ना दुहरा करने पर सूर्य के सामने देखने से सूर्य की किरणें अन्दर न आ पायें ऐसा मोटा होना चाहिए। जिस पात्र में पानी छानना है उसके मुँह से छन्ने को दुहरा कर, बर्तन की गर्दन के चारों तरफ पर्याप्त मात्रा में झूल जाय इतने प्रमाण का होना चाहिए। पानी छानने के पात्र को अंदर बाहर सर्वप्रथम मुलायम सूखे वस्त्र से साफकर, फटकार के उल्टाकर देखना चाहिए। ताकि अन्दर कोई जीव बैठा है तो बिना कष्ट के बाहर निकल जाये अन्यथा वह जीव मकड़ी आदि उसी पानी में मर जायेगी, पानी भी जहरीला हो जायेगा, परिश्रम व्यर्थ होगा, प्रमाद होने से हिंसा पाप भी होगा। इस कारण पानी छानने के पात्र को कम से कम तीन बार साफ कर, शुद्ध छने जल से धोकर फिर पीने के योग्य पानी छानना चाहिए। छन्ना प्लास्टिक का, टेरालीन, टेरीकाट, पोलिस्टर आदि का न होकर एक मात्र सूत का कॉटन का होना चाहिए, चाय आदि छानने की छन्नी से भी पानी नहीं छानना चाहिये। छने पानी से हाथ को किस प्रकार धोना चाहिए? जिस पात्र में पानी छाना है उस पात्र के मुख से सावधानी पूर्वक छन्ने के चारों कोनों को उठाकर जिसमें बिनछानी करना है उस पात्र में उस छन्ने को उल्टाकर फैला दिया फिर अपने हाथ अभी अनछने पानी के हैं अतः छने पानी के पात्र को अपनी कुहनी से थोड़ा सा टेढ़ाकर, हाथ में पानी लेकर, हाथ धोकर फिर छने पानी को उस जिवाणी वाले छन्ने के ऊपर पर्याप्त मात्रा में डालना चाहिये अन्यथा वहीं पर मर गये या टकराहट से मर जायेंगे। कोई अपने को ऊपर से पटक दे तो अपने को कैसा लगेगा? इसी तरह क्षुद्रप्राणी ऊपर से पटकने पर मर जाते हैं तो अहिंसा धर्म कैसा? कहाँ रहा? फिर बाद में तुरन्त ही वस्त्र से, ढक्कन से पानी के पात्र को ढक देना चाहिए जिससे पात्र के अन्दर कोई पक्षियों के पंख बीट धूल तिनका आदि न गिर जाय, यदि गिर गये तो जीवों की विराधना भी होगी अतः ढककर लाना और ले जाना चाहिए।

प्रश्न– 490–91 वैज्ञानिकों और तीर्थंकरों ने एक बूंद पानी में कितने जीव बताये हैं?

उत्तर अनछने पानी की एक बूंद में वैज्ञानिकों ने 36450 जीव तथा जैन तीर्थंकरों ने संख्यात, असंख्यात त्रस जीव और अनन्तानन्त सूक्ष्मजीव तथा बादर जलकायिक असंख्यातासंख्यात जीव बताये हैं यदि ये एक बूंद पानी के जीव चिड़िया बन के फैल जायें तो तीनों लोकों में न समायें।

प्रश्न– 492 अनछने पानी की विराधना करने से कितना पापकर्म का बन्ध होता है?

उत्तर अनछने पानी के प्रयोग से संख्यातासंख्यात और अनन्त जीवों की विराधना का पाप होता है।

प्रश्न– 493 इस पापकर्म को दूर करने के लिए क्या प्रायश्चित्त होना चाहिए?

उत्तर पानी छानते समय पानी की एक बूंद नीचे गिर जाने से उत्पन्न हुए पापकर्म को नष्ट करने के

लिए जिसके माध्यम से चौके का काला चंदोवा स्वच्छ, सफेद हो जाये तब समझना कि हमारा प्रायश्चित्त पूरा हुआ ऐसा समझना चाहिये।

प्रश्न– 494 कैसे मालुम हो कि असिधारा व्रत इनके है और प्रायश्चित्त पूरा हो गया तथा उस पानी में उत्पन्न हुए जीवों से अपना क्या संबंध है?

उत्तर प्रतिदिन जो दम्पति मंदिर में दर्शन करने आयें और आप उनको भोजन कराना तथा जिनको भोजन कराने से चंदोवा सफेदीपने को प्राप्त हो जाये तब समझना कि हाँ मेरा प्रायश्चित्त पूरा हो गया। हाँ उस सेठ सेठानी का नाम विजय सेठ और विजया सेठानी था। इस पानी में जो जीव तुम्हारे निमित्त से जन्म लेते हैं या मरते हैं सब उनसे तुम्हारे पूर्वभवों में सगे सम्बन्धी, माता पिता, पुत्र पुत्री, भाई बन्धु का रिश्ता बन चुका है क्योंकि इस जीव ने इस संसार में अनंत परिवर्तन किये हैं और प्रत्येक जीव का प्रत्येक बार किसी न किसी प्रकार का रिश्ता सम्बन्ध बन चुका है इसलिए तुम्हारे पास जो जिन जीवों का संयोग वियोग हो रहा है वह सब अपना ही है।

प्रश्न– 495–96 मोक्षमार्गीश्रावक और साधुगण किस प्रकार के पानी का प्रयोग करते हैं? कैसा प्रयोग नहीं करते?

उत्तर मोक्षमार्गी श्रावक और साधूगण अप्रासुक सचित्त जल का प्रयोग कर अनन्त पाप कर्मों का उपार्जनकर, चतुर्गति में भ्रमण करता हुआ नाना प्रकार के दुःखों को भोगता है। इसलिए अपनी रक्षा करने के लिए उन जीवों की रक्षा करना चाहिए। अहिंसावादी सामान्य श्रावक और चौथी प्रतिमा तक का श्रावक विधिपूर्वक छने जल का पीने में प्रयोग कर सकता है। पाँचवीं प्रतिमा वाला श्रावक पानी को गर्मकर या कुछ मिलाकर अचित्तकर पी सकता है तथा इसके आगे सभी प्रतिमा वाले और साधुगण अचित्त जल का प्रयोग करते हैं। पीने के योग्य पानी में सोंफ इलायची, धनिया, जीरा, लौंग, केशर आदि मिलाकर कि उस पानी का रूप रस गंध स्पर्श बदल जाय या गर्म जल को दे सकते हैं या वे पीने में ले सकते हैं। ऐसे जल की मर्यादा 6 घंटे की होती हैं। कुछ ज्यादा गर्म किया है कि दाने उठने लगे तो 12 घंटे की तथा उबाल आ जाये तो 24 घंटे की मर्यादा है। ऐसा पानी व्रतियों के पीने योग्य है।

प्रश्न– 497 निर्दयी दया रहित गृहस्थों ने क्या किया?

उत्तर आजकल गृहस्थों के घरों में, लोभियों ने धर्मशाला रूपी भोगशालाओं में गर्म पानी से स्नान करने के लिए स्नानघरों में पानी की टंकी से सीधा सम्बन्धकर गीजर लगा लिया या लगा दिया या लगवा दिया जिसमें अनछना जल गरम किया जैसे यहाँ पर मनुष्यों को, पशुओं को जिन्दा जला दिया जाता है वैसे ही उस गीजर में असंख्यात प्राणी जिन्दा जला दिये जाते हैं। यही मनुष्यों की महान निर्दयता है जो अपना हित अहित नहीं सोचते वह दूसरों का क्या सोच सकते हैं?

प्रश्न– 498 मुसलमान खटीकादि कसाई के नाम तो बदनाम हो गये हैं किंतु अनछना पानी, अभक्ष्य भक्षण करने वाले अनेक जीवों की विराधना करने वाले नामधारी जैन बदनाम क्यों नहीं?

उत्तर वे बिचारे मुसलमान, खटीक, कसाई तो बदनाम हो गये हैं, हत्यारे हैं, हिंसक हैं किन्तु वास्तव

में विचारा जाय तो ये अहिंसावादी महावीर की सन्तान कहलाने वाले किंचत् शारीरिक सुख के लिए संख्यातासंख्यात अनन्त प्राणियों को जिन्दा जलाकर मार डालते हैं। चमड़े के जूते चप्पलें आदि घर में रखे हुए हैं, उपयोग में लेते हैं, नेलपॉलिश, लिपिष्टिक, कंदमूल, अचार मुरब्बा आदि का प्रयोग करने वाले हैं तो ये हत्यारे क्यों नहीं? अवश्य ही हत्यारे हैं इसमें दो मत नहीं हैं। अतः अहिंसावादी जैनों अथवा सभी अहिंसावादी प्रजा को इन कार्यों से कोसों दूर रहना चाहिए।

प्रश्न– 499 अप्रासुक जल किसे कहते हैं?

उत्तर बिना छने जल को अथवा त्रस जीवों से युक्त जल को अप्रासुक जल कहते हैं।

प्रश्न– 500–501 सचित्त जल किसे कहते हैं? सचित्त जल के कितने भेद हैं?

उत्तर जीव सहित जल को सचित्त जल कहते हैं? इसके दो भेद हैं। 1. वर्तमान काल की अपेक्षा सचित्त जल 2. भविष्य काल की अपेक्षा सचित्त जल।

प्रश्न– 502 वर्तमान नय की अपेक्षा से सचित्त जल किसे कहते हैं?

उत्तर जिसमें संख्यात असंख्यात त्रस जीव और अनंत स्थावर जीव मौजूद हैं उसे वर्तमान नय की अपेक्षा सचित्त जल कहते हैं जैसे गर्भवती महिला।

प्रश्न– 503 भविष्य नय की अपेक्षा सचित्त जल किसे कहते हैं?

उत्तर छने जल में वर्तमान में त्रस जीव नहीं हैं किन्तु भविष्यकाल में मर्यादा के बाहर होने से त्रस जीवों से सहित होने के योग्य है, मर्यादा समाप्त होने पर त्रस जीव उसमें उत्पन्न हो जायेंगे इस कारण भाविनय की अपेक्षा योनिभूत होने से सचित्त जल कहते हैं अथवा छने जल में भी बादर जलकायिक जीव तो मौजूद हैं उसकी अपेक्षा सचित्त जल कहते हैं जैसे क्वांरी कन्या को स्त्री कहना जो भविष्य में गर्भधारण करेगी क्योंकि छना जल या अनछना जल जलकायिक जीव की अपेक्षा सर्वकाल सचित्त जल ही है कारण जलनामकर्म के उदय से जल ही शरीर है या शरीर ही जल है ऐसा जलकायिक जल ही सचित्त जल है।

प्रश्न– 504 योनिभूत जीव को भी वर्तमान की अपेक्षा जीव है ऐसा मान लो तो क्या आपत्ति है?

उत्तर नहीं, यदि योनिभूत जीव को वर्तमान में जीव सहित मान लिया जाय तो गर्म जल में, छने जल में और अनछने जल में कोई अन्तर नहीं रह सकता है तीनों एक ही हुए जैसे क्वांरी कन्या में गर्भ धारण करने की शक्ति को ही गर्भवती मान लिया जाय तो क्वांरी कन्या कैसे कहलायेगी? योनिभूत शक्ति तो भविष्यकाल की होती है और व्यक्ति वर्तमान की होती है।

प्रश्न– 505 प्रासुक जल किसे कहते हैं?

उत्तर त्रस जीवों से रहित, जलकायिक जीवों से सहित जल को प्रासुक जल कहते हैं। इसलिए ढाई द्वीप के बाहर तथा अन्तिम स्वयंभूरमण समुद्र के पहले के असंख्यात समुद्रों का जल प्रासुक है यही कारण है कि तीर्थंकर प्रकृति की सत्तावाले बालक का मेरु पर्वत पर अभिषेक करने के लिये क्षीर समुद्र का या चार समुद्रों का जल लाकर बिना छाने ही जल से अभिषेक करते हैं। अतः

त्रस जीवों से रहित जल प्रासुक कहलाता है और कर्मभूमि में छना जल प्रासुक कहलाता है। इसी कारण अहिंसावादी निर्ग्रन्थ दिगम्बराचार्यों ने मोक्षमार्गी श्रावकों को विधि पूर्वक छानकर त्रस जीवों को यथास्थान पहुँचाकर भोजनपान में प्रयोग करना चाहिए ऐसा कहा है।

प्रश्न– 506 प्रासुक जल को ही अचित्त मान लो तो इसमें क्या हानि है?

उत्तर नहीं, प्रासुक जल को अचित्त जल नहीं मान सकते हैं। यदि प्रासुक जल ही अचित्त जल है तो पाँचवीं प्रतिमा वालों को आदि लेकर मुनियों तक को आहार में दे सकते हैं फिर गर्म करने की क्या आवश्यकता है या सोंफ इलायची लौंग आदि डालने की क्या जरूरत है। अतः इस कारण छने जल को, प्रासुक जल को अचित्त जल नहीं कह सकते हैं।

प्रश्न– 507 अचित्त जल किसे कहते हैं?

उत्तर जिस जल से प्रयोगकर त्रस स्थावर जीवों को अलग कर दिया हैं और केवल जलकाय शरीर मात्र है उसे अचित्तजल कहते हैं।

प्रश्न– 508 यदि ऐसा है तो अचित जल को मुर्दा कहना चाहिए?

उत्तर आपका कहना सत्य है कि मुर्दा कहते हैं, कह सकते हैं। पर मनुष्यों जैसा या त्रस तिर्यंचों जैसा मुर्दा नहीं हैं क्योंकि जिस प्रकार इन जीवों के बादर नामकर्म, औदारिक शरीर नामकर्म, औदारिक शरीरांगोपांग नामकर्म, संहनन नामकर्म, स्थिर अस्थिर नामकर्म का उदय पाया जाता है तथा इन जीवों के शरीर में मांस, रक्त, हड्डी, चर्बी, मैदा, मज्जा, मलमूत्र पाया जाता है वैसा एकेंद्रिय स्थावर जीवों के शरीर में, धातु, उपधातु, मलमूत्र नहीं पाया जाता इस कारण एकेंद्रिय जीवों के शरीर को मुर्दा कहने में कोई आपत्ति नहीं हैं। एकेंद्रिय जीवों के शरीर मुर्दा होने पर भी ग्राह्य है, पेय है, पवित्र है और शुद्ध है यदि सड़ जाये या मलादिक का संसर्ग हो जाये तो अपेय हो जाता है। त्रस जीवों के शरीर मुर्दा होने पर भी अग्राह्य है, अपेय है, अपवित्र है अशुद्ध है।

प्रश्न– 509 जिस प्रकार प्रत्येक वनस्पति के सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित भेद बतलाये हैं वैसे जल के भेद क्यों नहीं किये?

उत्तर नहीं किये क्योंकि जिस प्रकार वनस्पति के सहारे बादर निगोदिया जीव रहते हैं वैसे ही पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, देव, नारकी, आहारक शरीर, आहारकशरीरांगोपांग और केवलियों के शरीर में और सिद्धों के आत्म प्रदेशों में बादर निगोदिया जीव नहीं रहते हैं। अतः सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित ये भेद वनस्पति के है, शेष जीव समासों के नहीं इसलिए जल के ऐसे भेद नहीं किये और न हो सकते हैं। जैसे जल में त्रसादि जीवों के मिश्रण हो जाने पर सम्यक्विधि से छानकर अलग कर सकते हैं वैसे ही वनस्पतियों में निवास करने वाले बादरनिगोदिया जीव या त्रस जीव प्रयत्न करने पर भी अलग नहीं कर सकते हैं।

प्रश्न– 510 अप्रासुक जल और सचित्तजल में क्या अन्तर हैं?

उत्तर दोनों प्रकार के जलों में अन्तर नहीं है, दोनों जल समान है, दोनों में त्रस स्थावर जीव पाये जाते हैं अथवा अप्रासुक जल में त्रसस्थावर जीव मौजूद हैं किन्तु सचित्तजल में त्रस जीव कदाचित्

पाये जाते है और कदाचित् नहीं किंतु सचित्त जल में जलकायिक जीव मौजूद है।

प्रश्न– 511 प्रासुक जल और अचित्त जल में क्या अन्तर है?

उत्तर प्रासुक जल में त्रसजीव न होने पर भी जलकायिक जीव मौजूद होने से सचित्त है और अचित्त जल में वर्तमान नय की अपेक्षा वर्तमान में कोई भी किसी प्रकार से त्रस स्थावर जीव न होने से अचित्त है, जड़ है, केवल शुद्ध एकमात्र जलस्वरूप में पुद्गलपिण्ड है यही अन्तर है। अतः मोक्षमार्गियों को, मोक्षमार्ग में आने वालों को संयम पालने के लिए, इंद्रियभंजन के लिए, मन वश में करने के लिए, रत्नत्रय की आराधना करने के लिए विधि पूर्वक छानकर उबालकर अचित्त किया गया जल ही पीना चाहिए। इस कारण प्रासुक जल, अप्रासुक जल, सचित्तजल का त्याग कर अचित्त जल को पीना चाहिए और अचित्त जल से भोजन बनाना चाहिये।

प्रश्न– 512–513 जल के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर जल के कितने भेद हैं यह आपने जो प्रश्न किया है सो अच्छा है। आधार भेद से अनेक भेदवाला है। सूक्ष्म जल नामकर्मोदय से प्राप्त पर्याय को सूक्ष्म जल कहते हैं और बादर जल नाम कर्मोदय से प्राप्त पर्याय को बादर जल कहते हैं। जल, जलकाय, जलकायिक और जलजीव ये चार भेद जल के समझना चाहिए।

प्रश्न– 514 जल किसे कहते हैं?

उत्तर आधार भेद से जल के अनेक भेद होने पर भी जल सामान्य की अपेक्षा भेद न होने से सामान्य रूप से उसे जल कहते हैं जैसे वर्षा का जल, ओस का जल, ओला का जल, बर्फ का जल, चंद्रकांत मणि का जल, झरना का जल, नदी का जल, तालाब का जल, कुंए का जल, समुद्र का जल को संग्रहनय या अभेद नय की अपेक्षा सामान्य जल कहते हैं। इसमें सचित्त, अचित्त, प्रासुक, अप्रासुक भेद नहीं हैं, सामान्य की अपेक्षा से कहा है।

प्रश्न– 515 जलकाय किसे कहते हैं?

उत्तर जिस जल से जीव निकल चुका है या निकाल दिया है शरीर मात्र है उसे जलकाय कहते हैं। अचित्त जल को जलकाय कहते हैं।

प्रश्न– 516 जलकायिक जीव किसे कहते हैं?

उत्तर जीव सहित जल के शरीर को जलकायिक कहते हैं अथवा सचित्तजल को जलकायिक जीव कहते हैं।

प्रश्न– 517 जलजीव किसे कहते हैं?

उत्तर जिस जीवने पूर्व शरीर छोड़ दिया है और नवीन शरीर प्राप्त नहीं किया है किन्तु मध्य की अवस्था में है, विग्रहगति में है उसे जल जीव कहते हैं अथवा जल नामकर्मोदय युक्त नवीन जल के शरीर को धारण करने के लिए गमन कर दिया है तो उस मध्य की अवस्था को जलजीव कहते हैं इसी तरह पृथ्वी, अग्नि और वायु को समझना चाहिए।

प्रश्न– 518–20 आहार किसे कहते हैं? आहार कितने प्रकार का होता है? आहार

के स्वामी कौन–कौन जीव हैं?

उत्तर आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इंद्रियपर्याप्ति, श्वांसोच्छ्वास पर्याप्ति, भाषापर्याप्ति और मन पर्याप्ति तथा औदारिक शरीर, वैक्रियिक शरीर और आहारक शरीर के योग्य पुद्गलवर्गणाओं के ग्रहण करने को आहार कहते हैं। आहार 6 प्रकार का है। 1. कर्माहार 2. नोकर्माहार 3. ओजाहार 4. मानसिकाहार 5. लेपाहार 6. कवलाहार। स्वामीः– कर्माहार और नोकर्माहार केवलियों के होता है। ओजाहार अण्डस्थ जीवों के होता है, चारों प्रकार के देवों के मानसिकाहार या अमृताहार होता है, कर्माहार नारकियों के होता है। लेपाहार वनस्पति जीवों के, शेष चार एकेंद्रियों के कर्माहार और नोकर्माहार होता हैं, कवलाहार त्रस जीवों के होता है।

प्रश्न– 521–23 यहाँ किस आहार से प्रयोजन है? कवलाहार के कितने भेद हैं? नाम कौन–कौन हैं?

उत्तर यहाँ पर कवलाहार से प्रयोजन है क्योंकि सम्यग्दर्शन को या रत्नत्रय को प्राप्त करने की भूमिका का वर्णन चल रहा है तथा इसी आहार के त्याग से संयम, व्रत, तप पाले जाते हैं। इसी आहार में शुद्धि अशुद्धि का विवेक उत्पन्न होता है, शेष आहारों में नहीं। इसी आहार को अशुद्ध रूप में ग्रहण करने से मोक्षमार्ग बिगड़ता है और अशुद्ध कवलाहार के त्याग से मोक्षमार्ग सुधरता है या शुद्धाहार के ग्रहण से मोक्षमार्ग प्रशस्त होता है कवलाहार के चार भेद हैं। खाद्याहार, स्वादआहार, लेह्याहार और पेयाहार। ग्रास रूप में आहार ग्रहण करने को कवलाहार कहते है।

प्रश्न– 524 खाद्याहार किसे कहते हैं?

उत्तर जो तृप्तिकारक हो, पूर्णरूप से भरपेट सेवन कर लेने पर भी तुष्टिपुष्टि बनी रहे, गरीब अमीर को सर्वत्र सामान्य परिश्रम के माध्यम से उपलब्ध हो सके या जिसके बिना प्रमादियों का जीवन टिक न सके ऐसे धान्य गेहूँ, दाल, चावल, रोटी, पूरी, शाक सब्जी आदि को खाद्याहार कहते हैं अथवा हाथ से, मुँह से सीधा ग्रास उठाकर ग्रहण किया जाय उसे खाद्याहार कहते हैं।

प्रश्न– 525 स्वाद्याहार किसे कहते हैं?

उत्तर जो सामग्री केवल आहार में स्वाद लाये या भोजन के उपरान्त मुखानन्द के लिए पानसुपारी, सोंफ, लौंग इलायची आदि खाये जाते हैं अथवा खाद्य भोजन में रुचि प्रीति स्वाद, आसक्ति बढ़ाने के लिए भोजन में मिलाकर या संस्कारित कर खाये जाते हैं उसे स्वाद्याहार कहते हैं। पर ये पदार्थ भरपेट नहीं खाये जाते यदि कोई मोहवश या अविवेकता पूर्वक खा भी ले तो पचा नहीं सकता, स्वास्थ्य की हानि हो जायेगी। जिससे भोग और योग दोनों सुखों से वंचित हो जायेगा।

प्रश्न– 526 लेह्याहार किसे कहते हैं?

उत्तर जो कवलाहार की भोजन सामग्री जिह्वा के द्वारा चाटकर खाई जाय उसे लेह्याहार कहते हैं जैसे मलाई, रबड़ी, चासनी, औषधि आदि।

प्रश्न– 527 लेह्य की जगह लेप पढ़ा जाय या कहा जाय तो क्या आपत्ति है?

उत्तर हमें कोई आपत्ति नहीं है क्योंकि आहार मार्गणा में एक स्वतन्त्र आहार लेपाहार गिनाया है और

इस आहार के स्वामी एकेंद्रिय जीव है परन्तु आप जैसे शंकाकार को कवलाहार के चार भेदों में से एक कमकर तीन भेद स्वीकार करना पड़ेगे या चौथा कोई नाम या लक्षण अलग से गिनाना होगा। लेपाहार एकेंद्रिय जीवों के होता है तो लेह्याहार मनुष्यों तिर्यंचों के होता है। यह लेह्याहार कवलाहार का भेद हैं और लेपाहार आहारमार्गणा का भेद है। आहार मार्गणा सर्वव्यापी है।

प्रश्न– 528 आजकल श्रावक मुनियों को रात्रि में तेलादि का मालिस करते हैं तो उसे लेपाहार मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर हमें कोई आपत्ति नहीं हैं किन्तु आपको सर्वप्रथम मुनियों को एकेंद्रिय जीव, अनेक भुक्त नियम वाला, रात्रिभोजन करने वाला, बैठकर या लेटकर भोजन करने वाला भी मानना पड़ेगा तथा अशुद्ध भोजन करने वाला या अशुद्धाचरण करने वालों के हाथ से आहार ग्रहण करने वाला भी मानना पड़ेगा फिर आप वैयावृत्ति किसे कहेंगे? मुनियों की सेवा कैसे करेंगे? औषधिदान कैसे देंगे? परिभाषा को बदलकर अर्थ करके अपने पद का अर्थ और कर्तव्य भी समझना चाहिए। सोलहकारणभावनाओं में से साधुसमाधि, वैयावृत्यकरण भावना का कैसे चिंतन करोगे।

प्रश्न– 529 पेयाहार किसे कहते हैं?

उत्तर जो भोजन सामग्री जिह्वा से खींचकर पीकर के पेट भरा जाय उसे पेयाहार कहते हैं। जैसे दूधरस, फलरस, धान्यरस, पानी, शर्बत आदि।

प्रश्न– 530 रात्रि किसे कहते हैं?

उत्तर लोक दृष्टि से जब स्वाभाविक प्रकाश में हस्तरेखा दिखना बन्द हो जाय तो उसे रात्रि कहते हैं। अथवा स्वाभाविक प्रकाश प्राप्त न हो किन्तु कृत्रिम प्रकाश के माध्यम से चर्या करना पड़े, संशोधन कार्य करना पड़े तो भी उसे रात्रि कहते हैं। विशेष नियमानुसार ज्योतिष की दृष्टि से सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त पर्यन्त दिन कहलाता है तथा सूर्यास्त से लेकर सूर्योदय पर्यन्त रात्रि कहलाती है तथा आगमदृष्टि से सूर्यास्त होने के एक मुहूर्त पहले तथा सूर्योदय के एक मुहूर्त काल तक रात्रि मानी जाती है क्योंकि साधुओं की स्वाध्याय प्रतिक्रमण आदि क्रियायें इसी नियमानुसार सम्पन्न की जाती है तथा आहार भी सूर्योदय होने के एक मुहूर्त बाद या सवा घण्टे के बाद प्रारम्भ हो सकता है और सूर्यास्त के एक मुहूर्त पहले या सवा घण्टे पहले आहार चर्या समाप्त कर देनी चाहिए। इसी तरह मुनियों की समस्त क्रियायें प्रारम्भ और समाप्त होती है।

प्रश्न– 531 रात्रिभोजन किसे कहते हैं?

उत्तर स्वाभाविक प्रकाश के बिना भोजन करना या कृत्रिम प्रकाश में भोजन करना या सूर्यास्त के बाद में और सूर्योदय के पहले मध्यकाल में, बीच में भोजन करना रात्रि भोजन है तथा रात्रि में तैयार किया गया भोजन दिन में करना या दिन में तैयार किया गया भोजन रात्रि में करना रात्रि में तैयार किया गया भोजन रात्रि में करना, सूर्योदय की अवस्था में पर्याप्त प्रकाश न होने से अंधेरे में या बिजली के, लालटेन के प्रकाश में भोजन करने को भी रात्रि भोजन कहते हैं।

प्रश्न– 532–34 रात्रिभोजन त्याग किसे कहते हैं? क्यों त्याग कराया? रात्रिभोजन करने में क्या दोष है?

उत्तर उपरोक्त रात्रि में संकल्प पूर्वक अरहंत सक्खियं, सिद्ध सक्खियं, साहु सक्खियं, अप्प सक्खियं, पर सक्खियं, देवता सक्खियंः— पंचपरमेष्ठी की साक्षी, शास्त्र की साक्षी, स्वयं की साक्षी, समस्त श्रावकगण, माता पिता, भाई बन्धुओं की साक्षी, देवी देवताओं की साक्षी पूर्वक चारों प्रकार के आहार के त्याग करने को रात्रिभोजन त्याग व्रत कहते हैं। इसी तरह किसी भी प्रकार का विधि या निषेघ रूप में संकल्प ग्रहण करना चाहिए किन्तु यह संकल्प मोक्ष के निमित्त होना चाहिए, भोग वासना या संसार के निमित्त नहीं होना चाहिए। जब तक यह जीव रात्रि में किसी भी प्रकार के भोजन को ग्रहण करता रहता है तब तक भले ही बाह्य लक्षणों से सरल परिणामी धर्मात्मा दिखे पर अंतरंग में तीव्र कषाय परिणामी, हीन पुरुषार्थी, शरीर का मोही, भयभीत होने से आर्तध्यानी, रौद्रध्यानी, मांसाहारी, रक्तपान करने वाला है। रात्रि में अनेक पशु पक्षी भी भोजन नहीं करते हैं उन पशुपक्षियों से भी गया बीता हो गया, यह मानव मानव न रहकर दानव राक्षस बन गया। रात्रिभोजन करने से तन मन धन और धर्म चारों नष्ट होते हैं। सम्यग्दर्शन या रत्नत्रय प्राप्त करने की भूमिका ही नहीं बनती। कदाचित् सम्यग्दर्शन या रत्नत्रय मौजूद है और रात्रि भोजन किसी भी कारण से करने लगा तो वह धर्मात्मा मोक्षमार्ग से नष्ट हो जाता है इस कारण रात्रिभोजन का त्याग कराया है। रात्रिभोजन करने वाला हीन पुरुषार्थी होता है, संसार, शरीर, भोगों का लम्पटी होता है। इसी कारण यदि लम्पटी नहीं है तो त्याग कर दे त्याग करते समय सोचता है कि हमने रात्रिभोजन छोड़ दिया तो भूखा मरना पड़ेगा, कहाँ तक भूख सहन करेंगे, कमजोर हो जायेंगे या रिश्तेदार नातेदार, मित्रमण्डली क्या कहेंगे आदि लौकिक प्रेम से पीड़ित होकर धर्म धारण नहीं करता और भी अनेक प्रकार के लौकिक तथा लोकोत्तर दोष उत्पन्न होते हैं इसलिए इन दोषों से बचने के लिए और मोक्षमार्ग प्राप्त करने के लिए या मोक्ष की प्राप्ति के लिए रात्रिभोजन का त्याग करना चाहिए।

प्रश्न— 535—37 आजकल रात्रिभोजन त्याग व्रत में केवल अन्न का त्याग कराया जाता है और श्रावकगण त्याग करते भी है तो इतने त्यागमात्र से सम्यग्दर्शन की या रत्नत्रय की प्राप्ति हो सकती है क्या? यदि नहीं तो इतना त्याग क्यों कराया जाता है? जब त्याग करने से फल की प्राप्ति नहीं होती है तो यहाँ का भी सुख गया और आत्मानन्द आया नहीं तब यहाँ से भी गया और वहाँ से भी गया ऐसा जीवन व्यर्थ गवाने से क्या फायदा?

उत्तर सम्यग्दर्शन या रत्नत्रय प्राप्त करने की भूमिका ही नहीं बनती है, न बन सकती है किन्तु केवल इतने त्याग का संस्कार पड़ा और इस त्याग संस्कार के बढ़ते बढ़ते जब पूर्ण रूप से त्याग हो जायेगा तब मूलगुण बाह्य में कहलायेगा। तभी सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की भूमिका बनती है अतः रात्रिभोजन में केवल अन्न का त्याग करना, कराना कदाचित् सार्थक है, निरर्थक नहीं जैसे पूर्वभव में राजा श्रेणिक के जीव ने खदिरसार भील की पर्याय में केवल कौवे के मांस का त्याग किया था, मातंग चाण्डाल ने चतुर्दशी के दिन फांसी लगाने का त्याग किया था, धीवर ने मछली फंसाने के जाल में प्रथम मछली को नहीं मारूंगा ऐसा नियम लिया था, शृगाल ने रात्रिभोजन का त्याग

किया था आदि ये हीन जाति वाले, हीन परिणामी, क्षुद्र प्राणी भी किंचित् त्याग के फल से भविष्य में उत्तम पद प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करेंगे। अतः त्याग करने से डरो मत, देखो किट्टिकालिमा युक्त स्वर्णपाषाण जितना तपता है, पिटता है उतना ही चमकता है। यदि स्वर्णपाषाण तपाया नहीं जाये तो चमक नहीं सकता, शुद्ध हो नहीं सकता है तब अलंकार कैसे बनेगा? न सुन्दर हो सकता है, न अलंकार बनकर मस्तिक्स पर चढ़ सकता है, न मूर्ति बन सकता है, न पूजा को प्राप्त कर सकता है, न आदर सम्मान पा सकता है। ठीक ऐसे ही यदि आप त्याग तप से डरेंगे, घबरायेंगे तो कर्मबंध से कैसे बचेंगे और महान कैसे बनेंगे? यदि आपको डरना है घबराना है तो कर्म बंध से डरो, आश्रवबंध से डरो तभी महान बन सकते हो अन्यथा आप भय के कारण कभी भी उच्चपद, श्रेष्ठपद, मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

प्रश्न– 538–541 जीव किसे कहते हैं? जीव दया किसे कहते हैं? दया के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर चेतना लक्षण वाले को जीव कहते हैं। उनकी रक्षा करने को, अभयदान देने को, सान्त्वना देने को जीवदया अनुकम्पा कहते हैं। जीवदया दो प्रकार की होती है। स्वदया और परदया।

प्रश्न– 542 स्वदया किसे कहते हैं?

उत्तर स्वयं की रक्षा करना, संसार पतन से अपने आपको बचाना, प्रमाद कषाय से अपने को परिणमन नहीं कराना उसे स्वदया कहते हैं। यह स्वदया ग्यारहवें गुणस्थान से प्रारम्भ होती है। इन गुणस्थानों के पहले नहीं क्योंकि कषाय युक्त परिणाम ही हिंसा है और सूक्ष्म लोभकषाय दसवें सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान तक होती है और तद्नुरूप परिणमन भी होता है तभी तो यहाँ तक स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध होता है इसके आगे कषायों का पूर्ण सत्ता रूप से अभाव या उदयाभाव होने से पूर्ण अहिंसाव्रत का, अहिंसाधर्म का पालन होता है। यदि कषायों के अंश अंश के त्याग को या अभाव करने को अहिंसा कहते हैं तो सभी सैनी असैनी भव्य अभव्य, सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि जीव, अहिंसक, अहिंसा महाव्रती मानने का प्रसंग आयेगा क्योंकि एक जीव के एकसाथ एकसमय में क्रोधमानमाया और लोभ का उदय नहीं पाया जाता अर्थात् क्रोध आदि चार कषायों में से किसी एक के उदय होने पर शेष तीन का उदय नहीं होता। इस कारण शेष तीन कषायों के उदायाभाव के कारण अहिंसक होगा तब एकेंद्रिय जीव भी अहिंसामहाव्रती कहलायेंगे।

प्रश्न– 543 अंश रूप में कषायों के त्याग को अहिंसाव्रत नहीं मानने पर मुनियों को अहिंसामहाव्रती और श्रावकों को अहिंसाणुव्रती नहीं कह सकते हैं क्योंकि इनके भी संज्वलन कषाय का, प्रत्याख्यानावरण कषाय का द्रव्य और भाव रूप से दोनों प्रकार का उदय विद्यमान होता है तब ये व्रती कैसे?

उत्तर महाव्रती और अणुव्रती ये नाम कषाय के अंश के त्याग से नहीं है किन्तु अनन्तानुबन्धीकषाय, अप्रत्याख्यानावरण कषाय, प्रत्याख्यानावरण कषाय इन तीन चौकड़ी के प्रकृति स्थिति अनुभाग और प्रदेश रूप पिण्ड का पूर्ण रूप से उदयाभाव होने पर महाव्रत तथा अनन्तानुबन्धीकषाय और अप्रत्याख्यानावरण कषाय के पूर्ण रूप से उदयाभाव में अणुव्रत होता है किंतु कषायों के उदय

में व्रत नहीं होते हैं क्योंकि कषायों के उदय से व्रतों के मानने पर व्रतों को औदयिक भाव मानने का प्रसंग आयेगा अतः अपनी आत्मा को तद्रूप में परिणमन नहीं कराना स्वयं में मिथ्यात्व, विषयकषाय, प्रमाद का अभाव करना ही स्वदया है, अनुकम्पा है जो आत्मा का स्वभाव धर्म है।

प्रश्न— 544 परदया किसे कहते हैं?

उत्तर बाह्य में त्रसस्थावर जीवों की विराधना नहीं करना, प्रमाद युक्त होकर दूसरों के द्रव्य और भाव प्राणों का वियोग नहीं करना, दुःखी नहीं करना पर दया है।

प्रश्न— 545 श्री समयसारजी के बंधाधिकार में जीवों का जन्ममरण अपने अपने कर्मानुसार होता है ऐसा कहा है अतः तूँ पर को न जन्म दे सकता है, न मार सकता है, न अपहरण कर सकता है किन्तु यहाँ पर परजीवों को जन्म देने की, मारने की, रक्षा करने की, अभयदान देने की बात कही जा रही है। अतः समयसारजी के वचनों का विरोध है और इंद्रियजन्य सुखदुःख भी कर्मानुसार होता है अतः पर के प्रति माध्यस्थभाव रखना ठीक क्यों नहीं है?

उत्तर विरोध नहीं हैं किन्तु विवक्षा भेद है, पात्र भेद है। श्री समयसारजी में मुनियों को ध्यान में रखकर विधान किया गया है। यदि मुनि ध्यान करने में समर्थ है, ध्यान के सन्मुख है। तब उस समय यदि पर का, बाह्यार्थ का, बाह्यचर्या का विचार करेगा, सुख दुःख के सम्बन्ध में विचारेगा, सोचेगा तो पर विकल्प में, स्थूल विकल्प में रहने से निर्विकल्प सूक्ष्म तत्त्वभूत आत्मा का ध्यान कैसे और कब करेगा? अथवा श्री समयसारजी में कर्मों की जो दस अवस्थायें कर्म सिद्धान्त रूप द्रव्यानुयोग में बताई हैं उनमें एक उदयकरण बताया है सो उस उदयकरण की अपेक्षा कथन समझना चाहिए। उस कर्मोदय को या उदयक्षय को रोकने वाला कोई नहीं, वह तो अपने नियत समय पर ही फल देगा, यह कथन उदयकरण की अपेक्षा समझना चाहिए किन्तु समय के पहले कार्य होता है, कर्म अपना फल देते हैं अथवा बिना फल दिये उदीरणा कर, संक्रमण कर, अपकर्षण कर या स्तबुक संक्रमण द्वारा कर्म नष्ट हो जाते हैं अथवा समय के पहले हीन फल देकर नष्ट हो जाते हैं, ये कर्मो की अवस्थायें आगम से, अनुमान से या अनुभव से जानी जाती हैं। औषधि आदि बाह्य प्रयोग से समय के पहले जन्म मरण, रोगनिवारण, रोगोत्पत्ति आदि देखी जा रही है। तो उस आगम सम्मत, लोकव्यवहार सम्मत का विरोध कैसे किया जाय।

प्रश्न— 546 बाह्य यंत्र मंत्र तंत्र औषधि आदि से समय के पहले मरण स्वीकार कर लिया किन्तु जन्म समय के पहले कैसे हो सकता है?

उत्तर देखो कोई गर्भवती डॉक्टर के पास गई और जाकर पूछा कि डॉ० सा० अभी कितना समय है तब डॉ० सा० ने समय बता दिया कि अभी इतना समय शेष है ता० भी निकालकर दे दी किन्तु बीच में डॉ० के पास अत्यन्त जरूरी काम बाहर का होने से डॉ० ने खबर दी कि हम बाहर जा रहे हैं, बहुत जरूरी काम है आप उस दवाखाने में उस डॉ० से प्रसूति करा लेना। अब सूचना मिलते ही आपने सोचा कि ये डॉ० बहुत अच्छे हैं अभी तक इनके द्वारा कोई केस बिगड़ा नहीं

है और उनके द्वारा पच्चीसों केस बिगड़ चुके हैं। अतः अपनी प्रसूति इनसे ही कराना है। आपने जाकर डॉ० से कहा कि आप जाने के पहले हमारा कार्य निपटा के जायें डॉ० सा० ने कहा ठीक है ले आओ। आप लेकर पहुंचे और डॉ० ने यन्त्र प्रयोग से ऑपरेशन कर बालक को समय के पहले जन्म दिलाकर, गर्भथैली से निकालकर पुनः पुष्ट करने के लिए मशीन में रख दिया। क्या यह अवस्था आप नहीं देख रहे हैं जबकि गर्भवती को अभी जन्म के संबंध में कोई चिह्न पीडा नहीं हो रही थी। इसी तरह गर्भपात को, गर्भ को, मासिक को और मासिक चालू करने की, रोकने के अनेक औषधि प्रयोग, यन्त्र विधि, तन्त्र विधि, मन्त्र विधिशास्त्रों में बताई गई है। अतः उदीरणा करण की अपेक्षा समय के पहले जनम मरणादि होते हैं ऐसा विश्वास करना चाहिये।

प्रश्न— 547—549 जो कर्म का बन्ध किया है वह उदय में आकर अपना फल देगा ही अन्यथा निधत्तिकरण और निकाचितकरण व्यर्थ हो जायेंगे? क्योंकि जब कर्म का फल भोगना ही नहीं है तो फिर प्राणी दुःख से क्यों भयभीत होगा? अतः भय उत्पन्न करने के लिए कर्म का फल भोगना ही पड़ेगा ऐसा क्यों नहीं कहते हो?

उत्तर **दूसरों के खण्डन के लिए स्वसिद्धान्त का विरोध करना अच्छा नहीं। कर्म सिद्धान्त में ऐसा कोई सर्वथा नियम नहीं है कि इस कर्मबन्ध का फल पूर्णरूप से भोगना ही पड़ेगा किन्तु द्रव्य क्षेत्र काल भव भाव तद्नुकूल हैं तो फल भोगना पड़ेगा फिर भी पूर्ण रूप से नहीं क्योंकि जितनी मात्रा में कर्मों का बंध किया है उसके अनंतवें भाग ही कर्मों का फल भोगने में आता हैं। जैसे किसी भी वृक्ष में, लता में जितने फूल आते हैं उनमें से बहुत कम फूलों में फल लगते हैं, जितने फल लगते हैं उनमें से बहुत कम फल परिपक्व हो पाते हैं, जितने फल परिपक्व होते हैं उनमें से भी बहुत कम फल खाने में, भोगने में आते हैं। इसी तरह जो कर्म बंध किया है उसका अनंतवाँ भाग ही उदय में आने के योग्य होता है क्योंकि बन्ध के बाद आबाधा समाप्त हुई कि निषेक रचना होकर फल देना प्रारम्भ करेगा फिर भी द्रव्य क्षेत्र काल भव और भाव प्रतिकूल होने पर संक्रमण आदि के द्वारा बिना फल दिये निष्फल चला जाता है, झड़ जाता है। मोक्षमार्गी है तो अविपाक निर्जरा द्वारा निष्फल हो जायेगा। यदि मोक्षमार्गी नहीं है तो भी कर्म अपना फल पूर्ण रूप से नहीं देता है, अनंतवाँ भाग ही प्राप्त करने में आता है। निधत्ति और निकाचितकरण भी जिनबिम्ब दर्शन से या अनिवृत्तिकरण परिणामों से नष्ट कर दिये जाते हैं तथा उदयावलि में कर्म प्रवेश कर चुका है फिर भी उपयोग विशेष रूप से किसी एक ध्येय मे स्थिर होने से वह उदयावलि में प्रविष्ट कर्म स्तबुक संक्रमण के द्वारा सजातीय प्रकृति में बदलकर निकल जाता ह। कदाचित् निधत्ति और निकाचित कर्म तद्रूप में फल दे रहा है जैसे पाण्डव, गजकुमार, सुकौशल, सुकुमाल पार्श्वनाथ आदि सो ठीक है। कर्म ने अपना फल दिया किन्तु उक्त महान उत्कृष्ट पुरुषार्थी महापुरुषों ने फल नहीं भोगा। यदि इन महापुरुषों के भी फल भोगना माना जाय तो इनके निर्विकल्प ध्यान, वीतरागसमाधि, उपशमक या क्षपकश्रेणी शुक्लध्यान, ज्ञान चेतना नहीं बन सकता है किन्तु कर्मचेतना और कर्मफलचेतना बनेगी तब उससमय आत्मानुभव, शुद्धतत्त्व का अनुभव, उत्कृष्ट**

शुक्ललेश्या, उत्कृष्ट धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान बन नहीं सकता। फिर ललितांग नामक क्षत्रियपुत्र अंजनचोर ने अपने जीवनकाल में कितना कर्म बांधा पर उसने कर्मफल को कहाँ भोगा किन्तु निश्चल ध्यान के द्वारा कर्मों को क्षयकर मोक्ष प्राप्त किया। 'तप की तपन तपा भरपूर झड़ें कर्म उड़ जावे धूल' यदि कर्म का फल सर्वथा भोगना ही पड़ेगा तो धर्मपुरुषार्थ से क्या प्रयोजन? कर्म, भाग्य ही सर्वत्र बलवान कहलाया धर्म की शक्ति हीन हुई और ऐसा होने पर भोगभूमिज दम्पति के समान बंध पूर्वक निर्जरा से संसार का विच्छेद हो नहीं सकता।

प्रश्न— 550 समस्त कार्य अपने अपने कर्मानुसार होते हैं और पर का कोई सम्बन्ध नहीं ऐसा विश्वास करने में क्या आपत्ति है, क्या दोष है?

उत्तर सर्वथा ऐसा एकान्त नियम नहीं है क्वचित् उदय की अपेक्षा मान सकते हैं शेष करणों की अपेक्षा नहीं। यदि सर्वथा ऐसा नियम माना जाय तो अभयदान, हिंसा पाप का त्याग, अहिंसामहाव्रत, अहिंसाणुव्रत, अभक्ष्य का त्याग, मद्य मांस मधु आदि के त्याग का उपदेश बन नहीं सकता है क्योंकि ये नियम एकमात्र जीव रक्षा के लिए, जीव दया के लिए पालन किये जाते हैं। अतः केवल उदयकरण को सर्वकाल सर्वत्र एकान्त नियम के स्वीकार कर लेने पर अन्यमतियों के समान जिनेन्द्र का उपदेश भी एकान्त मिथ्या रूप कहलायेगा तथा अन्य मतों के मानने का भी प्रसंग आता है। जिनमत में और जिनलिंगधारी मुनियों पर भी अविश्वास का प्रसंग आता है। जिस प्रकार द्रव्यानुयोग जिन प्रणीत होने से जितनी मात्रा में विश्वास करने योग्य है उसी प्रकार शेष तीन अनुयोग भी जिन प्रणीत होने से उतनी ही मात्रा में सम्यक् को सम्यक् रूप में और मिथ्या को मिथ्या रूप में, स्याद्वाद रूप में विश्वास करने योग्य हैं। जिनोपदेश चार प्रकार के वचनों में से असत्यवचन उभयवचन क्षीणमोह नामक बारहवें गुणस्थान तक और सयोगकेवली के सत्यवचन और अनुभयवचन या असत्यमृषा वचन ये दो वचन पाये जाते हैं। इस कारण कुछ प्रमाण हो और कुछ वचन अप्रमाण हो ऐसा विश्वास मत करना। पर दया तो समस्त संसारी प्राणी मोक्षमार्गी, संसारमार्गी, भव्य अभव्य, सैनी असैनी, सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि भी कर सकते हैं किन्तु स्वदया मोक्षमार्गी ही करते हैं।

प्रश्न— 551—54 भक्ति किसे कहते हैं? क्यों की जाती है? किसकी की जाती है? किसके लिए की जाती है?

उत्तर मुक्त जीवों की या मोक्ष के साधकतम साधनों में लगे हुए द्रव्यकर्म और भावकर्म से मुक्त उन महापुरुषों के द्रव्य गुण और पर्याय में परम प्रीति पूर्वक, निष्कपट, निःस्वार्थ भाव से उत्साहित उत्कंठित होकर मन से अपने आपको समर्पण कर देने को, गुणकीर्तन करने को, जल चन्दनादि अष्ट द्रव्यों के समर्पण करने को भक्ति कहते हैं। पूज्य महापुरुषों के गुणों की प्राप्ति के लिए या उन गुणरूप से परिणमन करने के लिए भक्ति की जाती है। जो अपने से हर तरह से उत्कृष्ट गुणों में मोक्षमार्गस्थ हैं, संयमसहित हैं उनकी भक्ति की जाती है। संसार शरीर भोगों से छूटने के लिए, कर्मबन्धन से विमुक्त होने के लिए या मोक्ष प्राप्ति के लिए भक्ति की जाती है।

प्रश्न— 555—57 भक्ति कौन करता है? कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर मोक्षमार्गस्थ साधक छद्मस्थ अथवा प्रमत्तसंयत पर्यन्त विकल्पात्मक परिवर्तन सहित श्रावक और मुनि भक्ति करते हैं। दो भेद हैं। द्रव्य भक्ति और भाव भक्ति अथवा बाह्य भक्ति और अंतरंग भक्ति।

प्रश्न– 558 द्रव्य भक्ति किसे कहते हैं?

उत्तर वचनों से पंचपरमेष्ठियों के गुणों का वर्णन कीर्तन करने को तथा काय से नमस्कार करना, साधुवाद देना, गुणप्रदर्शन करना, जल चन्दनादि अर्पण करना आदि को द्रव्यभक्ति कहते हैं।

प्रश्न– 559 भावभक्ति किसे कहते हैं?

उत्तर ख्याति पूजा लाभ की दुर्भावना को त्यागकर आर्तध्यान, रौद्रध्यान छोड़कर, विषयकषायों को, आरम्भ परिग्रह, दुर्लेश्यायें, आहारादि संज्ञाओं को त्यागकर मोक्षमार्गस्थ द्रव्यगुण पर्यायों में मन लगाने को भावभक्ति कहते हैं। यह भावभक्ति सैनी पंचेंद्रिय भव्य सम्यग्दृष्टि संयमसहित जीव ही करता है, शेष अभव्य, असैनी, विकलत्रय, एकेंद्रिय आदि मिथ्यादृष्टि जीव नहीं करते हैं।

प्रश्न– 560 बाह्यभक्ति किसे कहते हैं और इसके स्वामी कौन हैं??

उत्तर बाहर में सभी के इंद्रियगोचर दृष्टिगोचर होने या जिस भक्ति को सामान्य मनुष्य, भव्य अभव्य, सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि, मूर्ख बुद्धिमान समझ सकें, कर सकें उसे बाह्य भक्ति कहते हैं।

प्रश्न– 561–562 अंतरंग भक्ति किसे कहते हैं? इसके स्वामी कौन हैं?

उत्तर यह अंतरंग भक्ति केवल मन में होने से, निर्विकल्प ध्यानावस्था और शुक्लध्यान होने से, बाह्य में प्रमादियों का विषय न होने को अंतरंग भक्ति कहते हैं। समस्त प्रकार के आरम्भ परिग्रह, विषयकषायों के त्यागी मुनिजन स्वामी हैं।

प्रश्न– 563 यह भक्ति किस हेतु से करना चाहिए?

उत्तर लौकिक कार्यों की सिद्धि के लिए, उदरपूर्ति के लिए, क्वचित् कदाचित् लौकिक असंयमी राजारानी, महाराजा महारानी, सेठ सेठानी, देवी देवता आदि की भक्ति गुणगान प्रशंसा आदि करना चाहिए। मोक्ष और लोकोत्तर पद की प्राप्ति के लिए पंचपरमेष्ठियों की भक्ति करना चाहिए, अन्यथा मूढ़ता कहलायेगी। जैसे आजकल मोक्षमार्ग के साधनभूत दान पूजा, प्रवचन, ध्यान अध्ययन, पठन पाठन यात्रा प्रतिष्ठा आदि धर्मकार्य पगार लेकर उदरपूर्ति के लिए आजीविका चलाने के लिए करते हैं सो ये कार्य धर्म के, कर्मक्षय के निमित्त न होकर, भोग के निमित्त हो जाते हैं, संसार के साधन बन जाते हैं, मूढ़ता भाव को प्राप्त हो जाते हैं तथा कुछ साधु श्रावक त्यागीव्रती बन करके भी धर्मानुष्ठान को, पूजा प्रतिष्ठा का, मनोरंजन का साधन मानकर समय व्यतीत कर रहे हैं। उनका यह आचरण भोग के निमित्त है, मोक्ष के निमित्त नहीं। संसार भ्रमण के लिए निदान स्वरूप है, जो कालान्तर में नरक निगोद के तीव्र दुःख का साधन है। मिथ्याचारित्री बनकर दुर्गति का पात्र बनता है। कहा भी है– आ० सोमदेवजी ने यश० च० में ''धर्मेषु स्वामि सेवायां सुतोत्पत्तौ च कः सुधी। अन्यत्र कार्य दैवाभ्यां प्रतिहस्तं समादिशेत्।।''धर्मकार्य और धर्म के अंग जैसे दान पूजा ध्यानाध्ययन यात्रा प्रतिष्ठा आदि मोक्षमार्ग की सेवा, मोक्षमार्गस्थ साधुओं की, मातापिता की, ज्ञानवृद्ध, तपवृद्ध,

उम्रवृद्ध, धर्मवृद्ध आदि की वैयावृत्ति, सन्तानोत्पत्ति ये कार्य अपने हाथों से किये जाते हैं। इन कार्यों के लिए नौकर नहीं लगाया जाता और करने वाले भी मोक्ष के निमित्त भक्ति भाव से करें, न कि उदरपूर्ति के लिए। इस कलिकाल में ऐसे अकर्मण्य पुण्यहीन जीव पैदा हो रहे हैं कि कल्याण के साधनों को, पुण्य के साधनों को नौकरों से कराते हैं और एक काम सन्तानोत्पत्ति का बचा है वह स्वयं करते हैं किन्तु अकर्मण्य मानव भविष्य में संतानोत्पत्ति के लिए भी नौकर रखने लगे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी। आजकल सुनने लगे हैं कि सामर्थ्यविहीन, अनाचारी मानव अपनी पत्नी में गर्भ धारण कराने के लिए नौकरों का प्रयोग करने लगे हैं।

प्रश्न— 564 स्वाध्याय करने वाला हो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर स्वाध्याय करने वाला हो इसलिए कहा है कि शास्त्र स्वाध्याय से नवीन नवीन तत्त्वों की, नियमों की जानकारी होने पर संवेग निर्वेद आदि गुणों की उत्पत्ति वृद्धि स्थिति होती है। विषयकषायों का शमन होता है। आरंभ परिग्रह से, श्रृंगारालंकार से विरक्ति भाव उत्पन्न होता है, आत्मविश्वास दृढ होता है, निष्ठा जागृत होती है, सम्यग्ज्ञान होने के बाद हेय में त्याग बुद्धि तथा उपादेय में ग्रहण बुद्धि उत्पन्न होती है अतः नित्य स्वाध्याय करने से नवीन पापकर्मों का संवर, पुण्यकर्मों का आश्रव, पूर्वबद्ध कर्मों की सामान्य और विशेष निर्जरा प्राप्त होती है। इस कारण आत्मशुद्धि के लिए निरन्तर समीचीन शास्त्रों का स्थिर मन से, शुद्धि पूर्वक अध्ययन करना चाहिए।

प्रश्न— 565—567 स्वाध्याय आवश्यक किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर शुद्धात्मा की सिद्धि के लिए आत्म चिन्तन, मनन करने को तथा आत्म साधक जिनप्रणीत वचनों के माध्यम से तत्त्वों का चिन्तन करने को स्वाध्याय कहते हैं। स्वाध्याय के दो या पाँच भेद हैं। 1. द्रव्य स्वाध्यायः— वचनात्मक शास्त्रों का अध्ययन करना। 2. भाव स्वाध्यायः— तद्रूप परिणमन करना, 1. वाचना 2. पृच्छना 3. अनुप्रेक्षा 4. आम्नाय और 5.धर्मोपदेश।

प्रश्न— 568 वाचना स्वाध्याय किसे कहते हैं?

उत्तर जिनप्रणीत वचनों का पठन पाठन करने को प्रमाण, नय, निक्षेप के द्वारा निर्दोष सिद्ध करते हुए या यथावसर आज्ञाप्रधानी, परीक्षाप्रधानी बनकर अध्ययन करने को वाचना स्वाध्याय कहते हैं।

प्रश्न— 569 पृच्छना स्वाध्याय किसे कहते हैं?

उत्तर अध्ययन करते समय जो मन में सन्देह उत्पन्न हुआ है तो जो अपने से अधिक ज्ञानी हैं उनको नीचा दिखाने के लिए नहीं, परीक्षा के लिए नहीं किन्तु सन्देह निवारण के लिए, दृढ़ धारणा बनाने के लिए प्रश्न पूछने को परम हर्ष भाव को उत्कृष्ट पृच्छनास्वाध्याय कहते हैं।

प्रश्न— 570 अनुप्रेक्षास्वाध्याय किसे कहते हैं तथा अनुप्रेक्षा स्वाध्याय क्यों करना?

उत्तर जो निर्दोष शंका समाधान प्राप्त हुआ है या निर्दोष निर्णय प्राप्त हुआ है उसका पुनः पुनः चिन्तन करने को अनुप्रेक्षा स्वाध्याय कहते हैं। जो तत्त्व निर्णय प्राप्त किया है वह कालान्तर में भूल न जायें इसलिए पुनः पुनः बार बार विचार करते रहना चाहिए। जैसे गाय घास को पचाने के लिए

पुनः पुनः जुगाली करती है वैसे ही धारणा बनाने के लिए यह स्वाध्याय करना चाहिए।

प्रश्न– 571 आम्नाय स्वाध्याय किसे कहते हैं?

उत्तर जो निर्दोष तत्त्व ज्ञान प्राप्त किया है उसका नय सापेक्ष शुद्ध उच्चारण करने को ताकि दूसरों को तत्त्वज्ञान प्रतिपादन करने में भय लज्जा उत्पन्न न हो इसलिए शुद्ध पूजापाठ, स्तोत्र, प्रतिक्रमण, भक्ति पाठ या किसी ग्रन्थ को अपनी साक्षी या देव गुरु शास्त्र की साक्षी वचन रूप में उच्चारण करने को आम्नाय स्वाध्याय कहते हैं। वास्तव में इस स्वाध्याय रूप अंतरंग तप के स्वामी मुनिजन महाव्रती है तथा स्थूल रूप से गृहस्थ श्रावक भी स्वामी हैं।

प्रश्न– 572 अनुप्रेक्षा स्वाध्याय और आम्नाय स्वाध्याय में क्या अन्तर है?

उत्तर अनुप्रेक्षास्वाध्याय भावात्मक है तो आम्नाय स्वाध्याय वचनात्मक है। यही अन्तर है।

प्रश्न– 573 धर्मोपदेश नामक स्वाध्याय किसे कहते हैं?

उत्तर जब भक्तगण, शिष्यगण और श्रोतागण तत्त्वज्ञान के इच्छुक विनय पूर्वक आकर अपनी भावना व्यक्त करें कि हे गुरुवर्य! हमको कुछ तत्त्वज्ञान दो ताकि हम कल्याण कर सकें तो करुणा बुद्धि से उनके कल्याण के निमित्त, ज्ञान और वैराग्य को उत्पन्न करने के लिए दृढ़ करने वाले मार्गदर्शन को, तत्त्वप्ररूपणा को, धर्मोपदेश नाम का स्वाध्याय कहते हैं। श्रोता की, शिष्य, भक्त की इच्छा प्रकट किये बिना धर्मोपदेश देना उल्टे घड़े के ऊपर या चालनी के ऊपर या चिकने घड़े के ऊपर पानी गिराने के समान है। इसलिए श्रोता या शिष्य की इच्छा के बिना उपदेश न देकर मौनव्रत पालन करना, मनोगुप्ति का पालन करना उत्तम है।

प्रश्न– 574–75 स्वाध्याय किसके समान है? इसका क्या फल है?

उत्तर रत्नत्रय पूर्वक स्वाध्याय अंतरंग तप होने से धर्मध्यान, शुक्लध्यान के समान है और रत्नत्रय के बिना केवल शुभ योग है। स्वाध्याय में मन स्थिर होने से इंद्रियां वश में होती है तथा कषायों की प्रवृत्ति भी नहीं होती तब पाप कर्मों का आश्रव बन्ध न होकर, मोक्षमार्ग में सहायक ऐसा सातिशय पुण्य कर्मों का आश्रवबंध होता है।संवर निर्जरा तथा पूर्वबद्ध कर्मों की असंख्यात गुण श्रेणी अविपाक निर्जरा होती है यही स्वाध्याय का उत्कृष्ट फल है।

प्रश्न– 576–80 आवश्यक किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं? कब पालना चाहिए? किस प्रकार से पालना चाहिए?

उत्तर अपने आधीन होने को, निरन्तर करने योग्य कार्यों के करने से पाप कर्मों का संवर हो, पुण्य की वृद्धि हो और पूर्वबद्ध कर्मों की विशेष निर्जरा हो, पूर्वबद्ध कर्मों का स्थितिकाण्डकधात अनुभागकाण्डकघात हो उसे आवश्यक कर्तव्य कहते हैं। सद्गृहस्थ श्रावकों की अपेक्षा छह और मुनियों के भी छह आवश्यक कर्तव्य हैं जो नियम से करने योग्य हैं। नामः– 1. देवपूजा 2. गुरुपूजा 3. स्वाध्याय 4. संयम 5. तप 6. दान ये गृहस्थ के और 1. सामायिक 2. स्तुति 3. वंदना 4. स्वाध्याय 5. प्रतिक्रमण 6. कायोत्सर्ग ये मुनियों के आवश्यक कर्तव्य हैं। इनका पालन प्रतिदिन गृहस्थ को करना चाहिए कभी कभी नहीं। जिस प्रकार संसार के कार्य विषय भोग, खाना पीना,

नहाना धोना आदि पाप को बांधने के कार्य हमेशा करते हैं तो पाप कर्म को नष्ट करने वाले कार्य भी हमेशा करना चाहिए। यदि धर्म कार्य हमेशा नहीं किये तो पाप कर्म का बोझा बढ़ते बढ़ते इतना बढ़ जायेगा कि सन्मार्ग एकदम समाप्त हो जायेगा यहाँ तक कि बिलकुल नष्ट हो जायेगा। जैसा कि विनयपाठ में पढ़ते हैं–**कर्मबन्ध के छेदने और न कोई उपाय।** **अनादिकालीन कर्मों को छेदने का जिनपूजा बिना और कोई दूसरा उपाय साधन गृहस्थों के पास में नहीं है कि जिससे कर्मभार हल्का कर सके।**

प्रश्न– 581 देवपूजा किसे कहते हैं?

उत्तर अरिहन्त और सिद्ध परमेष्ठी भगवंतों की जल चन्दन अक्षतादि अष्ट द्रव्यों से आदरसम्मान, गुणगान करने को, आरती उतारने को, प्रदक्षिणा लगाना, झाड़ू लगाना, नमस्कार करना, बर्तन मांजना आदि मंदिर सम्बन्धी कार्यकलापों के करने को देवपूजा कहते हैं।

प्रश्न– 582 बर्तनमांजना, झाड़ू लगाना आदि कार्य तो माली का है, जैनों का नहीं फिर आपने इनको पूजा में क्यों कहा?

उत्तर नहीं, धर्म और धर्म के कार्य, धर्म के साधन आयतनों की रक्षा करना व्यवस्था करना आदि स्वयं के हाथ का कर्तव्य है, स्वयं किये जाते हैं, नौकरों से नहीं कराये जाते क्योंकि स्वयं समिति के अनुसार, समिति का पालन करते हुए कार्य करोगे तो पाप की हानि, पुण्य की वृद्धि होगी। माली क्या समिति का पालन करेगा? क्या सावधानी रखेगा? उसका भक्ति भाव क्या रहेगा? वह तो नौकरी समझकर, आजीविका का साधन मानकर करता है। उदर पूर्ति में कमी हो जाय तो छोड़ देगा, शुद्धि अशुद्धि का विवेक भी नहीं रखता। आचार विचार की भी शुद्धि नहीं होती है। अतः यह कार्य माली का नहीं, श्रावकों का है किन्तु जैनी आजकल महाप्रमादी हो रहे हैं, संस्कारहीन पैदा हो रहे हैं, श्रावक श्राविकायें मंदिरजी में पूजा करके जिनवाणी, पूजापाठ की पुस्तकें वहीं पर बर्तनों के साथ चौकी पर छोड़कर चले जाते हैं तब फिर बाद में माली आकर बर्तन उठाता है, जिनवाणी संग्रह उठाकर रखता है कहाँ तो उस जिनवाणी को पूजा, जिनेन्द्र पूजा के साथ जिनवाणी सरस्वती की दूसरे नम्बर पर पूजा की, जिनबिम्ब का विनय किया और जिनेन्द्र वचन का अविनय किया। माली के वस्त्र या शरीर रात्रि के सहवास के हैं, वस्त्र और शरीर मलमूत्र का, सूतक पातक का भी हो सकता हैं, आचार विचार हीन हैं। चमड़े के जूते चप्पल का, धूम्रपान का, गुटका, मसाला, तमाकु आदि प्रयोग करता है उससे जिनवाणी का स्पर्श कराना उठवाना आदि महाप्रमादियों का कार्य है। जब इन प्रमादियों को जिनवाणी उठवाने में, वेदीगृह में प्रवेश कराने में पाप नहीं दिखता है तो दूसरे कार्य कराने में पाप कैसे दिखेगा तुम्हीं बताओ? अतः पूजन संबंधी जितने भी कार्य हैं ये सब देवपूजा के अंग ही है जो स्वयं किये जाते हैं।

प्रश्न– 583–84 गुरु उपासना किसे कहते हैं? उपास्य गुरु किसे कहते हैं?

उत्तर आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठियों की तथा चतुर्विध संघ मुनि आर्यिका, श्रावक श्राविका की यथायोग्य अष्टद्रव्य जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल और समुच्चय सामग्री से आदर सम्मान करने को, आरती उतारने को, नमस्कार करना, पैर दबाना, औषधि देना, आहार

देना, लेप लगाना, तेल मर्दन करना, आसन दान देना, वसतिका देना, सफाई करना, प्रकाश देना, ध्यानाध्ययन में बाधा उत्पन्न न होने देना, उपसर्ग परिषह से बचाना आदि कार्यों को गुरु पूजा कहते हैं। ''गु शब्दस्त्वन्धकारः रु शब्दस्तन्निवर्तकः। अन्धकार विनाशित्वात् गुरुरित्यभिधीयते।'' गु शब्द का अर्थ अन्धकार होता है तथा रु शब्द का अर्थ प्रकाश होता है इसलिए जो मिथ्यात्व, विषयकषाय, मोह, काम वासनारूप अन्धकार को विनाश करने वाले, कराने वाले होने से तथा रत्नत्रय का, वैराग्य का, ज्ञान का, संयम का प्रकाश अन्तरंग में उत्पन्न करा दे उसे गुरु कहते हैं। आत्मकल्याण के लिए इनकी उपासना करनी चाहिये।

प्रश्न– 585 स्वाध्याय आवश्यक किसे कहते हैं?

उत्तर जिनेन्द्र प्रणीत वचनों को गुरु मुख से या गुरु के सानिध्य में या गुरु की आज्ञा लेकर प्रमाण नय निक्षेप से सिद्ध निर्दोष शास्त्रों का तत्त्व निर्णय के लिए अध्ययन करना, आत्म सिद्धि के लिए, साधना के लिए, विषय कषायों से बचने के लिए, स्वकल्याण के लिए पठन करने को स्वाध्याय कहते हैं। दूसरों को नीचा दिखाने के लिए, आजीविका चलाने के लिए, ख्याति पूजा लाभ के लिए, वादविवाद के लिए नहीं करना चाहिये।

प्रश्न– 586 संयम आवश्यक किसे कहते हैं?

उत्तर इन्द्रिय और मन को बाह्य विषयकषायों से हटाकर मोक्षमार्ग के सम्मुख होना, मोक्षमार्ग में प्रवेश करना, तदनुकूल आचरण का पालन करना, षट्काय के जीवों की रक्षा करनेको संयम कहते हैं।

प्रश्न– 587–90 संयम के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं? परिभाषा क्या क्या है? कब कब पालना चाहिए?

उत्तर संयम के दो भेद हैं। द्रव्यसंयम और भावसंयम अथवा इंद्रियसंयम और प्राणी संयम। द्रव्यसंयम– वचन और काय की क्रिया को मोक्षमार्ग के अनुकूल मार्ग में लगाना या संसार मार्ग में नहीं जाने देना। भावसंयम – मोक्षमार्ग में मन रोककर रखना। इंद्रियसंयम – इंद्रिय और मन को स्वच्छन्द सांढ की तरह विषयकषायों में नहीं जाने देना। प्राणी संयम – अपनी दिनचर्या के द्वारा षट्काय के जीवों की रक्षा करना अथवा अपने उपयोग को निजात्मा में रोककर रखने को प्राणीसंयम कहते हैं। इसका सतत सावधानी पूर्वक पालन करना चाहिए।

प्रश्न– 591 तप किसे कहते हैं?

उत्तर इंद्रिय और मन को वश में करके विषय कषायों से उपयोग को हटाकर अनशनादि 12 प्रकार के परिणामों में परिणमन कराने को तथा लौकिक विषय भोगों के स्वार्थ के त्याग को तप कहते हैं। कर्मो की असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा करने के उपाय को सम्यक् तप कहते हैं।

प्रश्न– 592 दान आवश्यक किसे कहते हैं?

उत्तर स्व और पर के उपकार के लिए अपनी निज चेतन अचेतन सामग्री के त्याग करने को दान कहते हैं। ये षडावश्यक कार्य यदि मिथ्यात्व के साथ पालन किये जाते हैं तो शुभयोग कहलाते हैं जिससे सातिशय या सामान्य पुण्य को बांधते हैं, पाप को घटाते हैं और मिथ्यात्वादि दुर्भावों को

नष्ट कर देते हैं। सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने की भूमिका बनाते हैं। रत्नत्रय सहित संयम के साथ होने से शुभोपयोग कहलाते हैं और ये ही आवश्यक कालान्तर में अणुव्रती महाव्रती बनने की, शुद्धोपयोग की पात्रता उत्पन्न कराते हैं।

प्रश्न– 593 बाह्य में सम्यग्दर्शन के आठ अंगों का पालने वाला हो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर यहाँ पर सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की भूमिका का प्रकरण चल रहा है। अतः इन अंगों का स्थूल रूप से पालन करना चाहिए। यद्यपि ये अंग मिथ्यात्वगुणस्थान में समीचीन नहीं हैं अंगाभास है। फिर भी मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषाय के तीव्रोदय के अभाव में भविष्यकाल में रत्नत्रय उत्पन्न कराने में सहायक होते हैं अतः इनका होना परम आवश्यक है। जिस प्रकार किसान बीज बोने के पहले भूमि की योग्य नीति से सफाई, निदाई करता है, अनुकूल खादपानी लगाता है। बाधक कंकड़, पत्थर, लकड़ी आदि निकालकर फिर बाद में बीज बोता है अंकुर आदि की रक्षा करने के बाद सफलता मिलती है। इसी तरह सर्वप्रथम भूमिका बनाई जाती है बाद में सम्यग्दर्शन होता है अन्यथा भूमिका बनाये बिना किसी भी कार्य में सफलता नहीं मिलती।

प्रश्न– 594 इन आठ अंगों के नाम कौन कौन हैं?

उत्तर 1. निःशंकित अंग 2. निःकांक्षित अंग 3. निर्विचिकित्सा अंग 4. अमूढ़दृष्टि अंग 5. उपगूहन अंग 6. स्थितिकरण अंग 7. वात्सल्य अंग 8. प्रभावना अंग। ये अंगों के नाम हैं।

प्रश्न– 595 आपने कहा है कि सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिए इन आठ अंगों का होना जरूरी है किन्तु इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति आदि 1503 प्राणियों में कहां इन अंगों की गन्ध थी यहाँ तक की ये जिनधर्म के कट्टर विरोधी थे फिर भी मानस्तम्भ को देखकर सम्यग्दृष्टि हुए सो इन दोनों में से एक सत्य है दोनों नहीं फिर दोनों में से कौन सा सत्य हैं?

उत्तर नहीं, अपेक्षा भेद से या पात्र भेद से दोनों को सत्य समझना चाहिए। राजमार्ग, उत्सर्गमार्ग यही है कि सभी को अवस्थानुसार अपनी यथार्थ भूमिका बनाना चाहिए। बिना व्यवहार पात्रता के परमार्थ पात्रता नहीं आती है किन्तु अपवादमार्ग में स्थूल दृष्टि से बिना पात्रता बनाये, भूमिका बनाये ही सम्यग्दर्शन की या रत्नत्रय की प्राप्ति हो गई। इतना होने पर भी पूर्वभव में इन महापुरुषों ने महान उत्कृष्ट साधना की थी कि जिससे वर्तमान में बिना अभ्यास के एक साथ अन्तर्मुहूर्त में सम्यग्दर्शन को रत्नत्रय को मुनिपद को स्वीकार कर अनेक ऋद्धियों से सम्पन्न हुए। इसलिए राजमार्ग और अपवादमार्ग को समझकर विरोध की भावना को मन से निकालकर फेंक देना चाहिए। इसी में कल्याण है शेष में अकल्याण है। जो सर्वत्र सर्व काल में हो वह राजमार्ग तथा क्वचित् कदाचित् हो वह अपवादमार्ग। अथवा अन्तर्मुहूर्त में ही भूमिका बनी और रत्नत्रय की प्राप्ति हुई क्योंकि दिनचर्या सही थी, विचारों में मिथ्यात्व था अथवा अंजन चोर आचार विचार से हीन था फिर भी उसने अन्तर्मुहूर्त में भूमिका बनाई, रत्नत्रय प्राप्त किया और मुनि दीक्षा स्वीकार की तथा तपश्चरण कर कर्मों को क्षय कर मोक्ष प्राप्त किया अथवा गजकुमार अत्यंत

पतित थे परंतु भगवान नेमिनाथ के समवशरण में जाकर दिगम्बर मुनिदीक्षा लेकर गिरनार पर्वत पर घोर उपसर्ग को जीत कर अंतकृत केवली हुए।

प्रश्न— 596 निःशंकित अंग किसे कहते हैं?

उत्तर मोक्ष के साधन या मोक्षमार्ग के साधनभूत देव शास्त्र गुरु, सात तत्त्व, नव पदार्थ, पंचास्तिकाय, छह द्रव्य इन 27 तत्त्वों में नय सापेक्ष, ज्ञेय, हेय, उपादेयभूत समझकर निःकम्पभाव को प्राप्त कर निर्भय होकर सन्देह रहित भाव से दृढ़तापूर्वक तलवार पर चढाये हुए पानी के समान विश्वास करने को निःशंकित अंग कहते हैं अथवा इसको निर्भय भी कहते हैं।

प्रश्न— 597 निःकांक्षित अंग किसे कहते हैं?

उत्तर देव शास्त्र गुरु की आज्ञा का पालन कर, सदाचार, तप त्याग का फल, सांसारिक सुख, विषयभोगों का सुख, पदवी, उपाधि का सुख, शृंगार अलंकार का सुख, शरीर का, पत्नी आदि चेतन अचेतन सामग्री का सुख नहीं चाहना निःकांक्षित अंग है। पूजापाठ करके कराके, प्रतिष्ठा विधि विधान कराके, त्यागी आदि मुनियों को दान देकर, वैयावृत कर, चौका लगाकर, प्रवचन कर, अध्यापन कराकर, शास्त्रों को लिखकर, अनुवाद कर, आजीविका चलाने को कांक्षा दोष कहते हैं। इस दुर्भावना को छोड़कर, आत्मकल्याण के हेतु कार्य करने को निःकांक्षित अंग कहते हैं। सांसारिक विषय सुख की आकांक्षा कर धर्मानुष्ठान करके भी जो अनाचार स्वरूप है दुःख देने वाला है, नरकनिगोद में ले जाने वाला है, ज्ञानावरणादि कर्मों का आश्रवबन्ध कराने वाला है। ज्ञान और ज्ञान के उपकरणों को बेचना, रत्नत्रय को बेचना मोक्षमार्ग को बेचना है। आजकल जिनवाणी को माँ कहकर पूजाकर अपनी माँ को बेचकर आजीविका चलाने के समान है आदि कारणों से अपने ही मोक्षमार्ग की विराधना होती है। अतः जो अपने को सम्यग्दृष्टि मोक्षमार्गी मानते हैं वे धर्मायतनों को आजीविका का साधन नहीं बनायें अतः इस कांक्षादोष से बचे।

प्रश्न— 598 निर्विचिकित्सित अंग किसे कहते हैं?

उत्तर मुनियों के मलिन शरीर को देखकर तथा किसी भी मनुष्य, पशु पक्षी के मलिन शरीर को या निकलती हुई धातुओं और उपधातुओं को देखकर, मलमूत्र को देखकर या जातिकुल और धर्म के विरुद्ध आचरण को देखकर ग्लानि नहीं करने को, विरुद्ध कार्यों में उत्साहित न करने को तथा अनशन तप त्याग धर्मादि भावों में ग्लानि के त्याग को निर्विचिकित्सिक अंग कहते हैं।

प्रश्न— 599 अमूढदृष्टि अंग किसे कहते हैं?

उत्तर मोक्षमार्ग और मोक्षमार्ग के साधनों में निःकपट निःस्वार्थ भाव से जैसा का तैसा आचरण करने को तथा विवेक पूर्वक चर्याचर्चा एकरूप में करने को अमूढ़दृष्टि अंग कहते हैं अथवा मिथ्यामार्ग में और मिथ्यादृष्टि जीवों के प्रति मन वचन काय से स्तुति वंदना करना, नमस्कार करना, आदरसत्कार करना, माला मुकुट पहनाना, भेंट आदि देने के त्याग को अमूढ़दृष्टि अंग कहते हैं।

प्रश्न— 600 उपगूहन अंग किसे कहते हैं?

उत्तर जो कमजोर है, विशेष जानकारी नहीं है, प्रमाद सहित है, असावधान है, पराधीन है, बीमार है आदि ऐसे व्यक्ति के द्वारा मोक्षमार्ग में, संयम के मार्ग में अनर्गल आचरण होने के कारण अथवा

मन वचन और काय की दुःप्रवृत्ति होने से उत्पन्न हुए कलंक को समाज के सामने, आम जनता के सामने प्रकट न करने को या उत्पन्न हुए अपवाद के छिपाने को उपगूहन अंग कहते हैं और धर्मात्माओं के अलावा जो लोकव्यवहारी जन हैं उनके द्वारा भी किसी प्रकार का असभ्य आचरण करने पर भी लोक में प्रकाशित न करने को लोकोपचार से उपगूहन अंग कहते हैं। इस प्रकार दूसरों के दोषों को ढकने से, छिपाने से ही धर्म स्थिति रहती है अथवा आत्मगुणों के बढ़ाने को उपबृहण अंग कहते हैं।

प्रश्न– 601–02 स्थितिकरण अंग किसे कहते हैं? यह जीव किससे गिरता है?

उत्तर कोई जीव मनोबल, वचनबल, कायबल, धनबल, ज्ञानबल, विवेकबल कमजोर होने से मोक्षमार्गी जन बाह्य में, अनुकूलता के अभाव में और प्रतिकूलता के सद्भाव में अपने मोक्षमार्ग से, कर्तव्यपथ से, विश्वास आत्मश्रद्धान से, आचरण से, सदाचार सद्विचार से गिर रहा हो तो उसे पुनः धर्मात्माओं के द्वारा युक्ति से या समयानुसार जिस किसी भी उपाय से उसी पद पर उसी प्रतिज्ञा में स्थिर कर देने को स्थितिकरण अंग कहते हैं, यह जीव अधिकतर कुसंगति के कारण सम्यक्श्रद्धान ज्ञान और आचरण से गिर जाता है।

प्रश्न– 603 इस जीव का श्रद्धान से या चरित्र से गिरने का क्या कारण है?

उत्तर जब कोई भयंकर बीमारी से, भूत पिशाच आदि की बाधा से, बाह्य में और अंतरंग में कमजोरी होने से, भंयकर असहनशीलता होने से, तीव्र शक्ति के साथ उपसर्ग या परीषह या अन्य भी परिवार सम्बन्धी प्रतिकूलता, कामवासना, धनाकांक्षा क्रोधादि कषायों के उद्रेक से और आचार विचार और संस्कार हीनों की संगति से, कुशिक्षा आदि कारणों से पतन की ओर जा सकता है, भूख प्यास के कारण जहाँ कहीं भी खाने पीने से मानव अपने सन्मार्ग से च्युत हो रहा है।

प्रश्न– 604 उपगूहन अंग में और स्थितिकरण अंग में क्या अंतर है?

उत्तर उपगूहन अंग में तो दोष बाहर में प्रकट नहीं किये जाते हैं किन्तु उसे उसके ही दोष एकान्त में समझाये जाते हैं तथा बाहर में दोष छिपाये जाते हैं और स्थितिकरण अंग में सन्मार्ग के लिए सहारा दिया जाता है, गिरने से बचाया जाता है अर्थात् बाहर में दोषों को छिपाना अन्दर में सम्बोधन करना सम्हालना और सहारा देना यही अन्तर है अथवा निषेध और विधि जैसा अन्तर भी समझना चाहिए।

प्रश्न– 605 वात्सल्य अंग किसे कहते हैं?

उत्तर गोवत्स के समान जिनेन्द्र मतानुयायी मोक्षमार्गी साधु और श्रावकों में प्रत्युपकार की भावना के बिना निष्कपट, निःस्वार्थ भाव से परस्पर में प्रेम करने को, आदरसम्मान करने को वात्सल्य अंग कहते हैं। इसी तरह लोक व्यवहार में भी परस्पर में निष्कपट, निःस्वार्थ प्रेम करना चाहिये।

प्रश्न– 606 प्रभावना अंग किसे कहते हैं?

उत्तर संसारी प्राणियों में जो अज्ञानांधकार छाया हुआ है वह जिस किसी भी उपाय से दूर हो जाए इस प्रकार प्रयास करने को, प्रयत्न करने को अथवा अज्ञान दूर हो जाय और जिनधर्म या रत्नत्रय प्रवेश कर जाय मोक्षमार्ग में लग जाये उसे प्रभावना अंग कहते हैं अथवा दुर्भावना, विषय

वासना, विषयकषाय, ख्याति पूजा लाभ, आर्तध्यान, रौद्रध्यान, दुर्लेश्यायें निकल जायें और साधना रत्नत्रय जागृत हो जाय, उत्पन्न हो जाय उसे वास्तविक प्रभावना अंग कहते हैं। पैर पुजवाना, आरती उतारना, उतरवाना, जयकारा बोलना, बाजे बजवाना, माला पहनाना, भीड़ इकट्ठी कर लेना, अपना समूह संख्या बढ़ा लेना यह प्रभावना नहीं है जैसे **'दीपक तले अंधेरा'**। **जलता हुआ दीपक चारों तरफ बाहर में प्रकाश करता है किंतु नीचे अंदर अंधेरा रहता है ऐसे ही आज का मानव बाहर में धर्म की प्रभावना करता है किंतु अंतरंग में ख्याति पूजा लाभ का अंधकार है।**

प्रश्न– 607 लोक व्यवहार में इन अंगों का पालन नहीं करने पर कौन कौन सी आपत्तियां आती हैं?

उत्तर घर में, व्यापार में, बाजार में, सगे सम्बन्धियों में, परिवार में, परस्पर में, किसी के बीच में, सन्देह शंका उत्पन्न हो जाय तो किसी भी प्रकार से व्यापारादि में सफलता नहीं मिलती है, परस्पर में विश्वास और व्यवहार टूट जाता है। आकांक्षा मालुम पड़ने पर यह कुछ मांगेगा ऐसा समझकर मुख मोड़ लेते हैं, सामना होने पर रास्ता बदलकर किनारा कर जाते हैं या कुछ न कुछ बहाना बनाकर बचकर निकल जाते हैं। घृणा ग्लानि करने पर भी कोई पास में आता नहीं जिस प्रकार ये दूसरों के प्रति घृणा करते हैं, हीनदृष्टि से देखते हैं ऐसा प्रसंग आने पर हमको भी देखेंगे ऐसा विचार कर दूसरे सज्जन पुरुष प्राणी वर्ग साथ छोड़ देते हैं। अविवेकता के कारण लोग संगति नहीं करते क्योंकि संगति गुणवानों की की जाती है, मूर्खों की नहीं। मूर्खता होने के कारण किस समय कैसी विडम्बना कर बैठे इसलिए मूर्खों से बचना चाहिए। जो व्यक्ति नारद की तरह यहाँ की वहाँ और वहाँ की यहाँ कथा कहानी सुनाकर मोह उत्पन्न करा देते हैं, वैर विरोध उत्पन्न करा देते हैं, कष्ट में डाल देते हैं इसी तरह यह दोष लगाने वाला, दोष प्रकट करने वाला व्यक्ति कब बदनाम कर दे, कब नीचा दिखा दे इससे बचकर रहना ही श्रेष्ठ हैं इससे सावधान रहो। इसी तरह जो प्राणी स्त्री पुरुष विषय लम्पटी है, विषयकषायी है, मोक्षमार्ग से पतित है, व्यसनी है, मलिन चित्तवाला है उसके पास उठने बैठने से वह हमें अपनी कुयुक्तियों से, कुतर्कों से कब पतित करा दे। पतित व्यक्ति हमें कैसे उठने का उठाने का सहारा दे सकता है जिसका जीवन दिनचर्या डामर के समान या कोयले के समान काली हो रही है। धर्म को छोड़ सकता है, सदाचार से नष्ट हो सकता है, धर्म में प्रेम नहीं है, स्वयं पापी है ईर्ष्यालु झगड़ालू उससे क्या प्रेम करना? यह कब हमको धोके में डाल दे, कष्ट में पहुंचा दे। जो धर्म को, गुरु को कोठरी में रखना चाहता है जिसका जीवन कूपमण्डूक की तरह संकुचित हो चुका है वह व्यक्ति अपने बलवीर्य से दूसरों को प्रकाश में कैसे ले जा सकता है? अनेक प्रकार से दूषित व्यक्ति दूसरे को जन्मान्ध की तरह मार्गदर्शन कैसे दे सकता है? इसी तरह धर्मविहीन व्यक्ति धर्म को मोक्षमार्ग को कैसे बता सकता है? जिस प्रकार लोक में माँ बाप अनाचारी, स्वच्छन्द, आचार विचार वाले होकर व्यसनी या धर्म के संस्कार हीन होकर अपनी सन्तान को सम्यक् उपदेश, सदाचार का पालन, उच्चविचार, उच्चशिक्षा के संस्कार कैसे डाल सकते हैं? समझदार पुत्रपुत्रियां ऐसे माँ बाप का साथ छोड़ देते हैं किसी भी प्रकार से ऐसे माँ बाप की सेवा आहारादि की व्यवस्था तथा देखरेख नहीं करते हैं इसी तरह इसलोक संबंधी और परलोक संबंधी नाना प्रकार की आपत्तियां आती है।

प्रश्न– 608 इस जीव का मोक्षमार्ग से पतन क्यों और किस कारण से होता है?

उत्तर सहनशक्ति, जीतने की शक्ति न होने से ऐसे भंयकर उपसर्ग परीषह की जीवन में प्रतिकूलता विषय भोगों में तीव्र अनुकूलता, कुसंगति की प्रबलता, परिवार का प्रतिकूल वातावरण या अनुकूल व्यवहार न होने पर, स्वास्थ्य अच्छा न होने पर, सही सहायक, सही सलाहकार न होने पर, कषायों के तीव्र उद्रेक होने पर तथा संसार भ्रमण ज्यादा होने पर और उपयोग में स्थिरता न होने पर मोक्षमार्ग से, लक्ष्यपथ से गिर कर नरक निगोद का पात्र बन जाता है ।

प्रश्न– 609 यह जीव धर्मायतनों में सन्देह को किस कारण से प्राप्त होता है?

उत्तर हीनाचारी मिथ्यादृष्टि जीवों की संगति से, उनके आश्चर्यकारी चमत्कारों को देखकर सुनकर आश्चर्य में झूमने लगता है, सन्देह में पड़ जाता है कि जिनमत सही है या जनमत सही है या गलत है अथवा जीवन में नाना तरह की आपत्तियों के आने पर उनके निराकरण करने के लिए जिनेन्द्र प्रणीत मंत्र तंत्रों का प्रयोग किया किन्तु सफलता नहीं मिली तब अन्यमतियों के यहाँ पर गया, मुसलमानों के यहाँ, बौद्धों के यहाँ, हिन्दुओं के यहाँ जाकर कष्ट को निराकरण करने के लिए मंत्र तंत्र मांगकर काम किया सफलता मिली तब उसी धर्म को स्वीकार कर लिया। जैसे किसी बीमारी का डॉक्टर से इलाज कराया स्वास्थ्य लाभ हुआ तब उसी डॉक्टर की प्रशंसा की, दूसरों को भी इलाज कराने के लिए उसी डॉक्टर के पास जाने की सलाह दी वह डॉक्टर सही है, शेष ठीक नहीं हैं इसी तरह मन्त्र तंत्र के सम्बन्ध में समझना चाहिए किन्तु यह व्यक्ति अपने निज के पुण्य पाप को भूल जाता है अतः कुसंगति से, असावधानी से संदेह को प्राप्त होता है तथा स्वयं में निर्णायक बुद्धि न होने से सही गलत को समझने का, भेदविज्ञान या प्रमाण नय निक्षेप का सही ज्ञान न होने से संदेह को प्राप्त हो जाता है अथवा पापोदयसे डोलायमान बुद्धि हो जाती है। अतः अपने को कुसंगति, कुशिक्षा और कुसंस्कारों से बचाना चाहिए।

प्रश्न– 610 यह जीव कांक्षादोष को कैसे प्राप्त होता है?

उत्तर अंतरंग में असाता वेदनीय कर्म का, भोगान्तरायकर्म, उपभोगान्तरायकर्म, माया कषाय, लोभकषाय, वेदकषाय के तीव्रोदय से अपने उपयोग को सम्हालने में असमर्थ होकर तदनुरूप परिणमाकर उक्त कर्मोदयों से सम्बन्ध जोड़कर तथा चेतन अचेतन और मिश्रसामग्री पास में न होने से या कम होने से क्वचित् कदाचित् सामग्री हो तो भी धर्म के फल को भोग वासना से जोड़कर भोगों को और भोगों की सामग्री को पुनः चाहने लगता है तथा दूसरों की भोग उपभोग की सामग्री को देखकर चाहने लगता है। संसार के समस्त प्रमादी जीव भोगाभिलाषा रखते हैं उनका दोष तो क्षम्य है क्योंकि कोयले को काला कहना इसमें क्या आश्चर्य है, वह तो काला ही है किन्तु स्फटिक को काला कहना आश्चर्य है ऐसे ही कोई जीव धर्म को धारणकर जो धर्म मोक्ष को देने वाला है उससे सांसारिक विषय भोग आदि चाहने से कांक्षा दोष को प्राप्त होता है जैसे वृक्ष की छाया मांगने से नहीं मिलती वैसे ही इन्द्रिय सुख मांगने से नहीं मिलता।

प्रश्न– 611 विचिकित्सा दोष को यह जीव कैसे प्राप्त होता है?

उत्तर अंतरंग में मोहनीयकर्म के भेद स्वरूप नोकषाय के भेदों में से एक जुगुप्सा कर्म के उदय से युक्त

अपने उपयोग को परिणमाकर मोक्षमार्ग में, संयममार्ग में घृणा करना, मन मलिन करना आदि को जुगुप्सा कहते हैं। यह जीव धर्मशिक्षा धर्मात्माओं की संगति और संस्कार के बिना लौकिक शिक्षा संगति संस्कार के कारण घृणाभाव को प्राप्त होता है। उपवास करके कमजोरी का अनुभव कर भूख या प्यास आदि से घबराकर उपवास नहीं करते तो अच्छा था यह कष्ट सहन नहीं हो रहा है अब उपवास व्रत नहीं करेंगे आदि ऐसे विचारों को तथा मलमूत्र सहित मलिन शरीर को देखकर घृणा को,जुगुप्सा को, विचिकित्सा दोष को प्राप्त होता हैं।

प्रश्न— 612 यह जीव मूढ़दृष्टिपने को किस प्रकार से प्राप्त होता है?

उत्तर अंतरंग में मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषाय के तीव्रोदय से या सम्यक्त्व मोहनीय कर्म के तीव्रोदय से धर्मायतन स्वरूपी रत्नों का समागम न होने से और मिथ्या आयतनों का समागम होने से, सत्कर्म सदाचार का पालन करने से दुःख और पापाचार दुराचार का पालन करने से सुख प्राप्त होता है। आजकल इस प्रकार विचार वाले जैन 95% पाये जा रहे हैं। इसी का फल है कि कुछ पाप को छोड़ने का या सदाचार पालन करने के लिए प्रसंग उपस्थित किया जाता है तो जैन लोग सैंकड़ों बहाने बनाते हैं वहाँ जायेंगे तो क्या खायेंगे? वो क्या कहेंगे? मित्रों से मित्रता टूट जायेगी आदि विचारों से मूढदृष्टि पने को प्राप्त होता है। इन मोहियों को खाने की चिन्ता है, लोग क्या कहेंगे इसकी चिन्ता है, धर्म की कल्याण की चिन्ता नहीं।

प्रश्न— 613—14 यह जीव अनुपगूहन दोष को किस कारण से प्राप्त होता है? इस दोष से क्या फल पाता है?

उत्तर कषायोद्रेक के कारण अपनी प्रंशसा करने से, ख्याति पूजा लाभ की भावना रखने से, दूसरों की छोटी या बड़ी बुराई को प्रकाशित करने से, पाप को बांधकर हीनबुद्धि होने से, मायाचारमय प्रवृत्ति होने से, अपवाद फैलाने से इस अनुपगूहन दोष को प्राप्त होता है तथा शत्रुओं को, अपयश को, अपमान तिरस्कार को, अविश्वास को प्राप्त होता है, समाज तथा सज्जनों के बीच में हीनता को प्राप्त हो जाता है तथा कल्याण के मार्ग से स्वयं पतित होकर दुर्गति का पात्र बनकर नाना दुःखों को भोगता है अनुपगूहन दोष के कारण यह फल पाता है।

प्रश्न— 615—16 यह जीव अस्थितिकरण दोष को किस कारण से प्राप्त होता हैं? किस प्रकार की हानि को प्राप्त होता है?

उत्तर जो दूसरों को गिराता है वह स्वयं गिरता है, पतन को प्राप्त होता है जैसे टेप करते समय जिस ध्वनि में शब्दों का उच्चारण करते हैं ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, स्वर व्यंजन, संगीत, गद्य पद्य आदि का रिकार्ड हो जाता है। पुनः बाद में चालू करने पर पक्षपात किये बिना, छिपाये बिना, बदले बिना जैसा का तैसा बोलता है कि तुमने इस तरह बोला था अब सुन लो अथवा वीडियो कैसेट तैयार करते समय जैसा आकार प्रकार, रूप अंलकार धारण किया था उसी प्रकार का फोटू उसमें अंकित हो जाता है पुनः वी.सी.आर. या सीडी प्लेयर में लगाकर देखने से उसी प्रकार का चित्र बता देता है कि तुमने ऐसा चेहरा बनाया था ठीक इसी तरह जो जीव जैसा आचार विचार करता है, बोलता है, कायव्यापार करता है, चेष्टा करता है वैसा ही उसी समय कर्मबन्ध करता है, होता

है तथा आबाधा व्यतीत कर अनुकूल द्रव्य क्षेत्रकाल भाव को पाकर फल प्रदान करने लगता है। यदि प्रतिकूल द्रव्यक्षेत्र काल भाव प्राप्त हुआ तो संक्रमणकर, बदल कर, अन्यरूप होकर, फल देकर या बिना फल दिये नष्ट हो जाता है अथवा श्रावकगण भक्त जीव शान्तिधारा करते समय भक्त भक्ति में तन्मय होकर भावपूर्वक **अस्माकम् युष्माकम् कल्याणमस्तु मेरा तेरा, हमारा तुम्हारा कल्याण हो ऐसा बोलता है तब उसी तरह उसी समय प्रतिध्वनि प्राप्त होती है कि** ''तथास्तु'' हाँ कल्याण हो ठीक ऐसा ही हो' वास्तुविज्ञानानुसार वास्तुशास्त्रानुसार जब कोई गृहस्थ हीन आचार विचार करता है तब वास्तुदेवता तथास्तु उच्चारणकर बोलता है, हाँ ऐसा ही हो अर्थात् तेरा ऐसा ही हो जो तूँ हीनाचार का पालन करता है, हीन विचार कर रहा है सो तूँ वैसा ही हो जायेगा अर्थात् तूँ भवान्तर में या इसी भव में ऐसा ही बन जायेगा ऐसी अवस्था को प्राप्त हो जायेगा। अतः जो दूसरों को गिराता है वह स्वयं पतन को प्राप्त हो जाता है। इसलिए अपना पतन नहीं चाहते हो तो दूसरों को उठाना सीखो और उठाओ तभी फूलोगे फलोगे।

प्रश्न— 617—18 पतन का क्या कारण है? किन किन साधनों से पतन को प्राप्त होता है?

उत्तर तीव्र कामवासना होने से, क्रोधादि कषायों के तीव्रोदय से, धन, वैभव, ज्ञान तपादि के अहंकार से, असाध्य रोगों के कारण, जीवन में नाना परिश्रम करने पर भी सफलता न होने से, हताश होने के कारण व्यक्ति कर्तव्य पथ से प्रच्युत हो जाता है, और जैसी जिसने सलाह दी वैसा ही करने लग जाता है। बिना सोचे समझे पुण्य पाप का, कर्तव्याकर्तव्य का कार्य कर लेता है। अतः यह जीव श्रद्धान से या चारित्र से क्वचित् ज्ञान के मार्ग से गिर जाता है, पतन को प्राप्त हो जाता है। अंतरंग में वीर्यान्तराय कर्म के तीव्रोदय होने पर मनोबल टूट जाता है तथा संहनन नामकर्मोदय में विषमता होने से, स्थिर और अस्थिर नाम कर्मोदय में विषमता होने से, वात पित्त कफ में विकृति आने से, शारीरिक बल टूट जाता है तथा दोनों के मेल से उपयोग की धारा, मन की स्थिरता नष्ट भ्रष्ट हो जाती है आदि कारणों से पतन होता है। हीन आचार विचार से जीवन पतन को प्राप्त होता है। इसलिए जो अपना पतन नहीं चाहते हैं वे सावधान रहें।

प्रश्न— 619—20 अवात्सल्यभाव को किस कारण से प्राप्त होता है? क्या क्या हानि प्राप्त होती है?

उत्तर क्रोध, मान, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा कषायों के तीव्रोदय से युक्त उपयोग की परिणति के कारण साधर्मी भाइयों के साथ अथवा जिस किसी के साथ परस्पर में प्रेम आत्मीयता न होने के कारण तथा शत्रुता होने से धर्म से विमुख हो जाता है। परिवार में प्रेम वात्सल्य न होने से नारकियों जैसी अवस्था बन जाती है। धन जन इज्जत आदि की हानि होती है भोजनपान रोटी बेटी बिगड़ जाती है तथा धर्मस्थानों में, धर्मायतनों में वात्सल्य न होने से नाना प्रकार के पाप कर्मों का आगमन होता है जिससे उभयलोक में कोई आंतरिक भाव से आत्मीयता को प्राप्त नहीं होता तथा सुख की, सद्गुणों की हानि होती है। राग रूप कषायों से परिवार आदि में प्रेम होने से सम्यग्दर्शन संबंधी वात्सल्य भाव का अभाव होना रागद्वेष से यही महान हानि है।

प्रश्न– 621–22 अप्रभावना दोष को किस कारण से प्राप्त होता है? इस दोष से क्या–क्या हानि प्राप्त होती है?

उत्तर जिस प्रकार शराबी शराब के नशे में नाना प्रकार की जातिकुल और धर्म के विरुद्ध आचरण करता है उसी प्रकार मोह के नशे में अनेक प्रकार की कुचेष्टायें, जातिकुल धर्म को कलंकित करने वाली करता है। आजकल अनेक साधु और श्रावकगण भौतिक चमत्कार को सामने रखकर, ख्याति पूजा लाभ की भावना से अपने आगमिक सदाचार को छोड़कर लोकानुकूल आचरण करते हैं, करने लगे हैं और अन्यमतियों के, पंडितों के प्रवचनों को सुनकर पढ़कर धर्मसभा में धर्मोपदेश के नाम से करने लगे, सुनाने लगे इस प्रसंग पर जिनवाणी और जिनेन्द्राज्ञानुसार आचार्य वाक्य गौण हो गया, प्रायः कर लुप्त हो गया। सामान्य श्रोताओं को या सामान्य ज्ञानियों को अनेक दोषों से युक्त वचन जिनेन्द्र वचन के समान प्रतीत होने लगे। इसी मिश्रण के कारण जिनवचन में और अन्यवचन में भेद नहीं रहा। इससे जिनेन्द्र मत की प्रभावना नहीं हुई किन्तु स्वयं को जिनेन्द्र के नाम पर पूजा प्रतिष्ठा, आदर सम्मान, जयकारा, आरती उतारी जाना, जगह–जगह नाम और फोटू अंकित हो जाना यह तो प्राप्त हुआ किन्तु आत्मप्रभावना आत्मशुद्धि प्राप्त नहीं हुई, निराकुलता प्राप्त न हुई और ऐसी दशा में अन्यमत प्रवचन जिनमतप्रवचन कहलाने लगा सर्वत्र यही प्रधान बन गया। इसी पद्धति से जिनधर्म का लोप हो रहा है। किस प्रकार से लोप हुआ? जिस प्रकार गीता में कहा है, रामायण या महाभारत में कहा है, महात्मागांधी ने या अन्य राज्य नेताओं ने कहा है, रजनीश ने कहा है उसी प्रकार भगवान महावीर ने आ० श्री कुन्दकुन्द ने या अन्य दिगम्बराचार्यों ने कहा है। इस प्रकार कहने पर यह अर्थ हुआ कि महावीर ने अन्यमती वक्ताओं के द्वारा कहा हुआ कहा है, आ० श्री कुन्दकुन्द ने गीता रामायण महाभारत आदि को पढ़कर शास्त्रों की समयसारादि की रचना कीं इसी तरह सभी आचार्यों के सम्बन्ध में समझना अर्थात् दिगम्बराचार्यों के पास स्वयं का ज्ञान नहीं था। जैसे आजकल कहने लगे लिखने लगे कि पद्मपुराण पउमचरिय की नकल है यानि दिगम्बराचार्य सत्यमहाव्रती अचौर्यमहाव्रती नहीं होते हैं किन्तु ऐसा लिखने वाले पंडित ही महाव्रती हैं। इन पंडितों ने ही अपने जीवन को, ज्ञान को बेचकर अस्पतालों में जाकर दुर्मरण किया। यदि इन पंडितों में सही ज्ञान था, आन्तरिक ज्ञान था तो वृद्धावस्था या बीमारी आने पर समाधि की, सल्लेखना की तैयारी करते किन्तु ऐसा नहीं किया। कारण जो दूसरों का अवर्णवाद करता है वह स्वयं अवर्णवाद को प्राप्त होता है यही अप्रभावना है किन्तु उन जैनी वक्ताओं को ऐसा कहना चाहिए था कि जैसा हमारे तीर्थंकरों ने, आचार्य भगवन्तों ने, आरातीय आचार्यों ने कहा है ठीक उसी प्रकार उन अन्यमतियों ने, अन्यवक्ताओं ने कहा है तो कहीं भी दोषों का आगमन न होता, गुण होता किन्तु वैसा न कहकर जैसा उन लोक वक्ताओं ने कहा है वैसा ही दिगम्बराचार्यों ने कहा है इस कथन से सम्यग्दर्शन के जो अन्यदृष्टिप्रशंसा और अन्यदृष्टिस्तव अतिचार बताये हैं ये अनाचार दोष बन जाते हैं क्योंकि कोई दोष एकादबार होने से अतिचार और पुनः पुनः होने से अनाचार बन जाता है। अतः वर्तमान में जो दिगम्बर वक्ता साधू श्रावक

या पंडितवर्ग भगवान रजनीश का, आशारामबापू का या अन्य राजनेता देशी विदेशी वक्ताओं के प्रवचनों को सुनकर पढ़कर धर्मसभा में धर्मोपदेश के रूप में श्रावकों को, श्रोताओं को सुनाते हैं तो उन जिनमतानुयायी वक्ताओं को विचार करना चाहिए कि पुराने न्यायाचार्य दिगम्बराचार्यों ने अन्यमतियों के उपदेश को ग्रहणकर शास्त्रों में क्यों नहीं लिखा क्यों प्रवचन नहीं किया? या दिगम्बराचार्यों के पास में कुछ विषय की कमी थी जो उन अन्यमतियों के मुख से निकले प्रवचन को ग्रहण करते? आजकल कदाचित् दिगम्बर वक्ताओं को अन्यमती वक्ताओं के प्रवचन को अपने मुँह से उच्चारण करना है तो उसे धर्मसभा नाम न देकर आमसभा, राज्यसभा, लोकसभा, लोकमंच कहकर सम्बोधन करना चाहिए तो कोई दोष नहीं आयेगा। जब वह श्रोता तुम्हारी गूढ़ अर्थभरी बात को न समझ पाये तो शब्द रचना को सरल कर उनके मतानुसार नीतिनियम से जिनमत में विरोध न आये इस पद्धति से समझाना चाहिए। अन्यथा दोष उत्पन्न होते ही रहेंगे।

दूसरा उदाहरण—आजकल कुछ पंथवादी, पक्षपाती या दिगम्बरेतर पक्षपाती विद्वान पं. गण या श्रावक या साधुगण समयानुसार अपनी दिनचर्या चर्चा को बदलकर श्री महापुराण की गर्भाधान आदि 108 क्रियाओं को ब्राह्मणों की या वैदिकदर्शन की कहने लगे हैं कि आ. जिनसेन ने उन मत मतान्तरों की क्रियाकाण्ड को लेकर जैन साहित्य में समावेश कर लिया है। ऐसे ही सूतक पातक भी अन्यमतियों का है, जैनों का नहीं इन पंडितों का या इस प्रकार बोलने वाले साधुओं का यह कथन सही है तो मूलाचार, महापुराण तथा आ. जिनसेन और इसी प्रकार का वचन कहने वाले और भी ग्रन्थ तथा ग्रन्थकर्ता, जिनवाणी और जिनमुद्रा, मुनिमुद्रा, गुरु की कोटि में, धर्मायतन में नहीं आ सकते, धर्मायतन नहीं कहे जा सकते। मिथ्या, अनायतन कहलायेंगे, न प्रमाण कहे जा सकते हैं क्योंकि मिथ्या कथन करने वाला न सत्शास्त्र है न सद्गुरु है इस कारण जब अप्रमाण है, मिथ्या है तो मोक्षमार्ग के विरुद्ध स्वभाववाला होने से अनायतन कहलाये। अनायतन होने से जिनमंदिर में जिनवाणी मानकर विराजमान क्यों करना क्यों पूजना, क्यों नमस्कार करना, जिनवाणी कहकर क्यों छापना, छपवाना, क्यों बेचना, क्यों शास्त्रदान देना? आरती क्यों उतारना? जिनवाणी मानकर विनय करना यह सब अनाचार प्रवृत्ति है। यदि इन पंडितों के आगे क्रियाविशाल नाम का मूलग्रन्थ होता या महावीर होते तो इनकी मान्यता के विपरीत कथन करने वाले होने से उन शास्त्र और गुरु को, भगवान को अन्यमत के शास्त्र, अन्यमत के गुरु और अन्य मत के भगवान हैं ऐसा कहने में संकोच नहीं करते। जैसे इन्द्रभूति अग्निभूति वायुभूति वर्द्धमान से शास्त्रार्थ करने चले थे ऐसे ही ये पंडित साधु भी शास्त्रार्थ करने चल देते। जैसे महावीर मुनिराज ने जिस अवस्था में जिस रूप में चन्दनबाला थी उसी अवस्थासे आहार लिया था उसी रूप से आज कोई मुनिराज आहार लेने लगें तो उसको भ्रष्ट कहने में नहीं भी चूकेंगे। इसी तरह पंचामृताभिषेक, श्राविकाओं के द्वारा किया जाना अभिषेक, हरे फल फूल आदि से पूजा करने की पद्धति बतलाने वाले ग्रन्थों के सम्बन्ध में समझना चाहिए। फिर भी ये पंडित जन इन प्रथमानुयोग शास्त्रों में, महापुराण के सम्बन्ध में, सम्बन्धित अनर्गल कथन करने के कारण ही जैनमत में जैनों के यहाँ गर्भाधानादि क्रियाओं का उत्तर भारत में प्रायः कर लोप हो गया और लोप होता जा रहा है। क्या दिगम्बराचार्य इतने भीरू स्वभाववाले होते हैं या

नासमझ होते हैं कि अन्यमतियों की बात को जिनवाणी के नाम पर कथन कर दें या कोई लोकेषणा के लोभी थे? यदि ये क्रियायें अजैनों की थी तो जैनों की कौन सी क्रियायें है बताना चाहिए? क्रियाविशाल अंग की नये ढंग से रचना करना चाहिए या प्राचीन परिभाषानुसार क्रियाविशाल पर विश्वास रखते हो तो ये क्रियायें अन्यमत की हैं ऐसा कहना बन्द करो, अन्यथा मिथ्यात्वकर्म का आश्रव बंध होता है। कहा है –''**केवलिश्रुतसंघधर्म देवावर्णवादो दर्शनमोहस्य मिथ्यात्वकर्मस्य**'' त.सू. अ.6। इसलिए निर्दोष आगमाज्ञा का लोप करने से पंथवाद, पक्षपात, मतभेद का, मनभेद का प्रचार प्रसार हो रहा है, विस्तार हो रहा है, जैनों की अखंड शक्ति नष्ट हो रही है। यही तो अप्रभावना है अतः संक्षेप में अन्यमतियों में जैन मान्यताओं को मिला देना और जैनमत में अन्यमतियों की मान्यताओं को मिला लेना इन दोनों प्रकार की मान्यताओं को परस्पर में मिश्रणकर एक जैसा प्रचार प्रसार करना ही अप्रभावना है। इससे ही जैनधर्म का, मोक्षमार्ग का लोप हो रहा है और भविष्य में लोप होगा। कृष्णपक्ष की तरह अमावश्या आयेगी। आजकल सुधारकवादियों को गतानुगत न बहकर सर्वप्रथम अपनी रोटी बेटी में संशोधन करना चाहिए बाद में देव शास्त्र गुरु के सम्बन्ध में मोक्षमार्ग में संशोधन करना अत्युत्तम होगा, अन्यथा अप्रभावना अवश्यंभावी हैं। जो आजकल प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रही है।

प्रश्न– 623 संवेग निर्वेग आदि सम्यक्त्व के गुणों से युक्त हो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर ये संवेग निर्वेग आदि सम्यग्दर्शन के साथ में होने से गुण कहलाते हैं तथा सम्यग्दर्शन के प्राप्त किये बिना शुभयोग के नाम से या गुणाभास कहे जाते हैं या लोकोपचार से गुण कहते हैं, गुण कह सकते हैं क्योंकि न्याय पद्धति में कारण और कार्य में पौर्वापर्य भेद पाया जाता है। यदि ये परिणाम नहीं है तो मोक्षमार्ग कैसे होगा? सम्यग्दर्शन कैसे प्राप्त करेगा? क्योंकि कारण के बिना कार्य नहीं होता है ऐसा न्याय है।

प्रश्न– 624 इन परिणामों की प्राप्ति के बाद सम्यग्दर्शन प्राप्त करने में कितना समय लगता है बताओ?

उत्तर संवेग निर्वेग आदि आठ परिणामों की प्राप्ति के बाद सागरों पर्यन्त या अन्तर्मुहूर्त भी लग सकता है क्योंकि सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के पहले क्षयोपशमादि पाँच लब्धियों का होना जरूरी है और ये लब्धियां प्रमादियों के गोचर हो या न हो यह भिन्न बात है। जैसे राजा श्रेणिक ने जब मुनिराज के ऊपर उपसर्ग प्रारम्भ किया तब तीव्र कषायरूप बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह के परिणामों से सातवें नरक की आयु का बन्ध किया तथा तीसरे दिन चर्चा के बाद जब चेलना सहित श्रेणिक उपसर्गस्थल पर पहुंचे और युक्ति पूर्वक चेलना ने उपसर्ग निवारण किया उस समय मुनिराज की धैर्यता, गम्भीरता, दृढ़ता को देखकर अपनी इतनी तीव्र निन्दा गर्हा करने लगे कि इनके सामने अपनी गर्दन भी काटकर डाल दूं तो भी कम प्रायश्चित्त होगा ऐसे विचारों से ही अवलम्बना करण के द्वारा 33 सागर की नरकायु को छेदकर मात्र चौरासी हजार वर्ष कर दी तथा सम्यग्दर्शन प्राप्त किया। ये गल्ती मंजूर, गल्ती त्याग और प्रायाश्चित्त के परिणाम ही प्रायोग्यलब्धि करणलब्धि के परिणाम कहलाये। अन्यथा यदि ये परिणाम लब्धिरूप न माने जाए तो बिना लब्धियों के भी

सम्यग्दर्शन प्राप्त करने का प्रसंग आयेगा। जो आगम और तर्क से विरूद्ध है।

प्रश्न– 625 तो क्या सम्यग्दर्शन प्राप्त करने वाले जीवों के ये परिणाम होना ही चाहिए ऐसा नियम है क्या?

उत्तर हाँ, स्थूल दृष्टि से देखा जाय तो जरूरी नहीं है, जैसे इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति के ये एक भी परिणाम नहीं थे और मानस्तंभ को देखकर रत्नत्रय को प्राप्त हुए तथा भगवान महावीर के सामने पहुंच कर दिगम्बर मुनिदीक्षा ले मनः पर्ययज्ञान और अनेक ऋद्धियों को प्राप्त हुए। किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर राजमार्ग यही है कि समस्त जीवों के होना ही चाहिए यदि इसी विषयपर सूक्ष्मदृष्टि से विचारा जाय तो मानस्तम्भ को देखते ही मान को नष्ट करने के लिए जो सूक्ष्म परिणाम हुए वे परिणाम ही प्रायोग्यलब्धि, करणलब्धि के कहलाये यदि ऐसा न माना तो बिना लब्धियों के सम्यग्दर्शन प्राप्त करने का या रत्नत्रय प्राप्त करने का प्रसंग आयेगा, बिना कारण के कार्य होता है ऐसा मानने का प्रसंग आयेगा जो न्यायनीति से असंगत है।

प्रश्न– 626–27 राजमार्ग किसे कहते हैं? अपवाद मार्ग किसे कहते हैं?

उत्तर जो अधिकतर जीवों को आधार बनाकर प्राप्त हो, हर समय पाया जाये, सर्वत्र या सर्वकाल पाया जाये उसे राजमार्ग कहते हैं तथा क्वचित्, कदाचित्, किन्हीं के पाया जाये या किन्हीं के न पाया जाये उसे अथवा निर्दोष को राजमार्ग और सदोष को अपवादमार्ग कहते हैं।

प्रश्न– 628 संवेगगुण किसे कहते हैं?

उत्तर धर्म और धर्म के फल में, रत्नत्रय में और रत्नत्रय के फल में, मोक्ष में और मोक्षमार्ग में, प्रेम करने को, निष्कपट निःस्वार्थ प्रीति करने को या संसार से भयभीत होने को संवेग गुण कहते हैं।

प्रश्न– 629 निर्वेगगुण किसे कहते हैं?

उत्तर संसार शरीर और भोगों से विरक्त होने को अर्थात् जिन परिणामों से संसार शरीर और भोगों की प्राप्ति न हो उसे निर्वेगगुण कहते हैं। इसीका दूसरा नाम वैराग्य है।

प्रश्न– 630–31 निन्दागुण किसे कहते हैं और फल क्या है? निन्दादोष किसे कहते हैं और फल क्या हैं?

उत्तर इसी जीवन में किये गये अपने पाप कर्मों की अपनी ही साक्षी मैंने यह बहुत बुरा किया है, अनर्थकर डाला, ऐसा पाप नहीं करना चाहिए आदि विचार करने को निन्दागुण कहते हैं। इससे पाप कर्मों का स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध घटता है, पापकर्म संक्रमण कर जाते हैं, उदीरणा हो जाती है या बिना फल दिये कर्म अविपाक निर्जरा द्वारा नष्ट हो जाते हैं तथा दूसरों की बुराई को, दुष्कृत्यों को किसी तीसरे के सामने या आम जनता के सामने प्रकट करने को निन्दा दोष कहते हैं। इससे नीचगोत्र कर्म का आश्रवबंध होता है, जिससे नरकगति, तिर्यंचगति, नीचकुल, नीचजाति, विकलांग, कुरूप, निन्दित मनुष्यों में जन्म लेता है। नाना तरह के कष्ट प्राप्त होते हैं। अपमान, तिरस्कार, विश्वास हीनता को प्राप्त होता है तथा निन्दा गुण उत्थान के लिए होता है तो निन्दा दोष पतन के लिए होता है ऐसा समझना चाहिए। यही इन दोनों में अन्तर है।

प्रश्न– 632 गर्हागुण किसे कहते हैं?

उत्तर अपनी पापक्रियाओं को विवेकवान, धैर्यशाली, अपरिश्रावी गुणवाले गुरु के सामने उच्चारण करने को कि हे भगवन्त! हे गुरुदेव! मैंने ऐसा पापकर्म कर लिया है, अब मेरा उद्धार करो, भविष्य में ऐसा पाप ऐसा काम नहीं करूंगा इसे गर्हा गुण कहते हैं। गुणहीन चपल मनवाले गुरु के सामने अपनी आलोचना करना नहीं चाहिये। अतः भली प्रकार गुरु को, अगुरु को, कुगुरु को, सुगुरु को जानकर योग्य के सामने गर्हा (आलोचना) करना चाहिये।

प्रश्न– 633 गुरु किसे कहते हैं?

उत्तर जो अपने से बड़े हैं ऐसे मातापिता, पदाधिकारीगण, जो योग्य लौकिक जीवन जीने की कला सिखाते हैं, अच्छे संस्कार डालते हैं, अच्छे सज्जनों के योग्य गुणों की शिक्षा देते हैं, जो नाना प्रकार के आपत्ति विपत्तियों से बचाते हैं, रक्षा करते हैं उन्हें लोक में गुरु कहते हैं।

प्रश्न– 634 अगुरु किसे कहते हैं?

उत्तर जिसमें गुरु के, सुगुरु के सद्गुरु के लक्षण न पाये जाये उसे अगुरु कहते हैं अथवा जो मार काट की, लूटने की, अपहरण करने की कला सिखाते हैं, लौकिक पापवर्धक वस्त्रालंकार धारण करने की शिक्षा देते हैं उन्हें अगुरु कहते हैं।

प्रश्न– 635 कुगुरु किसे कहते हैं उदाहरण क्या है?

उत्तर जो साधुवेष धारण कर धूम्रपान, व्यसनसेवन, कन्दमूल भक्षण तथा लौकिक क्रियायें करते कराते हैं, आत्मसाधना के, संयम धर्म के विरुद्ध उपदेश करते हैं उनको कुगुरु कहते हैं। जैसे पत्थर की नाव स्वयं डूबती है और यात्रिओं को डुबाती हैं वैसे ही कुगुरुओं को जानना चाहिये।

प्रश्न– 636 सुगुरु किसे कहते हैं?

उत्तर जो रत्नत्रय से युक्त हैं, आरम्भ परिग्रह के त्यागी हैं, विषयकषायों की आधीनता के त्यागी हैं, ज्ञान, ध्यान, तप आदि सत्कार्यों में संलग्न हैं, वैराग्य से सहित हैं, जिनमुद्रा के धारी है, निर्ग्रन्थ हैं वायुयान के समान जो तरते और तारते हैं उन्हें सुगुरु कहते हैं।

प्रश्न– 637 उपशमगुण किसे कहते हैं तथा उदाहरण क्या है?

उत्तर पूर्वबद्धकर्म जो सत्ता में मौजूद हैं वह वर्तमान में अपने परिणाम विशेष से उदय में आने के अयोग्य अवस्था को प्राप्त हो, अपना फल देने में असमर्थ हो उसे उपशमगुण कहते हैं। जैसे बेहोश मनुष्य चेष्टा करने में असमर्थ है या गंदे पानी में फिटकरी डालने से कीचड़ नीचे बैठी हुई है परन्तु कालान्तर में चेतनता आने पर या कारण मिलने पर कार्य करने में, गंदा होने में समर्थ हो सकता है ऐसे ही द्रव्य क्षेत्र काल भावों के अनुकूल होने पर कर्म वर्तमान काल में फलदान शक्ति से रहित होकर बेहोश व्यक्ति के समान मौजूद होने को उपशमगुण कहते हैं।

प्रश्न– 638 उपशमगुण, प्रशमभावगुण क्या कषायों के मंदोदय से होता है?

उत्तर नहीं, कषायों के मंदोदय से होने वाले परिणाम को मंदकषाय, मंदभाव कहते हैं इसको सम्यग्दर्शन का गुण नहीं कहते हैं क्योंकि इस मंदभाव से आश्रवबन्ध चालू रहता है यह तो

संसार मार्ग है किन्तु उपशम गुण सम्यग्दर्शन का गुण है, मोक्षमार्ग है, संवर निर्जरा तत्त्व है। यदि कषाय भाव को भी सम्यक्त्व का गुण कहेंगे तो कषाय भाव ही मोक्षमार्ग बन जायेगा तथा कषाय भाव को संवर निर्जरा तत्त्व कहना पड़ेगा और कषायभाव ही मोक्ष प्राप्ति का साधन बन जायेगा, कषायभाव से ही संसार बन्धन से छुटकारा प्राप्त होता है तो कषाय के त्याग का उपदेश क्यों दिया? कषायभाव को आश्रवबन्ध क्यों कहा? ऐसा यह सब उपदेश व्यर्थ हो जायेगा। उपशमगुण से, उपशमगुणधर्म से पुण्यपाप का आश्रवबन्ध नहीं होता है क्योंकि शुद्धस्वभाव से या शुद्धात्मा के सम्मुख होने से कर्मों का क्षय होता है और वह कर्मों का क्षय एकदेश हो या सर्वदेश। अतः उपशमगुण कषाय के उदयाभाव से होता है जो मोक्षमार्ग है संवर निर्जरा तत्त्व है, मोक्ष के अत्यंत निकट ले जाता है। भव्य जीवों में भी सम्यग्दृष्टियों के ही होता है।

प्रश्न– 639 भक्ति गुण किसे कहते हैं?

उत्तर जो मोक्षमार्ग है, मोक्षमार्ग का उपाय बताते हैं, सम्यक् आयतन हैं, संसार बन्धन से छूटने का उपाय बताते हैं ऐसे देव शास्त्र गुरु के प्रति समर्पित होने को, आयतनों के प्रति परम प्रीति होने को, उनका गुणगान करने को, सर्वत्र उनकी कीर्ति फैलाने को, गुणकथन करने को भक्ति कहते हैं, जो सम्यग्दर्शन का अनन्यगुण है। भक्ति के बिना भक्त कैसा?

प्रश्न– 640 अनुकम्पा गुण किसे कहते हैं?

उत्तर समस्त संसारी प्राणीवर्ग नाना तरह के कष्टों से दुःखी हैं उनकी दुःखित अवस्था को देखकर दुःखित मन से ही अपना दुःख मानकर उनको सुखी करने में या दुःख दूर करने में संलग्न होने को, सान्त्वना देने को, दया, अभयदान अनुकम्पा कहते हैं। यह अनुकम्पा राग रूप नहीं हैं, कषाय भाव नहीं है किन्तु सम्यग्दर्शन का गुण है, अकषायभाव है, मोक्षमार्ग है, संवर निर्जरा तत्त्व है, आत्मस्वभाव है, इस भाव को कायर प्राणी धारण नहीं कर सकते है, वीरों का आभूषण है। जिसके अंदर मेरा तेरापन है वह विकारी होने से रक्षा कैसे करेगा? जो कमजोरों को, समस्त पशुपक्षी आदि प्राणियों को अपने समान देखता है, मानता है वही रक्षा कर सकता है, अन्य नहीं क्योंकि जिसने अपने दुःख का अनुभव किया है वही व्यक्ति दूसरों के दुःख को दुःख समझ सकता है तभी तो वह परजीवों पर दया अनुकंपा कर सकता है। जो मनुष्य मद्य मांस मधु, रात्रिभोजन, अनछना जल पीते हैं, अमर्यादित भोजन, औषधि का सेवन करते हैं, अनन्तकायिक कन्दमूल, आसव, अचार मुरब्बा, अमर्यादित औषधि आदि का सेवन करते हैं, जो अभव्य हैं, मिथ्यादृष्टि हैं उनके यह अनुकंपागुण नहीं हो सकता है। इन आठ गुणों में प्रशम, संवेग, अनुकंपा और आस्तिक्य गुण क्रमशः उपशम में, संवेग में अनुकंपा और भक्ति में अन्तर्भाव को प्राप्त हो जाते हैं। ये भाव या गुण सम्यग्दृष्टि जीवों में ही पाये जाते हैं मिथ्यादृष्टि जीवों में कभी भी नहीं पाये जाते हैं। यदि ये भाव मिथ्यादृष्टियों में पाये जाते हैं तो सम्यग्दर्शन के गुण नहीं कहे जा सकते हैं तथा यदि कोई बलात् माने तो अतिव्याप्ति दोष आता हैं और आगम से विरोध है।

प्रश्न– 641 अतिव्याप्ति दोष कैसे आता है बताओ?

उत्तर देखो ये प्रशम संवेग आदि गुण सम्यग्दर्शन के हैं। यहाँ सम्यग्दर्शन लक्ष्य है तथा प्रशम संवेग

अनुकंपा, आस्तिक्य आदि लक्षण है। जो लक्षण लक्ष्य से अलक्ष्य में चला जाये उसे अतिव्याप्ति दोष कहते हैं। यहाँ सम्यग्दर्शन या सम्यग्दृष्टि जीव लक्ष्य है और मिथ्यादर्शन या मिथ्यादृष्टि जीव अलक्ष्य तथा प्रशम संवेगादि लक्षण अलक्ष्य स्वरूप मिथ्यादृष्टियों में चले जाने से अतिव्याप्ति दोष ही आता हैं। जैसे सामान्य ज्ञानदर्शन गुण भी है और लक्षण भी है अतः कोई दोष नहीं आता। इसलिए जिन ग्रन्थकारों ने मिथ्यादृष्टियों के प्रशम संवेग अनुकम्पा और आस्तिक्य गुण पाये जाते हैं ऐसा लिखा है वह केवल लोक व्यवहार को देखकर लिखा है या लोकदृष्टि से लिखा है। निर्दोष आगमदृष्टि से नहीं लिखा ऐसा समझना चाहिए।

प्रश्न— 642 अन्यमती साधुओं के प्रशमादिगुण पाये जाते हैं सो कैसे? वे भयंकर ठण्डी गर्मी में कष्ट सहन करते हैं कोई आपत्ति आये तो मौन पूर्वक सहन करते हैं, नाना उपद्रवों को प्रतिकार किये बिना सहन करते हैं अतः प्रशम हैं, इसी तरह संसार शरीर और भोगों से विरक्त हुए हैं, तभी तो जंगल में जाकर वृक्षों की कोटरों में या शाखाओं में ऊपर पैर नीचे मुखकर लटके रहते हैं, एक पैर से खड़े रहते हैं, पंचाग्नि तप करते हैं, अतः संवेग गुण है, पुनः किसी भी प्रकार से मनुष्यों की पशु पक्षियों की विराधना नहीं करते, सतत जीवों की रक्षा करते रहते हैं, किसी को बाधा नहीं पहुंचाते हैं अतः अनुकम्पा गुण हैं। इसी तरह उनके मन में अपनी परम्परानुसार धर्म में तीव्र आस्था विश्वास है कि इसीसे मोक्ष की प्राप्ति होगी दुःख से छुटकारा प्राप्त होगा यही आस्तिक्यगुण है इस प्रकार ये गुण सामान्य होने से भव्य अभव्य, सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि जीवों में पाये जाने में क्या दोष है?

उत्तर मिथ्यात्व कर्मोदय से ये प्रशम, संवेग, अनुकंपा और आस्तिक्य गुण किंचित् मात्र भी मिथ्यादृष्टियों में नहीं पाये जाते हैं। वस्तु तत्त्व के सम्बन्ध में अनर्गल अज्ञान, विपरीत, संशय आदि विचार करनेवाले, मिथ्यादृष्टियों में असदाग्रह, एकान्त या अन्यथा आग्रह पाया जाता है। यही सब कुछ है, हमारी मान्यता, हमारी चर्या ही सत्य है शेष असत्य है, यही परिपूर्ण है, उनकी साधना अभ्यास यहीं तक होता है इसके आगे नहीं। अनेकान्तवादी सम्यग्दृष्टि जीव इनको आत्म विकास का कारण मानकर वृद्धि को प्राप्त होता है अतः ये गुण मिथ्यादृष्टियों के नहीं पाये जाते हैं तथा जो कुछ बाह्य में मिथ्यादृष्टि जीवों के दिखाई देते हैं वे गुण न होकर गुणों के समान मृगमरीचिका की तरह मालूम होते हैं किन्तु यथार्थ में गुण नहीं है कारण जो साधन को साध्य मान बैठा है वह सिद्ध करने के लिए कहाँ पुरुषार्थ करेगा? अतः अनेकांत के विरोधियों के यहाँ किसी भी प्रकार से संसार और मोक्ष की व्यवस्था नहीं बन सकती है।

प्रश्न— 643 मैत्री आदि चार भावनाओं से सहित हो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर समस्त प्राणियों को अपनी आत्मा के समान मानना मैत्री भावना है। समस्त प्राणियों के अन्दर ही रत्नत्रय से जो युक्त हैं, सदाचारी, सद्विचारी हैं, उनके सामने आते ही रोम रोम से हर्ष उत्पन्न

होना, आनन्दाश्रु बह निकलना प्रमोद भावना हैं। उन प्राणियों के अन्दर जो नाना प्रकार से दुःखी हैं, बीमार हैं, उनको देखकर दुःखित मन होकर उनके दुःख को दूर करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहना, दुःख दूर करना, कारुण्य भावना है। जो विषयकषायी उद्दण्ड अभिमानी पापी मनुष्य हैं, जिनको सत्शिक्षा कषाय को उत्पन्न कराती है। जैसे सर्प को गुड़ दूध पिलाओ तो जहर ही बनता है ऐसे ही हीन बुद्धिवाले हीनाचरणवाले व्यक्तियों से रागद्वेष न कर मौन रखना ही श्रेष्ठ है, वैरविरोध करने से निष्प्रयोजन कर्मों का बन्ध होता है, दुःख की प्राप्ति होती है अतः मौन रखना, रागद्वेष नहीं करना यही माध्यस्थ भावना है। ये चारों भावनायें यथायोग्य भूमिकानुसार होना चाहिए। अन्यथा यदि ये विचार नहीं हुए तो तीव्र कषाय रूप परिणाम होने से, अविवेकता होने से सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की भूमिका नहीं बन सकती है।

प्रश्न– 644 जब मिथ्यात्व गुणस्थान में ही सोलहकारण भावनायें, निःशंकितादि आठ गुण, आठ अंग, मैत्री आदि भावना, देवपूजादि षडावश्यक कर्तव्य, मूलोत्तरगुण प्राप्त हो गये तो फिर आगे प्राप्त करने के लिए क्या शेष बचा?

उत्तर नहीं, उपरोक्त गुण, भावनायें कर्तव्य प्राप्त नहीं हुए हैं किन्तु यथार्थ रूप में प्राप्त करने के लिए अभ्यास कर रहा है, भूमिका बना रहा है क्योंकि कारण के अनुसार कार्य होता है ऐसा न्याय है, इसलिए उपरोक्त परिणाम कर्तव्य हैं, कारण हैं तथा उपशम सम्यग्दर्शन, वेदकसम्यग्दर्शन रत्नत्रय कार्य हैं। कारण पहले होता है और कार्य बाद में ऐसा भी न्याय है, इस कारण उक्त परिणाम, क्रिया, आवश्यक मिथ्यात्वगुणस्थान में भूमिका रूप में नहीं हुए तो भविष्य में सम्यग्दर्शन या रत्नत्रय कैसे प्राप्त होगा? भूमिका अवस्था में मिथ्यात्वगुणस्थान में ये भावनायें आदि शुभयोग और उपयोग की अपेक्षा अशुभोपयोग कहलाती हैं। मिथ्याश्रद्धा कथंचित् स्थूल रूप में होने से अनुभव में, जानकारी में आ सकती है तथा कथंचित् सूक्ष्मरूप में होने से अनुभव में, जानकारी में नहीं भी आ सकती है। कथंचित् व्यक्त और कथंचित् अव्यक्त है किन्तु करणलब्धिरूप अवस्था में मिथ्यात्व गुणस्थान में मिथ्यात्वकर्म और अनन्तानुबन्धी कषाय का स्थितिबन्ध अनुभागबन्ध होने पर भी अश्रद्धान अव्यक्त ही रहता है, अनुभव में जानकारी में नहीं आता और अबुद्धिपूर्वक मिथ्यात्व परिणति रूप क्रिया से युक्त होता है। तभी तो करण लब्धि के अन्तपर्यन्त मिथ्यात्व का आश्रव बंध होता है। अतः सम्यग्दर्शन या रत्नत्रय प्राप्त करने के लिए भूमिका रूप में उक्त परिणामों का होना अनिवार्य है। यही राजमार्ग है। सम्यग्दर्शन या रत्नत्रय की प्राप्ति के बाद ये परिणाम समीचीन कहलाते हैं और रत्नत्रय के बिना ये परिणाम असमीचीन कहलाते हैं। करणरूप लब्धि के बिना ये परिणाम भोगभूमि के, स्वर्ग के सुखों को प्राप्त कराते हैं। इस कारण ये परिणाम लोक दृष्टि में भी सफलीभूत हैं, सार्थक हैं।

प्रश्न– 645 भूमिका पूर्ण रूप से तैयार होने पर रत्नत्रय की प्राप्ति कब होती है?

उत्तर भूमिका पूर्ण रूप से तैयार होने के बाद कम से कम अन्तर्मुहूर्त और अधिक से अधिक सागरों पर्यन्तकाल में या अपने जीवनकाल के किसी भी समय में योग्यतानुसार देवशास्त्रगुरु का समागम प्राप्त होने पर रत्नत्रय की, सम्यग्दर्शन की प्राप्ति कर लेता है। 'देर हो सकती है पर

अन्धेर नहीं' क्योंकि साधना व्यर्थ नहीं जाती है जैसे कि श्री आदिनाथ ने तीर्थकर पद प्राप्त करने के पहले दसवें भव में महाबल की पर्याय में भूमिका प्रारम्भ की थी। महावीर ने तीर्थंकर होने के पहले सिंह की पर्याय में भूमिका प्रारम्भ की थी और दसवें भव में आगे जाकर तीर्थंकर बन मोक्ष सिधारे। अतः भूमिका बनाने में, अभ्यास करने में, प्रमाद नहीं करना चाहिए सावधान रहना चाहिए। तभी रत्नत्रय या सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है, अन्यथा नहीं। 'जब ही जागो तब ही सवेरा' कहावत के अनुसार जब करोगे तभी प्राप्त होगा।

प्रश्न— 646 रत्नत्रय युक्त श्रावक और साधुओं का क्या कर्तव्य है?

उत्तर श्रावकों का त्रस जीवों की विराधना रहित, संकल्पी हिंसा के त्याग पूर्वक शुद्ध धर्मानुकूल व्यापारों के द्वारा अपनी आजीविका चलाना, न्यायोपार्जित धन के द्वारा धर्म की, निजकी, समाज की प्रभावना करना, देव पूजा आदि षडावश्यकों का पालन करना, मूलोत्तरगुणों का पालन करना, परिणामों की निर्मलता अनुसार दर्शनादि 11 प्रतिमाओं का या 53 क्रियाओं का पालन करना श्रावकों का कर्तव्य है तथा मुनि आदि का 28, 25, 36 मूलगुणों का पालन करना, ध्यानाध्ययन करना, आत्मप्रभावना तथा जिनधर्म की प्रभावना करना मुनियों का धर्म है। यह आचरण धर्म है किन्तु अध्यात्म धर्म संयम के साथ में होने से, आरंभ परिग्रह का, शृंगारालंकार का, आर्तरौद्र ध्यानों का त्याग होने से आदि साधु श्रावकों के असंख्यात गुणश्रेणी कर्मों की निर्जरा होती है।

प्रश्न— 647 मुनि, साधु किसे कहते हैं?

उत्तर आरम्भ परिग्रह आदि को त्यागकर, मौनव्रत धारण कर आत्मसाधना करते हैं उन्हें मुनि कहते हैं जैसे तीर्थंकर प्रकृति की सत्तावालां के जिनदीक्षा लेते ही मतिज्ञान आदि चार ज्ञान हो जाते हैं, अनेक ऋद्धियां उत्पन्न हो जाती हैं फिर भी वचनों के द्वारा धर्मोपदेश नहीं करते क्योंकि छद्मस्थावस्था में असत् प्रतिपादन हो सकता है।''दंसणणाण समग्गं मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं। साधयदि णिच्चसुद्धं साहू सो मुणी णमो तस्स''।।द्र०सं०।।

प्रश्न— 648 वचनों के द्वारा मार्गदर्शन क्यों नहीं देते हैं?

उत्तर नहीं, क्योंकि छद्मस्थावस्था में, अल्पज्ञानावस्था में अनेक गुण मौजूद हैं फिर भी कहीं अन्यथा कथन हो गया तो ये भोले प्राणी आज्ञाप्रधानी भटक सकते हैं अतः इन संख्यात, असंख्यात प्राणियों का अहित न हो इसलिए वचनों के द्वारा मार्गदर्शन न देकर, मौन पूर्वक आत्म साधना करते हैं और प्रमत्तों की बोलने में आत्मसाधना में बाधा उत्पन्न होती है। जो नित्य शुद्धात्मा की साधना करते हैं वे साधु कहलाते हैं। जो प्रमत्त गुणस्थानवर्ती संयमी जनों के पर्यायवाची नाम बताये हैं वे सब भावात्मक साधना के अनुसार समझना चाहिए। बाह्य मुद्रा, चिह्न, लिंग एक ही प्रकार का है जैसे नग्न होना, केशलुंचन करना, पीछी कमण्डलु ग्रहण करना, करपात्र में आहारादि ग्रहण करने में कोई अन्तर नहीं हैं। यह मुनिपद यद्यपि सन्तान परम्परानुसार अनादि से है और अनन्तकाल तक रहेगा। पर एक जीव की अपेक्षा कम से कम जन्म लेने के एक अन्तर्मुहूर्त और आठ वर्ष बाद संयम ग्रहण करने की योग्यता आती है अतः मुनि परम्परा एक जीव की अपेक्षा सादि सान्त तथा नाना जीवों की अपेक्षा अनादि अनन्त समझना

चाहिए। अणुव्रत और महाव्रत रूपी संयम के साथ मोक्षमार्ग की साधना कर्मभूमि वाले मनुष्यों में ही होती है, मलेच्छ और भोगभूमिज मनुष्यों में नहीं होती है।

प्रश्न– 649 श्रावक धर्म की उत्पत्ति अनादिकाल से है या सादिकाल से?

उत्तर श्रावक धर्म की उत्पत्ति नाना जीवों की अपेक्षा तथा नाना काल और नाना क्षेत्रों की अपेक्षा अनादि काल से चली आ रही है तथा अनन्तकाल तक चलती चली जायेगी तथा एक जीव की अपेक्षा, एक काल और एक क्षेत्र की अपेक्षा सादिसांत है। किसी प्रकार से रुकावट आने वाली नहीं है। यह मोक्षमार्ग की सादिपरम्परा उत्तम भोगभूमि में जन्म के 21 दिन के बाद, मध्यम भोगभूमि में जन्म के 35 दिन के बाद, जघन्य भोगभूमि में जन्म के 49 दिन के बाद रत्नत्रय या सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की योग्यता आती है इसके पहले नहीं। उत्तम भोगभूमि की, मध्यम भोगभूमि की और जघन्य भोगभूमि की कर्मभूमिज जिन मनुष्य या तिर्यंचों ने मिथ्यात्व गुणस्थान में कुछ सरल या मध्यम परिणामों से मनुष्यायु का बन्ध कर लिया है और बाद में सम्यग्दर्शन प्राप्त किया फिर मरणकर अपनी आयु के उदयानुसार भोगभूमि में जन्म धारण कर लेता है तो ऐसे जीवों की अपेक्षा जन्म से मोक्षमार्ग चालू रहता है, समाप्त नहीं होता है। कर्मभूमि की अपेक्षा संयम रहित सदाचार सद्विचार धर्म के संस्कार गर्भावस्था में ही डाले जाते हैं तभी संस्कार युक्त जन्म लेता है। जन्म के सवा या डेढ़ महिने के बाद मंदिरजी में गुरुओं के द्वारा मूलगुणों का नियम दिया जाता है। जब तक बालक बालिकायें असमर्थ हैं, गोद में हैं तब तक माँ बाप नियमों का पालन पोषण कराते हैं तथा समर्थ होने पर फिर स्वयं पालन करते हैं। भोगभूमिज, कुभोगभूमिजों में और मलेच्छखण्डवाले मनुष्य संस्कार रहित होते हैं। आर्यखण्ड वाले मनुष्य दोनों प्रकार के होते हैं यही अंतर है, शेष मनुष्य संस्कार रहित ही होते है किन्तु आजकल मनुष्य गर्भ से संस्कार युक्त होना या लेकर आना कोई एकाद परसेंट मिल सकता है शेष 99% संस्कार हीन ही जन्म धारण कर रहे हैं, फिर भी इन मनुष्यों में कर्मोदय की अपेक्षा सामान्यतया अन्तर नहीं है, विशेष अपेक्षा से अन्तर है। जो आगमाभ्यासी और अनुभवी जानते हैं।

प्रश्न– 650 उत्तम मध्यम जघन्य भोगभूमिज पर्याप्त मनुष्य तीनों प्रकार के सम्यग्दर्शनों से युक्त होते हैं। इसी प्रकार क्षायोपशमिक ज्ञान तथा क्षायोपशमिक चारित्र सहित होते हैं फिर भी उन्हें संस्कार हीन क्यों कहा?

उत्तर वहाँ पर गर्भान्वय आदि क्रियायें करने कराने वाले शास्वत भोगभूमियों में कुलकर नहीं होते हैं तथा अशास्वत भोगभूमियों में जब भोगभूमि का अन्त तथा कर्मभूमि के प्रारम्भ का समय आता है तब कुलकर पैदा होते हैं। वे जीवन को सुरक्षित रखने के लिए उपदेश देते हैं और वह उपदेश भी केवल भय को या आश्चर्य को मिटाने वाला होता है। अतः भोगभूमिजों में यदि ये गर्भान्वय आदि क्रियाओं के संस्कार डाले जाने लगें तो फिर उसे भोगभूमि कौन कहेगा? वहाँ भोगभूमि में जन्म देने के बाद माँ बाप की मृत्यु हो जाती है और वे युगलिया पूर्वकृत पुण्य के द्वारा वृद्धि को प्राप्त कर क्रमशः 21 दिन, 35 दिन, 49 दिन के बाद गृहस्थ जीवन में प्रवेश करते हैं। अतः संस्कार डालने वाला न होने से संस्कार हीन कहा जाता है। जैसे अग्नि के संस्कार सहित मिट्टी

का घड़ा अनेक कार्य करने में समर्थ होता है और अग्नि संस्कार के बिना असमर्थ होता है।

प्रश्न651 मुनिधर्म की प्रवृत्ति अनादिकाल से है या सादि काल से?

उत्तर नाना मुनियों की अपेक्षा मुनिधर्म की प्रवृत्ति अनादिकाल से चली आ रही है ऐसा नहीं है कि सर्वप्रथम इस अनादि संसार में इस मुनि ने मोक्ष प्राप्त किया हो क्योंकि विदेहक्षेत्रों से सतत निरंतर मोक्ष प्राप्त करते हैं और करते आ रहे हैं इसलिए नाना जीव और नाना क्षेत्रों की अपेक्षा मुनि धर्म अनादि काल से चला आ रहा है, चलता रहेगा तथा एक जीव की अपेक्षा मुनि धर्म की प्रवृत्ति जन्म से आठवर्ष और अन्तर्मुहूर्त कम शेष जीवन काल पर्यन्त होती है। संसार अनादि है, मोक्ष भी अनादि है फिर भी संसार की अपेक्षा मोक्ष के अनादि में आठवर्ष और अन्तर्मुहूर्त काल कम करना चाहिए क्योंकि मनुष्यों में इतने काल के पहले संयम धारण करने की योग्यता नहीं आती, बिना योग्यता के दीक्षा भी ले ली तो प्रमत्ताप्रमत्त गुणस्थान नहीं आ सकता क्योंकि योग्यता के बिना समस्त प्रकार के पुरुषार्थ निष्फल चले जाते हैं, कार्यकारी नहीं होते।

प्रश्न– 652 आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्तकाल में मोक्ष की प्राप्ति कैसे हो सकती है?

उत्तर आठवर्ष और अन्तर्मुहूर्त की आयु लेकर या अधिक आयु लेकर आये हैं तथा पूर्वसंस्कार वश आठवर्ष और अर्न्तमुहूर्त काल के अन्दर दीक्षा ग्रहण कर ली समय पूरा होने के अर्न्तमुहूर्त काल पहले क्षपकश्रेणी आरोहणकर अपने अपने गुणस्थानानुसार कर्मों का क्षय करते हुए मोक्ष प्राप्त किया अथवा अभी आयु शेष है तो भी दीक्षा ले ली किन्तु गजकुमार जैसा पूर्व का शत्रु आया उसने भयंकर उपसर्ग प्रारम्भ किया, उपसर्ग होते ही आयु कर्म की उदीरणा प्रारम्भ की तथा उदीरणा होते होते प्रमत्ताप्रमत्त गुणस्थान में केवल जीवन अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर क्षपकश्रेणी आरोहण कर क्रमशः कर्मों को क्षयकर मोक्ष प्राप्त किया। इसलिए इस अवसर्पिणीकाल की अपेक्षा तीसरे काल के साढे तीनवर्ष अधिक एकलाख वर्ष पूर्व शेष रहने पर राजा श्री आदिनाथ ने मुनिदीक्षा लेकर मुनिधर्म प्रारम्भ किया अतः इस अपेक्षा से सादि है और बीजवृक्ष न्यायानुसार परम्परानुसार विचार किया जाय तो मुनि परंपरा अनादिकाल से चली आ रही है। मोक्ष और मोक्षमार्ग कब से प्रारम्भ हुआ, किसने प्रारम्भ किया, सर्वप्रथम कौन सिद्ध हुआ यह कहना अशक्य है केवली भगवान अनादि को अनादि, सादि को सादि और अनन्त को अनन्त रूप में जानते हैं देखते हैं और उसीको उसी रूप में दिव्यध्वनि के द्वारा प्रतिपादन करते हैं। इसलिए नाना जीवों की अपेक्षा मुनिधर्म अनादि से है और अनन्तकाल तक रहेगा। एक जीव की अपेक्षा सादि सान्त है। न सर्वथा अनादि है न सर्वथा सादि है।

प्रश्न– 653 आवश्यक कर्तव्य किसे कहते हैं?

उत्तर लोक में धार्मिक माँ बाप की तथा मोक्षमार्ग में जिनधर्म की मान मर्यादा रखते हुए स्वतन्त्र स्वाधीन होकर प्रसन्न मन से आजीविका सम्बन्धी कार्यों के द्वारा उपार्जन किये गये पाप कर्मों की स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध को घटाने के लिए, दर्शनमोहनीय कर्म और अनंतानुबन्धी कषाय को समूल क्षय करने के लिए, श्रावक बनने के लिए अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय को दबाने के लिए, सातिशय पुण्य बढ़ाने के लिए, नवीन पाप कर्मों की संवर और निर्जरा करने के लिए अर्थात्

पूर्व कर्मों की संख्यातगुण श्रेणी और असंख्यातगुण श्रेणी रूप से कर्मो की निर्जरा करने के लिए जो विशेष उत्तम लोकोत्तर कार्य किये जाते हैं उन्हें आवश्यक कर्तव्य कर्म कहते हैं।

प्रश्न— 654 आवश्यक कर्तव्य के कितने भेद हैं?

उत्तर गृहीश्रावकों के सामान्यतया आवश्यकों के 6 भेद हैं और इन्हीं के अवान्तर भेद बहुत हैं।

प्रश्न— 655—57 गृहस्थों के षडावश्यकों के नाम कौन कौन हैं? देवपूजा किसे कहते हैं? गुरुपूजा किसे कहते हैं?

उत्तर 1. देवपूजा 2. गुरुपूजा 3. स्वाध्याय 4. संयम 5. तप 6. दान ये षडावश्यक कर्तव्य हैं इन्हें सत्श्रावकों के द्वारा मोक्ष के निमित्त, आत्म शुद्धि के निमित्त प्रतिदिन पालन करना चाहिए क्योंकि जब संसार के, विषयभोगों के, शृंगार अलंकार के, आरम्भ परिग्रह के कार्य प्रतिदिन करते हैं तो पापमल को नष्ट करने वाले, धोनेवाले कार्य भी निशदिन, प्रतिदिन सदा करना चाहिए। संसार में देवगति नाम कर्म के उदय से प्राप्त भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषी और वैमानिकदेवों के द्वारा जो पूज्य हैं श्रेष्ठ हैं वे देवाधिदेव अरिहन्तदेव। ये 1. चेतन 2. इनकी मूर्ति अचेतन 3. सिद्ध परमेष्ठी चेतन 4. इनकी मूर्ति अचेतन 5. आचार्य श्री चेतन 6. इनकी मूर्ति अचेतन 7. उपाध्याय श्री चेतन 8.इनकी मूर्ति अचेतन 9 साधु चेतन 10. इनकी मूर्ति अचेतन 11. कृत्रिम चैत्य 12. कृत्रिम चैत्यालय 13. अकृत्रिम चैत्य 14. अकृत्रिम चैत्यालय 15. आचरणस्वरूप मूलोत्तरगुण धर्म इनसे परिणत आत्मा चेतन16. आचरण पालते हुए बताने वाले बिम्ब अचेतन 17. वचनरूप जिनवाणी 18. पुस्तकाकार शास्त्राकार कागज में ताड़पत्र में या चांदी तांबा पीतल आदि में लिपिबद्ध अथवा भावज्ञान और द्रव्यज्ञान। ये सभी नयसापेक्ष होने से नवदेवता देव भी कहलाते हैं और गुरु भी कहलाते हैं। "पुलाकबकुशकुशीलनिर्ग्रंथ स्नातकाःनिर्ग्रन्थाः।। त.सू. पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक ये पाँच नाम मुनियों के हैं ये पंचगुरु भी कहलाते हैं। इन स्थानों का यथायोग्य अभिषेक करना चाहिए। जल चन्दन आदि अष्ट द्रव्यों से पूजन करना चाहिए अथवा जो अनन्तचतुष्टय को या अनन्तगुणों को प्राप्त कर चुके हैं वे देव और इनका पूजन देवपूजन तथा जो अनंत चतुष्टय या अनन्तगुणों को प्राप्त करने के लिए सकल संयम धारणकर साधना कर रहे हैं वे गुरु और उनके पूजन को गुरु पूजन कहते हैं।

प्रश्न— 658 स्वाध्याय किसे कहते हैं?

उत्तर आत्म सिद्धि के लिए, नवीन नीतिनियम जानने के लिए जिनेन्द्र प्रणीत निर्दोष प्रमाण नय निक्षेप से परीक्षित शास्त्रों के पठनपाठन करने को स्वाध्याय कहते हैं।

प्रश्न— 659 संयम किसे कहते हैं?

उत्तर देशसंयम नामक पंचम गुणस्थान के प्रतिमाओं के भेद से 11 भेद हैं अथवा संकल्प पूर्वक त्रसहिंसा आदि के त्याग की अपेक्षा चार प्रकार का है जैसे संकल्प पूर्वक त्रसजीवों की हिंसा का त्याग करना, संकल्प पूर्वक त्रसजीवों की विराधना रूप आरम्भीहिंसा का त्याग करना, संकल्प पूर्वक त्रसजीवों की विराधना स्वरूप उद्योगी खेतीव्यापार शस्त्रादि चलाकर आजीविका का अर्थात् ऐसे व्यापार आदि का त्याग करना। संकल्प पूर्वक अपने जीवन, परिवार, समाज, देश पर आये हुए

संकट के विरोध का त्याग करना इस प्रकार यह त्रसहिंसा के त्याग रूप संयम चार प्रकार का है तथा अविरतसम्यग्दृष्टि जीव की अपेक्षा स्वच्छन्द प्रवृत्ति का त्याग रूप संयम अभेद नय की अपेक्षा एक प्रकार का है अथवा अविरत सम्यग्दृष्टि जीव के 43 महापाप रूप कर्म प्रकृतियों के आश्रवबन्ध रूप क्रिया के त्याग रूप भाव संयम और अभक्ष्य के त्याग रूप द्रव्यसंयम तथा आगे के गुणस्थानों के अनुसार भाव और द्रव्यसंयम का अभाव रूप असंयमपना है। जैसे बिल्ली अपने उसी मुंह से अपने बच्चे को तथा चूहे के बच्चे को पकड़ती है। पकड़ने का मुख एक ही है केवल हेतु में अन्तर है। वह बिल्ली अपने बच्चे को रक्षा की दृष्टि से पकड़ती है, दबाती है और चूहे के बच्चे को मारने के, खाने के हेतु तमतमाती हुई जोर से कहीं भाग न जाय, छूट न जाये इस तीव्रकषायरूप परिणामों से दबाती है। इसी तरह हेतु में अन्तर होने से दबाने की क्रिया में अन्तर हो जाता है। सम्यग्दृष्टि के और मिथ्यादृष्टि जीवों के कथंचित् स्थूल रूप से बाह्य क्रियायें समान दिखने पर, लगने पर भी अंतरंग के हेतु में अन्तर होने से सम्यग्दृष्टि जीव के 43 प्रकृतियों का संवर होता है और मिथ्यादृष्टि के आश्रवबन्ध होता है। इस कारण सम्यग्दृष्टि जीव की चर्या चर्चा और विचार में अन्तर नहीं है तो मिथ्यादृष्टि जीवों के समान आश्रव बंध की काल मर्यादा में, कर्म प्रकृतियों की संख्या में अन्तर नहीं होना चाहिए किन्तु अन्तर अवश्य ही पड़ता है। इस कारण हेतु में अंतर होने से उक्त दोनों जीवों की चर्चा चर्या में अन्तर अवश्य होना चाहिए।

प्रश्न– 660 यदि अविरतिसम्यग्दृष्टि जीव के भाव संयम है तो उसे देशसंयमी या सकल संयमी कहना चाहिए अन्यथा भाव संयम क्यों कहा?

उत्तर नहीं कहना चाहिए। यद्यपि उसके अवस्थानुसार संयम है फिर भी देशसंयमघाती अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदयाभाव या प्रत्याख्यानावरण कषाय का उदयाभाव न होने से देशसंयमी या सकलसंयमी नहीं कहा जैसे रजिस्टर्ड में नाम लिखाये बिना, हाजरी दिये बिना, मालिक को बताये बिना अत्यधिक या थोड़ा भी परिश्रम करते हुए भी किंचित् मात्र श्रमफल, रुपया पैसा, प्रशंसा, आदर सम्मान, उच्चस्थान प्राप्त नहीं होता है। इसी तरह मोक्षमार्ग के अनुकूल परिश्रम करने पर भी संयमघाती प्रकृतियों का अभाव न होने से संयम नाम नहीं पाता किन्तु असंयम की बहुलता होने से असंयमगुणस्थान या अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान नाम पाता है।

प्रश्न– 661–662 तप किसे कहते हैं? कितने भेद हैं?

उत्तर लौकिक स्वार्थ के त्याग को तप कहते हैं। जिन परिणामों से या चर्या के द्वारा संख्यात या असंख्यात गुणश्रेणी कर्मों की निर्जरा हो तथा संवर हो उसे तप कहते हैं। इसके 12 भेद हैं।

प्रश्न– 663 दान आवश्यक कर्तव्य किसे कहते हैं?

उत्तर अपने और पर के उपकार के लिए तथा एक साथ उभय के उपकार के लिए निज सम्पत्ति का, मन वचन काय का, चेतन अचेतन सामग्री का, संसार शरीर और भोगों की अपेक्षा के बिना, प्रत्युपकार की भावना के बिना, धर्म की प्रभावना के लिए त्याग करने को दान कहते हैं। यदि दान देते समय इसके पहले या बाद में प्रत्युपकार की भावना उत्पन्न हुई तो समझना कि यह निदान आर्तध्यान निदान शल्य और सफलता मिलने पर आनन्द मानने से रौद्रध्यान होता है।

मोक्ष के निमित्त दान के चार भेद हैं नामः– 1. आहारदान 2. औषधिदान 3. अभयदान 4. ज्ञानदान और इन्हीं चार दानों में दान के अनेक भेद प्रभेदों का अन्तर्भाव हो जाता है।

प्रश्न– 664 आहारदान किसे कहते हैं?

उत्तर मोक्षमार्ग के अनुकूल ज्ञानध्यान, तप, वैयावृत, पठनपाठन आदि साधनों में सहायभूत हर प्रकार से शुद्ध, विषय विकार को, प्रमाद को, लम्पटता को उत्पन्न करने वाला न हो ऐसी भोजन सामग्री देने को आहारदान कहते हैं। खाद स्वाद लेह्य और पेय के भेद से कवलाहार चार प्रकार का है। जो ग्रास रूप से ग्रहण किया जाये उसे कवलाहार कहते हैं।

प्रश्न– 665 औषधिदान किसे कहते हैं?

उत्तर वात पित्त कफ के विकार से या मिश्रण से उत्पन्न हुए रोग को शमन करने के लिए, अपने हाथ से तैयार कर, द्रव्य क्षेत्र काल और भाव पूर्वक हर प्रकार से शुद्ध, मन वचन काय की शुद्धि पूर्वक रोगशामक सामग्री देने को औषधि दान कहते हैं। एलोपैथिक, होम्योपैथिक तथा कम्पनी की तैयार दवाईयां नहीं होनी चाहिए क्योंकि ये मर्यादा के बाहर होने से अशुद्ध होती हैं।

प्रश्न– 666 अभयदान किसे कहते हैं?

उत्तर ज्ञान ध्यान तप में, अपने जीवन में उत्पन्न हुई घबराहट को जिस किसी भी उपाय से सान्त्वना देने को, जीवनदान देने को, घबराहट समाप्त करा देने को अभयदान कहते हैं।

प्रश्न– 667 ज्ञानदान किसे कहते हैं?

उत्तर जिन उपायों से अज्ञानांधकार दूर हो जाये, सम्यग्ज्ञान प्रवेश कर जाये, तत्त्वज्ञान, विवेकज्ञान, भेदविज्ञान उत्पन्न करा देने को, इन ज्ञानों में सहायभूत सामग्री प्रदान करने को, अध्ययन के योग्य उनके क्षयोपशमानुसार शास्त्र प्रदान करने को ज्ञानदान कहते हैं।

प्रश्न– 668 इन चारों प्रकार के दानों को कौन देता है और स्वामी कौन है?

उत्तर इन चारों प्रकार के दानों को यथायोग्य श्रावक, साधु और केवली सर्वज्ञ वीतराग हितोपदेशी भगवान देते हैं क्योंकि पाप को बांधने वाली 108 कोटियां हैं तो पाप को छेदने वाली तथा सातिशय पुण्य को बांधने वाली भी ये ही 108 कोटियां हैं। दाता के कोई न कोई कोटी होने से ही दाता कहलायेगा और वह कोटी क्षायिकभाव या क्षायोपशमिकभाव स्वरूप हो सकती हैं। ज्ञानदान देने के कारण ही सर्वज्ञकेवली महान उत्कृष्ट दाता है। जब गृहस्थ भोजन मात्र देने से दाता कहलाता है तो केवली भगवान ज्ञानदान देने से दाता क्यों नहीं कहलायेंगे?

	मूलभेद	उत्तरभेद
देवपूजा के	1	18
गुरुपूजा के	1	18
स्वाध्याय	1	5
संयम	1	12
तप	1	12

दान	1	4
कुल योग	6	69

इस प्रकार श्रावक सम्बन्धी आवश्यकों के मूल में 6 भेद हैं तथा अवान्तरभेद 69 हुए।

प्रश्न– –669 श्रावकों को किन–किन बातों को या कार्यों को जानना आवश्यक है?

उत्तर श्रावकों को पूज्य, पूजक, पूजा और पूजा फल इन चारों को जानना आवश्यक है।

प्रश्न– 670–671 पूज्यपद का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ क्या है? पूज्य किसे कहते हैं?

उत्तर पूज् धातु क्रियापद से ण्यत् प्रत्यय लगाने पर (ण्यत् प्रत्यय में ण् और त् इत्संज्ञक है केवल य शेष बचता है) पूज्+य पूज्य बनता है जिसका अर्थ है आदर सम्मान के योग्य, ज्येष्ठ महापुरुष तथा जिसे समस्त प्राणी समझदार आदर सम्मान की दृष्टि से देखें जो स्वयं अपनी आत्मा को ध्यानादि के द्वारा कर्मों को, विकारों को क्षय करने के मार्ग में लगे हुए हैं उन्हें पूज्य कहते हैं। मोक्षमार्ग के लिए पंचपरमेष्ठी, नवदेवता पूज्य हैं तथा लोकव्यवहार और व्यवहार धर्म की प्रवृत्ति को चलाने के लिए, यथायोग्य राज्यमुद्रा युक्त पदाधिकारी, समाज को चलाने के लिए कार्यकर्ता गण अपने साधर्मी भाई भी आदर सम्मान के लिए पूज्य हैं क्योंकि लोकव्यवहार में बोला भी जाता है कि पूज्य पिताजी, पूज्य भाईजी, पूज्य जीजाजी, पूज्य काकाजी, पूज्य माताजी, पूज्य नानीजी, पूज्य मामीजी, पूज्य पंडितजी आदि त्यागियों के लिए भी पूज्य पद का प्रयोग करते हैं। इसी तरह जो अपने पद में या आयु में बड़े हैं उनके लिए पूज्य पद का प्रयोग किया जाता है तो यह पूज्यता उभय लोक को सुधारने वाली है। पूजने वाले को उत्तम फल देने वाली है। अतः मोक्ष के लिए पंचपरमेष्ठी, मोक्षमार्ग के साधक धर्मायतन तथा सम्यग्दर्शन पूज्य है तो सम्यक्चारित्र परमपूज्य है और व्यवहार चलाने के लिए यथायोग्य सभी पूज्य हैं।

प्रश्न– 672–73 पूजक पद का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ क्या है? पूजक किसे कहते हैं?

उत्तर पूज् वुण[1] 'वुण् तृचौ' सूत्र से [558] पूज् धातु से वुण प्रत्यय किया ण् इत्संज्ञक है। पुनः 'युबुला मनाकान्ता' [559] से वु के स्थान पर अक का आदेश किया। तब फिर पूज्. + अक = 'व्यंजनम् अस्वरम् परवर्णं नयेत्' इस परिभाषा सूत्र के अनुसार पूजक बना जिसका अर्थ होता है आदर सम्मान पूजा करने वाला भक्त, शिष्य, सेवक, पूजक, दास, नौकर, चाकर ये पयार्यवाची शब्द हो जाते हैं। जो श्रेष्ठ हैं, उत्तम हैं, महान हैं उनका आदर सम्मान, विनय, पूजा आरती, गुणकीर्तन करने वाले को पूजक कहते हैं। (कातंत्ररूपमाला)

प्रश्न– 674–75 पूजापद का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ क्या है? पूजा किसे कहते हैं?

उत्तर पूज् अ. टाप्, पूज् धातु से अ प्रत्यय लगाकर पूज पद से टाप्, प्रत्यय लगाकर पूजा पद बन जाता है। पूज् + अ = पूज बना। फिर स्त्रीलिंग का टाप् प्रत्यय लगाकर पूजा पद बन गया। टाप् प्रत्यप में ट् और प् इत्संज्ञक हैं शेष आ रहा। पुनः पूज + आ सवर्ण दीर्घ सन्धि, 'अकः सवर्णे दीर्घः' (सिद्धांतकौमुदी) सूत्र से दीर्घ सन्धि करने पर पूजा पद निष्पन्न होता है। महान तत्त्वों की, पूज्यपुरुषों की, धर्मायतनों को हाथ जोड़ना, नमस्कार करना, सेवा करना, उच्च वचन बोलना, अष्ट मंगल द्रव्य सामग्री अर्पण करना, आरती उतारना गद्यरूप से या पद्य रूप से

गुणगान करना, गुणकीर्तन करना, जल चन्दन आदि सामग्री अर्पण करना, नम्र होना, क्षमाभाव मार्दव आर्जव शौचादि भावों से मन वचन काय से की गई आदर सम्मान पूजा कहलाती है।

प्रश्न— 676 केवल पंचपरमेष्ठी ही पूज्य हैं ऐसा अर्थ स्वीकारने में क्या दोष है?

उत्तर यदि आपके प्रश्नानुसार केवल पंच परमेष्ठी ही पूज्य हैं तो क्षेत्रपूजा, रत्नत्रयधर्म पूजा, दशलक्षण धर्म पूजा, पंचमेरु पूजा, नंदीश्वर पूजा, अकृत्रिम चैल्यालय पूजा, मूर्तिपूजा, शास्त्र पूजा भी मोक्ष के लिए नहीं होगी। मिथ्या कहलायेगी यह आपत्ति है। इसलिए मोक्ष के लिए पंचपरमेष्ठी ही पूज्य हैं ऐसा न कहकर धर्मायतन पूज्य हैं ऐसा कहना चाहिए क्योंकि तीर्थंकर कुमारों की और इनके माता पिता की, इन्द्र इन्द्राणी जो एक भवावतारी हैं, सम्यग्दृष्टि हैं, अवधिज्ञानी हैं वे मोक्ष के निमित्त ही कर्मक्षय के निमित्त ही पूजते हैं संसार के निमित्त नहीं।

प्रश्न— 677—78 पूजाफल किसे कहते हैं? पूज्य पूजक और पूजा का सामान्य अर्थ क्या है?

उत्तर प्रत्यक्षफलः— साक्षात् फल, आत्मशान्ति, आत्मतृप्ति, पाप की हानि, सातिशय पुण्य की प्राप्ति और वृद्धि, पापकर्मों का संवर, पूर्वबद्ध कर्मों की असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा, स्थितिकाण्डकघात, अनुभागकाण्डकघात, निरोगता, अनेक पदवियां और माला मुकुट प्राप्त होना यह सब साक्षात् फल है। परोक्षफल— परम्पराफल भविष्यकाल में स्वर्ग का वैभव प्राप्त होना, यहीं पर प्रशंसा प्राप्त होना, आदर सम्मान प्राप्त होना, भोगभूमि की प्राप्ति होना आदि। पूज्य— आदरसम्मान के योग्य महापुरुष, पंचपरमेष्ठी, सभी मोक्षमार्ग साधक, चारित्रवान, धर्मायतन। पूजक— आदर सम्मान करनेवाला, विनय नमस्कार करनेवाला, जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्यादि अर्पण करने वाला। पूजा— सामग्री आदि अर्पण करना, अपने आपको समर्पण करना, द्रव्य और भाव से कृतिकर्म करना। पूजाफल— आत्म शान्ति, वैभव की प्राप्ति है।

प्रश्न— 679—80 पूजा के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर पूजा के चार अथवा 6 भेद हैं। नामः— पूजा, स्थापना पूजा, द्रव्यपूजा, भावपूजा, क्षेत्रपूजा, कालपूजा। ये निक्षेपों की अपेक्षा चार या 6 भेद पूजा के हैं जो आगम से जानने योग्य हैं।

प्रश्न— 681 नाम निक्षेप से नामपूजा किसे कहते हैं?

उत्तर किसी व्यक्ति, वस्तु या धातुपाषाण की प्रतिमाओं को ये श्री भगवान आदिनाथ है, महावीर हैं आदि कहना परन्तु इस नामनिक्षेप में मोक्षमार्ग की अपेक्षा नहीं होती है किन्तु केवल लोकव्यवहार चलाने की अपेक्षा होती है अथवा यथागुण न होने पर भी केवल गुणवान कहकर व्यवहार चलाना आदर सम्मान करने को या शास्त्रों पुस्तकों में छपी हुई पूजायें शब्द रूप में होने से ये नाम निक्षेप से पूजायें हैं। इन पूजाओं में गुण दोष का, पुण्यपाप का विचार नहीं होता है अतः ये नामनिक्षेप की अपेक्षा नाम पूजायें कहलाती हैं। नामनिक्षेप के अनेक भेदों में से एक भेद गुण नामनिक्षेप है जिसमें गर्भ जन्म से ही पूज्यता रहती है जैसे तीर्थंकर कुमार। 'यथा नाम तथा गुण'।

प्रश्न— 682 स्थापना निक्षेप से स्थापना पूजा किसे कहते हैं?

उत्तर मन में पूज्यता का, श्रेष्ठता का, ये ही तारनेवाले हैं, इनके माध्यम से ही मेरा कल्याण हो सकता

है आदि। संकल्प पूर्वक किसी आकार में, निराकार में, चावलों के द्वारा, पुष्पों के द्वारा, मंत्रों के द्वारा ये हैं, ऐसे हैं ऐसे संकल्प को स्थापना निक्षेप पूजा कहते हैं अथवा मोक्षस्थ या मोक्षमार्गस्थ महान पुरुषार्थियों को बुलाकर, बैठाकर संकल्प पूर्वक आदर सम्मान, आरती भजन, गुणगान गुणकीर्तन करने को स्थापनानिक्षेप पूजा कहते हैं।

प्रश्न– 683 द्रव्यनिक्षेपपूजा किसे कहते हैं?

उत्तर पूजा के भावों से घर में सामग्री तैयार कर मंदिर के लिए गमन करने को तथा पूजन प्रारंभ करने के पहले तक की तैयारी को या भविष्य में पूजा करेंगे इसकी तैयारी को द्रव्यनिक्षेपपूजा कहते हैं। क्षेत्रपूजाः– श्री सम्मेदशिखर, गिरनार, मांगीतुंगी, महावीरजी आदि की पूजा करना।

प्रश्न– 684 भावनिक्षेप पूजा किसे कहते हैं?

उत्तर मोक्षमार्गस्थ साधनों की आराधना करने में, गुणकीर्तन करने में तन्मय हो जाने को भाव निक्षेप पूजा कहते हैं। कालपूजाः– सलूनापर्व, दसलक्षण, दीपावली आदि की पूजा करना।

प्रश्न– 685–86 पूजा के कितने अंग हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर पूजा के 6 अंग हैं। प्रस्तावना[1] पुराकर्म[2] स्थापना[3] सन्निधापन[4] पूजा[5] और पूजा फल[6]।

प्रश्न– 687–88 प्रस्तावना किसे कहते हैं? कितने भेद हैं?

उत्तर उत्कृष्ट पद में स्थित पंचपरमेष्ठी, नवदेवता भेद प्रभेद युक्त धर्मायतन जो पूज्य हैं, पूजने योग्य हैं उनका गुणानुवादपूर्वक अभिषेक करने की भूमिका को, सामग्री इकट्ठी करने को प्रस्तावना कहते हैं। प्र–उत्कृष्टता पूर्वक। स्तावना गुणकीर्तन, गुणवर्णन, चिन्तन, मनन, उत्कृष्टता से सहित गुणानुवाद करने को प्रस्तावना कहते है प्र. स्तु णिच्. युच्. टाप्। प्र उपसर्ग पूर्वक स्तु धातु से णिच्, युच् और टाप् प्रत्यय लगाने से प्रस्तावना पद बनता है अथवा किसी कार्य को करने की योजना बनाने को प्रस्तावना कहते हैं। शुभ प्रस्तावना और अशुभ प्रस्तावना ये दो भेद हैं अथवा इन दोनों के अवान्तर भेद असंख्यात लोक प्रमाण हैं।

प्रश्न– 689 शुभ प्रस्तावना किसे कहते हैं?

उत्तर रत्नत्रय स्वरूप मोक्षमार्ग और मोक्षमार्ग के साधनभूत सामग्री को प्राप्त करने की योजना को, भूमिका को जो आत्मशान्ति प्राप्त कराने वाली है, आकुलता को मिटाने वाली है और लौकिक भोगभूमि के, स्वर्ग के भोगों को, उत्कृष्ट पदों को प्राप्त कराने वाली को शुभ प्रस्तावना कहते हैं।

प्रश्न– 690 शुभ प्रस्तावना के कितने भेद हैं?

उत्तर इस परिवर्तनशील संसार में जितने शुभ पद, मंगल पद, उत्कृष्ट पद हैं उन पदों को प्राप्त कराने वाले भाव साधन भी उतने ही हैं। इस कारण प्रस्तावना के भेद भी उतने ही है। जैसे अणुव्रत महाव्रत, संयम, तप, त्याग, दानपूजा, यात्रा प्रतिष्ठा, सोलहकारण भावना, मैत्री आदि भावनायें, अहिंसादि व्रतों की 25 भावनायें आदि यह विषय पर्यायार्थिक नय से समझना चाहिए।

प्रश्न– 691 अशुभ प्रस्तावना किसे कहते हैं और इसका क्या फल है?

उत्तर मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र रूपी संसार के मार्ग के साधनभूत सामग्री, विषयभोगों

की सामग्री, शृंगार अलंकार की सामग्री, मारकाट आदि हिंसक सामग्री को प्राप्त करने कराने की योजना बनाने को, तैयारी करने को अशुभ प्रस्तावना कहते हैं। यह अशुभ प्रस्तावना दुःख देने वाली है, निन्दा बदनामी और आकुलता प्राप्त कराने वाली है आदि यही फल है।

प्रश्न— 692 यहाँ कौन सी प्रस्तावना हेय है और कौनसी प्रस्तावना उपादेय है?

उत्तर यहाँ अशुभ प्रस्तावना आकुलता को, दुःख को, निन्दा बदनामी को प्राप्त कराने वाली होने से हेय है तथा शुभप्रस्तावना निराकुलता, सुख सुविधा को, प्रशंसा आदर सम्मान प्राप्त कराने वाली होने से उपादेय है, मोक्षफल को, परमेष्ठी पद को प्राप्त कराने वाली होने से ग्रहण करने योग्य है।

प्रश्न— 693 अभिषेक पद का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ क्या है?

उत्तर अभि + सिच् + घञ् = अभि उपसर्ग पूर्वक सिच् सींचना धातु से, क्रिया पद से, भाववाची परिणमन क्रिया से युक्त घञ् प्रत्यय लगाने से अभिषेक पद की व्युत्पत्ति होती है। जिसका अर्थ होता है सब ओर से, चारों तरफ से सिंचन करना, धारा करना। यदि राजाओं का अभिषेक किया जा रहा है तो उसे सर्वांग से स्नान कराना होता है। इन्द्र इन्द्राणी आदि तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले बालक को सुमेरु पर्वत में स्थित पाण्डुकशिला पर ले जाकर 1008 कलशों से अभिषेक करते हैं जो सर्वांग से होता है किसी एक अंग का नहीं, न केवल कपड़े से पोंछ देते हैं किन्तु भरपूर पर्याप्त मात्रा में करते हैं और यह अभिषेक अपने कर्मों को क्षय करने के लिए करते हैं न कि बालक की सफाई लिए क्योंकि जन्म के अतिशयों में पसीना, मलमूत्र नहीं आना ऐसा कहा है। इसी तरह जिनबिम्ब का सब ओर से पर्याप्त मात्रा में अभिषेक करना चाहिए।

प्रश्न— 694 अभि उपसर्ग का क्या अर्थ है?

उत्तर अभि उपसर्ग का अर्थ यहाँ पर सब ओर से, चारों तरफ से लिया गया है जैसे आत्माभिमुख यहाँ पर आत्मा के सम्मुख अपने क्षयोपशमानुसार समस्त प्रकार से पूर्ण उपयोग के साथ होना, ऐसा नहीं कि थोड़ा उपयोग बाह्य विषय भोगों में, व्यापारादि में और थोड़ा उपयोग आत्मा में इस तरह डोलायमान उपयोग करने से कहीं का भी आनन्द नहीं आता तथा कदाचित् आता भी है तो मिश्र रूप अशुद्ध दशा का आनंद आता है। दूसरा उदाहरण अभिमान का है। अभिमान, घमण्ड आत्मा में समस्त प्रदेशों से होता है न कि आत्मा के किसी एक अंश में। इसी तरह अभिषेक जिनबिम्ब का समस्त ओर से, सर्वांग से करना चाहिए।

प्रश्न— 695 अभिषेक जिनबिम्ब का या यंत्र का, या थाली का करना चाहिए या तीनों का करना चाहिए?

उत्तर आपने अभिषेक करने के लिये सिंहासन या पाण्डुकशिला पर किसको बुलाया है? किसकी स्थापना की है, मंत्र और पद्य किसका बोला है? जिसकी स्थापना की है उसका अभिषेक करो अथवा जिसकी जिसकी स्थापना की है उसका उसका अभिषेक करो। ऐसा नहीं है कि स्थापना किसी की करो और अभिषेक किसीका करो। क्या किसी प्रसंग पर आपने आमन्त्रित किसी को किया, आदर सम्मान किसीका और भोजनपान किसीको तथा विदा किसी और को किया, क्या ऐसा न्याय है? यदि ऐसा व्यवहार आपके साथ किया जाये तो आपको कैसा लगेगा? क्या ऐसा

उचित है? जैसे आपने पद्य और मन्त्र बोलकर मूर्ति की स्थापना की और यन्त्र या मूर्ति के सामने थाली में धारा डालने लगे, छोड़ने लगे यह तो अन्याय कहलाया जैसे भोजन के लिए आपको बुलाकर बाहर बैठा दिया, थाली के पास किसी और को बैठाया तथा भोजन तीसरे को कराया तो क्या आपको मंजूर है? ऐसी व्यवस्था में आपको कैसा लगेगा? ऐसा मत सोचो कि हम सरागी हैं, गृहस्थ हैं और मूर्ति वीतरागी की है जो जड़ स्वरूप है। यदि मूर्ति जड़ है तो क्या जड़ की पूजा करते हो? यदि जड़ की पूजा की तो आप जैन कैसे? यदि मूर्ति जड़ स्वरूप है तो प्राणप्रतिष्ठा का अर्थ क्या? उस मूर्ति में चैतन्य स्वरूपी अरिहन्त की या पंचपरमेष्ठी की स्थापना की है तो वह मूर्ति अभेद विवक्षा में चैतन्य स्वरूप ही है। मूर्ति का सम्मान मूर्तिमान का सम्मान है जो सम्यग्दर्शन को उत्पन्न कराने वाली, वृद्धि और पुष्ट कराने वाली क्रिया है और मूर्ति का अपमान मूर्तिमान का अपमान है जो मोह मिथ्यात्व का आश्रवबंध कराता है। अतः अभिषेक, शान्तिधारा जिनबिम्ब का करो यन्त्र का नहीं, थाली का नहीं क्योंकि यन्त्र या थाली नव देवताओं में से कोई भी एक देवता नहीं, न इनके पंचकल्याणक हुए, न प्रतिष्ठा की, बिना स्थापना निक्षेप के पूज्यता नहीं आती। कदाचित् कहो कि आधार आधेय में अभेद विवक्षा कर यन्त्र को या थाली को देवता या मंगलद्रव्य मानकर अभिषेक पूजन कर सकते हैं जैसे मंदिर को चैत्यालय देवता माना है ही सो हम यन्त्र को या थाली को ही देवता मानकर अभिषेक, शान्तिधारा कर लें सो भी ठीक नहीं है क्योंकि जिस प्रकार चैत्यालय की, मंदिर की प्रतिष्ठा के मंत्र तथा शुद्धिकरण की विधि बताई है सो आपको यन्त्र या थाली की प्रतिष्ठा विधि, शुद्धिकरण की विधि बतानी चाहिए तथा उसी विधि से यन्त्र की, थाली की प्रतिष्ठा करके फिर इनका अभिषेक, शान्तिधारा करनी चाहिए, जिस प्रकार आप मूर्ति का आदर, विनय करते हो तो उसी प्रकार यन्त्र का, थाली का भी आदर सम्मान करो। जैसे मैंनासुन्दरी ने अभिषेक किया था वैसे ही अन्य श्राविकायें भी अभिषेक पूजन कर सकती है फिर आपको कोई विरोध नहीं होना चाहिए किन्तु आजकल यन्त्रों की, थाली की, न प्रतिष्ठा होती है, न शुद्धिकरण होता है, बाजार से खरीद कर ले आये और गन्धोदक में डुबोकर रख दिया। यदि डुबोकर के ही यंत्र की प्रतिष्ठा हो जाती है तो जिनबिम्ब को भी गन्धोदक में डुबोकर प्रतिष्ठित कर लो फिर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का इतना बड़ा आयोजन क्यों करना पड़े? जिस प्रकार यंत्र को जैसे तैसे ही स्पर्श कर लेते हो तथा जहाँ कहीं भी मकान दुकान में, पर्स में लगा लेते हो वैसे ही जिनबिंब को भी रख लो तो दोष क्यों? अथवा पूर्ण अभिषेक तो जिनबिम्ब का किया और शान्तिधारा यन्त्र की या थाली की सो यह कैसा न्याय? यदि आप यन्त्र या थाली को आधार आधेय में अभेद विवक्षाकर कोई एक नव देवता में से एक मानकर अभिषेक कर लेते हो तो फिर थाली का, यन्त्र का आधार पुनः चौकी, मेज, सिंहासन, छत्र, चमर, कलश आदि मंगल द्रव्य हैं उनका भी अभिषेक मन्त्र बोलकर कर लो कोई दोष नहीं आयेगा। स्थापना निक्षेप की अपेक्षा क्वचित् कदाचित् यन्त्र और मूर्ति में अन्तर नहीं है क्योंकि बीजाक्षरों के या बीज मन्त्रों के द्वारा धातु पाषाण की प्रतिमाओं को भगवान बनाया जाता है सो वे ही बीजाक्षर मन्त्र यन्त्रों में उकेरे जाते हैं और आजकल मशीनों से लिखवा लेते हैं, छपवा दिये जाते हैं किन्तु वो ही मन्त्र स्वर व्यंजन चांदी के पत्तरे में, तांबे के पत्तरे में, पीतल

के पत्तरे में या पाषाण में लिखकर या लिखवाकर यन्त्र बनाये जाते हैं। यदि विधि पूर्वक यन्त्र प्रतिष्ठा हुई है तो अब उस मूर्ति और यन्त्र में केवल तदाकार और अतदाकार स्थापना का भेद है अन्यथा अभेद है। केवल आकार में अन्तर है शेष कोई अन्तर नहीं है। कोई यन्त्र त्रिकोण, गोलाकर, लम्बे होते हैं और उन यंत्रों में मन्त्र चाहे बीजाक्षर हो या स्वर व्यंजन में हो या अंक लिपि में हो किन्तु मूर्तिमान जैसा आकार न होने से अतदाकार स्थापना है। इस स्थापना में द्रव्यगुण और पर्यायवाची शब्दों के द्वारा स्थापना कि जाती है, तभी यन्त्र पूज्यता को प्राप्त होते हैं और यंत्रों की अभिषेक पूजा से पाप कर्म का संवर तथा निर्जरा होती है। मैंनासुंदरी के समान फल की प्राप्ति होती है, अन्यथा नहीं परन्तु मन्त्र न्यास में, स्वर व्यंजनों में इनकी शक्ति में कोई अन्तर नहीं है अतः कदाचित् यन्त्र का अभिषेक कर सकते हो परन्तु जिसकी स्थापना की है उसका करना परम आवश्यक है। पर अतदाकार स्थापना स्वरूप यन्त्र का हमेशा अभिषेक करने से सन्तति बिगड़ेगी तथा भविष्य में मूढ़ता का रूप धारण कर लेगी। पाण्डुकशिला पर इन्द्रगण तीर्थंकर बालक का अभिषेक करते है इसलिए जैसा फल चाहिए वैसा ही कार्य करो। अभिषेक मूर्ति की सफाई के लिए नहीं किया जाता है, किन्तु आत्मा की शुद्धि के लिए किया जाता है।

प्रश्न– 696–697 अभिषेक मूर्ति की सफाई के लिए किया जाता है क्या? आत्मशुद्धि के लिए किया जाता है क्या?

उत्तर **अपने पूर्वबद्ध कर्मों को छेदने के लिए और परिणामों की, आत्मा की शुद्धि के लिए अभिषेक किया जाता है, न कि मूर्ति की सफाई के लिए किया जाता है। आपके कथनानुसार यदि मूर्ति की सफाई के लिये किया जाता है तो अकृत्रिम जिनालयों में धूलि नहीं है, मिट्टी नहीं है, धुंआ नहीं है फिर वे अभिषेक क्यों करते हैं? जिनबालक का पाण्डुकशिला पर लेजाकर क्षीर समुद्र के जल से अभिषेक क्यों करते हैं? जबकि गर्भकल्याण की अवस्था में गर्भ संशोधन आदि क्रियायें देवांगनायें करती हैं, मलमूत्र पसीना आदि बाहर नहीं आता है, रक्त पीव आदि घृणित पदार्थ बाहर नहीं आते तो फिर क्या इन्द्र का, देवों का, इन्द्राणियों का, देवांगनाओं का दिमाग फिर गया है, खराब हो गया है, पागलपन आ गया है कि ये लोग अभिषेक करते हैं। जहाँ जिसमें गन्दगी होती है वहाँ उसकी सफाई की जाती है। जब तीर्थंकर बालक गन्दे नहीं हैं अकृत्रिम चैत्यालय भी गन्दे नहीं है फिर उनका अभिषेक क्यों? जब इन्द्र इन्द्राणी आदि सम्यग्दृष्टि सभी देवगण भगवान के लिए, मूर्ति की सफाई के लिए अभिषेक नहीं करते हैं किन्तु कर्मों को क्षय करने के लिए आत्म शुद्धि के लिए करते हैं। इतना होने पर भी यदि आप लोगों की धारणा सफाई करने की है तो इतना कष्ट क्यों करते हो? मूर्तियों को कांच के पिटारे में बन्द करो ताकि धूल न पहुंचें? फिर आ. श्री कुन्दकुन्द ने 'दिव्वेण ण्हाणेण' दिव्य स्नान से पूजा करता हूँ ऐसा क्यों कहा?**

प्रश्न– 698 अभिषेक कितनीबार करना चाहिए?

उत्तर **जिनबिम्ब का अभिषेक अनेक अनेकबार करना चाहिए। कहा भी है– आ. अभयनन्दिकृत ज्ञा.पू. ''दूरावनम्र सुरनाथ किरीट कोटी, संलग्नरत्न किरणच्छवि धूसरांघ्रिम्। प्रस्वेद ताप मल मुक्तमपि प्रकृष्टैः भक्त्या जलैर्जिनपतिं बहुधाभिषिंचे ''12''**

श्री जिनेन्द्र देव के चरण दूर से नम्र हुए मुकुटों के अग्रभाग में लगे हुए रत्नों की किरणच्छवि से धूसरित होने से तथा जो पसीना, ताप और मल से मुक्त हैं अर्थात् जिनके शरीर में ये वस्तुएं नहीं हैं ऐसे उन जिनेन्द्रदेव का मैं भक्ति पूर्वक प्रकृष्ट जल से अनेकानेकबार अभिषेक करता हूँ। जितनी बार अष्ट द्रव्य से पूजा करना है उतनी बार अभिषेक करना चाहिए क्योंकि अभिषेकपूर्वक पूजा की जाती है तथा आप लोग हमेशा महार्घ में त्रिकाल पूजा त्रिकाल वन्दना बोलते ही हैं, करते ही हैं तो कम से कम तीनबार तो अभिषेक करना ही चाहिए क्योंकि अभिषेक पाठ में ''बहुधाभिषिंचे'' ऐसा पढ़ते हैं। जिसका अर्थ होता है बहुतबार करता हूँ। संस्कृत में किसी एक व्यक्ति या वस्तु के लिए एक वचन का, दो व्यक्ति या वस्तु के लिए द्वीवचन का तथा तीन या तीन से अधिक व्यक्ति या वस्तु के लिए बहुवचन का प्रयोग करते हैं। अभिषिंचे यह क्रियापद आत्मनेपदी लट्‌लकार वर्तमानकालीन उत्तम पुरुष की एकवचन का रूप है। इसका अर्थ होता है कि मैं बहुतबार अभिषेक करता हूँ। एक बार नहीं, दोबार नहीं किन्तु बहुतबार। **बहुभिः प्रकारैः बहुधा[1] संख्यायाः प्रकारे धा का.व्या. 542 संख्या से परे प्रकार अर्थ में धा प्रत्यय होता है। अनु० बा०ब्र० प्रदीपशास्त्री पीयूष साहित्याचार्य। यहाँ व्याकरण के अनुसार अर्थ होगा बहुत प्रकार के जलों से या बहुत प्रकार से अभिषेक करता हूँ।**

प्रश्न– 699 अनेकों जगहों पर एकबार ही अभिषेक करने का नियम देखा जा रहा है सो ठीक है क्या?

उत्तर **पूर्वाचार्यों ने ऐसा कहीं विधान नहीं किया है, न आगम प्रमाण है, न तर्क से सिद्ध होता है कि एक ही बार अभिषेक करना चाहिए। हाँ यह नियम अंहकारी पंडितों ने, इनकी आज्ञानुवर्ती समाज ने बनाया है और आजकल तो यह एक प्रकार से राजमार्ग ही बन बैठा है। जो आगम की आज्ञा का और श्रावक के कर्तव्यों का लोप करने वाला है।**

प्रश्न– 700 पंडितों ने या समाज ने जो नियम एकबार अभिषेक करने का बनाया है वह ठीक है क्योंकि जब अभिषेक कर्त्ताओं ने अभिषेक करने के बाद मूर्ति को पानी में रखे रहने से पतंगे आदि कीड़े मरने लगे तब जीवों की रक्षा के हेतु से नियम बनाया गया न कि कषायवश ऐसा स्वीकार करने में क्या आपत्ति है?

उत्तर **इलाज रोगी का कराया जाता है निरोगी का नहीं, औषधि रोग को नष्ट करने के लिए दी जाती है न कि रोग को बढ़ाने के लिए इसी तरह निषेध असावधानी का करना था न कि सावधानी का। उन मूर्खों के एक दो के अपराध का फल बहुत सारी समाज को मिल रहा है और जहाँ या जिस जगह अनेक बार अभिषेक होता है उसको हीन दृष्टि से देखने लगे और इनका नियम ही आगम का नियम बन बैठा तथा इन पंथवादियों के मंदिरों में यदि किसी श्रावक ने वेदीगृह से दुबारा मूर्ति उठाकर अभिषेक कर लिया तो झगड़ा करने लगे और झगड़ा हो जाता है कारण जिस नियम से समाज की, धर्म की, चतुर्विध संघ की, मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका रूप धर्मायतनों की हानि हो वह नियम नियम न होकर मिथ्या है समीचीन नहीं है या समीचीन हो**

सकता है क्या? दीपक से दीपक की हानि हो सकती है क्या? दीपक दीपक का विरोध कर सकता है क्या? नहीं। धर्मात्मा धर्मात्मा का विरोध नहीं कर सकता है। जिस नीतिनियम से धर्म संकट में पड़ जाय, समाज में कलह पैदा होता है या पैदा हो जाय वह नीति नियम समीचीन नहीं हो सकता किन्तु मिथ्या होगा। जिस तरह प्रकाशित होने के लिए दीपक दीपक का विरोध नहीं करता उसी प्रकार धर्म के लिए धर्मात्मा भी धर्मात्मा का विरोध नहीं करता किन्तु धर्मात्माओं को संगठित कर धर्म की प्रभावना करता है, धर्म को फैलाता है।

प्रश्न– 701 अभिषेक किसे कहते हैं?

उत्तर जलादि शुद्ध सुगन्धित पदार्थों से शारीरिक स्नान कराने को अभिषेक कहते हैं।

प्रश्न– 702–703 अभिषेक कितने प्रकार का होता है? उसके नाम बताओ?

उत्तर मन्त्र संस्काराभिषेक, जन्माभिषेक, युवराज्याभिषेक, राज्याभिषेक, पट्टाभिषेक, शिराभिषेक या सर्वांगाभिषेक, गर्दनाभिषेक, कमराभिषेक, घुटनाभिषेक, चरणाभिषेक, दीक्षाभिषेक, जिनाभिषेक, जलाभिषेक, नित्याभिषेक, नैमित्तिकाभिषेक, अन्त्याभिषेक, विवाहाभिषेक आदि अनेक भेद प्रभेद हैं।

प्रश्न– 704 मंत्रसंस्काराभिषेक या गर्भाभिषेक किसे कहते हैं?

उत्तर गर्भस्थ जीव के ऊपर तथा उसकी माँ को प्रति महिने जो मन्त्रों से संस्कारित किया जाता है, जो पूजा पाठ विधिविधान कराये जाते हैं तथा यात्रायें करायी जाती हैं बस इसीका नाम है गर्भाभिषेक मंत्र संस्कार अभिषेक इसीको कहते हैं और यह मंत्रसंस्कार केवल कर्मभूमिज आर्य मनुष्यों में रत्नत्रयधर्म से युक्त गृहस्थाचार्य पंडितों के द्वारा या समाज के मुखियाओं के द्वारा, वृद्धों द्वारा किया जाता है, कराया जाता है।

प्रश्न– 705 जन्माभिषेक किसे कहते हैं?

उत्तर जन्म के बाद तीर्थंकर प्रकृति की सत्तावाले बालक को इन्द्रइन्द्राणी आदि देवगण पाण्डुकशिला पर ले जाकर क्षीरसमुद्र के जल से अथवा चार समुद्रों के जल से जो न्हवन करते हैं अथवा जन्म के बाद प्रथम न्हवन को जन्माभिषेक कहते हैं।

प्रश्न– 706 युवराज्यपदाभिषेक किसे कहते हैं?

उत्तर जब राजकुमार राज्यकार्य सम्हालने के योग्य हो जाता है, राज्यचिह्नों से युक्त कला कौशल सहित, साम या शाम, दाम, दण्ड और भेद स्वरूपी नीतियों का जानकार, शूरवीर, प्रभावशाली आदि गुणों से युक्त पुत्र को राज्यसम्बन्धी कुछ अधिकार सौंपने के लिए जो विशेष स्नानादि कराकर वस्त्राभूषणों से सजा कर धूमधाम मचाने को युवराज्यपदाभिषेक कहते हैं।

प्रश्न– 707 राज्याभिषेक किसे कहते हैं?

उत्तर उसी युवराज को जब राज्यसम्बन्धी सम्पूर्ण अधिकार देने के लिए सभी राज्यकर्मचारी तथा परिवार के और प्रजा के बीच सबके समक्ष विशेष उत्सव पूर्वक मन्त्र संस्कार सहित गीतवादित्र के साथ नाना रसवाली ध्वनियों से सहित स्नान कराकर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित करने को राज्याभिषेक कहते हैं। यदि राजा दीक्षा ले रहा हो तो गर्भस्थ या गोद के राजकुमार का

राज्याभिषेक कर देते हैं जिससे राज्य परंपरा सुचारु रूप से चलती रहे।

प्रश्न— 708 पट्टाभिषेक किसे कहते हैं?

उत्तर जब लौकिक भट्टारक का या मठाधीश का गद्दी से वियोग होने पर पुनः गद्दी के सम्हालने के गुणों से युक्त शिष्य को गद्दी पर बिठाने को तथा तत्सम्बन्धी स्नानादि कराकर उत्सव मनाने को पट्टाभिषेक कहते हैं।

प्रश्न— 709 मस्तकाभिषेक किसे कहते हैं?

उत्तर शिर से सर्वांग से मन्त्रोच्चारण पूर्वक जल सुगन्धित द्रवपदार्थों से स्नान करने कराने को मस्तकाभिषेक कहते हैं। जो नवदेवताओं के प्रतिबिम्बों का किया जाता हैं।

प्रश्न— 710 ग्रीवाभिषेक किसे कहते हैं?

उत्तर पैर के तलवों से लेकर गर्दन पर्यन्त जलादि से स्नानादि करने को ग्रीवाभिषेक कहते हैं।

प्रश्न— 711 कमराभिषेक किसे कहते हैं?

उत्तर पैर के तलवों से लेकर कमर पर्यन्त जलादि से स्नानादि करने कराने को कमराभिषेक कहते हैं।

प्रश्न— 712 घुटनाभिषेक किसे कहते हैं?

उत्तर पैर के तलवों से लेकर घुटनों पर्यंत जलादि से धोने को घुटनाभिषेक कहते हैं।

प्रश्न— 713 पदाभिषेक किसे कहते हैं?

उत्तर केवल चरणों के अभिषेक को, केवल ऐड़ी पर्यन्त धोने को पदाभिषेक कहते हैं?

प्रश्न— 714 दीक्षाभिषेक किसे कहते हैं?

उत्तर दीक्षा के पहले इन्द्र इन्द्राणी तथा श्रावक श्राविकायें वर्तमान में दीक्षार्थी को जो स्नान कराते हैं। उसे दीक्षाभिषेक कहते हैं।

प्रश्न— 715 जिनाभिषेक किसे कहते हैं?

उत्तर अरिहन्त, सिद्वपरमेष्ठी या पंचपरमेष्ठी की प्रतिमाओं का स्नान कराने को जिनाभिषेक कहते हैं।

प्रश्न— 716 जलाभिषेक किसे कहते हैं?

उत्तर नवदेवताओं की प्रतिमाओं का शुद्ध जल से अभिषेक करने को जलाभिषेक कहते हैं।

प्रश्न— 717 नित्याभिषेक किसे कहते हैं?

उत्तर नित्य प्रति सदाकाल त्रिकाल न्हवन करने कराने को नित्याभिषेक कहते हैं।

प्रश्न— 718 नैमित्तिकाभिषेक किसे कहते हैं?

उत्तर कोई विशेष कल्याणक का दिन हो या पर्व का दिन हो या कोई विशेष विधि विधान के प्रसंग पर या मुनि समाधि के प्रसंग पर न्हवन करने कराने को नैमित्तिकाभिषेक कहते हैं।

प्रश्न— 719 पंचामृताभिषेक किसे कहते हैं?

उत्तर दूध, दही, घी, इक्षुरस और सर्वौषधि से नव देवताओं के बिम्बों का चारों तरफ से न्हवन करने कराने को पंचामृताभिषेक कहते हैं। यह सामग्री पूर्ण रूप से शुद्ध होना चाहिए तथा अभिषेक

करने के बाद सफाई का पूर्ण रूप से ध्यान रखना चाहिए। अन्यथा प्रमाद करने से हिंसा पाप की और समाज में घृणा की उत्पत्ति हो सकती है

प्रश्न— 720 अन्त्याभिषेक किसे कहते हैं?

उत्तर आचार्य उपाध्याय और साधु परमेष्ठियों की समाधि होने पर अग्नि संस्कार के पहले मृत शरीर का जलादि से स्नपन करने कराने को अन्त्याभिषेक कहते हैं।

प्रश्न— 721 यहाँ पर अनेक प्रकार के अभिषेकों में से किन—किन अभिषेकों से प्रयोजन है?

उत्तर यहाँ पर मोक्षमार्ग का, श्रावक धर्म का, सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने की भूमिका का प्रकरण होने से पंचपरमेष्ठी या नवदेवताओं की प्रतिमाओं के अभिषेक से प्रयोजन है।

प्रश्न— 722—23 जन्माभिषेक कौन, किसका करते हैं? क्यों करते हैं?

उत्तर इन्द्र इन्द्राणी आदि चारों निकायों के देवगति के देव परम भक्ति से संसार विच्छेद का अनन्य कारण मानकर तीर्थंकर प्रकृति वाले बालक का करते हैं क्योंकि हीन पुण्यात्मा मनुष्यों का वहाँ पहुंचने का अधिकार नहीं हैं। कर्म के क्षय के निमित्त तथा मोक्ष प्राप्ति के हेतु करते हैं।

Note:—विवाह के समय होने वाले स्नान को विवाहाभिषेक कहते हैं।

प्रश्न— 724 इन्द्र इन्द्राणी तीर्थंकर कुमार का अभिषेक करते हैं तो क्या मनुष्य श्रावक श्राविकायें अभिषेक कर सकते हैं या नहीं?

उत्तर जन्माभिषेक करने का एकमात्र अधिकार इन्द्र इन्द्राणी आदि देव देवांगनाओं का है, मनुष्यों का नहीं क्योंकि मनुष्यों का पाण्डुकशिला पर पहुंचना कठिन है, मनुष्य विद्याधर कुछ कम एकलाख योजन ऊपर जा नहीं सकते हैं तथा यहाँ पर पंचकल्याणक प्रतिष्ठाओं में जो प्रतिष्ठायें प्रतिष्ठाचार्य कराते हैं उसमें बालक बालिकायें और श्रावक श्राविकाओं को इन्द्र इन्द्राणी, देव देवांगनाओं की, षट्कुमारिकाओं की मंत्रों के द्वारा स्थापना करके, संकल्प करके फिर पंचकल्याणक विधि करते कराते हैं। अतः श्रावक श्राविकाओं को देव देवांगना इन्द्र इन्द्राणी मानकर अभिषेक आदि कार्य करते कराते हैं क्योंकि यह सौभाग्य हीन पुण्यात्मा मनुष्यों को प्राप्त नहीं होता है।

प्रश्न— 725 मूलोत्तरगुणों का पालन करने वाले श्रावकादि असंयमी देवों की अपने में स्थापना क्यों करते कराते हैं?

उत्तर हमारे लिए कोई दोष नहीं है किन्तु उन श्रावक श्राविकाओं को पक्षपात पंथवाद को छोड़कर निर्दोष आचार्य प्रणीत प्रमाण नय निक्षेप से सिद्ध शास्त्रों को देखकर, सुनकर, पढ़कर निर्णय करना चाहिए, ज्ञान बेचनेवाले, धर्माचरण के द्वारा आजीविका चलाने वाले, अन्याय अभक्ष्य का सेवन करने वाले, असंयमी पंडितों से, वकीलों से नहीं पूंछना, न निर्णय करना क्योंकि किराये की बुद्धि से हमेशा संदेह बना रहता है। कहावत है—"बिना मरे स्वर्ग नहीं मिलता।" अपने हिताहित के लिए स्वयं निर्णायक बनो और धर्म के नाम पर समाज को तोड़ना फोड़ना, विसंवाद करना फैलाना शोभा नहीं देता। यदि विधि विधान में स्थापना निक्षेप से कार्य करने

कराने करवाने में दोष दिखता है तो फिर धातु पाषाण की प्रतिमाओं में पंचपरमेष्ठी की स्थापना करना, नाटक करते समय पात्रों में संकल्प कर चावलों से स्थापना कर कार्यक्रम कराने को भी सदोष मानना पड़ेगा। अतः जो कार्य जिसका होता है उसे वही कार्य शोभा देता है **'जाहि काम ताहि को छाजे गधा पीठ मोगरा बाजे'** किन्तु स्थापना निक्षेप से अपने में या दूसरे में संकल्प कर कार्यक्रम सम्पन्न किये जाते हैं, अतः दोष नहीं है। जिस प्रकार दीपक दीपकों का निषेध किये बिना सब मिलकर प्रकाश फैलाते हैं, वृद्धिंगत करते हैं। उसी प्रकार धर्मात्मागण अपने साधर्मी भाईयों को साथ में लेकर, मिलकर, संगठन बनाकर धर्म की प्रभावना करते हैं। अतः आगम दृष्टि से अपने में इन्द्रइन्द्राणी का संकल्प कर विधि विधान कर लेना करा लेना दोष का स्थान नहीं है किन्तु गुण का स्थान है सम्यक्भावना है।

प्रश्न– 726–27 मूलगुणों का, अणुव्रतों का पालन करने वाले श्रावक श्राविकायें अपने में असंयत देव देवांगनाओं की जो भोगभूमिज हैं, भोगभूमिजों के समान हैं ऐसे असंयमी देवों का अपने में संकल्प कैसे कर सकते हैं? यह तो संयम से असंयम की ओर जाना समादान क्रिया हैं, ऊपर उठकर नीचे गिरना है, व्रत को ग्रहण कर अव्रत की ओर, प्रतिज्ञा ग्रहण कर व्रत भंग करने की ओर जाना है तथा प्रतिष्ठाचार्यों, विधानाचार्यों को भी अस्थितिकरण दोष क्यों लगाना या स्थितिकरण अंग की विराधना क्यों करना?

उत्तर आपको जिनेन्द्र देव के या पंचपरमेष्ठी के बिम्ब का अभिषेक करते समय अपने में इन्द्र इन्द्राणी की कल्पना करना, मंत्र न्यास करना कराना दोष दिखता है तो जब पंचकल्याणक प्रतिष्ठाओं में तीर्थंकर बालक कुमारावस्था में, राजा अवस्था में दीक्षा लेने जाते हैं तो ब्रह्मचारी प्रतिमाधारी आरम्भ त्यागी प्रतिमाधारी लौकान्तिक देवों की अपने में स्थापना कर पालकी उठाते हैं, विधि विधानों के प्रसंग पर श्रावक श्राविकाओं में, इन्द्र इन्द्राणी की बोलियां लगाकर संकल्प कर स्थापना करके आदर सम्मान, तिलक दान, माला पहनाना, श्रीफल भेंट करना, आसनदान देना, वस्त्राभूषण देना आदि कार्यक्रम इन्द्र इन्द्राणी मानकर ही करते हैं, पत्रिकाओं में साजसज्जा सहित फोटू देते हैं। ऐसी अवस्था में दोष क्यों नहीं दिखता। अभिषेक के समय दोष दिखता है? क्या यह अन्याय नहीं है? मूर्खता का लक्षण नहीं है? हाँ अवश्य है अथवा सूक्ष्म कारण यह है कि सामान्य कार्यों में धन की आमदनी न होने से दोष दिख रहा है तथा इन्हीं विशेष कार्यों में जब धन की अच्छी आवक होती है तो दोष नहीं दिखता। लौकान्तिक देव, सौधर्म इन्द्र इन्द्राणी जो नियम से एकभव लेकर मोक्ष जाने वाले हैं, सम्यग्दृष्टियों में क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि या क्षायिकसम्यग्दृष्टि हैं, शुभलेश्या के धारक हैं। लौकान्तिक देव प्रवीचार रहित हैं फिर भी ब्रह्मचारी नहीं है। यदि बलात् इन्हें ब्रह्मचारी माना जाये तो त्यागी मानने का प्रसंग आयेगा, देवों में देशसंयत गुणस्थान मानने का प्रसंग आयेगा तथा अन्यकरण लब्धिरूप परिणाम पाये जाने का प्रसंग आयेगा अन्य करणलब्धि का मतलब है की जब जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है तब करणलब्धि करता है। देशसंयम या सकल संयम प्राप्त करते समय और श्रेणी आरोहण करते

समय करणलब्धि भाव को प्राप्त होता है। अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदयाभाव का भी प्रसंग आयेगा। जो आगम में देवों में अप्रत्याख्यानावरण के उदयाभाव का निषेध किया है। इस कारण ब्रह्मचारी नहीं कहलाते हैं क्योंकि ब्रह्मचारी बनने में संकल्प पूर्वक दृढ़ता सहित कामसेवन और तत्सम्बन्धी सामग्री का त्याग करना होता है किन्तु अप्रवीचार में त्याग का संकल्प कोई नहीं करता। जैसे यहाँ पर गोद के बालक बालिकाओं में प्रवीचार की प्रवृत्ति नहीं होती है। इसी तरह देवों में कषायों का इतनी कम मात्रा में उदय आता है कि वे परिणाम पकड़ में नहीं आते तथा ये इन्द्र इन्द्राणी एकभवावतारी हैं, भव्य हैं, सम्यग्दृष्टि हैं किन्तु इन मनुष्यों में भक्ष्याभक्ष्य का, कर्तव्याकर्तव्य का, विवेकहीनपना, भव्य अभव्य का, सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टिपने का ही निर्णय नहीं है अहंकार से पूर्ण भरे हैं की दूसरों का अपमान तिरस्कार करने में संकोच नहीं करते। अतः अपने में महान आत्माओं की स्थापना करना दोषदायक नहीं है किंतु गुण का ही स्थान है।

प्रश्न– 728 यदि कोई त्यागी व्रती अपने में इन्द्रादि देवों की स्थापना कर ले तो क्या आपत्ति है, क्या दोष है?

उत्तर हमें कोई आपत्ति नहीं है फिर भी यदि वह व्यक्ति प्रत्यख्यानावरण कषाय के उदय का अनुभव कर रहा है फिर भी वह अपने में इन्द्र का इन्द्राणी का लौकान्तिक देवों की स्थापना करता है, संकल्पकर कार्य करता है तो अवश्य ही दोष है, हानि है। साम्परायिकाश्रव की समादान क्रिया है। जैसे 700 मुनियों के ऊपर घोर उपसर्ग आने पर उनकी रक्षा करने के लिए विष्णुकुमार मुनि ने अपनी विक्रिया के द्वारा मुनिपद को छोड़कर वामन रूप धारण कर देशसंयत गुणस्थान को प्राप्त हुए तभी तो बाद में उनको पुनः मुनिदीक्षा लेनी पड़ी, मूल प्रायश्चित्त लेना पड़ा था किन्तु यहाँ पर तो गुणस्थान कोई और है, चर्या कोई और है कथनी कुछ करनी कुछ अन्तर स्पष्ट दिखाई दे रहा है। यदि उसने अपने में इन्द्र की, लौकान्तिक देवों की स्थापना कर ली या करा ली तो कोई हानि नहीं है क्योंकि अपने में जिन देवों का संकल्प किया है वे नियम से सम्यग्दृष्टि हैं एक भवावतारी हैं और इन त्यागीव्रतीयों का कोई ठिकाना नहीं है कि ये भव्य हैं या अभव्य, सम्यग्दृष्टि हैं या मिथ्यादृष्टि, इनको मोक्ष की प्राप्ति कब होगी या नहीं होगी इस बात का आगम में कोई कथन नहीं है किन्तु इस कथन को सुनकर पढ़कर हमेशा अपने पद की अपने व्रतों की चिन्ता न कर विराधना कर देवों की स्थापना का संकल्प करता रहे तो महान अनर्थ होगा उसने अपने व्रतों के महत्व को समझा नहीं किन्तु भोगविलास को ही सब कुछ समझ लिया है तथा मूलगुण और अणुव्रतों का पालन तो अव्रती सम्यग्दृष्टि जीव भी करता है अतः प्रसंग समझना चाहिए। जो दोष दूसरों में देख रहे हो वह अपने में भी देखना चाहिए कि मेरे में यह दोष है या नहीं।

प्रश्न– 729 भगवान की प्रतिमाओं का जन्माभिषेक या जिनाभिषेक स्त्रियाँ कर सकती हैं या नहीं?

उत्तर नहीं, स्त्रियां अभिषेक नहीं कर सकती हैं अभिषेक करना तो दूर रहा निर्ग्रन्थ नग्नमुद्रा को वे देख ही नहीं सकती हैं क्योंकि वे कामवासना से पीड़ित हैं तथा पुरुष के साथ रमण की भावना करती

है। कारण की स्त्रियों की परिभाषा ही इस प्रकार की है जो अपने को और दूसरों को मिथ्यात्व, असंयम, विषयवासना आदि दोषों से आच्छादित करती है, दूषित करती है दोष लगाती है उसे स्त्री कहते हैं। अतः स्त्रियां और पुरुष दोनों ही कामवासना विकार से युक्त होने के कारण अभिषेक नहीं कर सकते, नहीं कर सकती क्योंकि जन्माभिषेक करने का अधिकार एकमात्र इंद्र इन्द्राणी देव देवांगनाओं को ही है, शेष को नहीं, मनुष्यों को नहीं क्योंकि मनुष्य वहाँ पहुंच नहीं पाते। फिर भी यहाँ पर श्रावक श्राविकायें धातु पाषाण की प्रतिमाओं में नव देवताओं की स्थापनाकर तथा अपने आप में इन्द्रइन्द्राणी की स्थापना कर अभिषेक करते हैं अथवा यहाँ पर श्रावक श्राविकायें अभिषेक करते हैं, स्त्री पुरुष नहीं क्योंकि स्त्री पुरुष नाम ही विकार का सूचक है, कामवासना का सूचक है किन्तु श्रावक श्राविका नाम पूज्यता का सूचक है, मोक्षमार्ग का सूचक है श्रा–श्रद्धावान, व–विवेकवान, क–क्रियावान। श्रा–श्रद्धावान, वि–विवेकवान, का–क्रियावान। इस प्रकार ये अक्षर नाम रत्नत्रय के सूचक हैं और ये रत्नत्रय की मूर्ति का स्पर्श करें तो क्या दोष है? अतः आपको स्त्री की और श्राविका की परिभाषा में अंतर क्या है यह समझना चाहिये।

प्रश्न– 730 आपने ऊपर के प्रश्नोत्तर 724 में श्राविकाओं को अभिषेक करने का समर्थन किया तथा प्रश्न– 729 में स्त्रियों को अभिषेक करने का निषेध किया यह तो स्ववचन बाधित दोष, पूर्वापर दोष से युक्त है अतः ऐसा कथन नहीं करना चाहिए?

उत्तर **नहीं, यहाँ पर स्ववचन बाधित दोष नहीं है, न पौर्वापर दोष है, न विरोध है, आप इतने शास्त्रों के ज्ञाता होकर भी श्राविका और स्त्री में क्या भेद है क्या अन्तर है, यह नहीं समझे यदि आपने समझकर हृदय में धारण किया होता तो इस प्रकार आक्षेप नहीं करते। क्या माता, बहिन, पुत्री, बुआ, चाची, नानी, मामी, भानजी, भतीजी, नातनी, पोती, साली, सरहज, ताई आदि ये सभी नाम शरीर की रचनानुसार हैं या आत्मा के भावानुसार हैं? यदि आप इस रहस्य को समझ लेवें तो अभिषेक कर सकती हैं या नहीं ऐसा प्रश्न ही पैदा नहीं होता है। आहार बना सकती हैं, दान, पूजा, शास्त्रों को स्पर्श करती हुईं स्वाध्याय कर सकती हैं किन्तु अभिषेक नहीं कर सकती? क्या क्षण क्षण में शरीर बदल जाता है? यदि आप अभिषेक करने में पाप मानते हैं तो शास्त्राध्ययन में, पूजापाठ में, आहार बनाने या देने में भी वही पाप मानो जो अभिषेक करने में पाप लगता है। अथवा मूर्ति को बिना स्पर्श किये अभिषेक दूर से किया जाता है किन्तु आहार तो स्पर्श करते हुए, हाथ लगाते हुए तैयार किया जाता है और हाथ से ही करपात्र में दिया जाता है।**

प्रश्न– 731 प्रश्नकर्ता से ही प्रश्न है आपके एक या उसके समान अनेक स्त्रियां हैं?

उत्तर **एक ही है अनेक नहीं क्योंकि माता पिता की आज्ञापूर्वक, देवशास्त्रगुरु की स्थापना निक्षेप से साक्षी पूर्वक, समाज के समक्ष जिसके साथ पाणिग्रहण संस्कार हुआ है वही मेरी स्त्री है शेष माता बहिन पुत्रियां हैं। अतः एक ही पत्नी है, एक ही स्त्री है, अनेक नहीं। अनेकों में माता बहिन पुत्री आदि का व्यवहार होता है।**

प्रश्न– 732 उस स्त्री के समान रचना वाली सभी को स्त्री मानकर स्वीकार कर लो

तो क्या दोष है?

उत्तर निज पत्नि के बिना शेष सभी को अपनी स्त्री न मान सकते हैं, न कहते हैं, न कह सकते हैं, न लोक व्यवहार होता है। जिससे जन्म लिया है, स्तनपान किया है उसे माँ कहते हैं, स्त्री नहीं। जिसके साथ जन्म धारण किया है उसे बहिन कहते हैं स्त्री नहीं। जिसको जन्म दिया है उसे पुत्री कहते हैं, स्त्री नहीं आदि। शरीर की रचना में समानता होने पर भी भावों में असमानता है। इस कारण सभी स्त्रियां नहीं हैं न सभी के साथ स्त्री जैसा भाव होता है।

प्रश्न— 733 प्रश्नकर्ता के समाधान पर ही किस प्रकार का समाधान होना चाहिए?

उत्तर जब सभी के भाव भिन्न भिन्न हैं तो स्त्रियां जन्माभिषेक जिनाभिषेक नहीं कर सकती हैं किन्तु अव्रती श्राविकायें, अणुव्रती श्राविकायें ब्रह्मचारिणी बहनें तो कर सकती हैं यह बात स्वतः सिद्ध हो जाती है। अतः प्रश्नकर्ताओं को थोड़ा शब्दों के अर्थ का ख्याल रखना चाहिये।

प्रश्न— 734 सन् 1989 के चातुर्मास बोम्बे सुखानन्द धर्मशाला की एक घटना याद आ रही है। वहाँ पर एक श्वेतांबर भाई ने प्रातःकाल 9 बजे आकर प्रश्न किया कि आप स्त्रियों के हाथ से गोचरी लेते हैं या नहीं?

उत्तर मैंने कहा नहीं, हम स्त्रियों के हाथ से गोचरी, आहार नहीं लेते हैं। थोड़ी देर के बाद आहार चर्या के लिए उठे उस समय धर्मशाला में तीन चौके लगे थे और तीनों ही चौकों में श्राविकायें थीं, श्रावक नहीं थे, अतः श्राविकाओं ने पड़गाहन से लेकर अंतर्मुहूर्त पर्यन्त या अन्तपर्यन्त पूर्ण विधि से आहार दिया तथा पिच्छी भी उन्हीं श्राविकाओं ने दी तब तक वह खड़ा—खड़ा देखता रहा, आश्चर्य में डूबता गया, बाद में वह साथ में आया और बोला महाराज साहेब आप झूठ बोलते हैं? क्या झूठ बोलते हैं? आप ने कहा था कि हम स्त्रियों के हाथ से गोचरी नहीं लेते हैं और आप अभी सारी स्त्रियों के हाथ से गोचरी लेकर आये हैं? मैंने कहा कि आप ही बताओ उनमें से मेरी कौन सी स्त्री है जिससे मैंने आहार लिया हो और उसने पति मानकर मेरे को आहार दिया हो, मैंने श्राविका मानकर, समझकर उनके हाथ से आहार लिया है तथा उन्होंने गुरु मानकर, पूज्य समझकर आहार दिया है, पति मानकर नहीं दिया है, यदि वह पति मानकर देती तो उसके कितने पति हो जायेंगे तब तो उसे या उसके समान भोजनदान आदि करने वाली सभी को वेश्यायें या व्यभिचारिणी स्त्री कहना होगा फिर कोई भी स्त्री पतिव्रतवाली नहीं कही जा सकती है तथा यदि मुनिजन स्त्री समझकर मानकर उसके हाथ से आहार लेते हैं तो मुनि भी ब्रह्मचर्य महाव्रती, बा०ब्र०, अखण्डव्रती कैसे? नवकोटि से काम सेवन का त्याग किया जाता है। ब्रह्मचर्य महाव्रत का पालन किया जाता है। यदि उस मुनि ने स्त्री मानकर आहार लिया तो भ्रष्टपने का भी प्रसंग आता है तथा परस्त्रीगामी वेश्यागामीपने का भी प्रसंग आता है तथा कामसेवन के पाप से कैसे बच सकता है? ब्रह्मचर्य महाव्रत का कैसे पालन कर सकता है? कारण जब ब्रह्मचर्य महाव्रत स्वीकार किया था तब उस समय उसने अपने से छोटी को पुत्री, बराबर की को बहिन और बड़ी को माँ मानने का संकल्प किया था अब वह उसे स्त्री रूप में देख रहा है यह तो महान अनाचार हुआ क्योंकि स्त्री पुरुष का जोड़ा है जब आपने सामने वाली को स्त्री

समझा तो आप स्वयं पुरुष कहलाये तथा ब्रह्मचर्यव्रत की प्रतिज्ञा स्वयं नष्ट की। अतः आपको अपना स्वयं का रंगीन चश्मा बदलना चाहिए।

प्रश्न– 735–36 अभिषेक करने की सामग्री कौन कौन है? कैसी होनी चाहिए? कैसी नहीं होनी चाहिए?

उत्तर उत्तम मध्यम पात्र को पूर्णशुद्ध आहार की सामग्री के समान पूर्णशुद्ध मर्यादित जल चन्दन आदि तथा शुद्ध दूध, दही, घी, इक्षुरस, सर्वौषधि होना चाहिए। यह अभिषेक की सामग्री भी पूर्णशुद्ध होनी चाहिए, यदि शुद्धसामग्री नहीं है तो अभिषेक के काम में नहीं लेना चाहिए क्योंकि अशुद्ध आहार पानी मोक्षमार्गस्थ पात्रों को झूठ बोलकर आहार में नहीं देते है।

प्रश्न– 737 शुद्ध सामग्री किसे कहते हैं?

उत्तर जिसकी जीवाणी यथाविधि, यथास्थान सावधानी पूर्वक पहुंचायी जाती है वहाँ का छना हुआ प्रासुक शुद्ध जल (प्रश्न– 499–511 तक) शुद्ध दूध श्रावक को स्नान कर रात्रि के सहवास के तथा बासे वस्त्रों को छोड़कर, दूसरे धुले हुए शुद्ध वस्त्र धारणकर, अपने हाथ से दुहकर लाना चाहिए, अजैन के हाथ से नहीं। एक मुहूर्त के अन्दर लाया गया दूध छानकर गर्मकर लेना चाहिए इसी प्रकार शुद्ध दूध से पुराना जामन दिये बिना चांदी के सिक्के से या मारबल पत्थर के टुकड़े से या बिना जटा के साफ किये गये नारियल की नरेटी से जमाना चाहिए किन्तु वह दही 24 घंटे के अन्दर का होना चाहिए इसके बाद का नहीं। घी बाजार का न हो, डेरी का न हो, अमर्यादित दूध से दही से या मक्खन से या क्रीम से तैयार किया गया न हो किन्तु अपने हाथ से या शुद्ध श्रावक के हाथ से शुद्धिपूर्वक तैयार किया गया हो। इक्षुरस गन्ने का रस भी अपने श्रावक के हाथ से शुद्ध निकाला गया हो। पुष्प भी पुष्पवृष्टि के लिए भी अपने हाथ से लाये हुए होना चाहिए। माली के हाथ के, अजैन के हाथ के, सूतक पातक आचार विचारहीन व्यक्ति के हाथ से लाए हुए नहीं होना चाहिए। अविवेकता पूर्वक जहाँ कहीं की या जिस किसीसे सामग्री मंगा ली ग्वाले से, ब्राह्मण से या अन्य किसीसे भी तो वह अशुद्ध है अर्थात् मन वचन काय की शुद्धिपूर्वक या द्रव्य क्षेत्रकाल और भाव की शुद्धिपूर्वक शुद्धसामग्री होना चाहिए, अन्य नहीं।

प्रश्न– 738 अशुद्धसामग्री किसे कहते हैं?

उत्तर अनछना जल, छना हुआ भी प्रासुक तथा अचित्त जल भी अशुद्ध व्यक्ति, आचार विचार विहीन व्यक्ति, सूतक पातकवाले व्यक्ति, सदाचार से भ्रष्ट व्यक्ति के हाथ से स्पर्शित जल दूध, दही, घी इक्षुरस, सर्वौषधि, चावलादि चमड़े में रखे हुए या चमड़े से स्पर्शित सामग्री, सड़ी गली और अमर्यादित वस्तु को अशुद्धसामग्री कहते हैं।

प्रश्न– 739 आजकल संप्रदायवाद के कारण कहीं कहीं जल से और कहीं कहीं पंचामृत से अभिषेक करते हैं सो दोनों में से कौन सी सही है?

उत्तर यदि ये दोनों तेरापंथ और बीसपंथाम्नाय शुद्धि अशुद्धि पर आधारित हैं तो दोनों सही हैं या अविवेक पूर्वक होने से दोनों ही मिथ्या है क्योंकि ये दोनों नामकरण आचार्य प्रणीत नहीं है। जो बुद्धिमान जैन पंचामृताभिषेक को सर्वथा गलत कहते हैं क्या उनको खाने में पाप नहीं लगता,

त्याग करने में पाप लगता है। श्रावक के लिए त्याग धर्म है सत्कर्म से कमायी गई सामग्री का त्याग गुरु या देव के निमित्त, पूजा के निमित्त करना है। दानपूजा श्रावक का मुख्य धर्म है वैयावृत है जो अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत है इनके निमित्त त्याग धर्म का पालन करना है। यदि पूजा अभिषेक के निमित्त सामग्री के त्याग करने में पाप लगता है तो दान के निमित्त त्यागी हुई सामग्री से पाप क्यों न होगा? श्रावक के लिए दोनों धर्म समान है ऐसा नहीं है कि एक मिथ्या हो और एक समीचीन हो। यदि कोई कहे कि दूध, दही, घी आदि शुद्ध सामग्री नहीं मिलती है सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा मानने पर फिर आपने मुनियों को आहार में अशुद्ध को शुद्ध बोलकर, झूठ बोलकर आहर दिया तो नवधाभक्ति में सत्य बोलना, सत्य विचारना यह वचन शुद्धि और मनशुद्धि कही है तथा दाता के सात गुणों में एकगुण सत्य बोलना कहा है जब आप में वह गुण नहीं है तो आप दाता और पुजारी भी नहीं रहे तब ऐसे सूर्योदय के होने पर उल्लू के समान अश्रद्धानियों, अहंकारियों के लिए शास्त्र क्या कर सकता है?

प्रश्न– 740 दूध दही आदि के मिश्रण से सम्मूर्छन जीवों का जनम मरण और हिंसा का साधन होने से पंचामृताभिषेक क्यों करना चाहिए?

उत्तर यदि ये वस्तुयें सर्वथा अशुद्ध हैं तो फिर आचार्यों ने इनकी मर्यादा क्यों बताई? तीर्थंकर प्रकृति वाले मुनियों ने आहार में क्यों ग्रहण किया? तथा मुनियों को, आचार्यों को, त्यागियों को, व्रतियों को आहार में क्यों देते हो? मूर्ति के ऊपर छोड़ने में मिश्रण होने से जीव हिंसा होती है तो आहार लेते समय या देते समय करपात्र में मिश्रण होने से तथा पेट में जाकर मिश्रण होने से क्या जीव हिंसा नहीं होगी? तब उस समय क्या पाप नहीं लगता? वह आहार सामग्री त्यागियों के पेट में सामान्यतया 20–22 घंटे रहती है और मूर्तिपर तो सामान्यतया घंटे भर भी नहीं रहती और कदाचित् बाहुबली भगवान का महामस्तकाभिषेक होने के समय आठ घंटे तक रह सकती है तो आपको पक्षपात रहित होकर विचार करना चाहिए कि जब थोड़े समय तक मिश्रण होने से हिंसा हो सकती है तो अधिक समय तक मिश्रण रहने से कितनी हिंसा होगी? क्या इसका अनुमान नहीं लगाना चाहिए? पेट में जीव उत्पन्न हुए और मरे तब मल और कफ के साथ या औषधि के प्रयोग से बाहर आने पर हिंसा अनंतगुणी अधिक होगी। अतः श्रावकों के लिए दान पूजा दोनों बराबर धर्म हैं। दोनों में ही वस्तु का त्याग किया जाता है। इस कारण त्याग धर्म है, भोग पाप है। हां इतना अवश्य है कि अंहकारी नहीं होना चाहिए। अशुद्ध, अमर्यादित सामग्री भूलकर भी धर्मकार्य में नहीं लेना चाहिए। चाहे अभिषेक पूजा हो या दान हो। अतः अविवेकता और मानकषाय के कारण ही समाज में मतभेद पंथभेद ने जन्म लिया है जिससे धर्म की, समाज की अखंड शक्ति की, परिवार की संगठन की हानि हुई है जिसका फल अपन सभी भोग रहे हैं।

प्रश्न– 741 पंचामृताभिषेक बीसपंथियों का है, तेरापंथियों का नहीं इसलिए पंचामृताभिषेक क्यों करना?

उत्तर क्या बीसपंथियों के और तेरापंथियों के देव शास्त्र गुरु अलग अलग हैं? दोनों का मोक्षमार्ग अलग अलग है क्या? यदि नहीं है तो एक ही हुए तब पंथ भेद क्यों? यदि पंथ भेद सही है तो जिस

प्रकार अन्यमतियों के यहाँ परस्पर में मौलिक अंतर है जो स्पष्ट दिखाई देता है वैसा ही अन्तर दिगम्बर तेरापंथी और बीसपंथी जैनों में भी दिखाई देना चाहिए। अपनी मान्यता के विरुद्ध होने से उन देवशास्त्रगुरुओं का, धर्मायतनों का दर्शन पूजन नहीं करना चाहिए, वैयावृत, दान, सेवा आदि भी नहीं करना चाहिए। बिना श्रद्धान के, विश्वास के यदि ये कार्य किये जायें तो मिथ्यात्व को ही पुष्ट करते हैं जो मिथ्यादर्शन और मिथ्यात्व वर्धिनी सांपरायिकाश्रव की क्रिया है क्योंकि हेतु अश्रद्धान स्वरूप है। यदि पंचामृताभिषेक मिथ्या है, हिंसार्थक है तो जिन शास्त्रों में पंचामृत अभिषेक का विधान है, पाठ लिखा गया है तो वे शास्त्र और शास्त्रकर्ता दिगम्बराचार्य भी मिथ्या कहलाये, अनायतन कहलाये तथा जो साधु आचार्य भगवन्त पंचामृताभिषेक देखते हैं, मना नहीं करते हैं वे भी धर्मायतन नहीं कहलाये? समाज में तेरहपंथ, बीसपंथ के बंटवारे के पहले की सारी मूर्तियों की दिगम्बराचार्यों ने, साधुओं ने, प्रतिष्ठाचार्यों ने या भट्टारकों ने पंचकल्याणक प्रतिष्ठायें एक ही प्रकार से कराई थीं तो वे सभी मूर्तियाँ और आचार्यादि भी अपूज्य होंगे तथा जिन प्रतिष्ठा ग्रन्थों में इस प्रकार का विधान किया गया है वे प्रतिष्ठाग्रन्थ भी अपूज्य हुए, मोक्ष के लिए अनायतन कहलाये? फिर अपनी मान्यता के विरुद्ध होने से ऐसे देवप्रतिमा, शास्त्र, गुरु अनायतन कहलाये। अनायतन होने से उनकी सेवापूजा, वैयावृत दान, आदरसम्मान करना अनायतन की दानपूजा कहलाई जो मिथ्यारूप है। अतः भलीप्रकार सोच समझकर मोक्षमार्ग में कदम बढ़ाना चाहिए जिससे अपनी आत्मा पवित्र हो, शाश्वत सुखी बने। पंथभेद से, पंथ की मान्यता से, पंथवादी बनने से कल्याण नहीं होता है किन्तु विषयकषायों की पुष्टि होती है, दुर्गति में गमन होता है , असमाधिमरण होता है, द्वेष बुद्धि के कारण शत्रुता की उत्पत्ति होती है।

प्रश्न— **742—44 भावी नय से वर्तमान में तीर्थंकर बालक का पाण्डुकशिला पर जाकर तीर्थंकर बालक को इन्द्रइन्द्राणी आदि अंसख्यात देवगण जन्मकल्याणक मनाने के लिए अपने सहयोगियों के साथ क्षीरसमुद्र के जल से अभिषेक करते हैं अतः अब पंचामृताभिषेक पाठ या पंचामृताभिषेक क्रिया करना कहां से आई? कब से आई? किसने सुझाव दिया संशोधन किया कि ऐसा करो?**

उत्तर **इन्द्र इन्द्राणी आदि असंख्यात देवगण क्षीर समुद्र के जल से अभिषेक करते हैं वह जल दूध के समान ही वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाला है। इस कारण जिस प्रकार दूध में दही घी और मधुरता गुण, तुष्टि पुष्टि कारक गुण पाया जाता है उसी प्रकार आज्ञाप्रधानी भक्तजनों ने गुरु की और आगम की आज्ञा मानकर आज्ञाकारी भक्त बनकर उस क्षीर समुद्र के जल के समान यहाँ जल में दूध, दही, घी, इक्षुरस की स्थापनाकर तदनुकूल परिणाम बनाकर अथवा यहाँ पर ही स्थित हाथ का दुहा हुआ दूध, हाथ का बनाया गया घी, पुराने जामन के बिना जमाया गया श्रावक के हाथ से दुहा हुए दूध का दही, तत्काल पेला गया गन्ने का रस इन रसों के समान स्वाद वाले समुद्रों के जल का भी वही स्वाद है जो यहाँ पर दूध दही आदि का है। जैसे क्षीरवर समुद्र का जल दूध के समान है। घृतवर समुद्र का जल घी के समान है। दधिवर समुद्र का जल दही के समान है। इक्षुवर समुद्र का जल गन्ने के रस के समान है तथा नाना औषधियों से और**

सुगन्धित द्रव्यों के मिश्रण से तैयार किये गये सर्वौषधि से अभिषेक किया वह पंचामृताभिषेक कहलाता है। चार कलश चार समुद्र के समान हैं (पृष्ठ सं. 179 श्लोक 10 देखें) अथवा जहाँ जैसे कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय हैं वहाँ से जल को लेकर देवगण या श्रावक श्राविकायें जल से या तदनुकूल सामग्री में स्थापना निक्षेप से पंचामृत अभिषेक करते हैं। यहाँ के दूधादि में वहाँ के समुद्रों के जल की स्थापना कर या सत् शास्त्रों की, गुरुओं की आज्ञा मानकर आज्ञा पालन करने वाले भक्तजन अभिषेक करते हैं फिर भी वर्तमान में समाज की जहाँ जैसी प्रथा हो उसी के अनुसार आचरण करना, कार्य करना अच्छा है। अहंकार नहीं करना, अहंकारी नहीं बनना, विषय कषायों का त्याग करना तथा अभिषेक पूजापाठ में जिनाज्ञा मानकर ही कार्यक्रम करना चाहिए, विवाद नहीं करना चाहिए। आगमाज्ञानुसार ही श्रद्धान बनाना चाहिए। किसी के भय से श्रद्धान बिगाड़ना नहीं चाहिए। अतः अपनी मान्यतानुसार आप्तागम गुरु का लक्षण नहीं बदलना किन्तु उनकी आज्ञानुसार अपनी मान्यता बनाना चाहिए। परम्परा से आई, अनादिकाल से आई, तीर्थंकरों ने, गुरुओं ने कहा, आचार्यों ने सुझाव दिया और उपदेश दिया शास्त्रों में लिपिबद्ध किया क्योंकि उन गुरुओं ने जंगलों में, गुफाओं में या मंदिरों में नाना प्रकार की उपसर्ग परीषहों को जीतते हुए अपना अमूल्य समय ध्यानाध्ययन से बचाकर भव्य जीवों के हित के लिए ताड़पत्र में उकेरा और कालान्तर में पुनः आरातीय आचार्यों ने लिखा और लिखाया जो आज मौजूद है

प्रश्न— 745—46 आजकल गुरुजन भी पंथवाद का सम्प्रदाय का उपदेश करते हैं? तदनुकूल चर्या भी करते हैं क्या?

उत्तर **निर्दोष जिनागम में विरुद्ध उपदेश चर्चा चर्या युक्त जीवन होने से गुरुपना कैसा? मोक्षमार्ग में मनमानी नहीं चलती हैं क्योंकि आ० श्री ने प्र०सा०चा० आगम चक्खू साहू।।234।। साधू का, मोक्षमार्ग की साधना करने वाले का नेत्र आगम है ऐसा कहा है, आगम के बिना और कोई नेत्र नहीं है। यदि कोई महावीर का झंडा, अनन्त तीर्थंकरों का उपदेशित मोक्षमार्ग तथा उन्हीं का बताया गया चिह्न स्वरूप पीछी कमण्डलु हाथ में लेकर फिर समाज में तोड़फोड़ कराये, मुनि, आचार्य, आर्यिका, क्षुल्लक क्षुल्लिका आदि पदवी धारण कर धर्म में, समाज में विद्रोह उत्पन्न कराये तो वह मोक्षमार्गी कैसा? आत्मसाधक, धर्मसाधक कैसा? फिर धर्मसभा में सम्यग्दर्शन के वात्सल्य अंग का क्या लक्षण बताते हैं? बाहर में सबसे प्रेम करो, वैर विरोध मत करो ऐसा कहे और अन्दर बैठकर कपटपूर्ण व्यवहार की पंथवाद, पक्षपात, पार्टीबन्धी की चर्चा करे, दूसरों को नीचा दिखाने की बात करे, सम्प्रदाय का जहर घोले तो धर्मगुरु कैसा? शास्त्रों में नारदों के नाम और उनका काम पढ़ा कि ये अखण्ड ब्रह्मचारी होते हुए भी परस्पर में एकदूसरे में रागद्वेष उत्पन्न कराकर, भिड़ाकर कलह पैदा कराकर मन में ही आर्तध्यानी रौद्रध्यानी होते हैं तभी तो नरक जाते हैं कारण ये सतत आर्तध्यानी और रौद्रध्यानी होते हैं। यदि अधोगति से भय है तो दुर्ध्यान से बचो किन्तु धर्म से विरक्त होकर ख्याति पूजा लाभ की दुर्भावना पूर्वक एक दूसरों का अपहरण कराना, अधिकार छीनना, छिनवाना, वैरविरोध उत्पन्न करना कराना आदि कुछ त्यागियों का मूलगुण जैसा ही हो गया है वे ज्ञान का बल पाकर मनमाना शास्त्र लिखकर छपवा देते हैं। जिससे समाज में, साधुओं में विवाद होता है। अपना अपना संघ बनाकर भ्रमण करते हैं अतः**

जीवन दुःखी है। इसलिए पिच्छी धारकों को लोकानुसार मनोरंजन के लिए अपनी दिनचर्या दिनचर्या नहीं बनाना चाहिए किन्तु दीक्षा के समय जो भाव हुए थे तथा प्रतिज्ञा की थी उसको याद कर अपनी चर्या चर्चा करना चाहिए, अन्य प्रकार से चर्चा चर्या नहीं करना चाहिए।

प्रश्न– 747 पुराकर्म किसे कहते है?

उत्तर सिंहासन रूपी पीठ के चारों कोणों पर जल से भरे कलश स्थापना करने को पुराकर्म कहते हैं।

प्रश्न– 748 पानी से अभिषेक करना अहिंसा है क्योंकि जीवों की विराधना नहीं होती है किन्तु दूधादि से अभिषेक करने पर हिंसा होती है, इस कारण जल से अभिषेक करना श्रेष्ठ है दूधादि से करना पाप है ऐसा है क्या?

उत्तर यह आपका तर्क सही है परन्तु आप बतायें कि एक बूंद पानी में त्रस जीव कितने हैं? स्थावर जीव कितने हैं? त्रसजीव संख्यात, असंख्यात तथा स्थावरजीव संख्यातासंख्यात और अनन्तजीव होते हैं किन्तु एक घड़े दूध में जो विधि पूर्वक दोहने के बाद शीघ्र ही छानकर गर्मकर लिया है उसमें कितने जीव हैं? जल ही जिसका शरीर है ऐसे जलकायिक जीव में स्थावर नामकर्म, एकेंद्रिय जातिनामकर्म, तिर्यंचगति, नीचगोत्र, बादर नामकर्म, तिर्यंचायु आदि मूलोत्तर पाप प्रकृतियों का और किंचित् पुण्य प्रकृति रूप औदारिक शरीरादि का उदय है। औदयिक भाव, पारिणामिक भाव, क्षायोपशमिक ये तीन भाव हैं किंतु दूध में त्रसनामकर्म का या स्थावर नामकर्म का उदय है क्या? आगम दृष्टि से एक बूंद पानी में संख्यात असंख्यात त्रस जीव तथा संख्यातासंख्यात बादर और सूक्ष्म अनंत जीव हैं और वैज्ञानिकों की दृष्टि से एक बूंद पानी में 36450 जीव हैं। विधि पूर्वक जल छानने के बाद में त्रस जीवों के बिना जल जीव तो रहता ही है, किन्तु दूध शुद्ध पुद्गल वर्गणाओं का पिण्ड है इसलिए दूध से अभिषेक करना ही श्रेष्ठ है, निर्दोष है, पानी से नहीं । उस दूध में किसी भी कर्म का बंध उदय सत्व नहीं है, न त्रसस्थावर जीव हैं, न सप्त धातु और उपधातु रूप है अतः दूध में स्वाभाविक हिंसा कैसे हो सकती है? किन्तु असावधानी होने से आगन्तुक हिंसा हो सकती है। पानी में स्वाभाविक और आगन्तुक दोनों प्रकार की हिंसा हो सकती है अथवा होती ही है। आहारादि तैयार करने में दोनों प्रकार की हिंसा हो जाती है, कीड़े मकोड़े, मक्खी, कृमि आदि बाहर से आ जाते हैं तो क्या हमेशा के लिए आहार बन्द किया जाता है? नहीं, उसी समय के लिए या उस दिन के लिए अंतराय कर दिया जाता है हमेशा के लिए त्याग नहीं किया जाता अतः विवेक साथ में होना चाहिए, अंहकार ममकार नहीं अतः कितनी भी सावधानी वर्ती जाये फिर भी जल में आरम्भी हिंसा होगी ही किन्तु दूध में हिंसा नहीं होती है अतः हिंसा अहिंसा कदाचित् सामग्री के आधीन न होकर असावधानी और सावधानी के आधीन है फिर भी सामग्री के संबंध में सावधानी रखना परम आवश्यक है।

आ. अभयनन्दि कृत संकलित हि. अनु. पं. फूलचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री ज्ञा. पू.।

प्रश्न– 748अ.अभिषेक पाठ का तथा पंचामृताभिषेक पाठ का अर्थ सहित संपादन जैसा पं. फूलचंद्रजी ने किया है वैसा ही यहाँ किया जा रहा है?

उत्तर श्री मज्जिनेन्द्रमभिवन्द्य जगत्त्रयेशं, स्याद्वाद नायक मनन्त चतुष्टयार्हम्।

श्रीमूल संघ सुदृशां सुकृतैक हेतु जैनेन्द्र यज्ञ विधिरेष मयाभ्यधायि।।
तीन लोक के ईश, स्याद्वाद नीति के नायक और अनन्त चतुष्टय के धनी श्री सम्पन्न जिनेन्द्र देव को नमस्कार करके मैंने मूल संघानुसार सम्यग्दृष्टि जीवों के पुण्य की एकमात्र कारणभूत जिनपूजा विधि कही है। (पुष्पांजलि क्षेपण करें।) श्री मन्मन्दर सुन्दरे शुचि जलैर्धौतैः सदर्भाक्षतैः पीठे मुक्तिवरं निधाय रचितं त्वत्पाद पद्मस्रजः। इन्द्रोहं निज भूषणार्थकमिदं यज्ञोपवीतं दधे, मुद्राकंकण शेखराण्यपि तथा जैनाभिषेकोत्सवे।
श्री सम्पन्न मेरुपर्वत के दर्भ और अक्षत से युक्त पवित्र जल से प्रक्षालित सुन्दर पीठ पर मुक्ति रूपी लक्ष्मी के नायक श्री जिनेन्द्र देव को स्थापित करके मैं इन्द्र हूँ इस प्रतिज्ञा के साथ मैं जिनेन्द्र देव के अभिषेक के समय अपने आभूषण स्वरूप आपके चरणकमलों की माला को तथा यज्ञोपवीत मुंदरी कंगन और मुकुट आदिको धारण करता हूँ।। 2।।
(इस श्लोक को पढ़कर माला यज्ञोपवीत मुंदरी कंकणादि आभूषण धारण करना चाहिए।)
सौगन्ध्य संगत मधुव्रत झंकृतेन संवर्ण्यमानमिव गन्धमनिन्द्यमादौ।
आरोपयामि विबुधेश्वर वृन्द्य वंद्य पादारविन्दमभिवंद्य जिनोत्तमानाम् ।।3।।
मैं विबुधेश्वर वृन्द के द्वारा वन्दनीय ऐसे श्री जिनेन्द्र देव के चरण कमल को नमस्कार करके अभिषेकोत्सव के प्रारम्भ में अपनी सुगन्धि के कारण आये हुए भौंरों के समूह के मधुर शब्द से प्रशंसित किये गये के समान जो निन्दा के अयोग्य हैं ऐसे गन्ध का आरोपण करता हूँ।
(इस श्लोक को पढ़कर ललाट आदि 9 स्थानों में तिलक लगाना चाहिए।)
ये सन्ति केचिदिह दिव्य कुल प्रसूता नागाः प्रभूतबल दर्पयुता विबोधाः।
संरक्षणार्थ ममृतेन शुभेन तेषां, प्रक्षालयामि पुरतः स्नपनस्य भूमिम् ।।4।।
इस श्लोक में प्रभूतबल और दर्प से युक्त बुद्धिशाली तथा दिव्यकुल में उत्पन्न हुए जो नागदेव हैं उनके समक्ष संरक्षण के लिए प्रशस्त जल से स्नपन भूमि का प्रक्षालन करता हूँ।
(इस श्लोक को पढ़कर नाग सन्तर्पण पूर्वक स्नपन भूमि का प्रक्षालन करे।।4।।)
क्षीरार्णवस्य पयसां शुचिभिः प्रवाहैः प्रक्षालितं सुरवरै र्यदनेकवारम्।
अत्युद्ध मुद्यतमहं जिनपादपीठं प्रक्षालयामि भव संभव तापहारि।।5।।
देव इन्द्रों ने क्षीरसमुद्र के जल के निर्मल प्रवाह से संसार ताप का हरण करने वाले और अत्युन्नत जिस जिनपाद पीठ का अनेकवार प्रक्षालन किया है। समुपस्थित हुए उस पादपीठ का मैं प्रक्षालन करता हूँ।(पादपीठ को स्थापित कर उसका प्रक्षालन करे।)
श्री शारदा सुमुख निर्गत बीजवर्ण श्रीमंगलीकवर सर्वजनस्य नित्यम्।
श्रीमत्स्वयं क्षयति तस्य विनाश विघ्नं श्रीकार वर्ण लिखितं जिन भद्रपीठे।।6।।
श्री सम्पन्न के मुख से निकले हुए, सब जनों के लिए सदा मंगल स्वरूप, विघ्नों का नाश करने वाले और स्वयं शोभा सम्पन्न ऐसे शारदा स्वरूप श्रीकार वर्ण को मैं जिनेन्द्र देव के भद्र पीठपर लिखता हूँ।(श्रीकार लिखना)

इन्द्राग्नि दण्डधर नैऋतपाशपाणि,वायुत्तरेश शशि मौलिफणीन्द्र चन्द्राः।
आगत्य यूयमिह सानुचराः स चिह्नाः स्वं स्वं प्रतीच्छत बलिं जिनपाभिषेके।।7।।

हे इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋत, वरुण, पवन, कुबेर, ऐशान धरणीन्द्र और सोमदेव। जिनेन्द्र देव के अभिषेक के समय अपने[2] अनुचरों और अपने[2] चिह्नों के साथ यहाँ पर आकर अपनी अपनी भेंट को ही स्वीकार करो।

(आगे लिखे मंत्रों का उच्चारण कर दस दिक्पालों को अर्घ्य दें।)

1. ॐ आं क्रौं ह्रीं इन्द्र आगच्छ[2] इन्द्राय स्वाहा बलिं प्रतीच्छत गृहाण[2]।
ॐ आं क्रौं ह्रीं हे इन्द्र देव आइये आइये इन्द्र को अर्घ्य दें हे इन्द्र अपनी भेंट स्वीकार करो।

2. ॐ आं क्रौं ह्रीं अग्ने आगच्छ[2] अग्नेय स्वाहा बलिं प्रतीच्छत गृहाण[2]।
ॐ आं क्रौं ह्रीं हे अग्निदेव आइये[2] अग्निदेव के लिए अर्घ्य दें, हे अग्निदेव! अपनी भेंट स्वीकार करो।

3. ॐ आं क्रौं ह्रीं यम आगच्छ[2] यमाय स्वाहा बलिं प्रतीच्छत गृहाण[2]।
ॐ आं क्रौं ह्रीं हे यमदेव आइये[2] यमदेव के लिए अर्घ्य दें, हे देव! अपनी भेंट स्वीकार करो।

4. ॐ आं क्रौं ह्रीं नैऋत आगच्छ[2] नैऋताय स्वाहा बलिं प्रतीच्छत गृहाण[2]।
ॐ आं क्रौं ह्रीं हे नैऋतदेव आइये[2] नैऋतदेव के लिए अर्घ्य दें, हे नैऋतदेव, अपनी भेंट स्वीकार करो।

5. ॐ आं क्रौं ह्रीं वरुण आगच्छ[2] वरुणाय स्वाहा बलिं प्रतीच्छत गृहाण[2]।
ॐ आं क्रौं ह्रीं हे वरुणदेव आइये[2] वरुण के लिए अर्घ्य दें, हे वरुण! देव अपनी[2] भेंट स्वीकार करो।

6. ॐ आं क्रौं ह्रीं पवन आगच्छ[2] पवनाय स्वाहा, बलिं प्रतीच्छत गृहाण[2]।
ॐ आं क्रौं ह्रीं हे पवन देव आइये[2] पवन के लिए अर्घ्य दें, हे पवन! अपनी[2] भेंट स्वीकार करो।

7. ॐ आं क्रौं ह्रीं कुबेर आगच्छ[2] कुबेराय स्वाहा बलिं प्रतीच्छत गृहाण[2]।
ॐ आं क्रौं ह्रीं हे कुबेरदेव आइये[2] कुबेर के लिये अर्घ्य दें हे देव! अपनी[2] भेंट स्वीकार करो।

8. ॐ आं क्रौं ह्रीं ऐशान आगच्छ[2] ऐशानाय स्वाहा बलिं प्रतीच्छत गृहाण[2]।
ॐ आं क्रौं ह्रीं ऐशानदेव आइये[2] ऐशान के लिए अर्घ्य दें हे ऐशानदेव अपनी[2] भेंट स्वीकार करो।

9. ॐ आं क्रौं ह्रीं धरणींद्र आगच्छ[2] धरणीन्द्राय स्वाहा बलिं प्रतीच्छत गृहाण[2]।
ॐ आं क्रौं ह्रीं हे धरणींद्र देव आइये[2] धरणीन्द्र के लिए अर्घ्य दें हे देव अपनी[2] भेंट स्वीकार करो।

10. ॐ आं क्रौं ह्रीं सोम आगच्छ[2] सोमाय स्वाहा बलिं प्रतीच्छत गृहाण[2]।
ॐ आं क्रौं ह्रीं हे सोमदेव आइये[2] सोम के लिए अर्घ्य दें हे सोम! अपनी[2] भेंट स्वीकार करो।

दध्युज्ज्वलाक्षत मनोहर पुष्प दीपैः पात्रार्पितं प्रतिदिनं महतादरेण।

त्रैलोक्य मंगल सुखालय कामदाह मारार्तिकं तव विभोरवतारयामि ।।8।।
जो पात्र में रखे हुए दही उज्ज्वल अक्षत मनोहर पुष्प और दीप से सजाई गयी है तीन लोक में मंगल स्वरूप है, सुख की स्थान है, कामदाह को जलाने वाली है उससे हे विभो मैं आपकी आरती उतारता हूँ।
(यह पढ़कर पात्र में रखे हुए दही आदि से जिन देव की आरती उतारना चाहिए।)
यं पाण्डुकामल शिलागत मादिदेव मस्नापयन्सुरवराः सुर शैल मूर्ध्नि।
कल्याण मीप्सुरहमक्षत तोय पुष्पैः संभावयामि पुर एव तदीय बिम्बम्।।9।।
सुमेरु पर्वत के अग्रभाग में स्थित निर्मल पाण्डुकशिलापर स्थित श्री आदि जिनका पहले देवेंद्रों ने अभिषेक किया था। कल्याण का इच्छुक मैं उन आदि जिनकी प्रतिमा की स्थापना कर अक्षत जल पुष्पों से पूजा करता हूँ।
(जलादि अर्घ्य क्षेपणकर श्रीवर्ण के ऊपर जिनप्रतिमा को विराजमान करें।)
सत्पल्लवार्चित मुखान्कल धौतरौप्य ताम्रारकूट घटितान्पयसा सुपूर्णान्।
संवाह्यतामिव गतांश्चतुरः समुद्रान् संस्थापयामि कलशांजिन वेदिकान्ते ।।10।।
जो उत्तमोत्तम पल्लवों से अर्चित किये गये हैं, जो स्वयं चांदी तांबे और रांगे से निर्मित हैं और जल से भरे हुए हैं ऐसे चार कलशों को जिनवेदिका के चारों कोणों पर मानों चार समुद्र ही हों ऐसा मानकर स्थापित करें।
(पल्लवों से सुशोभित मुखवाले चार कलश पीठ के चारों कोणों पर स्थापित करे।)
आभिः पुण्याभिरद्भिः परिमल बहुलेनामुना चन्दनेन श्री दृक्पेयैरमीभिः शुचि सदकचयै रुद्गमैरेभि रुद्घैः। हृद्यैरेभिर्निवेद्यैर्मख भवनमिमैर्दीप यद्भिःप्रदीपैः। धूपैःप्रेयोभिरेभिःपृथुभिरपि फलैरेभिरीशं यजामि।।11।।
मैं पवित्रीभूत इस जल से परिमल बहुल इस चन्दन से लक्ष्मी के नेत्रों को सुखकर और पवित्र इन अक्षतों से उत्तम सुगन्ध वाले इन पुष्पों से, हृद्य इन नैवेद्यों से मख के भवन को प्रकाशित करने वाले इन प्रदीपों से, सुगन्ध से परिपूर्ण इन धूपों से और इन बड़े फलों से श्रीजिन को पूजता हूँ।
(इस श्लोक को पढ़कर जिनेन्द्र के सामने अर्घ चढ़ाना।)
दूरावनम्र सुरनाथ किरीट कोटी संलग्न रत्न किरणच्छवि धूसराङ्घ्रिम्।
प्रस्वेद तापमल मुक्तमपि प्रकृष्टै र्भक्त्या जलैर्जिनपतिं बहुधाभिषिंचे।।12।।
ॐ ह्रीं श्रीमंतं भगवन्तं कृपालसंतं वृषभादि महावीर पर्यन्त चतुर्विंशति तीर्थंकर परमदेवं आद्यानां आद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे.... नाम्नि नगरे मासाना मुत्तमेमासे.......मासे.....पक्षे शुभ दिने मुन्यार्यिका श्रावक श्राविकाणां सकल कर्म क्षयार्थं जलेनाभिषिंचे नमः।
(उक्त मंत्र बोलकर जल की धारा देना चाहिए)

श्री जिनदेव के चरण दूर से नम्र हुए इन्द्रों के मुकुटों के अग्रभाग में लगे रत्नों की किरणों से शोभित हैं जो प्रस्वेद ताप और मल से मुक्त हैं उन जिनदेव का मैं भक्ति पूर्वक उत्कृष्ट जल से अनेकानेकबार अभिषेक करता हूँ। अनादिकालीन कर्मों का क्षय हो इस हेतु से करता हूँ।(जल से अभिषेक करना।)

उत्कृष्ट वर्ण नव हेम रसाभिराम देह प्रभावलय संगमलुप्त दीप्तिम्।
धारां घृतस्य शुभगन्ध गुणानुमेयां वन्देऽर्हतां सुरभि संस्नपनोपयुक्ताम्।।13।।

उत्कृष्ट वर्ण वाले नूतन हेमरस के समान मनोरम देह के प्रभा वलय के सम्पर्क से जिसकी दीप्ति अलुप्त हो गई है और जो अपने सुगन्ध गुणों के द्वारा अनुमेय हैं ऐसे अर्हत्परमेष्ठी के अभिषेक के योग्य घृतधारा से युक्त अर्हन्तप्रभु को नमस्कार करता हूँ।
(उक्त मंत्र बोलकर घृत की धारा देना चाहिए।)

सम्पूर्ण शारद शशांक मरीचि जाल, स्यन्दैरिवात्म यशसा मिव सुप्रवाहैः।
क्षीरैर्जिनाः शुचितरै रभिषिंच मानाः संपादयन्तु मम चित्त समीहितानि।।14।।

यह शरत्कालीन पूर्णमासी के चन्द्र किरण के समान झरना ही है। अपने यश का प्रवाह ही है ऐसे पवित्र नाना प्रकार के दुग्ध से अभिषिक्त जिनदेव मेरे चित्त के समीहितों को सम्पादित करें।
(उक्त मंत्र बोलकर दूध से अभिषेक करें)

दुग्धाब्धि वीचि चयसंचित फेनराशि पाण्डुत्व कांति मव धीरयतामतीव।
दध्नांगता जिनपतेः प्रतिमां सुधारा संपद्यतां सपदि वांछित सिद्धये नः।।15।।

क्षीर समुद्र के जल में उठने वाली तरंगों से संचित फेन राशि को शुक्लाभा भी जिसके सामने कुछ नहीं है ऐसी जिनप्रतिमा पर छोड़ी गयी दही की धारा हम लोगों की इष्ट सिद्धि को तत्काल सम्पादित करे। (उक्त मंत्र बोलकर दही की धारा करें)

भक्त्या ललाट तटदेश निवेशितोच्चैः हस्तैश्च्युता सुरवरासुर मर्त्यनाथैः।
तत्काल पीलित महेक्षुरसस्य धारा सद्यः पुनातु जिनबिम्ब गतैवयुष्मान् ।।16।।

जिन्होंने अपने हाथ उठाकर ललाट तट देश में अंजलिबद्ध किये हैं ऐसे सुरासुर नरेंद्रों के द्वारा जिन प्रतिमा पर छोड़ी गयी तत्काल पेलकर निकाले गये इक्षु रस की धारा तुम लोगों को शीघ्र ही पवित्र करे।। (उक्त मंत्र बोलकर इक्षुरस की धारा करना चाहिए)

संस्नापितस्य घृत दुग्ध दधीक्षुवाहैः सर्वाभिरौषधिभिरर्हत उज्ज्वलाभिः।
उद्वर्तितस्य विदधाम्यभिषेक मेला कालेय कुंकुम रसोत्कट वारि पूरैः ।।17।।

घी दूध दही और इक्षुरस से अभिषेक करने के बाद उबटन लगाकर अब मैं एला कालेय और कुंकुम के रस से मिश्रित उज्ज्वल सर्वौषधि रूप वारिपूर से जिनदेव का अभिषेक करता हूँ। (उक्त मंत्रोच्चारण कर सर्वौषधि से अभिषेक करना चाहिए।)

द्रव्यैरनल्प घनसार चतुःसमाद्यै रामोद वासित समस्त दिगन्तरालैः।
मिश्रीकृतेन पयसा जिन पुंगवानां त्रैलोक्य पावनमहं स्नपनं करोमि ।।18।।

जिनके अमोद से समस्त दिशाओं के अन्तराल सुवासित हो रहे हैं ऐसे कपूर बहुल, केशर, इलायची, जायफल, जावित्री इन चार प्रकार के सुगन्धित द्रव्यों से मिश्रित जल से मैं जिनदेव का त्रिलोक में पवित्रीभूत आत्मा को पवित्र करने वाला ऐसा अभिषेक करता हूँ। (उक्त मंत्र बोलकर सुगन्धित द्रव्यों से अभिषेक करना चाहिए।)

इष्टैर्मनोरथ शतैरिव भव्य पुंसां पूर्णैः सुवर्ण कलशै र्निःखिलावसानैः।
संसार सागर विलंघन हेतु सेतु माप्लावये त्रिभुवनैक पतिं जिनेन्द्रम्।।19।।

भव्य जीवों के सैकड़ों इष्ट मनोरथों की शोभा को धारण करने वाले सम्पूर्ण सुवर्ण कलशों से संसार रूपी समुद्र को लांघने के लिए सेतुरूप और तीन लोक के स्वामी श्री जिनदेव का मैं अन्त में अभिषेक करता हूँ। (चारों कलशों से अभिषेक करना चाहिए।)

मुक्ति श्रीवनिता करोदकमिदं पुण्यांकुरोत्पादकं।
नागेन्द्र त्रिदशेन्द्र चक्र पदवी राज्याभिषेकोदकम्।।
सम्यग्ज्ञान चरित्र दर्शनलता संवृद्धि संपादकं।
कीर्ति श्री जय साधकं तव जिन स्नानस्य गन्धोदकम् ।।20।।

हे जिनेन्द्र! आपके स्नान का गन्धोदक मुक्तिलक्ष्मी रूपी वनिता के कर के उदक के समान है। पुण्य रूपी अंकुर को उत्पन्न करने वाला है, सुरासुर नरेन्द्र के राज्यरूपी लक्ष्मी का और रत्नत्रय रूपी लता की वृद्धि का सम्पादक है तथा कीर्ति लक्ष्मी और जय का साधक है।
(इस श्लोक को पढ़कर गन्धोदक ग्रहण करें।)

प्रश्न— 749 अजैनों का होने से तथा हिंसार्थक होने से पंचामृताभिषेक नहीं करना चाहिए?

उत्तर यदि पंचामृताभिषेक अजैनों का है और हिंसा को उत्पन्न करने वाला है तो पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री कट्टर तेरपंथी थे। कांजीभक्त पं० थे फिर उन्होंने इस पंचामृताभिषेक पाठ का अर्थ क्यों किया, सम्पादन क्यों किया, सम्पादक क्यों बने और क्यों छपवाया तथा ज्ञानपीठ संस्था वाले मालिक स्वयं तेरापंथी हैं उनको भी नहीं छापना चाहिए था क्योंकि गलत का प्रचार प्रसार करना स्वयं अपने को गलत साबित करना है और पंचामृताभिषेक सही है तो उसकी निन्दा करन बुराई बताना बन्द करो पंचामृत अभिषेक करना है तो करो या मत करो पर नीचगोत्र का बन्ध मत करो क्योंकि शास्त्र का अवर्णवाद करने से देव और गुरु का भी अवर्णवाद हो जाता है। जिससे अनंत संसार में भ्रमण कराने वाला ऐसा मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय का आश्रवबंध होता है।

प्रश्न— 750—51 शान्तिधारा किसे कहते हैं? क्यों करना चाहिए?

उत्तर पंचपरमेष्ठी वाचक बीजाक्षरों का और नवदेतवताओं के नामों का उच्चारण कर जिनप्रतिमा के मस्तिक्स पर शुद्ध जल से, शुद्ध दूध से धारा करने को अखण्डधारा, शान्तिधारा कहते हैं अथवा आत्मशान्ति प्राप्त करने में साधनभूत बीजाक्षरों को बोलते हुए जिनबिम्ब पर जलधारा करने को शान्तिधारा, अखण्डधारा भी कहते हैं क्योंकि सभी प्राणियों को चिरकाल तक जीवन पर्यन्त रहने

वाली शान्ति चाहिए, जिससे सुखशांति की धारा बीच में टूट न जाये, हमेशा बनी रहे यह समस्त प्राणी चाहते हैं। जिस प्रकार अनेक ऋद्धि सम्पन्न मुनियों के शरीर के मलमूत्र पसीना तथा शरीर से स्पर्शित वायु अनेक रोगों को हर लेती है इसी तरह अनेक बीजमंत्रों से, ऋद्धि मंत्रों से मन्त्रित प्रतिष्ठित मूर्ति से स्पर्शित जल गंधोदक परम औषधि रूप में होने से अनेक जन्मों के पापों को धो डालता है इसलिए शान्तिधारा मूर्ति पर ही करना चाहिए।

प्रश्न– 752–753 शान्तिधारा का क्या अर्थ है? क्या फल है? कौन करता है?

उत्तर जिन बीजाक्षरों के द्वारा आत्म तत्त्व का, आत्मानन्द का अवभासन अनुभवन हो शान्ति– कषायों के उपशम होने पर जो आत्मभाव उत्पन्न होते हैं उसका नाम शान्त और इसमें ''इ'' प्रत्यय जोड़ने से शान्ति बना और धारा के साथ मिलाने से शान्तिधारा बना अर्थात् इसका अर्थ है – कषायभाव उपशान्त रहे शान्त रहे, भावों में, आत्मा में मलिनता उत्पन्न न हो और हमेशा शान्ति निर्मलता बहती रहे यह शान्तिधारा का अर्थ हैं। पाप की हानि हो, पुण्य कर्मों का सातिशय बंध हो, रोग विकार, विघ्न बाधायें नष्ट हो, पूर्वबद्ध कर्मों की संख्यात असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा हो जिस प्रकार अकृत्रिम नदियों का जल प्रवाह कभी बिना सूखे हमेशा धारा बहती रहती है उसी प्रकार आत्मसुख शान्ति की धारा हमेशा बहती रहे या शरदपूर्णिमा की चांदनी के समान पूर्ण अखण्ड सुख शान्ति हो यही शान्तिधारा का फल है तथा अव्रती गृहस्थगण या अणुव्रती श्रावक श्राविकायें बाह्य में जलादि का आश्रय लेकर मंत्रोच्चारण पूर्वक शान्तिधारा करते हैं और मुनि बनने का, निर्विकल्पध्यान करने का सतत प्रयत्न करते हैं तथा अपनी पात्रता को बढ़ाते हैं।

शांतिधारा

ॐ नमः सिद्धेभ्यः अनंतानंत अरिहन्त और सिद्धपरमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार हो। श्री वीतरागाय नमः जिन महानात्माओं ने अपने निजात्मध्यान के बल से राग द्वेष मोह आदि 18 विकारी भावों को नष्ट किया है ऐसे वीतरागी मुनियों को नमस्कार हो। ॐ नमोऽर्हते भगवते श्रीमते श्री अनन्त चतुष्टय के स्वामी भगवन्तों को, अरिहन्तों को और सामान्य केवलियों को नमस्कार हो। श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकराय, श्री शान्तिनाथ तीर्थंकराय, श्री चतुर्विंशति तीर्थंकराय द्वादशगण परिवेष्टिताय शुक्लध्यान पवित्राय सर्वज्ञाय स्वयंभुवे सिद्धाय बुद्धाय। श्री 1008 भगवान पार्श्वनाथजी, श्री शान्तिनाथजी, श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर जो समवशरण के अंदर गंधकुटी में बारह सभाओं से युक्त, शुक्लध्यान से पवित्र, समस्त पदार्थों को और उनकी त्रिकाली सम्पूर्ण द्रव्य गुण पर्यायों को शक्ति को शक्ति रूप में और व्यक्त को व्यक्त रूप में जानने वाले हैं, स्वतः पूर्व संस्कार वश वैराग्य को प्राप्त हुए है, अतः स्वयंभू हैं, सिद्ध हैं, बुद्ध हैं। परमात्मने परमसुखाय परम उत्कृष्ट जो आत्मा हैं, अनन्त सुखी है। उनके लिए अथवा अनन्त सुख प्राप्त करने के लिए। त्रैलोक्य महीव्याप्ताय तीनों लोकों में ज्ञेयज्ञायक सम्बन्ध की अपेक्षा व्याप्त हैं अथवा लोकपूरण समुद्घात की अपेक्षा समस्त लोकाकाश में व्याप्त हैं। अनन्तसंसार चक्रपरिमर्दनाय अनन्तसंसार रूपी चक्र का मर्दन करने वालों

के लिए। **अनंतज्ञानाय अनन्तदर्शनाय अनन्तवीर्याय अनन्त सुखाय** अनंतज्ञानादि चतुष्टय को प्राप्त करने वाले **त्रैलोक्य वशंकराय** तीनों लोकों को वश में करने वाले ऐसे काम सुभट को या कर्मों को जीतने वाले **सत्यज्ञानाय** स्वभाव से उत्पन्न, क्षायिक केवलज्ञान को धारण करने वाले **सत्यब्रह्मणे** यथार्थ ब्रह्म स्वरूप आत्मा के लिए **धरणेंद्र फणा मंडल मण्डिताय** धरणेंद्र के फणों के समूह से शोभित ऐसे भगवान श्रीपार्श्वनाथ को तथा समस्त तीर्थंकर अरिहन्तों को नमस्कार हो। **मुनि आर्यिका श्रावकश्राविका प्रमुख चतुस्संघोपसर्ग विनाशाय** मुनि आर्यिका श्रावक श्राविकाओं के ऊपर उत्पन्न हुए उपसर्गों को, परीषहों को, तथा समस्त देश पर उत्पन्न हुए आतंक को विनाश करने के लिए हे जिनेन्द्र! आपकी शान्तिधारा भक्ति से करता हूँ। आपकी शान्तिधारा से **अस्माकं युष्माकं अपवादं छिंधि[2] भिंधि भिंधि** हमारा तुम्हारा और समस्त जीवों का अपमान, अपवाद छिद जाये भिद जाये। उत्तम पुरुष–हमारा स्वयं का। मध्यमपुरुष–सामने वाले का, प्रथम पुरुष या तृतीय पुरुष–अन्य समस्त प्राणियों का अपवाद, अपयश, निन्दा छिद जाये भिद जाये। **मृत्युं छिंधि[2] भिंधि[2]** असंयम युक्त अकालमरण बालबालमरण बालमरण अथवा समस्त प्रकार के मरण छिद जाये भिद जाये **अतिकामं छिंधि[2] भिंधि[2]** अत्यधिक काम वासना अथवा सांसारिक कार्यों को करने की तीव्र लालसा छिद जाये भिद जाये। **रतिकामं छिंधि भिंधि[2]** राग पूर्वक लौकिक कार्य करने की भावना छिद जाये भिद जाये अथवा सामान्य विषयप्रीति छिद जाये भिद जाये। **क्रोध मान माया लोभकषायं छिंधि[2] भिंधि[2]** क्रोधकषाय मानकषाय मायाकषाय लोभ कषाय के परिणाम छिद जाये भिद जाये। **सर्वशत्रुभयं छिंधि[2] भिंधि[2]** समस्त प्रकार से अन्तरंग और बहिरंग शत्रुओं का भय छिद जाये भिद जाये। (अनेक पुस्तकों में **सर्वशत्रुं छिंधि[2] भिंधि[2]** ऐसा पाठ है इसका अर्थ होता है समस्त शत्रुवर्ग छिद जाये भिद जाये सो यह अर्थ हिंसार्थक है क्योंकि जैनधर्म में किसी भी जीव की विराधना करना पाप माना है। फिर तो क्या शान्तिधारा का फल शत्रुओं को मारना या उसे मित्र बना लेना है? अतः यह पाठ गलत है किन्तु शुद्ध निर्दोष पाठ यह है **सर्वशत्रुभयं छिंधि[2] भिंधि[2]** जिसका अर्थ होगा समस्त शत्रुओं का भय छिद जाये भिद जाये जो अहिंसा धर्म के अनुकूल है) **सर्वोपसर्गं छिंधि[2] भिंधि[2]** सभी प्रकार के मनुष्यकृत तिर्यंचकृत देवकृत और अचेतन कृत कष्ट बाधायें उपसर्ग छिंद जायें भिद जायें। **सर्वविघ्नं छिंधि[2] भिंधि[2]** सर्व प्रकार की विध्न बाधायें, छिद जायें भिद जायें नष्ट हो जायें। **सर्वचोरभयं छिंधि[2] भिंधि[2]** समस्त चोर, डाकू, जेबकट, छापामार आदि लुटेरों का भय छिद जाये भिद जाये। **सर्वदुष्टभयं छिंधि[2] भिंधि[2]** सर्व दुष्टों का भय छिद जाये भिद जाये। **सर्वमृगारिभयं, सर्व सिंहादि भयं छिंधि[2] भिंधि[2]** सभी प्रकार के क्रूर परिणामी दुष्ट परिणामी सिंह आदि जानवरों का भय छिद जाये भिद जाये। **सर्वपरमन्त्रं छिंधि[2]भिंधि[2]** जितने भी अन्यमतियों के द्वारा, विषय कषायी जीवों के द्वारा रचित मंत्र हैं वे हिंसार्थक मन्त्र

कष्टदाई होने से मंत्र बाधायें छिद जायें भिद जायें। **सर्वात्मचक्रभयं छिंधि[2] भिंधि[2]** समस्त प्रकार के अपने ही परिवार के, सगे सम्बन्धी सेना, दास, दासी, पुत्र पुत्री आदि से उत्पन्न भय छिद जाये भिद जाये। **सर्वपरचक्रभयं छिंधि[2] भिंधि[2]** समस्त प्रकार के समाज के, गांव के, देशविदेश के निवासियों के द्वारा उत्पन्न भय छिद जाये भिद जाये। **सर्व गजाश्वगोमहिष मारीं छिंधि[2] भिंधि[2]** सर्व हाथी, घोड़ा, गाय, बैल, भैंस, बकरा आदि पालतू आजीविका वाले या ऐशआराम वाले तिर्यंच प्राणी सम्बन्धी मारी आदि असाध्य रोग बाधायें छिद जायें भिद जायें। **सर्वधान्यमारीं सर्ववृक्षमारीं सर्वगुल्ममारीं सर्वपत्रमारीं सर्व पुष्पमारीं सर्वफलमारीं छिंधि[2] भिंधि[2]** सर्व प्रकार के धान्य, वृक्ष, गुल्म, पत्र, पुष्प, फलों से सम्बन्धित मारी रोग हे प्रभु! आपकी शांतिधारा से छिद जायें भिद जायें। **सर्वराष्ट्रमारीं सर्वदेशमारीं छिंधि[2] भिंधि[2]** समस्त राष्ट्र, देश, प्रान्त, महानगर, शहर, जिला, तहसील, गांवादि जनपद संबंधी मारी रोगों का समूह छिद जाये भिद जाये। **सर्व विषमारीं छिंधि[2] भिंधि[2]** समस्त प्रकार के त्रस और स्थावर जीवों से सम्बन्धित विष से उत्पन्न मारी रोग छिद जाये भिद जाये। **सर्व वेताल शाकनी डाकनी भूतपिशाचनीभयं छिंधि[2] भिंधि[2]** सर्व प्रकार के देवों से सम्बन्धित भय तथा नीच प्राणियों से उत्पन्न भय आपकी भक्ति से छिद जाये भिद जाये। **सर्ववेदनीयं, सर्वमोहनीयं, सर्वकर्माष्टकं छिंधि[2] भिंधि[2]** सर्ववेदनीय सर्वमोहनीय सर्वप्रकार के आठों कर्म सम्बन्धी भय छिद जाये भिद जाये। **ॐ सुदर्शनमहाराजचक्रविक्रमतेजोबल शौर्य वीर्य शान्तिं कुरु कुरु** हे समस्त तीर्थंकर भगवन्त सुदर्शनमहाराज चक्र विक्रम तेज बल शौर्य वीर्यादि के धारकों में उत्पन्न हुई अशान्ति को शान्त करो शान्त करो। **सर्वजनानन्दनं कुरु[2]** सर्व बाल वृद्ध युवकों को आनन्दित करो आनन्दित करो **सर्वभव्यानन्दनं कुरु[2]** सर्वभव्य जीवों को और अभव्य जीवों को आनन्दित करो हर्षित करो **सर्व गोकुलानन्दनं कुरु[2]** सर्व गाय आदि पशु समूह को अथवा ग्वाले आदि मनुष्य समूह को अथवा समस्त विद्वान ज्ञानी पंडितों के समूह को आनन्दित करो, प्रसन्न करो। **सर्वग्राम नगर खेट कर्वट मटम्ब पत्तन द्रोण मुख संवाहानन्दनं कुरु[2]** इन ग्राम, नगर, खेट, कर्वट, मटम्ब, पत्तन, द्रोणमुख, संवाहन आदि जनपदों को आनन्दित करो, हर्षित करो **सर्वलोकानन्दनं कुरु[2]** समस्त संसारी प्रमादी प्राणियों को आनन्दित करो, प्रसन्न करो। **सर्व देशानन्दनं कुरु कुरु** सर्वदेशों को हर्षित करो, प्रसन्न करो **सर्वयजमानानन्दनं कुरु[2]** समस्त जिनभक्त यजमानों को आनन्दित करो[2]। **सर्व दुःखं हन हन दह दह पच पच कुट कुट शीघ्रंशीघ्रं कुरु[2]** सर्वदुःखों को शीघ्र ही जल्दी ही नष्ट करो[2], जलाओ[2], पचाओ[2], कूटो कूटो, चूर चूर करो, खण्ड खण्ड करो। **सर्वानन्दनं कुरु[2]** समस्त प्राणियों को प्रसन्न करो[2] **यत्सुखं त्रिषुलोकेषु व्याधि व्यसन वर्जितं। अभयं क्षेममारोग्यं स्वस्ति रस्तु विधीयते।।** तीनों लोको में जो रोग

व्यसनादि से रहित है वह सुख अभय कल्याण आरोग्य शुभ और मंगल कहा गया है। **श्री शान्तिरस्तु** भक्त भगवान से कहता है कि हे अनन्त चतुष्टय के स्वामी! हम सबको शान्ति हो। **तथास्तु** भगवान भक्त से कहते हैं कि हे भक्त! तुम सभी को शान्ति हो। **शिवमस्तु** मंगल हो **तथास्तु** हाँ मंगल हो **जयोस्तु तथास्तु** जय हो विजय हो। हाँ जय हो विजय हो। **नित्यमारोग्यमस्तु तथास्तु** सदा निरोगपना प्राप्त हो, हाँ सदा आरोग्य हो, निरोग हो। **वृद्धिरस्तु तथास्तु** रत्नत्रय की वृद्धि हो अथवा बाह्य में इष्टकार्य में सहायक साधन की वृद्धि हो, हाँ वृद्धि हो। **तुष्टिरस्तु तथास्तु** संतोष हो हाँ संतोष हो। **पुष्टिरस्तु तथास्तु** मजबूती हो पुष्टि हो, हाँ पुष्टि हो। **कांतिरस्तु तथास्तु** मेरे में कान्ति हो तेज हो, हाँ कान्ति हो। **कल्याणमस्तु तथास्तु** हित हो कल्याण हो, हाँ कल्याण हो **सुखमस्तु तथास्तु** शाश्वत आत्मसुखशान्ति हो, हाँ सुख हो। **कुलगोत्र धनधान्यं सदास्तु तथास्तु** कुल गोत्र, जाति, वंश, धन धान्य, आदि हमेशा वृद्धि को प्राप्त हो। हाँ साधन सामग्री परम्परा हमेशा वृद्धि को प्राप्त हो, सबकी वृद्धि हो। **सद्धर्म श्रीबल आयु आरोग्य ऐश्वर्य अभिवृद्धिरस्तु तथास्तु** समीचीन धर्म लौकिक धन धान्य, बल शक्ति, आयु, जीवन निरोगादि साधन सामग्री की वृद्धि हो हाँ वृद्धि हो। **चन्द्रप्रभ वासुपूज्य मल्लि वर्द्धमान पुष्पदन्त शीतल मुनिसुव्रत नेमिनाथ पार्श्वनाथ इत्यनेन मन्त्रेण नवग्रह शान्त्यर्थं गंधोदक धारा वर्षणम्** शान्तिकारक हे नव जिनेन्द्र! चन्द्रप्रभ, वासुपूज्य, मल्लिनाथ, वर्द्धमान, पुष्पदन्त, शीतलनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ पूर्वकृत पापकर्मरूप नवग्रहों की शान्ति के लिए इस शांतिमंत्र के द्वारा सुगन्धित जल से या दूध से धारा करता हूँ। **इत्यलम्** शांतिमंत्र का अर्थ पूर्ण हुआ।

प्रश्न– 754 क्या सूर्य चन्द्र आदि नवग्रहों की शान्ति के लिए शान्तिधारा करते हैं?

उत्तर नहीं, उन ज्योतिषी देवों में उत्पन्न हुई बाधाओं की शान्ति के लिए शान्तिधारा नहीं की जाती है क्योंकि जो बीमार है उसे ही दवाई खिलाई जाती है। जो भूखा है उसे ही भोजन कराया जाता है। मनुष्य के समान उन ज्योतिषी देवों के बीमारी नहीं होती है कि उनकी शान्ति के लिए शान्तिधारा की जाय। दूसरों के लिए जैनों का धर्माचरण, धर्मानुष्ठान नहीं किया जाता है किन्तु स्वयं की शान्ति के लिए धर्माचरण पालन किये जाते हैं। हाँलाकि स्वचतुष्टय की अपेक्षा प्रत्येक प्राणी अपने अपने ही कर्मों का फल भोगते हैं फिर भी 'अधिकरणं जीवाजीवाः' आश्रव बंध के लिए जीव अजीव आधार होने से कथंचित् परस्पर में एकदूसरे की कर्मफलों को भोगते हैं।

प्रश्न– 755 उन ग्रहों की शान्ति के लिए नहीं तो फिर किसकी शान्ति के लिए शान्तिधारा की जाती है?

उत्तर उन ग्रहों की शान्ति के लिए शान्तिधारा नहीं करते हैं किन्तु उन देवों के लेश्या कषाय आदि के समान पूर्वकृत दुष्कर्मों के उदय में आने पर तदनुकूल उपयोग को परिणमाकर जो मन में नाना तरह की आकुलता होती है, घबराहट होती है, उसकी शान्ति के लिए, क्षय करने के लिए

शान्तिधारा करते हैं अथवा भविष्य में कभी भी तकलीफ न हो, कष्ट न हो पूर्वकृत पाप कर्म संक्रमण कर जाय उदीरणा रूप से क्षय हो जाये इसलिए शान्तिधारा करते हैं क्योंकि समस्त प्राणियों को जीवन पर्यन्त और भवभवान्तर में सुखशान्ति चाहिए ऐसी भावना सबकी होती है और इसी भावना के अनुसार सभी प्राणी पुरुषार्थ भी करते हैं

प्रश्न– 756 तीर्थंकर प्रभु वीतरागी हैं फिर भी वे दूसरों के दुःखों को कैसे छेद सकते हैं या सुखी कैसे कर सकते हैं ?

उत्तर तीर्थंकर अरिहन्त प्रभु अपने आपके लिए वीतरागी हैं किन्तु भव्यजीव उनके माध्यम से भक्ति कर अपने पूर्वकृत पाप कर्मों के स्थिति अनुभागबन्ध को छेदकर पुण्य को बढ़ाकर कार्य सफल कर लेते हैं अर्थात् पुण्य से, भक्ति से पाप कर्म को, कष्टों को छेद डालते हैं। जिस प्रकार धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य ये स्वयं में निष्क्रिय, निर्लेप, निर्विकार, निराकार, निरूपम होने पर भी संसारी जीवों की क्रिया में सहायक होते हैं। उसी तरह तीर्थंकर अरिहन्त वीतरागी प्रभु संसारी प्राणियों के हिताहित में सहायक होते हैं, निमित्त होते हैं, सहकारी कारण होते हैं।

प्रश्न– 757 तीर्थंकर प्रभु हित में सहायक हैं यह तो सर्वत्र पढ़ा सुना किंतु अहित में सहायक कैसे हो सकते हैं?

उत्तर जिस प्रकार जल से कीचड़ उत्पन्न होता है और जल से ही कीचड़ धुल जाता है उसी तरह तीर्थंकरप्रभु के माध्यम से सम्यग्दर्शन की, रत्नत्रय की प्राप्ति होती है ठीक इसीतरह तीर्थंकर सर्वज्ञ अरिहन्त के माध्यम से मिथ्यात्वकर्म का आश्रवबन्ध होता है। कैसे? इन्हीं केवलियों के चरण सान्निध्य में ही तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध, क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है तो इन्हीं केवलियों में दोषों का असदारोपण करने से मिथ्यादर्शन का आश्रव बन्ध होता है। इसीलिए आ० श्री समन्तभद्रजी ने र० श्रा० में कहा है कि इस जीव का तीनों लोकों में और तीनों कालों में सम्यग्दर्शन के समान कोई दूसरा हितकारी नहीं है तथा मिथ्यादर्शन के समान कोई दूसरा अहितकारी नहीं है। न सम्यक्त्व समं किंचित् त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि। श्रेयोश्रेयश्च मिथ्यात्व समं नान्यत्तनूभृताम्।।र० श्रा०।। केवलि श्रुत संघ धर्म देवावर्णवादो दर्शन मोहस्य मिथ्यात्वकर्मस्य। त.सू. अ.6 सू.13 इस प्रकार महान अनर्थकारी मिथ्यात्व कर्म है। इस कारण सम्यक्त्व और मिथ्यात्व की प्राप्ति तीर्थंकर सर्वज्ञप्रभु के माध्यम से होती है इसलिए कहा है कि ये प्रभु अथवा पंचपरमेष्ठी अथवा नवदेवताओं के माध्यम से अनुकूल परिणमन करने पर हित और प्रतिकूल परिणमन करने पर अहित होता है। उदाहरण श्री आदिनाथ भगवान के उपदेश को सुनकर मारीचकुमार भरत चक्रवर्ती का पुत्र श्री आदिनाथ का पोता भटक गया।

प्रश्न– 758 आजकल कोई शान्तिधारा थाली में, कोई यंत्र में, कोई मूर्ति पर करते हैं सो ठीक है क्या?

उत्तर उन सभी लोगों के विचार अपने अपने ढंग से सही हैं क्योंकि अर्पितानर्पित सिद्धेः त.सू. 36 अ. 5 इस सूत्रार्थ को हृदय में धारण करने पर विरोध जैसा मालुम पड़ने पर भी विषय आसानी

से समझ में आ जाता है, समस्या सुलझ जाती है, जिससे कषायों की उत्पत्ति नहीं होती है किन्तु यहाँ पर विशेष विचार करना है कि सिर्फ शान्तिधारा यंत्र पर करना तथा शेष कलश जिनबिम्ब पर करना यह कैसा न्याय? क्या यन्त्र के मंत्र अलग हैं और मूर्ति के अभिषेक के मंत्र, अलग अलग हैं? बीजाक्षरों का भाव अर्थ अलग अलग है? सभी मंत्रों का, बीजाक्षरों का फल एकमात्र आत्म शुद्धि करना, कर्मो का क्षय करना हैं मंत्रों का चिन्तन पदस्थ धर्मध्यान कहा है। कष्ट से बचना बचाना अपायविचयधर्मध्यान है और दुःखों से कैसे छूटे, कष्ट से कैसे बचे, संसार बन्धन से कैसे और किस उपाय से छुटकारा प्राप्त हो यह अपायविचय धर्मध्यान है। यह कष्ट या बीमारी इस कर्म का फल है या उस कर्म का फल है ऐसा चिन्तन विपाकविचय धर्मध्यान है तथा इस कर्म का फल मेरे को प्राप्त हो यह निदान आर्तध्यान है। कर्म के फल का विचार करना आर्तध्यान नहीं किन्तु धर्मध्यान है क्योंकि आर्तध्यान में विषय भोगों को प्राप्त करने की आकांक्षा होती है। अपायविचय और पदस्थ धर्मध्यान मानकर शेष मंत्रों के समान श्री शान्तिधारा भी जिनबिम्ब पर ही करना चाहिए क्योंकि धर्मध्यान का फल कर्मों को काटना है। त.सू. अ. 9 सू. 29।

प्रश्न– 759–60 आह्वानन कर्म किसे कहते हैं? क्यों करना चाहिए?

उत्तर अपने सम्मुख बुलाने को आह्वानन कहते हैं। यदि किसी का आदर सम्मान करना है तो उसे बुलाना होगा तभी तो उसका आदर सम्मान करोगे जैसे तुम्हारा कोई आदर सम्मान करना चाहता है और आप घर में रहें तो सभा में आदर सम्मान शिर रहित धड़ के समान है, दूल्हा रहित बरात के समान है, अतः पूजा आदर सम्मान के लिए पूज्यों को बुलाना परम आवश्यक है तभी तो वे सभी पूजायें किसी भी भाषा में संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती, मराठी, कन्नड़ी आदि में हैं और पूजायें बनाने वाले दिगम्बराचार्य, भट्टारक, आर्यिका, त्यागीव्रती, पंडित, कवि हों, उन्होंने सर्वप्रथम आह्वानन स्थापना और सन्निधिकरण का छन्द पद्य बनाकर ही पूजाष्टक प्रारम्भ किया है। आजतक देशी विदेशी भाषाओं में ऐसी पूजायें नहीं बनी कि जिसमें आह्वाननादि का छंद पद्य न हो अतः आह्वानन के बाद ही आदर सम्मान किया जाता है इसके बिना नहीं। जो कहते हैं कि भगवान वीतरागी हैं वे कहीं न आते जाते हैं, न करता धरता हैं, न हरता हैं उन वक्ताओं का यह कथन अपने ही पैर पर कुठाराघात करने वाला है। यदि सर्वथा सत्य माना जाय तो भक्तिपूजा, स्तोत्रादि सब व्यर्थ ठहरेंगे, मिथ्या कहलायेंगे किन्तु ऐसा नहीं है। सार्थक है, सफल है, व्यर्थ नहीं है। ये कार्य कथंचित् सिद्ध भगवन्तों में लागू पड़ते हैं, अरिहन्त, आचार्य, उपाध्याय, साधु परमेष्ठियों में नहीं। क्या विशेष कार्यक्रम प्रतिष्ठाादि कार्य या चातुर्मास के लिए चतुर्विध संघ को आमन्त्रण नहीं देते हैं, नहीं बुलाते हैं तो वे नहीं आते? आते ही हैं, इसी तरह जिनमूर्ति को जो चल है उसको उठाते हैं, रथ में, विमान में, पालकी में विराजमान कर ले जाते हैं। जैसे धर्मादि चार द्रव्य अचल होने पर भी जीव का गमनागमन स्थिति और परिवर्तन में सहायक होते हैं इसी तरह सिद्ध परमेष्ठी भी हमारे हितमें सहायक होते हैं। अचल मूर्ति को उठाकर कहीं भी नहीं ले जाते हैं जैसे कर्नाटक के बाहुबली की, बावनगजा के आदिनाथजी आदि अचल बिंबों को संकल्प पूर्वक बुलाकर अपने स्थान में ले आते हैं। भगवान न आते हैं, न जाते हैं, अकर्ता हैं, अभोक्ता हैं आदि बातें जैनों में जबसे चलने लगी हैं तभी से परमेष्ठियों के प्रति भक्तिभाव की

भावना में कमी होने से मोक्षमार्ग बिगड़ गया अथवा वर्तमान में साधकों ने, वक्ताओं ने नय विवक्षा को न समझकर शास्त्र को शस्त्र बना डाला इसी कारण व्यवहार सम्यक्त्व की हानि होने से निश्चय सम्यक्त्व की गन्ध भी नहीं आई **'इतो भ्रष्टः ततो भ्रष्टः।'** कहावत चरितार्थ हुई। ऐसे प्राणियों को मुनि और श्रावक धर्म का आनन्द नहीं आया अछूते रहे, अतः निषेध करने वालों के साथ प्रयोग कर समझ लो कि विशेष कार्यक्रमों में बुलाये विना इनका सम्मान करने पर इनको मन में कितना धक्का लगेगा मालुम हो जायेगा।

प्रश्न– 761 जो निषेध करते हैं उनके साथ किस प्रकार से परीक्षा करना चाहिए अथवा यह कैसे समझे कि ये वक्ता सत्यवादी हैं?

उत्तर किसी कार्यक्रम में उनको पूंछे बिना, निमन्त्रण दिये बिना, पत्रिका में नाम फोटू दिये बिना उनके नाम से कार्य प्रारम्भ कर दो तथा कदाचित् निमन्त्रण देकर, बुलाकर, बैठाकर भी भोजन नास्ता पानी मत दो अथवा सामने थाली में भोजन सामग्री रख दो भोजन करने को मत कहो फिर देखो क्या निष्कर्ष निकलता है, मालुम हो जायेगा। जिस प्रकार का नियम अरिहन्तादि के लिए लगाते हो वे नियम क्या तम्हारे लिए लागू नहीं हो सकते हैं? जैसे विशाल बरगद का वृक्ष छाया नहीं दे सकता है तो क्या खजूर का पेड़ छाया दे सकता है? यदि आप पर के कर्ता, धर्ता, हर्ता नहीं हैं तो आपका भी कोई कर्तादि नहीं होना चाहिए। फिर यह अपकार या उपकार क्यों? मेरी भावना में पढ़ते हैं कि 'होऊं नहीं कृतघ्न कभी मैं' मेरे ऊपर यदि किसी ने उपकार किया है तो मैं उसको भूल नहीं जाऊं कृतघ्नी न हो जाऊं। तब उस समय तो आपको विकल्प नहीं आना चाहिए कि मेरा आदर सम्मान क्यों नहीं किया तथा यदि आप कर्ता धर्ता हर्ता आदि हैं तो प्रत्येक जीवों के अवस्था भेद से नियम अलग अलग हुए। तब कोई सिद्धान्त ही नहीं बन सकता और ऐसा होने पर मिथ्यात्व कर्म का तथा तीर्थंकर प्रकृति का आश्रव बन्ध नहीं हो सकता किंतु केवली भगवान के समक्ष या असमक्ष में ही तीर्थंकर प्रकृति के बंध अबन्ध का अन्वय व्यतिरेक का नियम स्वीकार किया गया है। इसी तरह मिथ्यात्व कर्म के आश्रव के हेतुओं में प्रथम हेतु केवली के अवर्णवाद को गिनाया है।

प्रश्न– 762 पंडित सेठ लोग बोलते हैं कि हम लोग सरागी हैं, गृहस्थ हैं आदर सम्मान चाहिए किन्तु वे तो वीतरागी हैं, जब वो गमनागमन नहीं करते हैं तो उनको बुलाने की क्या आवश्यकता है?

उत्तर भगवान अपने आपमें वीतरागी हैं जिस प्रकार धर्मादि द्रव्य स्वयं गमनागमन नहीं करते हैं पर जीव और पुद्गलों को गमनागमन में सहायक होते हैं उसी प्रकार सिद्ध भगवंत पर पदार्थों के कर्ता धर्ता हर्ता नहीं है, स्वयं गमनागमन नहीं करते हैं फिर भी संसारी प्राणियों को पुण्यपाप के लिए, स्वर्ग नरक में गमनागमन के लिए सहायक होते हैं। एक दूसरे के बिना निमित्त नैमित्तिक कार्य बन नहीं सकते, चाहे वे कार्य लौकिक हों या अलौकिक, अतः भगवान वीतरागी होने पर भी भव्य जीवों को मोक्ष प्राप्त करने के लिए या मोक्षमार्ग में प्रवेश करने के लिए, प्राप्त कराने में कारण हैं, उनके बिना धर्मदेशना, क्षायिक सम्यग्दर्शन, तीर्थंकर प्रकृति का आश्रवबन्ध हो नहीं सकता है।

मोक्ष और मोक्षमार्ग में गमन प्रवेश हो नहीं सकता। अतः संकल्प पूर्वक पूजा पाठ में स्तोत्र आदि में भगवन्तों को कर्ताधर्ता हर्ता गमनागमन करने वाला बताया जाता है क्योंकि मार्गदर्शन दिया, उपदेश दिया आदि का उपकार नहीं माना तो कृतघ्नीपने का प्रसंग आता है जबकि महापुरुष कितने भी उपकारी हो उनका उपकार नहीं भूलते अथवा मुनिजन गृहस्थ के समान सरागी नहीं हैं और केवली भगवन्त के समान वीतरागी नहीं हैं किन्तु मध्य की अवस्था है श्रावक के घर बिना बुलाये नहीं जायेंगे, न जाते हैं तथा बुलाने के बाद में भी आहार की शुद्धि बोले बिना, ग्रास दिये बिना आहार ग्रहण नहीं करते हैं क्योंकि मुनिजन दूसरों के द्वारा दिये गये आहार को ग्रहण करते हैं ऐसी प्रतिज्ञा मुनियों की होती है। नवधा भक्ति के बिना श्रावकों को पुण्य की प्राप्ति कैसे हो सकती हैं और मुनिजन भी नवधा भक्ति के बिना आहार नहीं लेते। विनयगुण की विराधना करने के लिए गृहस्थों ने कहीं का कहीं सरागी वीतरागी भेदकर, उल्टी कुतर्कणा कर विनय गुण से, कर्तव्य पथ से दूर हट गये, आत्मवंचना की। आत्म गुणों को बढ़ाने के लिए, अरिहन्तादि भगवन्तों का आह्वानन् करना ही चाहिए। बिना बुलाये पूजा किसकी?

प्रश्न– 763 उपचार विनय सरागियों की करना चाहिए या वीतरागियों की?

उत्तर **रत्नत्रय रहित संसारमार्गी सरागियों की विनय लोकविनय है, वैनयिक मिथ्यात्व है तथा रत्नत्रय सहित संयम रहित सरागियों की और संयम सहित वीतरागियों की विनय उपचार विनय है, सम्यक्विनय है। उपचार विनय मानसिक, वाचनिक, कायिक विनय के भेद से तीन प्रकार की है। जो अभिषेक पूजन में, दान में, समाचार विधि में पात्रों के भेद से उपचार विनय यथायोग्य की जाती है। अतः आत्मसाधना के लिए लोकोत्तर विनय का और व्यवहारिक जीवन सुरक्षित व्यतीत करने के लिए लौकिक विनय का पालन करना चाहिए वैनयिक मिथ्यात्व का नहीं।**

प्रश्न– 764–65 सन्निधिकरण किसे कहते हैं? क्यों किया जाता है?

उत्तर **बुलाने के साथ साथ हृदय में न बैठाया और बुलाकर भी दूर बैठाया तब मन कैसे पवित्र होगा? जैसे लोक में देखा जाता है कि जो अत्यन्त निकट सम्बन्धी होता है तो उसे बुलाने पर निकट में आने पर गले से लगा लेते हैं, अपने पास ही बैठाकर वार्तालाप, सुख समाचार पूंछते हैं और दूर का सम्बन्ध होने से, उनके प्रति गाढ़ प्रेम न होने से दूर ही रखते हैं, दूर से वार्तालाप करते हैं तथा गाढ़ प्रेम न होने से उसे एकदम निकट नजदीक बुलाकर, बैठाकर वार्तालाप नहीं करते हैं। तभी तो विनयपाठ में बोलते हैं।– 'तुम बिन मैं व्याकुल भयो जैसे जलबिन मीन' इन लाईनों पर थोड़ा विचार करो तो मालुम होगा कि देखो पानी और मछली में कितना अन्तर है। इसी प्रकार भक्त और भगवान में, पूज्य और पूजक में कितना अन्तर होना चहिए। इसलिए अत्यन्त निकट बुलाकर, हृदय में स्थान देने को सन्निधिकरण कहते हैं। पुनः देखो जैसे जैसे बालक माँ के निकट आता है वैसे वैसे बालक का माँ के प्रति उत्साह बढ़ता जाता है और निकट में या गोद में आने पर दोनों के प्यार में असीमपना आ जाता है। अत्यधिक उत्साह बढ़ता जाता है इसलिए आह्वानन के बाद में सन्निधिकरण करना परमावश्यक है, इसके बिना परिणाम विशुद्ध नहीं हो सकते हैं।**

प्रश्न— 766—67 स्थापना किसे कहते हैं? क्यों करना चाहिए?

उत्तर बैठने के लिए, ठहरने के लिए स्थान देने को, जगह देने को स्थापना कहते हैं। यदि किसीको बुलाया है तो बैठने का स्थान भी दो तभी तो आदर सम्मान करोगे, बिना बैठाये कैसे आदर सम्मान करोगे? आपको कोई बुलाये और बैठने को स्थान न दे, बैठने को न कहे तब आपको कैसा लगेगा? यदि कहो कि हम सरागी है, विषयकषायी हैं अतः हमको बुरा लगता है किन्तु भगवान वीतरागी हैं उन्हें भला बुरा कैसे लगेगा? सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि मिथ्यात्व कर्म और अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, कषाय के आश्रव का वर्णन करते समय आचार्यों ने केवली के अवर्णवाद का फिर शास्त्र और गुरु के अवर्णवाद का कथन किया है। इस अवर्णवाद से झूठे दोषों का आरोपण करने से मिथ्यात्वादि सप्त प्रकृतियों का आश्रव होता है अतः आदर सम्मान से भगवान प्रसन्न नहीं होते हैं तथा अपमान से दुःखी नहीं होते हैं किन्तु आपको स्वर्ग और मोक्ष में जाने के लिए या नरक निगोद पशु पर्याय में जाने के लिए नाव के समान साधनभूत हैं। यदि उनकी स्थापना करने से, पूजापाठ करने से, पाप की हानि, पुण्य की वृद्धि और सम्यक्त्व की उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि नहीं होती तो विराधना करने से, अवर्णवाद करने से दर्शनमोह कर्म का आश्रव बंध, पाप की वृद्धि, पुण्य की हानि, संसार में अधःपतन नहीं होना चाहिए किन्तु होता अवश्य है। जो कर्मसिद्धान्त रूपी शास्त्र से, अध्यात्म ग्रन्थों से जाना जाता है अतः उर्ध्वगमन प्राप्त करने के लिए सम्यक्स्थापना करना परम आवश्यक है।

प्रश्न— 768—69 जिनबिम्ब वेदी पर विराजमान हैं फिर पुनः उनकी स्थापना क्यों करना? स्थापना की पुनःस्थापना क्या योग्य है या अयोग्य?

उत्तर दोष नहीं है, किन्तु गुण ही है। जिनमूर्ति अभी वेदीपर विराजमान हैं, अभी आपके हृदय में विराजमान नहीं हैं अतः मंगल द्रव्य स्वरूप ठोना में, स्थापना में स्थापनानिक्षेप के द्वारा वनस्पति के फूलों से अथवा लौंगों से, चांदी के पुष्पों से, पीले चावलों से मन को एकाग्र कर, स्थिरकर अपने हृदय में विराजमान करना चाहिए। कदाचित् आपके कथनानुसार जब जिनेन्द्र प्रतिमा वेदी पर विराजमान है तो उनकी क्या स्थापना करना? इस प्रश्नपर ही प्रश्न है कि अकृत्रिम चैत्य और चैत्यालयों की, सिद्धों की, दूरवर्ती सिद्धक्षेत्रों की, अतिशयक्षेत्रों की पूजा कैसे करोगे? तुम वहाँ जा नहीं सकते और वे यहाँ आ नहीं सकते फिर उनकी पूजा आराधना नहीं करना चाहिए। पर सर्वत्र जैनसमाज इन क्षेत्रों की अभिषेक, पूजा, आरती, जपतप आदि सब करते हैं क्योंकि आचार्यों ने उक्त क्षेत्रों की पूजायें बनाई है और सर्वत्र आज्ञाकारी श्रावकगण अभिषेक पूजा करते ही है। वह स्थापना भी यहाँ अतदाकार रूप में होती है तथा कुछ आचार्यों ने अतदाकार स्थापना का निषेध किया है। आप यदि अकृत्रिम तथा कृत्रिम चैत्य चैत्यालयों की अतदाकार स्थापना कर सम्यक्त्ववर्धिनी क्रिया को पालते हो सो ठीक है तब यहाँ पर भी वेदी में विराजमान प्रतिमा को स्थापना निक्षेपरूपी संकल्प के द्वारा अपने हृदयरूपी कमल में विराजमान कर अभिषेक पूजा भक्ति आदि करना चाहिए। अतः तदाकार और अतदाकार दोनों प्रकार की स्थापना पूर्वक भक्ति कर पाप घटाकर, पुण्य को बढ़ाकर संयम प्राप्त करने के योग्य आत्मशुद्धि कर लेना चाहिए।

प्रश्न– 770 जब आचार्यों ने अतदाकार स्थापना का निषेध किया है और यहाँ पर अतदाकार स्थापना का आप समर्थन कर रहे हैं अतः यह आगम के विरुद्ध होने के कारण समीचीन कैसे माना जा सकता है?

उत्तर जिन आचार्यों ने अतदाकार स्थापना का निषेध किया है और वो ही आचार्य अतदाकार स्थापना का कथन कर रहे हैं यदि नहीं कर रहे हैं तो अकृत्रिम जिन जिनालयों की पूजा का विधान क्यों किया? इस प्रकार एक ही आचार्य दो प्रकार की बातें कह रहे हैं तो कोई अपेक्षा विशेष होना चाहिए और वह अपेक्षा है कि आम जनता के सामने नारियल सुपारी चावल पाषाण आदि में स्थापना कर पूजने लगे तो वो उसी को भगवान मानने लगेंगे या जो नासमझ बालक है वह भी उसी को भगवान मानकर पूजने लगेगा यथार्थ तत्त्व को भूल जायेगा अतः नासमझ आम जनता के सामने अतदाकार स्थापना का निषेध किया है, सर्वथा नहीं। यदि सर्वथा निषेध करते तो सिद्धों की, अकृत्रिम चैत्य चैत्यालयों की, पंचमेरु, नंदीश्वर द्वीप की पूजा आराधना कैसे हो सकती थी या हो सकती है? फिर अकृत्रिम चैत्यालयों की तथा दूरवर्ती क्षेत्रों की, पूजाओं की रचना क्यों की? इससे सिद्ध है कि अतदाकार स्थापना का सर्वथा निषेध नहीं किया है किन्तु कथंचित् समझना जैसे आजकल क्षेत्रपाल की प्रतिमा विक्रिया के रूप में स्थापना की है, वास्तविक रूप में नहीं की। वास्तविक रूप में करते तो तीर्थंकरों, शलाका, महापुरुषों के समचतुरस्रसंस्थान के समान क्षेत्रपाल व्यन्तर देवों की स्थापना करना चाहिये था परन्तु ऐसा न कर विक्रिया रूप में स्थापना करने से अन्यमती पाखण्डी लोग ये हमारे हैं, पूज्य आराध्य देव हैं ऐसा कहकर मन्दिरों पर आक्रमणकर हड़प कर लिए तथा प्राचीन मंदिरों में, प्रतिमाओं में, यक्षयक्षणी देव देवियों की प्रतिमायें स्थापित की है तब कुछ नामधारी जिनका देव शास्त्र गुरु पर यथार्थ विश्वास नहीं है नासमझ दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के आम्नाय के वशीभूत होकर अहंकारपूर्वक हम इनको नहीं पूजते हैं ये हमारे आराध्य नहीं, हमारे आराध्य देव तो वीतरागी आदि कहकर उन स्थापना निक्षेप से स्थापित प्रतिमाओं को अपमानित करने लगे, तिरस्कार करने लगे तब श्वेताम्बर भाई या अन्यमती मनुष्य लालसा पूर्वक कहने लगे कि यह मंदिर हमारा है, मूर्ति हमारी है जैनों की नहीं आदि विचार कर बलात् मंदिरों में कब्जाकर अधिकार करने लगे और कर भी लिए तथा शिल्पकारों ने हिन्दू शास्त्रानुसार जिनमन्दिरों की रचना की है या मुसलमानों के मस्जिद के आकार मन्दिरों की रचना की तब हिन्दुओं और मुसलमानों ने बलात् मंदिर और मूर्तियों को तोड़कर हिन्दू मन्दिर या मस्जिद बना लिया तथा अतदाकार स्थापना के समय अबोध बालक साथ में है वह भेदभाव को समझता नहीं और हमेशा अपने बच्चों के सामने मूर्ति के बिना हर समय अतदाकार स्थापना की तो वह अबोध बालक उसी समय वह अतदाकार स्थापना को ही सब कुछ मानकर, सत्य मानकर सन्तुष्ट होगा और आगे चलकर तदाकार स्थापना को नकार कर विरोध करने लगेगा जैसे घर में बड़े को शेष सदस्यगण जिस नाम से पुकारते हैं अनुमान कर उसी नाम से उसके अबोध बालक बालिकायें काका, चाचा, मामा, फूफा, ताऊ आदि कहकर पुकारते हैं। अतः आम जनता के सामने अतदाकार स्थापना का निषेध किया और अंदर श्रावक श्राविकाओं से करने की स्वीकृति प्रदान की अंदर समर्थन किया है।

प्रश्न– 771 बाहर निषेधकर अन्दर समर्थन किया यह तो मायाचार ठग विद्या कहलाई जो अयोग्य क्यों नहीं है?

उत्तर मायाचार नहीं है, किन्तु सदाचार है। मायाचार में तो दूसरों को धोके में डाला जाता है, कष्ट में डाला जाता है स्वयं के मन में विषय भोगों की, पूजा सम्मान की दुर्भावना रहती है, आर्तध्यान, रौद्रध्यान, कृष्ण, नील और कापोत ये तीन अशुभ लेश्यायें, आहारादि चार या छह संज्ञायें रहती हैं किन्तु यहाँ ठगने का परिणाम नहीं है यहाँ तो सबकी रक्षा का हेतु है। सामने वाले में मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषाय का आश्रव बन्ध न हो तथा स्वयं के धर्मायतन की रक्षा हो व्यवहार धर्म अच्छी तरह से चलता रहे, स्वयं तथा अहिंसावादी समाज में क्षोभ पैदा न हो, संकट उत्पन्न न हो। अतः इस प्रकार का प्रयोग सदाचार है, सदाचार की रक्षा करना है तथा ठगने का संकट में डालने का हेतु न होने से मायाचार नहीं छलकपट नहीं है किन्तु विवेक है।

प्रश्न– 772 अहिंसावादी समाज में क्षोभ कैसे पैदा होता है?

उत्तर धर्मायतन के ध्वंस किये जाने पर अब धर्मसाधन कहाँ पर स्थिर रहकर करेंगे? षडावश्यकों का पालन कैसे करेंगे? धर्मायतन का अविनय हुआ इन जीवों का पाप कैसे दूर हो आदि विचारों से धर्मात्माओं में क्षोभ पैदा हो जाता है जो प्रत्यक्ष देखा जा रहा है।

प्रश्न– 773 वेदी में मूर्ति विराजमान है फिर स्थापना क्यों करना तथा ऊपर से नीचे लाना क्या न्याय है ?

उत्तर जिनमूर्ति वेदीपर विराजमान है, अभी आप के हृदय में, मन में विराजमान नहीं है और जब तक मन में जिनेन्द्र भगवान स्थान न पायेंगे, न विराजमान होंगे तब तक आपके मन की, आत्मा की शुद्धि नहीं हो सकती अतः आत्म शुद्धि के लिए स्थापना करना ही चाहिए जैसे भोजन करने से ही तृप्ति, तुष्टि, पुष्टि होती है यदि भोजन नहीं किया तो कहाँ से तुष्टि पुष्टि होगी अतः स्थापना करना अन्याय नहीं है तथा यदि मूर्ति को ऊपर से नीचे लाना अन्याय दिख रहा है तो अकृत्रिम जिन जिनालयों को, सिद्ध भगवन्तों को, ऊर्ध्वलोक से मध्यलोक में ले आना, भूतकाल की या त्रिकाली चौबीसियों को, पंचपरमेष्ठियों को मध्यलोक में क्यों ले आना? आचार्य उपाध्याय साधु अपने ध्यानाध्ययन में स्थिर हैं, अपने स्वभाव में स्थिर हैं, ध्यान में मग्न हैं उनको भी पूजा पाठ में क्यों बुलाना? प्रतिष्ठाओं में विधि विधानों में क्यों बुलाना? उनके सामने नाचगान क्यों करना? क्यों स्थापना निक्षेप से स्थापित करना आदि सब अन्याय कहलायेगा?

प्रश्न– 774 हमारे हृदय में भगवन्त सदा विराजमान हैं अतः स्थापना क्यों करना?

उत्तर नहीं, आपके हृदय में सतत भगवान विराजमान नहीं हैं यदि हमेशा आपके हृदय में भगवान विराजमान हैं तो विषय कषायों में, वैर विरोध में, खानेपीने में, वस्त्राभूषण में, आजीविका के व्यापारों में, हंसी मजाक में, आरम्भ परिग्रह में, शृंगार अंलकारों में, बाह्य व्यापारों में चर्या प्रवृत्ति क्यों होती है? जहाँ दीपक जलता है, प्रकाशित हो रहा है वहाँ उस सीमित क्षेत्र में क्या अन्ध ाकार रह सकता है? अतः एक समय में एक साथ एकस्थान में अन्धकार और प्रकाश रह नहीं सकते हैं ''जो अरिहन्त भगति उर आने। सो जन विषयकषाय न जानै।।

ज्ञानाभ्यास करै मन माहीं। ताके मोह महातमनाहीं।।'' सोलह कारण भावना की जयमाला। इसी तरह शुभ परिणाम और अशुभ परिणाम एक समय में एक जीव के एक साथ एक ही स्थान में रह नहीं सकते हैं। कहावत है– ''दो मुख सुई न सीवे कंथा। दो मुखपंथी चले न पन्था।। दोई काम न होय सयाने। विषय भोग अरु मोक्ष हू जाने।।'' एक साथ एक समय में एक जीव के विषय भोग भोगना और मोक्ष में जाना असम्भव है जैसे सुई दोनों तरफ से एक साथ एक समय में कपड़े को नहीं सिलती पथिक पूर्व पश्चिम में एक साथ गमन नहीं करता। इसी नीति के अनुसार एक साथ एक समय में एक जीव के संसार का मार्ग और मोक्ष का मार्ग हो नहीं सकता अतः आपके मन में जिनेन्द्र विराजमान नहीं हैं और हैं तो विषय भोगों में प्रवृत्ति अंसभव है। शृंगारालंकार, आरम्भ परिग्रह में प्रवृत्ति क्यों?

प्रश्न– 775 यदि सतत हमारे मन में जिनेन्द्र नहीं हैं तो पुण्य की वृद्धि, पाप का संवर, विशेष निर्जरा कैसे हो सकती है?

उत्तर ''संखिज्जमसंखिज्जगुणं संसार मेरुमंताणं। सम्मत्तमणुचरंता करंति दुक्खक्खयं धीरा।।'' ''चा.पा.19'' आ. श्री कुन्दकुन्दजी ने सम्मत्तमणुचरंता इस गाथा के चतुर्थ चरण के द्वारा यह बताया है कि सम्यक्त्वी जीव सम्यक्त्वाचरण का पालन करता हुआ उपयोग में आत्मसात् करता हुआ कभी सामान्य निर्जरा, कभी संख्यात गुणी, कभी असंख्यात गुणी धर्मध्यान के द्वारा निर्जरा करता है इसके बिना नहीं। भले ही आपके मन में लब्धिरूप से या शक्ति रूप से विराजमान हैं तो उससे क्या सिद्ध होने वाला है? कुछ भी नहीं क्योंकि तुम्हारे घर में कितनी सम्पत्ति रखी हो परन्तु प्रंसग आने पर पास में न हो तो वह धनसंपत्ति किस काम की? जो मौके पर काम नहीं आये वह धन किस काम का? भव्य अभव्य सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि जीवों के शक्ति रूप से परमात्मा विराजमान है और जिसने रत्नत्रय प्राप्त कर लिया उसमें भावी नैगमनय की अपेक्षा व्यक्तरूप में भी परमात्मा विराजमान है तथा उत्तम अैर पूर्ण रत्नत्रय वालों के भी परमपद वर्तमान नय से विराजमान है इसी तरह चारों गतियों के सम्यग्दृष्टियों के श्रद्धान रूप से अरिहन्त सिद्ध या पंच परमेष्ठी विराजमान हैं तो केवल श्रद्धान मात्र से क्या भगवान बन गये? क्या अनन्त चतुष्टय के धारी हो गये? यदि हैं तो अनन्त चतुष्ट का अनुभव होना चाहिए? यदि अनन्त चतुष्टय है तो फिर छद्मस्थावस्था क्यों? इंद्रिय विषयसुख, वस्त्राभूषण, शृंगारांलकार क्यों? दुर्ध्यान क्यों? विषयभोगों में प्रवृत्ति क्यों? सन्तानोत्पत्ति का कार्य क्यों? स्नान, मलमूत्र क्षेपण, वस्त्राभूषण परिवर्तन क्यों? आदि प्रश्न हैं इनका समाधान क्या होगा? आपको बताना चाहिए। इस कारण शक्ति और लब्धि रूप में होने से वर्तमान में कोई लाभ नहीं किन्तु उपयोग में लाने से ही वर्तमान में लाभ होता है आनन्द आता ही है अतः स्थापना अपने मन में तथा ठोना में करना परमावश्यक है क्योंकि स्थापना और संकल्प के बिना मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति हो नहीं सकती।

प्रश्न– 776 स्थापना करने के बाद किस प्रकार का विचार करना चाहिए?

उत्तर अभेद विवक्षा में मूर्ति और मूर्तिमान एक ही है अतः इस अपेक्षा से अभिषेक नहीं होता है कारण केवली अवस्था है जब मुनि अवस्था में स्नान का त्याग हो जाता है, अभिषेक नहीं होता है तो

केवली अवस्था में अभिषेक कहाँ से होगा? केवली का अभिषेक करना भक्ति का अतिरेक है, पापकर्म का आश्रव बन्ध करना है किन्तु भेद विवक्षा में मूर्ति और मूर्तिमान अलग अलग हैं इसलिए मूर्ति का अभिषेक होता है मूर्तिमान का नहीं। यह जिनबिम्ब है, यह पाण्डुकशिला है, मैं इन्द्र हूँ, यह क्षीरसमुद्र का जल है, ये स्वर्णकलश है, ये तीर्थंकर प्रभु है आदि विचार कर मन स्थिर करना चाहिए। पाण्डुकवन की ईशानदिशा में पाण्डुकशिला है जो पूर्व पश्चिम में सौ योजन लम्बी है, उत्तर दिशा में 50 योजन चौड़ी और आठ योजन मोटी है। इस शिला के ऊपर तीन सिंहासन है। दक्षिण पीठ पर सौधर्मइन्द्र, उत्तर पीठकर बैठकर ईशान इन्द्र तथा मध्य के सिंहासन पर भगवान तीर्थंकर बालक को बैठाकर अभिषेक करते हैं। पाण्डुकवन के अग्नेय दिशा में पाण्डुकशिला के बराबर पाण्डुकम्बला नाम की शिला है इस पर पश्चिम विदेहक्षेत्र के तीर्थंकरों का अभिषेक करते हैं। नैऋतदिशा में पाण्डुकशिला के समान रक्तशिला है इसके ऊपर ऐरावतक्षेत्र के तीर्थंकर कुमार का अभिषेक करते हैं तथा वायव्यदिशा में पाण्डुकशिला के बराबर रक्तकम्बला नाम की शिला है उस पर पूर्वविदेह क्षेत्र में जन्मे तीर्थंकरों का इन्द्र सपरिवार अभिषेक करते हैं। ति.प.अ.4 गाथा 1842.1859 तक।

प्रश्न– 777 इन्द्र ने अभिषेक किया, इन्द्राणी ने नहीं फिर आप इन्द्र परिवार सहित अभिषेक करते हैं ऐसा कैसे कहते हैं?

उत्तर **माता के पास से तीर्थंकर कुमार को बाहर लाने का सौभाग्य इन्द्राणी को ही प्राप्त होता है इन्द्र को नहीं इसी कारण भगवान श्री आदिनाथजी का इन्द्राणी और देवांगनाओं ने भी अभिषेक किया था। ह०पु० आ० जिनसेन– ''अत्यन्त सुकुमारस्य जिनस्य सुरयोषितः। शच्याद्याः पल्लव स्पर्श सुकुमार करा स्ततः172 दिव्यामोद समाकृष्ट षट्पदौद्यानुलेपनैः। उद्वर्तयन्त्यस्ता प्रापुः शिशु स्पर्श सुखं नवम्173 ततो गंधोदकैः कुम्भैरभ्याषिंचन् जगत्प्रभुम् । पयोधरभरानम्रास्ता वर्षा इव भूभृतम्।।174।।'' पृ०159 तदनन्तर जिन के हाथ पल्लवों के समान अत्यन्त सुकुमार थे ऐसी इन्द्राणी आदि देवियों ने अतिशय सुकुमार जिनबालक को अपनी दिव्य सुगन्धित सामग्री से भ्रमर समूह को आकृष्ट करने वाले अनुलेपन से उबटन किया और उन्होंने जिनबालक के स्पर्श से समुत्पन्न नूतन सुख प्राप्त किया। जिस प्रकार कामिनी कामी के स्पर्श से नवीन या अभूत पूर्व स्पर्श संबंधि काम सुख का अनुभव करती हैं वैसा स्पर्श सुख मत समझना किंतु स्पर्श के माध्यम से आत्म आनंद समझना। मेघों के भार से नम्रीभूत देवियों ने सुगन्धित जल से भरे कलशों के द्वारा भगवान का अभिषेक किया। ततःसुरपतिस्त्रियो जिनमुपेत्य शच्याद्यःसुगन्धि तनु पूर्वकै। मृदुकराःसमुद्वर्तनम् प्रचक्रु रभिषेचनं शुभ पयोभि रूच्चैघटैः पयोधरभरैर्निजैरिव समं समावर्जितैः।।''।।54।। सर्ग 28 वां पृ० 485।। तदनंतर भगवान नेमिनाथ का कोमल हाथों को धारण करनेवाली शची आदि ने आकर सुगन्धित द्रव्यों से भगवान का उबटन किया अपने ही स्तनों के समान सुशोभित एक साथ उठाये हुऐ शुद्धजल से पूर्ण कलशों के द्वारा उनका अभिषेक किया। हरि० आ. जिनसेन ज्ञानपीठ से प्रकाशित हिन्दी अनु–पन्नालालजी सागर।**

प्रश्न– 778 अभिषेक पूजन रात्रि में करना चाहिए या दिन में?

उत्तर अभिषेक पूजन दिन में, स्वाभाविक सूर्य के प्रकाश में समिति पूर्वक सावधानी सहित करना चाहिए क्योंकि प्रमाद पूर्वक करने से पाप की वृद्धि होती है। पाप प्रकृति में तीव्र स्थिति अनुभागबन्ध होता है अतः रात्रि में, अन्धकार में ईर्यासमिति, आदान निक्षेपण समिति का पालन न होने से जीवों की विराधना हो या न हो किन्तु कर्मबन्ध होता ही है। इसलिए सावधानी पूर्वक अभिषेकादि करने से पापबंध नहीं होगा किन्तु पाप की हानि और पुण्य की वृद्धि होती है। असावधानी पूर्वक करने से पाप का ही आश्रवबंध होता है तथा पुण्य क्षीण होता है।

प्रश्न– 779 ऊपर कहा गया है कि अभिषेक पूजन दिन में करना चाहिए, रात्रि में नहीं। किन्तु हमने प्रत्यक्ष देखा है कि कुछ संघों में सूर्योदय के पहले ही अभिषेक पूजन शान्तिपाठ विसर्जन आदि सबकुछ हो जाता है और उस समय उनके पानी भरना आदि कार्यों में आरम्भ होने से हिंसा पाप होता ही है अतः यह तो कथनी और करनी में अन्तर प्रत्यक्ष अनुभव में आ रहा है? अहिंसा महाव्रतियों के संघों में ये काम होते हैं और गृहस्थों को मना करते हैं यह तो साक्षात् अन्याय है, न्याय नहीं है? ''आप खाये काकड़ी और दूसरों को दें आकड़ी'' यह कहावत चरितार्थ होती है क्या ऐसा करना योग्य है?

उत्तर जिन संघों में रात्रि के अन्तिम प्रहर में ब्रह्ममुहूर्त में अभिषेक पूजन करते हैं या होता है उन्हें रात्रि में आरम्भ नहीं करना पड़ता है सो कैसे? वे संघस्थ श्रावकगण पूर्व दिन में शुद्धिपूर्वक पानी 24 घंटे की मर्यादा का उबालकर और सामग्री शोध कर रख लेते हैं। ब्रह्ममुहूर्त में रात्रि के अंतिम प्रहर में उठकर नित्य क्रियाकर्म कर सामग्री धोकर तैयार कर अभिषेक पूजन कर लेते हैं जो आरम्भ का दोष दिया है वह नहीं लगता क्योंकि जलाशय से पानी भरना, छानना, गरम करनादि आरंभ नहीं करना पड़ता है तब हिंसा पाप कैसे लगेगा? कहाँ से होगा? आप यदि कहें कि सामग्री धोने से आरम्भ होता है और आरंभ से पाप होता है सो भी बात नहीं है यदि धोने मात्र से पाप कर्म का आश्रवबन्ध होने लगे तो दिन में भी लगना चाहिये क्योंकि कर्मबन्ध के लिए रात्रिदिन का भेद नहीं है। यदि हेतु और विवेक गलत है तो सर्वत्र पाप ही है तथा हेतु और विवेक सही है तो सर्वत्र पुण्य है और मोक्ष के लिए एकमात्र हेतु और विवेक शुद्ध है तो मोक्षमार्ग ही है, मोक्ष के कारण भूत संवर निर्जरा ही है। जिस दिन आहार देना हैं उसके पूर्वदिन में आटा की तैयारी कर लेते हैं, दाल चावल शोधकर रख लेते है, सब्जी फल भी धोकर रखते हैं, बर्तन चूल्हा आदि व्यवस्थित कर लेते हैं अन्यथा प्रातः काल ही किये जाये तो असंभव है। यह बात करने वाले कह सकते हैं क्योंकि कहना सरल है और करना कठिन है जो चौका लगाते हैं उनसे पूछो या जाकर निकट में देखो तब मालुम होगा कि किस वस्तु की कब तैयारी की जाती है यदि आहार बनाने में दो घंटे या चार घंटे लगते हैं तो सामग्री जुटाने में, सुधारने में कम से कम 4

या 6 या 8 घंटे मानकर चले तब यदि ये सब कार्य प्रातः काल ही किये जाये तो दोपहर में 2–4 बजे तक आहार करा सकते हैं इसके पहले नहीं यदि इस बात पर संदेह हो तो उक्त कार्य दिन में कराकर घड़ी से मिलाकर प्रयोग कर देख लो तब मालुम हो जायेगा। अतः प्रमादपूर्वक ही हिंसादि पाप होते हैं। प्रमाद– 4 विकथायें, 4 कषायें, 5 इन्द्रिय विषयों में प्रवृत्ति, निद्रा और प्रणेय ये भेद हैं और अभिषेक दान पूजायें आदि सत्कार्य मोहोदय से होने वाले परिणाम नहीं हैं, न पाये जाते हैं क्योंकि प्रमाद औदयिक भाव है और अभिषेक दान पूजादि क्षायोपशमिक भाव है, औदयिक भाव नहीं। यदि ऐसा न माना जाय तो अन्तराय कर्म के दानान्तराय लाभान्तराय आदि कर्म व्यर्थ हो जायेंगे। दानपूजा आदि को क्षायोपशमिक भाव कहा है तभी तो इन्हें धर्म कहा है तप कहा है अतः नित्य अभिषेक पूजन दिन में करना चाहिए और विशेष पूजा निमित्त नैमित्तिक पूजा रात्रि में भी होती है क्योंकि जिसका जो समय है उसी समय वह शोभा देता है और वह कार्य उसी समय करना चाहिए। यदि आपको श्री सम्मेदशिखर की टोंकों की वन्दना अभिषेक पूजन करना है तो आप मधुवन में कब तैयारी करेंगे? कब गमन करेंगे? कब अभिषेक पूजन करेंग? कब वापिस आकर भोजन पान करेंगे? इसी तरह हर किसी क्षेत्र के सम्बन्ध में विचार कर सकते हैं कम से कम अभिषेक पूजन के पहले तैयारी में एक घण्टा तो लगेगा ही। अत्यधिक जल्दबाजी करने से ही चावलों में या अन्य पूजन सामग्री में सुड़ी तिरूला या अन्य भी कीड़े मकोड़े मरे हुए निकल आते हैं यदि आपको रात्रि के अभिषेक पूजन में पाप दिख रहा है तो अभिषेक पूजन की तैयारी करने में, पानी भरने में, छानने में, सामग्री धोने में, दोष पाप क्यों नहीं दिख रहा है? जबकि अभिषेक पूजन में आरम्भ नहीं होता है किन्तु उन सत्कार्यों की सामग्री तैयार करने में होता है। जीवों की विराधना में हिंसा पाप होता है या प्रमाद में बताओ? इस संबंध में आपको निर्दोष, निष्पक्ष, निःस्वार्थ भाव से विचार करना चाहिए। दीपावली के दिन पावापुर में रात्रि के अंतिम प्रहर में ही अभिषेक पूजन होता है। अभी जाकर देख लो, विवाह के समय रात्रि में पूजन होता है अथवा यों कहो कि ठण्डी के मौसम में करीब करीब सभी शहरों में रात्रि में सूर्योदय के पहले अभिषेक पूजन की तैयारी तथा अभिषेक पूजन भी लाईट के प्रकाश में होता है क्योंकि लाईट का प्रयोग ही अन्धकार को दूर करने के लिए किया जाता है। इसलिए अपने परिणाम नहीं बिगड़े तथा किसी के साथ वैर विरोध न हो अतः प्रंसगानुसार तथा द्रव्यक्षेत्रकाल भाव की शुद्धिपूर्वक चर्या को सुधारकर आत्मशुद्धि करना चाहिए। इसीमें कल्याण है।

प्रश्न– 780 आजकल अनेक जगहों पर रात्रि में कर्नाटकादि बीसपंथी मंदिरों में अभिषेक पूजन होता हैं सो क्या ठीक है?

उत्तर **नहीं, ऐसा नहीं है। ये स्थान और नाम विरोध के कारण, विषयकषायों के कारण पंथवादियों ने बदनाम कर रखे हैं। क्या बीसपंथियों के या दक्षिण भारत के देव शास्त्र और गुरु का लक्षण दूसरा है और उत्तर भारत के या तेरापंथियों के देवशास्त्रगुरु का लक्षण दूसरा है। दक्षिण भारत का मोक्षमार्ग भिन्न हैं और उत्तरभारत का मोक्षमार्ग भिन्न हैं? क्या दोनों प्रान्तों की तत्त्व प्ररूपणा अलग अलग हैं? क्या उत्तर भारत वाले जैनों को दक्षिण भारत के आचार्य और ग्रन्थ प्रमाण नहीं है? यदि नहीं है तो वर्तमान में हर तरह से निर्दोष शास्त्र कौन सा उत्तर भारत के आचार्यों का बनाया**

हुआ है। हर तरह से प्रामाणिक शास्त्र चारों अनुयोगों के उत्कृष्टतम ग्रन्थ दक्षिण भारत के आचार्यों के हैं आप वहाँ के ग्रन्थों को कुछ को प्रमाण मानों और कुछ को अप्रमाण मानों यह तो आपकी मनमानी है तथा प्रामाणिक ग्रन्थ भी दक्षिण भारत के आचार्यों ने बनाये हैं उत्तर भारत वालों का एक भी मौलिक तथा निर्दोष ग्रन्थ नहीं हैं, जो उपलब्ध हैं वे भी यहाँ वहाँ से अपनी मान्यतानुसार संग्रह कर अपने नाम से छपवा दिये। यदि आपको दक्षिण मान्यता प्रमाण नहीं है समीचीन नहीं है तो दक्षिणमान्यतानुसार समस्त चारों अनुयोगों की पद्धति का त्याग कर देना चाहिए। फिर उत्तर भारत के जैनों के पास स्वयं क्या बचेगा यह भी सोचना चाहिए। दक्षिण भारत की मान्यता को कुछ को स्वीकार करो और कुछ को स्वीकार न करो यह तो सर्वत्र सर्वकाल सब तरह से अन्याय है, अक्षम्य अपराध है। आप अपने पिताजी की कुछ आज्ञा का पालन करो और कुछ का पालन न करो तो पिताजी का आशीर्वाद किस तरह का प्राप्त होगा? आप स्वयं अनुभव करेंगे अथवा जब संतान आपकी आज्ञा का पालन नहीं करेगी तब आपको मन में कितना धक्का लगेगा इसी तरह देव शास्त्र और गुरु की आज्ञा का जब उल्लंघन करते हैं तब देवशास्त्र और गुरु को कितना मन में धक्का लगता है? उनकी अन्तर्वेदना को कौन जाने कौन समझे? तुम्हारे अत्याचार पर देवशास्त्र कुछ नहीं बोलेंगे पर गुरु तो कहेंगे कि तुम्हारे इस अत्याचार को धिक्कार है। पर वास्तव में देखा जाय तो शहरों में, अतिशय क्षेत्रों में, सिद्ध क्षेत्रों में अधिक लोग अभिषेक पूजन करते हैं, पुजारी लगा रखा है वहाँ ठण्डी के मौसम में या किसी भी विशेष प्रसंग पर श्रावकों को या पुजारी को अभिषेक पूजन करने के पहले करीब घंटे दो घंटे या विशेष पूजा विधान में, प्रतिष्ठाओं में पानी भरना, छानना, गरम करना, सामग्री धोना, तैयारी करना होता है। यदि उसने समयपर तैयारी नहीं की तो डाँट पड़ती है नौकरी से हटा दिया जाता है उसकी नौकरी कैसे रह पायेगी? सेठजी अभिषेक पूजन के लिए आये और पुजारी ने व्यवस्था नहीं की तो डाँट पड़ेगी और बिना अभिषेकादि किये सेठजी चले गये चले जायेंगे। क्योंकि सेठजी को सामग्री तैयार करना आता नहीं। चाय नास्ता का, व्यापार का, ऑफिस का, बस का, ट्रेन का समय निश्चत है अतः वहाँ पहुंचना जरूरी है। इस कारण वहाँ मंदिर के अन्दर अंधेरे में लालटेन या लाईट के प्रकाश में सामग्री तैयार करना, अभिषेक पूजन करना होता ही है। अब यदि आप लोग नियम बना लेते हैं कि सूर्योदय के होने पर ही मंदिर खुलेगा तब आप देखेंगे कि मंदिर में कौन कितने मिलते हैं, अभिषेक पूजन कौन कितने करते हैं? आगम विरुद्ध नियम बनाने का क्या प्रत्यक्ष फल है मालुम हो जायेगा? सूर्योदय के बाद में सफाई करना, पानी भरना, छानना, गरम करना, सामग्री छानकर, बीनकर, धोकर तैयार करना फिर अभिषेक पूजन कब करेंगे? नास्ता कब करेंगे? व्यापार के लिए ऑफिस में कब जायेंगे आदि का चिन्तन करना चाहिए। उस व्यापारी को धर्म भी निभाना है और आजीविका भी चलाना है। गुजरात में अहमदाबाद शाहपुर में अजितनाथ दि. जैन तेरापंथी मन्दिर है। वहाँ पर किसी श्रावक ने आकर मुझ (वासुपूज्य सागर) से प्रश्न किया कि महाराजजी रात्रि में अभिषेक पूजा करना चाहिए या नहीं? नहीं, रात्रि में अभिषेक पूजन करना मिथ्यात्व को पुष्ट करना है। तब मैंने उनसे पूछा कि आप अभिषेक करके आये हैं? जवाब दिया हाँ। पुनः पूंछा कि अभी क्या समय हुआ है। बोले

6 बजे है सूर्योदय कब होगा करीब 7 बजे अभी एक घंटा रात्रि है। आप ही रात्रि में अभिषेक आदि करके आये हैं अतः आप ही मिथ्यात्व की पुष्टि करते हैं और पुजारीजी ने पानी कब भरा तैयारी कब की आप ही बताये तब वे मौन रहे इसी तरह करीब करीब सभी शहरों में समझना चाहिए। अधिकतर लोग लाईट के प्रकाश में कार्य प्रारम्भ कर देते हैं अतः जहाँ जो प्रथा चल रही है उस प्रथा को मेंटने के लिए भगवान महावीर भी मोक्ष से समझाने के लिए वापिस आयें तो बड़ा मुश्किल होगा। प्रजा महावीर को ही समझाने लगेगी अथवा भगवान महावीर को ही कि ये राजपुत्र हैं बिहार प्रान्त के हैं ये भी मनमानी बोलते हैं ऐसा पंडितवर्ग आक्षेप कर देंगे।

प्रश्न– 781 अभिषेक पूजन खड़े होकर करना चाहिए या बैठकर करना चाहिए?

उत्तर अपनी शक्ति के अनुसार अभिषेक पूजन खड़े होकर भी कर सकते हैं और बैठकर भी क्योंकि शक्तितस्त्यागतपसी शक्ति के अनुसार त्याग और तप होता है। ऐसा नहीं है कि खड़े होकर अभिषेक पूजन करने से मोक्ष प्राप्त होगा और बैठकर करने से नरक मिलेगा या बैठकर करने से स्वर्ग मिलेगा तथा खड़े होकर करने से नरक मिलेगा किन्तु शक्त्यनुसार करना चाहिए। चाहे बैठके करो या खड़े होके करो दोनों तरह से मोक्षमार्ग है विनयगुण है यदि बैठकर पूजन करने में पाप मानते हो तो अधिकतर श्राविकायें और वृद्ध श्रावक बैठ कर करने वाले पापी कहलायेंगे।

प्रश्न– 782 खड़े होकर अभिषेक पूजन करने से विशेष विनय होता है और बैठकर करने से अविनय। बैठकर करने से प्रमाद और सुखिया स्वभावपना आता है जैसे मुनियों को खड़े होकर आहार देने से विनय होता हैं ऐसा है क्या?

उत्तर मुनियों को आहार देते समय या लेते समय दाता और पात्र का स्थान समान होता है, ऊंचा नीचा नहीं कि पात्र पाटे पर खड़ा है या नीचे खड़ा हैं और दाता नीचे या ऊपर खड़ा है ऐसा नहीं है किन्तु स्थान समान होता है यदि आपको दृष्टान्तानुसार अभिषेक पूजन करना है तो वेदी पर जहाँ जिनप्रतिमा विराजमान है वहीं पर जिनबिम्ब के बराबर खड़े होकर अभिषेक पूजा करना चाहिए किन्तु आर्यिका, क्षुल्लिका, क्षुल्लक को पाटे पर बैठाकर और स्वयं नीचे बैठकर आहार देते हैं। इसी तरह वेदी पर भगवान को विराजमान कर और स्वयं नीचे बैठकर अभिषेक पूजन करना चाहिए। प्रतिमाजी नाभि के नीचे न होकर ऊपर होना चाहिए। खड़े होकर अभिषेक पूजन करने से जब पैर दुःखने लगते हैं तब घोड़े के समान एक पैर उठाकर मेज के डण्डे पर रखकर खड़े हो जाते हैं और बैठकर अभिषेक पूजन करने वाले दीवाल से टिक जाते हैं यहाँ तक कि सो भी जाते हैं। प्रमादी जीवों को सर्वत्र प्रमाद के साधन मिल जाते हैं तथा सावधानीयुक्त जीवों को सावधानी के साधन भी सर्वत्र मिल जाते हैं। अतः दोनों तरह से कर सकते हैं।

प्रश्न– 783 जिनप्रतिमा का अभिषेक एकबार करना चाहिए या अनेकबार करना चाहिए इसमें आगम प्रमाण क्या है?

उत्तर यदि सामूहिक सभी भक्तगण एक साथ अभिषेक कर रहे हैं तो सबके करने के बाद में श्री जी को शुद्ध वस्त्र से पोंछकर सुखाकर वेदी पर विराजमान कर देना चाहिए किन्तु जब त्रिकालपूजा त्रिकालवन्दना पाठ बोलते हैं तो सामूहिक अभिषेक भी अनेक बार हो गया अथवा अलग अलग

जब प्रत्येक श्रावकगण करते हैं तो भी अनेकबार हो जायेगा क्योंकि पूजन अभिषेक पूर्वक होती है अतः अभिषेक अनेकानेक बार करता हूँ। पीछे पृ. 179 पद्य 12 पर देखो। **बहुधाभिषिंचे मैं** बहुतबार अभिषेक करता हूँ ऐसा कहा है।

प्रश्न— 784 उत्तर भारत में अनेक जगहों पर एक ही बार अभिषेक करने का नियम है सो यह आगमानुसार उचित है या अनुचित?

उत्तर एक बार अभिषेक करने का नियम होने से एक बार अभिषेक होने के बाद में कई श्रावक श्राविकायें या त्यागीव्रती साधुगण देखने या करने से वंचित रह जाते हैं तथा पूजा बिना अभिषेक के होती नहीं है अतः आगम और तर्क की दृष्टि से एक बार अभिषेक करने का नियम बनाना सर्वथा अनुचित है अथवा प्रमादी लोग अभिषेक कर मूर्ति को सूखी किये बिना यों ही छोड़कर चले गये तथा मूर्ति के आसपास पानी भरा रहा जिससे चींटी पतंगे आदि सम्मूर्च्छन जीवों का जन्ममरण होने से हिंसा हुई तब उस हिंसा से विरक्त होकर कुछ लोगों ने एक बार का ही नियम बना दिया अतः प्रमादियों के प्रमाद के कारण अप्रमादी जन सावधानी रखने वाले, समिति का पालन करने वाले गृहस्थ भी मारे गये और अब वह गृहस्थों का बनाया गया नियम आगम का नियम बन गया वहाँ कोई दुबारा अभिषेक नहीं कर सकता है। यदि किसी के आग्रह पर कर भी लिया तो झगड़ा हो जाता है यह तो पाप की ही महिमा हैं, मिथ्यात्व का ही फल है, कषाय और पंथवाद का ही प्रभाव है धर्म का नहीं। धर्मामृत और धर्मात्माओं की महिमा धर्म को नष्ट कराने के लिए नहीं होती है किन्तु धर्म को बढ़ाने के लिए सम्यग्दृष्टि अव्रती व्रती श्रावकगण परस्पर में सम्मिलित होकर धर्मानुष्ठान करते हैं। अतः एक बार का नियम बनाना अनुचित है अनेकबार करने का विधान उचित है। जो परंपरागत आगम संगत हैं।

प्रश्न— 785 एकबार का नियम बनाने वालों के मंदिरों में भी चींटी आदि कीड़े देखे जाते हैं धूल मिट्टी भी मूर्ति पर जम जाती है सो ऐसा क्यों?

उत्तर एक बार अभिषेक का या अनेक बार अभिषेक का नियम बनाने वालों के मंदिरों में प्रमादी जन भी होते हैं जो पर्याप्त मात्रा में जिनबिम्बों को पोंछे बिना यों ही विराजमानकर चले गये तब मर्यादा समाप्त होने के बाद चींटी आदि जीव उत्पन्न हुए और मरे तथा धूल मिट्टी भी जम जाती है। पानी भरा रहने से काई शैवाल भी जम जाती है। कोई कोई तो आसन के अन्दर लिंग के ऊपर कपड़ा लगाकर या गर्दन में कपड़ा लगाकर थोड़े जल से अभिषेक कर लेते हैं। जो उनके प्रमाद अविवेक और लोभ माया कषाय के सूचक परिणाम हैं और एक प्रतिमाजी का थोड़े जल से अभिषेक कर शेष प्रतिमाओं को सूखे कपड़े से या किंचित् गीले कपड़ों से एकदम निचोड़ कर के बिम्बों को पोंछ देते हैं। यदि एक ही जिनबिम्ब की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा या मंत्र संस्कार हुआ है शेष का नहीं, यदि सभी प्रतिमाओं का पंचकल्याणक हुआ है तो सभी का अभिषेक करना चाहिए। यह भी एक महाप्रमाद का फल है ये महाप्रमादी जन अपने स्नान के लिए एक बार का नियम या थोड़े से जल के द्वारा स्नान कर लेंगे ऐसा नियम नहीं बनाते अपने को तो अनेक बाल्टी और अनेक बार स्नान करने को चाहिए त्याग नहीं करते जो स्वयं के स्नान में अनछना पानी

कीटनाशक साबुन, शैम्पू आदि का प्रयोग करते हैं जिनसे महान हिंसा होती है प्रमाद होता है। अतः सर्वत्र सावधानी और विवेक की आवश्यकता है और कर्मबन्धन का विच्छेद हो ऐसा काम करना चाहिए।

प्रश्न– 786 क्या नाभि के नीचे तथा आसन के अन्दर कपड़ा नहीं लगा सकते हैं, लगाने में क्या हानि है क्या दोष है?

उत्तर नहीं लगा सकते हैं निर्ग्रन्थावस्था है परिग्रह का, वस्त्र का त्याग है तथा आसन के अन्दर वस्त्र लगाने से सग्रन्थपने का प्रसंग आता है उपसर्ग की आपत्ति आती है। वस्त्र से पोंछने में और वस्त्र लगाने में बहुत अंतर है। पोंछने में तो वस्त्र को शरीर से स्पर्श कराते हुए, साफ करते हुए शीघ्र ही कपड़ा हटा दिया जाता है किंतु लगाने में कपड़ा लगाकर छोड़ दिया जाता है उसी स्थान पर रख दिया जाता है। जब अकलंक ने जिनबिंब पर एक घागा मात्र डालने से सग्रंथ मान लिया तो मूर्ति के अंदर पूरा वस्त्र रखने से सग्रंथ क्यों न मानी जाये आप ही न्यायनीति से विचारें।

प्रश्न– 787 दूध शुद्ध है या अशुद्ध?

उत्तर दूध शुद्ध है अशुद्ध नहीं है। हाँ इतना अवश्य है कि वह इन्जेक्शन के द्वारा न निकाला गया हो, बीमार गाय भेंस आदि का न हो, बच्चे की ताकत तथा उमर को ध्यान में रखकर निकाला गया हो, बच्चे को जन्म देने के बाद में बकरी का 8 दिन के बाद, गाय का 10 दिन के बाद, भैंस का 15 दिन के बाद दूध शुद्ध होता है तथा दोहने के बाद अन्तर्मुहूर्त के अन्दर ही छानकर गरमकर लेना चाहिए। अन्यथा संख्यात असंख्यात जीवों का पिण्ड बन जायेगा। दूध दोहने वाला आचार विचार, जाति, कुलहीन, न होना चाहिए, नीच गोत्री न हो, विधवाविवाह और त्यक्ता विवाह वालों के तथा इनकी संतानों के हाथ का न हो, सूतक पातक वाला न होना चाहिए। रात्रि या दिन के सहवास के, कामसेवन के वस्त्र नहीं होना चाहिए और भी अनेक प्रकार के अशुद्ध वस्त्र नहीं होना चाहिए। स्नानकर शुद्ध धुले वस्त्र पहने हो, चमड़े के चप्पल जूते आदि धारण न किये हो। मद्य मांस मधु का सेवन करने वाला न हो। शुद्ध पानी से गाय आदि के स्तनों को धोकर कपड़े से पोंछकर सुखाकर दूध दोहना चाहिए। दूध मापने का लीटर तथा पात्र वस्त्र अपना होना चाहिए, ग्वाले या जैनेतरों का नहीं होना चाहिए। दूध निकालने वाला आठ मूलगुणों का पालन करने वाला, सप्त व्यसनों का तथा मिथ्यात्व अन्याय अभक्ष्य का त्यागी हो, जिनधर्म का पालन करने वाला हो जहाँ जिस स्थान पर दूध निकालना है वह स्थान भी पवित्र और स्वच्छ हो, मांसाहारी पशुओं का, मनुष्यों का मलमूत्र न पड़ा हो। इस विधि से निकाला गया दूध शुद्ध है, शेष अशुद्ध है।

प्रश्न– 788 दूध प्राणिज होने से अशुद्ध है तथा दूध की नली मांसादि की होने से शुद्ध कैसे हो सकता है? पीने से धातु उपधातुओं का भी दोष आता है?

उत्तर दूध प्राणिज होने पर भी शुद्ध है, अशुद्ध नहीं तथा मांसादि का दोष भी नहीं आता है। यदि दूध के सेवन से मांसादि भक्षण का दोष आता है तो पानी सब्जी फल गेहूँ आदि धान्य भी प्राणिज है स्थावरकायिक एकेंद्रिय जीवों का शरीर है। दिगम्बराचार्यों ने स्वयं इनको और इनमें जीव माना है और वैज्ञानिकों ने भी वनस्पति को, जल को जीव माना है तथा ये प्राणिज होने से इनके

सेवन से मांसादि के भक्षण का दोष क्यों नहीं आयेगा? पानी की पाईप लाईन गटर से होकर आती है कभी कभी पाईप फूट जाता है। पाईप का पानी नाली में और गटर का पानी पाईप में आ जाता है। मिश्रण होने से मलमूत्र के सेवन का ही दोष आता है और प्रसंग आयेगा ही इस दोष को कोई टाल नहीं सकता क्योंकि मलमूत्र और पानी के आने का रास्ता एक ही है।

प्रश्न– 789 क्यों दूध में मांस का दोष आता ही है, जिस स्तन से दूध आता है उसी से रक्त भी आता है वह नली भी मांसादि की होती है मांस चर्मादि से स्पर्शित वस्तु अशुद्ध अभक्ष्य कहलाती है अतः दूध दही घी मट्ठा आदि मांस का ही अंश होने से ये अशुद्ध क्यों नहीं?

उत्तर यद्यपि वह नली मांस की और रक्त की होती है फिर भी दोनों अलग अलग हैं। दूध के निकलने का रास्ता और रक्त के निकलने का रास्ता अलग अलग है। यदि रक्त और दूध की नली एक ही हो तो जब जब दूध निकाला जाय तब तब खून रक्त आना चाहिए परन्तु दूध के साथ रक्त नहीं आता क्यों रास्ते अलग अलग हैं। रक्त नली में या दूध की नली में चोट आजाये तो या कोई बिमारी आ जाये तो भले ही दूध के साथ रक्त आने लगे या बिना दूध के भी रक्त आने लगे। अन्यथा रक्त नहीं आता। कदाचित् मांस की नली होने से आप दूध में मांस का दोष मानते है तो आपको गटर से आते हुए पाईप लाईन के द्वारा प्राप्त हुए पानी में भी मलमूत्र के सेवन करने का, पान करने का दोष आयेगा? जबकि मलमूत्र किसी का भी हो तो पशु तिर्यंच प्राणी सेवन कर लेता है, पर मांसाहारी मनुष्य वह मांस मनुष्य का हो या पशु पक्षी का सड़ा गला मांस खा लेवे, रक्त पी लेवे, पर मलमूत्र का सेवन नहीं करता। यदि दूध दही घी आदि के पीने से या खाने से मांस और रक्त के खाने पीने का दोष आता है तो इस संसार में अहिंसावादी कौन, शाकाहारी कौन? जिस समय यह मानव माँ के पेट में था उस समय जो भोजन किया था उससे गर्भावस्था में पुष्टि को प्राप्त हुआ था जन्म लेने के बाद में माँ का स्तनपान किया तब उस समय उसे मांसाहारी कहो या शाकाहारी? हिंसावादी कहो या अहिंसावादी? मर्यादित विधिवत् निकाला हुआ दूध सर्वत्र सर्वकाल शुद्ध पुद्गल पिंड शुद्ध सोने के समान होने से ग्राह्य है, खानेपीने योग्य है।

प्रश्न– 790 दूध बच्चे के भाग्य से बनता है, न कि मनुष्य के भाग्य से बनता है और वह बच्चा भी उसी पशु का होना चाहिए दूसरों का क्यों न हो?

उत्तर नहीं जितना दूध तिर्यंचनी गाय, भैंस, बकरी, ऊंटनी आदि के बनता है उसमें बच्चे का तथा मालिक का हिस्सा होता है पूरा दूध बच्चे का नहीं होता है। यदि पूरा दूध बच्चे को पिला दिया जाये तो बच्चा बीमार पड़ जाता है तथा नहीं निकाला जाये तो माँ बीमार पड़ जाती है। अतः उस दूध में अनेकों का हिस्सा है जिस प्रकार किसान खेत में धान्य सब्जी फल उगाता है, पैदा करता है तो उसमें पशु पक्षियों का, मालिक का, राज्य सरकार का, प्रजा का भी हिस्सा होता है केवल किसान का नहीं यदि पूरा किसान का ही हिस्सा हो तो किसान कब तक खायेगा वह तो बीमार पड़ जायेगा या उस धान्य सब्जी फल को जलाना पड़ेगा या समुद्र में डालना पड़ेगा भूमि में कहाँ तक रखा रहेगा इसी तरह दूध के सम्बन्ध में समझना चाहिए अथवा बलात् माना

जाये कि बच्चे के भाग्य से ही दूध बनता है तो बच्चा जब तक जीवित है तभी तक दूध बनना चाहिए या पीता है तभी तक दूध बनना चाहिए? अथवा बच्चा मर गया या बच्चे ने दूध पीना बन्द कर दिया तो दूध भी बनना बन्द हो जाना चाहिए किन्तु न ऐसा होता है न देखा जा रहा है अतः उस दूध में अनेकों का भाग्य और पुरुषार्थ है। इस कारण तिर्यंचनी की योग्यता से, बच्चे पर आन्तरिक गाढ़ प्रेम होने से, मालिक का कर्ज होने से तथा अनेकों की अपने भोग में सहायता ली थी इसलिए अब सबका चुकती करने के लिए समयानुसार योग्य भोजनपान प्राप्त होने से, तिर्यंचनी के दूध बनता है, तिर्यंच के दूध नहीं बनता है। वही भोजन सामग्री भैंसा, बकरा, बैल आदि नरपशु खाते हैं पर नर पुरुषार्थ परिश्रम करके भी दूध नहीं बना सकता क्योंकि नर पशु में उस प्रकार की योग्यता तथा प्रेम का अभाव होने से दूध नहीं बनता तथा सामग्री बिना बच्चे वाली तिर्यंचनी भी खाती है पर उसके भी दूध नहीं बनता। कारण वर्तमान में योग्यता तथा उस प्रकार के प्रेम का अभाव है इसलिए दूध नहीं बनता है। यद्यपि शरीर रचना भोजन सामग्री तब भी मौजूद है। कहावत **'ऊसर भूमि में खाद पानी बीज डालने पर भी अंकुर पैदा नहीं होता है' उसी प्रकार स्वयं में योग्यता का अभाव होने से वही भोजनपान करती है शरीर की रचना भी वैसी ही है फिर भी दूध तैयार नहीं होता है। इस कारण दूध भक्ष्य है शुद्ध है।**

प्रश्न— 791 केवल मालिक या पीने वालों के भाग्य से दूध बनता है ऐसा माना जाय तो क्या हानि है?

उत्तर आपके कथनानुसार कदाचित् स्वीकार भी कर लिया जाय तो मालिक तथा पीने वाले सर्वकाल मौजूद हैं तो उस तिर्यंचनी के हमेशा दूध निकलना चाहिए फिर बच्चा पैदा हो या न हो उससे क्या प्रयोजन? अतः इस कारण तिर्यंचनी की योग्यता, मालिक, प्रजा और बच्चे का भाग्य तदनुकूल भोजनपान भी होना चाहिए। योग्यता और प्रेम न माना जाय तो बैल भैंसा बकरा के भी दूध बनने लग जायेगा।

प्रश्न— 792 आजकल गायें भैंसें मनुष्यों का मल खाने लगी हैं अतः मल अशुद्ध होने से दूध भी अशुद्ध है इसलिए पीने अयोग्य क्यों नहीं है?

उत्तर ये दूध देने वाले प्राणी तिर्यंचनी गाय भेंस आदि स्वयं स्वेच्छा से मल नहीं खाती, घासपत्तियां ही खाती हैं किंतु चारित्रहीन, हीन बुद्धि वाले, लोभी मनुष्यों की संगति से, पालन करने वालों की दुर्भावना होने से उनको भरपेट भोजन नहीं देते। अतः पराधीनता और भूख अधिक होने से खाने लगे हैं। यदि उन पशुओं को भरपेट भोजन मिल जाया करे तो वे क्यों खायेगीं? जैसे बालक बालिकाओं को घर में मनोनुकूल भरपूर भोजन मिल जाये तो होटल बजार में क्यों खायें तथा बकरी तो एकमात्र घासपत्ती खाती है। यदि आप मल खाने से तिर्यंचनी के दूध को अशुद्ध मानते हैं तो जिस खेत में मनुष्यों का मल, पशुओं का मल, सड़ा गला मनुष्य और तिर्यंचों का शरीर खादरूप से परिणत हो खेत में डालने से अधिक मात्रा में धान्य और सब्जी फल उत्पन्न होते हैं तब आपको उस धान्य का, सब्जी फल का, पत्ती का शाक त्याग करना पड़ेगा पानी में हमेशा जलचर जीव रहते हैं उसी में जन्म मरण मलमूत्र क्षेपण होता है। हवा भी किस किस स्थान को

छूकर, स्पर्शकर वर्गणाओं को साथ में लाती है। पानी भी कहाँ कहाँ से बहकर आता है, मल मूत्र आदि का पानी भाप बनकर मेघ रूप में परिणत होकर पुनः बरसता है अतः धान्य खाने से, पानी पीने से कितने और कौन कौन दोष उत्पन्न होते हैं? आपको यह भी सोचना चाहिए। केवल पर के लिए तर्क वितर्क करने से क्या लाभ? जब तीर्थंकरों ने मुनि अवस्था में दूध का आहार ग्रहण किया था अभिषेक के लिए कहा है अतः आज्ञाकारी बनना चाहिये। अन्यथा अविवेकता का प्रसंग आता है। जैन सिद्धांत में मोक्षमार्ग चलाने के लिए और शरीर की स्थिति के लिए भोजन सामग्री के संबंध में कहीं द्रव्य दृष्टि से और कहीं पर्याय दृष्टि से विचार किया जाता है कि यह शुद्ध है और यह अशुद्ध है यथार्थ में स्कंध ही भोगने में आता है।

प्रश्न– 793–94 जिनका पत्निव्रत या पतिव्रत है तो उन्हें तिर्यंचनी का दूध दुहने से ब्रह्मचर्य में दोष नहीं आता क्या? आना ही चहिए कोई रोक नहीं सकता?

उत्तर गृहस्थों का व्रत अणुव्रत कहलाता है। गृहस्थों के पूर्ण व्रत की न प्रतिज्ञा होती है न पालन होता है। हाँ मैथुन प्रेम से स्पर्श करता है तो अवश्य ही दोष उत्पन्न होता है, अन्यथा नहीं। यदि दोष माना जाये तो डॉक्टरों की, वैद्यों की, चूड़ी पहनाने वालों की कितनी पत्नी हो जायेगी? सफर करते समय सीट में अनेकों के साथ स्पर्श होता है। अनेकों के साथ उठना बैठना भी होता है। फिर किसी का पत्निव्रत पतिव्रत नहीं पल सकता सभी में व्यभिचारीपने का दोष आयेगा तथा कोई भी मोक्षमार्गी नहीं बन सकता है। हेतु के अनुसार ही गुण दोषों की उत्पत्ति होती है, सर्वथा नहीं, यदि स्पर्श मात्र से दोष माने जाये तो गृह परिवार में कोई किसी को पिता पुत्री को, माँ बेटे को, भाई बहिन को न प्यार दे सकता है और न ले सकता है। ब्रह्मचर्य महाव्रत के 18000 शील के पूर्ण भेद चौदहवें गुणस्थान में प्राप्त होते हैं। तेरहवें गुणस्थान में ब्रह्मचर्य महाव्रत पूर्ण नहीं होता है। यहाँ पर न घातिकर्म है न भावेंद्रिय है न विषय विकार है क्योंकि क्षुधादि 18 दोषों को नष्ट कर वीतराग विशेषण प्राप्त किया है फिर भी ब्रह्मचर्य महाव्रत अभी पूर्ण नहीं हुआ है क्योंकि इस व्रत के घातक मोहनीय कर्म और योग हैं। ब्रह्मचर्य महाव्रत की विराधना 10वें गुणस्थान तक मोहोदय और योग से होती है तथा 11–12–13वें गुणस्थानों में योग से होती है भले ही यहाँ महामुनियों के विषयसुख की चाहना न होकर भी योगों के द्वारा आत्मप्रदेशों में जो कंपन होता है वही है ब्रह्मचर्य महाव्रत की विराधना। अतः गृहस्थों को, प्रमत्तों को अपनी अपनी अवस्थानुसार गुण दोषों का विचार कर दोषों को दूर करने का सतत प्रयास करना चाहिए। आप जिस पद पर स्थित हैं उसी के गुण दोषों का विचार करना चाहिए, आगे के गुणस्थानों का विचार किया कि ये दोष लगते हैं तो आगे के उसी पद को प्राप्त करने का मन ही न बन पायेगा जिससे अपना जीवन विकास के मार्ग से हट जायेगा यही कारण है कि आजकल पंडितों का संयममार्ग समाप्त हो गया और जीवन असंयम पूर्वक होने से मरने के लिए धर्म की शरण न लेकर अस्पताल की शरण लेनी पड़ी है अतः गृहस्थों को और मुनियों को गृहस्थ तथा मुनि पद के अनुसार दोषों को दोष समझकर त्याग करने का तथा आगे बढ़ने का सतत प्रयत्न करना चाहिए। अन्यथा यों ही अनादिकाल के समान पुनः चतुर्गति रूप संसार में भ्रमण करना पड़ेगा चक्कर लगाना पड़ेगा क्योंकि असावधानी का फल भटकना और कष्ट भोगना है।

प्रश्न— 795—96 पूजा किसे कहते हैं? पूजा करने के स्वामी कौन—कौन हैं?

उत्तर महापुरुषार्थी उत्कृष्ट रूप से आत्मसाधना करने वालों के प्रति मन वचन काय से समर्पण पूर्वक निःस्वार्थ, निष्कपट, निरपेक्ष, संसार शरीर और भोगों की अपेक्षा के बिना आदर सम्मान, नमस्कार, गुणकीर्तन, प्रदक्षिणा, हाथ जोड़ना आदि भक्तिभाव से जल चन्दनादि सामग्री के अर्पण करने को पूजा कहते हैं। गृहस्थ और मुनिजन या प्रमादी अप्रमादी जीव इसके स्वामी हैं।

प्रश्न— 797 पूजा के कितने भेद हैं?

उत्तर द्रव्य पूजा और भाव पूजा के भेद से पूजा दो प्रकार की होती है अथवा सचित्त पूजा अचित्त पूजा और मिश्रपूजा के भेद से तीन प्रकार हैं। निक्षेप की अपेक्षा चार भेद हैं इन्हीं चारों में क्षेत्रपूजा और कालपूजा को मिलाने से 6 भेद हैं। विधि विधानों की या भावों की अपेक्षा संख्यात असंख्यात और अनन्त भेद हैं। इस प्रकार पूजा के भेद प्रभेदों को समझना चाहिए।

प्रश्न— 798 द्रव्यपूजा किसे कहते हैं?

उत्तर जल चन्दनादि सामग्री के चढ़ाने को अथवा वचन और काय के द्वारा नमस्कार करना, गुणस्तवन करना, नीचे बैठना, नम्रवृत्ति होना, आरती उतारना, मंदिर में झाडू लगाना, बर्तन साफ करना, आजीविका के बिना निःस्वार्थभाव से मंदिर की देखभाल करना आदि को द्रव्य पूजा कहते हैं।

प्रश्न— 799 भावपूजा किसे कहते हैं?

उत्तर सम्यग्दर्शन सहित देशसंयम और सकलचारित्र रूप महाव्रतों की परिणति क्रिया सहित क्षायोपशमिक ज्ञानपूर्वक पूज्य महानपुरुषों का, पंचपरमेष्ठियों का मन से गुण चिन्तन करने को अथवा धर्मध्यान शुक्लध्यान से परिणत होने को भाव पूजा कहते हैं।

प्रश्न— 800 दोनों प्रकार की पूजा करने के अधिकारी कौन हैं?

उत्तर यथायोग्य यथावसर सम्यग्दृष्टि गृहस्थ, अणुव्रती श्रावक और महाव्रती साधु ये तीनों ही अधिकारी हैं किन्तु गृहस्थों के भावपूजा क्वचित् कदाचित् भावनारूप में होती है सर्वकाल नहीं तथा द्रव्य पूजा प्रधान रूप से होती हैं क्योंकि गृहस्थ का जीवन आरम्भ परिग्रह, विषयवासना श्रृंगार अलंकार सहित है। भाव पूजा मुनियों के मुख्य रूप से है, द्रव्यपूजा क्वचित् कदाचित् गौणरूप से होती है। मू०चा० आ० वसुनन्दिकृत सं० मूल० गा० 24—25। ''अच्चिदूण'' अर्चयित्वा गन्ध पुष्प धूप दीपादिभिः प्रासुकै रानीतै र्दिव्यरूपैश्च द्रव्यैर्निराकृत मलपटल सुगन्धैश्च चतुर्विंशति तीर्थंकर पद युगलानामर्चनं कृत्वा अन्यस्याश्रुतत्वात्तेषामेव ग्रहणम्। अष्टमहाप्रातिहार्य समन्विता अर्हत्प्रतिमा तद्रहिता सिद्ध प्रतिमा अथवा कृत्रिमायास्ता अर्हत्प्रतिमा अकृत्रिमाः सिद्धप्रतिमाः— इस प्रकार तीर्थंकर का गुण ग्रहण पूर्वक नाम ग्रहण करके तथा मल पटल से रहित सुगन्ध द्रव्यों से युक्त लाये गये प्रासुक गन्ध पुष्प धूप दीप आदि पद्य से जल अक्षत नैवेद्य फल के द्वारा चतुर्विंशति तीर्थंकरों के चरण कमलों की अर्चना करके योगों की शुद्धिपूर्वक नमस्कार करना स्तवावश्यक है यहाँ तीर्थंकरों का ही स्तव समझना, शास्त्रगुरु का नहीं। गाथा 25 प्रातिहार्य सहित तथा कृत्रिम

प्रतिमायें अर्हत्प्रतिमा है और प्रातिहार्य रहित तथा अकृत्रिम प्रतिमायें सिद्ध प्रतिमा है। षडा० गा० 578 **पूयाकम्मं च–पूज्यंते अर्चयन्ते अर्हदादयो येन तत् पूजाकर्म बहुवचोच्चारण स्रक् चन्दनादिकं।**– जिन वचनों के द्वारा अर्हदादि पूजे जाते हैं ऐसे बहुवचनों को उच्चारण कर उनको चढ़ाये गये पुष्पमाला, चन्दनादि अष्ट द्रव्य वह पूजा कर्म कहलाता है। यहाँ पर कोई कहे कि मुनिजन तो आरम्भ परिग्रह के त्यागी होते हैं वे इस प्रकार की पूजा नहीं कर सकते हैं सो यह प्रश्न ठीक नहीं है ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये। क्यों ठीक नहीं है?

प्रश्न– 801 यह द्रव्य पूजा गृहस्थों के होती है, मुनियों के नहीं फिर यह कथन क्यों किया?

उत्तर आपका यह तर्क ठीक नहीं है क्योंकि आ. श्री कुन्दकुन्द ने मूलाचार की रचना मुनियों के लिए की है तथा गृहस्थों के लिए रयणसार की रचना की है। मूलाचार में मुनियों का ही वर्णन है प्रतिज्ञा भी मुनिधर्म को कहने की है। श्री मूलाचार का उद्गम स्थान आचारांग है तथा तीर्थंकरों का सर्वप्रथम उपदेश आचारांग पर ही हुआ अतः मुनियों की दिनचर्या का कथन आचारांग के मूलाचार में है और गृहस्थ धर्म का प्रतिपादन उपासकाध्ययनांग में किया गया है उसमें गृहस्थों की दिनचर्या का वर्णन है। वचन तथा काय की क्रिया प्रवृत्ति द्रव्य पूजा कहलाती है यदि मुनिजन द्रव्यपूजा नहीं करते हैं तो मूलाचार में, त्रिलोक प्रज्ञप्ति में, भक्तियों में पूजा का विधान क्यों करते? यदि आपको मुनियों के द्वारा की गई द्रव्यपूजा में पाप दिखता है जबकि गुरुओं ने बिना आरम्भ परिग्रह के की है तो फिर आचार्यों ने, पुष्पदन्त भूतबलि ने, आचार्य कुन्दकुन्द ने, आ. श्री यतिवृषभ ने ताड़पत्र में ग्रन्थ कांटे से क्यों उकेरे जब कि ताड़पत्र गीला होना चाहिए, न मुरझाया हो न सूखा हो। यदि मुरझाया है या सूखा है तो कैसे स्वर व्यंजन उकेरे जायेंगे? मुरझाया है तो कांटा लगाते ही झुक जायेगा तथा सूखा है तो टूट जायेगा इसलिए ताड़पत्र गीला होना चाहिए। इस बात पर यदि आपको विश्वास न हो तो जो ताड़पत्र में उकेरने का काम करते हैं या जानते हैं उनसे सम्पर्क कर लो मालुम हो जायेगा। सामग्री तो श्रावक ने हाथ में दी और मंत्रोच्चारण कर सामने चढ़ा दी इसमें क्या पाप हुआ जब कि ताड़पत्र तो हाथों में लिया और प्रत्येक पत्र में कांटे से शब्द को धीरे धीरे हाथ से छेद कर उकेरा, लिखे नहीं क्योंकि शब्द ऊपर लिखा जाता है और उकेरने में कांटा अन्दर तक जाता है जैसे आजकल धातुपाषाण की मूर्तियों में, बर्तनों में टांकी से या मशीन से उकेरा जाता है अन्दर तक निशान पहुंच जाता है जिसकी मर्यादा भी अधिक है। आपकी मान्यतानुसार गीला पत्र, ताजा ताड़पत्र सचित्त है या अचित्त? साधारण वनस्पति का है या प्रत्येक वनस्पति का, प्रत्येक वनस्पति में भी सप्रतिष्ठित वनस्पति का है या अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति का? इन महान अहिंसामहाव्रती आचार्यों ने क्यों प्रयोग किया? आजकल साधू वर्ग भी स्याही वाले पैन का प्रयोग करते हैं। वह स्याही पानी से गीली हैं या स्पिरिट से या केमिकल्स से? तो वह केमिकल्स क्या है? कैसे तैयार किया और किसका नाम है? क्या अहिंसा व्रत का, अहिंसा धर्म का इन्हीं गृहस्थ असंयमी, अभक्ष्य भोजन करने वाले पंडितों ने ठेका ले रखा है? अतः आचार्य उपाध्याय और साधु परमेष्ठी भी द्रव्यपूजा करते हैं। सामग्री का उपयोग

करते हैं जो आगम, तर्क से निर्दोष सिद्ध है जो विश्वास करने के योग्य है। यदि आचार्य वाक्य पर विश्वास नहीं किया तो किस पर विश्वास करोगे? क्या निर्ग्रंथ आचार्य वाक्यों पर विश्वास करना सम्यग्दर्शन है या पंडितों के वचनों में विश्वास करना सम्यग्दर्शन है? थोड़ा सोचो?

प्रश्न– 802 सो कैसे, मुनिजन आरम्भ परिग्रह के त्यागी होते हैं तब वे द्रव्य कहाँ से लायेंगे और कैसे चढ़ायेंगे?

उत्तर आचार्य किसी भव्य जीव को दीक्षा देते हैं तो सामग्री का, पुष्पों का उपयोग करते हैं। वर्षायोग प्रतिष्ठापन निष्ठापनयोग में या दिशाबन्धन में पुष्प, पीले सरसों या पीले चावलों का प्रयोग करते हैं तथा पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में दीक्षाकल्याणक, ज्ञानकल्याणक और मोक्षकल्याणक में मंत्रों से संस्कार करते समय लवंग का, पुष्पों का प्रयोग करते हैं तथा अंगन्यास में घिसी हुई गीली केशर का प्रयोग करते हैं, अन्यथा सर्वांग में बीजाक्षरों का, शक्तियों का आरोपण कैसे करेंगे? जब कोई विशेष कार्यक्रम होते हैं तो श्रावकगण समुच्चय अर्घ्य में, जयमाला में या निवार्णकल्याणक के दिन लड्डू में हाथ लगवाते हैं। इसीतरह किसी साधू आर्यिका आदि की असमय में, अबेला में समाधि होने पर हाथ पैर के अंगूठे का छेदन भेदन, बन्धन करते कराते हैं जबकि उस मृत शरीर में प्रतिक्षण धातु उपधातुओं में संख्यात असंख्यात और अनंत जीव उत्पन्न होते हैं और मरते हैं यह भी सोचो? आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक क्षुल्लिका, ब्रह्मचर्यदीक्षा में वस्त्र धारण कराते हैं। पीछी बनाते बनवाते समय कैंची ब्लेड को उपयोग में लेते या लिवाते हैं तथा संघस्थ त्यागी व्रतियों को वस्त्र धारण कराते करवाते हैं, दिलाते दिलवाते हैं इसीतरह स्वयं ने उपवास किया है पर संघस्थ साधुओं आर्यिकाओं को, त्यागी व्रतियों को, ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी बहनों को तथा आगन्तुक श्रावक श्राविकाओंको कारित और अनुमोदना रूप से भोजन आहार कराते हैं करवाते हैं आदि और भी प्रसंग हैं कि जिसमें आरम्भ परिग्रह का भरपूर प्रयोग होता है और महाव्रतों को पालने के लिए आचार्यों ने नव कोटियों से कहा है तथा पालन करने की प्रतिज्ञा की है। नवकोटियों से पालन भी करते हैं फिर भी व्यवहार धर्म के निमित्त या चतुर्विध संघ के पालन पोषण के निमित्त कुछ बाह्य चर्यायें ऐसी होती हैं जो कंथचित् गुण और दोष रूप में मालूम पड़ती हैं किन्तु रंगीन चश्मावालों को तो ये दूसरों की क्रियायें दोषरूप में ही दिखती है और अपनी स्वयं की नजर में ही नहीं आती हैं। आचार्यों के वस्त्र का त्याग है फिर वस्त्र क्यों धारण कराते हैं? एकभुक्त का या उपवास नियम है फिर दूसरों को आहार की आज्ञा क्यों देते हैं? क्यों भेजते हैं? वाहन का त्याग है फिर भक्तों को वाहन से आने जाने के लिए प्रेरणा या आशीर्वाद देते हैं? अहिंसा महाव्रत स्वीकार किया है फिर मंदिर, धर्मशाला, पाठशाला बनवाना, चलवाना, प्रतिष्ठायें करवाना आदि आरम्भ के कार्यों में अधिष्ठाता बनना, प्रेरणा देना इसके लिए आशीर्वाद देना क्या इन कार्यों में अपना उपयोग लगाना कारित और अनुमोदना नहीं है? अतः रंगीन चश्में को उतारकर स्वच्छ चश्मा धारण कर देखे तो दोष और गुण सही रूप में नजर आयेंगे। निष्कर्ष यह है कि जो कार्य आचार्य के गुण हैं वे मुनियों के, उपाध्यायों के दोष हैं इस कारण द्रव्य पूजा करना प्रसंगानुसार आचार्यादि का दोष नहीं है किन्तु गुण है। यदि आपको द्रव्य पूजा में दोष दिख रहा है तो उक्त कार्यों में दोष क्यों नहीं दिख रहा है? निष्पक्ष होकर देखो।

प्रश्न– 803 तो क्या सभी आचार्यभगवन ये कार्य करते कराते हैं जब कि ये आरम्भ परिग्रह के त्यागी महाव्रती हैं तो ये अपने व्रत की विराधना क्यों करते है?

उत्तर हाँ सभी आचार्य भगवन ये कार्य करते कराते हैं इस कारण आपका प्रश्न सही है ठीक है।

प्रश्न– 803(1)सौ कैसे ठीक है? उ. जरा थोड़ा सा निष्पक्ष होकर विचार करो। जो कोई श्रावक लौकिक कार्यों के लिए आशीर्वाद मांगता है तो क्या वे किसी न किसी रूप में आशीर्वाद नहीं देते? वह आशीर्वाद चाहे हाथ उठाकर दे, चाहे देख ले, चाहे मुस्करा ले, चाहे ॐ कहकर स्वीकृति प्रदान करे? साम्परायिक आश्रव में जीवाधिकरण के 108 भंग बताये गये हैं। अतः जब त्यागी या विशेष गृहस्थ भक्त आकर किसी कार्यक्रम के लिए आमन्त्रण देते हैं, आशीर्वाद मांगते हैं तब स्वीकृति मिलने के बाद ही कार्यक्रम प्रारम्भ होते हैं अब आप सोचो इन कार्यक्रमों में स्वीकृति ही मन से कृत कारित अनुमोदना, वचन से कृत कारित अनुमोदना, काय से कृत कारित अनुमोदना प्रत्यक्ष देखने में आती है, आ रही है तब शेष भंग बिना कहे अपने आप आ जाते हैं। सो कैसे? जब हाथ से आशीर्वाद दिया, शिर में कम्पन हुआ, शिर हिलाया या पीछी से आशीर्वाद दिया या मन्दमुस्कान से या ॐ उच्चारणकर स्वीकृति दी तब कृत कारित अनुमोदना हुई अतः अंतिम भंग प्राप्त होने पर पूर्व के भंग आ ही जाते हैं और आना भी अवश्यंभावी है किन्तु पूर्व के भंग होने पर आगे के भंग भजनीय हैं हो सकते हैं और नहीं भी हो सकते हैं अतः सभी त्यागी महाव्रती किसी न किसी भंग के साथ द्रव्य पूजा करते हैं द्रव्यसामग्री हाथ में लेकर या दूसरों के द्वारा चढ़वाते हैं। चोर प्रयोग चोरी का त्याग करके भी चोरी करने का प्रयोग बताना उपाय बताना चोरी पाप है। ठीक ऐसे ही पूजापाठ का, यात्रा का, दान का प्रयोग बताना, उपाय बताना उपदेश देना भी द्रव्य पूजा है। यदि कहो कि तीर्थंकर भी उपदेश देते हैं तो वो भी द्रव्य पूजा करते हैं सो ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि उनके घातिया कर्मों का क्षय हो चुका है अतः उनके पूजा करने का प्रसंग नहीं आता किन्तु यहाँ प्रमत्त अवस्था है, प्रमाद कषायपूर्वक आत्म प्रदेशों में कम्पन होता है। साम्परायिक आश्रव है अतः प्रमत्तों का दोष है और केवलियों का गुण है। इसी तरह आपको मालुम है कि कोई भी कार्य करना कराना अनुमोदना करना बराबर है आश्रव बंध में कोई अन्तर नहीं पड़ता तथा फल भी बराबर मात्रा में प्राप्त होता है। जैसे आदिनाथ बनने के पहले आठवें भव में जब चारण मुनि को आहारदान दे रहे थे तब उस समय उसी स्थान पर आहार देते समय पास में सिंह, बन्दर, नेवला और सर्प ये चारों दुष्टपरिणामी, क्रोधी, मांसाहारी, कृष्ण लेश्यावाले, अधोगति के मार्ग में जाने वाले ये तिर्यंच अज्ञानी होने पर भी दान को, दान की महिमा को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। मन से दान की अनुमोदना की, स्वयं की निन्दा की, तब उसी भव से लेकर मोक्ष पर्यन्त जो फल आदिनाथ ने पाया वही फल उन चारों प्राणियों ने पाया। इसी तरह जो फल सीता ने दान देकर, तपकर प्राप्त किया वही फल जटायु के जीव ने भी सीता के समान व्रत का पालनकर सोलहवें स्वर्ग का स्थान प्राप्त किया। इसी तरह कोटीभट श्रीपाल ने पूर्वभव में मुनि की निन्दा की थी तथा 700 सुभटों ने अनुमोदना की थी तब सभी ने राजा के समान फल पाया। इसी तरह पुण्यपाप के सम्बन्ध में अनेक उदाहरण है। अतः

लौकिक कार्यों में किसी प्रकार से एक भी कोटि उत्पन्न हुई तो सभी कोटी किसी न किसी प्रकार से आ उपस्थिति हो जाती है अपने को मालुम पड़े या न पड़े यह भिन्न बात है। तभी तो सूत्रकार ने "तीव्रमन्द ज्ञाताज्ञात भावाधिकरण वीर्य विशेषेभ्यस्तद्विशेषः।।" त.सू. अ.6 सू.6 तीव्रभाव मन्दभाव ज्ञातभाव अज्ञातभाव, आधार विशेष, शक्तिविशेष होने से आश्रवबन्ध में विशेषता आती है। इस कारण किसी भी त्यागी व्रती की, महाव्रती की हीनाधिक रूप में बाह्य चर्या को देखकर उनके प्रति ये गलत हैं या सही इस प्रकार आप निर्णय मत कर लेना जयसेनाचार्य ने धर्मरत्नाकर में अ.5 गा.118 पृ.110 में कहा है। "सगुणो निर्गुणोपि स्यात् निर्गुणो गुणवानपि। शक्यते न च निश्चेतुं मान्यः सर्वोप्यतो मुनिः।।" अपने चर्म चक्षुओं से जो गुणवान दिख रहा है वह निर्गुणी हो सकता है तथा जो गुणहीन सदोषी दिख रहा है वह गुणवान भावलिंगी मुनि हो सकता है। इसलिए मुनियों की बाह्य चर्या को देखकर यह निर्णय करना अशक्य है कि अभी जिनको देखा था वे सही हैं या गलत हैं अथवा ये सही हैं या गलत। इस कारण बाह्य में निर्ग्रन्थ लिंग, पीछी कमण्डलु, केशलोंच आदि क्रियाओं को देखकर मुनि मानकर उनका आदर सम्मान करना, विश्वास करना, वैयावृत्ति करना चाहिए। अन्यथा मत समझना। आ. श्री कुंदकुन्द ने द. प्रा. में कहा है कि सहज सम्बोधन अपने आपको किया है और उपदेश कदाचित् सबके लिए हो सकता है सम्बोधन का यह अर्थ है 'तं सोऊण सकण्णे दंसणहीणो ण वंदिव्वो।2।।' उस उपदेश को, संबोधन वाक्य को सुनकर दर्शन विहीन जीवों की वन्दना नहीं करना चाहिए। और भी –'सहजुप्पण्णं रूवं दट्ठुं जो मण्णए ण मच्छरिओ। सो संजम पडिवण्णो मिच्छाइट्ठी हवई एसो'।।24।। जो मात्सर्य भाव से, अहंकार से कि मैं निर्दोष हूँ ये सदोष हैं इस भाव से यथाजात रूप निर्ग्रन्थ लिंग मुनि को देखने योग्य दर्शन के योग्य है ऐसा नहीं मानता है किनारा कर जाता है वह संयमी सम्यग्दृष्टि मुनि होकर भी मिथ्यादृष्टि है क्योंकि वह अपने आप में अहंकारी है। इस अंहकार से ही वह पतन के मार्ग में स्थित है। मद धारै तो यही दोष वसु समकित को मल ठाने। छहढाला

प्रश्न– 804–05 सचित्त पूजा किसे कहते हैं? सचित्त की पूजा या सचित्त से पूजा किसे कहते हैं?

उत्तर चेतन आत्मा सहित पंचपरमेष्ठियों की पूजा, आदर सम्मान, गुणगान करने को, जल चन्दनादि सामग्री अर्पण करने को सचित्त पूजा कहते हैं क्योंकि पंचपरमेष्ठी सचित्त हैं चेतन सहित हैं। अतः इनकी पूजा ही सचित्त की पूजा है इनके सामने छने जल से, धूप दहन से, जलते हुए दीप से, पूजने को सचित्त से पूजा कहते हैं क्योंकि छना जल जलजीव से सहित है अग्नि स्वयं जीव है उससे आरती उतारने को सचित्त से पूजा कहते हैं?

प्रश्न– 806–07 सचित्त से क्यों पूजा करना? जीवों की विराधना होने से हिंसा पाप है धर्म नहीं रहा?

उत्तर गृहस्थ आरम्भ का त्यागी नहीं है, त्रस हिंसा का त्यागी है, संकल्पी हिंसा का त्यागी है

निरपराधी जीवों की हिंसा का त्यागी है। जब वह आवश्यकतानुसार ही विषय भोगों के निमित्त स्थावरों की विराधना करता है किंतु अनर्गल प्रयोग नहीं करता। आहार दान के निमित्त पाँचों स्थावरों का प्रयोग करता हैं अथवा सभी दानों के निमित्त स्थावरों को छिन्न भिन्न करता है। वनस्पति के पंचांगों को प्रयोग में लाता है और इनके प्रयोग में तत् तत् सम्बन्धी आरम्भ किया जाता है। जिस प्रकार इसमें आप पाप मानते हैं उसी प्रकार पूजा में भी पाप मानो। दान के कार्यों का त्याग करो, दान का त्याग करो तो पूजा और पूजा के कार्यों का भी त्याग करो क्योंकि गृहस्थों के लिए दान पूजा दोनों ही मुख्य धर्म बताये हैं। जब एक में पाप है तो दूसरे में पाप होना चाहिए और जब एक में पाप नहीं है तो दूसरे में भी पाप नहीं है। इस प्रकार अन्वय व्यतिरेक का नियम समझना चाहिए। यदि कुन्दकुन्द की दृष्टि में पाप था तो वे रयणसार में **दाणं पूया मुक्खं सावयधम्मे मुख्य धर्म कहकर प्रतिपादन नहीं करते तथा षट्कर्माणि दिने दिने यहाँ वीप्सा अर्थ में द्वित्य का प्रयोग किया है आवश्यक कर्तव्य कहा है। यदि पाप है तो क्या आचार्यों ने पाप करने को कहा है? क्या इसका उपदेश पापोपदेश नहीं कहलाया? यदि कदाचित् कहो कि हम सचित्त से पूजा नहीं करते हैं इसी कारण पानी अग्नि से गरम कर अचित्त कर लेते हैं तो फिर आप अग्नि किससे अचित्त करोगे? जो मंदिर में पंखे लगा रखे हैं उस हवा को कैसे अचित्त करोगे? लाईट को कैसे अचित्त करोगे? इस कारण सचित्त की पूजा करना या सचित्त से पूजा करना कोई दोष नहीं है। सब तरह से निर्दोष है। श्रावकगण अपने इन्हीं दानपूजाओं के द्वारा दिन प्रतिदिन अपनी आजीविका के माध्यम से कमाये गये पापकर्म को नष्ट कर देते हैं और सातिशय पुण्य को बढ़ाकर मोक्षमार्ग की पात्रता संयम पूर्वक बना लेते हैं।**

प्रश्न– 808 हरे फल फूल से पूजा करने को सचित्त पूजन कहते हैं ऐसा क्यों नहीं कहते हो?

उत्तर **नहीं कहते क्योंकि ये जो पूजा पाठमें हरेफल फूल के नाम आये हैं वे क्या साधारण वनस्पति के हैं? अप्रतिष्ठित या सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति के हैं? यदि ये फल फूल साधारण वनस्पति के तथा सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति के होते तो आपका कहना सही था किन्तु ये फल फूल आदि अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति के हैं तब इन्हें वर्तमान में वर्तमान नय से सचित्त कैसे कह सकते हैं? अतः ये नाम अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति के हैं जिनमें जीव नहीं हैं यदि इनमें जीव माना जाय तो अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति की परिभाषा ही नहीं बन सकती हैं।**

प्रश्न– 809 साधारण वनस्पति किसे कहते हैं?

उत्तर **जिस वनस्पति के अनन्तजीव स्वामी हैं जो स्वयं अनन्त जीवों का पिण्ड है जिसमें प्रतिक्षण अनंत जीव एक के जन्म श्वांसोच्छ्वास आहार के ग्रहण करने पर अनन्त जीवों का एक साथ जन्म मरण श्वांसोच्छ्वास आहार ग्रहण होता है तथा साधारण नामकर्म का उदय है जैसे कन्दमूल, आलू, मूली, गाजर, शकरकन्दी, पिंडालू, रतालू ,प्याज, लहसुन आदि अमरवेल, गुरवेल, गिलोय, गुडीची आदि अनन्तकायिक वनस्पति हैं जो आचार्यों ने गृहस्थों को जनम से ही त्याग कराया तब दान पूजा में देने के लिए, चढ़ाने के लिए कहाँ से लायेगा क्योंकि जिसको ग्रहण किया है**

उसीका त्याग करेगा जिसको ग्रहण नहीं किया उसका क्या त्याग करेगा अतः तभी तो आचार्यों ने गृहस्थों के लिए दान पूजा में भक्ष्य स्वरूप फल फूलों के त्याग को धर्म कहा।

प्रश्न— 810—11 प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव किसे कहते हैं? इसके कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर जिस वनस्पति का एक ही जीव स्वामी है उसे प्रत्येकवनस्पतिकायिक जीव कहते हैं। इसके दो भेद हैं। सप्रतिष्ठितप्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव और अप्रतिष्ठितप्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव।

प्रश्न— 812 सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव किसे कहते हैं?

उत्तर जिस वनस्पति का एक ही जीव स्वामी है किन्तु बाहर से आकर अनेक जीव उसमें निवास करने लगे हैं जिनका दिखना कठिन है, शोधन करना, अलग करना अशक्य है अथवा उसमें पैदा हुए है, पालन पोषण उसीमें हो रहा है फिर भी स्वामी नहीं है जैसे मनुष्यों के शरीर में अनेक त्रस जीव है फिर भी वे मनुष्य नहीं है तथा मनुष्य शरीर के मालिक नहीं हैं। उसे सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव कहते हैं। इस सप्रतिष्ठितप्रत्येक वनस्पति में उत्पन्न हुए जीव दृष्टिगोचर नहीं होते हैं फिर भी जिनप्रणीत आगम से जाने जाते है

प्रश्न— 813 अप्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पति जीव किसे कहते हैं?

उत्तर जिस वनस्पति का एक ही जीव स्वामी है तथा कोई दूसरा आगन्तुक जीव उसमें अभी आया नहीं न आने की सम्भावना है। कदाचित् आ भी गया तो मालिक बनने वाला नहीं है न तद्रूप होने वाला है। उसका संशोधन कर अलग कर सकते हैं उसे अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कहते हैं। इसलिए जो वास्तविक अहिंसावादी जैन हैं उनके द्वारा साधारण वनस्पति और सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति के फूल फल आदि खाने खिलाने योग्य नहीं है तथा न दानपूजा के योग्य है क्योंकि संख्यात, असंख्यात, अनन्त जीवों का पिण्ड होने से जैनों को छूना भी नहीं चाहिए तब खाना चढ़ाना तो बहुत दूर की बात है। हिंसावादी जैन, जैनाभास, अजैन या जैनों के समान अजैन इनका सेवन करते हैं। जो जिनेन्द्रदेव की आज्ञा का पालन नहीं करते हैं उन्हें जैन कैसे कह सकते हैं? जिस वनस्पति का जब एक ही जीव स्वामी है तब उसके फल फूल जो वृक्ष से, लता से अलग हो चुके हैं तो उन्हें सचित्त कैसे कह सकते हैं? अतः हरे फल फूल सचित्त नहीं हैं वर्तमान नय की अपेक्षा वर्तमान में सचित्त नहीं हैं किन्तु भविष्य में अनुकूल सामग्री प्राप्त नहीं हुई तो जीव श्नहीं आ सकता है और अनुकूल सामग्री प्राप्त हुई तो आ सकता है इस दृष्टि से उसे सचित्त कहते हैं। तभी तो पक्षपात पंथवाद की गठबन्धन से रहित आचार्यों ने दानपूजा में अर्पण करने को, चढ़ाने को कहा है। वे आचार्य भगवन्त स्वयं अहिंसावादी थे हिंसावादी नहीं थे तब हिंसा का उपदेश कैसे दे सकते हैं? फलफूल का पूजन नहीं है किन्तु धर्मायतनों का पूजन है ये फलफूल पूजन की सामग्री के माध्यम हैं यदि आप बाह्य में अर्पण करने वाली सामग्री को सचित्त मानकर उसका निषेध करते हैं तो दीप धूप का भी निषेध करना चाहिए क्योंकि अग्नि स्वयं सर्वकाल सचित्त है तथा लाईट से आरती उतारने का भी त्याग करना चाहिए। फिर मन्दिरजी में लाईट पंखा की क्या जरूरत? क्यों लगाना लगवाना? ये भी सचित्त हैं इन्हें क्यों

और कैसे अचित्त करोगे? इनके द्वारा प्रत्यक्ष में त्रस जीवों की विराधना होती हुई देखी जाती हैं। अतः ऐसा करने से पूजा के आठ मंत्रों में से पुष्प दीप धूप फल जल निकालकर पूजा करना चाहिए क्योंकि किसी में जीव मौजूद है, किसी में जन्म देने की योग्यता मौजूद है अतः कुछ ही मंत्र हैं जो आपकी मान्यतानुसार पूजा करने योग्य है। भावपूजा करने की पात्रता आई नहीं, द्रव्यपूजा करोगे नहीं फिर तुम्हारी सामग्री धनदौलत केवल पाप के काम की रही, चोर सरकार में जायेगी डॉक्टर, पुलिस, गुंडे खायेंगे। इस प्रकार आपको कौन सा गुण और कौन सा दोष उत्पन्न होगा यह हम नहीं जानते आप जाने और आगम जाने केवली जाने अथवा जिनमंदिर को स्थानकवासियों के उपाश्रय की तरह बना देना चहिये।

प्रश्न– 814 यदि हरे या सूखे फल सचित्त नहीं हैं तो पाँचवी आदि प्रतिमा वालों को साबित क्यों नहीं खिला सकते हैं?

उत्तर **यहाँ पर भावीनय की अपेक्षा से हरे या सूखे फलों को सचित्त कहते हैं अतः सचित्तत्याग नाम की पाँचवीं प्रतिमावालों को आदि लेकर मुनि पर्यन्त इंद्रियों को वश में करने का संकल्प होने से फलों को साबित नहीं खाते हैं, न खिलाते हैं न खाने को कहते हैं किन्तु जिनेन्द्र पूजन में न खाना है, न खिलाना है केवल जिन प्रतिमा के सामने या धर्मायतनों के सामने चढ़ाना है। यदि कहो कि त्यागियों को छिन्न भिन्न कर आहार में देते हैं सो तो ठीक है हमें इसमें कोई आपत्ति नहीं हैं तब आप ही आहार की तरह फलों को, पुष्पों को छिन्न भिन्न करके पूजा में चढ़ा सकते है। कच्चे चावल भी पूजा में, पुंज में नहीं चढ़ा सकते हैं क्योंकि आहार में कच्चे चावल न देकर भात बनाकर देते हैं सो इसी तरह चावल भी पकाकर चढ़ाना चाहिए। पर यह भी ध्यान में रखना कि जितनी जीवों की विराधना साबित फलों के चढ़ाने से नहीं होगी, उससे अनन्तगुणी जीवों की विराधना छिन्न भिन्न कर फल और पुष्पों को चढ़ाने में होती है क्योंकि अखंड फलों में मधुरता सुगन्ध बाह्य में अप्रकट होने से चींटी मक्खी मच्छर कम मात्रा में आते हैं अथवा नहीं भी आते हैं किन्तु सुधारे हुए फलों में मधुरता सुगन्धता और अन्दर का दल वर्ण या रूप प्रकट होने से मक्खी मच्छर आदि ज्यादा आते हैं और उनमें चिपक जाते हैं, मर जाते हैं जिससे हिंसा अधिक मात्रा में उत्पन्न होती है। यदि कहो कि सूखे फल चढ़ायेंगे तो पाप नहीं होगा। सो भी बात नहीं है क्योंकि सूखे फलों को भी भावी नैगम नय की अपेक्षा सचित्त कहते हैं। सूखे और साबित फल भी पाँचवीं प्रतिमा को आदि लेकर मुनि पर्यन्त सभी व्रती नहीं खाते न खिलाते हैं और न ही अनुमोदना करते हैं तथा पूजापाठ में फलों के साथ न सूखा पद विशेषण पाया जाता है, आपने भी सूखा फल चढ़ाता हूँ ऐसी प्रतिज्ञा भी नहीं की है किन्तु फलफूल चढ़ाता हूँ ऐसी प्रतिज्ञा की है इसी प्रकार का पद्य भी बोलते हैं और पद्यों में हरे फलों फूलों के ही नाम आते हैं अतः संकल्प के अनुसार ही पुण्यपाप का आश्रव बन्ध होता है यह तो आप जानते ही है। जैसे राजा यशोधर ने देवी के सामने आटे का मुर्गे जैसा आकार बनाकर, मुर्गे का संकल्प कर चढ़ाया था यहाँ पर मुर्गे का संकल्प था न कि आटे का। इसी तरह एकलव्य भील ने भी जंगल में मिट्टी पत्थर का मनुष्याकार बनाकर गुरु द्रोणाचार्य का संकल्प किया था न कि मिट्टी पत्थर का। बलि चढ़ाने का जो फल प्राप्त होता है यह फल राजा यशोधर ने प्राप्त किया था। यह यशस्तिलकचम्पू**

से समझ लेना चाहिए। "**संकल्पमेव जन्तूनां कारणं बन्धमोक्षयोः। वीतरागो पवर्गस्य सरागो बन्ध कारणम्।।**" प्राणियों का संकल्प ही बन्ध और मोक्ष का कारण होता है जैसे वीतरागता का संकल्प है तो मोक्ष की प्रप्ति होती है तथा यदि सरागता का संकल्प है तो संसार फल की प्राप्ति होती है। अतः गृहस्थ श्रावक की अपेक्षा पूजा दान के निमित्त सामग्री के त्याग में अन्तर नहीं है किन्तु पात्र में अन्तर है क्योंकि त्याग धर्म है और वह त्याग चाहे दान के निमित्त हो या पूजा के निमित्त हो। त्याग धर्म उत्कृष्ट परिणाम है भोग पाप है निष्कृष्ट परिणाम है अथवा वीतरागी और सरागी पात्र होने से त्याग में त्याग की भावना में त्याग की मात्रा में अन्तर होने से फल में भी अन्तर पड़ जाता है।

प्रश्न– 815 दाता किसे कहते हैं?

उत्तर देने वालों को दाता कहते हैं अथवा जो हाथ को ऊपर उठाकर हाथ से छोड़कर देता है उसे दाता कहते हैं। जैसे तराजू का पलड़ा छोडने वाला ऊपर और जो ग्रहण करने वाला नीचे होता है।

प्रश्न– 816–17 पात्र किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन–कौन हैं?

उत्तर लेने वाले को, ग्रहण करने वाले को, स्वीकार करने वाले को अथवा नीचे रहकर ग्रहण करने वाले को पात्र कहते हैं। पात्रों के तीन भेद हैं। उत्तमपात्र, मध्यमपात्र, जघन्यपात्र।

प्रश्न– 818 उत्तमपात्र किसे कहते हैं?

उत्तर जो सम्पूर्ण आरम्भ परिग्रह के, विषय विकार के, शृंगारालंकार के, कषायों के त्यागी हैं, इन्द्रिय विजेता हैं, ज्ञान ध्यान तप में लीन हैं ऐसे महाव्रती मुनियों को उत्तम पात्र कहते हैं।

प्रश्न– 819 मध्यम पात्र किसे कहते हैं?

उत्तर अणुव्रतधारियों को प्रतिमाधारियों को गृहस्थ हैं, गृहत्यागी हैं जो मूलगुणों के साथ अणुव्रतों को, गुणव्रतों को, शिक्षाव्रतों को पालते हैं उन्हें मध्यमपात्र कहते हैं।

प्रश्न– 820 जघन्यपात्र किसे कहते हैं?

उत्तर जो अविरतसम्यग्दृष्टि हैं मूलगुणों का पालन करते हैं संस्कारवश व्रतों का पालन करते हैं किन्तु संकल्पपूर्वक गुरुमुख से प्रतिमायें स्वीकार नहीं किये हैं उन्हें जघन्यपात्र कहते हैं।

प्रश्न– 821 उपरोक्त पात्रों में आर्यिका कौनसी पात्र है?

उत्तर चरणानुयोग की अपेक्षा उत्तमपात्र है क्योंकि दीक्षा विधि में संस्कार महाव्रतों के किये जाते हैं समाचारविधि और दिनचर्या मुनियों के समान ही होती है। मू.चा. गा. 187। प्रायश्चित्त भी मुनियों जैसा कुछ कम मात्रा में दिया जाता है। प्रतिदिन 28 मूलगुणों के नाम को बोलकर प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान आलोचना कह कर करती हैं। गुणस्थान की अपेक्षा देशसंयती है।

प्रश्न– 822 परमेष्ठी पद में आर्यिका का अन्र्तभाव न होने से पूज्य नहीं है क्योंकि परिग्रहवान है तथा आपने ऊपर आर्यिका को देशसंयती भी कहा है और वस्त्रधारी होने से गृहस्थलिंग धारिणी भी है, अतः अपूज्य है ?

उत्तर परमेष्ठी पद में आर्यिका का अन्तर्भाव न होने से उसे अपूज्य नहीं कह सकते हैं। चरणानुयोग की अपेक्षा उसे महाव्रती कहा ही है। एक वस्त्र होने से निर्ग्रन्थ ही कहा है। यदि एक वस्त्र को भी आपने परिग्रह धारिणी आर्यिका कहा तो दीक्षा विधि में परिग्रह त्याग महाव्रत का संस्कार क्यों किया? पुनः यदि कहो कि वह वस्त्र परिग्रह होने से अणुव्रती है सो भी ठीक नहीं है कारण चार महाव्रतों का संस्कार किया हो और एक अणुव्रत का सो ऐसा भी नहीं है फिर आपकी मान्यतानुसार आर्यिका के 28 मूलगुण नहीं हुए और न आठ मूलगुण तो फिर उसके कितने मूलगुण हैं और नाम कौन कौन हैं? यदि आर्यिका महाव्रती और अणुव्रती नहीं है तो तीसरा और कौन सा व्रती का नाम है सो बताओ? ऊपर हमने गुणस्थान की अपेक्षा उसे देशसंयती पंचम गुणस्थानवर्ती कहा है। निश्चय से चारित्र धर्म है चारित्तं खलु धम्मो ऐसा आः श्री कुन्दकुन्द ने प्र.सा. प्र.अ. गा.7 में कहा है तो क्या देशचारित्र धर्म अपूज्य है जबकि वह आर्यिका गुणस्थानानुसार देशचारित्री होने से चारित्रवान है असंख्यात गुणश्रेणी कर्मों की निर्जरा अवस्थित होती है अतः धर्मात्मा और पूज्य है। एवं विधाणचरियं चरंति जे साधवो य अज्जाओ। ते जगपुज्जं कित्तिं सुहं च लद्धूण सिज्झंति।।196।। मू.चा. <u>अर्थः</u>– उक्त चर्याओं का जो साधू पालन करते हैं और आर्यिकायें चर्या करती हैं वे जगत में पूज्य होती हैं, यश और सुख को प्राप्त कर सिद्ध हो जाते हैं हो जाती हैं। जब वह नीलीबाई गृहस्थ देवों के द्वारा उत्तम पूजा को प्राप्त हुई। सीता अग्नि परीक्षा में पास होने पर देवों के द्वारा पूज्य हुई। जब श्राविकायें उत्तम पूजा को प्राप्त कर सकती हैं तो आर्यिका क्यों नहीं प्राप्त कर सकती हैं। अतः उत्तम पात्र है।

प्रश्न– 823 क्या दाता दाता ही रहता है और पात्र पात्र ही रहता है या कभी कभी परिवर्तन भी होता है?

उत्तर नहीं प्रसंगानुसार कभी दान के सम्बन्ध में श्रावक दाता होता है तो कभी पात्र होता है इसी तरह मुनिजन भी कभी पात्र होते हैं तो कभी दाता भी होते हैं। जैसे आहार दान में श्रावक दाता है तो मुनिजन पात्र हैं तथा शिष्यों के लिए या बाहर से आने वाले श्रावकों, त्यागी व्रतियों के लिए आचार्य या वास्तव्य साधुवर्ग कारित अनुमोदना की अपेक्षा दाता हैं तो वे आहार लेने वाले पात्र हैं। ज्ञान दान में साधु गुरुजन दाता है तो श्रोताजन पात्र हैं। वसतिका दान में श्रावक दाता है तो साधु भी दाता और पात्र हैं। चारित्र धर्म को, नियमव्रत को देने में साधुजन दाता हैं तो श्रावक पात्र हैं। अतः प्रसंगानुसार साधु और श्रावकगण दाता और पात्र में परिवर्तन करते रहते हैं अर्थात् देने वाला दाता और लेने वाला पात्र कहलाता है।

प्रश्न– 824 वीतरागी मुनि भी दाता और पात्र होते हैं या नहीं? वीतरागी मुनियों के कितने भेद हैं?

उत्तर जिन मुनियों ने अपने ध्यान के बल से मोहनीय कर्म को समूल नष्ट कर दिया है उन्हें वीतराग कहते हैं। उनके तीन भेद हैं – छद्मस्थवीतरागीउपशान्तमोही, क्षीणमोही मुनि, सयोगकेवली। 11 वें 12 वें गुणस्थानवर्ती वीतरागी महामुनि दान के सम्बन्ध में न दाता हैं न पात्र हैं क्योंकि ध्यानावस्था है इनको किसी से लेन देन की कोई आवश्यकता नहीं है न किसी के उपकार

अपकार, उत्थान पतन की, संसार मोक्ष की कोई किसी प्रकार की चिन्ता नहीं होती है। सयोगकेवली वीतरागी आहारआदि ग्रहण नहीं करते अतः पात्र नहीं हैं किन्तु दाता अवश्य हैं क्योंकि धर्मोपदेश अवश्य करते हैं **किसके लिए दाता हैं?** मनुष्य, तिर्यंच और देवों के लिए उपदेश देते हैं। देवों ने इन्द्रों ने समवशरण की रचना की है, आठ मंगल द्रव्य, आठ प्रातिहार्य आदि की रचना की अतः इस सामग्री की अपेक्षा देवगण दाता हैं और तीर्थंकर प्रभु पात्र हैं तथा भगवान समवशरण की 12 सभाओं के मध्य सिंहासन के ऊपर चार अंगुल अधर विराजमान होकर भव्य जीवों को मोक्षमार्ग बतलाते हैं, धर्मोपदेश देते हैं अतः दाता है। नारकी जीवों को छोड़कर शेष तीन तिर्यंच मनुष्य देव ये धर्मोपदेश सुनते हैं, ग्रहण करते हैं अतः पात्र हैं और सिद्ध भगवान भी बिना वचनोपदेश के धर्मादि द्रव्यों के समान समस्त प्राणियों को मोक्षमार्ग दिखाते हैं अतः दाता हैं। सातिशय अप्रमत्त संयत नामक सातवें गुणस्थान से लेकर क्षीणकषाय नामक 12 वें गुणस्थान पर्यन्त ध्यानावस्था होने से गमनागमन न होने से, लेनदेन का व्यवहार न होने से दाता और पात्र दोनों नहीं हैं अथवा सिद्धों के समान ध्यानावस्था होने से भव्यों को मौनोपदेश देने की अपेक्षा दाता है। यदि तुमको मोक्ष चाहिए तो हमारे जैसे बन जाओ इस प्रकार मौन पूर्वक मोक्षमार्ग के दाता है। अतः दाता और पात्रों में अपेक्षा कृत अंतर है।

प्रश्न– 825 आप्त और प्रमत्त संयत मुनि इन दोनों में क्या अन्तर हैं?

उत्तर

आप्त अरिहंत	प्रमत्त मुनि
1. ये वीतराग सर्वज्ञ और हितोपदेशी होते हैं।	1. ये सरागी छद्मस्थ आज्ञानुवर्ती होते हैं।
2. ये कषाय रहित होते हैं।	2. ये कषाय सहित होते हैं।
3. तीनों कालों में घातिया कर्मों का क्षय होने से निर्विकारी होते हैं तथा अघातिया कर्मोदय की अपेक्षा विकारी होते हैं। इनका पतन न होकर उत्थान होता है, ऊर्ध्वगामी होते हैं। ये इन्द्रियातीत हैं भावेंद्रियों का अभाव है तथा द्रव्येन्द्रियों का सद्भाव है पर कार्य हीन हैं।	3. तीन चौकड़ी के अभाव में निर्विकार तथा संज्वलन कषायों के उदय के सद्भाव में विकारी होते हैं। इनका उत्थान और पतन दोनों ही संभव है। इनके द्रव्येंद्रिय और भावेंद्रिय इन दोनों का सद्भाव है प्रयोग भी होते हैं।
4. शुक्लध्यान सहित होते हैं।	4. रौद्रध्यान, निदान आर्तध्यान और शुक्लध्यान रहित आर्तध्यान तथा धर्मध्यान होता है।
5. परमशुक्ल लेश्या सहित होते हैं।	5. यथावसर छहों लेश्यायें होती हैं।
6. एकमात्र वज्रवृषभ नाराच संहनन और समचतुरस्र संस्थान के धारी होते हैं।	6. यहाँ छहों संहनन और छहों संस्थान हो सकते हैं।
7. इनका केवल विहार होता है।	7. इनका आहार विहार निहार भी होता है।
8. ये अनेक ऋद्धियों से सम्पन्न होते हैं।	8. इनके ऋद्धियां होती भी हैं और नहीं भी।

9. ये यथाख्यात संयमी होते हैं।	9. सामायिक और छेदोपस्थापना संयम होता है।
10. इनके क्षायिकज्ञानदर्शन होते हैं।	10. इनके क्षायोपशमिकज्ञानदर्शन होते हैं।
11. ये अनंत सुखी होते हैं।	11. ये सांत और अल्प सुखी होते हैं।
12. ये सैनी असैनी से रहित होते हैं।	12. ये सैनी होते हैं।

प्रश्न– 826 यदि पात्र में अन्तर है तो फल में भी अन्तर होना चाहिए?

उत्तर पात्रों में भेद है फिर भी इनकी भक्ति से, दानपूजा से फल में अन्तर प्राप्त नहीं होता है क्योंकि इनकी पूजा भक्ति से मोक्षमार्ग की प्राप्ति, गमन, पुण्य की प्राप्ति, वृद्धि और पाप की हानि प्राप्त होती है तथा विराधना करने से मिथ्यात्व की पुष्टि, पाप की वृद्धि, पुण्य की हानि होती है अतः पात्र में अन्तर होने से फल में अन्तर नहीं होता है। यदि दाता के परिणामों में अन्तर है तो अवश्य ही फल में अन्तर होता है जैसे दर्पण छोटा हो या बड़ा उसमें अपना प्रतिबिम्ब स्पष्ट स्वच्छ जैसा का तैसा दिखाई देता है ऐसा नहीं है कि छोटे दर्पण में मलिन चेहरा और बड़े दर्पण में स्वच्छ चेहरा दिखाई दे। हाँ दर्पण मलिन है तो अवश्य ही चेहरा मलिन दिखाई देगा परन्तु देव और गुरु में मोक्षमार्ग के प्रतिपादन की अपेक्षा कोई अंतर नहीं है। इनकी साधना में अन्तर है तथा साधना की मात्रा में अंतर है परन्तु यह अंतर दाता के फल में अंतर प्राप्त नहीं कराता है उक्त दर्पण के उदाहरण के अनुसार दाताओं को समझना चाहिए।

प्रश्न– 827 क्या सूखे फल फूलों से भी पूजा कर सकते है क्योंकि ये अचित्त है?

उत्तर अचित्त नहीं है किन्तु सचित्त है जैसे लौंग का बीज, इलायची का बीज, बादाम का बीज, सुपारी, कालीमिर्च, नारियल आदि भी योनिभूत होने से योग्य सामग्री मिलने पर अंकुर पैदा हो जाते हैं। यदि विश्वास नहीं है तो खेत में, मिट्टी में डालकर देख लो तथा ये उक्त बीज उन त्यागी व्रतियों को वैसे ही आहार में दे दो तथा सूखे फल बीजों को सर्वकाल सर्वत्र अचित्त मानते हैं या किसी विशेषकाल में या नय विशेष से अचित्त मानते हैं तब तो स्याद्वाद नय से सब सही हैं अतः आगम दृष्टि से भावी नयापेक्षया सचित्त हैं और वर्तमान नयापेक्षया अचित्त हैं।

प्रश्न– 828 सूखे फल फूल आदि वर्तमाननय की अपेक्षा वर्तमान में अचित्त हैं तो दयावान त्यागी व्रतीगण 5वीं प्रतिमा से मुनि पर्यंत आहार आदि कार्यों में प्रयोग कर सकते हैं क्या?

उत्तर नहीं, वर्तमान में या भविष्य में जिस भोजन सामग्री में जीवों को उत्पन्न करने की योग्यता है योनिभूत जीव हैं तो दयावान त्यागी व्रती मुनिजन आहारादि कार्यों में प्रयोग नहीं कर सकते हैं यदि प्रयोग करते हैं तो दयावान त्यागी व्रती कैसे? क्योंकि संयम पूर्वक दयावान होने से जीव विराधना के भाव ही उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्रश्न– 829 अचित्त पूजा किसे कहते हैं?

उत्तर पंचपरमेष्ठियों के प्रतिबिम्बों की पूजा आराधना, शास्त्रों की पूजा आराधना, अकृत्रिम चैत्य,

चैत्यालयों की पूजा आराधना, नव देवताओं की मूर्तियों की पूजा आराधना करने को अचित्त पूजा कहते हैं अथवा जिस पूजन सामग्री में जीवों को उत्पन्न करने की योग्यता नहीं हैं उससे पूजा करने को अचित्त पूजा कहते हैं।

प्रश्न 830 सूखी सामग्री फल फूलादि से पूजा करने को अचित्त पूजा क्यों नहीं कहते हो?

उत्तर नहीं कहते हैं क्योंकि यहाँ सामग्री की पूजा नहीं की जा रही है किन्तु मोक्षमार्ग के साधनभूत धर्मायतन की पूजा की जा रही है, अतः फलफूल की पूजा नहीं। यह सामग्री भक्तिमार्ग की बाह्य साधन भूत है, माध्यम है, उपाय है। यह व्यवस्था उलझने के लिए नहीं है किन्तु सुलझने के लिए है।ऐसा जिनन्द्र का उपदेश है। यहाँ पक्षपात पंथवाद मत समझना।

प्रश्न– 831 मिश्रपूजा किसे कहते हैं?

उत्तर मूर्ति और मूर्तिमान की, देवशास्त्रगुरु की, नवदेवताओं की एकसाथ पूजा करने को मिश्रपूजा कहते हैं अथवा सचित्त और अचित्त की एकसाथ पूजा करने को मिश्रपूजा कहते हैं।

प्रश्न– 832 पूजा करने की विधि क्या है? सामग्री के नाम कौन कौन हैं?

उत्तर सर्वप्रथम जिनाभिषेक करके फिर ठोना में पूज्यों को पुष्पों के द्वारा आह्वानन स्थापन और सन्निधिकरण करके अष्ट द्रव्य से पूजन प्रारम्भ करना चाहिए। अष्ट द्रव्य सामग्री के नाम जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल और अर्घ्य, जयमाला गुणगान विशेष किया जाता है। तथा अंत में शांतिपाठ और विसर्जन किया जाता है।

प्रश्न– 833 जल किसे कहते हैं? जल किसके समान होता है?

उत्तर जल नामकर्म के उदय से प्राप्त पर्याय को जल कहते हैं। जिस प्रकार मुनियों का मन पवित्र होता है, स्वच्छ होता है, सुगन्धित होता है, पक्षपात पंथवादरूपी मैल से रहित होता है उसी प्रकार यह जल स्वच्छ, पवित्र, निर्मल गंगा नदी के निर्गमस्थान के समान सुन्दर, सुगन्धित, स्वच्छ और शुद्ध होना चाहिये जो हर तरह से ग्रहण करने के योग्य होता है।

प्रश्न– 834 हैंडपम्प का, नल का पानी अभिषेक पूजा के काम में ले सकते हैं क्या?

उत्तर नहीं ले सकते हैं क्योंकि अभिषेक पूजा में लिये जाने वाले जल को मुनियों के मन के समान कहा है। ''मुनिमन सम उज्जवल नीर'' मुनिमन जैसो है गंगा को जल'' दुग्धाब्धि संस्पर्धि गुणैर्जलोघैः क्षीर समुद्र के जल के समान संस्कृत देव शास्त्र गुरु पूजा, विद्यमान विंशति तीर्थंकर पूजा आदि में रेवानदी का अर्थात् बड़े सुन्दर तालाब का, यमुनानदी का जल होना चाहिए किंतु यहीं के जलों में गंगा यमुना के और क्षीरसमुद्र के जल की स्थापना कर लेते है। जिस जल की जीवाणी यथास्थान पहुंचाई जा सकती है ऐसा जल शुद्ध कहलाता है यही पानी दान पूजा अभिषेक के काम में लेना चाहिए, यदि तुम्हारा ऐसा विश्वास है कि मुनियों का मन हैंडपम्प के जल के समान, ट्यूबवैल के जल के समान, नल के पानी के समान है जिस प्रकार इन स्थानों के पानी में जीवरक्षा नहीं होती किन्तु विराधना ही होती है, ठीक इसी तरह मुनियों के मन में जीवहिंसा के भाव हैं प्रमादी मन है तो उक्त जलाशयों का जल काम में लेना चाहिए अन्यथा

पूजापाठ में जैसे शुद्ध जल के नाम हैं उसी पानी को धर्म कार्यों में उपयोग में लाना चाहिए। दूसरा अशुद्ध जल नहीं क्योंकि अशुद्ध जल से जीव हिंसा ही होती है।

प्रश्न– 835–36 सर्वप्रथम जल से पूजा करने को क्यों कहा? जल से पूजा करने का क्या फल है?

उत्तर जिस प्रकार जल का स्वभाव नीचे की ओर बहने का है, मिट्टी के संसर्ग से गन्धा हो जाता है उसी प्रकार यह परिवर्तनशील संसार हैं, चतुर्गतियों में भ्रमण होता है, नाना तरह से जन्ममरण इष्टवियोग, अनिष्ट संयोग, आगंतुक, क्षेत्र संबंधी, काल संबंधी, शरीर संबंधी, मानसिक और अपमान आदि के दुःखों को अनादि काल से भोगता हुआ आ रहा है इस कारण पाप कार्यों में बिना प्रयास के मन स्थिर हो जाता है। अतः पाप कार्यों से मन को हटाकर सर्वप्रथम धर्म कार्यों में मन को स्थिर करने के लिए जल से पूजा करने को कहा है। अतः पूजा का फल जन्म जरा मृत्यु को नष्ट करना क्षय करना ही श्रेष्ठफल हैं।

प्रश्न– 837 जल से पूजा करने का मंत्र कौन सा है?

उत्तर ॐ ह्रीं देवशास्त्र गुरुभ्यो जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा। हे आप्तागम तपोभृत आपकी पूजा भक्ति से मेरा जन्मजरामृत्यु का विनाश हो इसके लिए मैं आपकी जल से पूजा करता हूँ। यह मंत्र परम्परागत आचार्यों के द्वारा पूजाओं में चला आ रहा है।

प्रश्न– 838 तो क्या किन्हीं ने इस मन्त्र के विरुद्ध कोई दूसरा मंत्र बनाया है? बनाया है तो क्यों बनाया?

उत्तर हाँ अवश्य ही बनाया है देखो पूजन पाठ प्रदीप 27 वां संस्करण पृ.101 देवशास्त्रगुरुपूजा कांजीभक्त पं. युगलजी ने ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो मिथ्यात्वमल विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा। यह मन्त्र उन्होंने अपना पंथ अलग बताने के लिए बनाया हैं। इनकी मान्यता है कि पूजा पाठ से कर्मों का क्षय और विशेष निर्जरा नहीं होती है। फिर भी आश्चर्य है कि उन्होंने जल से पूजा कर मिथ्यामल को धोने की भावना भाई हैं यहाँ पर स्पष्ट कथनी और करनी में अन्तर दिखाई देता है। न्याय सिद्धान्त की अपेक्षा यह विरुद्ध भावना है जो स्ववचन बाधित दोष से दूषित हैं इस प्रकार कल्पना कर उन्होंने अपने मिथ्यादृष्टिपने को सूचित किया है क्योंकि पुष्प से सुगन्धि तथा चमड़े से दुर्गन्ध बिना प्रयास के अपने आप प्राप्त होती है।

प्रश्न– 839 उन्होंने अपने में मिथ्यादृष्टित्वपने को क्यों सूचित किया है?

उत्तर आ. श्री पूज्यपाद देवनन्दिजी ने इष्टोपदेश में कहा है 'ददाति यस्तु यस्यास्ति सुप्रसिद्ध मिदं वचः।' जिसके पास में जो होता है वह वही देता है ऐसी यह प्रसिद्ध नीति है। अतः युगलजी ने मिथ्यामल धोने आया हूँ यह कहा है इस वचन से उनके अन्दर भावमिथ्यात्व और द्रव्यमिथ्यात्व बैठा है तथा व्यक्त भी है क्योंकि वर्तमान में देवशास्त्रगुरु के प्रति भक्तिभाव नहीं, बहुमान नहीं, अहंकार की मूर्ति बने हुए हैं तभी तो किसी गुरु के पास में जाकर मूलगुण अणुव्रत धारण नहीं किये, न किसी दिगम्बर मुद्राधारी को गुरु बनाया, न उनकी वैयावृत की, न किसी

त्यागी व्रती आचार्यादि को आहार दानादि दिये इससे उनका द्रव्यमिथ्यात्व और भावमिथ्यात्व स्पष्ट झलक रहा है। अन्यथा मिथ्या मल धोने आया हूँ ऐसा नहीं कहते।

प्रश्न– 840 यदि कवि के भावमिथ्यात्व नहीं है तो मिथ्यामल धोने आया हूँ ऐसा क्यों कहा?

उत्तर कवि के द्रव्यमिथ्यात्व और भावमिथ्यात्व मौजूद है तभी तो धोने को तो कहा है कि मिथ्यामल धोने आया हूँ इसलिए यह पूजा मिथ्यादृष्टि कवि ने बनाई और मिथ्यादृष्टियों ने पूजा की। यदि कवि के और पूजा करने वालों के अतंरंग में मिथ्यात्व अविश्वास अश्रद्धान नहीं है और फिर भी कहा तो झूठ पाप कहलाया। यदि कहो कि हमने अपनी लघुता प्रकट की है सो भी बात नहीं है क्योंकि लघुता प्रकट करने के लिए अनेक शब्द हैं उनका प्रयोग कर सकते थे पर नहीं किया क्योंकि उन्हें अपने अन्दर के भाव प्रकट करना है, मायाचार भी है। परम्परागत मंत्र को छोड़कर नया मन्त्र बनाया, आज्ञा का उल्लंघन किया तब आज्ञासम्यक्त्व ही नहीं रहा तथा आज्ञाव्यापादनी साम्परायिक आश्रव की क्रिया होने से तिर्यंचायु का आश्रव होता हैं। तिर्यंचायु का आश्रव मिथ्यात्वगुणस्थान में मिथ्यादृष्टि जीव के होता है और पतन की अपेक्षा सासादन गुणस्थान में भी बन्ध कर सकता है। गो.क. ''उम्मग्ग देसओ मग्गणासओ गूढ हियय माइल्लो। सठसीलो य ससल्लो तिरियायु बंधदे जीवो।'' जो जीव मिथ्यामार्ग का उपदेश देता हो, सन्मार्ग का नाश करने वाला हो, मायावी हो, मूर्ख स्वभाव वाला हो, शल्य सहित हो वह जीव तिर्यंचायु का आश्रवबंध करता है। पूर्वाचार्यों ने, त्यागी व्रतियों ने, भट्टारकों ने, कवियों ने किसी मंत्र में और मंत्र के भावों में कोई परिवर्तन नहीं किया क्योंकि मंत्रों का पठन चिन्तन मनन धर्मध्यान है। कहा भी है 'पदस्थं मंत्र वाक्यस्तं' मंत्र वाक्यों का चिन्तन पदस्थ धर्मध्यान है, इससे शुक्लध्यान होता है, शुक्लध्यान से कर्मों का क्षय होता है और कर्मों के क्षय से मोक्ष की प्राप्ति होती है। त.सू. अ.9 'परे मोक्ष हेतू' अन्त के दो धर्मध्यान और शुक्लघ्यान मोक्ष के हेतु हैं और अविनाभाव सम्बन्ध को हेतु कहते हैं अर्थात् जिसके सद्भाव में कार्य हो और अभाव में कार्य न हो उसे अविनाभाव सम्बन्ध कहते हैं। सर्वा.–अ–6 सू–5 टीका चैत्य गुरु प्रवचन पूजादि लक्षण सम्यक्त्व वर्द्धिनी क्रिया–चैत्य, गुरु और शास्त्र की पूजा आदि लक्षणवाली सम्यक्त्ववर्द्धिनी नाम की क्रिया कही है। इन प्राचीन आचार्यों का प्रामाणिक कथन है। यह क्रिया सम्यक्त्व के पहले हुई या हो रही है तो ये ही परिणाम प्रायोग्यलब्धिके और करणलब्धि के होकर सम्यग्दर्शन को उत्पन्न करते हैं और सम्यग्दर्शन के बाद में हुए तो सम्यक्त्व को पुष्ट करते हैं और संयम के साथ में होने से संवर निर्जरा कराकर शुक्लध्यान की पात्रता बनाकर श्रेणी आरोहण कराके, कर्मों का क्षय कराके मोक्ष प्राप्त कराते हैं। ऐसी यह कर्म सिद्धान्त की, आध्यात्म की ध्यानावस्था की परम्परा है इस प्रकार विश्वास करना चाहिए। अतः जन्मादि के विनाश के लिए शुद्ध जल से पूजा करते हैं कि हे भगवन्त! अनादिकालीन जन्ममरण की परम्पराका विनाश हो इसलिए जल से पूजा करता हूँ।

प्रश्न– 841 जब जल से पूजा करने पर जन्मादि का क्षय हो गया तब पुनः चन्दन

से पूजा करने को क्यों कहा गया?

उत्तर जन्म जरा मृत्यु को क्षय करने के उद्देश्य से जल से पूजा की है परन्तु जन्म जरा मृत्यु का क्षय तो हुआ नहीं यदि जन्म जरा मृत्यु का क्षय हो जाता समाप्ति हो जाती तो शरीर कैसे रहता? वस्त्राभूषण, मकान दुकान, धन दौलत, परिवार, विषय विकार आदि का सम्बन्ध क्यों बना रहता? दान पूजा क्यों करते? जब पृथक्त्ववितर्क वीचार शुक्लध्यान में स्थित मुनि किसी एक विषय में अपने उपयोग को स्थिर रखने में असमर्थ हैं तभी तो अर्थसंक्रान्ति व्यंजनसंक्रान्ति योगसंक्रान्ति को प्राप्त करते हुए आगे बढ़ते हैं तो गृहस्थ की क्या कथा? गृहस्थ का मन तो अत्यन्त चंचल है। धर्म कार्यों में, मोक्षमार्ग में स्थिर न होकर, पाप कार्यों में, ख्याति पूजा लाभ में, विषय भोगों में मन स्थिरकर तीव्र पाप को बांधता हैं, कदाचित् मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय को भी बांधता है अतः इनका त्याग कर, शुभ की पात्रता बढ़ाकर, शुभ योग में स्थिर होकर, शुभोपयोग को प्राप्त कर, शुद्धोपयोग की पात्रता को प्राप्त करने के लिए नाना मंत्रों का सहारा लेकर आगे कदम बढ़ाता है। वह गृहस्थ अपने परिणामों को विषय कषायों से बचाकर, मंत्रों के माध्यम से संख्यातासंख्यात गुणी कर्मों की निर्जरा करता हुआ, पाप कर्मों का संवर करता हुआ, उपयोग के काल को पूर्ण करके मन्त्रान्तर का सहारा लेता है। इसलिए जल से पूजा के बाद में संसार में भ्रमण करते हुए, नाना प्रकार के दुःखों से सन्तप्त हुआ, ताप को दूर करने के लिए चन्दन से पूजा करता है। जिस प्रकार चन्दनादि शीतल पदार्थ शारीरिक संताप को दूर करते हैं उसी प्रकार चन्दन से पूजा करने पर विषयकषाय, वैर विरोध रूपी अंतरंग संताप दूर होता है क्योंकि आत्मशुद्धि के कारणभूत षडावश्यक कार्यों में मन स्थिर करने से अन्तः संताप दूर होता ही है। तभी तो आ. श्री कुन्दकुन्द रयणसार–में दानपूजा को प्रधान धर्म कहा है इसलिए जिनवाणी पर विश्वास करना ही मोक्षमार्ग है और जनवाणी पर सत् विश्वास करना संसारमार्ग है।

प्रश्न– 842 चन्दन केशर कर्पूरादि किसे कहते हैं?

उत्तर प्रत्येकवनस्पति नामकर्म के उदय से प्राप्त पर्याय को प्रत्येक वनस्पति कहते हैं। संग्रहनय की अपेक्षा एक ही प्रकार की है। व्यवहारनय की अपेक्षा सप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पति और अप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पति ये दो भेद हैं अथवा भेद प्रभेद की अपेक्षा असंख्यात लोक प्रमाण भेद हैं। उनमें चन्दन वनस्पति नाम कर्मोदय से प्राप्त पर्याय चन्दन वृक्ष, केशर वनस्पति नामकर्मोदय से प्राप्त पर्याय केशरवृक्ष, कर्पूर वनस्पति नाम कर्मोदय से प्राप्त पर्याय कर्पूर वृक्ष आदि वनस्पतियों को समझना चाहिए। दान पूजाओं में जितनी भी वनस्पतियों के नाम फूल पत्ते शाखा प्रतिशाखायें गिनाईं हैं वे सब अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति समझना इनका उपयोग करना शेष दो सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति और साधारण वनस्पति का प्रयोग अहिंसावादी जैनों के लिए सर्वथा निषेध है अतः जो अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति शीतल हैं स्वभाव से सुगन्धित हैं देखने में सुन्दर हैं वे वनस्पति जो शारीरिक संताप को हरने वाली हैं उन सभी का ग्रहण कर लेना चाहिए।

प्रश्न– 843 शारीरिक संताप को दूर करने के लिए या आत्मशान्ति के लिए पूजा करते हैं?

उत्तर हमारा उद्देश्य हमारा हेतु तो चन्दन से पूजा करने पर आत्मशान्ति प्राप्त करने का है फिर भी तात्कालिक शारीरिक संताप तो दूर होता ही है किन्तु साथ साथ मन की आकुलतायें भी दूर हो जाती ही हैं क्योंकि दोनों का अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है। जिस प्रकार सफर करते समय थोड़ी देर के लिए किसी यात्री से थोड़ा सा वार्तालाप हुआ कि अन्दर से इतना प्यार विश्वास हो जाता है कि अपनी चेतन अचेतन सामग्री निःसंकोच उसे सौंप कर बाहर चले जाते हैं या सो जाते हैं तब इस शरीर के साथ आत्मा का संबंध अनादि काल से चला आ रहा है तो क्या शरीर के साथ आत्मा का प्रेम नहीं होगा? अर्थात् अवश्य होता ही है इस कारण शारीरिक संताप के दूर होने पर मन की स्थिति सही हो जाती है। तन बिगड़ जाने पर मन बिगड़ जाता है अतः आत्मशान्ति हेतु पूजा करते हैं, किन्तु संसार की, शरीर की शान्ति हो ही जाती है।

प्रश्न– 844 आजकल पूजक का मन पूजा में स्थिर नहीं होता है किन्तु आकुलतायें देखी जाती है। पूजक बीच बीच में बातें करने लग जाते हैं, इधर उधर देखने लगते हैं, हंसी मजाक भी कर लेते हैं, सो भी जाते हैं, गृह व्यापार में, ग्राहक में, विषय भोगों में भी मन चला जाता है तब फिर पूजा का समीचीन फल कैसे प्राप्त होगा जो आपने कहा है उसे ठीक से समझाओ?

उत्तर यदि पूजक का मन चंचल है, प्रमादी है तो इसमें पूजा का, मंत्रों का क्या दोष है, दोष तो पूजक का है देखो धर्माचरण का पालन करो पालन करते समय मन में अशिष्ट चपलता है तो डरो मत, घबराओ मत! तभी तो तीर्थंकरों ने, आचार्यों ने प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना, निन्दा गर्हा आदि कार्य बताये। यदि बीमारी है तो औषधि की उपयोगिता है अन्यथा दवाई की क्या जरूरत? यदि आपका मन स्थिर है, चंचल नहीं है तो प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त की क्या आवश्यकता? मन चंचल है तभी तो प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त आदि किये जाते हैं। यदि बीमार व्यक्ति डॉक्टर के पास जाये और स्वास्थ्य अच्छा हो तो क्या दवाई देगा अरे भाई बीमार व्यक्ति को दवा दी जाती है इसी तरह धर्माचरण का पालन करते समय मन चंचल होगा तो स्थिर होने का उपदेश दिया जायेगा, स्थिर करने का उपाय बताया जायेगा। यदि गृहस्थ का जीवन पाप में डूबा हुआ है उसको मन स्थिर करने का उपदेश दिया जायेगा क्या? नहीं। सर्वप्रथम पाप को छोड़ने का उपदेश दिया जायेगा बाद में धर्माचरण को पालन करने का, मन स्थिर करने का उपदेश दिया जायेगा। यदि गृहस्थ का मन निश्चल हो चुका है तो मुनि आर्यिका बनने की क्या जरूरत? अतः धर्माचरण का पालन करते समय मन विकृत होना हानिकारक नहीं है। यदि होता है तो उससे डरो मत, गल्ती को अच्छा समझो मत, पुनः प्रायश्चित्त करो। यदि वस्त्र धारण किया है तो गन्धा भी होगा फटेगा भी सही। यदि आप कपड़े के गन्धे होने से, फटने से, धोने से, पुनः सिलाने से घबराते हो तो प्रारम्भ में ही कपड़ा मत सिलाओ, धारण मत करो, रहो नंगे। हमें क्या आपत्ति है? शरीर के जिस अंग में बीमारी होती है उसी अंग का इलाज किया जाता है सर्वांग का नहीं। इसी तरह पूजक की असावधानी है तो पूजक का दोष है, पूजा का, मंत्र का नहीं। जिसका दोष है, जिसमें दोष है उसीका संशोधन करना चाहिए। यदि पूजक का दोष है

तो पूजक अपना संशोधन करे और पूजा के मंत्रों में गलती है तो पूजा के मंत्रों का उच्चारण कर पूजा और मन्त्र का संशोधन करो। देखो गृहस्थ श्राविकायें एकाशन उपवास करके भी अपने परिवार के लिए नाना तरह के भोज्य पदार्थ बनाती हैं, खिलाती हैं पिलाती हैं पर उनका मन चलायमान नहीं होता क्योंकि त्याग का संकल्प किया है, तप का संकल्प किया है, तो सामग्री अपने पास में अपने हाथ में होने पर भी मन स्थिर रहता है, इसी तरह आप भी तप त्याग, संयम धर्म का सहारा लेकर पूजा पाठ स्वाध्याय करेंगे तो मन कैसे चंचल होगा बताओ? जब तक पूजापाठ कर रहे हैं तब तक के लिए समस्त आरंभ परिग्रह, विषय भोगों का, शृंगार अलंकार का, आहार विहार निहार का, व्यापार का संकल्प पूर्वक त्याग करने से मन चलायमान नहीं होता है आ. श्री पुष्पदन्त भूतबलि ने विकृत मन्त्र को शुद्ध कर पुनः जप किया तो साफ स्वच्छ देवों का स्वरूप स्पष्ट दिखाई दिया इस तरह आपका अभिप्राय गलत है तो आप अपने अभिप्राय का संशोधन करे, अपनी चर्या चर्चा सुधारें तभी सही फल प्राप्त होगा, अन्यथा नहीं। अतः शारीरिक संताप को दूर करने के लिए चन्दन से पूजा करना चाहिए और अन्तः संताप को दूर करने के लिए चन्दन अर्पण करने के साथ साथ विषय कषायों का भी त्याग करना चाहिए। तभी समीचीन फल प्राप्त होगा। यह फल कब प्राप्त होता है? कैसे कहाँ क्यों प्राप्त होगा? आदि विचार करना विपाकविचय धर्मध्यान है और यह फल मेरे को प्राप्त हो यह निदान आर्तध्यान है

प्रश्न– 845 मन स्थिर नहीं, अर्थ समझ में नहीं आता तो फिर पूजापाठ करने से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा?

उत्तर जब आप छोटे थे तब उस समय क्या पढ़ने के लिए प्रेम से जाते थे? नहीं, उस समय आपके माँ बाप ने उदासीनता धारण नहीं की थी कि इसका मन होगा तब पढ़ लेगा अपने आप पढ़ने को चला जायेगा या समझेगा तो पढ़ने जायेगा? किन्तु माँ बाप ने पहले प्रेम से पढ़ने को भेजा यदि नहीं गये तो वस्त्र आभूषण, खाने पीने का, रुपया पैसा का या अन्य प्रकार से प्रलोभन देकर भेजा फिर भी नहीं गये तो बलात् भेजा इतने पर भी नहीं गये तो मारपीट कर बांधकर भेजा और पढ़ा लिखाकर इस पद पर बैठा दिया उस समय की माँ बाप की जबरदस्ती और आपकी नासमझ बिना इच्छा के भी आज क्या फल दे रही है। यह आपको मालुम है आज सुन्दर फल फूल दे रही है, जीवन सुखी है। उसी तरह आज आपका मन पूजा स्वाध्याय में नहीं लगता है कोई बात नहीं है, पर आप करते कराते रहें, घबराये नहीं। धीरे–धीरे आप की समझ में आयेगा। बहुत अच्छा परम्परा से भोगभूमि के, स्वर्ग के सुखों को प्राप्त कराकर मोक्ष में ले जायेगा। आप या आज का मनुष्य मानवता छोड़ सकता है, कृतघ्नी हो सकता है परन्तु धर्म धर्मायतन पूजा पाठ ये कृतघ्नी नहीं होंगे और ये प्रत्युपकार भी नहीं चाहते हैं। जैसे आप आम के वृक्ष के नीचे जायें तो वृक्ष आपको छाया देगा ही मना नहीं करेगा परन्तु आप वृक्ष के नीचे नहीं जाये फिर छाया मांगे तो आप की मूर्खता कहलायेगी और वृक्ष के नीचे जाकर फिर छाया मांगे तो भी मूर्खता कहलायेगी इस सम्बन्ध में अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जैसे मेघ का, सूर्य का, चन्द्रमा आदि का ये प्रत्युपकार के बिना शरणागत को यथेष्ट समय पर फल देते हैं अनमोल सुख प्रदान करते हैं ऐसे ही धर्म बिना प्रत्युपकार के उपकार करता है अतः प्रयत्नपूर्वक धर्म को धारण करो

क्योंकि मिश्री को सूरदास खाये या आँख वाला खाये दोनों को मीठी लगेगी किसी को नमकीन लगे ऐसा नहीं। थोड़ा प्रयोग करके देख लो तब विश्वास हो जायेगा।

प्रश्न– 846 चन्दन से पूजा करने का मन्त्र कौन सा है?

उत्तर चन्दन से पूजा करने का मन्त्र इस प्रकार है ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो संसार ताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा। अथवा ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो सुगन्धित शरीर प्राप्ताय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा। प्रथम मंत्र का फल सिद्धावस्था है तो द्वितीय मंत्र का फल अरिहन्तावस्था है। परम्परागत होने से दोनों मंत्र सही है क्योंकि तीर्थंकर कुमारों का जन्म से ही शरीर सुगंधित होता है। जो पूर्वकृत अत्यंत पवित्र भावना को बतलाता है।

प्रश्न– 847 चन्दन से पूजा करने का विरुद्ध मन्त्र कौन सा है जो निश्चयाभासी पंडित ने बताया है?

उत्तर ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो क्रोध कषायमल विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा। हे देवशास्त्रगुरु आपकी पूजा का फल क्रोध कषाय मल का विनाश हो मेरे को यह फल चाहिए।

प्रश्न– 848–49 इस कहानपंथी ने यह विरुद्ध मन्त्र क्यों बनाया? क्या इच्छा थी?

उत्तर जब पुत्र पिता से अलग होना चाहता है तो अपना प्रत्येक कार्यक्रम व्यापार आदि पिताजी के नाम से अलग, अपने नाम से करता है यदि सारा कार्यक्रम पिताजी के नाम से करे तो न्यारा कैसे कहलायेगा? अतः बदलकर अलग करना ही पड़ता है वैसे ही इन कहान पंथवालों को और कांजी स्वामी को पूर्व परम्परा से अलग होना था, दिगम्बर जैनों की अखंड शक्ति को तोड़ना था। अपना स्वयं का मत चलाना था तभी तो इन लोगों ने अलग से मन्त्र बनाकर तथा अनेक सिद्धान्त विरुद्ध नियमों की स्थापना कर, अपना कार्यक्रम नाम आदि अलग कर लिए यदि एकसाथ में रहते तो अपनी मान्यता की स्थापना नहीं कर पाते और न हो पाती तथा प्राचीन दिगम्बर जैनों से मान्यता प्राप्त न हो पाती। अतः उनका मंत्रों को अलग बनाना, अपने नाम से कार्यक्रम अलग करना और क्वचित् कदाचित् ग्रंथों में भावार्थ बदल कर या स्वतंत्र रचकर छपाना उनके लिए न्याय ही है।

प्रश्न– 850–851 अक्षत किसे कहते हैं? अक्षतों से पूजा करने को क्यों कहा?

उत्तर जिसके टुकड़े न हो, खण्ड खण्ड न हो उसे अक्षत कहते हैं। अखण्ड मोतियों से पूजा करने पर अखंड अक्षय मोक्ष पद प्राप्त होता है क्योंकि मोतियों के, रत्नों के टुकड़े नहीं होते हैं अंकुर नहीं फूटते न अंकुर उत्पन्न होते हैं इसलिए पहले श्रावकगण अधिकतर मोतियों से पूजा करते थे जो अनेक कथाओं में पढ़ा जाता है और आजकल सफेद अखंड चावलों से पूजा करते हैं।

प्रश्न– 852–53 आजकल मोती मिलते नहीं तथा जैन लोग चावलों में मोतियों की कल्पनाकर चढ़ाते हैं सो योग्य है या अयोग्य?

उत्तर बाह्य में चर्मचक्षुओं से देखने पर मोती और चावलों में अन्तर होने पर भी भावात्मक अन्तर नहीं है इसी कारण आश्रवबन्ध में, संवर निर्जरा तत्त्व में अन्तर नहीं पड़ता है क्योंकि संकल्प के अनुसार ही संसारमार्ग मोक्षमार्ग, पुण्यपाप, धर्म अधर्म, आश्रव बन्ध में, सवंर निर्जरा में, साधु

श्रावक में अन्तर पड़ता है। चावल धान वनस्पति जीव का शरीर है। मोतीरत्न न त्रस जीव है न स्थावर किन्तु प्राणिज है। मोती सीप से उत्पन्न होते हैं, गजमोती हाथी से उत्पन्न होते हैं। चावल और मोतियों में केवल अंकुरोत्पत्ति न होने से समानता है शेष साधनों में असमानता है।

प्रश्न– 854 चावल ही शुद्ध हैं क्योंकि अंकुर उत्पन्न नहीं होता किन्तु मोती अशुद्ध है क्योंकि वह प्राणिज है ऐसा स्वीकार करने में क्या दोष है?

उत्तर यदि आप स्वच्छ मन से, विवेक से कहते हैं तो आपका कथन ठीक है तथा लोभ से या अंहकारपूर्वक कहते हो तो ठीक नहीं है। सो कैसे? जब आप चावलों को पानी में डालकर धोते हैं तो रगड़ने से चावल के टुकड़े टुकड़े हो जाते हैं। कीड़े सुड़ी चीटी भी आ जाती हैं। आजकल चावल घुन जाते हैं जो त्रसजीव से युक्त होने से सचित्त भी कह सकते हैं और खण्डित तो हैं ही। उबले या उबलते हुए पानी में धोने पर भातपने का भी प्रसंग आता है, न्याय की अपेक्षा विचार करने पर प्रथम समय का पाक नहीं मानने पर अंतिमपाक भी नहीं बन सकता क्योंकि अवयवों के मिलने पर ही अवयवी बन सकता है, बनता है। अवयव के बिना अवयवी नहीं होता, चावलों का प्रथम पाक ही क्रमशः वृद्धि को प्राप्त होते होते अंतिम पाक को प्राप्त होता है। इस नियम के अनुसार धान ही निर्दोष है, धान में ये दोष नहीं आते। धान अखण्ड है, न घुनता है, न सुड़ी पड़ती है, न चींटी लगती हैं। धान में एक दोष है कि उसमें अंकुर उत्पन्न होता है सो यह भी अधिक पुराना हो जाये तो अंकुर उत्पन्न नहीं होता शेष दोष चावल में उत्पन्न होते हैं। केवल चावलों को चढ़ाने की पद्धति चल पड़ी है, आदत बन गई है, पर विचार करने पर चावलों को चढ़ाना सदोष और धान चढ़ाना निर्दोष है तथा मोती प्राणिज है इसी कारण तो आप मोती को सदोष मानते हैं। यदि सर्वथा मोती सदोष है तो फिर अंगूठी में, माला में डलवाकर क्यों पहनते हो? आप अपने शरीर में क्यों धारण करते हैं? गर्मी और ग्रहों की शांति के लिए क्यों धारण करते हो? स्वास्थ्य और ताकत के लिए मुक्तापिष्टी, मोतीभष्म क्यों खाते हो? जिनदेव के सामने चढ़ाने में, त्याग करने में दोष मानते हो, दोष लगता है तो खाने में, धारण करने में दोष क्यों नहीं मानते हो? खाने में, धारण करने में पाप का बन्ध नहीं मानते हो? जब कि त्याग धर्म है भोग पाप है। आहार में आहारादि संज्ञाओं की पूर्ति होती है। आपके कथनानुसार भोग में पुण्य का आश्रव बन्ध होता है और त्याग में चढ़ाने में पाप है ऐसा आपका विश्वास है तभी तो आप कहते हैं कि मोति प्राणिज होने से सदोष है और चावल निर्दोष है, गुण है। अतः अपनी दृष्टि से गुण दोषों का विचार न कर परम्परागत आगम से सोचना चाहिए।

प्रश्न– 855 अक्षत अखण्ड चावलों से, मोतियों से पूजा करने को क्यों कहा?

उत्तर जिस प्रकार मोतियों में या आज की परम्परानुसार चावलों में अंकुर पैदा नहीं होता किन्तु मोतियों में, चावलों में कोई रंग नहीं विकार नहीं स्वाभाविक शुद्ध स्वच्छ हैं, उसमें कोई विकारी रंग नहीं इसी तरह आत्मा में कोई रूपरंग नहीं, विकार नहीं ऐसी शुद्ध अखण्ड अक्षय विकार रहित शुद्धात्मा को प्राप्त करने के लिए शुद्धमोती से, अक्षत से पूजा करता हूँ। चावल टूटे, घुने, सड़े, गले, कीड़ों से सहित नहीं होना चाहिए।

प्रश्न— 856 आजकल जैनी भाई पूजा की सामग्री बाजार से कम कीमत की अलग लाते हैं और खाने की अच्छी अलग से लाते हैं तब पूजा के लिए इतने हीन परिणाम होने से अक्षयपद मोक्षपद कैसे प्राप्त हो सकता है?

उत्तर उन मोहियों के धर्म के, त्याग के निमित्त इतने हीन परिणाम हैं तो अशुभ भाव होने से मोक्षपद की प्राप्ति तो दूर रहो किन्तु सातिशय पुण्य, मोक्ष के कारणभूत पवित्रता की प्राप्ति भी नहीं होती है उनके लिए ऐसा पुण्य भी असंभव है। किंचित् निरतिशय भोग निमित्तक पुण्य का आश्रव बंध कर लिया तो भोग सामग्री की प्राप्ति, भोग निमित्त पुण्य के उदय में आने पर हुई तो भोगविलास में रमण करते हुए मरण कर नारायण, प्रतिनारायण, नारद, रौद्र के समान अधोगति की प्राप्ति होगी। अरे धर्मात्मा को अधोगति की प्राप्ति होती है तो फिर सद्गति की प्राप्ति पापी जीव को होगी? परन्तु ऐसा होता नहीं। ऐसे मोहियों ने धर्म के महत्व को समझा नहीं और भोग को ही सब कुछ समझ रखा है। तभी तो ये लोभी नामधारी भक्तपुजारी पूजा के लिए कम कीमत की सामग्री और अपने खाने के लिए अच्छी सामग्री लाते हैं सो उनकी दृष्टि में भोग श्रेष्ठ हैं प्रधान हैं और दान पूजापाठ त्याग धर्म आदि का महत्व तुच्छ है अतः हीन परिणाम होने से यहाँ भी दुःखी और पर भव में दुःखी। इन मोहियों को आत्मसुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है?

प्रश्न— 857 भगवान तो खाते नहीं फिर अच्छी वस्तु, अधिक वस्तु चढ़ाने से क्या मतलब? इस प्रकार मोही लोभी जीव ने प्रश्न किया?

उत्तर भगवान तो खाते नहीं इससे तुम्हें क्या मतलब? तुम अपने हीन परिणाम क्यों रखते हो? उनके लिए पूजा करते हो तो तुम्हारी मूर्खता है पूजा तो अपने आत्महित के लिए की जाती है। जैसे किसान अगले वर्ष में उत्तम फल प्राप्त करने की इच्छा से अपने कामभोग से बचाकर उत्तम बीज रख लेता है। हीन बीज बोने से उत्तम फल की प्राप्ति कैसे हो सकती है अतः उत्तम मोक्षपद की प्राप्ति के लिए उत्तम श्रेष्ठ सामग्री चढ़ाना चाहिये।

प्रश्न— 858 अक्षत से पूजा करने का मंत्र किस प्रकार है?

उत्तर ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा। भक्त इस मन्त्र से देव शास्त्र गुरु की आराधना कर मेरे को अक्षयपद की प्राप्ति हो ऐसी भावना कर रहा है।

प्रश्न— 859 अक्षत से पूजाकर भगवान से अक्षयपद क्यों मांगा यदि मांगा तो यह निदान आर्तध्यान क्यों नहीं?

उत्तर अक्षयपद मोक्षपद चाहना मांगना निदान आर्तध्यान नहीं है किन्तु अपायविचय धर्मध्यान विपाकविचय धर्मध्यान है। धर्मसाधन करके धर्म का फल भोगसामग्री चाहना निदान आर्तध्यान है। इस क्रिया का यह फल है ऐसा विचार करना विपाकविचय धर्मध्यान है। संसार बन्धन से छूटने का उपाय यह निषेधरूप में, मोक्ष की प्राप्ति हो यह विधि रूप में अपायविचय या उपायविचय धर्मध्यान हैं। धर्मध्यान का फल मोक्ष है और निदान आर्तध्यान का फल संसार बन्धन, कुछ कम चौरासी लाख योनियों में भ्रमण जन्ममरण हैं अतः धर्मसाधन कर मोक्ष चाहना निदान आर्तध्यान नहीं है किन्तु धर्मध्यान है इस प्रकार परंपरागत मंत्र का अर्थ लगाना चाहिए।

प्रश्न– 860 विरुद्ध मन्त्र कौनसा है जो धारण करने या ध्यान करने योग्य नहीं है?

उत्तर ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मानकषायमल विनाशनाय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा। यह मन्त्र परम्परा का तथा न्याय का उल्लंघन करने वाला होने से ग्रहण करने योग्य नहीं है।

प्रश्न– 861 इस मन्त्र ने या इन मन्त्रों ने कौन से न्याय का उल्लंघन किया है?

उत्तर कोई भी महापुरुष कार्य करते हैं तो अपूर्ण फल नहीं चाहते किन्तु पूर्ण फल चाहते हैं। जो शाश्वत हो, हमेशा के लिए हो किन्तु कांजीभक्त पंडितजी ने यहाँ पर पूजा का फल मानकषाय का क्षय हो यह मांगा है या चाहा है जब कि अभी आगे कषाय मौजूद हैं उनको भी क्षय करना शेष है तथा कुछ प्राप्त करना है अतः यह पूर्ण फल नहीं है। यदि इसे ही पूर्णफल मान लिया जाय तो आगे कर्म प्रकृतियों का, विकारों का क्षय क्यों करना पड़े? अनन्त चतुष्टय प्राप्त करना बाकी है अतः यही न्याय का उल्लंघन है इस कारण सज्जन पुरुष पूर्ण फल चाहते हैं, अपूर्ण नहीं और जो अपूर्ण फल चाहते हैं वे सज्जन नहीं किन्तु दुर्जन हैं।

प्रश्न– 862 पुष्प किसे कहते हैं?

उत्तर फलरूपी कार्य को उत्पन्न करने में कारणभूत सामग्री को फूल या पुष्प कहते हैं। ये फूल वनस्पतिकायिक वृक्षों में, पौधों में, बेलों में प्रसिद्ध हैं कुछ में केवल पुष्प आते हैं किन्तु फल नहीं आते। आ. श्री समन्तभद्रजी ने सुमति जिन की स्तुति करते हुए कहा है–''खे नास्ति पुष्पं तरुषु प्रसिद्धम्'' आकाश में फूल नहीं होते हैं किन्तु वनस्पतिकायिक वृक्षों में पुष्प उत्पन्न होते हैं ऐसी प्रसिद्धि है तथा त्रसकायिक जीवों के शरीर में पुष्प उत्पन्न नहीं होते हैं। पृथ्वी जल अग्नि और वायुकायिक जीवों के शरीर में पुष्प उत्पन्न नहीं होते हैं, न लगते हैं, न दिखाई देते हैं, न सुने जाते हैं, न पढ़े जाते हैं।

प्रश्न– 863 कल्पवृक्षों में फूल लगते हैं ऐसा पढ़ा है, सुना है सो ठीक है या नहीं?

उत्तर नहीं, ठीक नहीं है क्योंकि कल्प के साथ वृक्ष पद जुड़ा है तथा आ. श्री समन्तभद्रजी ने तरुषुप्रसिद्धम् ऐसा कहा है। कल्पवृक्ष पृथ्वीकायिक हैं और पृथ्वी से भोजनपान, पक्वान्न, मिष्ठान्न, वस्त्राभूषण आदि सामग्री की उत्पत्ति होती है तो वहाँ पर वनस्पतिकायिक और जलकायिक जीवों का अभाव ठहरता है ऐसा मानना पड़ेगा? सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं हैं क्योंकि भोगभूमियों में नदिओं का, बिना बोये धान्यों का वर्णन पढ़ा जाता है। फिर कुभोगभूमिज मनुष्य वहाँ की मधुर मिट्टी खाते हैं और सुभोगभूमिज भी पृथ्वी से उत्पन्न भोजन करते हैं, खाते हैं तो सुभोगभूमिज और कुभोगभूमिज मनुष्यों में क्या अन्तर रहा है? यदि मिट्टी का पक्वान्न, मिष्ठान्न बन जाता है तो फिर वनस्पति की या जल की क्या आवश्यकता? क्या मिट्टी ही पेय पदार्थ बन जाती है? यहाँ पर पक्व और मिष्ठ के साथ अन्न पद जोड़ा गया है। अन्न में वनस्पति नाम कर्म का उदय है या वनस्पति का शरीर है और पृथ्वी में पृथ्वि नाम कर्म का उदय है या पृथ्वि का शरीर है। इतना अवश्य है कि उस समय वहाँ पर उत्पन्न हुए धान्यों को अग्निपक्व करना नहीं जानते, उस धान्य को उसी रूप में खाते थे जैसे आजकल कच्ची अवस्था में ही चना, गेहूँ, मटर आदि अनेक फल और बीजों को मनुष्य खूब अच्छे स्वाद से खाते हैं और कोई नमक से खा लेते

हैं बिहार प्रान्त में या जहाँ कहीं भी गरीब परिवार, आदिवासी कच्चे चावल, पौआ भी वैसे ही कच्चे खा लेते हैं जो ताकत घी, दूध, दही से आती है, स्वाद आता है वही स्वाद और ताकत रूखे सूखे भोजन से प्राप्त होती है। इस कारण आधार और आधेय में अभेद विवक्षाकर सारी भोग्य सामग्री कल्पवृक्षों से प्राप्त होती है ऐसा कहा है। अतः पुष्पों की उत्पत्ति वनस्पतिकायिक वृक्षों में, बेलों में ही होती है अन्य में नहीं इस प्रकार निश्चय करना चाहिए।

प्रश्न– 864 महापुराणादि ग्रन्थों में पढ़ा है कि श्री आदिनाथजी ने प्रजा को गन्ने का रस निकालना, धान्य की खेती करना, बताया था सिखाया था। यदि उस भोगभूमि में धान्य आदि नहीं था या नहीं थे तो उस समय धान्य गन्ना को कहाँ से लाये और खेती करना कहाँ से सिखाया? कैसे सिखाया बताओ?

उत्तर राजा आदिनाथ ने कहीं बाहर से मंगाकर या लाकर बताया हो सो ऐसी बात नहीं है किन्तु भोगभूमिज जीवों के भाग्य से वहाँ पर धान्यादि की उत्पत्ति होती थी और विनाश होता था किन्तु वे उस धान्यादि का विशेषरूप से उपयोग करना नहीं जानते थे, या साधन उपलब्ध नहीं थे या कोई समझाने वाला नहीं था। वे भोगभूमिज अग्नि से पकाना, कूटना, पीसना आदि नहीं जानते थे तब वे उस धान्य को वैसा का वैसा ही खा लेते थे। श्री आदिनाथजी ने बोना नहीं सिखाया था। बिना बोये उत्पन्न होते थे और परिपक्व होकर गिर जाते थे। उपयोग में लाने का विशेष तरीका उनको मालुम न था। अतः श्री आदिनाथ ने अग्नि आदि से संस्कारित कर उपयोग करने का तरीका बताया था। जैसे आजकल अनेक धान्य फल शब्जी अपने अपने क्षेत्रों में उत्पन्न होते हैं कहीं–कहीं उसका उपयोग करना जानते हैं और कहीं–कहीं नहीं जानते हैं तो वे वहाँ उसी तरह फूलना, गिरना, नष्ट होना आदि कार्य स्वाभाविक रीति से होते रहते हैं किन्तु अन्य अन्यदेशों की वस्तु भोग्यसामग्री का उपभोग करना नहीं जानते हैं तो क्या हमको उसका ज्ञान न होने से उसका अस्तित्व नहीं है? जिनेन्द्र का सिद्धान्त है कि सर्वथा समूल सत् का विनाश नहीं होता है तथा असत् का उत्पाद नहीं होता है। जिस वस्तु का तीन काल में अस्तित्व नहीं है अब उसका सत्व कहाँ से पाया जा सकता है? अतः श्री आदिनाथजी ने काटना, पकाना, खाना, सुसंस्कारित कर उपयोग में लाना सिखाया था ऐसा नहीं है कि कहीं दूसरे देशों से लाकर सिखाया हो ऐसी बात नहीं हैं।

प्रश्न– 865 पुष्प कैसे होना चाहिए, पीले चावल के या धातु के या वनस्पति के होने चाहिए?

उत्तर पुष्प सुन्दर हों खिले हुए हों, त्रस जीवों से रहित हों, सड़े गले न हों, वासे पुराने मुरझाये न हों, धरती पर गिरे हुए न हों, अजैनों के, अश्रद्धालुओं के हाथ के न हों, बाजार के न हों, छने हुए शुद्ध जल से धोये हुए हों, पुष्प की पंखडियों में छिद्र न हो, अपने आप परिपक्वावस्था के हों, नीचे बिछे हुए वस्त्र पर गिरे हुए हों या हाथ से तोड़े हों ऐसे शुद्ध पुष्पों से पूजा करना चाहिए अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति के होना चाहिए और ये पुष्प वनस्पति के, पीले चावल के, सोने चाँदी के हो अथवा खाली हाथ हों फिर भी आपने पुष्प के चढ़ाने का संकल्प किया है तो आपको

संकल्प के अनुसार आरंभी हिंसा संबंधी पापकर्म का आश्रव, कामवासना में त्याग वृत्ति होने से पाप का संवर, विशेष सावधानी होने से सातिशय पुण्य का आश्रव बन्ध, इनके स्थितिबन्ध अनुभागबन्ध में उत्कर्षण तथा पूर्वबद्ध कर्मों की संख्यात गुणी असंख्यात गुणी प्रति समय निर्जरा होती है। यथासंभव संकल्पानुसार ही कदाचित् फल की प्राप्ति होती है। सर्वथा नहीं। अतः चर्या चर्चा एकरूप में होने से ही सदाचार या रत्नत्रय पूर्वक संकल्पानुसार फलीभूत होते हैं।

प्रश्न– 866 संकल्पानुसार ही शुभाशुभ फल की प्राप्ति होती है, सर्वथा नहीं फिर ऐसा क्यों कहा?

उत्तर संकल्पानुसार ही शुभाशुभ फल की प्राप्ति होती है यह एक सामान्य नियम है किन्तु विशेष नियम ऐसा है कि संकल्प कुछ हो और फल कुछ और हो। विवेकवान होकर के भी शुभ संकल्प है, संकट दूर करना है, सुखी बनना है या बनाना है किन्तु पर्याप्त जानकारी नहीं है, असावधानी है। सर्प ने काटा है, बिच्छू का मन्त्र पढ़कर झाड़ने लगे या सर्प के मंत्र में ही हीनाधिक अक्षर होने से, मन्त्र गलत होने के कारण जहर कैसे दूर होगा? या विष मिश्रित लड्डू खाओ और संकल्प करो अमृत से बने लड्डू का तो क्या संकल्प कुछ और फल कुछ प्राप्त न होगा अर्थात् भले ही संकल्प अमृत मिश्रित लड्डू खाने का और खाया विषमिश्रित लड्डू तो आपको जीवनदान मिलेगा या मृत्यु मिलेगी यह आप स्वयं निर्णय करें। अतः जैसा संकल्प है वैसी ही सावधानी असावधानी और चर्या होनी चाहिए तो अनुकूल ही संकल्पानुसार शुभाशुभ फल की प्राप्ति होती है। यदि संकल्प सावधानी और चर्या में विभिन्नता है तो इन तीनों की शक्ति में विशेषता किसकी है, ताकत किसकी ज्यादा है उसीके अनुसार ही शुभाशुभ फल की प्राप्ति होती है फिर चाहे वह संसारमार्ग हो या मोक्षमार्ग, लोक व्यवहार हो या धर्मव्यवहार ऐसा निर्णय करना चाहिए।

प्रश्न– 867 पुष्प सचित्त हैं क्योंकि उसमें अनेक जीव पाये जाते हैं अतः निर्दोष होने से पीले चावल ही चढ़ाना चाहिए ऐसा क्यों विश्वास नहीं करते हो?

उत्तर पुष्प जब तक बेल में, पोधे में हैं तब तक ही सचित्त हैं वृक्षादि से अलग होने पर अचित्त हो जाते हैं। अतः वे अलग होने के बाद स्वाभाविक अचित्त हैं। यदि उनमें आगन्तुक जीव हैं तो उनको सावधानी पूर्वक देखकर, शोधकर अलग कर पुनः उस जीव को उसी वनस्पति में पहुंचा देना चाहिए बाद में चढ़ाना चाहिए। यदि संशोधन करते समय भी पुष्प से जीव अलग हो नहीं पा रहा है तो उस पुष्प को नहीं चढ़ाना चाहिए, पर सर्वत्र मना मत करो क्योंकि आजकल चावलों में भी जीव पैदा हो जाते हैं तो उसे छान बीनकर शोधकर धोकर चढ़ाते हैं तथा मटर, तुअर, चना, गेहूँ खाद्य सामग्री में, हरी सूखी सब्जी फलों में भी जीव पाये जाते हैं, घुन लग जाते हैं, सुड़ी इल्ली तिरूले पड़ जाते हैं। भोजन करते हुए, आहार करते हुए भी आहार में कीड़े आ जाते हैं तो अन्तराय कर देते हैं उसका त्याग उस समय के लिए कर देते हैं पर हमेशा के लिए साधू श्रावक नहीं छोड़ते हैं। न खाना पीना बन्द करते हैं। तो पूजा क्यों बन्द करना पड़े। अतः सामग्री को देखकर, शोधकर फिर पूजा करना चाहिए अन्यथा प्रमाद होने से समस्त पाप आ जाते हैं।

प्रश्न– 868 पुष्पों की जगह पीले चावलों को पुष्प मानकर चढ़ा सकते हैं क्या?

उत्तर काम तो चल सकता है परन्तु आपने संकल्प तो पुष्प का किया है, पुष्प का नाम और पुष्प का मन्त्र बोला है, हर तरह चर्चा चर्या से निर्दोष प्राचीन दिगम्बराचार्यों ने इस प्रकार की कल्पना नहीं की थी कि पीले चावलों को पुष्प मानकर चढ़ाना? फिर भी आपका आग्रह है तो पुष्प का संकल्प कर लो पर आप आश्रव बन्ध से कैसे बच सकते हैं? पुष्प बाह्यावलम्बन है। पुष्पों से पूजा करने का भाव अंदर का है। यदि आपको फूल तोड़ने में आरंभ दिखता है, कदाचित् जीव विराधना होने से किंचित् पापकर्मों का आश्रव बंध होता है किंतु पुण्य कर्मों का सातिशय आश्रवबंध होता है। उस विशाल पुण्य राशि के सामने किंचित् पाप कर्म नगण्य है, ना के बराबर है। आ० श्री समन्तभद्रजी ने भ० वासुपूज्य की स्तुति में कहा है—"पूज्यं जिनं त्वाऽर्चयतो जनस्य सावद्य लेशो बहु पुण्य राशौ। दोषाय नालं कणिका विषस्य न दूषिका शीत शिवाम्बु राशौ।।"।।58।। जिस प्रकार विष की कणिका विशाल पूर्ण भरे हुए समुद्र को जहरीला नहीं बना सकती किन्तु समुद्र अपनी लहरों के द्वारा किनारे पर फेंक देता है उसी प्रकार जिनपूजा का पुण्य भी आरम्भ जन्य पाप को हीन शक्ति वाला कर देता है अथवा समूल क्षय कर देता है। संक्रमण अपकर्षण आदि करा देता है, करा लेता है। अतः फूल को चढ़ाने में जो फल प्राप्त होना है वह फल आपको पीले चावल चढ़ाने से या धातु के पुष्प चढ़ाने से होगा कोई अन्तर नहीं है। हाँ इतना अवश्य है कि यदि आप अहंकारी बन कर जिनपूजा करते हैं तो प्रथम पाप अहंकार का, दूसरा पाप झूठ बोलना, तीसरा पाप मायाचार छलकपट का, चौथा पाप श्रृंगार भोग विलासादि का। लौकिक कार्यों में निःसंकोच पुष्पों का प्रयोग कर धर्मकार्यों में विरोध करना आदि से शास्त्रों का अवर्णवाद करना पाप है अतः मायाचार आदि जीवाधिकरण के 108 भेद पूर्णरूप से आ जाते हैं। आपने चावल पीले किससे किये हैं? केशर से किये या हरश्रृंगार के सूखे फूलों से? केशर भी फूल हैं और हरश्रृंगार के भी फूल हैं। फूल तो फूल है वे चाहे सूखे हों या गीले। गीले पुष्पों की अपेक्षा सूखे पुष्पों में हिंसा ज्यादा है। सो कैसे? सुनो हरे गीले फूल में यदि जीव हैं तो उनको अलग कर सकते हैं किन्तु पुष्प के सूखने पर वे जीव भी उसी फूल में सूख गये और त्रस जीव के शरीर में सप्त धातु और उपधातुयें मौजूद हैं और आपने उन्हीं सूखे फूलों को पीसकर, चावल पीले कर चढ़ा दिये। यदि आपको पाप से भय है तो किसी भी प्रकार का पुष्प हो उसका गुलकंद खाना, गुलाबजल लगाना, पुष्पमाला पहनना बन्द करो त्याग करो। अन्यथा हरे फूलों से अनन्त गुणा पाप सूखे फूलों को चढ़ाने में है। लौंग क्या है? यह भी तो फूल है तथा बीज भी उसीमें हैं। आपने लौंग के चढ़ाने पर पुष्प और बीज ये दो एक साथ चढ़ाये। बीज भी भावी नय की अपेक्षा सचित्त हैं क्योंकि उनमें अंकुर फूटने की शक्ति है।

प्रश्न— 869 लौंग फल है क्योंकि लौंग को फल की जगह चढ़ाते हैं और ऐसा ही बताया गया है सो क्या ठीक है?

उत्तर नहीं, ठीक नहीं है क्योंकि लौंग यदि फल है तो क्या आप फल से स्थापना करते हैं या पुष्प से? जब किसी की भी पूजा करते हैं तो स्थापना के लिए लौंग को लेते हैं और सर्वत्र स्थापना पुष्पों से की जाती है न कि फलों से तथा कमल के फूलों के समान लौंग के अग्रभाग में पत्तियां है

जो बीजों को घेरे हुए हैं अतः आपकी क्या मान्यता है सो आप जाने पर लौंग पुष्प है, फल नहीं। उन बीजों में योनिभूत भविष्य में उगने की शक्ति होने से सचित्त है इसी कारण सचित्त त्याग प्रतिमाधारी से लेकर मुनि पर्यन्त कोई भी उस बीज सहित लौंग को आहार में नहीं लेते हैं किंतु कदाचित् औषधि रूप में प्रयोग करना पड़े तो कूट पीसकर अग्निपक्व कर आहार में देते हैं।

प्रश्न– 870 पुष्पों से पूजा करने का उद्देश्य क्या है?

उत्तर पुष्पों से पूजा करने का मुख्य उद्देश्य काम वासना का त्याग, कामविकार के साधनों का त्याग, कामीजनों की संगति का त्याग, शृंगार अलंकार का त्याग, ब्रह्मचर्य का पालन करना था। यह पुष्प तो केवल बाह्य सामग्री है, बाह्य अवलम्बन है, विकार को त्यागने के लिए एक सेंपल है। जैसे छत पर पहुंचने के लिए जीना सहारा है। इसी तरह पुष्पों को समझना किन्तु अविवेकीजनों ने परस्पर में फूट डालकर, समाज को, मोक्षमार्ग को तेरापंथ बीसपंथ के चक्कर में डालकर विभाग करा दिया, बटवारा करा दिया, समाज की अखंड शक्ति को तोड़कर खंड खंड कर दिया करा दिया। जैसे वर्तमान में कांजी स्वामी के भक्तों के द्वारा जगह जगह समाज में फूट हो गई। मुख्य प्रयोजन को छोड़कर सामग्री के चक्कर में पड़कर, भिड़कर परस्पर के शत्रु बन गये। यदि आपको पूजा के मंत्रों में या पूजा करने में पाप दिख रहा है तो पूजा और पूजा के मंत्रों का त्याग करो? पूजापाठ को बताने वाले शास्त्रों की पूजा, विनय, नमस्कार करना बन्द करो, त्याग करो। पर ध्यान रखना गृहस्थावस्था में दानपूजा का त्याग किया और गृहस्थ जीवन का त्याग नहीं किया तो बताओ गृहस्थ जीवन कैसे सुखी होगा? कैसे सफल होगा? फिर धन का कहाँ सदोपयोग होगा? फिर धर्मायतनों की स्थापना क्यों करना? अतः जैनधर्म उलझने का मार्ग नहीं बताता है न उलझाता है किन्तु सुलझा हुआ होने से सुलझने का मार्ग बताता है। यदि उलझने का मार्ग जैनधर्म बताने लगे या विषय भोगों में फंसाने का मार्ग बताने लगे तो सुलझने का मार्ग कौन बतायेगा? अतः विषय भोगों के मार्ग को छोड़कर आत्म शुद्धि के मार्ग में लगो यही पूजा के फल का उद्देश्य है। ब्रह्मचर्य धर्म का पालन करना ही पुष्पों से पूजा का मुख्य फल है। इंद्रियजन्य सुख प्राप्त होना भी लौकिक फल है क्योंकि धर्माचरण से उभय सुखों की प्राप्ति होती है।

प्रश्न– 871 पुष्पों से पूजा करने पर क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर कामवासना नष्ट होना, तन मन धन और धर्म की रक्षा होना, ब्रह्मचर्य का पालन होना, मन में आकुलता चिन्ता नहीं होना, मन शान्त स्वच्छ रहना, शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा होना, सन्तान हृष्टपुष्ट होना, संस्कार युक्त होना आदि पुष्पों से पूजा करने का फल प्राप्त होता है।

प्रश्न– 872 पुष्प से पूजा करने का मन्त्र कौन सा है जो परम्परागत हो निर्दोष हो पूर्ण फल को बतलाने वाला हो?

उत्तर ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा। हे भगवन! पुष्पों से पूजा करने का फल मेरी काम वासना नष्ट हो और ब्रह्मचर्य का पालन हो यह चाहता हूँ।

प्रश्न– 873 ब्रह्मचर्य धर्म का घात वेदोदय से होता है वेदोदय नौवें गुणस्थान तक है अतः यह मन्त्र भी अधूरे फल को बताता है?

उत्तर ब्रह्मचर्य धर्म का घात केवल वेदोदय से ही नहीं किन्तु वेदोदय से और योगों के द्वारा होता है आत्म प्रदेशों में जो कम्पन होता है वह कम्पन ही ब्रह्मचर्य की विराधना है यहाँ वेदोदय के अभावों में ब्रह्मचर्य धर्म की पूर्णता तो इष्ट नहीं है किन्तु मोहकर्म और योग के अभाव में उत्पन्न हुए ब्रह्मचर्य धर्म से प्रयोजन है अतः पूर्णफल को बताता है अतः मन्त्र निर्दोष है और पूर्ण फल को प्राप्त है और प्राप्त कराने वाला है। यदि केवल ब्रह्मचर्य का घात वेदोदय से होता तो 9वें गुणस्थान के अवेदभाग से आगे पूर्ण हो जाना चाहिये था पर योग होने से पूर्ण नहीं होता है।

प्रश्न– 874 आगम के प्रतिकूल मंत्र कौन सा है जो सदोष हो और घातक हो?

उत्तर युगलजी ने ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मायाकषायमल विनाशनाय निर्वपामीति स्वाहा। हे देवशास्त्रगुरु आपकी पूजा का फल माया कषाय मल विनाश को प्राप्त हो भक्त यह फल चाहता है। अपूर्ण फल मांगने के कारण यह मंत्र सदोष है क्योंकि माया कषाय के क्षय होने के बाद भी लोभ कषाय मौजूद है यह मंत्र परम्परा के विरुद्ध है, अपनी कल्पना से बनाया है कदाचित् प्रमाण नय निक्षेप से कसोटी पर कसने पर खरा उतरता, निर्दोष होता तो समीचीन मान लिया जाता अतः मंत्र और अभिप्राय मिथ्या होने से सत्जैनों के द्वारा अनुशरण करने योग्य नहीं है।

प्रश्न– 875 ये पूजायें किसने बनाई और क्यों बनाई?

उत्तर ये पूजायें दिगम्बराचार्यों ने, त्यागी व्रतियों ने, भट्टारकों ने बनाई तथा जब तक उकेरनी, लेखनी आचार्यों के हाथ में थी तथा आचार्यों के समान आचरण करने वालों के हाथ में थी तब तक समाज सुखी थी। समाज में मतभेद, अभिप्राय भेद, पंथभेद नहीं था। जब मलिन चित्तवाले आचार्यों ने, त्यागियों ने, व्रतियों ने, भट्टारकों ने, वस्त्रधारियों ने मलिन दर्पण के समान पंडितों ने, कवियों ने बनाई तब से दिगम्बर जैन समाज में नाना तरह के कलह और पंथभेद हो गये तथा नष्ट भ्रष्ट हो रही है, दुःखी हो रही है, पंथवादों में बट गई। देखो आजकल बहुत कुछ श्वेताम्बर समाज, मुस्लिम समाज, सिक्ख समाज आदि गुरु वाक्य प्रमाण मान कर चलती है तो उनमें एकता, धन वैभव आदि देखा जा रहा है। जो पूजायें भक्ति भावों से बनाई थी उन पूजाओं को पढ़ते हुए भक्ति भाव जागृत होता था, वैराग्यभाव उत्पन्न होता था। आजकल जो पूजायें मलिन भाव से बनाई जा रही हैं तो पूजकों के मन में मलिनता दिखाई देती है। जैसे मलिन दर्पण में मलिन और स्वच्छ दर्पण में स्वच्छ प्रतिबिम्ब दिखाई देता है ऐसे ही आजकल अनेक पूजायें या स्तोत्रादि के पद्यानुवादों में अर्थ विपर्यास पाया जा रहा है। जैसे भक्तामर के 48वें काव्य के पद्यानुवाद में मानतुंग सम मोक्ष लक्ष्मी पाते हैं। क्या आ. मानतुंग ने मोक्ष प्राप्त किया है?

प्रश्न– 876 नैवेद्य किसे कहते हैं?

उत्तर मिष्ठान्न, पक्वान्न या खाद्यान्न पदार्थों को नैवेद्य कहते हैं।

प्रश्न– 877 मिष्ठान्न आहार नैवेद्य किसे कहते हैं?

उत्तर गेहूँ चनादि को शक्कर गुड़ आदि में या काजू बादाम आदि मेवाओं को भी धान्यों के आटे में मिलाकर गुड़ शक्कर गन्ने के रस में पाककर जो व्यंजन तैयार किये जाते हैं उसे मिष्ठान्न कहते हैं या मधुर रस युक्त भोज्य पदार्थों को मिष्ठान्न कहते हैं।

प्रश्न— 878 काजू बादाम आदि मेवाओं को पकाकर बनाने को मिष्ठान्न कह सकते हैं क्या?

उत्तर जिस मेवा को दूध में, खोवा में या गुड़ शक्कर में पाककर बनाया है तो उसे मेवापाक कहते हैं किन्तु मिष्ठान्न नहीं कहते हैं। हाँ यदि धान्य या धान्य का आटा मिलाया है तो धान्य के साहचर्य से मिष्ठान्न कह सकते हैं।

प्रश्न— 879 दूध से, खोवे से, दही से बनाये गये व्यंजनों के सामान को मिष्ठान्न कह सकते हैं क्या?

उत्तर दूध दही खोवे आदि से बनाये गये व्यंजनों को मिठाई कहते हैं । हाँ यदि आटा आदि मिलाया है तो मिष्ठान्न कहते हैं जैसे गुलाब जामुन आदि।

प्रश्न— 880 पक्वान्न आहार नैवेद्य किसे कहते हैं?

उत्तर जो खाद्य धान्यों को घी, तेलादि में तलकर पकाकर बनाते हैं तो उसे पक्वान्न कहते हैं।

प्रश्न— 881 खाद्यान्नाहार नैवेद्य किसे कहते हैं?

उत्तर रोटी, दाल भात, बाटी, बड़ी पापड़ आदि को जो अग्नि में पकाकर व्यंजन तैयार किये हैं तो उन पदार्थों को अग्निपक्व व्यंजनों को खाद्यान्न आहार नैवेद्य कहते हैं।

प्रश्न— 882 उपरोक्त सभी व्यंजनों को पूजा में चढ़ा सकते हैं क्या?

उत्तर हाँ चढ़ाये जा सकते हैं और चढ़ाते हैं क्योंकि प्रायः कर संस्कृत प्राकृत हिन्दी आदि भाषाओं की पूजाओं में ये नाम आते हैं। देखो रोटतीज के दिन मारवाड़ी, खण्डेलवाल, अग्रवाल समाज अपने अपने घर से रोट बनाकर मंदिरजी में रोट गुड़ या शक्कर के साथ चढ़ाते हैं। कर्नाटक महाराष्ट्र में पुरोहित उपाध्याय प्रतिदिन अनेक घरों से कच्चा पक्का भोजन नैवेद्य के रूप में लाकर वेदी में विराजमान जिनेंद्र के सामने अर्पण कर फिर वापिस अपने घर ले जाता है तथा अपने परिवार के साथ उस नैवेद्य को खा लेता है। दीपावली के दिन समस्त दिगम्बर जैन समाज पंथवाद के बिना निर्वाण लड्डू चढ़ाती हैं। कोई कोई हलवाई से लड्डू बनवाकर चढ़ाते हैं जो अशुद्ध है।

प्रश्न— 883 रोटी दाल भात आदि अर्पण करना यह कर्नाटक महाराष्ट्र की पद्धति है यहाँ उत्तर भारत की नहीं ऐसा है क्या?

उत्तर कर्नाटक महाराष्ट्र आदि का मोक्षमार्ग तथा देवशास्त्रगुरु आदि भिन्न हैं और उत्तरभारत का मोक्षमार्ग तथा देवशास्त्र गुरु भिन्न हैं ऐसा है क्या? तब तो आपका कहना सत्य कहलाता अन्यथा आपका कहना असत्य है। इस वर्तमान काल में जो प्रामाणिक चारों ही अनुयोगों के शास्त्र प्रारम्भ से अबतक प्राप्त हो रहे हैं या प्राप्त किये जा रहे हैं वे सब दक्षिण भारत के कर्नाटक, केरल, तमिल देश के आचार्य कृत हैं किन्तु वर्तमान में उत्तर भारत का एक भी प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं है जो उच्च कोटि का हो अपने पंथवाद के कारण अपनी मान्यता के विरुद्ध पद्धतियों को और शास्त्रों को उपेक्षा की दृष्टि से, हीन दृष्टि से देखते हो तो उस प्रान्त के उन आचार्यों के समस्त शास्त्रों को, नियमों को, देव गुरुवों को उपेक्षा दृष्टि से देखते हो? कुछ को आप अनुकूल मानकर

सम्मान की और कुछ को हीन दृष्टि से देखे सो यह आपका पक्षपात है पंथवाद के व्यामोह से पीड़ित स्वार्थ से युक्त हैं, निष्पक्ष नहीं। मोक्षमार्ग में देवशास्त्रगुरु और इनकी आज्ञा का पालन ही प्रमाण है, पंथवाद, पक्षपात ग्राह्य नहीं क्योंकि ये लौकिक हैं, संसार के मार्ग हैं।

प्रश्न– 884 उक्त भोज्य पदार्थ शुद्ध होने पर भी रास्ते के होने से क्यों नहीं चढ़ा सकते हैं और चढाये तो क्या दोष है?

उत्तर आपका प्रश्न सही है और उक्त भोज्य व्यंजनों को आपके कथनानुसार अशुद्ध होने से नहीं चढ़ा सकते हैं किन्तु शुद्ध हैं तो चढ़ा सकते हैं परन्तु ये व्यंजन भोज्यपदार्थ मंदिर के पास या मंदिर की कोठरी में अपने ही श्रावकगण जो सदाचार सद्विचार से युक्त हों वे अपने हाथ से शुद्ध पानी निकालकर विधिवत् छानकर शुद्ध नैवेद्य तैयार कर चढ़ा सकते हैं जो सर्वत्र निर्दोष है परंतु रास्ते की अशुद्धियों में से आने पर, अशुद्ध व्यक्तियों के स्पर्श होने पर या उनकी परछांई पड़ने से सामग्री अशुद्ध हो जाती है। जैसे स्वादिष्ट, पौष्टिक दूध जहर के संसर्ग से मारक हो जाता है।

प्रश्न– 885–86 नैवेद्य बनाने का स्थान कैसा हो? बनाने वाला कैसा हो?

उत्तर मंदिर के आसपास या मंदिर की कोठरी में नैवेद्य तैयार करने पर भी वहाँ पर आम जनता का संचार न हो, आम जनता की निगाह न पड़ रही हो, गलियों की अशुद्धि न हो, गलियां कटी न हो, क्षेत्र की अशुद्धि न हो आदि का ध्यान रखते हुए, असदाचारी, सूतक पातक वालों की, मासिक धर्म वाली महिलाओं की निगाह न पड़े, न स्पर्श कर सके ऐसी जगह पर सामग्री रखना चाहिए और चढ़ाना चाहिए। सम्यग्दृष्टी श्रावक हो, मूलगुणों का पालक हो, सदाचारी हो।

प्रश्न– 887–88 दूर से सामग्री लाकर क्यों नहीं चढ़ा सकते हैं? जहाँ की गलियां कटी हो, रास्ते में मलमूत्र पड़ा हो तो यहाँ की भी क्यों नहीं चढ़ा सकते?

उत्तर पंक्तिबद्ध के बिना मकानों से लाया गया आहार मुनिजन इसलिए नहीं लेते हैं कि क्षेत्र की, गलियों की अशुद्धि होने से तथा दाता भी उसी रास्ते से आने के कारण दाता और द्रव्य की अशुद्धि हुई, द्रव्यक्षेत्र की अशुद्धि होने से मन वचन काय की भी अशुद्धि कहलाई। यद्यपि आहार की शुद्धि, नैवेद्य की शुद्धि होने पर भी बाह्य अशुद्धि होने से अशुद्ध ही कहलाता है। इस कारण द्रव्य क्षेत्र काल और भाव की शुद्धि होने पर ही कार्य में पूर्ण सफलता मिलती है। मिष्ठान्न पक्वान्न तो धनवानों के यहाँ प्राप्त होते हैं किन्तु खाद्यान्न रोटी दाल भात तो सर्वत्र गरीब अमीरों के यहाँ उपलब्ध हो जाता है कहावत है 'रोटी दाल सदा सुहागिन' जिस प्रकार पति सहित स्त्री सुहागिन सर्वत्र सुखी होती है उसी प्रकार दाल रोटी सर्वत्र प्राप्त होती है रोटी दाल भात देने में किसी को दुःख नहीं होता है।

प्रश्न– 889 इस प्रकार मिष्ठान्नादि व्यंजनों को चढ़ाने का विधान कहाँ आया है?

उत्तर देवशास्त्रगुरु पूजा संस्कृत– 'कुदर्प कन्दर्प विसर्प सर्प प्रसह्य निर्णासन वैनतेयान्। प्राज्याज्य सारैश्चरूभि रसाढ्यै र्जिनेन्द्र सिद्धान्त यतीन् यजेऽहम्।।' दुष्ट अंहकारी और सब जगह व्याप्त कामरूपी सर्प को बल पूर्वक मारने के लिए जो गरुड़ के समान

हैं उन देव शास्त्र गुरु की मैं उत्तम घी में बने हुए षड्रस नैवेद्य से पूजा करता हूँ। विद्यमान विंशति तीर्थंकरपूजा 'प्रवरमोदकखज्जकपूपकैःवरसुमण्डकसूपशुभौदनैः। सकलमंगल वांछित दायकान्, परमविंशति तीर्थपतीन् यजे।।'श्रेष्ठ लड्डू खाजे पुए पूरी दाल और भात आदि से सभी मंगल और वांछित पदार्थों के दाता महान् बीस तीर्थंकरों की मैं पूजा करता हूँ। सिद्धपूजाः– ''उर्ध्वस्वभाव गमनं सुमनो व्यपेतं, ब्रह्मादि बीज सहितं गगनावभासम्। क्षीरान्न प्राज्य वटकै रस पूर्ण गर्भै नित्यं यजे चरू वरै र्वर सिद्धचक्रम्।' जो ऊर्ध्वगमन स्वभाव वाले हैं, मन रहित हैं, आत्मा के स्वाभाविक मूलगुणों से युक्त हैं, आकाश के समान भाषित होने वाले हैं उन श्रेष्ठ सिद्धों की दूध अन्न और घी से बने हुए रस पूर्ण बड़ों से पूजा करता हूँ। 'मनोज्ञैः सुखाद्यैर्गवीनाज्य तृप्तैः सुशाल्योदनै र्मोदकैर्मण्डकाद्योः। द्वितीयं सुमेरुं शुभं धातकीस्थं यजे रत्न बिम्बोज्ज्वलं रत्नचन्द्रः।' गाय के घी में उत्तम शालि के लड्डू, चावलों से बनाये गये लड्डू, माण्डादि स्वादिष्ट खाद्य पदार्थों से धातकी खण्ड में स्थित विजय मेरु सम्बन्धी रत्नमयी जिनबिम्बों की मैं पूजा करता हूँ। ज्ञा.पू. (वि. पू.) फेनी सुआली पुवा पापर, लेय मोदक घेवरं। शतछिद्र आदिक विविध ा व्यंजन क्षुधाहर बहु सुखकरं।। अर्थः– क्षुधा को हरने वाले अनेक सुखकारक फेनी, सुआली, मालपुआ, पापड़, लड्डू, घेवर शतछिद्र(कोई पकवान विशेष) आदि चढ़ाता हूँ। नवग्रह अरिष्ट. समुच्चय पूजा।

प्रश्न– 890 जिस समय ये पूजायें बनाई थीं उस समय भोजन सामग्री शुद्ध थी अब अशुद्ध होने से चढ़ाने के अयोग्य है ऐसा स्वीकार क्यों नहीं करते हो?

उत्तर यदि आप अहिंसावादी जैन हैं, मिथ्यात्व अन्याय और अभक्ष्य के त्यागी हैं, आज्ञाप्रधानी अथवा परीक्षा प्रधानी सम्यग्दृष्टि हैं तो ऐसा प्रश्न ही नहीं हो सकता है आपसे कोई पूछे कि आप किस प्रकार का भोजन करते हैं? उत्तम, मध्यम और जघन्य पात्र को शुद्ध आहार दान देते हैं या अशुद्ध? वे पात्र जिनाज्ञानुसारी सम्यग्दृष्टि मोक्षमार्गी हैं और इनकी वैयावृत कैसे करते हो? नवधाभक्ति कैसे करते हो? शुद्ध आहार बोलकर देते हो या अशुद्धाहार बोलकर या झूठ बोलकर देते हो? यदि आहार सामग्री सर्वथा अशुद्ध है तो आप स्वयं अशुद्धाहार ग्रहण करते हो तथा अशुद्धाहार पात्र को देते हो। अशुद्ध नवधाभक्ति करते हो तब तो आपका बोलना सत्य है? आज ही मोक्षमार्ग संयमधर्म मुनिधर्म श्रावकधर्म समाप्त हो गया छठवाँ काल आ गया। पुनः शुद्धाहार सामग्री केवल आपको ही प्राप्त नहीं होती है या सभी को? यदि आप को ही नहीं मिलती है सो ठीक है किन्तु सभी को सर्वत्र सर्वकाल प्राप्त नहीं होती है यह आपको कैसे मालुम हुआ? क्या आप अनिन्द्रिय अतींद्रिय प्रत्यक्ष ज्ञानी हैं? अवधिज्ञानी मनः पर्ययज्ञानी हैं? यदि आप अपनी बात बोलते हो तो सत्य मानी जा सकती थी किन्तु आप सबकी सब तरह से बोलते हो तथा प्रत्यक्ष ज्ञानी नहीं हो तो कैसे सत्य मानी जाय? यदि आप शुद्धाहार करते कराते हैं तो सामग्री है ऐसा प्रश्न क्यों? भोग पाप है, त्यागधर्म है। जब आपके पास खाने खिलाने के लिए शुद्ध है तो पूजा में चढ़ाने के लिये भी शुद्ध है। अन्यथा कुतर्क करने से आगम वाक्य का लोप होता है।

प्रश्न— 891 यदि कहो कि भगवान तो खाते नहीं फिर नैवेद्य क्यों चढ़ाना? किसके लिए चढ़ाना?

उत्तर आपका प्रश्न सत्य है परन्तु आपके प्रश्नानुसार ही प्रश्न है? क्या भगवान मंदिर में पंखे की हवा लेते हैं? लाईट का उपयोग करते हैं? मंगल द्रव्यों का, प्रातिहार्यों का उपयोग भगवान स्वयं के लिये करते हैं? स्वयं ठण्डे या गरम पानी से स्नान करते हैं? दर्पण में मुँह देखते हैं? फिर मंदिरजी में पंखा, लाईट, मंगल द्रव्य, स्नान की व्यवस्था, पीने के लिए ठण्डे पानी की व्यवस्था, दर्पण आदि क्यों लगाये लगवाये? चटाई दरी धोती दुपट्टे क्यों रखे? क्यों व्यवस्था की? दानपेटी, गुप्त भण्डार, शास्त्र भण्डार क्यों रखा? क्या भगवान पैसे लेते हैं? शास्त्र पढ़ते हैं क्या? आदि और भी प्रश्न हो सकते हैं। जब अपने उपयोग में लाते समय पाप नहीं दिखता है तो त्याग धर्म के पालन में, आवश्यक कर्तव्यों के पालन में पाप क्यों दिखता है? अठारह दोषों के त्यागी वीतरागी भगवान जब किसी भी पूजा सामग्री का किंचित्मात्र भी उपभोग नहीं करते हैं तो केवल नैवेद्य के लिए प्रश्न अनुपयुक्त है फिर आप समस्त द्रव्यों से पूजा करना बन्द करो। भगवान के लिए पूजा नहीं की जा रही है किंतु अपने विकारों को, लोभ मोह को दमन करने के लिए, क्षय करने के लिए भगवान की पूजा के माध्यम से, जिनबिम्ब के माध्यम से प्रयत्न किया जा रहा है।

प्रश्न— 892 मिष्ठान्न पक्वान्न आदि की जगह नारियल की गिरि को नैवेद्य मानकर चढ़ा सकते हैं क्या ?

उत्तर उस नारियल की चिटकी में, गिरि में तुम्हारा क्या राग है? चढ़ाओ या मत चढ़ाओ हमें कोई आपत्ति नही हैं फिर भी किन्हीं पूजाकारों ने ऐसा विधान नहीं किया है। जरा सोचो तो सही आपने नैवेद्य चढ़ाकर क्षुधा रोग को मेंटने का, नाश करने का संकल्प किया है तब आपको नैवेद्य की सामग्री इकट्ठी करने में, बनाने में जो आरम्भ पूर्वक हिंसा पाप होना था वह तो हुआ ही तथा सामग्री के त्याग से जो राग का मूर्च्छा का त्याग होना था वह नहीं हुआ क्योंकि नारियल के टुकड़े चढ़ा दिये अतः राग का त्याग तो हुआ नहीं? चढ़ाया कुछ बोला कुछ अतः मायाचार झूठ पाप भी हुआ, क्योंकि आगम की आज्ञा का लोप करने से चोरी भी हुई। विकार होने से हिंसापाप और मैथुनपाप हुआ तथा सामग्री के प्रति राग होने से परिग्रहपाप हुआ। अतः किंचित् पाप से बचने के लिए पाँचों पापों को कर डाला। वहाँ त्याग के निमित्त आरम्भ करना था वह किया नहीं और पाप पूरा किया। मुख्यतया प्रमाद हेतु होने से सभी पाप अपने आप आ जाते हैं।

प्रश्न— 893 इसका अनुभव कैसे हो?

उत्तर जब आप ससुराल या कहीं रिश्तेदारी में जायें वहाँ पर आपको भोजन में दाल रोटी और रोटी में पानी चिपड़ा हो और मुँह से बोले कि घी चिपड़ा है पूडीपकवान, मिष्ठान्न, मालपुआ खाओ, पानी को दूध, दही, फल रस समझकर खाओ पिओ तब उस समय आप क्या सोचेंगे? आपके मन में कैसा धक्का लगेगा? जैसा आप सोचेंगे वैसे ही देवशास्त्रगुरु के सामने झूठ पाप, मायाचार करने से आपको वैसा ही कर्म बन्ध होगा। देवशास्त्र कुछ न सोचेगे किन्तु गुरु तो सोचेंगे कि इसमें श्रावक का लक्षण न होने से झूठ बोलकर आहार दे रहा है अतः अन्तराय करने योग्य है और अन्तराय कर देते हैं। अतः त्याग उसीका किया जाता है जिसमें राग हो विकार हो। यदि

वे पकवान है तो सामग्री में अंतर न होने से आश्रवबंध में, संवर निर्जरा में कोई अन्तर नहीं होगा संकल्प के अनुसार बराबर फल मिलेगा तथा मन वचन काय में और सामग्री में अन्तर है तो फल में अवश्य ही अंतर होना चाहिए। तब पुण्य की जगह पाप का ही आश्रव बंध होगा। इसका अनुभव शास्त्रज्ञानी अनुभवी कर सकता है अन्य मूर्खजन नहीं।

प्रश्न– 894 अमर्यादित, अनछने पानी से बनाई गई मिठाई बतासा मिश्री आदि चढ़ा सकते हैं या नहीं?

उत्तर आप सम्यग्दृष्टि हैं, अभक्ष्य पदार्थों के खाने खिलाने के त्यागी हैं तब जिनपूजा में चढ़ाने का प्रश्न ही क्यों पैदा हुआ? नहीं चढ़ाना चाहिए। कदाचित् त्यागने के लिए कषायों का मर्दन नहीं हुआ है तो मत त्यागो पर आगम के नियमों को, सिद्धान्तों को मत बदलो, आगम विरुद्ध मत बोलो, आज्ञा का लोप मत करो। यदि आपको शुद्ध सामग्री नहीं मिलती है सो ठीक है पर जिन को प्राप्त होती है उनको चढ़ाने दो, त्यागने दो उसमें आपको क्या आपत्ति है? आपको आकुलता क्यों होती हैं? द्रव्य क्षेत्र काल भाव से अशुद्ध सामग्री नहीं चढ़ाना चाहिए।

प्रश्न– 895 सामान्य क्षुधा और क्षुधारोग में क्या अन्तर है?

उत्तर सामान्य क्षुधा तो समस्त संसारी प्राणियों के पाई जाती है क्योंकि आहार संज्ञा चारों गतियों में एकेंद्रिय से लेकर पंचेंद्रिय तक मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर छठवें प्रमत्त संयत नामक गुणस्थान पर्यन्त कार्य रूप में होती है। आहार संज्ञाः– माया कषाय और लोभ कषाय के तीव्र उदीरणा से तथा असाता वेदनीय की उदीरणा से आहार संज्ञा होती है। जो भोजन कर लेने पर तृप्ति हो जाती है। त्याग की भावना भी उत्पन्न हो जाती है और त्याग भी कर देता है। क्षुधा रोगी कितना ही, कैसा ही भोजन करले न तृप्ति होती है, न त्याग की भावना उत्पन्न होती है क्योंकि वह मिष्ठान्न, पक्वान्न और अत्यन्त गरिष्ठ भोजन करके भी उदर भर जाये तो भी अतृप्त रहता है, आकुलता रहती है, सन्तोष को प्राप्त नहीं होता है। यही इन दोनों में अन्तर है।

प्रश्न– 896 क्षुधा किसे कहते हैं?

उत्तर मोहोदय के साथ असाता वेदनीय कर्म की उदीरणा होने से भोजन विषयक अभिलाषा उत्पन्न होती है उसे क्षुधा कहते हैं यह क्षुधा सामान्य से सभी प्रमादी जीवों के कार्य रूप में होती है।

प्रश्न– 897 क्षुधा रोग किसे कहते हैं?

उत्तर मोहोदय सहित असातावेदनीय कर्म की तीव्र उदीरणा होने पर भोजन करने के बाद में भी अतृप्ति हो, अभिलाषा बनी रहे, आकुलता, घबराहट होती रहे, मरने जैसी वेदना का अनुभव बना रहे, शारीरिक बल कमजोर हो जाये, भोजन करते करते उदरपूर्ति होने पर भी भूख शान्त न हो उसे क्षुधा रोग कहते हैं?

प्रश्न– 898 यह क्षुधारोग किस कारण से उत्पन्न होता है।

उत्तर जब उदराग्नि अत्यधिक तीव्र बढ़ जाती है, पित्त की मात्रा भी उदराग्नि में तीव्र हो जाती है। जैसे गर्म तवा के ऊपर पानी डालो शीघ्र ही सूख जाता है उसी तरह कैसा भी भोजन किया जाये वह थोड़ी देर में ही पच जाता है पुनः पुनः भूख सताती थी या सताती है। मरने जैसी वेदना

उत्पन्न होती है। शक्ति से अधिक श्रम करने पर, रूखा सूखा भोजन करने पर, तीक्ष्ण प्रकृति वाले गरममसाले खाने से, शक्ति से ज्यादा व्रत उपवास करने से, भोजन में गृद्धता होने या मनोनुकूल भोजन न मिलने से यह क्षुधारोग उत्पन्न होता है।

प्रश्न— 899 वे कौन से जीव हैं जिनके यह रोग नहीं होता है और जिनके होता है?

उत्तर भोगभूमिज मनुष्य तिर्यंचों के, देवों के, नारकियों के, अप्रमत्तसंयत आदि गुणस्थान वाले समस्त मुनियों को यह रोग नहीं होता है इनके अलावा शेष समस्त संसारी प्राणी जीवों को रोग हो सकता है और होता भी है। तो कोई इलाज कर लेते हैं या करवा लेते हैं और कोई नहीं भी करवा पाते हैं किंतु यों ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।

प्रश्न— 900 भाव पूजा कौन कौन जीव करते हैं और किस प्रयोजन के लिए?

उत्तर चारों गतियों के सम्यग्दृष्टि जीव पूर्वबद्ध कर्मों को क्षय करने के लिए भाव पूजा करते हैं। व्रतीजन और महाव्रती मुनिजन भाव पूजा करते हैं। कर्मभूमिज मनुष्य और तिर्यंचों के रोग हो सकता है अतः वे रोग निवारण के लिए पूजा करते हैं। अहमिंद्र देवगण, भोगभूमिज और नारकी बिना रोग के सिर्फ कर्मों को क्षय करने के लिए पूजा करते हैं। उपशमक और क्षपक श्रेणीगत मुनिजन निर्विकल्प ध्यानावस्था होने से भावपूजा करते हैं। इसी तरह सर्वत्र समझना।

प्रश्न— 901 द्रव्य पूजा कौन–कौन करते हैं?

उत्तर बाह्य में जल चन्दन अक्षतादि सामग्री अपनी सामर्थ्यानुसार मनुष्य तिर्यंच और देवगण चढ़ाते हैं अथवा वचन और काय के प्रयोग की अपेक्षा समस्त चारों गतियों के अव्रती सम्यग्दृष्टि मोक्षमार्गी पंचपरमेष्ठी की पूजाराधना करते हैं तथा अवस्थानुसार अणुव्रती महाव्रती भी द्रव्य पूजा करते हैं।

प्रश्न— 902 जो सम्पन्न स्त्री पुरुष दान पूजादि धर्म कार्य नहीं करते हैं तो उन्हें क्या कहना चाहिए?

उत्तर जो तन मन धन से सम्पन्न हैं ऐसे प्राणी यदि धर्म साधन नहीं करते हैं। भक्ष्याभक्ष्य का विवेक नहीं करते हैं तो उन्हें असैनी तिर्यंचों के समान समझना चाहिए। उनके सूतक पातक समझना चाहिए। धर्म कर्म विहीन मलेच्छ प्राणी, मलेच्छ आचरण करने वाले समझना चाहिए। उनकी भोजनशाला श्मशान के समान, मकान पक्षियों के घोंसले के समान समझना चाहिए। केवल श्मशान और भोजनशाला में इतना अन्तर है कि श्मशान में मुर्दे जलाये जाते हैं और घरों में जिन्दा जीव जलाये जाते हैं। हमेशा ख्याति पूजा लाभ की दुर्भावना होने से, आर्तध्यान रौद्रध्यान होने से, अशुभ लेश्यायें होने से, खोटी होनहार होने से, नरक तिर्यंच आयु का बन्ध होने से, विषय कषायों की चर्या होने से, संसार शरीर भोगों में रुचि होने से, दानपूजा के भाव, संयम व्रत पालन करने के भाव, धर्म साधन के भाव नहीं होते हैं। अतः इन्हें सब प्रकार से मायावी लोभी, असैनी तिर्यंच प्राणी और धर्म विहीन पशु कहना चाहिए।

प्रश्न— 903 आपने इन धनवानों को, मनुष्यों को अपशब्द असैनी क्यों कहा?

उत्तर हमने इन्हें तो असैनी कहा है किन्तु श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने तो जो असैनी जीवों से भी कई गुणा हीन हैं ऐसा निगोदिया कहा है निगोद राशि में गणना की है क्योंकि जिस प्रकार निगोदिया

जीवों का जनम मरण, आहार, श्वांसोच्छ्वास एक साथ समान होता है। धर्मसाधन के लिए, शुभ परिणाम बनाने के लिए समय नहीं उसी प्रकार इन शरीरधारी मनुष्यों को भी धर्म से कोई प्रयोजन नहीं। कुछ भोगों से समय बचा तो मनोरंजन के लिए, लोगों को दिखाने के लिए धर्म करने लगे, कल्याण की भावना से नहीं किया। इनको केवल भोग विलास से मतलब है अतः निगोदिया कहना उचित ही है अथवा निगोद से भी कोई नीची पर्याय होती तो वह भी कह देते फिर ये मोहीप्राणी अपने कल्याण के मार्ग को नहीं देखते हैं यही आश्चर्य है असैनी जीवों की अपेक्षा निगोदिया जीव और भी गया बीता है।

प्रश्न– 904 साधारण वनस्पति नामकर्मोदय से प्राप्त पर्याय को निगोदिया कहते हैं फिर मनुष्यों को निगोदिया क्यों कहा?

उत्तर मनुष्यों का निगोदिया जीवों के समान जनम मरण होने से निगोदिया कहा है। मूला० भग. भाव प्रा० छत्तीसं तिण्णि सया छावट्टि सहस्सवार मरणाणि। अंतोमुहुत्त मज्झे पत्तोसि णिगोद वासम्मि।। वियलिंदिये असीदी सट्टी चालीस मेव जाणेह। पंचिंदिय चउवीसं खुद्दभवंतो मुहुत्तस्य।। 28, 29 हे मुने तूने निगोदवास में अन्तर्मुहूर्तकाल के अन्दर 66336 बार जनम और मरण के दुःखों को प्राप्त किया है। द्वीन्द्रिय जीव के 80 भव, त्रीन्द्रिय जीव के 60 भव, चौइंद्रियजीव के 40, पंचेन्द्रिय जीव के 24 भव(असैनी पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक जीव के 8 भव, सैनी पंचेन्द्रिय लब्ध्यर्पाप्तक तिर्यंच जीव के 8 भव, लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य के 8 ये 24 भव) एकेंद्रिय जीव के 66132 भव ये सब मिलाकर 66336 भव होते हैं। आ० श्री कुन्दकुन्द ने मूला० में, लिंगपाहुड में मुनियों को घोड़े की लीद के समान, गन्ने के फूल के समान, गटर के पानी के समान नारकी, तिर्यंच योनि कहा है। ऐसा क्यों कहा? इन उदाहरणों के समान परिणाम और आचरण होने से, सत् आचार विचार विहीन होने से इनको असैनी पंचेंद्रिय कहा तो क्या बुरा कहा बताओ? बुरा लगता है तो अपना आचार विचार, रोटी बेटी ठीक करो, सम्हालो, बिगाड़ते क्यों हो। गुरुओं की मार प्यार से भी ज्यादा अच्छी होती है।

प्रश्न– 905–6 नैवेद्य से पूजा करने का मन्त्र कौन सा है? क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा। यह मन्त्र परम्परागत है निर्दोष है। हे देवशास्त्रगुरु आपकी पूजा नैवेद्य से करके मेरा क्षुधारोग और रोग का कारण असातावेदनीय कर्म नाश को प्राप्त हो यह फल मेरे को चाहिए।

प्रश्न– 907 आगम विरुद्ध कौन सा मन्त्र है जो युगलजी ने बनाया है?

उत्तर ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो लोभकषायमल विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा। यह मंत्र कथंचित् समीचीन है। क्योंकि माया लोहे रदिपुव्वाहारं अर्थ–: माया लोभ और रति कषाय पूर्वक आहार होने से माया और लोभ कषाय में आहार संज्ञा का अन्तर्भाव हो जाता है अतः शब्दान्तर होने पर भी भाव में अन्तर नहीं है। कदाचित् कार्यकारण की अपेक्षा अंतर भी है।

प्रश्न– 908 अपने अनुकूल होने से स्वीकार कर लिया तथा अपने प्रतिकूल होने से

अग्राह्य कहा यह तो अन्याय है?

उत्तर यह अन्याय नहीं है किन्तु विवेक है, निष्पक्षता है। देखो शरीर के जिस अंग में विकार होता है उसीकी शुद्धि करते हैं, सर्वांग की नहीं। हाँ यदि असाध्य जानलेवा रोग आ जाय तो सर्वांग ही त्याग किया है। इसी तरह यदि किंचित् दोष है तो नय सापेक्ष स्वीकार कर लिया जाता है तथा प्रमाण नय निक्षेप से स्वीकार के अयोग्य हो तो उसका त्याग कर दिया जाता है।

प्रश्न– 909 दीप या दीपक किसे कहते हैं?

उत्तर दृष्टि प्रतिबन्धक अन्धकार को नाश करने के लिए जिस किसी पात्र में कपूर से या घी तेल के साथ रुई की बत्ती बनाकर लिप्त कर जलाने से जो लौ निकलती है, प्रकाश फैलता है उसे दीपक कहते हैं, आरती कहते हैं। अन्धकार के विनाशक मणियों को रत्नों को दीपक कहते है किन्तु आजकल कोई या सर्वत्र किसी कटोरी में या स्टील पीतल या चाँदी आदि की आरती में, पात्र में घी, तेल आदि डालकर रुई को भिगोकर जलाकर प्रकाशित होने की अवस्था को दीपक कहते हैं। आजकल लौ वाली लाईट को भी दीपक कहने लगे हैं।

प्रश्न– 910–911 इस दीपक से क्या करते हैं? क्यों करते हैं?

उत्तर इस दीपक से सदाकाल पूजा करते हैं। अनादिकालीन चले आ रहे मोहान्धकार को नष्ट करने के लिए सदा प्रयत्नशील रहते हैं। जैसे लोक में प्रकाशित दीपक के माध्यम से स्थानीय वस्तु शीघ्र ही दिख जाती है प्राप्त हो जाती हैं। उसी प्रकार मोहान्धकार के नष्ट होने पर चराचर जड़, चेतन पदार्थ दृष्टिगोचर, अनुभव गोचर होने लगते हैं क्योंकि मोहान्धकार, अज्ञानान्धकार के नष्ट होने पर समीचीन ज्ञान रूपी सूर्य के उदय होने पर आत्मानुभव होता है इसलिए दीपक से पूजा करते हैं, आरती उतारते हैं क्योंकि द्रव्य सहित भावपूर्वक चर्या करने से सफलता मिलती हैं।

प्रश्न– 912 जड़ दीपकों से पूजा करने पर भाव अंधकार कैसे दूर हो सकता है?

उत्तर जिस प्रकार बाह्य दीपकों के द्वारा बाह्यान्धकार नष्ट होता है उसी प्रकार भाव दीपकों के द्वारा आन्तरिक अंधकार नष्ट होता है। दृष्टि आत्म सम्मुख होने से और बाह्य में द्रव्य सामग्री का अवलम्बन लेकर आत्माराधना करते हैं। जैसे छत पर पहुंचने के लिए जीने का सहारा लेते हैं। छत के प्राप्त होने पर नसैनी जीना को छोड़ देते हैं, उसी तरह मुनिपद प्राप्त होने पर दीपक से पूजा करना छोड़ देते हैं क्योंकि साधक गृहस्थ के लिए मुनि अवस्था साध्य है कारण साधक ही साध्य को प्राप्त करता है।

प्रश्न– 913–14 साध्य किसे कहते हैं? साधन किसे कहते हैं?

उत्तर प्राप्त करने योग्य को साध्य कहते हैं। प्राप्त करने के उपाय को साधन कहते हैं। यहाँ गुणस्थानों के प्रत्येक समय में उत्पन्न हुए परिणामों की तारतम्यता, पौर्वापर्य परिणामों को अर्थात् पूर्वभावी परिणाम साध्य और अपर भूत परिणाम साधन है अथवा प्रत्येक गुणस्थान साध्य साधन भावों से अवस्थित हैं अथवा वर्तमान पर्याय साधन और भावी पर्याय साध्य है।

प्रश्न– 915 दीपक के जलाने पर त्रसस्थावर जीवों की हिंसा होती है अतः

हिंसार्थक होने से दीपक से पूजा क्यों करना?

उत्तर यदि आप हिंसा से विरक्त हैं तो सर्व प्रथम भोग विलास सम्बन्धी हिंसा छोड़े, व्यापार भोजन, आरम्भ परिग्रह, शृंगारालंकार संबंधी हिंसा छोड़े बाद में दान पूजा सम्बन्धी आरंभी हिंसा का त्याग करें यही पद्धति है किन्तु आपने लौकिक संकल्पी हिंसा रूपी कूलर, फ्रीज, हीटर चालू बन्द करने का त्याग नहीं किया है। लाईट, पंखा मंदिर में चालू हैं इनके प्रयोग में आपको हिंसा नहीं दिख रही है और छोटे से दीपक में हिंसा पाप दिख रहा है। अतः दीपक के जलाने पर पतंगे छिपकली आदि त्रस जीव आ रहे हैं तो दीपक में जीव नहीं मरे ऐसी व्यवस्था करो अन्यथा बन्द करो, जब जीव नहीं आ रहे हैं तो दीपक जलाने में पाप नहीं है यदि किंचित् जीव आ रहे हैं तो दीपक को कांच से या पतली जाली से ढक दो जिससे जीवों की विराधना नहीं हो इतना प्रयत्न करने पर भी जीव आना नहीं माने तो दीपक बन्द कर देना चाहिए। अन्यथा पुण्य के बदले पाप का ही आश्रव बन्ध होगा तब जीवन और पूजन सफल कैसे होगा इसलिए विवेकवान होना चाहिए?

प्रश्न– 916–917 जलता हुआ दीपक जड़ है या चेतन? यदि चेतन है तो पूजा में जड़ दीप विनश्वर को अब तक, जड़ दीप ऐसा क्यों पढ़ते हैं? यदि जड़ है तो अग्निकायिक स्थावर जीव किसे कहते हैं?

उत्तर इस पूजा बनाने वाले को ही जड़ चेतन की परिभाषा मालुम नहीं है इसलिए जलते हुए दीपक को उसने जड़ कह दिया है। अग्नि स्वयं एकेंद्रिय स्थावर जीव है चेतन युक्त है। उस जलते हुए दीपक को जड़ कहना स्वयं की जड़ता मूर्खता प्रकट करना है। यदि दीपक को जड़ माना जाय तो कर्मों की 148 प्रकृतियों में से अग्नि स्थावर नामकर्म और अग्नि स्पर्श नामकर्म कम करना होगा जिससे 146 प्रकृति ही शेष रह जाती है। बिना जीव के शरीर की रचना कैसे हो सकती है। जलता हुआ दीपक चेतन है जड़ नहीं। जो जलते हुए दीपक को जड़ कहते हैं उनको विपाकविचय धर्मध्यान और अग्निकाय के जीवों की रक्षा करना कैसे संभव हो सकता है।

प्रश्न– 918 दीपक की जगह नारियल गिरि को पीलीकर पूजा कर सकते हैं क्या?

उत्तर हमें कोई आपत्ति नहीं है। आपने संकल्प दीपक का किया है, न कि नारियल की चटक का। लोभी अविवेकी होने से नारियल की चटक में दीपक का संकल्प कर दीपक से पूजा कर लेते हैं तब दीपक के जलाने पर जो पापकर्म का आश्रवबंध हो रहा है वह तो आपको संकल्पानुसार होगा ही आप चाहे दीपक जलाये या न जलाये तथा मोह का त्याग करने से जो पाप कर्मों का संवर, पुण्यकर्मों का सातिशय आश्रव बन्ध, और पूर्वबद्ध कर्मों की सामान्य रूप से संख्यात, असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा होनी थी वह भी आपको प्राप्त हुई किन्तु जिनागम में अविश्वास होने से एक मात्र पाप का ही आश्रव बन्ध होगा जो आत्मकल्याण में बाधक बनेगा।

प्रश्न– 919–20 दीपक से पूजा करने का मंत्र कौन सा है? फल क्या है?

उत्तर ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा। यह मंत्र प्रमाण है। देवशास्त्रगुरु की पूजा से मेरा अनादिकालीन मोहांधकार नाश को प्राप्त हो यह फल मेरे को चाहिए। यह निषेधरूप फल है तथा सम्यग्ज्ञान प्राप्त हो यह विधि रूप में फल है।

प्रश्न— 921—22 युगलजी कृत मन्त्र कौन सा है? उसका फल क्या है?

उत्तर ॐ ह्रीं देवशास्त्र गुरुभ्यो अज्ञान विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा। हे देवशास्त्र गुरु की पूजा करने का फल मेरा अज्ञान अन्धकार विनाश को प्राप्त हो यह फल चाहिए। देवशास्त्रगुरु की पूजा करके प्रथम मंत्र में मोहान्धकार विनाश करने की भावना भाई है और युगलजी ने अज्ञानान्धकार को क्षय करने की भावना भाई है। इनमें सामान्यतः विचार करने पर अंतर नहीं है, विशेषता से अंतर अवश्य है जो चिंतनीय है।

प्रश्न— 923 विशेषतया वह क्या अन्तर है जो कहा गया है?

उत्तर मोहोदय से युक्त अज्ञान अन्धकार 10 वें गुणस्थान तक पाया जाता है जो साम्परायिक आश्रव बन्ध सहित हैं। तीन घातिया कर्मों का स्थितिबन्ध अनुभागबन्ध कराकर उपशम सम्यग्दृष्टि को उपशमश्रेणी से गिराकर अर्धपुद्गल परिवर्तन काल तक भ्रमण करा देता है। इसी तरह 11 वें गुणस्थान वर्ती मोह रहित अज्ञानी जीव संसार में इतने समय तक भ्रमण कर सकता है। क्षीणमोही औदयिक भाव और क्षायोपशमिक भाववाला अज्ञानी ईर्यापथाश्रव करने वाला संसार मुें संसार में स्थित अज्ञानी है। वह अज्ञान संसार में रोककर रखता है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशमश्रेणी वाले 11 वें गुणस्थान से गिरकर पुनः अन्तर्मुहूर्त में या उसी आयु में कभी भी क्षपकश्रेणी आरोहण कर मोक्ष जाते हैं या उपशम श्रेणी वाले अधिक से अधिक दूसरे भव में या तीसरे भव में नियम से मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। अतः मोह सहित अज्ञान घातक है और मोह रहित अज्ञान बाधक है। इस कारण मोहान्धकार 10 वें गुणस्थान तक और अज्ञानान्धकार 12 वें गुणस्थान तक होता है। अतः दोनों का क्षय करना परम आवश्यक है।

प्रश्न— 924 अज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर किंचित् मात्र भी जानकारी न होने को अथवा समीचीन ज्ञान न होने को अथवा पूर्ण ज्ञान न होने को अज्ञान कहते हैं।

प्रश्न— 925—27 अज्ञान के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं? स्वामी कौन हैं?

उत्तर अज्ञान के दो भेद हैं। 1. औदयिक भाव अज्ञान, 2. क्षायोपशमिक भाव रूप अज्ञान अथवा विभावज्ञान और स्वभावज्ञान। विभावज्ञान के दो भेद हैंः— सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञान।

प्रश्न— 928—30 औदयिक भाव रूप अज्ञान किसे कहते हैं? स्वामी कौन है? किसके समान है?

उत्तर ज्ञानावरणीय कर्म की सर्वघाती स्पर्धकों के उदय होने पर जो स्वपर पदार्थों का किंचित् मात्र भी ज्ञान नहीं होता है उसे औदयिकभाव रूप अज्ञान कहते हैं। इस अज्ञान के स्वामी मिथ्यात्वगुणस्थान से लेकर क्षीणकषाय नामक 12 वें गुणस्थान तक असंयमी, देशसंयमी और सकलसंयमी महाव्रती मुनिजन हैं। अमावस्या की रात्रि या तलघर या गुफा के घोर अन्धकार के समान यह अज्ञान होता है। यह औदयिक भाव रूप अज्ञान न सम्यक् है न मिथ्या ऐसा समझना चाहिए। यह अज्ञान असमीचीन अर्थात् मिथ्या होता तो मोक्षमार्ग बन भी सकता था तथा यदि समीचीन होता तो संसारमार्ग नहीं बन सकता था अतः इसके सद्भाव में मोक्षमार्ग और संसारमार्ग दोनों हो सकते

हैं तथा इसके सद्भाव में आश्रवबंध संवर और निर्जरा ये चारों तत्त्व परिणमन करते रहते हैं।

प्रश्न– 931–32 क्षायोपशमिक भाव रूप अज्ञान किसे कहते हैं? कितने भेद हैं?

उत्तर ज्ञानावरणीय कर्म के सर्वघाती स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय सद्वस्था रूप उपशम तथा देशघाती स्पर्धकों के उदय रहने पर जो मिश्रज्ञान होता है उसे क्षायोपशमिक ज्ञान कहते हैं तथा यह ज्ञान मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया और लोभकषायों से मिश्रित होने से मिथ्याज्ञान सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति और अप्रत्यख्यानावरण क्रोधादि कषायोदय से मिश्रित मिश्रज्ञान या मोक्षमार्ग के अनुकूल ज्ञान न होने को अज्ञान कहते हैं। तीन भेद हैं–कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान, मिथ्यावधिज्ञान अथवा अल्पज्ञान की अपेक्षा मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान और मनःपर्यय सम्यग्ज्ञान को भी अज्ञान कहा है जो यह भी क्षायोपशमिक भावरूप सम्यग्ज्ञान अज्ञानभाव है।

प्रश्न– 933 क्षायोपशमिक अज्ञान के स्वामी कौन हैं?

उत्तर इस क्षायोपशमिक अज्ञान के स्वामी मिथ्यादृष्टि जीव हैं तथा अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ के उदय में आने पर (कम से कम एक समय और अधिक से अधिक 6 आवलि शेष रहने पर प्रथमोपशम सम्यक्त्व या द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के काल में) उभयसम्यक्त्व की विराधना कर सासादनसम्यक्त्व गुणस्थान को प्राप्त हो कुमतिज्ञान कुश्रुतज्ञान और विभंगावधि ज्ञान के दूसरे तथा तीसरे गुणस्थान वाले स्वामी हैं।

प्रश्न– 934 यहाँ पूजापाठ में किस अज्ञान के विनाश की भावना भाई है या याचना की है?

उत्तर यहाँ पूजापाठ में औदयिकभाव अज्ञान और क्षायोपशमिक अज्ञान के विनाश की भावना की है तभी तो मंत्र सही कहलायेगा अन्यथा मंत्र मिथ्या कहलायेगा।

प्रश्न– 935 सर्वघाती स्पर्धक किसे कहते हैं?

उत्तर जिन कर्म स्कन्धों में या कर्मवर्गणाओं में आत्मगुणों को पूर्ण रूप से घातने की शक्ति हो या जिन कर्मों के उदय में आने पर आत्मगुण किंचित् मात्र भी विकास को प्राप्त न हों या अनुभव में न आयें तो उन कर्मों के पिण्ड को सर्वघाती स्पर्धक कहते हैं।

प्रश्न– 936 देशघाती स्पर्धक किसे कहते हैं?

उत्तर जिन कर्मों के उदय में आने पर भी स्वपर पदार्थों का किंचित् अनुभव हो, आभास हो अथवा किंचित् विराधना हो उन्हें देशघाती स्पर्धक कहते हैं।

प्रश्न– 937–38 सर्वघाती स्पर्धकों के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर सर्वघाती स्पर्धकों के दो भेद हैं।1– चेतन सर्वघाती स्पर्धक, 2– अचेतन सर्वघाती स्पर्धक।

प्रश्न– 939 सर्वघाती चेतन स्पर्धक किसे कहते हैं?

उत्तर जो ज्ञाता दृष्टा स्वरूप चेतन पदार्थ आत्मा है इस आत्मा में परद्रव्यों के संयोग से उत्पन्न हुए विकार वर्तमान में स्वपर पदार्थों का किंचित् मात्र भी अनुभव में या आभास न करने से आभास न होने से उसे चेतन सर्वघाती स्पर्धक कहते हैं जो अनादिकाल से चले आ रहे हैं।

प्रश्न— 940 अचेतन सर्वघाती स्पर्धक किसे कहते हैं?

उत्तर जिस पुद्गलपिण्ड में आत्मगुणों को पूर्ण रूप से घातने की शक्ति हो ऐसे रूप रस गन्ध स्पर्श वाले कर्म स्कन्धों को जिसने आत्मा के साथ एकक्षेत्रावगाही सम्बन्ध प्राप्त किया है। इसमें जानने देखने की, सुख दुःख का अनुभव करने की शक्ति न होने से अचेतन सर्वघाती स्पर्धक कहते हैं।

प्रश्न— 941—942 देशघातीस्पर्धकों के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर देशघाती स्पर्धकों के दो भेद हैं—1. देशघाती चेतन स्पर्धक 2. देशघाती अचेतन स्पर्धक।

प्रश्न— 943 देशघाती चेतन स्पर्धक किसे कहते हैं?

उत्तर जो आत्मपरिणाम अपनी आत्मशक्ति का थोड़ा घात करें अथवा जिन आत्मपरिणामों से आत्मशक्ति का कुछ विकास और कुछ अविकास हो उसे देशघाती चेतन स्पर्धक कहते हैं।

प्रश्न— 944 देशघाती अचेतन स्पर्धक किसे कहते हैं?

उत्तर जिस पुद्गल पिण्ड के द्वारा आत्मगुणों का किंचित् विकास हो अथवा कुछ शक्ति का घात हो और कुछ का घात न हो उसे देशघाती अचेतन स्पर्धक कहते हैं। यह अचेतन है, पुद्गल है, ज्ञाता दृष्टा स्वभाव वाला नहीं है।

प्रश्न— 945 यह कैसे जानकारी हो कि ये स्पर्धक चेतन और अचेतन के भेद से दो प्रकार के होते हैं?

उत्तर अपने में और अपने फोटो में कितना अन्तर हैं वैसे ही यहाँ समझना चाहिए। अपन चेतन हैं, ज्ञाता दृष्टा हैं, सुख दुःख का, सर्दी गर्मी का, मान अपमान का अनुभव करते हैं, आभास करते हैं किन्तु फोटो में इनका अनुभव नहीं होता है क्योंकि फोटो जड़ स्वभाव वाला है। रूप रस स्पर्श गंध वाला है, इन्द्रियग्राह्य है, प्रतिघात को प्राप्त होता है। जैसे अपने बदन में और फोटो के आकार में कोई अन्तर नहीं है सादृश्य समान है फिर भी अपन चेतन है और फोटो अचेतन है। इसी तरह आत्मा के उपादान स्वरूप तीव्र संक्लेश या विशुद्ध परिणामरूप स्पर्धकों में तथा पुद्गल के सर्वघाती स्पर्धकों में चेतन अचेतन का भेद है तथा सर्वघाती और देशघाती र्स्पधकों के समान आत्मा उपादान रूप से आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष भाव तत्त्व चेतन तत्त्व है तथा पुद्गल द्रव्य स्वयं उपादान रूप से आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्षरूप में परिणमन करता है वह अचेतन तत्त्व है ऐसा समझना चाहिए।

प्रश्न— 946—47 ज्ञान का परिणमन कितने प्रकार से होता है? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर ज्ञान का परिणमन दो प्रकार से, तीन प्रकार से, पाँच प्रकार से, आठ प्रकार से, संख्यात, असंख्यात और अनंत प्रकार से होता है। विभावज्ञान और स्वभावज्ञान। तीन भेदः— परोक्ष ज्ञान, एकदेश प्रत्यक्ष, सकल प्रत्यक्ष। पाँच भेदः— मतिज्ञानादि पाँच। आठ भेदः— मतिज्ञानादि पाँच,कुमति, कुश्रुत और कुअवधिज्ञान ये तीन। विभावज्ञान के दो भेद हैं। सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञान। क्षायोपशमिक ज्ञान है जो अनादि से अनन्तकाल तक, अनादि सान्त और सादि सान्त भंगों को लिए हुए है प्रतिपात और अप्रतिपात सहित है अल्पविशुद्धि वाला है। स्वभावज्ञान—क्षायिक

ज्ञान है। सादि से लेकर अनन्तकाल तक रहने वाला है, अप्रतिपाती है, पूर्ण विशुद्ध है, स्नातक निर्ग्रन्थ महामुनियों के होता है। सिद्धों के भी केवलज्ञान होता है। **सम्यग्ज्ञान–जो समीचीन है, अल्प है, छद्मस्थ जीवों के होता है, प्रतिपात और अप्रतिपात स्वभाव वाला है, गृहस्थ और मुनियों के होता है, आश्रव बन्ध संवर और निर्जरा तत्त्वों से युक्त है, मोक्षमार्ग का साधक है, प्रमाण स्वरूप है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान के भेद से चार भेदवाला है। सादि सान्त भंगवाला है, यहीं उत्पन्न होता है और कार्य स्वरूप केवलज्ञान को उत्पन्न कराकर या केवलज्ञान प्राप्त कराने के पहले ही छूट जाता है अर्थात् उत्पन्न होता है इसलिए सादि तथा नष्ट होता है इसलिए सान्त भंगसहित है। मिथ्याज्ञान– यह मोक्षमार्ग का बाधक है, संसारमार्ग का साधक है, आश्रव बंध से सहित है, अनादिअनंत, अनादि सान्त और सादिसान्त भंग सहित है, प्रतिपात और अप्रतिपात स्वभाव से युक्त, अल्पविशुद्ध तथा शुभ और अशुभ योग से सहित है आश्रव बन्ध से सहित है अनन्तानन्त जीव इसके स्वामी हैं। एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के मिथ्यादृष्टि स्वामी हैं और सामान्यज्ञान के स्वामी समस्त संसारी तथा सिद्धजीव स्वामी हैं।**

प्रश्न– 948–49 इस प्रकार का ज्ञान किस जीव को होता है? किस जीव को नहीं होता है?

उत्तर **इस प्रकार सम्यग्ज्ञान समीचीन वैराग्य युक्त असंयमी, संयमी मोक्षमार्गी ज्ञानी जीवों को होता है मिथ्यादृष्टिजीवों को नहीं होता है। यद्यपि विषय कषायों में लम्पट असंयमी गृहस्थजन इस भेद ज्ञान की कला को शास्त्रों में पढ़कर या गुरु मुख से सुनकर जानते हैं, दूसरों को समझाते हैं परन्तु यह भेद विज्ञान परिणति क्रिया के साथ न होने से समीचीन सम्यग्ज्ञान मोक्षमार्ग का साधक नाम नहीं पाता किन्तु नकटी के श्रृंगार के समान या विधवा के श्रृंगार के समान जानना चाहिए। ऐसा ज्ञान कल्याणकारी नहीं है तथा प्रज्ञा और अज्ञान ये दोनों परीषह उत्पन्न होते हैं।**

प्रश्न– 950 ज्ञान गुणपर्याय तथा ज्ञानावरण कर्म चेतन है या अचेतन?

उत्तर **ज्ञान गुण पर्याय चेतन है अचेतन नहीं तथा ज्ञानगुण का विभावरूप परिणमन ज्ञानावरण रूप से चेतन है और तदनुरूप ज्ञानावरण कर्म वर्गणाओं का परिणमन ज्ञान गुण का आवरण रूप में परिणमन अचेतन स्वरूप है तथा साहचर्य से ज्ञानावरण कर्म भी चेतन माना जाता है।**

प्रश्न– 951–52 यहाँ किस अज्ञान से प्रयोजन है? क्या अज्ञानमिथ्यात्व से है?

उत्तर **यदि कवि ने क्षायोपशमिक भावरूप अज्ञान को विनाश करने की दृष्टि से दीपक के द्वारा पूजा की तब तो यह पूजा मिथ्यात्व युक्त मिथ्यादृष्टि जीवों के द्वारा की हुई होने से ग्रहण करने योग्य नहीं है, अग्राह्य है तथा औदयिक भावरूप अज्ञान को क्षय करने के लिए की है तो ग्राह्य है। अज्ञान मिथ्यात्व का तो पहले ही त्याग कर चुका है। यदि अज्ञान मिथ्यात्व का त्याग किया नहीं तो जिनेन्द्र भक्त कैसे बना? अज्ञानमिथ्यात्व केवल मिथ्यात्व गुणस्थान में होता है। क्षयोपशमिक भाव रूपी अज्ञान मिथ्यात्वगुणस्थान और सासादन सम्यग्दृष्टि नामक दूसरे गुणस्थान सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान तक होता है तथा औदयिक भावरूपी अज्ञान पहले गुणस्थान से लेकर 12 वें क्षीणमोह**

नामक गुणस्थान तक होता है। तीव्र अज्ञान मिथ्यात्व में मोक्षमार्ग की भूमिका ही नहीं बनती है। क्षायोपशमिक भावरूपी अज्ञान में मोक्षमार्ग की भूमिका बनती है तथा मोक्षमार्ग की विराधना करके भी उत्पन्न होता है। औदयिक भावरूपी अज्ञान के सद्भाव में भाव मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती अर्थात् अज्ञान हानिकारक होने से अपने आत्महित का बाधक है अतः नाश करना चाहिए।

प्रश्न– 953–54 अज्ञानमिथ्यात्व से प्रयोजन है? किस अज्ञान के सद्भाव में क्या हानि है? क्या लाभ है?

उत्तर हाँ यहाँ पर अज्ञानमिथ्यात्व से भी प्रयोजन हो सकता है और मिथ्या अज्ञानभाव से भी प्रयोजन हो सकता है। यदि पूजक मिथ्यादृष्टि है तो उसे प्रारम्भ में अज्ञान मिथ्यात्व और मिथ्याज्ञानरूपी अज्ञान को नष्ट करना चाहिए क्योंकि इनके उदय में और सद्भाव में मोक्षमार्ग की आत्मसाधना की शुरूआत नहीं होती है यही सबसे बड़ी हानि होती है किन्तु औदयिक भावरूप अज्ञान के सद्भाव में मोक्षमार्ग की साधना होती है, आत्मध्यान होता है, शुक्लध्यान हो जाता है, उपशमश्रेणी और क्षपक श्रेणी भी प्रारम्भ हो जाती है पर सर्वज्ञता केवलज्ञान की अवस्था प्राप्त नहीं होती है यह हानि है। फिर भी जितनी हानि आदि के दो अज्ञानों से होती है उतनी हानि इस अज्ञान से नहीं होती। आदि के दो अज्ञानों को त्याग करने के लिए बुद्धिपूर्वक शास्त्रों का अभ्यास, गुरु का उपदेश और स्वयं का अभ्यास किया जाता है किन्तु औदयिक भावरूपी आज्ञान का अंत या विनाश अबुद्धिपूर्वक एकत्ववितर्क शुक्लध्यान के द्वारा होता है। इसी ध्यान से ज्ञानावरणीयकर्म का समूल क्षय होता है परन्तु लक्ष्य या ध्येय की प्राप्ति तो बुद्धिपूर्वक समस्त अज्ञानों को क्षय करने से होती है।

प्रश्न– 955 औदयिक अज्ञान, क्षायोपशमिक अज्ञान, अज्ञानमिथ्यात्व में अंतर?

उत्तर इन तीनों में अंतर निम्न प्रकार है ।

औदयिकअज्ञान	क्षायोपशमिक अज्ञान	अज्ञान मिथ्यात्व
1. ज्ञानवरणीय कर्मोदय से औदयिक भाव अज्ञान होता है।	1. ज्ञानावरणीयकर्म के क्षयोपशम से क्षायोपशमिक अज्ञान होता है।	1. मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषायोदय से अज्ञान मिथ्यात्व होता है
2. औदयिक भाव अज्ञान 1–12 वें गुणस्थान तक होता है।	2. मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषायोदय से कुमति, कुश्रुतज्ञान, कुअवधिज्ञान मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थान में होता है।	2. अज्ञान मिथ्यात्व मिथ्यात्व गुणस्थान में होता हैं
3. औदयिक भाव अज्ञान भव्य अभव्य, सैनी असैनी और	3. इन तीनों क्षायोपशमिक अज्ञान के मिश्रगुण. स्वामी हैं।	3. अज्ञान मिथ्यात्व के मिथ्यादृष्टि जीव स्वामी हैं।

मोक्षमार्गी भी स्वामी हैं।		
4. 1–12 तक गुण० तथा 14 मार्गणायें होती हैं।	4. 1–2 गुणस्थान और 14 मार्गणास्थान होते हैं	4. मिथ्यात्व गुणस्थान और 14 मार्गणायें होती हैं।
5. 4आर्त. 4 रौद्र. 4 धर्म. आदि के 2 शुक्लध्यान होते हैं।	5. 4 आर्त० 4 रौद्र० होते हैं।	5. 4 आर्त० 4 रौद्र० होते हैं।
6. अनादिअनन्त, अनादिसान्त, सादिसान्त ये भंग होते हैं।	6. अनादिअनन्त, अनादिसान्त सादिसान्त ये भंग होते हैं।	6. अनादिअनन्त, अनादिसान्त सादिसान्त ये भंग होते हैं।

7. उत्थान [illegible] इन क्षायोपशमिक अज्ञान और अज्ञान मिथ्यात्व को यह जीव पल्य के असंख्यातवें भाग के समयों के बराबर असंख्यात बार ग्रहण करके छोड़ता है अंत में मोक्ष प्राप्त करता ही है किन्तु एक भी बार औदयिक भावरूप अज्ञान छूट गया या केवलज्ञान की अपेक्षा आदि के चार सम्यग्ज्ञान भी अज्ञान होने से ये चारों एक समय के लिये भी विच्छेद को प्राप्त हो गये तो फिर पुनः संबंध को प्राप्त नहीं होते हैं जैसे वृक्ष से पत्ता फल अलग हो गया तो पुनः वह डाल पर वापिस नहीं लगता इसी तरह यह औदयिक भाव रूप अज्ञान छूटने के बाद पुनः सम्बन्ध को प्राप्त नहीं होता है। औदयिक भाव का अभाव होना ही क्षायिक भाव है तथा क्षायिक भाव अप्रतिपाती है। इस अवस्था को प्राप्त करने वाले एकमात्र आर्यखण्डोत्पन्न वज्रऋषभनाराच संहनन वाले चरमशरीरी आर्यमनुष्य मुनि पद को स्वीकार कर क्षपकश्रेणी पर आरोहण कर मोहनीय कर्म को क्षय करने के बाद अज्ञान को नष्ट कर केवलज्ञान को प्राप्त होते हैं। इसके बाद कालान्तर में कभी भी अज्ञान भाव को प्राप्त नहीं होते हैं जैसे दूध से घी तो बन जाता है किन्तु घी से पुनः दूध नहीं बनता। इसी तरह अज्ञान को नाश कर ज्ञान प्राप्त हो जाता है पर ज्ञान से अज्ञान नहीं।

प्रश्न– 956 पंचास्तिकाय गाथा नं0 37 और कल्याण मंदिर पद्य नं0 30 में अरिहंत और सिद्धों को अज्ञानी भी कहा है सो क्या अपेक्षा है?

उत्तर इन सर्वज्ञकेवलियों के और सिद्धों के क्षायोपशमिक भाव रूप कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान कुअवधिज्ञान मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान सम्यग्ज्ञान ये चारों अल्पज्ञान की अपेक्षा अज्ञान,अज्ञान मिथ्यात्व तथा औदयिक भावरूप अज्ञान के सद्भाव जैसा अज्ञानी नहीं कहा है किन्तु इन अज्ञानों का अभाव होने से अज्ञानी, ज्ञानरहित कहा है तथा केवलज्ञान पूर्णज्ञान का सद्भाव होने से ज्ञानी कहा है किन्तु सर्वथा न ज्ञानी है न अज्ञानी क्योंकि ज्ञानगुण की ये 7 अवस्थायें क्षायोपशमिक भाव और केवलज्ञान ये 8 ज्ञान की पर्यायें हैं। आदि की 7 क्षायोपशमिक पर्याय और केवलज्ञान क्षायिक भाव रूप पर्याय है। वे 7 ज्ञान सादिसान्त हैं तो यह एक सादि अनन्त है और जो अवस्था प्रध्वंसाभाव को प्राप्त हो जाती है वह पुनः कालान्तर में कभी भी सम्बन्ध को प्राप्त नहीं होती है। यदि कहो कि केवलज्ञान भी पर्याय है तो वह भी प्रध्वंसाभाव को प्राप्त हो जाओ सो भी ठीक नहीं है परंतु सादृश सामान्य पर्याय प्रतिक्षण आती रहती है और जाती रहती है। स्वस्थान रूप में परिणमन करती है और परस्थान रूप में परिणमन नहीं करती है किन्तु क्षायोपशमिक ज्ञानपर्यायों का स्वस्थान और परस्थान रूप में परिणमन होता रहता है क्योंकि क्षायिकभाव का अभाव नहीं होता है। शुद्ध स्वभाव का अभाव माना जाय तो स्वभाववान का भी अभाव मानना

पड़ेगा तो ऐसा कौन सा सज्जन पुरुष है जो अपने ही विनाश के लिए धर्म साधन करें तप करें। देखो सोना अग्नि में तपाते हैं सोना को शुद्ध बनाने के लिए न कि सोना को नष्ट करने के लिए किन्तु विकार को अशुद्धि को नष्ट करने के लिए तपाते हैं इसी तरह सज्जन पुरुष आत्मविकारों को अशुद्धि को क्षय करने के लिए तप ध्यान साधना करते हैं न कि स्वयं के अभाव के लिए इस कारण आदि की 7 अवस्थायें विकार हैं और दूसरी अवस्था शुद्ध है स्वभाव है निर्विकार है।

प्रश्न– 957–58 स्वभावज्ञान के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं? स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर स्वभावज्ञान के 2 भेद हैं। 1–परमपारिणामिकभाव ज्ञान, 2– क्षयिक केवलज्ञान। प्रथम निर्निमित्त स्वभाव ज्ञान है, गुणस्वरूप है, परम पारिणामिक भाव है। अनादि अनन्त भंग को लिये हुये हैं। पारिणामिक भावज्ञान के समस्त प्राणी स्वामी हैं। नैमित्तिक स्वभाव केवलज्ञान है, क्षायिक केवलज्ञान है, सादि अनन्तभंग को लिए हुए है, सयोगी अयोगी और सिद्ध भगवंत स्वामी हैं।

प्रश्न– 958(अ) अविवाहित को क्वांरिका कह सकते हैं क्या?

उत्तर यदि अविवाहित निर्विकार है, कामवासना जागृत नहीं हुई है तो उसे क्वांरिका कह सकते हैं किन्तु मन में कामवासना जागृत हो चुकी है, पति की तलाश में है किन्तु लौकिक दुर्भाग्यवशात् मिल नहीं पा रहा है इस कारण बाह्य दृष्टि से क्वांरिका कह देते हैं परन्तु अंतरंग दृष्टि से विषयवासना जागृत होने के कारण क्वांरिका अब नहीं रही, विवाहिता ही है क्योंकि क्वांरिका का मन और जीवन स्वच्छ पूर्णिमा की चांदनी के समान होता है।

प्रश्न– 958(ब) विकारयुक्त होने के कारण उसे पति सहित विवाहित कहना चाहिये?

उत्तर भावों की अपेक्षा उसे पति सहित विवाहित कहना ही चाहिये क्योंकि मन में पति की तलाश कर रही है और इसी तरह इधर उधर दृष्टि भी डालती है। प्रश्न पर प्रश्न हो रहे हैं कि मेरा कौन पति होगा, कहाँ का, कौन तलाश करे, कहाँ, कब, कैसे मिलेगा आदि तरह–तरह से संकल्प विकल्प चल रहे हैं किन्तु नामकरण न होने के कारण वह लज्जावश बोल नहीं पाती। लोकदृष्टि में पाणिग्रहण संस्कार न होने से अविवाहितपने का व्यवहार किया जाता है तथा धर्म की दृष्टि से अंतरंग दृष्टि की अपेक्षा कामविकार से पीडित होने के कारण विवाहित और भावों में कामवासना जागृत न होने से, पाणिग्रहण संस्कार न होने से अविवाहित कहना चाहिए।

प्रश्न––958(स)आजकल चतुर्विध मुनिसंघ क्यों बदनाम हो रहे हैं, क्या कारण है?

उत्तर आजकल चतुर्विध मुनिसंघ की आहार आदि की व्यवस्था का संचालन करना श्रावक श्राविकाओं ने छोड़ दिया और कमेटी वाले चारित्रहीन है, सदाचार के पालन करने में जीरो हैं। ऐसे लोग स्वयं त्यागी व्रती न होने के कारण पैसा खर्च कर नौकरों से करवाते हैं तथा लेने को या भेजने को अच्छी गाड़ी से जायेंगे, व्यवस्था करेंगे, होटलों में चाय नाश्ता करेंगे, घूमेंगे और संघ के बाबत मीटिंग हुई तो उसमें भी सबने खाया पिया, चाय नाश्ता किया, बिस्कुट खाई और सारा टोटल खर्च संघ के नाम पर डालकर मन्दिरजी में परचा सूचनापट्ट पर टांगकर चिपकाकर सबको बता दिया कि संघ के संबंध में इतना खर्च हुआ और उस पर्चे को गरीबों ने, अमीरों ने पढ़ा।

हा! गुरुओं का विहार कराने में इतना खर्च होता है गरीब समाज घबरा जाती है मुँह ही मुँह से बातें फैल जाती हैं। इस कारण व्रती, महाव्रतियों की परिचर्या व्यवस्था आदि श्रावक श्राविकायें करने लगें तो किसी भी प्रकार से संघ की बदनामी नहीं होगी। एकांत पाकर ये ही भोगीगृहस्थ त्यागियों से घर गृहस्थी की, व्यापार विवाहादि की चर्चा करते हैं, मुहूर्त निकलवाते हैं और बाहर बोलते हैं कि महाराजों को ज्योतिष नहीं सीखना चाहिए मंत्र, तंत्र वगैरह नहीं करना चाहिए आदि कारणों से ही जैनधर्म की, संघ की और समाज की भी बदनामी हो रही है।

प्रश्न– 959–60 धूप किसे कहते हैं? कितने पदार्थों को मिलाकर बनाई जाती है?

उत्तर धूप के अनेक अर्थ होते हैं जैसे कितनी कड़ी धूप है यहाँ धूप से मतलब सूर्य की किरणों से है। बहुत दौड़ धूप करते हो यहाँ धूप से मतलब परिश्रम। कितनी सुगन्धित धूप है यहाँ धूप से मतलब है जो सुगन्धित द्रव्यों से कूटपीस कर बनाई जाती है। इसका प्रयोग अपने इष्ट आराध्य देव के सम्मुख या उनके स्थान में क्षेत्र की शुद्धि के लिए धूपघट के अंदर ज्वलित अग्नि में दशांगी धूप डाली जाती है जिस धुआं से क्षेत्र की शुद्धि होती है, भूत पिशाच व्यन्तर बाधायें दूर हो जाती हैं, शान्ति प्राप्त होती है। सो यहाँ पूजापाठ का, मोक्षमार्ग का प्रकरण होने से सुगन्धित धूप से मतलब है, शेष से नहीं। इस धूप में गूगल, छबीला पांडरी लौंग मलयागिरि चन्दन सुगन्धवाला आदि 10 वस्तुओं से तैयार की जाती है इसे दशांगी धूप कहते हैं। इसको अग्नि में दहन करने से धुआं निकलता है, डांस मच्छर भाग जाते हैं, मन पवित्र हो जाता है तब ध्यानाध्ययन में मन स्थिर हो जाता है और स्थिरता होने से कर्म भी नष्ट होते हैं।

प्रश्न– 961–62 धूप दहन करने से जहाँ तक धुआं की, अग्नि की गर्मी जाती है वहाँ तक के जीव मर जाते हैं अतः हिंसा का साधन होने से धूप दहन नहीं करना चाहिए? जहाँ हिंसा हो वहाँ अहिंसा स्वरूप जैन धर्म कैसा?

उत्तर आपका प्रश्न सही है परन्तु यह बात आरम्भ परिग्रह के त्यागी, विषयभोगों के त्यागी, गृह त्यागी, महामुनिजनों के लिए ठीक है क्योंकि मुनिजन अग्नि कैसे जलायेंगे? ईंधन कहाँ से लायेंगे? अतः आपका कहना मुनियों के लिए ठीक है, पर गृहस्थों के लिए ठीक नहीं है क्योंकि गृहस्थ केवल संकल्पी हिंसा का त्यागी होता है, शेष तीन आरम्भी हिंसा, उद्योगी हिंसा, विरोधी हिंसा का त्यागी नहीं होता है तथा पूजा का त्यागी नहीं होता है। गृहस्थ का जीवन आरम्भ परिग्रह से सहित है। पूजा के आठ द्रव्यों में एक द्रव्य का नाम धूप है और धूप से पूजा करना आपका कर्तव्य है ऐसी जिनेन्द्र की आज्ञा है यदि आप धूप से पूजा नहीं करते हैं तो सात ही द्रव्यों से पूजा की तो आपको आज्ञा लोप नाम का दोष आता है। ति.प. गा. 749 अ. 4 पृ. 216 समवशरण में अकृत्रिम जिनालयों में धूपघट होते हैं। यदि आप धूप दहन में प्रश्न चिह्न लगाते हैं तो इसी तरह अपनी कल्पना से, कुतर्कणा से सभी द्रव्यों में, सभी षडावश्यकों में, मूलगुणों में, उत्तर गुणों में और भी गृहस्थोचित परंपरागत सदाचारों में प्रश्नचिह्न लगा सकते हैं तब आपके प्रश्न पर ही प्रश्न है वहाँ धूपघट क्यों होते हैं? क्या प्रयोजन है? अतः शुद्ध धूप दहन में दोष नहीं है।

प्रश्न– 963–आजकल धूप शुद्ध न होने से तथा बाजार की, अनाचारियों के हाथ

की होने से धूप दहन के अयोग्य है?

उत्तर यदि धूप अशुद्ध है, जीव मौजूद हैं, योनिस्थान बन चुका है तो धूप दहन मत करो किंतु शोधकर, हाथों से कूट पीसकर तैयार करो और धर्मायतन के सामने पूजापाठ में, गुरुओं की सेवा और क्षेत्र शुद्धि के लिए धूप दहन करो तो कैसे पाप होगा? अपनी असावधानी से निर्दोष धूप आदि सामग्री को दूषित बताना बुद्धिमानी नहीं है किन्तु शुद्ध को शुद्ध, अशुद्ध को अशुद्ध बताना ही बुद्धिमानी है अन्यथा मूर्खता है। जब आप भोग विलास की सामग्री की व्यवस्था जहां कहीं से भी प्राप्त हो वहाँ जाकर ले आते हो, मंगा लेते हो, इच्छा की पूर्ति कर लेते हो तब कर्मों को काटने वाली, दुःख को नष्ट करने वाली सामग्री की व्यवस्था क्यों नहीं कर सकते हो? क्या आपकी दृष्टि में भोग श्रेष्ठ है और दान पूजा हीन है कहीं ऐसा तो नहीं है? क्योंकि समीचीन पुरुषार्थ करने वाले का भाग्य भी धर्म के प्रभाव से प्रतिकूल अनुकूल बन जाता है। जब आप सर्वत्र सर्वकाल अनछना पानी नहीं पीते, रात्रिभोजन नहीं करते, अभक्ष्यभक्षण नहीं करते, बाजार का कुछ भी नहीं खाते पीते हैं तब जिनेन्द्र के सामने, गुरु के सामने, अशुद्ध अभक्ष्य सामग्री क्यों लाना पड़े? क्यों चढ़ाना पड़े? शुद्ध खाओ और शुद्ध चढ़ाओ क्योंकि बिना परिश्रम के बिना कष्ट के 14 राजू क्षेत्र में पाप का उपार्जन कर सकता है किंतु बुद्धिपूर्वक संकल्पपूर्वक मोक्षमार्ग के अनुरूप सातिशय पुण्य जो कर्मों को काटनेवाला है वह सर्वत्र प्राप्त नहीं होता है क्वचित् कदाचित् अबुद्धिपूर्वक भरत चक्रवर्ती के 923 पुत्रों के समान प्राप्त कर सकते हैं पर यह अपवाद मार्ग है, राजमार्ग नहीं। राजमार्ग तो यह है कि मोक्षमार्ग के अनुरूप सातिशयपुण्य लोक के संख्यातवें भाग में या असंख्यातवें भाग में प्राप्त होता है। सर्वत्र नहीं सर्वजीवों में नहीं सर्वकालों में प्राप्त नहीं होता है।

प्रश्न– 964 सिर्फ मंत्र बोलकर लौंग थाली में चढ़ा दे किंतु लौंग या धूपघट में दहन न करें तो क्या दोष है?

उत्तर आपने मंत्र बोलकर धूप दहन करने का संकल्प किया है। भले ही आप अग्नि जलायें या न जलायें, कुछ भी न चढ़ायें फिर भी आपने पूजा करते समय धूप दहन करने का संकल्प किया है और प्रायः कर संकल्प के अनुसार ही कर्मों का आश्रवबंध हुआ करता है ऐसा अनेकबार कह आये हैं। धूप की सामग्री को लाने में, मंगाने में साफ करने में, शोधने में, धोने में, सुखाने में,कूटने पीसने में जो आरम्भ पूर्वक हिंसा होनी थी वह तो होगी तथा सावधानी पूर्वक समिति का पालन हो रहा है उससे पाप की हानि, पुण्य की वृद्धि, पूर्वबद्ध कर्मों की विशेष निर्जरा होनी थी वह भी हुई किन्तु आपने अभिप्राय को बदलकर, झूठ बोलकर, मायाचार कर धूप के बदले दूसरी सामग्री थाली में चढ़ा दी और मन में संतोषकर लिया यह सब अनर्गल चेष्टा है। राजा यशोधर के समान फल प्राप्त होगा 'मन में होय सो वचन उचरिये वचन होय सो तन सों करिये' क्षमाधर्म और मार्दवधर्म पूर्वक जैसा मन में विचार हो वैसा बोलो और जैसा बोलते हो, वैसा ही काय से क्रिया करो इसी का नाम आर्जव है, सरलता है। इससे भिन्न का नाम कुटिलता है, मायाचार है, योगवक्रता है जिससे अशुभनाम कर्म का आश्रवबंध होता है।

इस कारण जैसा मन्त्र बोला गया है वैसी ही सामग्री चढ़ाने योग्य है, शेष अयोग्य है। अपने विषयभोगों के स्थान को सुगन्धित करते हो, मच्छरों को भगाने के लिए अगरबत्ती का, गुडनाईट का, ऑलआऊट का प्रयोग करते हो। वेदीगृह में मूर्ति के ऊपर मच्छर मक्खियां बैठती हैं, मूर्ति के ऊपर लाईट लगाने से, मूर्ति के ऊपर पतंगे गिरते हैं, मरते हैं, छिपकली आती हैं, खाती हैं मल क्षेपण करती हैं, चीटियां आकर मुर्दे पतंगों को या पंखे टूटने से उड़ने में असमर्थ जिन्दों को ही घसीटकर ले जाती हैं सो यहाँ पाप क्यों नहीं दिखता है? मूर्ति पर, भगवान पर कीट पतंगे बैठकर काटते हैं, अशुद्धि करते हैं, उपसर्ग करते हैं, तुम आँखों से देखते हो, दूर नहीं करते हो यह तुम्हारा कितना दुर्भाग्य है। अतः मूर्ति पर लाईट मत लगाओ तथा धूप दहन से मच्छर, मक्खी आदि भाग जाते हैं, क्षेत्र की शुद्धि होती है, उपसर्ग का निवारण होता है, स्वयं को भी मच्छर नहीं काटते, सामग्री अशुद्ध नहीं करते तथा मन भी पूजापाठ में, जप में स्थिर होता है। तभी कर्मों की विशेष निर्जरा होती है। अतः राजमार्ग यही है कि जैसा संकल्प होगा वैसा ही फल प्राप्त होगा किंतु अपवाद मार्ग में क्वचित् कदाचित् अभिप्राय कुछ हो, संकल्प कुछ हो और फल कुछ ही हो अत्यन्त उल्टा ही प्राप्त हो या कुछ भी प्राप्त न हो। जैसे किसी को सर्प ने काटा और बिच्छू का मंत्र पढ़कर झाड़ा दिया जाये तो कैसे विष दूर होगा? सर्प के विष को दूर करने के लिए गारूड़ी मंत्र चाहिए इसके प्रयोग से विष दूर होगा अन्यथा नहीं, विष को निकालने की पूर्ण इच्छा है, पर मंत्र भिन्न है, हीनाधिक अक्षरवाला है, गलत है तो कैसे सफलता मिलेगी? परिश्रम व्यर्थ जायेगा संकल्प भी कार्यकारी न होगा। दूसरा उदाहरण आ. श्री धरसेनजी ने मुनि नरवाहन (राजा नरवाहन थे आ. भूतबली बने) मुनि सुबुद्धि (सेठ सुबुद्धि थे आ. पुष्पदन्तजी बने) को गलत मंत्र दिया था, पर तीनों का अभिप्राय गलत न था सही था, पर मंत्र गलत होने से मंत्र के अधिष्ठाता का रूप सही दिखाई न दिया। मन्त्र शुद्धकर जपना प्रारम्भ किया तो सही रूप दिखाई दिया। तीसरा उदाहाण अंजरचोर का। अंजनचोर के मन में भय था कि राजसैनिक पीछे से आकर जान से मारेंगे या जिंदा पकड़कर ज्यादा कष्ट देंगे यह घबराहट थी। घबराहट के कारण मंत्र का उच्चारण पूर्ण न कर सका और सीके की लड़िया सीधी एकसाथ एकदम से काट दी मंत्र सिद्ध हो गया। इस कथा में अंजनचोर का मंत्र को सिद्ध करने का अभिप्राय न था केवल मरने से, कष्ट से बचने का भाव था। अतः कहीं अभिप्राय के अनुसार फल प्राप्त होता है तो कहीं कार्य के अनुसार फल प्राप्त होता है तो कहीं बाह्य प्रबल निमित्त के कारण फल प्राप्त होता है तो कहीं भाग्यानुसार ही फल प्राप्त होता है। यह लोक व्यवस्था है किंतु लोकोत्तर व्यवस्था में अभिप्राय और पुरुषार्थ एकरूप में होने से सही फल मोक्षफल प्राप्त होता है। अतः जो नियम निर्दोष रीति से जहाँ लग रहा हो वह नियम वहीं लगाना चाहिए अन्यत्र नहीं।

प्रश्न– 965 परम्परागत धूप से पूजा करने का मन्त्र कौन सा है? उससे क्या प्राप्त होता है?

उत्तर **ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा। हे भगवन, हे देव शास्त्र गुरु! आपकी धूप से पूजा करने पर अनादिकालीन आठों कर्मों का नाश हो, शुद्ध आत्मा की प्राप्ति हो यह फल मेरे को चाहिए। जिसप्रकार यह शुद्ध दशांगी धूपरूपी ईंधन अग्नि में जल**

रहा हैं उसी प्रकार कर्मरूपी ईधन ध्यान रूपी अग्नि में जलकर नष्ट हो जाय।

प्रश्न— 966 धूप से पूजा करने वाला मंत्र युगलजी कृत कौन सा है जो परम्परागत नहीं है फिर भी ग्राह्य है?

उत्तर **ॐ ह्रीं** देवशास्त्रगुरुभ्यो विभाव परिणति विनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा। इन दोनों मंत्रों में केवल शब्दों की अपेक्षा अन्तर है भाव में अंतर नहीं है क्योंकि आठों कर्म भूतकालीन विभावरिणतिका फल है और वर्तमान में विभावपरिणति भूतकालीन कर्मोदय का फल है तथा विभावपरिणति भावीकाल के लिए कर्मबन्ध का साधन है वर्तमान में विभावपरिणति साध्यसाधन भावको तथा साधन साध्य भाव को प्राप्त होती है इसी तरह आठों कर्मों में तथा विभावपरिणति में कारण कार्य भाव तथा कार्य कारण भाव संबन्ध जानना चाहिए। इस प्रकार इन दोनों मंत्रों में शाब्दिक अंतर होने पर भी भाव में अन्तर नहीं हैं क्योंकि विभावविकार नष्ट हो गया तो कर्म भी नष्ट हो जायेंगे। दोंनों कर्मों के क्षय का समय एक ही है किन्तु कथन में क्रम है।

प्रश्न— 967 जो पूजन सामग्री सचित्त है जिसमें प्रतिसमय संख्यात असंख्यात और अनन्तजीव जन्म मरण कर रहे हैं अतः पाप भीरू गृहस्थों को इस प्रकार की पूजा अभिषेक करना चाहिए क्या?

उत्तर जो गृहस्थ पाप से, कर्मबन्ध से भयभीत है वह गृहपरिवार के साथ विषय भोगों मे, शृंगार अलंकार में लिप्त नहीं हो सकता है, स्मरण नहीं कर सकता है, पद के विरुद्ध कार्य कर नहीं सकता। सर्व त्यागकर महाव्रती पद आर्यिका,आरम्भ परिग्रह के त्यागी ऐसे ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका पद स्वीकार कर लेगा, कर लेगी। क्या वृक्ष के डण्ठल में लगा फल परिपक्व होने पर नहीं गिर जाता है? नहीं, गिर ही जाता है उसी प्रकार वैरागी आत्मा गृह परिवार में रह नहीं सकता है किंतु गृहत्यागी बन जाता है। जैसे पिंजड़े में रहता हुआ तोता बन्धन मुक्त है और कबूतर पिंजड़े के बाहर रहता हुआ भी पिंजड़े के अन्दर है अर्थात् वैरागी जीव का जीवन तोते के समान तथा रागी जीव का जीवन कबूतर के समान होता है। रागी गृहस्थ घर में रहकर सत्कार्य का, सदाचार का त्याग कर सकता है किन्तु आरम्भपरिग्रह का, शृंगार अलंकार का, विषयभोगों का भली प्रकार से त्याग नहीं कर सकता। जिस प्रकार अंधकार प्रकाश एक समय में एक साथ एक स्थान पर नहीं रह सकते उसी प्रकार रागी वैरागी के परिणाम एक साथ एक जीव में एक समय में व्यक्त रूप में नहीं रह सकते हैं। इसी प्रकार योगमार्ग भोगमार्ग, संसारमार्ग मोक्षमार्ग नहीं रह सकते हैं क्योंकि ये युगल परस्पर में विरुद्ध स्वभाव वाले हैं ये पर्यायें हैं जो अपने प्रतिपक्षी पर्यायों को साथ में लिए हुए हैं और प्रागभाव प्रध्वंसाभाव होना यह प्रत्येक पर्याय का आत्मगत स्वभाव है। अग्नि में त्रस जीव, और बादर जीव नहीं होते हैं। गृहस्थ केवल संकल्पी हिंसा का त्यागी होता है, शेष तीन का नहीं। हाँ सामायिक तथा धर्मानुष्ठान आदि के समय थोड़ी देर के लिए त्याग कर दे यह भिन्न बात है किन्तु मुनिजन हमेशा के लिए हिंसाओं के त्यागी होते हैं यही इनमें अन्तर है। जिस सामग्री में त्रस जीवों के रहने में संदेह हैं तो वह मत चढ़ाओ किन्तु जो शुद्ध है उसको चढ़ाने में, धूपदहन में दोष नहीं है, देवशास्त्रगुरु की आज्ञा पालन रूप गुण हैं।

प्रश्न— 968—70 फल किसे कहते हैं? कब प्राप्त होता है? कैसा फल चढ़ाना चाहिए और कैसा फल नहीं चढ़ाना चाहिये?

उत्तर नारियल, बादाम, नारंगी, संतरा, मौसम्मी केला आदि को फल कहते है। जितने नाम पूजापाठों में फलों के आये हैं वे सभी अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति के हैं, साधारण वनस्पति सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति के नहीं। फल की प्राप्ति अंत में ही होती है। ऐसा नहीं है कि बीज बोते ही फल प्राप्त हो जाय या फूल आने के पहले ही फल मिल जाय। पूजा के लिए फल सुगन्धित, सुन्दर, सरस, शुभ नाम वाले होने चाहिए। जिन फलों और पशुओं के नाम एक ही हैं उन फलों को दान पूजा के उपयोग में नहीं लाना चाहिये क्योंकि लोक में उन फलों के नाम से ही मांसाहारियों ने पवित्र स्थानों में पशु पक्षियों की बलि चढ़ाना प्रारम्भ किया। अतः ऐसे फल और सड़े, गले, कटे, फटे, जूंठे न हों, मुरझाये हुए फल नहीं होने चाहिए।

प्रश्न— 971—73 फलों से क्या पूजा करना चाहिए? किसकी पूजा करनी चाहिए? क्यों पूजा करनी चाहिए?

उत्तर हाँ, फलों से पूजा करना चाहिये। यदि अष्ट द्रव्य सामग्री में से एक सामग्री से पूजा नहीं की तो पूजा अधूरी कहलायेगी अतः अष्ट द्रव्य से पूर्ण पूजन करना चाहिये। ऐसी देव, शास्त्र, गुरु की, धर्मायतनों की आज्ञा मानकर आज्ञाकारी भक्तों को संसार बन्धन से बचने के लिए, आत्मशान्ति प्राप्त करने के लिए फलों से पूजन करना चाहिए क्योंकि फल से फल की प्राप्ति होती है जैसे प्रकाशित दीपक से मिलकर अन्य अप्रकाशित दीपक प्रकाश करते हैं ऐसे ही पुण्य से पुण्य की प्राप्ति होती है, पाप घटता है, पुण्य बढ़ता है, पाप की हानि होती है और पाप के साधनों से पाप की उत्पत्ति, वृद्धि होती है और पुण्य की, तन, मन, धन और धर्म इन चारों की हानि होती है। पुण्य पाप के क्षय से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

प्रश्न— 974—75 पुण्योदय से पुण्य परिणाम होता है? पापोदय से पाप परिणाम होने का सर्वथा नियम है क्या?

उत्तर न, सर्वथा ऐसा नियम नहीं है, कदाचित् तदनुकूल परिणाम हो सकते हैं। कदाचित् प्रतिकूल परिणाम, हीनाधिक परिणाम हो सकते हैं। पुण्योदय में पाप का परिणाम और पापोदय में पुण्य का परिणाम भी हो सकता है जो कर्मसिद्धांत से भली प्रकार जाना जाता है। जैसे निगोदिया तिर्यंच जीवों के उच्चगोत्र का, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति त्रस नाम कर्म उत्तम संहनन आदि का सत्त्व नहीं है फिर भी कषायोदय के मन्द होने पर नवीन सातिशय या निरतिशय उत्कृष्ट पुण्य बंध कर लेता है, चरमशरीरपना प्राप्त कर लेता है इसी तरह देव पृथ्वी, जल, प्रत्येक वनस्पति में जन्म लेने के योग्य पाप परिणामों से पापोदय के नहीं होने पर भी नवीन बन्ध कर लेता है। इसी तरह नरकायु देवायु का सत्व उदय न होने पर भी निगोद पर्याय से निकलकर भविष्य में उन कर्मों को बांधकर वहाँ जन्म धारण कर लेता है। जो मनुष्य अपने अपराधों को छिपाने के लिए कर्मोदय का ही सहारा लेता है सो ऐसे जीव आत्मवंचना करते हैं। ये सांख्यमतानुयायी, ईश्वरवादी, मीमांसक हैं, जैन नहीं अनेकान्तवादी नहीं क्योंकि जब कर्म

अपराधी है तो कर्म को ही प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, प्रायश्चित्त, जप, तप करना होगा जीव को नहीं। पुनः यदि सभी कार्य या परिणाम कर्मोदय से ही होते हैं तो चतुर्गतिरूप संसार में भ्रमण बन नहीं सकता है तथा मोक्ष की प्राप्ति भी नहीं बन सकती है। कारण संसारावस्था में समस्त प्राणियों के सर्वत्र सर्वकाल कर्मोदय पाया जाता है। कुछ कर्म प्रकृतियां ऐसी भी है कि जिनका जहाँ पर उदय पाया जाता है पर वर्तमान में तदनुरूप रंचमात्र भी परिणाम नहीं पाये जाते हैं। जैसे नीचगोत्र कर्म का उदय तिर्यंचों और मनुष्यों में पाँचवें गुणस्थान तक और बंध दूसरे गुणस्थान तक स्त्रीवेद का उदय नौवें तक और बंध दूसरे तक पाया जाता है। अयशकीर्ति का उदय चौथे गुणस्थान तक तथा बन्ध छठवें गुणस्थान तक पाया जाता है।

प्रश्न– 976 सबके बाद में फल से पूजा करने को क्यों कहा?

उत्तर **फल की प्राप्ति अंत में ही होती है। जब संसार के सबकार्य कर लिए जाते हैं तभी कृतकृत्य होते हैं और उसी अवस्था का नाम मोक्ष है जैसे नौकरी करने वालों को पगार महीने के अंत में मिलती है, व्यापारी को उधारी का चुकारा भी किसान से फसल के अन्त में प्राप्त होता है।**

प्रश्न– 977 देखा जा रहा है कि नौकरी करने वालों को आवश्यकता पड़ने पर महीने के पूर्व में या प्रारम्भ में या मध्य में बैंकों से, व्यापारी के यहाँ से पहले ही रुपया मिल जाता है जिससे वह अपना गृह कार्य कर लेता है अतः फल अन्त में प्राप्त होता है यह कहना ठीक नहीं है किंतु समय के पहले भी फल की प्राप्ति हो जाती है सो ऐसा क्यों नहीं कहा?

उत्तर **सर्विस करने वालों को या व्यापारी को बैंक से या किसान के यहाँ जो रुपया या चुकारा प्राप्त होता है वह पगार नहीं है, किन्तु कर्ज है ऋण है उसे चुकारा करते समय व्याज सहित अधिक मात्रा में देना पड़ता है अथवा लोन लेते समय कुछ चल अचल संपत्ति जैसे मकान दुकान पशु पक्षी या नौकर आदि गिरवी रख कर पैसा मिलता है अतः यह पगार नहीं किन्तु कर्ज है। अतः फल की प्राप्ति अन्त में ही होती है इसलिए फल से पूजा को अंत में कहा है।**

प्रश्न– 978–80 सूखे फलों से पूजा करना चाहिए क्या? हरे फलों से कर सकते हैं क्या? दोनों फलों से पूजा कर सकते हैं?

उत्तर **सड़े, घुने, जूंठे फल न हों, जीव जन्तु रहित हों तब दोनों चढ़ा सकते हैं तथा जैसे शुद्ध सरस फल प्राप्त हुए हों तो चढ़ा सकते हैं। पूजा में सभी प्रकार के हरे, सूखे, पक्के, कच्चे फलों के नाम आते हैं। अतः आप विवेकवान हैं गुरु आज्ञा, आगमाज्ञा मानकर, विश्वासकर आज्ञा का पालन करना चाहिए। इन फलों के चढ़ाने में क्या दोष है क्या गुण हैं वह गुरु जाने, आदि के संबंध में अनेक बार समाधान कर आये हैं।**

प्रश्न– 981 फल से पूजा करने का मंत्र कौन सा है?

उत्तर **ॐ ह्रीं** देव शास्त्र गुरुभ्यो मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा। यह मंत्र परम्परागत है। हे देव शास्त्र गुरु! आपकी उत्तम फलों से पूजा कर मेरे को मोक्षफल की प्राप्ति हो यह

याचना करता हूँ पूजा का यह फल चाहता हूँ।

प्रश्न– 982 युगलजी कृत फल का मंत्र कौन सा है?

उत्तर ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा। हे देवशास्त्रगुरु! फलों से आपकी पूजा कर मेरे को मोक्षपद की प्राप्ति हो यह भावनाकर आपको फल अर्पण करता हूँ।

प्रश्न– 983 युगलजीने पूजा के मंत्रों को स्वंय नहीं बनाया है किंतु छपवाने वालों ने बदलकर छाप दिये हैं सो दोष तो प्रकाशकों का है, कवि का नहीं?

उत्तर नहीं, आपका यह प्रश्न अपने पक्षसे आक्रान्त है, पंथव्यामोह से युक्त है। युगलजी ने स्वंय ये मंत्र बनाये हैं, दूसरों ने नहीं, छपवाने वालों ने नहीं जैसे युगलजी कृत पूजा के शब्दों में देखो। जल से–मिथ्यामल धोने आया हूँ। चन्दन से– प्रतिकूल संयोगों में क्रोधित होकर संसार बढ़ाया है। अक्षत से– करता अभिमान निरन्तर ही। पुष्प से– चिन्तन कुछ फिर सम्भाषण कुछ क्रिया कुछ की कुछ होती है। नैवेद्य से– युग युग से इच्छा सागर में प्रभु गोते खाता आया हूँ। पंचेंद्रिय मन के षट्रस तज अनुपम रस पीने आया हूँ।। आदि पद्यों पर विचार करो। यह मंत्रों का परिवर्तन युगलजी ने स्वयं किया है क्योंकि पद्यों में भाव विस्तार से कहा जाता है, अर्थ स्पष्ट रहता है किंतु मंत्रों में अर्थ गुप्त रहता है, संक्षिप्त और गूढ़ होता है। मिथ्यात्व विभाव पर्याय है और सम्यक्त्व स्वभाव पर्याय है। एक के सद्भाव में दूसरी रह नहीं सकती है। ऐसा नियम है कि मिथ्यात्व का अभाव करके सम्क्त्व पर्याय उत्पन्न होती है तथा सम्यक्त्व का अभाव कर मिथ्यात्व पर्याय उत्पन्न होती है क्योंकि ये दोनों पर्याय एक गुण की है प्रतिपक्ष सहित है संसारावस्था में क्षणध्वंसी प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव को लिए हुए हैं। अतः 'अब सम्यक् निर्मल नीर लिए मिथ्यामल धोने आया हूँ।' यहाँ मिथ्यात्व पर्याय मौजूद हैं तभी तो कहा है। अतः जो निष्पक्ष आगम के मर्मज्ञ हैं, जानकार हैं, अनुभवी हैं वे विचार करें तथा चारों कषायों को चार मंत्रों के द्वारा अलग अलग क्षय कराया है, जो फल अपूर्ण हैं जब भगवान लेते देते नहीं हैं कर्ता धर्ता नहीं हैं तो मंत्रों के द्वारा फल क्यों चाहा।

प्रश्न– 984 दोनों पर्यायें एकसाथ में होने से ही तीसरा गुणस्थान बनता है। दोनों पर्यायों का सद्भाव एकसाथ एक समय में एक जीव में नहीं माना जाये तो तीसरा और पाँचवाँ गुणस्थान बन नहीं सकता है, क्यों नहीं बन सकता?

उत्तर आपका कहना सत्य है कि ये दोनों पर्यायें एकसाथ रह सकती हैं और उस गुणस्थान का नाम सम्यग्मिथ्यात्व है पर इस गुणस्थान से मोक्षमार्ग प्रारंभ नहीं होता है, संसारमार्गी ही है। यह सम्यग्मिथ्यात्व की अवस्था जात्यन्तरभूत है। ये दोनों पर्यायें स्वतंत्र होकर अलग अलग होकर नहीं रहती हैं किंतु मिश्ररूप में एक होकर रहती है शर्बत के समान। यदि आप मानते हैं कि दोनों परिणाम एकसाथ में रह सकते हैं तब आप लोग भी तीसरे गुणस्थान वाले हैं और इसी

में रहकर पूजापाठ करते हैं। तब भी आप लोग मोक्षमार्गी नहीं है, संसारमार्गी है क्योंकि इस गुणस्थान का जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है और आप मोक्षमार्गी नहीं हैं अतः तीसरा गुणस्थान भी नहीं बनता किन्तु मिथ्यात्वगुणस्थान ही बनता है। तीसरा गुणस्थान सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से होता है फिर भी क्षायोपशमिक भाव है, न मोक्षमार्ग है, न असंख्यातगुण श्रेणी कर्मों की निर्जरा होती है, न कर्मों का संवर होता है। यहाँ पर मोक्षमार्ग के अनुरूप संवर निर्जरा तत्त्व की उत्पत्ति नहीं होती है। पंचम गुणस्थान में भी मिश्ररूप एक ही परिणाम होते हैं।

प्रश्न– 985 ये पूजा के मंत्र अतिप्राचीन नहीं हैं किंतु नवीन भी नहीं हैं ऐसा भी नहीं कह सकते हैं, कुछ ही शताब्दियों के हैं अतः अप्रमाण क्यों नहीं है?

उत्तर आ० श्री कुन्दकुन्द ने प्राकृत चैत्यभक्ति, निर्वाणभक्ति और नंदीश्वरभक्ति में कहा है– दिव्वेण ण्हाणेण, दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण अक्खेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण दीवेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण वासेण, णिच्चकालं अंचंति पुज्जंति वंदंति णमस्संति अहमवि इह संतो तत्थ संताई सया णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमस्सामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगईगमणं समाहिमरणं जिणगुण संपत्ति होउ मज्झं। देव इन्द्र आदि दिव्य जल से, दिव्य चन्दन से, दिव्य अक्षत से, दिव्य पुष्प से, दिव्य नैवेद्य से, दिव्य दीप से, दिव्य धूप से, दिव्य फलों से पूजा करते हैं मैं भी यहीं रहकर स्थित होकर वहाँ कृत्रिमाकृत्रिम चैत्यालयों की नित्य सदा अष्ट द्रव्यों से अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ। क्यों करता हूँ मेरे कर्मों का क्षय हो, दुःखों का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, रत्नत्रयपूर्वक मरण हो समाधिमरण हो सुगति में गमन हो, मोक्ष के लिए गमन हो, अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति हो। आ० यतिवृषभकृत ति० प० दूसरा भाग अ०3 गा० 232–40 क्षीरोदधि समुद्र के जल से परिपूर्ण 1008 मणिमय घड़ों से मंत्रोच्चारणपूर्वक जिनेन्द्र की अभिषेक पूजा करते हैं। वे देव दिव्य झारी, कलश, दर्पण तीन छत्र और चमरादि से स्फटिक मणिमय दण्ड के तुल्य उत्तम जलधाराओं से, सुगन्धित गोसीर चन्दन, मलयचन्दन और केशर के पंकों के घोल से, मोतियों के समान उज्जवल शालिधान्य के अखंडित तन्दुलों से, दूर दूर तक फैलने वाली गंध युक्त उत्तमोत्तम विविध प्रकार की सैकड़ों पुष्पमालाओं से, अमृत से भी मधुर नाना प्रकार के दिव्य नैवेद्य से, मन को अत्यन्त प्रिय लगने वाले रत्नमयी उज्ज्वल दीपकों से, सुगन्धित धूप से और पके हुए कटहल, केला दाडिम एवं दाख आदि फलों से पूजा करते हैं। पूजा के बाद में रस, भाव एवं अभिनय से युक्त, नाटक करते हैं। सम्यग्दृष्टि देव कर्मों के क्षय में अद्वितीय कारण मानकर अनन्तगुणी विशुद्धि से युक्त पूजा करते हैं तथा मिथ्यादृष्टि देव सम्यग्दृष्टि देवों के उपदेश से जिनप्रतिमाओं को कुलदेवता मानकर नित्य ही नियम से भक्तिपूर्वक जिनेन्द्रार्चना करते हैं। ति. प. 5 पृ 21 गा. 72 ''जलगंध कुसुम तंदुल वर चरू फल दीव धूव पहुदीहिं। अच्चंते शुभ माणा जिणिंद पडिमाओ देवा य।।'' इन अकृत्रिम जिनालयों में देवगण जल, चन्दन, तंदुल, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप,

फलादि द्रव्यों से जिनप्रतिमाओं की स्तुतिपूर्वक पूजा करते हैं। आज वर्तमान काल में आ. श्री कुन्दकुन्द और आ. श्री यतिवृषभजी के वचन तीर्थंकरों के वचनों के समान प्रमाण माने जाते हैं। प्रशस्तियों में कुन्दकुन्दाम्नाय लिखा जाने लगा और वे प्रशस्तियां चाहे शिलालेख हो, मूर्तियां हो, शास्त्र हो। इन आचार्यों के वचनों में सन्देह करना कि यह सही है या गलत है। प्राचीन नहीं,नवीन है आदि विचार नहीं करना चाहिए। वर्तमान में इससे और क्या प्राचीन प्रमाण चाहिए। प्रामाणिक आचार्यों के प्रतिकूल जाना अपने को मोक्षमार्ग से भटकाना है, मोक्षमार्ग को नष्ट करना है इसलिए जो पाप से भयभीत हैं वे आचार्य तथा आचार्य के वचनों में विश्वास करें।

प्रश्न– 986–87 जैनों के यहाँ मूर्ति पूजा और अभिषेक कब से प्रारंभ हुआ? अन्यमतियों की नकल नहीं की जैनों ने क्या?

उत्तर नहीं, समीचीन जैन संसारमार्गियों की नकल नहीं करते क्योंकि वे विवेकवान और ज्ञानी होते हैं। इसलिए दिगंबर जैनों के जिनबिम्बाभिषेक, पूजन अनादिकाल से चला आ रहा है क्योंकि अकृत्रिम जिनालय अनादिकाल से हैं और अनंत काल तक रहने वाले हैं तथा कृत्रिम चैत्य चैत्यालयों की रचना नवीन है अंत सहित है। देव, विद्याधर, कर्मभूमिज श्रावक श्राविकायें नित्यप्रति अपने अपने क्षेत्रानुसार अभिषेक पूजन करते हैं ऐसा कथन अनेकों जगह अनेक बार अनेक आचार्यों ने ग्रन्थकर्ताओं ने शास्त्रों में किया है। मोक्ष अनादिकाल से है तो मोक्षमार्ग भी अनादिकाल से है तब मोक्षमार्ग की साधनभूत सामग्री भी अनादिकाल से है और चली आ रही है। इस कारण जैनों के यहाँ दिगम्बरों में अभिषेक, पूजा की पद्धति अनादिकाल से है, कोई नवीन नहीं है। भले ही आचार विचार विहीन पंडित लोग आक्षेप करे कि जैनों ने अन्यमतियों से पूजापाठ को लेकर अपने में सम्मिलित कर लिया, पर ऐसा नहीं है। असली वस्तु या असली व्यक्ति कभी भी किसी की नकल नहीं करता न देखादेखी करता है। यदि असली व्यक्ति भी नकल करे तो असली और नकली व्यक्ति में भेद क्या रहा? नरसिंह दिगम्बराचार्य डरपोंक, भीरू स्वभाव वाले नहीं होते हैं क्योंकि ये सप्तव्यसन, सप्तभयों के और पच्चीस मल दोषों के त्यागी होते हैं।

प्रश्न– 988 श्रावक किसे कहते हैं?

उत्तर मोक्षमार्ग की साधना करने वालों को श्रावक कहते हैं अथवा श्रद्धावान, विवेकवान और क्रियावान को श्रावक कहते हैं। अथवा रत्नत्रयपूर्वक असंयम सहित, देशसंयम सहित और सकल संयमसहित मोक्षमार्ग की साधना करने वालों को श्रावक कहते हैं।

प्रश्न– 989–990 श्रावकों के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर मोक्षमार्ग की साधना करने वाले श्रावक दो या तीन प्रकार के होते हैं– 1 अविरत सम्यग्दृष्टि, 2 देशविरत सम्यग्दृष्टि अथवा साधक की अपेक्षा, 3 प्रमत्तसंयत मुनि ये तीन श्रावक हैं। अथवा मोक्षमार्ग की साधना करने वालों की अपेक्षा मिथ्यात्व गुणस्थान, मिश्रगुणस्थान, अविरत सम्यग्दृष्टि और देशविरतसम्यग्दृष्टि ये चार तथा मुनि ये पांच साधक हैं ऐसा समझना चाहिए।

प्रश्न– 991 सासादन गुणस्थान वालों को साधक क्यों नहीं कहा?

उत्तर नहीं, यह साधक नहीं है किंतु विराधक है क्योंकि यह अनंतानुबंधी कषायोदय से प्रथमोपशम

सम्यक्दर्शन और द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन की विराधना करके, पतन करके आया है और एकमात्र मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त होने वाला है, प्रतिक्षण अनन्तगुणी अधिक कषाय को, संक्लेश को प्राप्त होता जा रहा है इस कारण इसे साधक न कहकर विराधक कहा है अथवा भूतपूर्व नय की अपेक्षा इसे भी साधक कह सकते हैं, क्योंकि कुछ क्षण पूर्व साधक था, रत्नत्रय सहित था। प्रमत्तसंयत गुणस्थान पर्यंत बुद्धिपूर्वक साधक हैं तथा आगे के सभी गुणस्थान वाले अबुद्धिपूर्वक मोक्षमार्ग की या मोक्ष की साधना करने वाले साधक हैं।

प्रश्न— 992 अविरतसम्यग्दृष्टि श्रावक किसे कहते हैं?

उत्तर पंचेंद्रियों को तथा मन को अपने आधीन नहीं करता है तथा षट्काय के जीवों की रक्षा नहीं करता है तथा स्वच्छन्द होकर बिना विवेक के मनमानी विषयभोगों में प्रवृत्ति भी नहीं करता है, निष्प्रयोजन स्थावर जीवों की हिंसा नहीं करता है। मिथ्यात्व, अन्याय और अभक्ष्य का त्यागी होता है, प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य गुण का धारी होता है और प्रशम, संवेग, निर्वेग, निन्दा, गर्हा, उपशम, भक्ति और वात्सल्य गुणों से युक्त, निशंकित, निष्कांक्षित आदि आठ अंगों से सहित हो, देव पूजादि षडावश्यकों का कर्तव्य समझकर पालन करने वाला हो, 25 मल दोषों का त्यागी हो, मूलगुणों का पालन करने वाला हो तथा अनन्तानुबन्धी कषाय के बिना अप्रत्याख्यानावरण कषायोदय को भोगनेवाले, अनुभव करने वाले को अविरत सम्यग्दृष्टि श्रावक कहते हैं। यह संसार शरीर भोगों से विरक्त होता है, सम्यक्त्वाचरणचारित्र का पालन करता है।

प्रश्न— 993—95 देशव्रती श्रावक किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर यदि अप्रत्याख्यानावरण कषायों के अभाव में तथा प्रत्याख्यानावरण कषायोदय का वेदन पूर्वक उपरोक्त विधि और निषेध पूर्वक नियमों को पालन करने वालों को देशविरतिश्रावक कहते हैं। दर्शनप्रतिमा, व्रतप्रतिमा, सामायिकप्रतिमा, प्रोषधोपवासप्रतिमा, सचित्तत्यागप्रतिमा, रात्रिभोजनत्याग या दिवामैथुनत्यागप्रतिमा, ब्रह्मचर्यप्रतिमा, आरम्भत्यागप्रतिमा, परिग्रहत्यागप्रतिमा, अनुमतित्यागप्रतिमा, उद्दिष्टत्यागप्रतिमा, ये ग्यारह भेद श्रावकों के हैं अथवा पाक्षिक, नैष्टिक और साधक के भेद से तीन प्रकार है अथवा उत्तम, मध्यम और जघन्य ये तीन भेद हैं।

प्रश्न— 996—97 प्रतिमा किसे कहते हैं? स्वामी कौन हैं?

उत्तर ''संयम अंश जग्यो जहाँ भोग अरुचि परिणाम। उदय प्रतिज्ञा को भयो प्रतिमा ताको नाम।।'' जिस समय इंद्रिय और मन पर तथा विषय भोगों को, कषायों को जीतने का परिणाम उत्पन्न हो जाय तथा षट्काय के जीवों की संकल्पपूर्वक रक्षा करने का भाव उत्पन्न हो जाय, रक्षा करने लग जाये, विषय भोगों मे, शृंगार अलंकारों में माध्यस्थ भावों की वृत्ति होने लगे तो इस प्रकार की प्रतिज्ञा करने को प्रतिमा कहते हैं और यह प्रतिज्ञा कर्मभूमिज, सैनी पंचेंद्रिय, पर्याप्त, गर्भज, सम्मूर्च्छन, तिर्यंच, गर्भज मनुष्य इन प्रतिमाओं के स्वामी हैं क्योंकि तिर्यंचों में देशसंयत गुणस्थान माना गया है।

प्रश्न— 998 दर्शनप्रतिमा किसे कहते हैं?

उत्तर शंकादि 8 दोष, 8 मद, 6 अनायतन और 3 मूढ़ता इन 25 दोषों का त्यागी, शुद्ध सम्यग्दृष्टि संसार

शरीर भोगों से विरक्त, आठ मूलगुण और षडावश्यकों का पालक, एकमात्र मोक्षमार्ग के लिए पंच परमेष्ठी ही शरण हैं, अन्य नहीं। कितनी ही आपत्ति विपत्ति, भय, कष्ट क्यों न आये अन्य की शरण में नहीं जाता। इस प्रकार दृढ़ संकल्प करने को दर्शनप्रतिमा कहते हैं।

प्रश्न— 999 व्रतप्रतिमा किसे कहते हैं?

उत्तर माया मिथ्या और निदान शल्यों को छोड़कर, अतिचार दोषों का त्यागी, मूलगुणों को, पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रतों को धारणकर पालने वाला जीव व्रतियों में व्रत प्रतिमावाला माना गया है। इस प्रकार की प्रतिज्ञा पालन करने वाले को व्रती कहते हैं। इस व्रत प्रतिमा वाले के अनन्तानुबन्धी और अप्रत्याख्यानावरण क्रोधादि आठ कषायों का अभाव होना परमावश्यक है।

प्रश्न— 1000 शल्य किसे कहते हैं?

उत्तर जो आत्म परिणाम अपने आप में कांटे के समान चुभन पैदा करते हैं, अपने उपयोग को लक्ष्य में स्थिर न होने दे, संसार शरीर और भोगों में मन चलायमान होता रहे उसे शल्य कहते हैं। जैसे भोजन करते समय दांतों में कुछ फंस गया है तो उसे हटाने के लिए जिह्वा, मन वहीं पर लगा रहता है क्योंकि उसके लगे रहने पर आत्मा में चुभन होती रहती है, इसी तरह चुभन रूप परिणामों के होने पर अपना आत्म परिणाम किसी भी कर्तव्य पालन में स्थिर नहीं हो पाता।

प्रश्न— 1001—02 शल्यों के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर शल्यों के तीन भेद हैं अथवा आठ भेद हैं। तीन नामः— मायाशल्य, मिथ्यात्वशल्य और निदानशल्य अथवा आठ नामः— क्रोध शल्य, मान शल्य, माया शल्य, लोभ शल्य, प्रेम शल्य, पिपासा शल्य, निदान शल्य, और मिथ्यादर्शन शल्य। क्योंकि ये परिणाम आत्म साधना में, आत्मस्वभाव में स्थिर नहीं होने देते अतः इन्हें शल्य कहते हैं।

प्रश्न— 1003 माया शल्य किसे कहते हैं और किस निमित्त से होती है?

उत्तर दूसरे प्राणियों को धोके में डालने के लिए, कष्ट में डालने के लिए जो मन में जो चुभन होती है, रात्रि दिन उसी चिन्ता में डूबा रहता है। अनंतानुबंधी माया और अप्रत्याख्यानावरणीय माया कर्म के उदय से ही यह माया शल्य उत्पन्न होती है।

प्रश्न— 1004 मिथ्यात्वशल्य किसे कहते हैं तथा किस कर्मोदय से होती है?

उत्तर मोक्षमार्ग और मोक्षमार्ग के साधनों के विरुद्ध संसार के मार्ग स्वरूप साधनों में आकुलता होने को, मन में चिन्तित होने को, अस्थिर चुभनरूप परिणाम होने को, अविश्वासभाव को मिथ्यात्व शल्य कहते हैं। यह मिथ्यात्व शल्य तीव्र मिथ्यात्व कर्मोदय से उत्पन्न होती है।

प्रश्न— 1005 निदान शल्य किसे कहते हैं और किस कारण से उत्पन्न होती है?

उत्तर वर्तमान काल में भोग सामग्री अपने पास में है या नहीं फिर भी अतृप्ति होने पर पुनः नवीन भोग सामग्री की प्राप्ति के लिए जो चिंता होती है उसे निदान शल्य कहते हैं। यह अनंतानुबंधी लोभ और अप्रत्याख्यानावरणीय लोभ कर्मोदय से उत्पन्न होती है।

प्रश्न— 1006 क्रोधशल्य किसे कहते हैं?

उ़त्तर किसी दूसरे व्यक्ति के धन वैभव परिवार आदि को देखकर सुनकर मन में असहनशीलता होने को क्रोधशल्य कहते हैं अथवा किसी दूसरे के बड़प्पन को मिटाने के लिए आकुलित होने को क्रोधशल्य कहते हैं। अनंतानुबंधी और अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध कर्मोदय से होती है।

प्रश्न– 1007 मानशल्य किसे कहते हैं?

उत्तर किसी दूसरे व्यक्ति के ज्ञान, तप, पूजा, प्रतिष्ठा, आदर सम्मान, धनवैभव को देखकर उसको नीचा दिखाने के लिए, बड़प्पन दिखाने के लिए स्वयं में चुभन परिणाम को मान शल्य कहते हैं। अनंतानुबंधी और अप्रत्याख्यानावरणीय मान कर्मोदय से उत्पन्न होती है।

Note:–माया, मिथ्यात्व और निदान शल्य का कथन प्रश्न नं 1003 – 1005 में किया जा चुका है।

प्रश्न– 1008 लोभशल्य किसे कहते हैं, निदान शल्य और लोभ शल्य में अंतर?

उत्तर स्वयं के शरीर में या कलागुणों में या दूसरों के पास भोगसामग्री को देखकर मेरे को चाहिए या जो अपने पास में है उसमें गृद्धतापूर्वक आसक्त होकर, आकुलित परिणाम होने को लोभशल्य कहते हैं। अनंतानुबंधी और अप्रत्याख्यानावरणीय लोभोदय से उत्पन्न होती है। निदान शल्य पर भव संबंधी और लोभ शल्य इसी भव संबंधी होती है इन दोनों में यही अंतर है।

प्रश्न– 1009 प्रेमशल्य किसे कहते हैं?

उत्तर माया और लोभकषाय तथा हास्यरति तीनों वेदोदय से परपदार्थों के प्रति आकर्षित होकर रमण करने के लिए मन में उत्पन्न उथल पुथल को प्रेम शल्य कहते हैं।

प्रश्न– 1010 पिपासा शल्य किसे कहते हैं ?

उत्तर काम भोग, शृंगार अलंकार, वस्त्राभूषणों के प्रति प्यासे व्यक्ति के समान या शरीर में लगी हुई सुई की चुभन के समान लालायित होने को पिपासा शल्य कहते हैं। असाता कर्मोदय से होती है।

Note:–इन आठ शल्यों का वर्णन बृहद् प्रतिक्रमण में विकथाओं के बाद किया गया है।

प्रश्न– 1011–13 दोष किसे कहते हैं ? कितने भेद हैं ? नाम कौन–कौन हैं?

उत्तर देवशास्त्रगुरु के सामने, माँ बाप के सामने, समाज के सामने, देवताओं के सामने जो प्रतिज्ञा की है तो उस प्रतिज्ञा को मलिन करने वाले परिणामों को या चर्या को दोष कहते हैं। दोषों के 4 या प्रत्येक कषायों की अपेक्षा 64 भेद। अतिक्रम दोष, व्यतिक्रम दोष, अतिचार दोष, अनाचार दोष इन परिणामों से प्रतिज्ञा मलिन होती है या नष्ट भी हो जाती है जो प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है।

प्रश्न– 1014 अतिक्रम दोष किसे कहते हैं?

उत्तर मोक्षमार्ग के अनुरूप की हुई प्रतिज्ञा में मन के द्वारा किंचित् उत्पन्न हुई मलिनता को अतिक्रम दोष कहते हैं।

प्रश्न– 1015 व्यतिक्रम दोष किसे कहते हैं?

उत्तर उक्त प्रतिज्ञा में उत्पन्न हुई अतिक्रम दोष रूप मलिनता की वृद्धि को व्यतिक्रम दोष कहते हैं?

प्रश्न– 1016 अतिचार दोष किसे कहते हैं?

उत्तर उक्त प्रतिज्ञा में उत्पन्न हुई मलिनता की व्यतिक्रम दोष की मलिनता में वृद्धि को तीव्रता को अतिचार दोष कहते हैं।

प्रश्न– 1017 अनाचार दोष किसे कहते हैं?

उत्तर मोक्षमार्गानुरूप की गई प्रतिज्ञा में पूर्ण रूप से उत्पन्न हुई विराधना को अनाचार दोष कहते हैं।

प्रश्न– 1018 इन चारों दोषों को उदाहरण देकर समझाइये?

उत्तर उदाहरण देकर बताते हैं– जैसे रात्रिभोजन का त्याग किया है। अब दिन में भोजन करने का भाग्यवशात् समय नहीं मिला रात्रि हो गई, दिन में खाया नहीं और जोर से भूख लगी हैं कुछ होता तो खा लेते पर क्या करें रात्रि में भोजन करने का त्याग किया है अतः इस भोजन करने की अभिलाषा को, इच्छा को अतिक्रम दोष कहते हैं। भूख की इच्छा के अनुसार रात्रि में भोजन सामग्री एकत्रित कर लेने को, खाने की तैयारी कर लेने को व्यतिक्रम दोष कहते हैं और पूर्व योजनानुसार भोजन सामग्री तैयार कर, थाली आदि लगाकर, हाथ में गिलास उठाकर मुख में ले लिया तो अतिचार कहते हैं तथा बार–बार खाने को अनाचार कहते हैं अथवा भविष्य में त्याग करने की भावना न होने को भी अनाचार कहते हैं। अथवा की हुई प्रतिज्ञा में कषायों का मंदोदय परिणाम अतिक्रम दोष, तीव्र परिणाम व्यतिक्रम परिणाम दोष, तीव्रतम कषायोदय से उत्पन्न परिणाम अतिचार तथा तीव्रतर कषायोदय से कलुषित भाव अनाचार दोष कहलाता है यह भावों में ही दोषों का कथन है इसी कारण तंदुल मत्स्य को भावों में अनाचार दोष के कारण सातवें नरक में जाना पड़ा तो आज का मानव सतत परिणामों को बिगाड़ रहा है सो यह कहाँ जायेगा?

प्रश्न– 1019 ब्रह्मचर्यव्रत के सम्बन्ध में चारों दोषों को किस प्रकार समझना चाहिए?

उत्तर जिस श्रावक या श्राविका ने ब्रह्मचर्यव्रत या नियम लिया बाद में किसी दूसरे के रूप लावण्य को देखकर, सुनकर, कामसुख की भावना से आकर्षित होने को अतिक्रम दोष कहते हैं। पुनः देखने की, सुनने की तीव्र आकांक्षा बढने को व्यतिक्रम दोष कहते हैं। उसको आलिंगन करने के लिए पकड़ लेना अतिचार दोष कहते हैं। पुनः पुनः स्पर्श करने लग जाना, अत्यन्त तीव्र लालसा होना, खाना पीना, सोना, लज्जा, मर्यादा हराम हो जाने को अनाचार दोष कहते हैं। अथवा काम सुख की अभिलाषा होना अतिक्रम दोष। आकांक्षा के अनुसार तलाश में, खोज में निकलना व्यतिक्रम दोष। एकादिबार आलिंगन कर लेना, चुंबनकर लेना अतिचार दोष है। बार बार आलिंगन, चुंबन मैथुन सेवन अनाचार दोष है। सेवन के बाद पुनः पुनः सेवन करना, त्याग करने का नियम लेने का मन ही नहीं बनाना अनाचार में भी अनाचार है, पाप में भी महापाप है इसी तरह सभी प्रतिज्ञाओं में समझना चाहिए।

प्रश्न– 1020 ग्रन्थकारों ने व्रतों को अतिचार टालकर पालन करने को कहा है अतः अतिक्रम, व्यतिक्रम और अनाचार के लगने पर भी व्रत निर्दोष है क्या?

उत्तर ग्रन्थकारों ने व्रतों को निरतिचार पालन करने को कहा है। यहाँ अतिचार पद मध्य दीपक है जिस प्रकार कमरे के मध्य में, बीच में रखा गया प्रकाशित दीपक चारों ओर प्रकाश फैलाता है इसी तरह यह अतिचारपद प्रारम्भ के दो अतिक्रम दोष, व्यतिक्रम दोष को तथा अनाचार दोष को ग्रहण

कर लेता है। इस कारण यहाँ पर अतिचार से मतलब सिर्फ अतिचार दोष न लेकर सभी दोषों को ग्रहण कर लेना चाहिए। सभी दोषों के टालने से ही व्रत निर्दोष कहलायेगा। यदि केवल अतिचार दोष को टालने से व्रत निर्दोष कहलाया तो अनाचार दोष लगने पर भी व्रत को निर्दोष पालन हुआ कहना चाहिए। जैसे एक एक बूंद पानी के एकत्रित करने पर घड़ा भरा जाता है और एक–एक बूंद पानी के निकालने से भरा घड़ा खाली हो जाता है वैसे ही एक एक दोष के निकालने पर व्रत धीरे धीरे परिपूर्ण महाव्रत होकर मोक्ष प्राप्त करा देता है क्रमशः एक एक दोष के संग्रह से व्रत पूर्ण नष्ट हो जाता है। अतः दोष चाहे अतिक्रम हो या व्यतिक्रम हो या अतिचार हो या अनाचार हो, दोष तो दोष ही हैं। ये पतन करायेंगे ही।

प्रश्न– 1021–23 हिंसा पाप किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन–कौन हैं?

उत्तर प्रमादपूर्वक, असावधानीपूर्वक स्व के, पर के तथा उभय के द्रव्य प्राणों की तथा भाव प्राणों की विराधना करने को हिंसा पाप कहते हैं। दो भेद हैं– नाम 1.द्रव्य हिंसा, 2.भाव हिंसा। चार भेद हैं– नाम 1.संकल्पी हिंसा, 2.आरम्भी हिंसा, 3.उद्योगी हिंसा और 4.विरोधी हिंसा ये हिंसाओं के दो या चार नाम हैं। अथवा सभी पापों के संख्यात अंसख्यात और अनंत भेद हैं।

प्रश्न– 1024 द्रव्य हिंसा किसे कहते हैं?

उत्तर प्रमादपूर्वक, असावधानीपूर्वक पुद्गल की रचना स्वरूप द्रव्यइंद्रिय, बल, आयु, श्वासोच्छ्वास आदि प्राणों की विराधना करने को अथवा धनादि के अपहरण करने को भी द्रव्य हिंसा कहते हैं।

प्रश्न– 1025 भाव हिंसा किसे कहते हैं?

उत्तर प्रमादपूर्वक चैतन्य आत्मा में शान्ति भंगकर क्रोधादि विकारों को उत्पन्न करने को, करा देने को या दोनों में उत्पन्न कर, करा देने को भावहिंसा कहते हैं।

प्रश्न– 1026 संकल्पी हिंसा किसे कहते हैं?

उत्तर निरपराधी प्रणियों को, जिन्होंने अपने किसी भी लौकिक या लोकोत्तर कार्यों में किसी भी प्रकार से बाधा नहीं डाली है ऐसे प्राणियों को निष्प्रयोजन प्रमादपूर्वक कष्ट देने को, विराधना करने को, अमर्यादित भोजन, अभक्ष्य भोजन तथा शुद्ध होने पर भी संख्यात अंसख्यात और अनन्त जीवों का समावेश प्रवेश हो गया है ऐसे भोजन के करने को, जीवों की विराधना करने को, मद्य, मांस, मधु से मिश्रित औषधि, शृंगार, अलंकार आदि के प्रयोग करने को संकल्पी हिंसा कहते हैं।

प्रश्न– 1027 यद्यपि भोजन शुद्ध है तो भी इतने संख्यात आदि जीव पाये जाते हैं यह कैसे संभव है बताओ?

उत्तर यद्यपि भोजन शुद्ध मर्यादित है तो मक्खी, मच्छर, चींटी आदि आकर उसमें मिल गईं, मरीं और पुनः पुनः पैदा हुई या दूध आदि विरुद्ध सामग्री के मिश्रण से, सड़ने के सम्मुख हो चला तब उसमें इन जीवों को रहने में कोई विरोध नहीं अथवा दूध घी तेल फलादि में भी बिगड़ने के सम्मुख होने से इन जीवों को रहने में विरोध नहीं है और ऐसे पदार्थों को खाने में अनन्तानुबन्धी कषायोदय से उत्पन्न संकल्पी हिंसा को मानने में कोई विरोध नहीं है।

प्रश्न– 1028 आरम्भी हिंसा किसे कहते हैं?

उत्तर कूटने में, पीसने में, झाडू लगाने में, आग जलाने में, पानी भरने में सावधानीपूर्वक कार्य करने पर भी जो जीवों की विराधना होती है उसे आरम्भी हिंसा कहते हैं और असावधानीपूर्वक करने को संकल्पी हिंसा कहते हैं। नौकर आदि से ये कार्य कराने पर जीवों की विराधना हो या न हो किंतु प्रमादपूर्वक होने से संकल्पी हिंसा ही होती है इसे कोई टाल नहीं सकता है।

प्रश्न– 1029 उद्योगी हिंसा किसे कहते हैं?

उत्तर स्वगत या परगत या उभयगत व्यापारों के द्वारा, खेती किसानी के कार्यों के द्वारा सोने, चांदी, तांबा, पीतल, कपड़ा, किराना, शृंगार अलंकार की वस्तुओं के क्रय विक्रय के द्वारा, नौकरी या नेता आदि बनकर आजीविका के साधनों के द्वारा सावधानीपूर्वक करने पर भी क्वचित् कदाचित् जीवों की विराधना हो या न हो और व्यापार करते समय, लेन देन करने वालों के मन में हर्ष विषाद उत्पन्न होता है तो उस हर्ष विषाद को ही मुख्यतः उद्योगी हिंसा कहते हैं और इसके बाह्य साधनों को भी साधन का साधनमानकर आजीविका चलाने को भी उद्योगी हिंसा कहते हैं।

प्रश्न– 1030 शराब, मांस, यौनव्यापार, चोरी, डाका डालना, काला बाजारी करना ज्ञान को बेचकर आदि को उद्योगी हिंसा कह सकते हैं क्या?

उत्तर जिस सामग्री के क्रय विक्रय करने पर संख्यात असंख्यात अनन्त जीवों की विराधना हो, त्रस जीवों की विराधना हो तो वह उद्योगी हिंसा नहीं किन्तु संकल्पी हिंसा है तथा जो प्रश्न में नाम गिनाये हैं वे व्यापार के नहीं है किन्तु व्यसन के हैं, पापों से भी अधिक महापाप हैं। क्योंकि व्यसनों का सेवन करने वाला एकमात्र मिथ्यादृष्टि महापापी जीव ही होता है। ज्ञान आजीविका के लिये नहीं होता है किन्तु आत्मसाधना के लिये, दुष्कर्मो से बचने के लिये होता है अतः ज्ञान के द्वारा आजीविका नहीं चलायी जाती है।

प्रश्न– 1031 पशु पक्षियों का, दासी दास आदि चेतन पदार्थों का क्रय विक्रय करने को उद्योगी हिंसा कह सकते हैं क्या?

उत्तर यदि प्रश्नोक्त सामग्री को ग्राहक खरीदकर जीवन में शक्ति से ज्यादा काम न कराये, मौसम के अनुसार समय पर खिलाये पिलाये, ठण्डी गर्मी से बचाये, भली प्रकार काम लेकर भी पालन पोषण करे तो उसे उद्योगी हिंसा कह सकते हैं और यदि व्यापारी, कसाई, खटीक, मांसाहारी, कामी आदि पापियों को पशुपक्षी, दास दासी का विक्रय कर दे तो वे इनको महान कष्ट देंगे, समय पर खाना पीना नहीं देंगे, ठण्डी गर्मी से नहीं बचायेंगे, जान से मारकर मांसादि खायेंगे खिलायेंगे, दासियों से कामसेवन कर या कराकर धन कमायेंगे, वेश्या भी बनाकर कुकर्म करेंगे करायेंगे सो यह उद्योगी हिंसा न होकर संकल्पी हिंसा से भी महाहिंसा पाप व्यसन सेवन है जो मोक्षमार्ग के बाहर की चर्या है महान दुष्कर्म को लाने वाली है।

प्रश्न– 1032 कमजोर स्थिति होने के कारण पुत्र पुत्रियों का, भाई बहिनों का तो क्रय विक्रय कर सकते हैं क्या?

उत्तर नहीं, इनका व्यापार नहीं होता है किन्तु सज्जातियुक्त अपने सहधर्मी भाईयों को व्यवहार धर्म चलाने के लिए अर्पण समर्पण किया जाता है, व्यापार नहीं किया जाता है, लेन देन नहीं

किया जाता है। इसे ग्रन्थकारों ने समदत्तीदान कहा है। इनको देकर लेन देन व्यापार किया, पैसा लिया तो पापोपदेश या अपध्यान अनर्थदण्ड है जो जाति, कुल, परिवार, समाज और धर्म को बदनाम कराने वाला है अतः अपने ही रजोवीर्य का व्यापार नहीं किया जाता।

प्रश्न— 1033 किडनी का, नेत्रों का, रक्त का, बीजारोपण के लिए रजोवीर्य का व्यापार कर सकते हैं या इनका दान दे सकते हैं क्या?

उत्तर धातु उपधातुओं का, शरीर के अंगों का, रजोवीर्य का व्यापार नहीं किया जाता और जो इनका व्यापार करते हैं वे प्रायः गरीब होते हैं या कमजोर। इनको धन का लोभ देकर या बलात् अपहरण कर बलपूर्वक शरीर के अंग उपांग निकाल लिए जाते हैं। इनके शरीर के अंग नेत्र, किडनी आदि निकालकर लेना या दूसरों को देना इसमें तुम्हारी क्या वीरता, क्या महानता, क्या मर्दानापन? ऐसा व्यक्ति कमजोर हो जाता है। उसका जीवन और शारीरिक बल प्रायः कर समाप्त हो जाता है। दान देना ही है तो अपने ही अंगों का दो और वह भी भरी जवानी में, तभी मालूम होगा कि शरीर के स्वाभाविक अंगों को निकाल देने पर क्या हालत होती है कितनी कमजोरी आती है। अतः मरते समय क्या दान देना? जब स्वयं ने सब भोग भोग लिए तब दान देने लगे, अपने भोग विलास के लिए दूसरे का जीवन, सुख दुःख नहीं देखा? स्व और पर में समान बुद्धि रखो। अन्याय क्यों? इन धातु और उपधातुओं के लेन देन को दान नाम विदेशी मांसाहारी मनुष्यों ने कहा है। यदि सीधा मांगते तो कोई नहीं देता क्योंकि धार्मिक अहिंसावादी समाज शरीर के अंगों को देकर दान नाम नहीं कहती किंतु पाप ही कहती है। इसलिए उन्होंने बाल्यकाल से बालक बालिकाओं को इस प्रकार शिक्षा दी कि वे पाप को पाप नहीं समझते। जैसे चार्वाक कामसेवन को, शराबी, मांसाहारी, खून पीने, मांस खाने को, शिकार खेलने को, चोरी करने आदि इन कार्यों को पाप ही नहीं मानते, बड़े उत्साह से करते हैं। किंतु उक्त सामग्री का दान और व्यापार नहीं किया जाता। सिर्फ दान आत्मसाधन, आत्म कल्याण के लिए दिया जाता है।

प्रश्न— 1034 आलू , मूली, गाजर आदि अनन्तकायिक कंदमूल सामग्री तथा लाख, महुआ, सड़े घुने धान्य, सब्जीफल, उदुम्बर फलों के व्यापार को उद्योगी हिंसा कह सकते हैं या संकल्पी हिंसा कहेंगे?

उत्तर व्यापार के नाम से कहे जाने वाले ये कार्य अहिंसावादी सदाचारी समाज जो व्यक्ति ऊर्ध्वगमन की, उच्च गति में गमन करने की इच्छा रखते हैं वे त्रस जीव और स्थावर जीवों के पिण्ड स्वरूप संख्यात, अंसख्यात और अनन्त जीव जिसमें पाये जाते हैं उसका व्यापार नहीं करते इनकी विराधना का नव कोटियों से त्याग करते हैं या रक्षा करने का नवकोटियों से संकल्प करते हैं। उक्त कन्दमूलादि के भक्षण से तन मन धन और धर्म चारों नष्ट होते हैं ऐसा सभी धर्म कहते हैं। अतः यह उद्योगी हिंसा नहीं किन्तु संकल्पी हिंसा है।

प्रश्न— 1035 उक्त कन्दमूलादिका व्यापार उद्योगीहिंसा नहीं तो संकल्पीहिंसा क्यों?

उत्तर उक्त कन्दमूलादि का व्यापार करना, खाना खिलाना, बिना मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषायोदय के हो नहीं सकता। इसलिए आचार्यों ने जैनों के लिए अनन्तकायिक कन्दमूलादि का

खाने खिलाने का, व्यापार करने, कराने का त्याग कराया। अतः इनका जीवन में किसी भी प्रकार से उपयोग होना मिथ्यात्व और अनन्तानुबंधी कषाय का सूचक है। इसलिए भव्य जीवों को अपने आत्म उद्धार के लिए इनका नव कोटियों से त्याग करना चाहिए।

प्रश्न– 1036 जैन लोग ईंट का, खप्पर का, चूना का, सीमेंट का भट्ठा लगवा सकते हैं क्या?

उत्तर इनका भट्ठा लगाने लगवाने में संख्यात असंख्यात त्रस जीवों की तथा अनन्त स्थावर जीवों की विराधना होती है अतः इनका व्यापार मिथ्यादृष्टिजीव ही करते हैं, सम्यग्दृष्टि जीव नहीं।

प्रश्न– 1037 यदि सम्यग्दृष्टि श्रावकगण इसका व्यापार, भट्ठा लगाना आदि नहीं करें तो मंदिर मकान कैसे बनवायेंगे?

उत्तर मकान, मंदिर आदि बनवाने के लिए सीमित सामग्री खरीदी जायेगी किन्तु भट्ठा लगाने में, व्यापार करने में, धन कमाने में लोभ कषाय ज्यादा होगी, हाय हाय होगी की धन कैसे बढ़े और अधिक आरम्भ होने से जीव विराधना अधिक होती है तथा खर कर्म भी कहा है जो उच्च वर्ण वालों के करने योग्य नहीं है। अतः खर कर्मों के त्यागी होने से जैन इनका व्यापार नहीं करते।

प्रश्न– 1038 पाठशाला के द्वारा, औषधिशाला, धर्मशाला, दानशाला से मकान भाड़े में देकर या रूपया ब्याज में देकर तो आजीविका चला सकते हैं क्या?

उत्तर धर्म की शिक्षा, शुद्ध व्यापार की शिक्षा, निर्दोष राज्यनीति की शिक्षा, शुद्ध औषधिसे जिसमें त्रस जीवों से उत्पन्न धातु उपधातुओं का मिश्रण न हो, धर्मशाला धर्म साधन के लिए होती है, आजीविका के लिए नहीं। मकानादि भाड़े में देकर आजीविका चला सकते हैं पर भाड़ा में, ब्याज लेने में भी न्याय नीति का विचार करके लेना चाहिए, दुःखी करके अधिक नहीं चूसना चाहिए क्योंकि संसार में हर व्यक्ति को कोई न कोई वस्तु की जरूरत पड़ती है सर्व सम्पन्न कोई नहीं होता ये कार्य करते हुए दूसरों के सुख दुःख का भी विचार करना चाहिए।

प्रश्न– 1039–41 नीति किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर व्यवहारिक जीवन में या पारमार्थिक जीवन में सुख दुःख में साधनभूत उपायों को, पद्धति को कानून को नीति कहते हैं। नीति के तीन भेद हैं। नाम– धर्मनीति, राज्यनीति और कूटनीति।

प्रश्न– 1042–44 धर्मनीति किसे कहते हैं? भेद कितने हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर जिन आचारविचारों के द्वारा जीव सुख का, आनन्द का अनुभव करे उस पद्धति को धर्मनीति कहते हैं। दो भेद हैं। 1. व्यवहार धर्मनीति और 2. अध्यात्मधर्मनीति।

प्रश्न– 1045 व्यवहार धर्मनीति किसे कहते हैं?

उत्तर राष्ट्रधर्म, समाजधर्म या व्यवहारिक जीवन, परस्पर का व्यवहार निष्कपट, निःस्वार्थ हो उसे व्यवहारधर्म नीति कहते हैं इससे सबका जीवन सुख शान्तिमय व्यतीत होता है।

प्रश्न– 1046 आध्यात्म धर्मनीति किसे कहते हैं?

उत्तर जिस अन्तरंग आत्मसाधना से बाह्य निरपेक्ष निर्विकल्प आत्म ध्यान से अनादिकालीन विकारों का

कर्मों का क्षय हो, आत्म शुद्धि हो उसे अध्यात्म धर्मनीति कहते हैं।

प्रश्न– 1047 राज्यनीति किसे कहते हैं?

उत्तर जिस नीति नियम के द्वारा राजा, राजनेता, समग्र राज्य कर्मचारी, प्रजा भली भांति सांसारिक सुखशान्ति से जीवन व्यतीत करें, व्यापार आदि में कष्ट न हो, चोरों का, उग्रवादियों का भय न हो, स्वचक्र परचक्र का भय आदि न हो उसे राजनीति कहते हैं इसमें व्यवहारिक जीवन बड़ी सुचारू रूप से चलता है किसी को किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता है।

प्रश्न– 1048 कूटनीति किसे कहते हैं?

उत्तर जिस नीति में समस्त मनुष्य, स्त्री पुरुष, बालक बालिकायें, गरीब अमीर, समर्थ कमजोर, पापी धर्मात्मा अपने आपमें असुरक्षितपने का, असहायपने का अनुभव करें, सर्वत्र भयभीत हो रहे हैं। दुःखका अनुभव करें, स्वयं धोके में रहें और दूसरों को धोखे में डालें उसे कूटनीति कहते हैं। आज इसी नीति का बोलबाला है। इसी कूटनीति का साम्राज्य है। आज की प्रजा और नेतागण इस भेदभाव को न समझकर इसे ही राजनीति कहते हैं जो मूर्खपन का सूचक है।

प्रश्न– 1049–50 पुनः राज्यनीति कितने प्रकार की होती है ? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर राज्यनीति चार प्रकार की होती हैं। सामनीति, दामनीति, दण्डनीति और भेदनीति।

प्रश्न– 1051 सामनीति किसे कहते हैं?

उत्तर आक्रमणकारी के सामने आने पर अथवा दासी दास, पुत्र पुत्री, माता पिता, रिश्तेदार नातेदार, समाज के, परिवार के, गांव के, राजा प्रजा आकर उपद्रव करने लगें तब बिना उद्रेक, बिना क्रोध के उस सामनेवाले को सरलतापूर्वक समझाकर अपनी रक्षा करना, अनेक जीवों की रक्षा करना, युद्ध न करना, न कराना तथा अपने को और सामने वाले को पाप से बचाना, प्रेम पूर्वक कार्य सफल कर लेने को सामनीति कहते हैं।

प्रश्न– 1052 दामनीति किसे कहते हैं ?

उत्तर आक्रमणकर्ता को जो उद्रेक से सामने आने पर सरलता पूर्वक या धन आदि देकर अपना कार्य सफल कर लेने को अथवा बलपूर्वक उसका दमन कर लेने पर कार्य सफल कर लेने को, सुख शान्ति से रहने को दाम नीति कहते हैं अथवा आँख दिखाकर, शस्त्र दिखाकर, भय उत्पन्न कराकर, दमनकर अपना राज्यकार्य अच्छी तरह से चलाने को दामनीति कहते हैं।

प्रश्न– 1053 दण्डनीति किसे कहते हैं ?

उत्तर आक्रमणकर्ता को अथवा दासी दास आदि से सरलतापूर्वक सावधानी पूर्वक कार्य निकालने के लिए प्रायश्चित्त देकर, डण्डे आदि से मारपीट कर कार्य सिद्ध कर लेने को दण्डनीति कहते हैं। दण्ड में आहार पानी छुड़ा देना, व्यापार आदि बन्द करा देना तथा नाना तरह से दंडित करने को, अपराधानुसार प्राणदंड देने को दण्डनीति कहते हैं।

प्रश्न– 1054 भेदनीति किसे कहते हैं ?

उत्तर अपने विरुद्ध आचरण करने वाले दासीदास आदि को, आज्ञाकारी बनाने के लिए या कार्य कराने

के लिए हर तरह से प्रयत्न करने पर भी यदि कार्य नहीं करें, आज्ञाकारी नहीं बनें, आज्ञा न मानें, आज्ञा का पालन न करें तो अंतिम निर्णय न्यारा अलग कर देना, इतने पर भी न मानें तो शत्रु का या शत्रु के समान आचरण करने वालों का विच्छेद कर देने को, देशनिकाला देने को, शिरच्छेद आदि टुकड़े कर देने को भेदनीति कहते हैं।

प्रश्न– 1055 ये नीतियां केवल राजाओं की होती हैं या प्रजा की भी होती हैं?

उत्तर ये नीतियां अधिकारियों की होती हैं। अब वे अधिकारी राजा हो या घर का मुखिया हो, समाज का मुखिया हो, धर्म का मुखिया, धर्म का नेता, छद्मस्थ प्रमादी मुनि, उपाध्याय, आचार्य परमेष्ठी हो। जिस प्रकार राज्य को यथावस्थित चलाने के लिए इन नीतियों का यथायोग्य प्रयोग करना होता है। उसी तरह घर को, समाज को सही मार्ग में चलाने के लिए घर के मुखिया को, माता पिता को तथा समाज के मुखिया को इन नीतियों का प्रयोग करना होता है अन्यथा परिवार समाज कुपथगामी, मिथ्यामार्गी बन जायेगा। इसी तरह चतुर्विध संघ को सुरक्षित रखने के लिए, धर्मप्रभावना के लिए इन नीतियों को अपनाना होता है। जो शिष्यमण्डली आचार्य श्री ने अध्यापन के लिए सौंपी हैं तो उन शिष्य समुदाय को गुणवान प्रभावक बनाने के लिए उपाध्याय भगवन इन नीतियों से दिन प्रतिदिन काम लेते हैं अन्यथा वे शिष्य समुदाय कुमार्गगामी, बे लगाम के घोड़े की तरह, निरंकुश हाथी की तरह स्वच्छन्दी हो जायेंगे और साधु अपनी आत्म साधना बढ़ाने के लिए आत्मगत रूप में इन नीतियों का प्रयोग करते हैं जो इस प्रकार हैं। उन मुनियों को आत्मसाधना प्रमुख है। अतः हर तरह से शान्तभावों से भयंकर उपसर्ग परिषह को जीतते हैं, आत्मसाधना करते हैं, यह साधुओं की सामनीति है। जब शरीर या शरीर से सम्बन्ध रखने वाले साधन आत्मसाधना में विकार उत्पन्न करें तो इन नीतियों को अपनाकर साधु इंद्रियों का भंजन, दमन, उपवास से अनन्तानुबन्धी आदि कषायों को शक्तिहीन कर देते हैं यह उनकी दाम नीति हैं। अर्थात् इन्द्रिय और मन को दमन कर ध्यान करने को, आत्मा अपनी ध्यानसाधना में इंद्रिय और मन को अपने विषय में आकृष्ट करके स्वरूप संबोधन करते हैं, इंद्रिय और मन को दण्डनीति के द्वारा दंडित करते हैं यह दामनीति है। इतने पर भी आत्मसाधना में बाधा उत्पन्न करें तो कायक्लेश आदि, आतापन योगादि, उपवास आदि के द्वारा आत्मसाधना करते हैं इसे दण्डनीति कहते हैं। इतने पर भी यदि शरीर न माने, विकार पैदा करे तो फिर समस्त प्रकार से आहार पानी का त्याग कर विशेष भेद ज्ञान से निर्विकल्प समाधि के द्वारा आत्म तत्त्व को तद्रूप में प्राप्त कर लेते हैं, तद्रूप परिणमन करने लग जाते हैं यह भेदनीति है।

प्रश्न– 1056 विरोधी हिंसा किसे कहते हैं?

उत्तर अपने धर्म पर, परिवार पर, समाज पर, ग्राम में, नगर में, शहर में, देश में, राष्ट्र में, कोई शत्रु आकर शान्ति भंगकर आक्रमण कर रहा हो तब उस समय धर्मादि की रक्षा करने के लिए सर्वप्रथम शान्त भाव से समझाना, मान जाये तो अच्छा अन्यथा बार बार समझाने पर भी नहीं माने तब शस्त्र उठाकर शत्रु को भय दिखाकर या लोभ देकर अपने धर्मादि की रक्षा करना। इतना प्रयास करने पर भी न माने तो शिरच्छेद आदि कर देने को विरोधी हिंसा कहते हैं। जब तक भारत देश के राजा जन्म से क्षत्री थे और धर्म से जैन थे तब तक प्रजा सर्वसुखी रही तथा

राजाओं ने जिनधर्म छोड़ दिया और राजा अधिकारीगण व्यसनी हो गये, ख्याति, पूजा, लाभ के चक्कर में पड़ गये, विषय लम्पटी हो गये, निजी स्वार्थी हो गये, प्रजा को अपना परिवार नहीं माना तभी से राज्य भारत देश मलेच्छ राजाओं के हाथ में चला गया। तन, मन, धन और धर्म चारों नष्ट हो गये। अतः देशसैनिक बनकर धर्मादि की रक्षा करने में सतत निःस्वार्थ, निष्कपट सावधान रहना चाहिए किन्तु शत्रु पर एकदम से आक्रमण कर देना संकल्पी हिंसा हो जाती है।

प्रश्न– 1057–59 हिंसा के त्याग को क्या कहते हैं? व्रत किसे कहते हैं? कौन जीव स्वामी है?

उत्तर हिंसा पाप के त्याग को अहिंसाव्रत कहते हैं तथा मोक्षमार्गस्थ धर्म की जिन परिणामों से या जिन मन वचन काय की क्रियाओं के द्वारा रक्षा हो अपने रत्नत्रय धर्म की रक्षा हो उसे व्रत कहते हैं। जैसे किसान खेत की चारों तरफ कटीली झाड़ी से या कटीले तारों से या कांटों से वेष्टित करके खेत की, फसल की रक्षा कर लेता है, उसी तरह धर्म की रक्षा करने के लिए पापों के त्याग करने को व्रत कहते हैं। व्रतों को पालन करने वाले कर्मभूमिज मनुष्य और तिर्यंच होते हैं। अहिंसाव्रत निषेधपूर्वक प्राप्त होता है तथा व्रत विधिपूर्वक प्राप्त होता है यही अंतर है। हिंसादि पापोंका त्याग करना अहिंसा आदि व्रत हैं जैसे मैं इन जीवों को नहीं मारूंगा निषेध रूप में व्रत है तथा अहिंसा आदि व्रतों का पालन करता हूँ यह विधिरूप में व्रत है। इसी तरह सत्यव्रत, अचौर्यव्रत, ब्रह्मचर्यव्रत, परिग्रहत्यागव्रत जानना चाहिए। मनुष्य और तिर्यंच इसके स्वामी हैं।

प्रश्न– 1060–61 व्रतोंके कितने भेद हैं? किस व्रतके कौनसे जीव स्वामी हैं?

उत्तर व्रतों के दो भेद हैं। 1. अणुव्रत और 2. महाव्रत। अणुव्रतों का स्वामी गृहस्थ श्रावक है तथा महाव्रतों के स्वामी आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठी होते हैं।

प्रश्न– 1062–63 मुनि किसे कहते हैं? किस प्रकार होना चाहिए और किस प्रकार नहीं होना चाहिए?

उत्तर सम्यक्रत्नत्रय सहित संयम पूर्वक, आरम्भ परिग्रह के त्यागी महाव्रती को मुनि कहते हैं। निर्विकार हों, संस्था, पंथवाद, पक्षपात से निर्लिप्त होना चाहिए। ख्याति, पूजा, लाभ की दुर्भावना का त्यागी होना चाहिए। आरम्भ परिग्र, विषय विकार, आर्तध्यान रौद्रध्यान तथा दुर्लेश्याओं के त्यागी होना चाहिए। की हुई प्रतिज्ञा से पलायनवादी नहीं होना चाहिए भयभीत तथा मानी नहीं होना चाहिए।

प्रश्न– 1064 जो समर्थ साधु हैं उनसे जाकर किसी ने प्रश्न किया कि आप दूसरे संघवाले साधुओं से क्यों नहीं मिलते हो?

उत्तर नहीं मिलते। क्यों नहीं मिलते? उनके पास शिथिलाचार है और हमारे मिलने से उनको प्रोत्साहन मिलेगा, प्रमाणपत्र जैसा मिल जायेगा कि महान साधुओं से मिलाप होने पर महानता प्रकट होती है। अतः हम शिथिलाचारी मुनियों से नहीं मिलते हैं।

प्रश्न– 1065 यदि ऐसा है तो शिथिलाचारी अनाचारी देशनेताओं से, धनवानों से विधवा विवाह वालों से किसलिए मिलते हो इनको भी प्रोत्साहन मिलता

है? इनसे मत मिलो शिथिलाचार तो शिथिलाचार क्या गृहस्थ का? क्या साधु का? क्या समाज का? क्या राजनेताओं का?

उत्तर इस प्रश्न के उत्तर में मौन रखा। आप मौन क्यों हैं? तब समाधान किया– गृहस्थ से मिलना दोष नहीं किन्तु पार्श्वस्थ संसक्त, मृगचारी, अवसन्न और कुशील, इन पाँच भ्रष्ट मुनियों से मिलना तो दोष का स्थान है आ. श्री कुंदकुंद ने ऐसा विधान कर इनसे मिलने को मना किया है।

प्रश्न– 1066 आप अनाचारी शिथिलाचारी गृहस्थों को, विधवा विवाहादि को, प्रोत्साहित करते हो क्योंकि आप इनसे मिलते हो और आपके मिलने से विधवा विवाह करना, परस्त्रीसेवन व्यसन को प्रोत्साहन क्यों न मिलेगा?

उत्तर बात सत्य है पर हम उनको कहते तो नहीं हैं फिर उनको कैसे प्रोत्साहन मिलेगा? ठीक इसी तरह मुनियों से मिलने पर भी समझलो तो आपके मिलने से कैसे प्रोत्साहन मिलेगा? आपने तो कहा नहीं है। ठीक है आप अनाचारी गृहस्थ से मिलें और विरक्त हो दीक्षा ले लें तो उस समय आप उससे मिलेंगे या नहीं? विधवा विवाह, त्यक्ता विवाह करना कराना, परस्त्री, व्यसन सेवन का प्रचार प्रसार करना कराना है। कारण जिसका एकबार पाणिग्रहण संस्कार हो चुका है अब दूसरों के लिए परस्त्री कहलाई सो उसका विवाह कैसा? कांजीमतवाले गृहस्थों से प्रेम से मिलते हैं,वार्तालाप करते हैं वहाँ उनको पाप नहीं लगता किन्तु वही गृहस्थ यदि साधु बन जाये तो वह देखने के अयोग्य, मिलने के वार्तालाप करने के अयोग्य मान लेते हैं इसी तरह आपने भी गृहस्थों से मिलने में पाप नहीं है किन्तु साधुओं से मिलने में पाप लगता है क्या ऐसा नहीं समझा?

प्रश्न– 1067 आपकी मान्यता में और कांजी की मान्यता में कोई अन्तर नहीं रहा व्यवहार धर्म के लिए तो जरा सोचो? बाह्य समाचार विधि को पालन करने में क्या दोष है? जरा थोड़ा सा विचार करो।

उत्तर आप कुछ भी कहे, हमको समन्वय नहीं करना है, न हमको किसी से सलाह लेने की आवश्यकता है यह हमारा गुण हो या दोष आपको क्या मतलब? आप अपना सम्हाले।

प्रश्न– 1068 यह मुनि शिथिलाचारी है, पार्श्वस्थ है और हम निर्दोष हैं। इसका निर्णय आपने किस हेतु से किया बताओ?

उत्तर इनके संघ में स्त्रियां हैं, मोटरें हैं, चौका चूल्हा है, नौकर चाकर आदि आडम्बर है और हमारे पास कुछ भी आडम्बर नहीं है। इससे निर्णय किया कि ये शिथिलाचारी मुनि हैं और हम निर्दोष हैं।

प्रश्न– 1069 आपके पास आडम्बर क्यों नहीं आप अनेक स्थानों के सर्वेसर्वा हैं आपके पास सैकड़ों की संख्या में स्त्रियां हैं, विहार के समय ट्रकों में चटाई पाटे, शास्त्रों के थैले चलते हैं, जाते हैं अतः दोनों जगह समानता है? अतः आप निर्दोष और ये सदोष यह कैसे?

उत्तर आश्रमों के क्षेत्रों के सर्वेसर्वा हम नहीं हैं, बना रखा है तथा हमारे संघ में स्त्रियां नहीं हैं किन्तु

ब्रह्मचारिणी बहने हैं, मातायें हैं। यदि आपके पास ब्रह्मचारिणी बहने, आर्यिका मातायें हैं तो दूसरेसंघों में स्त्रियां हैं ऐसा कैसे कह दिया? न आपने पाणिग्रहण किया है न उन्होंने पाणिग्रहण किया है यह भी दोनों जगह समान है। विहार के समय में ट्रकों में संघ का सामान जाता है सो हम कहते नहीं हैं, गृहस्थ लोग ले जाते हैं तो हमारा क्या दोष है तब इसी तरह दूसरे संघों के विहार के समय ट्रकों में सामान जाता है, श्रावक ले जाते हैं, न साधू गाड़ी चलाते हैं, न बैठते हैं, न खरीदने बाजार गये, न व्यापार किया तब उनके गाड़ी मोटरें कैसे? इधर मुनि कहना फिर आडम्बर कहना यह वचन, स्ववचन बाधित दोष है, न्याय तो न्याय। आश्रमों के, क्षेत्रों के आप मालिक नहीं हैं, सर्वेसर्वा नहीं हैं सो यह आपने कैसे कहा? बिना आपकी आज्ञा के किसी दूसरे को प्रवेशपत्र नहीं मिल सकता, न वहाँ रह सकता है। आपका नौ कोटियों का लगाव झुकाव आशीर्वाद न हो ऐसा हो ही नहीं सकता और जब किसी एकाद कोटि का सम्बन्ध है तो सम्पूर्ण 108 कोटियां साम्परायिक आश्रव की बिना बुलाये आ गई अतः दूसरों के पास आडम्बर है तो आपके पास भी है तो समानता दोनों जगह बराबर है। इतना अवश्य है कि आपका दिखता नहीं है और दूसरों का दिखता है। इतना आन्तरिक निर्णय करना चहिए।

प्रश्न– 1070 मुनि पक्षपात और पंथवाद का त्यागी होना चाहिए ऐसा क्यों कहा?

उत्तर **मुनियों का रूप तीर्थंकरों जैसा सर्वज्ञकेवलियों जैसा होता है तथा दिनचर्या, आचार, विचार भी उन्हीं के समान होते हैं या उनकी आज्ञा अनुसार होते हैं जब उन्होंने, गणधरों ने, पूर्वाचार्यों ने और परम्परागत आचार्यों ने तेरापंथ, बीसपंथ, कांजीपंथ का न सहारा लिया, न उपदेश दिया, न शास्त्रों में लिखा फिर वर्तमान में साधुवर्ग को इन पंथों का, पक्षों का त्याग करना ही चाहिए। क्योंकि इन पंथों का, पक्षों का आश्रय लेने से कषायों में तीव्रता आती है तथा प्रतिपक्षी के प्रति द्वेष की अग्नि प्रज्वलित हो उठती है और अंदर ही अंदर भट्टे की तरह धधकती रहती है।**

प्रश्न– 1071–73 गृहस्थ किसे कहते हैं? गृहस्थश्रावक किसे कहते हैं? यह जीव गृहस्थपद को कब स्वीकार करता है?

उत्तर **जो जीव बुखार से पीड़ित व्यक्ति के समान आहार, भय, मैथुन, परिग्रह, इहलोक और परलोक ये छह संज्ञाओं से पीड़ित होकर औषधि के समान विवाह आदि करता है, गृहस्थ जीवन स्वीकार करता है, परिवार का पालन पोषण करता है उसे गृहस्थ कहते हैं तथा रत्नत्रय धर्म को स्वीकार कर अनन्तानुबंधी क्रोधादि चार कषाय, अप्रत्याख्यानावरण चार कषाय का अथवा प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार कषायों के जीतने में असमर्थ होकर, कषायों को जीतने के लिये, काम रोग को मिटाने के लिए औषधि के समान या भूख को मिटाने लिए भोजन ग्रहण के समान विवाहादि करता है। साथ में अणुव्रतों का, मूलगुणों का पालन करता है उसे गृहस्थ श्रावक कहते हैं। कामरोग को जीतने का प्रयत्न करने पर भी विजय प्राप्त नहीं कर पा रहा है तब प्रसंग की राह देखकर जागृत रहता है। तोते के समान मौका कब मिले कि गृहस्थ जीवन त्यागकर मुनिपद मुझे धारण करना है। इस प्रकार तीव्र लगन होती है, परन्तु कषायों को और इन्द्रिय तथा मन को जीतने में असमर्थ होकर गृहस्थ जीवन स्वीकार करता है।**

प्रश्न— 1074—75 महाव्रत किसे कहते हैं? इसके स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर मन से कृत कारित अनुमोदना, वचन से कृत कारित अनुमोदना, काय से कृत कारित अनुमोदना इस प्रकार इन नव कोटियों से हिंसादि पापों को पूर्ण रूप से त्याग करने को महाव्रत कहते हैं अथवा महान पुरुषों ने, उत्कृष्ट पुरुषार्थी जीवों ने, मनुष्यों ने जिनकी आराधना की है पालन किया है उसे महाव्रत कहते हैं अथवा महान फल मोक्षफल को देने वाले जो व्रत हैं उन्हें महाव्रत कहते हैं तथा जिन्होंने अपने इन्द्रिय और मन को अपने वश में कर लिया है, आरम्भ परिग्रह के त्यागी हैं, श्रृंगार अलंकार के विकथाओं के, पर निन्दा, आत्मप्रशंसा, वैरविरोध के त्यागी हैं तथा ध्यान अध्ययन तपश्चरण में लगे रहते हैं ऐसे दिगम्बर मुनिजन महाव्रतों के स्वामी हैं।

प्रश्न— 1076—77 अणुव्रत किसे कहते हैं? इसके स्वामी कौन हैं?

उत्तर उपरोक्त नव कोटियों से सभी पापों का एकदेश रूप से या थोड़े रूप में, स्थूल रूप से त्याग करने को अपने बल वीर्य को न छिपाकर पापों के घटा देने को अणुव्रत कहते हैं। इनके स्वामी गृहत्यागी और गृहरागी वस्त्रधारी श्रावकगण हैं।

प्रश्न— 1078 गृहत्यागी और गृहरागी से क्या मतलब है?

उत्तर गृहत्यागी से मतलब ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका ग्यारहवीं प्रतिमाधारी अथवा जिस किसी श्रावक ने भली प्रकार से गृहकार्यों में संतोष प्राप्त कर लिया है तथा गृहरागी से मतलब पहली प्रतिमा से लेकर दसवीं अनुमतित्याग प्रतिमाधारी तक समझना चाहिए क्योंकि इनके पास उत्तरोत्तर हीनता पूर्वक राग गृह के प्रति, गृह कार्यों के प्रति जागृत रहता है अथवा प्रसंगानुसार व्यक्त राग बना रहता है अथवा कोई भी श्रावक गृह त्याग कर संघों में रह सकता है।

प्रश्न— 1079—80 पुण्य किसे कहते हैं? व्रत किसे कहते हैं?

उत्तर जो आत्मा को पवित्र करे अथवा जिसके द्वारा आत्मा पवित्र हो उसे पुण्य कहते हैं जैसे सातावेदनीय, तीर्थंकर प्रकृति, आहारक शरीर आदि सातिशय पुण्य प्रकृतियों के बन्ध योग्य विशुद्ध परिणाम अथवा जो परिणाम मोक्षमार्ग में प्रवेश करायें, स्थिर रखें, पाप में गिरने नहीं दें उसे पुण्य कहते हैं और जो अपने आचार विचार मोक्षमार्ग की रक्षा करें, विशुद्धि की वृद्धि हो उसे व्रत कहते हैं अथवा संसार भ्रमण, संसार पतन से बचायें, रक्षा करें उसे व्रत कहते हैं। उदाहरण जैसे किसान खेत में धान्य की रक्षा करने के लिए खेत की चारों तरफ कटीले तार या कांटे बिछा देते हैं या लगा देते हैं, कटीली झाड़ी लगा देते हैं तो खेत के अन्दर मनुष्य पशु आदि आसानी से प्रवेश नहीं कर सकते हैं और न नष्ट कर सकते हैं इसी तरह रत्नत्रय धर्म रूपी मोक्षमार्ग के स्वीकार कर लेने पर इसकी रक्षा के लिए यम रूप व्रत या नियम रूप व्रतों से, परिणामों से विषय कषायों की या अनेक प्रकार के दुर्भावों की उत्पत्ति ही नहीं हो सकती या क्वचित् कदाचित् पूर्व दुःसंस्कार वश उत्पन्न हुए तो भी चिरकाल तक स्थिर नहीं रह सकते किन्तु शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं यह तत्त्व चिंतन का साक्षात् फल है।

प्रश्न— 1081—83 उदाहरण किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर प्रसंग के अनुसार गूढ़ या गुप्त रहस्य को समझाने के लिए अनुभूत घटना को बताकर समझाने

के उपाय को उदाहरण कहते हैं। उसके दो भेद हैं। 1.अन्वय उदाहरण, 2. व्यतिरेक उदाहरण।

प्रश्न— 1084 अन्वय उदाहरण किसे कहते हैं?

उत्तर घटी हुई घटना के अनुरूप अनुकूल कार्य में सहायक दृष्टान्त को अथवा जिसके सद्भाव में कार्य हो ऐसे समझाने के लिये अनुभूत संकेत को अन्वय उदाहरण कहते हैं। जैसे— दीपक के जलने पर प्रकाश होता है अथवा रत्नत्रय के पूर्ण होने पर ही मोक्ष होता है, धर्म के होने से परमसुख होता है। पाप या व्यसनों के सेवन करने पर निंदा, बदनामी और नरकादि के दुःख होना।

प्रश्न— 1085 व्यतिरेक उदाहरण किसे कहते हैं?

उत्तर जिसके अभाव में कार्य नहीं हो उसे व्यतिरेक कहते हैं तथा कार्य के अभाव को बताने वाले साधन के अभाव को व्यतिरेक उदाहरण कहते हैं जैसे जलते दीपक के अभाव में प्रकाश का अभाव बताना, रत्नत्रय के अभाव में मोक्ष या मोक्षमार्ग का अभाव बताना व्यतिरेक उदाहरण है। कहा है— हिंसानृतस्तेयाब्रह्म परिग्रहेभ्यो विरतिर्वतम् त.सू. अ.7 सू.[1] हिंसापाप, झूठपाप, चोरीपाप, कुशीलपाप, परिग्रह पाप इन पांचों में रति प्रवृत्ति के त्याग को व्रत कहते हैं। इसलिए इन पापों का त्याग ही मोक्षमार्ग की रक्षा करता है।

प्रश्न— 1086 विरति किसे कहते हैं?

उत्तर वि. विशेषण रतिः स विरतिः। विशेषरति विरति वह विरति अर्थात् पापों में विशेष रतिप्रीति। अथवा वि विगतः रतिः यस्य स विरतिः।। हिंसादि पाँच पापों में रति प्रीति प्रेम जिसका नष्ट हो गया है वह विरति। विरति के दोनों अर्थ किये जा सकते हैं परन्तु यहाँ पर दूसरा अर्थ इष्ट है अभिप्रेत है क्योंकि यहाँ मोक्षमार्ग का प्रकरण है तथा सूत्रकार ने परिग्रहेभ्यो यह पंचमी विभक्ति का प्रयोग किया है। तथा पंचमी विभक्ति का प्रयोग ध्रुव वस्तु से पृथक् करने के अर्थ में होता है। जिससे अलग किया जाय उसमें अपादान पंचमी विभक्ति होती है। अथवा असंख्यात गुणश्रेणी कर्मों की निर्जरा के कारणभूत संकल्प को व्रत कहते हैं।

प्रश्न— 1087—89 पाप किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर जो आत्मा को मोक्ष से बचाये, सुख से बचाये, सुखी न होने दे या संसार में नाना तरह से दुःख प्राप्त कराये उसे पाप कहते हैं। इन पापों के मूल में 5 भेद हैं तथा अवान्तर भेद अनेक हैं, असंख्यात लोक प्रमाण भेद हैं। नाम— हिंसापाप, झूठपाप, चोरीपाप, कुशीलपाप, परिग्रहपाप, इनका संग्रह संवर्धन संरक्षण ये सब पाप कहलाते हैं। इनमें किसी भी प्रकार से प्रवृत्ति करने को अव्रत कहते हैं।

प्रश्न— 1090 व्रत और अव्रत का फल क्या है ?

उत्तर व्रत का फल— यदि सम्यक्रत्नत्रय पूर्वक व्रत स्वीकार किया है तो उसका फल संवर, निर्जरा, मोक्ष की प्राप्ति तथा आत्मा की शुद्धि होना या सातिशय पुण्य की प्राप्ति, स्थिति, वृद्धि होना। अव्रत का फलः— आश्रवबंध, संसार भ्रमण, नाना प्रकार के दुःख, दुर्गतियों में जनम मरण, आत्मा की अशुद्धि, अपवित्रता प्राप्त होना, अविश्वास, अप्रीति आदि प्राप्त होना।

प्रश्न— 1091—93 अणुव्रतों के कितने भेद हैं ? नाम कौन कौन हैं? अणुव्रत का

लक्षण क्या है?

उत्तर अणुव्रतों के 5 भेद हैं अथवा असंख्यात लोकप्रमाण भेद हैं। अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत ब्रह्मचर्याणुव्रत और परिग्रह परिमाणाणुव्रत। अथवा इन पापों के त्याग स्वरूप पांचों अणुव्रतों के द्रव्य और भाव के भेद से प्रत्येक के दो दो भेद हो जाते हैं। मन वचन काय से बाह्य क्रिया रूप पांचों पापों का त्याग करना बाह्य अणुव्रत है, द्रव्य अणुव्रत है। इन्हीं पांचों पापों के त्याग के साथ साथ अन्तरंग में मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व और कदाचित् सम्यक्त्व प्रकृति तथा अनन्तानुबन्धी क्रोधादि चार, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ इन कषायों के त्याग को भाव अणुव्रत, अभ्यन्तर अणुव्रत कहते हैं।

प्रश्न– 1094–95 अहिंसाणुव्रत किसे कहते हैं? स्वामी कौन हैं?

उत्तर संकल्पपूर्वक नवकोटियों से त्रस जीवों की विराधना न करने को या इन जीवों की सावधानीपूर्वक रक्षा करने को और निष्प्रयोजन स्थावर जीवों की जरूरत के बिना विराधना, आरम्भ न करने को अहिंसाणुव्रत कहते हैं। इन अणुव्रतों के स्वामी मनुष्य और तिर्यंच प्राणी हैं।

प्रश्न– 1096–98 अहिंसाणुव्रत की रक्षा करने के उपाय को क्या कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर अहिंसाणुव्रत की रक्षा करने के उपाय को भावना कहते हैं। पाँच भेद हैं– 1. वचनगुप्ति, 2. मनगुप्ति, 3. ईर्यासमिति, 4. आदाननिक्षेपणसमिति और 5. आलोकितपान भोजन।

प्रश्न– 1099 भावना किसे कहते हैं तथा ये भावनायें क्या सभी व्रतों की होती हैं?

उत्तर किसी तत्त्व, व्रत या वस्तु में पुनः पुनः उसी का पुट देने को, विचार करने को भावना कहते हैं। ये भावनायें सभी व्रतों की मिलकर 25 हो जाती हैं क्योंकि इन्हीं भावनाओं से व्रत स्थिर होते हैं।

प्रश्न– 1100 वचनगुप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर विकथाओं के वचन, आरम्भ परिग्रह के वचन, शृंगार अलंकार के वचन, कामभोग आदि के वचनों के त्याग को अथवा मौन रखने को, मौन धारण करने को अथवा जिन वचनों के द्वारा आत्मप्रदेशों में कम्पन हो रहा था उस कम्पन के अभाव को वचन गुप्ति कहते हैं। वचनों से स्व, पर तथा उभय के प्राणों की विराधना होती है। अतः वचनों के त्याग से अंहिसाव्रत का पालन होता है।

प्रश्न– 1101 लौकिक वचनों के त्याग से या मौन रखने से अहिंसाणुव्रत का पालन कैसे हो सकता है?

उत्तर लौकिक वचनों के बोलने से या सुनने सुनाने से, राग द्वेष रूपी विकार या प्रमाद उत्पन्न होता है जो हिंसा पाप रूप है जिससे अहिंसाणुव्रत का पालन नहीं हो सकता है। रागादि विकारी भावों का उत्पन्न होना हिंसा पाप कहा है और रागादि विकारी भावों का उत्पन्न नहीं होना अहिंसा कहा है। इसलिए स्व या पर में तथा उभय में विकारोत्पादक वचनों का त्याग कराया है तथा मौन से मतलब केवल वचन व्यवहार नहीं करना यह अर्थ नहीं है किन्तु मौन का अर्थ है कि वचन व्यवहार बन्द करने के साथ साथ वचन के विकल्पों का, विषय कषायों के विचारों का त्याग भी

करना है। इसलिए गृहस्थ श्रावक को जितने अंशों में वचन व्यापार का त्याग होगा उतने अंशों में उसका अहिंसाणुव्रत का पालन होगा इस प्रकार निरन्तर विचार करते रहना चाहिए।

प्रश्न– 1102 मनोगुप्ति भावना किसे कहते हैं?

उत्तर मन में शुभाशुभ भाव, विचार उत्पन्न नहीं होना, संकल्प विकल्प नहीं करना अथवा मन के द्वारा जो आत्मप्रदेशों में परिस्पन्दन हो रहा था सो उस परिस्पन्दन के अभाव करने को मनोगुप्ति कहते हैं। इस प्रकार मनोगुप्ति की प्राप्ति के लिए सतत प्रयत्न करते रहना चाहिए। क्योंकि लक्ष्य और चर्यानुकूल के अनुसार ही फल की प्राप्ति होती है।

प्रश्न– 1103 सूत्रानुसार गृहस्थ को क्या वचन गुप्ति की प्राप्ति और मनोगुप्ति की प्राप्ति हो सकती है या नहीं?

उत्तर नहीं, गृहस्थ तो दूर रहे किन्तु छद्मस्थ मुनियों को तथा सयोगकेवलियों को भी परमार्थ या निश्चय वचन गुप्ति और मनोगुप्ति की प्राप्ति नहीं होती है। वचन गुप्ति और मनोगुप्ति की प्राप्ति अयोगकेवली नामक चौदहवें गुणस्थान में प्रवेश करते ही होती है। तब गृहस्थों को कैसे प्राप्त हो सकती है बताओ? किन्तु यहाँ पर भावना के लिए कहा जा रहा है। अभ्यास करने से ही भविष्य में मुनिपद धारण कर गुप्तियों को प्राप्त कर सकता है। अतः सद्भावना से निज संसार का नाश और दुर्भावना से संसार की वृद्धि होती है अतः वचन गुप्ति और मनोगुप्ति प्राप्त करने की भावना बनाने में कोई दोष नहीं है। भली प्रकार से आत्मा में उत्पन्न हुए प्रदेश परिस्पंदन के अभाव करने को परमार्थ गुप्ति कहते हैं। कहा भी है "सम्यग्योग निग्रहो गुप्तिः।।"

प्रश्न– 1104–05 ईर्यासमिति किसे कहते हैं? ईर्या समिति भावना किसे कहतेहैं?

उत्तर जीव जन्तु रहित, ठोस भूमि पर, सूर्य के प्रकाश में, पत्तियां घास फूल आदि से रहित, हाथ कमर आदि में कंपन किये बिना, देव शास्त्र गुरु के दर्शन के लिए, धर्म प्रभावना के लिए, तीर्थयात्रा के लिए, धर्म साधना के निमित्त चार हाथ भूमि को देखकर, चपलता रहित होकर गमन करने को ईर्या समिति कहते हैं। इस प्रकार पालन करने की इच्छा को ईर्यासमिति भावना कहते हैं। सामर्थ्यानुसार पालन करता है तथा शेष की भावना करता है।

प्रश्न– 1106–07 ईर्या समिति गृहस्थ को हो सकती है क्या? या केवल भावना होती है?

उत्तर मुनियों जैसी ईर्यासमिति या पूर्ण रूप से ईर्यासमिति गृहस्थों को नहीं हो सकती है किंतु अभ्यास रूप में कुछ अंशों की अपेक्षा पालन करता है तथा भविष्य में पूर्ण रूप से पालने की इच्छा भावना करता है। पालन करने में कष्ट है, भावना बनाने में क्या कष्ट है? क्या आपत्ति है बताओ? जब पाप की भावना करते हो तो वह न कर सद्भावना करो।

प्रश्न– 1108–09 आदाननिक्षेपण समिति किसे कहते हैं? आदाननिक्षेपण समिति भावना किसे कहते हैं?

उत्तर भूमि को देखकर तथा जिस वस्तु को ग्रहण करना है या रखना है उस वस्तु को तथा भूमि को

आंखों से देखकर पीछी से या मुलायम वस्त्र से प्रतिलेखन कर ग्रहण करने को, रखने को आदाननिक्षेपण समिति कहते हैं। इस प्रकार की हुई प्रतिज्ञा के पालन करने की इच्छा को आदाननिक्षेपण समिति भावना कहते हैं।

प्रश्न– 1110 इस प्रकार की प्रतिज्ञा का पालन क्या गृहस्थ कर सकता है?

उत्तर इस प्रकार की प्रतिज्ञा का पालन गृहस्थ किंचित् रूप में करता है और पालन भी कर सकता है किन्तु पूर्ण रूप से पालन करने की भावना तो कर सकता है इसमें कोई आपत्ति नहीं है। श्री सूत्रकार ने भावना करने के लिए कहा है, पूर्णरूप से पालन करता है फल प्राप्त कर लेता है ऐसा तो कहा नहीं है। यदि इस पर कोई शंका करे कि गृहस्थ पालन कर ले तो क्या आपत्ति है? हमें कोई आपत्ति नहीं है पर जरा सोचो यदि गृहस्थ पालनकर फल प्राप्त कर ले तो उसे मुनि क्यों बनना पड़े? और आगे के गुणस्थानों को क्यों प्राप्त करना पड़े? ध्यान साधना की क्या आवश्यकता है?

प्रश्न– 1111 आलोकितपान भोजन नाम की भावना किसे कहते हैं?

उत्तर सूर्य के प्रकाश में सावधानीपूर्वक स्थिर मन से शोधकर ग्रहण करने को भोजनपान कर लेने को आलोकितपान भोजन समिति कहते हैं तथा इसके पालन करने की आकांक्षा को आलोकितपान भोजन समिति भावना कहते हैं। यह भोजनपान लाईट के प्रकाश लालटेन या दीपक के प्रकाश में कृत्रिम प्रकाश में नहीं होना चाहिए।

प्रश्न– 1112 सूर्य के प्रकाश के बिना, लाईट, लालटेन आदि के प्रकाश में भोजनपान क्यों नहीं ग्रहण कर सकते हैं, करें तो क्या दोष हैं?

उत्तर नहीं कर सकते हैं क्योंकि लाईट, लालटेन के प्रकाश में मच्छर, पतंगे, छिपकली आ जाती हैं तथा इनमें केवल प्रकाश है, प्रताप नहीं। किन्ही बल्बों में गर्मी और प्रकाश होने पर भी कीड़े पतंगे आ जाते हैं पर सूर्योदय से प्रकाश और प्रताप दोनों प्राप्त होते हैं जिससे कीड़े मकोड़े नहीं आ पाते। कारण सूर्य की किरणों में कुछ ऐसे अंश या वर्गणायें पाई जाती हैं कि जिसके माध्यम से कीड़े, पतंगे, छिपकली आदि छिप जाते हैं, भाग जाते हैं, यद्यपि लाईट, बल्बों में गर्मी पाई जाती है फिर भी कीड़े, पतंगे आ जाते हैं क्योंकि सूर्य की किरणों के समान वे अंश वर्गणायें बल्ब में नहीं पायी जाती हैं। अतः सूर्य के प्रताप में, तेज में ही भोजनपान ग्रहण करना चहिए। गृहस्थ श्रावक इस नियम का पूर्ण रूप से पालन करते ही हैं तथा पालन भी कर सकते हैं और भावना भी कर सकते हैं यदि कल्याण की इच्छा है तो। इस व्रत को या इस भावना को पूर्ण रूप से पालन करने के लिए प्रीतिंकर कुमार या श्रृगाल की कथा पढ़ना चाहिए कि जिसने रात्रिभोजन त्याग व्रत को किस प्रकार से पाला इस प्रकार अहिंसाणुव्रत को निर्दोष पालन करने के लिए निरन्तर इन पांच भावनाओं का चिन्तन पालन करना चाहिए।

प्रश्न– 1113–15 अहिंसाणुव्रत धारण करने के बाद में कितने प्रकार के दोष लगते हैं? उनके भेद कितने हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर अहिंसाणुव्रत में पाँच प्रकार के अतिचार दोष लगते हैं। नामः– बन्ध–बांधना, वध–मारना,

छेद–नाक कान छेदना, अतिभारारोपण–शक्ति से ज्यादा भार लाद देना, अन्नपान निरोध–समय पर भोजनपान न देना। इन पांचों अतिचार दोषों में से प्रत्येक के भेद में अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार दोष लगते हैं जैसे किसी मनुष्य या पशु को कष्ट देने के लिए स्वतन्त्रता से उठने में, बैठने में, खड़े होने में, खाने पीने में बाधा उत्पन्न हो इस तरह से बांधना यह अतिक्रम है, व्यतिक्रम रूप से बांधना, अतिचार रूप से बांधना, अनाचार रूप से बांधना। अतिक्रम दोष, व्यतिक्रम दोष, अतिचार दोषों के द्वारा व्रत कुछ ही मलिनता को प्राप्त होता है। ये तीन दोष क्षम्य हैं व्रतों का, प्रतिज्ञा का समूल विनाश नहीं करते किन्तु अनाचार दोष अक्षम्य अपराध है व्रतों का समूल विनाश कर देता है। इसलिए ये मूल में पाँच भेद हैं तथा इन्हीं पाँचों को अतिक्रम दोष आदि चारों से गुणा करने पर दोषों के 20 भेद हो जाते हैं। ऐसा सर्वत्र लगा लेना चाहिये।

प्रश्न– 1116 बन्ध अतिचार दोष किसे कहते हैं?

उत्तर **आजकल जो सरलपरिणामी हैं, कमजोर हैं, दावपेंच लगाने में कमजोर हैं ऐसे पशुपक्षी, दासी दास, पुत्र पुत्री, पति पत्नी, माता पिता, सम्बन्धीजन, परिवार के, समाज के लोगों को कषाय के वशीभूत होकर आधीनकर बन्धन में डाल देने को बन्ध अतिचार दोष कहते हैं, जैसे कुणिक ने अपने पिता श्रेणिक को बंधी बनाकर जेल में डाला, कंस ने अपने पिता उग्रसेन को जेल में डाला और अपने बहिन बहनोई को भी जेलमें डाला था तथा आजकल बहुत सारे लोग कमजोर अपने माँ बाप को, सास ससुर को अपने आधीन कर आज्ञाकारी बनाकर उनसे नाजायज अनीतिपूर्वक फायदा उठाते हैं, काम कराते हैं और काम बिगड़ने पर डांटते हैं। जब ऐसी घटना अपने ऊपर घटेगी तब मालुम होगा कि दूसरों को आधीन करने से कितना या कैसा फल प्राप्त होता है?**

प्रश्न– 1117 आजकल जैन लोग या त्यागीव्रतीगण पशुओं को पालते नहीं हैं फिर अब यह अतिचार दोष कैसे लगेगा?

उत्तर **भले ही जैन लोग पशु पक्षी नहीं पालते हैं तो भी जो पशुपक्षियों को पालते हैं उनको देखकर कारित या अनुमोदना के द्वारा दोष लगा लेते हैं अथवा जो अपने आधीन पुत्र पुत्री, माता पिता, सास श्वसुर आदि शरीर से कमजोर या आत्मबल से कमजोर या ज्ञान से कमजोर हों तो उनको दास दासी के समान समझकर अनेक प्रकार से अपने आधीन कर ताड़ना देते हैं। हमेशा अपनी सेवा में लगाये रहते हैं। साधुगण ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणियों को अपनी सेवा के लिए, चौका लगवाने के लिए संघ में रखते हैं। पठन पाठन, सामायिक, ध्यानादि करने को समय ही नहीं देते और बीमार पड़ने पर उनके दुःख में शामिल न होकर, सेवा न कर उन्हें घर भेज देते हैं कि जाओ घर में दवाई कराओ यहाँ कौन सेवा करेगा? तो क्या यह संघों की, संघ वालों की दुर्भावना नहीं है? स्वार्थबुद्धि, कपटबुद्धि नहीं है तो क्या है? अतः यह अतिचार दोष संघों में भी लगता है, पशु पक्षी पालो या मत पालो। जो छोटे या नवीन ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणी बहने हैं उनका बड़े पुराने ब्रह्मचारी, बड़े साधु, आचार्य, गणिनी आर्यिकायें या संघ के मुखिया संघकी व्यवस्था के लिए, चौका लगाने के लिए, विहार के समय व्यवस्थाके लिए, आश्रम या संस्था चलाने के लिए ही इनका जीवन सफल समझते हैं। जैसे हिन्दू समाज में साधुगण अपना मठ**

बनाते थे और अपना जीवन सफल समझते थे ऐसा ही इस समय अनेक साधु, आचार्य, आर्यिकायें ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी बहिने समाजसे पैसा रुपया इकट्ठा कर संस्थाश्रम चलाते हैं। दासी दास, मकान, दुकान, धन दौलत को परिग्रह मानकर त्याग किया था पर संस्था आश्रम चलाकर नौकर नौकरानी रखकर उनको वेतन देकर या दिलाकर काम लेते हैं, काम कराते हैं यह कार्य उल्टी कर पुनः चाँटने के समान, लंगोट का त्यागकर धोती पहनने के समान है क्योंकि त्यागकर पुनः ग्रहण कर लिया अतः जो दोष पशुपक्षियों को पालन करने में लगता था वही दोष पशुओं के समान व्यवहार करने से संघों में लगता हैं, कोई टाल नहीं सकता। परंतु आत्मकल्याण के लिये, संयम पालन के लिये, आत्मसाधना के लिये घर बार परिवार छोड़ा था संसार भ्रमण के लिए नहीं किंतु वह पूर्व प्रतिज्ञा का त्याग कर, स्वपुरुषार्थ हीन होकर, लोभी बनकर व्रतभंगी हो अपना ही पतन किया। "**आये थे हरि भजनको ओटन लगे कपास। गाडर बांधी ऊन को बांधी चरै कपास ।।**" **आप समर्थ हैं तो अपनी शक्ति का प्रयोग दूसरे कमजोरों को नीचा दिखाने में, अपने आधीन रखने में न कर उनको ऊपर उठाने में, कल्याण के मार्ग में लगाने के लिए उपयोग करो, प्रयोग करो यह आत्मकल्याण का साधन है, अन्यथा अपनी तन मन धन और धर्म की शक्ति का उपयोग प्रयोग दुरूपयोग है संसार का कारण है।**

प्रश्न– 1118 यदि पशुओं को, दासीदास, पुत्री पुत्रादि को आधीन या नजरकैद, नजरबन्द न रखे जायेंगे तो ये परस्पर में लड़ेंगे, झगड़ेंगे, मारेंगे, स्वच्छन्द हो जायेंगे, अपना जीवन जातिकुल और धर्म को बदनाम करेंगे दूषित कर डालेंगे? अतः बांधने योग्य क्यों नहीं हैं?

उत्तर उन कमजोर पशु पक्षियों को, दासी दास आदि को यदि बांधना ही है तो इस तरह बांधो कि उनको उठने बैठने, सोने, खाने पीने, श्वांस लेने में, खड़े होने में या लेटने में, अपनी रक्षा करने में बाधा उत्पन्न न हो तो कोई दोष नहीं है। स्वच्छन्दता में, मनमानी पशुवत् चेष्टाओं में बाधा उत्पन्न हो तो कोई दोष नहीं है किन्तु स्वस्थ्य जीवन में बाधा उत्पन्न हो तो अवश्य ही दोष है। इसी तरह हर किसी व्यक्ति को, शिष्य शिष्याओं के जीवन को, जातिकुल को, धर्म को सुरक्षित रखने के लिए, आज्ञाकारी बनाने के लिए यदि आधीन रखा जाय तो हानिकारक नहीं है। किन्तु लौकिक स्वार्थ सिद्धि के लिए रखा जाय तो हानिकारक ही है।

प्रश्न– 1119 पुलिस, कोर्ट अपराधियों को बलात् अपने आधीन कर जेल में डालती है, मारती है, समयपर भोजनपान नहीं देती सो यह दोष नहीं है क्या?

उत्तर पुलिस अपराधी को अपराध छुडाने के लिए मारती है, घसीटती है समय पर खाना पीना नहीं देती अतः दोष नहीं है किन्तु यदि पुलिस निरपराधी को धन कमाने के लिये बन्दी बनाकर फिर मारना पीटना, बांधना, समयपर भोजनपान न देना आदि करे तो दोष ही है। असमर्थ की रक्षा करना, अपराधी को पकड़ कर मारपीट कर खोटी आदतें छुड़ाकर सन्मार्ग में लगाना क्षत्रीधर्म है। अतः विषय भोगों के लिए पर को अपने आधीन करना महान पाप है और उसके जीवन को, धर्म को सुधारने के लिए आज्ञाकारी बनाना या अपनी आधीनता स्वीकार कराना महान गुण है।

मोक्षमार्ग है, प्रभावना है।

प्रश्न— 1120 वध अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर निरपराधीको प्रमादपूर्वक, निर्दयता सहित कष्ट देने को, डण्डे से, लकड़ी से, कोड़े से, रस्सी से, सांकल से, हाथ से, लात से मारने को वध अतिचार या अत्याचार कहते हैं तथा अपराधी के भी अपराध की मात्रा न समझकर दुष्टतापूर्वक अधिक कष्ट देने को वध अतिचार कहते हैं।

प्रश्न— 1121—22 वधका अर्थ जान से मार देना ऐसा क्यों नहीं करते? ऐसा अर्थ स्वीकार करने में क्या दोष है?

उत्तर नहीं, स्वीकार नहीं करना चाहिए क्योंकि यहाँ पर अतिचारों का, दोषों का वर्णन चल रहा है, अनाचार का नहीं, हिंसा पाप का नहीं। यदि अनाचारदोष का, हिंसापाप का प्रसंग होता तो जीवन समाप्त करना अर्थ लेते तो कोई दोष न होता किंतु यहाँ अतिचारों का कथन है।

प्रश्न— 1123 कसाई कतलखाने में, बाजार में, मछली, मुर्गे, बकरे, सुअर, गाय, भैंसें, अण्डे आदि को मारकर, काटकर, फोड़कर, पकाकर बिक्री करते हैं खाने वाले खाते हैं तो उसे वध अतिचार दोष लगना चाहिए या नहीं?

उत्तर यह वध नामक अतिचार दोष नहीं है किन्तु अनाचार दोष है हिंसा पाप है। यदि आप इस कसाई के काम को, मांसाहारियों के भोजन को अतिचार दोष कहते हो तो फिर अनाचार दोष कहाँ कहोगे और किसके कार्य को अनाचार दोष कहोगे बताओ?

प्रश्न— 1124 बालक बालिकाओं के नाक, कान, छेदना आदि को अतिचार क्यों कहा यह तो श्रृंगार है दोष नहीं?

उत्तर पशु पक्षियों के या बालक बालिकाओं के नाक कान छेदने से वे पक भी जाते हैं, कष्ट होता है, खून गिरने लगता है, पीव पड़ जाता है, कीड़े भी उत्पन्न हो जाते हैं, भारी वेदना भी होती है, शौक श्रृंगार की, आभूषण धारण करने की भावना से नाक कान छिदाये जाते हैं। श्रृंगार करना या श्रृंगार की भावना करना राग के विना हो नहीं सकता अतः यह ब्रह्मचर्य व्रत का दोष है। विकार अंतरंग परिग्रह है, माया कषाय, लोभ कषाय होने से प्रमाद और प्रमाद ही हिंसा पाप है अर्थात्, इस नाक,कान, छेदना आदि अतिचार दोष के साथ विकथायें चार, कषाय चार, इन्द्रिय विषय वासना पाँच, निंद्रा और प्रणेय यह पन्द्रह प्रकार का प्रमाद होने से सभी पाप आ जाते हैं।

प्रश्न— 1125 यदि बालक बालिकाओं के नाक कान न छिदवाये जायें तो वे अलंकार कैसे धारण करेंगे? लोग भी माँ बाप को दोष देंगे कि इनके मां बाप कैसे? नाक कान भी नहीं छिदवाये, संस्कार विधि नहीं कराई तो क्या ये अनार्य हैं, म्लेक्ष हैं, जो धर्म के संस्कार नहीं कराये?

उत्तर श्रृंगार अंलकार की भावना और क्रिया बिना राग के, बिना शरीर के मोह के होती नहीं और राग मोह ही हिंसा पाप है देखो भोगभूमिज, आर्या आर्य, स्वर्गवासी देवदेवांगनायें भी सोलह श्रृंगार करते हैं और अनेक प्रकार के वस्त्र भी धारण करते हैं परन्तु वहाँ नाक कान छेदनादि संस्कार

विधि नहीं होती है फिर भी वे श्रृंगारादि करते हैं अतःदोष तो दोष ही है। यदि यह दोष नहीं है तो त्याग क्यों कराया, अतिचार दोष नाम क्यों दिया? त्याग करने का उपदेश क्यों दिया?

प्रश्न– 1126–27 अतिभार लादना किसे कहते हैं? अतिभार लादना अतिचार दोष किसे कहते हैं?

उत्तर शक्ति से ज्यादा भार बोझा लादने को अतिभार लादना कहते हैं। जिस पशुवाहन में उसकी ताकत को सोचे बिना लोभ से कि हमारा रुपया बच जायेगा इस भावना से अधिक भार लादकर ले जाते हैं। ऐसा क्यों करते हैं? मालवाला सोचता है कि हमको ज्यादा पशु करना पड़ेंगे या पशु वाहन थोड़ा कम करलो एक दो का तो पैसा बच जायेगा जितना बचा उतना ठीक तथा पशुमालिक सोचता है कि सामान्य से जितना ज्यादा मिला उतना ही सही। दोनों लोभ के कारण एक ने पैसा बचाने के लोभ से और दूसरे ने कमाने के लोभ से पशु के दुःख को दुःख न समझ, पशु को अन्दर वेदना कितनी होती है यह केवली भगवान प्रत्यक्षज्ञानी या पशु ही जाने। पशु के कष्ट को लोभी, मोही मनुष्य क्या जाने? जब पशु से चलते नहीं बनता तब पशुमालिक उसे डण्डे, कोड़े, रस्सी से मारता है पृष्ठ भागपर गुदा द्वार पर चिवटी भर देता है तब वह पशु परवश होकर भागता है, पसीना बहता है, आंसु गिरते हैं, पर मालिक कषाययुक्त होने से, कसाई के समान आचरण करने वाला होने से कसाई ही है क्योंकि अपने निजी स्वार्थ के पीछे जो दूसरों के दुःख को दुःख न समझे तो वह मनुष्य कैसा? वह तो मानव नहीं किन्तु दानव है अतः दुर्भावना होने से सर्वत्र पाप ही पाप है ऐसा अवधारण करो। इस कारण शक्ति से ज्यादा भार लादना अतिभारलादना तथा पशु को पीड़ा होना और उभय व्यक्तियों में लोभ होना अतिभारलादना दोष है। इस कषाय का संस्कार 15 दिन रात्रि से ज्यादा समय तक चला गया तो अनाचार दोष बन गया। कारण प्रत्याख्यानावरण कषाय का वासनाकाल 15 दिन रात्रि का है इससे ज्यादा 6 महिने का वासनाकाल अप्रत्याख्यानावरण कषाय का और 6 महिने से ज्यादा तथा संख्यात वर्ष असंख्यात वर्ष और अनन्तकाल तक का वासनाकाल अनन्तानुबन्धी कषाय का है।

प्रश्न– 1128 पशुवाहन न कर कुली करने से तो यह दोष नहीं लगेगा क्योंकि कुली तो मनुष्य हैं?

उत्तर कुली और मालमालिक के मन में लोभ होने से दोनों अपराधी हैं, अत्याचारी हैं। क्योंकि मालमालिक के मन में रुपया बचाने का और कुली के मन में ज्यादा पैसा कमाने का लोभ है जब कुली सामान लेकर चलता है तो वह कैसा हांफता है, पसीना पसीना हो जाता है, सिर का बोझा कंधे पर और कंधे के बोझे को सिर पर रखता है फिर भी गाड़ी आदि के चलने का समय कम होने से मालिक चिल्लाता है अरे जल्दी चल गाड़ी निकल जायेगी और डांट भी खाता है, परिश्रम भी करता है, स्वास्थ्य भी खराब हो जाता है अतः कषायवान होने से दोनों अपराधी हैं।

प्रश्न– 1129 डीजलगाड़ी, पेट्रोलगाड़ी, बिजलीगाड़ी, गैसगाड़ी आदि से तो ज्यादा माल ले जा सकते हैं तो भी इसमें दोष लगेगा क्या?

उत्तर कम्पनी वालों ने या सरकार ने प्रत्येक यन्त्र वाहन का वजन दे रखा है तथा उसमें भार ढोने

की क्षमता भी दे दी है कि इतना वजन ले जा सकते हो, ज्यादा नहीं और लोभ के कारण चालक या मालिक ज्यादा भार ले चला और पकड़ा गया तो चालान हो जाता है, वाहन पकड़ा जाता है तो जुर्माना ज्यादा लगता है, यहाँ तक कि जेल भी हो जाती है और ज्यादा समय हो गया तो गाड़ी हो या पशु ग्राम पंचायत के द्वारा आम जनता के बीच में नीलाम कर दिये जातें हैं अतः उसकी शक्ति से ज्यादा भार लादना अतिचार दोष कहा है तथा अनाचार दोष भी बन जाता है अतः धर्म राजा की, लोक राजा की आज्ञा का उल्लंघन करना महान पाप है जो पाप से, कष्ट से, बदनामी से भयभीत हैं वो इस पाप को छोड़ें अन्यथा दुःख भोगने पड़ेंगे।

प्रश्न– 1130 अन्नपान निरोध दोष किसे कहते हैं?

उत्तर जो पशु पक्षी हैं, दासी दास, पुत्र पुत्री, बीमार व्यक्ति या त्यागी व्रती जो भोजन के निमित्त अपने आधीन हैं उनको समय पर भोजनपान न देकर असमय में भोजन पान कराना उसे भोजनपान निरोध अतिचार दोष कहते हैं।

प्रश्न– 1131 यहाँ पर निरोध का अर्थ अभाव करना, अन्नपान का अभाव करना ऐसा अर्थ क्यों नहीं करते?

उत्तर यदि समाधि का प्रकरण होता तो कदाचित् निरोध का अर्थ अभाव करना इष्ट होता किन्तु यहाँ पर अतिचारों का प्रकरण है अतः निरोध का अर्थ अभाव न कर, रोकना किया है अर्थात् भोजनपान को समय पर न देकर असमय में आगे पीछे देना यह दोष है। कोई यन्त्र वाहन है यदि उसको समय पर डीजल, पेट्रोल, मोबिल ऑयल नहीं दिया तो वह कब तक चलेगा कब तक स्वांशें भरेगा जरा आप सोचो? तो यह मनुष्य का या पशु पक्षी का शरीर अन्न का कीड़ा है इसको समय पर भोजनपान नहीं दिया तो असमय में टूट जायेगा, भूंख मर जायेगी, पूरा भोजन न हो सकेगा, कमजोरी होगी, धातु उपधातुयें पर्याप्त मात्रा में तैयार न होने से शरीर टूटेगा तो परिणाम भी बिगड़ेंगे जिससे व्यवहारिक जीवन, भोगविलास का जीवन और आत्मसाधना भी प्रायः कर समाप्त हो जायेगी। इस कारण समय पर भोजनपान देना योग्य है। अतः निरोध का अर्थ अभाव न कर रोकना किया है जो समय पर न देना अतिचार दोष है।

Note- 1021 से लेकर 1131 तक हिंसा पाप का, अहिंसाणुव्रत का, इनकी भावनाओं का तथा अतिचारों का वर्णन समाप्त हुआ।

प्रश्न– 1132 झूठ पाप किसे कहते हैं?

उत्तर प्रमाद के योग से स्व प्राण, पर प्राण, और उभय के प्राणों के घातक वचन उच्चारण कर मन आदि प्राणों के दुखाने को अथवा अपने जिन वचनों से प्राणी कष्ट में पड़ जाये तो उसे झूठ पाप कहते हैं। इस झूठ वचन से मानव इतना दुःखी होता है जो सबके प्रत्यक्ष है।

प्रश्न– 1133–34 झूठ पाप के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर व्यवहार भाषा की अपेक्षा झूठ पाप के, झूठ वचन के चार भेद हैं। 1. सत् का अभाव कहना 2. असत् का सद्भाव बताना 3. सत् को बदलकर बोलना 4. पाप युक्त लोक गर्हित निन्दित अप्रिय वचन बोलना ये नाम झूठ वचन के हैं।

प्रश्न– 1135 स्वद्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर जो मौजूद है, सत्स्वभाव वाला है, उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य से युक्त, गुण पर्याय वाला हो उसे स्वद्रव्य कहते हैं।

प्रश्न– 1136 स्वक्षेत्र किसे कहते हैं?

उत्तर असंख्यात प्रदेशी आत्मा अपने में व्याप्त स्वरूप को, अवस्थान क्षेत्र को स्वक्षेत्र कहते हैं।

प्रश्न– 1137 स्वकाल किसे कहते हैं?

उत्तर द्रव्य के परिणमन करने के समय को स्वकाल कहते हैं।

प्रश्न– 1138 स्वभाव किसे कहते हैं?

उत्तर द्रव्य के परिणमन को ही स्वभाव कहते हैं।

प्रश्न– 1139 उत्पाद किसे कहते हैं ?

उत्तर अभूतपूर्व अनादिकाल से आजतक जो प्राप्त नहीं हुआ तो उसके प्राप्त होने को उत्पाद कहते हैं। इसे प्रागभाव भी कहते हैं।

प्रश्न– 1140 व्यय किसे कहते हैं ?

उत्तर वर्तमान में जो मौजूद हैं उसके अभाव करने को व्यय कहते हैं। इसको ही प्रध्वंसाभाव कहते हैं।

प्रश्न– 1141 ध्रौव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर उत्पादव्यय करते हुए भी जो दोनों में तारतम्यता का सम्बन्ध बनाये रखे उसे ध्रौव्य कहते हैं।

प्रश्न– 1142 गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर जो अनंत संख्यावाले अपरिणामी धर्म से युक्त, अनादिकाल से अनन्तकाल तक एक स्वभाव से रहने वालों को अथवा जो द्रव्य के आश्रय रहें और दूसरे गुणों को अपने रूप में न मिलाये न स्वयं दूसरों में मिलें, अपना सत्त्व स्वयं स्वतन्त्र बनाये रखें उन्हें गुण कहते हैं।

प्रश्न– 1143 पर्याय धर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर द्रव्य और गुणों के स्वनिमित्तक, परनिमित्तक, शुद्ध या अशुद्ध परिणमन स्वभाव को पर्याय धर्म कहते हैं। यह परिणमन समय के पहले, बाद में, विपरीत या अनुकूल भी हो सकता है।

प्रश्न– 1144 द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर जो अनन्त गुणों को धारण करने वाला हो, अनन्त गुणों का पिण्ड हो, अनन्त पर्यायों का पिण्ड हो उसे द्रव्य कहते हैं अथवा अनन्तगुण और अनन्तानन्त पर्यायों से सत्पर्याय, अस्तिरूप, असत्पर्याय, नास्ति रूप से युक्त हो, अखंड हो, नित्यात्मक और अनित्यात्मक आदि अनंत स्वभावों से सहित हो उसे द्रव्य कहते हैं।

प्रश्न– 1145 सत् के अभाव रूप प्रथम झूठ वचन असत् वचन किसे कहते हैं ?

उत्तर जो आपके पास में मौजूद है और मौजूद होने पर भी किसी के पूछने पर मना कर दिया कि मेरे पास में नहीं है अतः इसे प्रथम असत्यवचन कहते हैं। जैसे आपके पास में शास्त्रजी हैं या अन्य

कोई वस्तु है तो पूंछे जाने पर आपने मना किया कि मेरे पास में शास्त्रजी या कोई वस्तु नहीं है सो यह सत् का अभाव स्वरूप प्रथम असत्यवचन कहलाया जो पाप है।

प्रश्न— 1146 असत् का सद्भाव बताने वाले दूसरे झूठ सत्वचन किसे कहते हैं?

उत्तर जो वस्तु अपने पास में नहीं है फिर भी प्रमादपूर्वक दूसरों को धोके में डालने के लिये हाँ मेरे पास में है इस प्रकार उच्चारण करने को दूसरे नं. के असत् का सद्भाव बताने वाले वचन कहते हैं। जैसे आपके पास में शास्त्रजी नहीं हैं फिर भी पूंछने पर आपने हाँ मेरे पास में हैं ऐसा कहा सो इसे दूसरे नं. का असत् का सद्भभाव बताने वाला झूठ वचन कहा है।

प्रश्न— 1147 आपके पास शास्त्रजी नहीं है फिर भी पूछने पर हाँ है ऐसा कहने पर इसे झूठ वचन क्यों कहा?

उत्तर आपने उसे आश्वासन दिया है कि हमारे पास में है वह विश्वास में रहा। वह अन्यत्र व्यवस्था करेगा नहीं क्योंकि आश्वासन प्राप्त किया है। अब जब वह आपके पास आयेगा मांगेगा तब मना करेंगे तो उसके मन में कितनी गहरी चोट लगेगी और अन्दर से आवाज आयेगी कि इन्होंने विश्वासघात किया है, विश्वास हट जायेगा अतः यह झूंठ वचन है जो पापस्वरूप है।

प्रश्न— 1148 तो प्रथम वचन झूठ वचन क्यों कहा ?

उत्तर प्रथम वचन को भी झूठ वचन इसलिए कहा है कि उसको मालूम है कि आपके पास में है फिर भी आपने मना किया तो आपके लोभ और माया कषाय का सद्भभाव मालूम पड़ने से विश्वास टूट जाता है और विश्वासघात करना ही महान पाप है। अतः झूठ वचन कहा है।

प्रश्न— 1149 आपके पास कुछ वस्तु है किन्तु पूछने पर बदलकर और कुछ कह देना तब इसे झूठ वचन क्यों कहा ?

उत्तर प्रमाद पूर्वक शराबी के समान अस्थिरतापूर्वक कुछ का कुछ बोलने को झूठ वचन कहते हैं। सामने वाला व्यक्ति विश्वास में है और आपने विश्वासघात किया। अतः विश्वासघात करने से ही इस वचन को झूठवचन कहा है।

प्रश्न— 1150 निंद्य वचन किसे कहते हैं?

उत्तर जिस प्रकार ग्वाले लोग या किसान लोग खेत आदि में पशुओं के साथ या पशु को अपनी माँ बेटी, बहन के सामने जिन वचनों का प्रयोग करते हैं वे वचन सज्जनों के बीच में निंद्यनीय माने जाते हैं क्योंकि जो वचन पशुओं को गाली रूप में बोलते हैं वे वचन उनकी माँ बेटी बहिन के सामने या उनको कोई दूसरा बोले तो कितना बुरा लगेगा? परन्तु पशुओं को हास्यवचन बोलना, मर्मच्छेदी वचन बोलना, अविश्वास के वचन बोलना, व्यर्थ का बकवास करना आदि को निंद्य वचन कहते हैं अथवा सत् संस्कार हीन दुर्जनों के असभ्य वचनों को निंद्य वचन कहते हैं।

प्रश्न— 1151—52 अप्रिय वचन किसे कहते हैं? पाप युक्त वचन किसे कहते हैं?

उत्तर आरम्भ परिग्रह को बढ़ाने वाले वचन, छेदन, भेदन, ताड़न, पीड़न, शोषण आदि को उत्पन्न करने वाले वचन पाप वचन कहलाते हैं तथा अरति उत्पन्न करने वाले वचन, वैर, खेद, शोक वचन,

कलहकारक वचनों को अप्रिय वचन कहते हैं।

प्रश्न– 1153 संसारवर्धक वचन किसे कहते हैं?

उत्तर प्रमाद पूर्वक ख्याति, पूजा, लाभ की भावनापूर्वक जो कर्ण प्रिय, मनोहर वचन, चाटुकारी के वचन, प्रशंसावचन, स्तुतिवचन, चर्मनेत्रों से अच्छे दिखाई देने पर भी, कर्णों के सुनने में अच्छे लगने पर भी हेतु गलत होने से संसारवर्धक वचन कहे जाते हैं।

प्रश्न– 1154 वचन तो कान से सुने जाते हैं फिर आपने नेत्रों से देखने से अच्छे लगने वाले वचन ऐसा क्यों कहा?

उत्तर वचन तो कान से ही सुने जाते हैं आँख से नहीं सुने जाते हैं किन्तु विदेशी भाषाओं के उच्चारण करते समय आँख की चाल, मुँख की मुस्कान, हाथ पैर की मटकन से व्यक्ति का भाव वचनात्मक अर्थ आँखों से दिख जाता है, हावभाव चेहरों से मालुम पड़ जाता है अतः ठीक ही कहा है कि वचनों का कार्य फल आँखों का विषय बन जाता है।

प्रश्न– 1155 सत्याणुव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर जिन वचनों के द्वारा पाप की हानि हो, धर्म की प्रभावना कराने वाले हों, मोक्षमार्ग में गमन कराने वाले हों, जीवों की रक्षा कराने वाले हों तथा जिन वचनों से धर्म, समाज, देश, अपना जीवन, परिवार संकट में न पड़ जाये, बदनाम न हो जाये ऐसा सत्य वचन बोलता है तथा जिससे धर्म और प्राणियों के प्राण संकट में पड़ जायें ऐसा सत्य भी नहीं बोलता है। इस प्रकार विधि और निषेध रूप वचन व्यवहार को सत्याणुव्रत कहते हैं।

प्रश्न– 1156 सत्याणुव्रत का निर्दोष पालन हो तो इसके लिए क्या करना चाहिए?

उत्तर सत्याणुव्रत को निर्दोष पालने के लिए निरन्तर सतत भावनाओं का चिन्तन करना चाहिए।

प्रश्न– 1157–58 वे भावनायें कितनी हैं? उनके नाम कौन कौन हैं?

उत्तर सत्याणुव्रत को निर्दोष पालने के लिए 5 भावनायें हैं। नामः–1. क्रोधत्याग, 2. लोभकषाय, 3.भीरूत्वत्याग, 4. हास्यत्याग और 5. आगमानुसार बोलना ये पाँच भावनायें हैं। पुनः पुनः चिन्तन करने से व्रत का निर्दोष पालन होता है।

प्रश्न– 1159 क्रोध त्याग नाम की भावना किसे कहते हैं?

उत्तर अपने आप को भूलकर दूसरे के धन, वैभव, शरीर, परिवार, ज्ञान, तप आदि चेतन, अचेतन सामग्री को देखकर, सुन करके सहन न करने को तथा अंतरंग में उद्रेक आने को क्रोध कहते हैं। क्रोध के आवेश में लोग क्या क्या नहीं बोलते हैं जैसे मैं तेरे को फाड़ दूंगा, टुकड़े टुकड़े कर दूंगा, तेरे में भूषा भर दूंगा, परलोक पहुंचा दूंगा आदि वचन बोलते हैं। पर ऐसा किसी ने किया नहीं है। फिर भी क्रोध के वश में, क्रोध के आधीन होकर असत्य वचन बोलता है। यह मोही प्राणी जिस प्रकार क्रोध के कारण असत्य वचन बोलता है। उसी प्रकार मानकषाय के कारण भी असत्यवचन बोलता है अतः क्रोध कषाय के त्याग के साथ साथ मान कषाय का भी त्याग करना चाहिए क्योंकि इन कषायों के उद्रेक से नाना प्रकार के अनर्थ देखे जाते हैं।

प्रश्न– 1160–61 क्या गृहस्थ क्रोध कषाय का त्याग कर सकता है? या केवल भावना कर सकता है?

उत्तर गृहस्थ क्रोध कषाय का, मान कषाय का पूर्ण रूप से त्याग नहीं कर सकता है किंतु किंचित् अवस्थानुसार कषायों की मात्रा कम कर सकता है और पूर्ण रूप से त्याग की भावना कर सकता है क्योंकि कषायों के त्याग करने के लिए, क्षय करने लिए, संयम सहित मुनिपद, निर्विकल्पध्यान और क्षपकश्रेणी का परिणाम चाहिए। नाना प्रकार के उपसर्ग और परीषहों को जीतना चाहिए। किन्तु भावना के लिए विवेकपूर्वक सावधानी की आवश्यकता है।

प्रश्न– 1162–63 क्रोध कषाय और मानकषाय करने से क्या हानि है? इन दोनों कषायों के त्याग से क्या लाभ है?

उत्तर इन उभय कषायों को धारण करने से मान सम्मान विश्वास टूट जाता है। परस्पर का प्रेम, आदान प्रदान का भाव समाप्त हो जाता है। मरकर तिर्यंचगति का तथा नरकगति का पात्र हो, जन्म धारण कर सागरों पर्यन्त कष्ट उठाना पड़ता है। छेदन, भेदन, ताड़न, पीड़न, भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी आदि नाना प्रकार के कष्ट भोगना पड़ते हैं जो प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहे हैं यह हानि है और इनके त्याग से उत्तम क्षमा धर्म, उत्तम मार्दव धर्म की प्राप्ति होती है। जिससे आत्मसुख की प्राप्ति, मान सम्मान, पूजा प्रतिष्ठा, उच्चपद, परमेष्ठी पद की प्राप्ति होती है। यह लाभ है।

प्रश्न– 1164 लोभ त्याग नाम की भावना किसे कहते हैं?

उत्तर पर द्रव्यों के प्रति वे चाहे द्रव्य चेतन हो या अचेतन इन द्रव्यों के प्रति ममकार भाव को लोभ कहते हैं और ममकार के त्याग को लोभकषाय त्याग कहते हैं तथा त्याग करने की इच्छा को लोभकषाय त्याग भावना कहते हैं। लोभत्याग के साथ माया कषाय का भी त्याग करना चाहिए। लोभ के कारण यह जीव नीच लोगों की सेवा करता है। झूठी गवाही तथा सलाह देता है। नाना प्रकार के असत्य वचन बोलता है। अधिकारी या मालिक जैसा बुलवाता है वैसा ही बोलता है या ग्राहक जैसा बुलवाता है व्यापारी वैसा ही बोलता है। यदि नहीं बोले तो लोभी का, मायावी का इष्ट कार्य धन कमाना हो नहीं सकता है। अतः लोभकषाय के कारण यह मानव चराचर समस्त पाप कर रहा है। जिस प्रकार लोभ कषाय के कारण समस्त पाप करता है उसी प्रकार माया कषाय के कारण भी समस्त दुष्कृत पाप जातिकुल धर्म को नष्ट करने वाले कर डालता है। ये कषायें महान भयंकर हैं सर्व विनाश करते हैं।

प्रश्न– 1165 क्या गृहस्थ लोभकषाय और माया कषाय का त्याग कर सकता है या केवल भावना ही कर सकता है?

उत्तर गृहस्थ श्रावक भी अपने पद और अभ्यास के अनुसार कषायों की मात्रा कम कर सकता है, समूल क्षय नहीं कर सकता। यदि गृहस्थ वस्त्रधारी कर्मों को समूल क्षय कर सकता है तो उसे गृह परिवार को छोड़कर जंगल में क्यों जाना पड़े? साधुपद धारण कर उपसर्ग परीषह क्यों जीतना पड़े? अतः कषायों की तीव्रता में कमी ला सकता है कदाचित् उदय की अपेक्षा आदि की दो चौकड़ी कषायों का भी अभाव कर सकता है किंतु भावना पूर्ण रूप की करता है। इसलिए कषायों

के क्षय के लिए उत्कृष्ट धर्मध्यान की या शुक्लध्यान की आवश्यकता है किन्तु भावना के लिए उत्कृष्ट भेद विज्ञान की, विवेक की आवश्यकता है। साथ साथ दुर्भावना और दुष्प्रवृत्ति के त्यागकी आवश्यकता भी है।

प्रश्न– 1166 माया कषाय और लोभ कषाय से क्या हानि है? इन दोनों के त्याग से क्या लाभ है?

उत्तर छलकपट करने वालों से, लोभ कषाय वालों से युक्त जीवों से अन्य सदस्यगण प्रायः कर दूर रहा करते हैं। घर के, परिवार के सदस्य भी परहेज करते हैं कि यह ठग या भिखारी आ गया। यह ठगेगा या मांगेगा, इससे दूर रहो बचके रहो। मरने पर तिर्यंचगति, नीच मनुष्यों में, हीन पुण्यात्मा देवों में जन्म धारणकर नाना प्रकार के दुःखों को प्राप्त होते हैं। निकट सम्बन्धी भी साथ छोड़ देते हैं। कोई विश्वास भी नहीं करता इन कषायों के साथ परिणमन करने पर सभी गुण नष्ट हो जाते हैं। इनके त्याग से आर्जव धर्म और शौच धर्म की प्राप्ति होती है जिससे वचन व्यवहार में भी सत्यता आती है सभी विश्वास करते हैं आदि लाभ है।

प्रश्न– 1167 सूत्रकार ने क्रोध और लोभ कषाय का त्याग बताया है, मान माया कषाय का नहीं फिर आपने इनका त्याग क्यों बताया?

उत्तर नैगमनय और संग्रहनय की अपेक्षा क्रोध कषाय और मान कषाय द्वेष रूप हैं तथा माया और लोभकषाय राग रूप हैं अतः सूत्रकार ने क्रोध के साथ मान को तथा लोभ के साथ माया को ग्रहण कर लिया है। कारण जिस प्रकार आदि अन्त की कषायों से असत्य वचन बोले जाते हैं और मोक्षमार्ग की हानि होती है उसी प्रकार मध्यवर्ती कषायों से हानि होती है संसार की वृद्धि होती है। अतः चारों कषायों को ग्रहण कर लिया है, इसलिए कोई दोष नहीं हैं।

प्रश्न– 1168 भीरुत्व त्याग भावना किसे कहते हैं?

उत्तर भीरुत्व त्याग, कमजोरी का त्याग, भय का त्याग इनके अभाव को अर्थात् भीरुत्व स्वभाव को भय कषाय कहते हैं और इनके त्याग को, भय के त्याग को भीरुत्व त्याग कहते हैं तथा इसके त्याग की इच्छा को भीरुत्व त्याग भावना कहते हैं। भय से झूठ वचन भी बोले जाते हैं क्योंकि भय भी कषाय है महान कष्ट देने वाला है।

प्रश्न– 1169–70 क्या भय का गृहस्थ प्राणी त्याग कर सकता है? या केवल भावना कर सकता है?

उत्तर हाँ गृहस्थ श्रावक अनन्तानुबन्धी कषाय और अप्रत्याख्यानावरण कषायों के उदय के साथ होने वाले भयों का त्याग कर सकते हैं किन्तु पूर्ण रूप से भयों का त्याग नहीं कर सकते हैं। केवल भावना पूर्ण रूप से कर सकते हैं। त्याग में कष्ट है, भावना में कष्ट नहीं है।

प्रश्न– 1171 भय कषाय के त्याग के साथ साथ कितनी कषायों का त्याग किया जाता है?

उत्तर भयनोकषाय के त्याग के साथ साथ अरति शोक जुगुप्सा का त्याग किया जाता है क्योंकि

द्वेषप्रकृतियों के बीच में भय का नाम होने से मध्य दीपक के समान है क्योंकि मध्यदीपक अपनी सामर्थ्यानुसार प्रकाश्य क्षेत्र में स्थित वस्तुओं को प्रकाशित करता है इसी तरह यह भय नोकषाय मध्य दीपक होने से अरति, शोक और जुगुप्सा नोकषायों को ग्रहण कर लेता है, अतः जितनी हानि, मोक्षमार्ग की विराधना भयकषाय से होती है उतनी ही विराधना अरति,शोक और जुगुप्सा कषाय से होती है। ये चारों नोकषायें कहलाती है ये नोकषाय होने पर भी कषायों के समान हानिकारक हैं। अतः चारों नोकषायों का त्याग करना चाहिए।

प्रश्न— 1172—73 भयकषाय के करने से क्या हानि प्राप्त होती है? भय कषाय का त्याग करने से कौन कौन से गुण प्राप्त होते हैं?

उत्तर भयभीत प्राणी, कमजोर प्राणी सांसारिक इन्द्रियजन्य सुख का भोग करता हुआ भी सुख का आनन्द नहीं ले पाता। व्यापार आदि लौकिक कार्य करता हुआ भी सफलता प्राप्त नहीं कर पाता। भय से सत्य असत्य वचन बोलता है किंचित् विरुद्ध साधन के प्राप्त होने पर छिपने भागने और सहायक की खोज में लगा रहता है। प्रसंग वश कहीं कुछ कार्य करना पड़े तो सत्य बोलता हुआ भी कम्पित रहता है, निर्णायक बुद्धि नहीं होती है। धर्मध्यान और शुक्लध्यान में प्रवेश करने के लिए समर्थ नहीं हो पाता है किंतु निर्भीक साहसी व्यक्ति अपने लक्ष्य में हार न मानकर दृढ़ पुरुषार्थी बनकर सर्वत्र सफलता प्राप्त कर लेता है। अतः निर्भीक रहना ही श्रेष्ट है।

प्रश्न— 1174—75 केवल भयकषाय का त्याग करना है क्या? भय के समान सभी कषायों का त्याग करना है क्या?

उत्तर यहाँ केवल भय का त्याग नहीं कराया किन्तु भय के समान हानिकारक सभी कषायों का त्याग कराया है। जैसे किसी ने दूध की रक्षा के लिए कहा कि बिल्ली दूध नहीं पी जाये, सम्हाल के रखना, रक्षा करना। इसका यह मतलब नहीं कि बिल्ली से दूध को बचाओ तो शेष कुत्ता चूहा आदि से मत बचाओ पी जाने दो। यह तो उल्टा न्याय हो गया। दूध के सम्हालने के लिए सभी प्रकार की आपत्तियों से रक्षा करना चाहिए इसी तरह मोक्षमार्ग की सत्यव्रत की रक्षा सभी प्रकार से करना चाहिए। अन्यथा अग्नि की चिनगारी के समान ये कषायें अपना सर्व विनाश कर देंगी अतः भय के समान हानिकारक होने से शेष तीन कषायें भी त्याग करनी चाहिए।

प्रश्न— 1176—77 हास्य कषाय किसे कहते हैं? हास्य कषाय का क्यों त्याग कराया?

उत्तर मन में राग कषाय पूर्वक मुख में खिलखिलाहट या हर्ष पूर्वक रोमांच होने को हास्य कहते हैं। कषायों के समान हानिकारक है, निन्दा का पात्र बनाता है इसी से महाभारत हुआ, अक्षौहिणी सेनायें मारीं गई। हंसी हंसी में असत्य वचन बोले जाते हैं। इसलिए हास्य का त्याग करया।

प्रश्न— 1178 हास्य कषाय की उत्पत्ति कैसे होती है?

उत्तर विदूषक पुत्र को देखकर, अभूतपूर्व रागात्मक घटना को देखकर या सुनकर मुख में हर्षोल्लास की उत्पत्ति होती है। सभी क्षेत्रों में, सभी कालों में और सभी प्राणियों में यथावसर अंतरंग बहिरंग कारणों से हास्य कषाय की उत्पत्ति होती हैं जो सभी जानते हैं।

प्रश्न– 1179 हास्यकषाय की उत्पत्ति सभी प्राणियों में होती है तो वीतरागियों में, सर्वज्ञों में, सिद्धों में भी हास्य की उत्पत्ति होती है क्या?

उत्तर नहीं, वीतरागियों में, सर्वज्ञों में, सिद्धों में और श्रेणी आरोहण करने वाले निर्विकल्प ध्यान में स्थिर मुनियों के हास्य की उत्पत्ति नहीं होती है यदि इन मुनियों में भी हास्य की उत्पत्ति होने लगे तो इन्हें ध्यानी कौन कहेगा? उपयोग में अस्थिरता होने से मोक्ष के अनुरूप धर्मध्यान और शुक्लध्यान नहीं बन सकता है। उपयोग में खिलखिलाहट रूप में हास्यकषाय का समावेश होने से वास्तविक मुनिपना सिद्ध नहीं होता है क्योंकि हास्य करना मुनिपद का विरोध है, दोष है, विराधक है। हास्य कषाय और प्रमाद होने से संयम की पूर्ण रूप से विराधना कर सकता है।

प्रश्न– 1180 हास्य कषाय कितने प्रकार की होती है?

उत्तर दो प्रकार की तीन प्रकार की होती है अथवा चार प्रकार की अनन्त भेद वाली होती है।

प्रश्न– 1181–82 दो प्रकार का हास्य कौनसा है? सामान्य से कितने भेद वाला है?

उत्तर हास्य कषाय के सामान्य से कोई भेद नहीं है, अभेद हैं, एक ही प्रकार का है। द्रव्य हास्य और भाव हास्य के भेद से हास्य दो प्रकार का है। जो चारित्रमोह द्रव्य कर्म का हास्यकषाय रूप से परिणमन है वह द्रव्य हास्य है तथा आत्मा का जो चारित्रगुण है उसका हास्यकषाय के रूप में परिणमन होना भाव हास्य कषाय है। जैसे अपन या अपना फोटू, फोटू अचेतन पुद्गल द्रव्य का परिणमन है और अपना चैतन्य आत्मा के साथ परिणमन है।

प्रश्न– 1183 तीन प्रकार का हास्य कषाय कौन सा है?

उत्तर उत्तम हास्य, मध्यम हास्य और जघन्य हास्य के भेद से तीन प्रकार का हास्य हैं। मन्द मुस्कान को उत्तम हास्य कहते हैं, मंद मुस्कान के साथ किंचित् दांत दिख जाये, खुल जाये उसे मध्यम हास्य कहते हैं। आवाज करते हुए हंसना जघन्य हास्य कहलाता है। अध्यात्मदृष्टि से समस्त हास्य हानिकारक हैं तथा लोक व्यवहार में प्रथम हास्य सज्जनों का लक्षण माना जाता है तो तीसरा हास्य दुर्जनों का लक्षण माना गया है। मध्यमहास्य सीमा के अन्दर होने से सज्जन का लक्षण है और सीमा के बाहर होने से दुर्जन का लक्षण है। यदि इस कथन में संदेह हो तो लक्षण के अनुसार दिनचर्या बनाने से अनुभव हो जायेगा कि इसका यह फल है।

प्रश्न– 1184–85 हास्यवचन का त्याग क्या गृहस्थ कर सकता है? क्या केवल भावना करता है? हास्य वचन के त्याग और त्याग भावना में क्या अंतर है?

उत्तर नहीं, हास्य का पूर्ण रूप से त्याग नहीं कर सकता है किन्तु मात्रा में कमी कर सकता है। अर्थात् अव्रती सम्यग्दृष्टि जीव अनंतानुबंधी कषाय संबंधी हास्य का और अणुव्रती के अप्रत्याख्यानावरणीय हास्य का पूर्ण रूप से त्याग हो जाता है शेष हास्य के त्याग करने की भावना रहती है तथा समूल क्षय करने के लिए मुनिपद निर्विकल्प ध्यान चाहिए और यह अवस्था वस्त्रधारी को प्राप्त नहीं होती है। त्याग करने की भावना कर सकता है। त्याग में और त्याग की भावना में अन्तर है। त्याग में पुरुषार्थ की और भावना में विवेक की आवश्यकता है। त्याग में आश्रवबंध रुक जाता है और भावना में आश्रव बन्ध चालू रहता है। यही इन दोनों में अंतर है।

प्रश्न– 1186 हास्यकषाय के चार भेद कौन कौन हैं?

उत्तर अनन्तानुबन्धी कषायोदय के साथ हास्य, अप्रत्याख्यानावरण कषायोदय के साथ हास्य, प्रत्याख्यानावरण कषायों के उदय के साथ हास्य और संज्वलन कषायोदय के साथ हास्य चार प्रकार का कहलाया अथवा माया के साथ चार प्रकार का और लोभोदय के साथ चार प्रकार का हास्य क्योंकि माया और लोभ कषायराग रूप है। इसलिए सजातीय प्रकृति होने से हास्य भी आठ प्रकार का हो जाता है। अर्थात् मूलकषाय के साथ चार प्रकार का और उत्तर भेद रूप कषायों के साथ आठ प्रकार का हास्य हो जाता है।

प्रश्न– 1187–88 केवल हास्य का त्याग कराया है? तत्सम्बन्धी सभी कषायोंका त्याग कराया हैं?

उत्तर हास्य कषाय के त्याग के साथ साथ रति का स्त्रीवेद का पुरुषवेद का और नपुंसकवेद का त्याग कराया है। जिस प्रकार हास्य के उद्रेक में असभ्य वचन बोले जाते हैं। उसी प्रकार शेष चारों कषायों के साथ भी बोले जाते हैं। ये पाँचों प्रकृतियां नोकषायें हैं, हानिकारक हैं। नैगमनय और संग्रहनय से राग रूप हैं। राग द्वेष से असत्य वचन बोले जाते हैं अतः पूर्ण मोह कर्म का त्याग कराया है क्योंकि सम्पूर्ण मोहनीय कर्म शराब के समान समस्त अनर्थों की जड़ है।

प्रश्न– 1189–90 अनुवीचिभाषण किसे कहते हैं? इसका क्या आधार है?

उत्तर आगम के अनुसार बोलने को अनुवीचिभाषण कहते हैं। प्र.सा. में आ. श्री कुंदकुंद ने ''आगम चक्खू साहू'' जो साधू मोक्षमार्ग की साधना करता है उसका एकमात्र आगम ही नेत्र है। अपनी तरफ से न कुछ बोलता है न कुछ करता है जैसा निर्दोषाचार्यों ने (जो आचार विचार से निर्दोष थे, ख्यातिपूजा लाभ की भावना के त्यागी थे, पक्षपात पंथवाद के त्यागी थे) परम्परागत उपदेशानुसार लिपिबद्ध किया है उनकी आज्ञा का पालन करते हैं अर्थात् श्रद्धान ज्ञान और आचरण में एकरूपता के साथ वचन व्यवहार को ही अनुवीचि भाषण कहते हैं।

प्रश्न– 1191 साधूपद गृहत्यागी मुनिपद का वाचक है अतः मुनि अर्थ न कर साधना करने वाला अर्थ क्यों किया?

उत्तर मोक्षमार्ग का प्रकरण होने से यदि यहाँ साधू पद से मुनि अर्थ लिया जाय तो अविरत सम्यग्दृष्टि और देशविरत सम्यग्दृष्टि का मोक्षमार्ग साधने के लिए कौन सा नेत्र होगा? क्या वह वचन व्यवहार लौकिक ही करता है इसी लोक पद्धति को ही अपने जीवन में उतारे ही रहता है और इसी प्रकार ही यदि दिनचर्या रही तो मोक्षमार्ग कैसे बनेगा? अतः साधुपद से मुनिपद का अर्थ न कर साधना करने वाला किया है मोक्षमार्ग के लिए आगम नेत्र की परम आवश्यकता है।

प्रश्न– 1192 क्या आगम ज्ञान के बिना गृहस्थ अनुवीचि भाषण बोल सकता है?

उत्तर आगम ज्ञान तथा सत्संस्कार के बिना वचन में सत्यता नहीं आ सकती है। हाँ इतना अवश्य है कि अनुभव के आधार पर या गुरु के उपदेशानुसार बोलने पर वचनों में सत्यता आ सकती है। अतः गृहस्थों के अनुवीचिभाषण नाम की भावना बन जाती है। इसलिए जिनागम का अध्ययन

अवश्य ही गृहस्थों को निरंतर करना चाहिए क्योंकि आगम स्वाध्याय से ही नवीन नवीन शब्द रचनाओं के द्वारा नाना प्रकार के अर्थों की अनुभूति होती है।

प्रश्न– 1193 क्या गृहस्थों के अनुवीचि भाषण भावना पूर्ण रूप से बन सकती है?

उत्तर पूर्ण रूप से सत्य वचन तो केवली के ही होते हैं। छद्मस्थों के वचनों में पूर्ण सत्यता नहीं होती है किन्तु क्षायोपशमिक ज्ञानानुसार सत्यता होती है परन्तु भावना तो पूर्ण रूप से कर सकता है।

प्रश्न– 1194–95 सत्याणुव्रत के अतिचारों के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर सत्याणुव्रत के अतिचारों के पाँच भेद हैं। नामः– मिथ्योपदेश[1] रहोभ्याख्यान[2] कूटलेख क्रिया[3] न्यासापहार [4] और साकारमंत्र भेद [5]।

प्रश्न– 1196 मिथ्योपदेश अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर मोक्षमार्ग में अविश्वास उत्पन्न करने वाले उपदेश को मिथ्योपदेश कहते हैं। सत्याणुव्रती यदि विषय कषायों का, देवशास्त्रगुरु पर आक्षेप करने वाला, अविश्वास उत्पन्न करने वाला जैसे लौकिक मान्यता प्राप्त देवी देवताओं की या नानावेष धारी साधुओं को मोक्षमार्गस्थ साधु मानकर आदर सम्मान करना, उपसर्ग परीषह आने पर उनको दूर करने के लिए धर्म समझ कर आदर सम्मान करना गुणकीर्तन करना, प्रशंसा करना, नमस्कार करना, पूजा करना आदि को कृत कारित अनुमोदना पूर्वक मार्गदर्शन देने को मिथ्योपदेश अतिचार कहते हैं।

प्रश्न– 1197 रहोभ्याख्यान अतिचार दोष किसे कहते हैं?

उत्तर किन्हीं बालक बालिकाओं की, स्त्रीपुरुषों की गुप्त क्रियाओं को, वार्तालापों को देखकर सुनकर जो कहने योग्य नहीं है फिर भी आम जनता के सामने या दूसरों के सामने, पत्रिकाओं में प्रकाशित करने, कराने को रहोभ्याख्यान अतिचार कहते हैं।

प्रश्न– 1198 कूटलेख क्रिया अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर किसी या किन्हीं दूसरों को कष्ट में डालने के लिए, बदनाम या निन्दा करने कराने के लिए, धोके में डालने के लिए, घबराहट पैदा करने के लिए असत्लेख लिखने को या फोन करने को या अन्य प्रकार से सूचना करने को कूटलेख क्रिया अतिचार कहते हैं। इसीका दूसरा नाम झूठा लेख लिखना भी है कपट पूर्ण लेख लिखने को कूटलेख क्रिया अतिचार कहते हैं।

प्रश्न– 1199 न्यासापहार अतिचार दोष किसे कहते हैं?

उत्तर कोई व्यक्ति अपने पास में गिरवी गहने रख गया या सुरक्षा के विचार से चेतनाचेतन सामग्री रख कर भूल गया फिर बाद में याद आया कि हम उनके पास कुछ धरोहर रख आये हैं पर कितना रखा था, क्या रखा था यह याद न रहा, पर मांगने को आया और कम मात्रा में बोला तब उसकी इच्छानुसार देकर बाकी बचा लिया उसे न्यासापहार अतिचार दोष कहते हैं।

प्रश्न– 1200 साकारमंत्र भेद किसे कहते हैं?

उत्तर किसी के हाथ के, पेट के, आँख के, शिर के या मुँह से संकेत किये गये संकेत को देखकर सुनकर समझकर आम जनता के या दूसरों के सामने खुलासा करने को साकारमंत्र भेद अतिचार

दोष कहते हैं। इस दोष के कारण स्व और पर की तथा धर्म की बदनामी होती है।

प्रश्न– 1201 रहोभ्याख्यान अतिचार और साकारमंत्रभेद अतिचार में क्या अंतर है?

उत्तर रहोभ्याख्यान में गुप्त वार्तालाप की क्रिया को प्रकट करना है और साकारमंत्र भेद में गुप्त क्रिया से परिणत या गुप्त क्रिया से परिणत होने की चर्या को संकेत को प्रकट करना है खुलासा कर देना यही अंतर है। इन दोषों के कारण नासमझ भी जानकर दोषों को करने लग जाता है।

प्रश्न– 1202 कूटलेखक्रिया और रहोभ्याख्यान में क्या अन्तर है?

उत्तर कूटलेखक्रिया में पत्र पत्रिकाओं में छपवाकर दीवाल आदि में लिखकर दूसरों को कष्ट में डालने के लिए उसकी बदनामी करना है, हंसी उड़ाना है तथा रहोभ्याख्यान में मुँह से बोलकर खुलासा करना है यही अंतर है। कूटलेख क्रिया दोष फोन, मोबाईल पर ज्यादा होता है।

प्रश्न– 1203 इनको पढ़कर सुनकर क्या करना चाहिए जिससे व्रत निरतिचार रूप से पालन हो सके?

उत्तर इन अतिचारों को पढ़कर सुनकर समझकर त्याग करना, सावधान रहना जिससे व्रत का पालन निरतिचार हो, निर्दोष हो तथा सत्य महाव्रत धारण करने के लिए पात्रता प्राप्त हो।

प्रश्न– 1204 इन अतिचारों का त्याग पूर्णरूप से करना चाहिए या थोड़े रूप में त्याग करना चाहिए?

उत्तर गृहस्थों के व्रतों का और गृहस्थ सम्बन्धी अतिचारों का वर्णन है इसलिए अपने बलवीर्य को न छिपाकर पूर्णरूप से त्याग करना चाहिए। यदि थोड़े रूप में अतिचारों का त्याग किया तो व्रत निरतिचार नहीं कहलायेगा और ये अतिचार कालानंतर में व्रत को समूल नष्ट कर देंगे।

Note- 1132 से लेकर 1204 तक झूठ पाप, सत्याणुव्रत, सत्याणुव्रत की भावनाओं का तथा अतिचारों का वर्णन समाप्त हुआ।

प्रश्न– 1205–06 चोरी पाप किसे कहते हैं? चोरी पाप के कितने भेद हैं?

उत्तर प्रमाद पूर्वक जिस वस्तु का दूसरा मालिक है उस मालिक की स्वेच्छा के बिना दी हुई, गिरी हुई पड़ी हुई, रखी हुई, भूली हुई वस्तु को स्वयं लेना, दूसरों को उठाकर दे देना, इशारा कर उठवा देना, धर्मादा कर देना, करवा देना चोरी पाप है अथवा मालिक के सामने ही बलात् उसीसे लूट लेना, चोरी करना, डाका डालना, छापा मारना, छापा डलवाना चोरी पाप है। चोरी पाप के दो भेद हैं। लौकिक चोरी और लोकोत्तर चोरी अथवा द्रव्यचोरी और भावचोरी।

प्रश्न– 1207 लौकिक चोरी पाप किसे कहते हैं?

उत्तर किसी भी व्यक्ति की, प्राणियों की भोग उपभोग में आने वाली चेतन अचेतन और मिश्र सामग्री को छुड़ा लेना अपहरण कर लेने को चोरी पाप कहते हैं क्योंकि सामग्री के अपहरण कर लेने पर मालिक को व्यवस्था पर्यंत या जीवन पर्यंत मरने जैसा दुःख होता रहता है।

प्रश्न– 1208 मालिक की वस्तु का अपहण करना चोरी पाप है तो फिर मालिक का

अपहाण करना चोरी पाप नहीं कहलाया क्या?

उत्तर वस्तु के अपहरण कर लेने पर मालिक का, मालिक के परिवार का, सेवक का दासी दासों का कदाचित् मन नहीं भी दुःखे, संक्लेश को प्राप्त न हो यह तो संभव है किन्तु मालिक के अपहरण कर लेने पर नियम से परिवार का, परिवार के सदस्यों का, सगे सम्बन्धियों का, दासी दासों का जीवन अवश्य ही संकट में पड़ जाता है तथा मालिक का जीवन और परिणाम स्वयं संकट में पड़ जाने से मालिक के अपहरण कर लेने को महाचोरी पाप कहते हैं।

प्रश्न– 1209 लोकोत्तर चोरी पाप किसे कहते हैं?

उत्तर मोक्षमार्ग का, मोक्षमार्ग की साधनभूत सामग्री का, देव शास्त्र गुरु के उपकरणों का अपहरण कर लेना, विनाश कर देने को या मोक्षमार्ग में अपनी शक्ति के छिपाने को लोकोत्तर चोरी पाप कहते हैं। इस चोरी से अपने ही आत्मकल्याण का मार्ग दूषित हो जाता है या नष्ट हो जाता हैं।

प्रश्न– 1210 द्रव्यचोरी पाप किसे कहते हैं?

उत्तर जिस किसी व्यक्ति के, उसकी चेतन अचेतन मिश्र सामग्री जो भोग उपभोग में आनेवाली सामग्री के, सुख सामग्री के या धर्म में सहायक सामग्री के अपहरण करने को, कराने को, अनुमोदना करने को द्रव्य चोरी पाप कहते हैं। जो वर्तमान में ही आकुलता को पैदा करने वाला है।

प्रश्न– 1211 भाव चोरी पाप किसे कहते हैं?

उत्तर अपने से भिन्न किसी की भोग सामग्री उपभोग सामग्री या धर्म की उपकरणभूत सामग्री को अपने भोग विलास के लिए नियत बिगाड़ लेने को अपहरण करने की आकांक्षा को भाव चोरी पाप कहते हैं अथवा अपने ही परिणाम आत्म साधना से छिपाने को भाव चोरी पाप कहते हैं।

प्रश्न– 1212 साधुओंमें भी दिगम्बर साधुवर्ग गृहस्थों के मन को या अविवाहित बालक बालिकाओं के मन को या सामान्य प्रजा के मन को अपने सम्मुख आकर्षित कर लेते हैं और वे घर परिवार छोड़कर माँ बाप को बिलखते हुए या पत्नी को बेटाबेटियोंको या पति को दुःखित करते हुए बिलखते हुए छोड़कर संघ में आ जाते हैं तो ये साधुवर्ग अनेकों के मन को चुरानेवाले होने से अचौर्यमहाव्रती कैसे? चोरी पाप करने वाले क्यों नहीं कहलायेंगे अर्थात् ये चोर और चोरी पाप करने वाले अवश्य ही कहलायेंगे?

उत्तर हाँ यदि ये कामभोग के लिए, आजीविका चलाने के लिए, ख्याति पूजा लाभ के लिए, धन कमाने के लिए, संस्था चलाने के लिए, चौका लगवाने के लिए, सेवा कराने के लिए किसी का मन चुराने से अवश्य ही चोरी पाप के अधिकारी हैं। शारीरिक ऐशोआराम के लिए अपहरण करते तो अवश्य ही चोर कहलाते किन्तु आत्मसाधना के लिए, धर्मप्रभावना के लिए, उसके कल्याण के लिए किसी के मन को चुराना अपनी तरफ आकर्षित करना चोरी पाप नहीं है क्योंकि धर्म के निमित्त आकर्षित होने को वैराग्य कहते हैं, पाप नहीं कहते। अतः केवल किसी का दिल चुराना पाप नहीं है किन्तु काम भोग के निमित्त मन चुराना पाप ही है। मोक्षमार्ग के निमित्त चुराना पाप नहीं है।

प्रश्न— 1213—14 गिरि हुई पड़ी हुई रखी हुई भूली हुई वस्तु उठाकर मालिक को जानकारी दिये बिना धर्मादा कर दी, अच्छा हुआ धर्म कार्य में लगा दी, अन्यथा कोई अत्याचारी अनाचारी शराबी मांसाहारी व्यसनी परस्त्री सेवी उठा ले तो वह पाप में खर्च करता अतः हेतु धर्मादा का होने से पाप नहीं है किन्तु पुण्य ही है दोष ही नहीं है? ऐसा साचने में क्या हानि है?

उत्तर आपका प्रश्न ठीक है पर थोड़ा विचार करो उस धन का मालिक कौन है आप हैं क्या? या अन्य कोई दूसरा क्योंकि धर्मादा अपनी वस्तु का किया जाता है। सूत्रकार ने कहा है—'अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम्' अपने और पर के उपकार के लिए स्वयं की निजी संपत्ति को संयमी वैरागीजनों को देना दान है धर्मादा है' अतः दूसरों की वस्तु को धर्मादा में नहीं दिया जाता है। यदि किसी ने वस्तु को मंत्रितकर डाल दिया है, परीक्षा के लिए डाला है तो आपका जीवन संकट में पड़ सकता है, भूत पिशाच लग सकते हैं, दृष्टिदोष भी लग सकता है, बदनामी हो सकती है। जब मालिक का पुण्य समाप्त हो गया है तब तो वस्तु गिरी, पृथक् हुई। उठाने वाले का पाप है, रौद्रध्यान है, लोभ कषाय है, दुर्लेश्यें हैं तभी तो उसने पर की सम्पत्ति पर नियत खराब की। अतः इस प्रकार की वस्तु लेना देना, धर्मादा करना चोरी पाप है महान पाप है।

प्रश्न— 1215 छापामारों में और डाकुओं में क्या अन्तर है?

उत्तर दोनों में कोई अन्तर नहीं है क्योंकि दोनों ही मालिक के सामने मालिक की इच्छा के बिना बलात् रोते बिलखते मालिक को छोड़कर चल अचल सम्पत्ति छीनकर ले जाते हैं। केवल अन्तर यदि है तो इतना है कि डाकुओं के पास सरकार की मुद्रा नहीं है, वर्दी नहीं है, अपराधी है। कमजोर होने के कारण कदाचित् ये डाकूजन पुलिस की मार भी खाते हैं, पकड़कर प्रजाजन भी हाथ पैर तोड़ देते हैं किन्तु छापामारों के पास राजमुद्रा, वर्दी होने से प्रजा को, धनवानों को लूटकर सम्पत्ति अपहरण कर लेते हैं। अपराधी होने पर भी निरपराधी माने जाते हैं। दोनों में केवल अंतर है तो बाह्य में भेद हैं, अंतर है। कार्य में अंतर नहीं है किंतु दोनों समान हैं।

प्रश्न— 1216 व्यापारी से, अपराधियों से, धन वालों से, राजकर्मचारी छापा मारकर धन ले जाते हैं पुलिस रिश्वत लेते हैं सो यह चोरी है या नहीं?

उत्तर सरकार का, टैक्स बचाने वाला, छापामारने वाला, रिश्वत लेनेवाला, देने वाला महान पापी है। क्योंकि दोनों लोभ कषाय और माया कषाय से पीड़ित हैं। व्यापारी ने किसी के घर में घुसकर तो धन चुराया नहीं है, न किसीका गला पकड़ा है, न जेब काटा है किन्तु केवल उसने परिश्रम करके गर्मी सर्दी, भूख प्यास के कष्टों को सहन करके धन संचय किया है तथा सरकार के टेक्स का कानून बेढंग का होने से नहीं दिया किंतु न्यायनीति से कमाई का उत्तम चौथा हिस्सा, मध्यम छठवाँ हिस्सा जघन्य दसवाँ हिस्सा सरकार का है और इसको बचा लेना व्यापारी का चोरी पाप है और इससे ज्यादा टैक्स मांगना सरकार का महापाप है, अंधाकानून है तथा रिश्वत लेने देनेवाला भी महान चोर पापी है। गलत काम किया है तभी तो गलती छिपाने के लिए रिश्वत

दी है। यदि ईमानदार है तो रिश्वत क्यों देता? अतः धर्म की रक्षा के लिए रिश्वत नहीं दी है। रिश्वत लेने वाला इसलिए पापी है कि वह अपराधियों में अपराध को बढ़ावा देता है। यदि हम पूर्ण रूप से अपराध पर प्रतिबंध लगा देते हैं तो हमको पैसा कहाँ से मिलेगा? क्योंकि विसंगति के कारण ही अलग से कमाई होती हैं। पुनः पाप करेगा अतः देने वाला पापी है।

प्रश्न– 1217 दहेज लेना चोरी पाप है या नहीं?

उत्तर दहेज लेना और दहेज देना पाप नहीं है क्योंकि जिस प्रकार पुत्र को पिता की संपत्ति पर हिस्सा का अधिकार होता है उसी प्रकार पुत्री का भी पिता की सम्पत्ति पर पूर्ण अधिकार होता है तथा मां बाप भाई बन्धुओं का भी कर्तव्य हो जाता है कि उसका हिस्सा विना मांगे प्रसंग पर अपने आप दे देवें। अतः दहेज लेना देना पाप नहीं है किन्तु लड़की वाले की सामर्थ्य को न देखकर अधिक मात्रा में मांगकर लेना चोरी है क्योंकि लड़की वाला अपने मन को मारकर यहाँ तक की कर्ज लेकर दहेज देकर बेटी देता है अतः मन दुःखाकर दहेज लेने को भी चोरी पाप कहते हैं।

प्रश्न– 1218 अन्यकिसी की वस्तु गिरी, रखी पड़ी या भूली हुई को लेना या बताकर उठाकर दे देना या धर्मादा कर देने को चोरी क्यों कहा?

उत्तर यदि वस्तु का मालिक पुनः देखने को आया और वहाँ वह वस्तु प्राप्त नहीं हुई तो मन में दुःख होता है कि हाय मेरी वस्तु कहाँ गई, कौन ले गया? मन में मृत्यु जैसे दुःख का अनुभव करता है अतः वस्तु को उठाने वाला भी प्रमाद युक्त होने से पापी है अथवा प्रथम वस्तु के गिरने पर किसी ने उठा ली, पुनः देखने आया वस्तु नहीं मिली तो चारों तरफ घूम फिरकर देखा फिर भी नहीं मिली तो फिर चोर की पहचान करने की मन में रखकर पुनः वस्तु डालकर छिपकर बैठ गया, देखने लगा, कौन उठाकर ले गया। उस समय आपने वह वस्तु उठाली तब आप ही चोर बन जायेंगे अतः प्रमाद को छोड़कर लोभ में न आकर वस्तु ग्रहण न की जाय तो अच्छा हैं अथवा किसी ने मंत्रित कर, नजर उतारकर गली में डाल दी और वह वस्तु आपने उठा ली तब वह भूतपिशाच आपके ऊपर सवार हो जाय तो भूतपिशाच की बाधा उत्पन्न हो जाय तो आपका तन मन धन और धर्म नष्ट हो जायेगा। इस कारण प्रमाद को छोड़कर आत्मरक्षा करने के लिए वह वस्तु कितनी भी कीमत की हो न उठाना चाहिए, न देना चाहिए।

प्रश्न– 1219 अचौर्याणुव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर किसी दूसरे की वस्तु जो गिरी आदि को न लेना न दूसरे को देना इस प्रकार संकल्पपूर्वक नियम ग्रहण करने को अचौर्याणुव्रत कहते हैं।

प्रश्न– 1220–21 अचौर्याणुव्रत और अचौर्यमहाव्रत में अन्तर? स्वामी कौन हैं?

उत्तर अदत्त + आदान = किसीकी बिना दी हुई वस्तु ग्रहण करना। अदत्ता + दान = मालिक की इच्छा के बिना उसकी वस्तु को दूसरों को दे देना, दान कर देना। किसी अन्य मालिक के द्वारा अदत्तादान वस्तु को ग्रहण न करना अथवा अदत्तादान वस्तु का किंचित् त्याग करना अचौर्याणुव्रत कहते हैं और सम्पूर्ण रूप से त्याग करना अचौर्य महाव्रत है यही अंतर है। अणुव्रत कर्मभूमिज गृहस्थों और गर्भज, संमूर्च्छन जन्म वाले, पंचेंद्रियसैनी, पर्याप्तक, स्त्रीवेदी, पुंवेदी और

नपुंसकवेदी तिर्यंचप्राणी भी स्वामी हैं और महाव्रतों के स्वामी मुनिजन होते हैं।

प्रश्न– 1222–23 इस व्रत को निर्दोष पालन करने के लिए क्या उपाय करना चाहिए? वे कितने प्रकार की हैं?

उत्तर इस अचौर्याणुव्रत को निर्दोष पालन करने के लिए कुछ विशेष विचार करना चाहिए और विचारों को आचार्यों ने भावना कहा है। उन विचारों के भावनाओं के पाँच भेद बतलाये हैं।

प्रश्न– 1224–25 उन भावनाओं के नाम कौन कौन हैं? इन भावनाओं को जानकर क्या करना चाहिए?

उत्तर नामः–शून्यागारावास, विमोचितावास, परोपरोधाकरण, भैक्ष्यशुद्धि, सधर्माविसंवाद ये पाँच भावनायें हैं। इन भावनाओं का अचौर्याणुव्रत को निर्दोष पालन करने के लिए सतत चिन्तन करना चाहिए।

प्रश्न– 1226 शून्यागार किसे कहते हैं?

उत्तर प्रजा ने अथवा राजा ने अपने निवास के लिए या यात्री निवास के लिए मकान या धर्मशाला बनवाई या किसानों ने या राहगीरोंने अपने निवास के लिए मकान बनवाया किन्तु किसी कारणवश स्वेच्छा से छोड़कर चले गये अथवा गुफायें, वृक्ष की कोटरें, कन्दरायें, मंदिर, धर्मशाला आदि को शून्यागार कहते हैं अथवा जहाँ पर असंयम के उत्पादक ऐसे असंयमी, कामी भोगी, हिंसक, चोर आदि प्राणी निवास नहीं करते ऐसे स्थान को शून्यागार कहते हैं।

प्रश्न– 1227 शून्यागार स्थान को प्राप्त कर क्या करना चाहिए?

उत्तर शूने मकान, मंदिर, धर्मशाला, गुफा, स्मशान, कोटर, कंदरा आदि को प्राप्त कर ध्यानाध्ययन, चिन्तन, तपादि तथा संवर निर्जरा और मोक्ष की सिद्धि के लिए निवास करना चाहिए। इसे ही शून्यागारावास भावना कहते हैं।

प्रश्न– 1228 शून्यागारावास भावना प्राप्त कर क्या करना चाहिए और प्राप्त कर निवास क्यों करना चाहिए?

उत्तर उक्त स्थान को भावनानुसार प्राप्त कर कार्यरूप में परिणत होना चाहिए अर्थात् स्थान प्राप्तकर ध्यानाध्ययन की सिद्धि के लिए निवास करना चाहिए। यह निवास कर्मों के नवीन संवर के लिए, पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा के लिए, सम्पूर्ण कर्मों को क्षय कर मोक्ष प्राप्ति के लिए, यथावत् आत्मस्वरूप की प्राप्ति के लिए निवास करना चाहिए जो कि उत्तम है ।

प्रश्न– 1229 एकान्तस्थान को पाकर कोई पाप भी कर सकता है अतः जन समूह युक्त स्थान ही उत्तम है क्योंकि यहाँ दूसरों के भय से पाप नहीं होगा?

उत्तर प्रश्न सत्य है कि एकान्त को पाकर भोग सामग्री के मिलने पर भोग ही लेगा क्योंकि उस समय कोई रोकने वाला, देखने वाला, सुनने वाला नहीं, कोई शर्म नहीं स्वच्छन्द तथा समर्थ है इस कारण दुष्कर्म करने में निर्भीक है। जब पाप कर्म करने के लिए एकन्तस्थान की आवश्यकता है तो कर्मों को काटने के लिए भी एकान्त स्थान की आवश्यकता है। यह साधन कर्मों को बांधने में और कर्मों को काटने में स्थान सहायक है और उत्थान पतन उस व्यक्ति के भाग्य और पुरुषार्थ

के आधीन है। इस कारण जन समूह के बीच में भाव पाप पूर्णरूप से कर सकता है तथा धर्म साधन आत्मसाधना अच्छी तरह से नहीं कर सकता है क्योंकि जन समूह के बीच में चंचलता के अनेक साधन है। अतः वैरागियों के लिए एकान्तस्थान आत्मसाधना मोक्षसाधना के लिए श्रेष्ठ है तो पापियों को पाप के लिए एकान्तस्थान भी अच्छा है।

प्रश्न— 1230 शून्यागार में निवास करने से क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर शूने स्थान में निवास करने से मालिक बनने की, मालिक बनकर संरक्षण संवर्द्धन करने की, आधिपत्य करने की इच्छा उत्पन्न नहीं होती है। कोई छुड़ा लेगा, कोई अधिकारी बन जायेगा, चोरों का, सरकार का, प्रजा का भय नहीं होता, मरम्मत कराने की भी इच्छा नहीं होती। परस्पर में ईर्ष्या उत्पन्न नहीं होती है, आरम्भपरिग्रह की भावना भी उत्पन्न नहीं होती तथा ध्यानाध्ययन में स्थिरता प्राप्त होती है। धर्मध्यान तथा धर्मध्यान की भावना उत्पन्न होती है और स्थिरता भी प्राप्त होती है। जब मन स्वस्थ है तो कर्मों की निर्जरा विशेष होती है, नवीन पाप कर्मों का संवर होता है। सातिशय पुण्य की प्राप्ति और वृद्धि होती है। रत्नत्रय धर्म में विशेष आनन्द आता है। जिस प्रकार मेहमानी में, रिश्तेदारी में जाने पर मन में नाना प्रकार की आकुलतायें नहीं होती हैं धन कमाने की, लाने की, देने की, सम्हालने की, घाटा की, मुनाफा की चिन्ता नहीं होती है इसी तरह शून्यागार में निवास करने से मन निराकुलमय होता है। संयम सहित रत्नत्रय की प्राप्ति के लिए, सिद्धि के लिए पात्रता प्राप्त होती है अतः शून्यागार सर्वोत्तम है श्रेष्ठ है।

प्रश्न— 1231 शूने मकान में क्या गृहस्थ ठहर सकता है?

उत्तर आ. श्री उमास्वामी महाराजजी ने त.सू. में ये भावनायें गृहस्थ श्रावक और साधू दोनों के लिए बताई हैं। गृहस्थ श्रावक प्रतिदिन या अष्टमी चतुर्दशी के उपवास के दिन अथवा कभी भी ध्यानाध्ययन के लिए, जपतप की सिद्धि के लिए जैसे वारिषेण कुमार, सेठ सुदर्शन श्मसान घाट में जाकर नग्न होकर ध्यान करते थे वैसे ही सामान्य श्रावकगण व्रती श्रावकगण भी आत्मसिद्धि के लिए, रत्नत्रय धर्म की उत्पत्ति, वृद्धि, संरक्षण के लिए, धर्मध्यान शुक्लध्यान की प्राप्ति के अभ्यास के लिए शून्यागार में ठहर सकते हैं। हर तरह से धर्म साधना कर सकते हैं।

प्रश्न— 1232—33 विमोचितावास किसे कहते हैं? उसमें क्या करना चाहिए?

उत्तर जिस आश्रय स्थान को राजा आदि के भय से, चोर गुंडों के भय से, उग्रवादियों के भय से या सही ढंग से आजीविका न चलने के कारण या अन्य भी कारणों से छोड़ दिया है, छुड़वा दिया है या छोड़कर चले गये हैं ऐसे स्थान को विमोचितावास कहते हैं। ऐसे शून्यागार स्वरूप विमोचितावास में निवास करना चाहिए। जो गुण शून्यागार में निवास करने से प्राप्त होते हैं वे ही गुण विमोचितावास में निवास करने से प्राप्त होते हैं। अतः उक्त गुणों की सिद्धी के लिए विमोचितावास में भी निवास करना चाहिए।

प्रश्न— 1234 शून्यागारावास और विमोचितावास में क्या अन्तर है?

उत्तर शून्यागारावास को मालिक निष्कारण स्वेच्छा से छोड़कर चला गया है या स्वभाव से शूना है वर्तमानकाल में आधिपत्य नहीं है किन्तु भविष्य में आकर स्वीकार कर सकता है किन्तु

विमोचितावास तो पराधीन होकर पर के बल प्रयोग से छोड़कर जाना पड़ा है। वर्तमानकाल में मन पूर्वक अधिकार बना हुआ है, आकांक्षा और आसक्ति पूर्ण है, मेरा आश्रयस्थान है, कब मिले उपाय खोजता है, प्रसंग मिलने पर बोल भी देता है तथा प्रसंग पाकर भविष्य में आकर पुनः निवास कर सकता है। विमोचितावास में आधिपत्य बना हुआ है यही इन दोनों में अंतर है।

प्रश्न– 1235–36 इस विमेचितावास में गृहस्थ हमेशा के लिए रह सकता है? या क्वचित् कदाचित् रह सकता है?

उत्तर हाँ ध्यानाध्ययन, पठन पाठन, आत्मसाधना के अभ्यास के लिए गृहस्थ श्रावक निवास कर सकता है क्योंकि वहाँ हमेशा सदा हर वक्त तो रहना नहीं है, थोड़े समय के लिए निवास करना है, शेष समय तो अपने निजी मकान में या किराये भाड़े के मकान में समय व्यतीत करना है। यह कथन अणुव्रतधारी गृहस्थों के लिए किया जा रहा है क्योंकि गृहस्थों को मुनि बनना है। यदि गृहस्थावस्था में अभ्यास कर लिया है तो मुनि बनने के बाद में भय नहीं लगेगा, घबराहट नहीं होगी। यदि अभ्यास नहीं किया तो मुनि बनने पर कष्टों के सामने आने पर घबराहट होगी, सुखिया स्वभाव की याद आयेगी, मन दुःखी होगा। श्री आदिनाथजी के साथ चार हजार राजाओं ने दीक्षा ली थी तो उन लोगों का तप का, स्थान का, भूख प्यास को सहन करने का, दंश मशक आदि परीषहों को सहन करने का, शैय्यासन का अभ्यास न होने से वापिस गृहस्थ जीवन स्वीकार करना पड़ा, पद भ्रष्ट होना पड़ा अतः गृहस्थ श्रावक श्राविकाओं को मुनि आर्यिका आदि बनने के लिए अभ्यास करना जरूरी है।

प्रश्न– 1237 परोपरोधाकरण भावना किसे कहते हैं?

उत्तर जिस स्थान पर अपन ठहरे हुए हैं वहाँ पर उस समय ठहरने के लिए आये हुए दूसरे राहगीरों को ठहरने से नहीं रोकना, न मना करना उसे परोपरोधाकरण भावना कहते हैं।

प्रश्न– 1238 शून्यागार में या विमोचितावास में कोई श्रावक हमेशा को ठहर जाय तो क्या दोष है?

उत्तर हमेशा के लिए ठहर जाने से चोरी पाप हो जाता है अपनत्त्व आ जाने से परिग्रहपाप हो जाता है, प्रमाद होने से हिंसापाप, पूंछने पर यह हमारा मकान है उसी प्रकार पत्र वाहक के पास मेरा मकान है या हर किसी को यह मेरा मकान है ऐसा पता देगा, पता देता है अतः झूठ पाप है, जब चारों पाप आ गये तो एक कुशीलपाप कैसे बच जायेगा वो भी भली प्रकार से बिना बुलाये आ गया अतः दूसरे मालिक की वस्तु पर अपना अधिकार जमाना अपना मानना चोरी पाप है। जिससे समस्त पाप तथा समस्त व्यसन और दुर्ध्यान आ जाते हैं।

प्रश्न– 1239 जहाँ पर अपन ठहरे हैं वहाँ पर दूसरे यात्री को न ठहराने में क्या दोष है?

उत्तर जिस प्रकार अपन सुरक्षा की दृष्टि से यहाँ पर आये हैं उसी प्रकार वह भी आया है। जैसे अपन राहगीर है वैसे वह भी राहगीर है। अपने को सदा रहना नहीं है उसको भी सदा रहना नहीं है फिर क्यों रोकना? यहाँ पर न ठहरने देने से उसका मन दुःखी होगा आकुलित होगा। अपने

माध्यम से उसकी शान्ति भंग हुई, उसकी शान्ति का, निर्मलता का अपहरण किया और जब अपन ने अपने मलिन परिणामों से दूसरों की शांति भंग की तो साथ में अपनी भी शांति भंग हुई अतः चोरीपाप हुआ। बहुत सारे लोग धनसम्पत्ति, मकान दुकान के नष्ट होने पर दुःखी नहीं भी होते हैं किन्तु शान्ति के भंग होने पर अवश्य ही दुःखी होते हैं। जब तुम किसी को सुखी नहीं बना सकते हो, सुखी नहीं कर सकते हो तो दुःखी करने का क्या अधिकार है?

प्रश्न– 1240–41 बिना पहचान के व्यक्ति को अपने घर पर कैसे ठहरा लेवे? घर में बहू बेटी मौजूद हैं वह व्यक्ति कैसा है कैसा नहीं?

उत्तर ये भावनायें घर में ठहराने की नहीं चल रही हैं क्योंकि घर में रह रहे हैं, ठहरे नहीं है। अनजान व्यक्ति को घर में रोक लिया वह कैसे आचारविचार वाला है क्या मालुम? गलत आचारविचार वाला हो, चोर हो, व्यभिचारी हो, अपने घर को बदनाम कर जाये? अनजान व्यक्ति को एकाएक अपने घर के अन्दर नहीं ठहराना चाहिये। कहावत है–'कौरा दे देना पर कोना नहीं देना।' जब तक अपने को अनजान व्यक्ति की यथार्थ जाति कुल, धर्म, आचार विचार का ज्ञान न हो जाय तब तक अपने घर के अंदर भोजन करा दो पर घर के अन्दर जगह मत दो। हो सकता है कि कपट से रूप बदलकर आया हो, धोकेबाज हो।

प्रश्न– 1242 गाड़ी ट्रेन आदि वाहनों में सफर करते समय अंजान व्यक्ति को अपनी सीट पर बिठा सकते हैं या नहीं?

उत्तर गाड़ी ट्रेन तुम्हारी नहीं है, न तुम उसके मालिक हो, न पूरी गाड़ी का, सीट का पैसा दिया है, अपने किराये के अनुसार स्टेशन आने पर दोनों को उतर कर चला जाना है। क्यों मना करना पड़े? यदि आपको पक्का मालुम है कि यह ठग है तो सावधानी रखो। 'माल न राखे आपनो, चोर को गाली देय।' अपने सामान की रक्षा नहीं की और चोर को गाली देने लगे तो यह मूरर्वता कहलायेगी। अपनी अंगुली काट कर फिर डॉक्टर के पास जाकर इलाज कराने के समान है। प्रमादी होना और दूसरों को दोष देना यह बड़ी भारी मूर्खता है।

प्रश्न– 1243 सफर करते समय धर्मशाला में अपने कमरे के अन्दर अनजान व्यक्ति को ठहरा सकते हैं या नहीं?

उत्तर नहीं ठहरा सकते हैं क्योंकि कमरा अपने और परिवार के लिए किराये पर लिया गया है अतः नहीं ठहराना चाहिए। हाँ यदि ठहरने का स्थान सार्वजनिक है, अनेक यात्री ठहरे हुए हैं तो मना क्यों करना? वह भी स्वतन्त्र स्वच्छ सुरक्षित जगह देखकर ठहरे क्योंकि वह स्थान खुला होने से सबके लिए है वहाँ अनेक यात्री ठहरे हुए हैं। परस्पर में रक्षा करने के लिए तत्पर रहते हैं।

प्रश्न– 1244 इस प्रकार की भावना रूप से गृहस्थ क्या परिणमन कर सकता है?

उत्तर यह कथन गृहस्थ के लिए ही किया जा रहा है परन्तु इस काल में हीन संहनन और हीन परिणाम होने से धर्म के लिए, स्वहित के लिए परिणाम बनाते नहीं और दोष काल को देते हैं। जब वर्तमान काल में कर्मसिद्धान्तानुसार अनन्तानुबन्धी क्रोधादि चार कषाय, अप्रत्याख्यानावरण

क्रोधादि चार कषाय, प्रत्याख्यानावरण क्रोधादि चार कषायों के उदय का अभाव होने से तथा संज्वलन क्रोधादि चार कषायों का उदय के सद्भाव में संयम भाव उत्पन्न होता है तथा गृहस्थ के जो अविरतसम्यग्दृष्टि हैं उसके अनन्तानुबन्धी कषाय का अभाव होने से अथवा देशविरति सम्यग्दृष्टि के अनन्तानुबन्धी क्रोधादि चार, अप्रत्याख्यानावरण क्रोधादि चार कषायों का अभाव होने से देशसंयम भाव होता है। यदि अपन बहाना बनाना छोड़कर आत्मबल से काम लेवें तो आज भी इन भावनाओं से परिणत हो सकते हैं। पर शर्त है कि आत्मकल्याण की भावना होनी चाहिए। अन्यथा दूसरों को दोष देना अपने आपको दोष देना है, आत्मवंचना करना है।

प्रश्न– 1245 भैक्ष्यशुद्धि भावना किसे कहते हैं?

उत्तर चरणानुयोग शास्त्रों के अनुसार आहार की शुद्धि को भैक्ष्यशुद्धि कहते हैं। प्रत्येक भोजन सामग्री की मर्यादा बताई है उस मर्यादा के अनुसार ग्रहण करने की भावना को भैक्ष्यशुद्धि भावना कहते हैं। विधि के अनुसार पानी छानकर पीना, सूर्य के प्रकाश में आहार लेना, रात्रि में, अंधेरे में आहार नहीं लेना, उपयोग स्थिरकर आहार लेना, शोधकर लेना, कौओं के समान यहाँ वहाँ देखते हुए या ऊपर नीचे देखते हुए न लेना किन्तु गाय के समान अपने करपात्र को देखकर, नीचे रखे उच्छिष्ट गिरने वाले पात्र को, आहार देने वालों की शुद्धि अशुद्धि को देखकर, आहार सामग्री की शुद्धि को देखकर ग्रहण करने को, आहार लेने को भैक्ष्यशुद्धि कहते हैं। इसी तरह द्रव्य क्षेत्र काल भाव की शुद्धि के अनुसार प्रमाद को छोड़कर भोजन ग्रहण करे सो इसे ही श्रावक की अपेक्षा भैक्ष्य शुद्धि और इसी प्रकार की इच्छा को भैक्ष्यशुद्धि भावना कहते हैं।

प्रश्न– 1246 आजकल कम्पनी से या होटलों से भोजन सामग्री पेकिंग होकर आती है उसमें किसी का हाथ न लगने से तो शुद्ध है क्या?

उत्तर कम्पनी या होटलों से तैयार होकर मशीनों से ही पेकिंग होती है वह यद्यपि लौकिक दृष्टि से शुद्ध है तो भी धर्मदृष्टि से पानी की तथा बनाने की क्रिया सही न होने से, काल मर्यादा सही न होने से, संशोधन की क्रिया सही न होने से, धर्मानुकूल मशीनों की, मजदूरों की, कम्पनी मालिक की दिन चर्या सही न होने से, आहार विहार निहार की शुद्धि न होने से, विवेक हीन होने से, उनकी योजना से, स्पर्श से भोजन शुद्ध कैसे हो सकता है? जैसे जहर के पात्र में रखा भोजन मारक बन जाता है उसी तरह अशुद्ध आचार विचार वाले, मांसाहारी, शराबी, व्यभिचारी, धूम्रपान करने वाले व्यक्तियों के सम्पर्क से, स्पर्श से भोजन भी अशुद्ध अभक्ष्य हो जाता है।

प्रश्न– 1247 कम्पनी का न सही किंतु अपने ही घर में नौकरों से तैयार कराया गया भोजन तो शुद्ध है उसे ग्रहण करने में खाने में क्या दोष है?

उत्तर आपका प्रश्न सही है कि घर में सदाचार, सद्विचार, विवेक, भक्तिभाव हीन नौकर से या दासी के हाथ से तैयार कराया गया भोजन यद्यपि अपने घर की ही सामग्री है सब कुछ घर का है परन्तु नौकर ने या दासी ने जो भोजन सामग्री तैयार की है वह भक्तिभाव से तैयार नहीं की है किंतु धर्म और धर्म की भावना से रहित होकर केवल पगार लेने की भावना से, रुचि के अनुसार तैयार की है। अतः उद्देश्य गलत होने से घर का भी भोजन दूषित हो जाता है किंतु वही भोजन

घर में माँ बहिन बेटी के हाथ से तैयार किया गया भोजन भाव सही होने से शुद्ध है।

प्रश्न– 1248 सधर्मअविसंवाद भावना किसे कहते हैं?

उत्तर जिनका आचरण अपने समान है षडावश्यकों का, मूलगुणों का, अणुव्रतों का पालन कर रहे हैं वे अपने साधर्मी भाई बन्धु हैं। जो देव शास्त्र गुरु की आज्ञा का पालन करते हैं, सदाचार कुलाचार की परम्परा को उत्साह पूर्वक, विवेक सहित निभाते हैं उन्हें साधर्मी श्रावक श्राविका कहते हैं। इनके साथ वैर विरोध वादविवाद न करने को सधर्म अविसंवाद भावना कहते हैं।

प्रश्न– 1249–50 वैर और विरोध में क्या अन्तर है? वैर विरोध करने से क्या हानि प्राप्त होती हैं?

उत्तर वैर अन्दर की कषाय है, अन्दर का भाव है, दृष्टि के अगोचर है और विरोध में वचन की प्रधानता है, काय की प्रधानता है। वैर आत्मगत है और विरोध परगत भी है। पर के गोचर भी है। वैर से अपनी ही हानि होती है किन्तु विरोध से अपना और पराया दोनों का पतन होता है, हानि होती है, बदनामी होती है, नीचगोत्र का आश्रव बन्ध होता है। यही इन दोनों में अंतर है। साधर्मी भाईयों का और वैर विरोध करने वालों का धर्म तथा धर्म की भावना का अपहरण होने से चोरी पाप है जिससे अचौर्याणुव्रत भी मारा जाता है तथा मुनि पद की पात्रता भी नहीं आती।

प्रश्न– 1251–52 सधर्म किसे कहते हैं? साधर्मी किसे कहते हैं?

उत्तर धर्म सहित को सधर्म कहते हैं। समान आचरण, आचार विचार वालों को साधर्मी कहते हैं अथवा जिनकी दीक्षा शिक्षा, तप, ध्यान, संयमाचरण समान हो उन्हें सधर्म और साधर्मी कहते हैं।

प्रश्न– 1253–54 धर्म सहित को सधर्म कहते हैं इस परिभाषा के अनुसार क्या लाभ है? क्या हानि है?

उत्तर इस परिभाषा के स्वीकार कर लेने पर जितने भी जैनधर्म के पालन करने वाले हैं वे चाहे अविरतसम्यग्दृष्टि हो, चाहे प्रतिमाधारी देशव्रती श्रावक हो, आचार्य, उपाध्याय, मुनि, आर्यिका, क्षुल्लक, क्षुल्लिका, ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी आदि हों तो वे सब रत्नत्रय धर्म सहित होने से सधर्म कहलाते हैं क्योंकि इन सभी में रत्नत्रय धर्म समान रूप से पाया जाता है ये सभी मोक्षमार्गी हैं। हाँ इतना अन्तर अवश्य है कि चारित्रगुण की मात्रा में, विशुद्ध अंशों में अन्तर होने से, जघन्य, मध्यम और उत्तम विशेषण लग जाने से अंतर अवश्य हो जाता है फिर भी सामान्यतया मोक्षमार्गी होने से, छोटे बड़े का, गुरु शिष्य का भेदभाव न होने से अभेद है। वैर विरोध न होने से गुण हैं, दोष नहीं। अतः सभी अहमिन्द्रों के समान होने से, पूज्यापूज्य का विवेक न होने से, अहंकार की, अविनय दोष की भी संभावना है जो आजकल प्रत्यक्ष देखा जा रहा है। त्यागियों के प्रति बहुमान समाप्त हो गया है यह हानि है।

प्रश्न– 1255–56 समान धर्म वाले होने से सधर्म कहलाते हैं ऐसा अर्थ करने पर क्या गुण है? क्या दोष है?

उत्तर जिनका परस्पर में आचरण व्रतनियम गुणस्थान समान है वे सधर्म कहलाते हैं जैसे अविरत

सम्यग्दृष्टि अविरतसम्यग्दृष्टि के समान, देशव्रती देशव्रती के समान, मुनि मुनि के समान, उपाध्याय उपाध्याय के समान, आचार्य आचार्य के समान, प्रतिमाधारी प्रतिमाधारियों के साथ जैसे दूसरी प्रतिमा वालों का दूसरी प्रतिमावालों के साथ समानता है, आचार्यों का आचार्यों के साथ, मुनियों का मुनियों के साथ मूलगुणों की अपेक्षा आर्यिका का आर्यिकाओं के साथ या मुनियों के साथ समानता है। इसी तरह कदाचित् संघ के नायक नायिका की अपेक्षा आचार्य और गणिनी आर्यिका में जिम्मेवारी समान होने से समानता है क्योंकि जैसे आचार्य संघ की देख भाल आहारादि की व्यवस्था पढ़ने लिखने की व्यवस्था करते है। पंचाचार का पालन करते कराते हैं इसी तरह गणिनी आर्यिका आर्यिका संघ की देखभाल सुरक्षा व्यवस्था करती है। इस कारण बाहर के कार्य की जिम्मेवारी की अपेक्षा समानता होने पर भी गुणस्थान, साधना, तप, ज्ञान, संहनन, ऋद्धि सिद्धि की, ऊर्ध्वलोक में गमन की अपेक्षा समानता नहीं हैं। अतः समान धर्मवालों को सधर्म साधर्मी भाई कहते हैं और समान धर्म को सधर्म कहते हैं। इस परिभाषा के अनुसार पूज्य अपूज्य का विवेक रहता है। अहंकार की भी संभावना नहीं है। इसमें लाभ ही लाभ है। पाप कर्मों की हानि होती है।

प्रश्न– 1257–58 यहाँ सधर्म के दो अर्थ किये हैं तो किस अर्थ से प्रयोजन है प्रथम से या दूसरे से या दोनों अर्थों से?

उत्तर यहाँ पर समान आचरण वालों के साथ विसंवाद नहीं करना चाहिए, हिलमिलकर दूध पानी की तरह एकमेक होकर रहना चाहिए इसीका नाम वात्सल्य अंग भी है क्योंकि यहाँ अणुव्रतों की रक्षा करने की भावनाओं का कथन चल रहा है।

प्रश्न– 1259 समान धर्म वालों के साथ विसंवाद नहीं करना तो अपने से छोटों या बड़ों के साथ क्या विसंवाद कर सकते हैं?

उत्तर नहीं, किसी के साथ भी विसंवाद नहीं करना चाहिए क्योंकि जिस प्रकार मध्य दीपक सर्वत्र आगे पीछे पर्याप्त प्रकाश करता है उसी तरह जब समान धर्मवालों के साथ विसंवाद नहीं करना चाहिए ऐसा कहा है तो छोटों के साथ या बड़ों के साथ भी विसंवाद नहीं करना चाहिए क्योंकि समान बल वालों में ही युद्ध होता है। जो छोटा है, कमजोर है वह समर्थ के द्वारा रक्षा का पात्र है तथा बड़ों से कौन भिड़ेगा? क्या चींटी ने हाथी से कभी युद्ध किया है? नहीं अतः समस्त धर्मात्माओं के साथ विसंवाद नहीं करना चाहिए। कारण छोटों से विसंवाद करने पर वह कमजोर होने से धर्म से, संयम से भय के कारण दूर हट जायेगा और समर्थ से भिड़े तो वह मारपीट कर ठीक कर देगा या सर्वस्व अपहरण कर जान से मार सकता है अतः बड़ों से भी कोई युद्ध नहीं करता। इस कारण किसी के साथ किंचित् मात्र भी विवाद, झगड़ा नहीं करना चाहिए। झगड़े के कारण दोनों के मन में कषाय होने से दोनों ही धर्म से, मोक्षमार्ग से हट जाते हैं।

प्रश्न– 1260–61 अचौर्याणुव्रत के अतिचार दोष कितने हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर अचौर्याणुव्रत के पाँच अतिचार होते हैं। नामः– चोरप्रयोग, चौरार्थादान, विरुद्धराज्यातिक्रम, हीनाधिक मानोन्मान, प्रतिरूपक व्यवहार प्रतिज्ञा लेने के बाद मन में लोभ होने से ये परिणाम बन

जाते हैं जो नियम को दूषित करते हैं।

प्रश्न– 1262 चोरप्रयोग नाम का प्रथम अतिचार दोष किसे कहते हैं?

उत्तर स्वयं ने चोरी का त्याग किया है। अब दूसरों के धन के प्रति, उनके परिवार के प्रति मन आकर्षित हुआ कि वह उसकी चेतन अचेतन मिश्र सामग्री मेरे को चाहिए ऐसी भावना उत्पन्न हुई। सो अब किसी चोर से मिलकर उस वस्तु की चोरी कराने के लिए कहना कि तुम ताला तोड़कर या दीवाल लांघकर या खोदकर या सुरंग बनाकर या पीछे से बड़े बड़े कील गाढ़ते हुए, रस्सी बांधते हुए ऊपर चढ़ जाना और घुसकर माल ले आना या अन्य भी उपायों से अपहरण कर चुराकर ले आना आदि उपाय बताने को चोर प्रयोग कहते हैं।

प्रश्न– 1263 चोरी के उपाय बताने को अचौर्याणुव्रत का अतिचार दोष क्यों कहा?

उत्तर किसी के भी धन के अपहरण होने पर उसे जो दुःख होता है तो वही दुःख उसके परिवार वालों को भी होता है तथा चोर को चोरी करने पर जो आनन्द होता है, प्रसन्नता होती है वही प्रसन्नता चोरी कराने वाले को, चोरी का उपाय बताने वाले को होती है क्योंकि प्रयोग स्वयं ने बताया है। देखा जाता है कि जो स्वयं करने पर, कार्य में सफलता सिद्ध होने पर, सफलता प्राप्त होने पर जो आनन्द आता है वही आनन्द कार्य कराने में, सफलता प्राप्त होने पर आता है। मालिक तो दुःखी होता ही है। किसी को दुःखी करने कराने में समानता है। अतः प्रमादवश भूलकर उपाय एकादबार करना कराना बताना अतिचार दोष है और पुनः पुनः उपाय बताना अनाचार दोष है और किंचित् चोरी के उपाय के सम्बन्ध में सोचना विचारना अतिक्रम दोष है। इसी भावना में कुछ वृद्धि करना व्यतिक्रम दोष है।

प्रश्न– 1264 चौरार्थादान अतिचार दोष किसे कहते हैं?

उत्तर जो चेतन अचेतन और मिश्र सामग्री चोरी कर लाई गई है सो वह सामग्री जानकर कि यह चोरी की है फिर भी रिश्वत में, प्रेम व्यवहार में लेली, कम कीमत में या अन्य कोई दूसरा ले जाये इसलिए अत्यधिक कीमत देकर खरीद ली सो यह चौरार्थादान नाम का अतिचार दोष है।

प्रश्न– 1265 जब कीमत से वस्तु खरीद कर लाये हैं तो उसे चौरार्थादान नामक अतिचार दोष क्यों कहा?

उत्तर भले ही अपन कीमत देकर लाये हैं, माल तो चारी का है यदि चोरी का माल सप्लाई न हो, बिक्री न हो तो वह चोरी न करेगा, न दुकानदार खरीदेगा। माल बिक्री होगा तो दुकानदार खरीदेगा चोर चोरी करेगा, पाप बढ़ता जायेगा, चोरी के विरोध करने पर मारपीट हिंसा होगी, जानमारी भी होगी। चोरी करने वाला, उपाय बताने वाला, माल खरीदने वाला, उपयोग में लाने वाला, स्थान और रुपया देने वाला आदि सभी समान रूप से महापापी है अतः दोष ही है।

प्रश्न– 1266 चौरार्थादान को अतिचार दोष क्यों बताया?

उत्तर कदाचित् चोर मालिक के यहाँ से माल चोरी करके ले आया। अब उस माल को कोई खरीदने वाला नहीं हैं, लेने वाला नहीं है तो चोर उस माल का क्या करेगा? या तो मालिक को वापिस देने जायेगा या किसी के माध्यम से पहुंचायेगा या कहीं छोड़ देगा पुनः खोजबीन होन पर

सामग्री मिलने पर मालिक को प्राप्त हो जायेगी तो मालिक भी प्रसन्न होगा दुःख दूर हो जायेगा। फिर चोर भी चोरी क्यों करेगा? सर्वप्रथम चोरी का परिश्रम, वापिस पहुंचाने का परिश्रम, डालने का परिश्रम क्यों करेगा? पकड़ा जाने पर मारपीट या छिप छिपकर रहना, खाने पीने का, सोने का, उठने का, बैठने का, मलमूत्र क्षेपण करने का, परिवार को छोड़कर जहाँ कहीं निवास करने का, परिवार का, बाल बच्चों का, पत्नि का, माँ बाप का मुँह न देखना, न मुँह दिखाना पकड़े जाने पर जेल में पड़ा रहना, खूब कष्ट उठाना, बदनामी होना आदि कष्ट क्यों भोगना पड़ें। अतः चोरी का माल न खरीदने से, न लेने से चोरी सम्बन्धी समस्त पाप समाप्त हो जाते हैं तथा चोरी का माल खरीदने से सभी पाप एकसाथ प्राप्त हो जाते हैं। अतः चोरी का माल न खरीदना, न मंगवाना, न सप्लाई करना ही उत्तम है अन्यथा 108 प्रकार से चोरी पाप का दोष लगता है।

प्रश्न– 1267 विरुद्धराज्यातिक्रम अतिचार दोष किसे कहते हैं?

उत्तर धर्म राज्य, लोक राज्य, माता पिता, मालिक के विरुद्ध आचरण, व्यापार, टेक्स आदि बचाने को, उनकी आज्ञा के प्रतिकूल चलने को विरुद्ध राज्यातिक्रम नाम का अतिचार दोष कहते हैं।

प्रश्न– 1268–70 नीति नियम किसे कहते हैं? कितने प्रकार के होते हैं? नाम कौन कौन हैं तथा नीति और नियम में क्या अंतर है?

उत्तर आचार विचार या सुखदुःख सम्बन्धी दिनचर्या की पद्धति को नीति नियम कहते हैं किस पद्धति से उठना, बैठना, सोना, चलना, गमन करना, वार्तालाप करना इसी तरह खिलाना पिलाना आदि की पद्धति को नीति नियम कहते हैं। तीन भेद हैं धर्मनीति[1] राज्यनीति[2] कूटनीति[3]। नीतिः– भावात्मक विचारों को नीति। नियमः– प्रयोग में लाने को नियम कहते हैं। यही अंतर है।

प्रश्न– 1271–72 धर्मराजा किसे कहते हैं? धर्मनीति किसे कहते हैं?

उत्तर जो शास्वत अध्यात्म आत्मशान्ति का उपाय बताने वाले हैं, वीतराग सर्वज्ञ और हितोपदेशी हैं, जो अनन्त चतुष्टय के स्वामी हैं, जो निःस्वार्थ, निष्कपट मोक्षमार्ग का, वस्तु स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं उसे धर्मराजा कहते हैं और इनके द्वारा बताये गये सुख के मार्ग या दुःख से बचने के उपाय को धर्मनीति कहते हैं अथवा जिन आचार, विचार, विहार के भावों से प्राणी आत्मशान्ति का अनुभव करें उसे धर्मनीति कहते हैं अथवा अणुव्रतों को, महाव्रतों को धर्म तथा इनके पालने की पद्धति को धर्मनीति कहते हैं।

प्रश्न– 1273–74 राज्यनीति किसे कहते हैं? देशराजा किसे कहते हैं?

उत्तर प्रजा में सांसारिक इंद्रियजन्य सुख सुविधा में किसी प्रकार से बाधा उत्पन्न न हो, प्रजा को पुत्र पुत्री के समान देखने वाले को, पालन पोषण करने वाले को राजा कहते हैं तथा जिस पद्धति से राजा, देशनेता, राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री और प्रजाजनों का जीवन, दिनचर्या अच्छी तरह से चलती रहे, परस्पर में सभी रक्ष्य रक्षक भाव से रहे सो उस पद्धति को राज्यनीति कहते हैं। इस नीति से राजा और प्रजा दोनों अपना जीवन सुख से व्यतीत करते हैं।

प्रश्न– 1275 कूटनीति किसे कहते हैं?

उत्तर जिन आचार विचारों के द्वारा राजा और प्रजा दोनों सर्वत्र, सर्वजगह, सर्वप्रकार से दुःखी हों उसी

को कूटनीति कहते हैं। इस नीति से राजा, नेता, कर्मचारी, प्रजाजन अपने आप में असुरक्षितपने का अनुभव करते हैं, नाना प्रकार से दुःखी होते हैं और नाना संक्लेशों को प्राप्त हो उसे कूटनीति कहते हैं अथवा कपट नीति को, ठग विद्या को कूटनीति कहते हैं।

प्रश्न— 1276—77 गृहमालिक किसे कहते हैं? गृहनीति किसे कहते हैं?

उत्तर घर के मालिक को, परिवार के मुखिया को, परिवार के संचालक को गृहस्वामी कहते हैं और परिवार को पालन करने की पद्धति को गृहनीति कहते हैं।

प्रश्न— 1278 उक्त चार नीतियों में से किस नीति के विरुद्ध राज्यातिक्रम दोष कहलाता है?

उत्तर उपरोक्त चार नीतियों में से देश राज्यनीति के विरुद्ध जाना विरुद्ध राज्यातिक्रम दोष कहते हैं। इस राज्य नीति के विरुद्ध जाने से, नीति विरुद्ध होने से लौकिक जीवन बिगड़ता है, राज्य व्यवस्था बिगड़ती है जिससे राजा और प्रजा दोनों की जीवन व्यवस्था अस्त व्यस्त हो जाती है। व्यापार, लेन देन, परस्पर का व्यवहार, प्रेम व्यवहार नष्ट हो जाता है और कपटपूर्ण व्यवहार स्थान पा लेता है। जिससे व्यवहारिक जीवन और अर्थव्यवस्था भी संकट में पड़ जाती है।

प्रश्न— 1279 धर्म के विरुद्ध या धर्मनीति के विरुद्ध जाने से क्या हानि है?

उत्तर इस धर्मनीति के विरुद्ध जाने पर आज्ञा का उल्लंघन करने पर मोक्षमार्ग नष्ट होता है, आत्मशान्ति भंग होती है, सांसारिक उत्तम पदों के सुख भी प्राप्त नहीं होते हैं। उभय लोक बिगड़ जाते हैं। उस व्यक्ति का तात्कालिक जीवन विश्वासघात को प्राप्त हो जाता है और विश्वासघात होने से कोई भी व्यक्ति प्रीति को प्राप्त नहीं होता है। ऐसा जीवन पत्थर की नाव के समान है। सर्वत्र दुष्कर्म का, दुराचार का साम्राज्य हो जाने से सभी दुःखी हो जाते हैं।

प्रश्न— 1280 कूटनीति के विरुद्ध तो जा सकते हैं?

उत्तर कूटनीति के विरुद्ध जाने में कोई आपत्ति नहीं है क्योंकि कूटनीति पाप स्वरूप है। वर्तमान में क्या राज्यनेता, समाजनेता, क्वचित् कदाचित् धर्म के ठेकेदार बनने वाले साधू पदधारी धर्मनेता कूटनीति, पापनीति, रावणनीति, कंसनीति को अपनाकर देश को, समाज को, धर्म को, परिवार को कलंकित कर रहे हैं, ताडित कर रहे हैं, सज्जन पिस रहे हैं, दुःखी हो रहे हैं इस नीति के विरुद्ध वो ही जा सकते हैं जिनके पास स्वयं की पूर्ण सामर्थ्य हैं, कर्मठ हैं, निःस्वार्थ है, निष्कपट जीवन हैं, कष्टों से भयभीत नहीं हैं वो ही इन कंसों का, काष्ठांगार जैसों का सामना कर सकते हैं, अन्य दूसरे नहीं।

प्रश्न— 1281—82 सरकार को यथेष्ट टैक्स न देना चोरी पाप है? राज्य के विरुद्ध जाना भी चोरी पाप है अतः पाप से दुःखी क्यों न होगा?

उत्तर उत्तम नीति से कमाई का चौथा हिस्सा, मध्यम नीति से छठवाँ हिस्सा तथा जघन्य नीति से दसवाँ हिस्सा सरकार को टैक्स देना योग्य है। ऐसा करने से राज्यव्यवस्था तथा प्रजा की व्यवस्था अच्छी तरह से चलती रहेगी तथा अनेक प्रकार के नीतिनियम का धर्म नीति के अनुसार

राज्यनीति का पालन करना उचित है। अन्यथा चोरी पाप होने से दोनों का जीवन बिगड़ता है। कर्मबंध होता है और जब वह कर्म उदय में आयेगा तो नाना तरह से नाच नचायेगा किन्तु राज्यनेताओं का, राज्यकर्मचारियों का, भ्रष्टाचार का रिश्वत लेना अत्यधिक टैक्स लेना, निर्दोषी को सदोषी ठहराना और सदोषी को निर्दोषी ठहराना ही कूटनीति है और इसके विरुद्ध जाना कोई दोष नहीं है किन्तु इनके अनुकूल रहना ही अत्याचार है, चोरी पाप है। पाप न करने से तथा पापों का त्याग करने से जीवन सर्वत्र सुखी होता है। अन्यथा दुःख ही दुःख होता है।

प्रश्न– 1283–84 गृहनीति किसे कहते हैं? समाजनीति किसे कहते हैं?

उत्तर जो घर के मालिक हैं वे अपने गृह परिवार को सुख शान्ति से चला रहे हैं, परिवार सदाचार सद्विचारमय है, किसी प्रकार से गृह के सदस्यों में वैर विरोध, कलह, लड़ाई झगड़ा न हो सो इसे गृहनीति कहते हैं। इसी तरह समाज के कर्णधार पूर्ण समाज को परस्पर में प्रेम से गले से गला मिलाकर समाज की कुरीतियों को निर्मूलकर, धर्ममय बनाकर, सदाचार सद्विचार से युक्त कर समाज हर तरह से सुख सम्पन्न धन सम्पन्न हो तो इस नीति को समाजनीति कहते हैं।

प्रश्न– 1285 हीनाधिकमानोन्मान अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर लेने देने के बड़े छोटे बांटों के द्वारा व्यापार करने को हीनाधिकमानोन्मान अतिचार कहते हैं।

प्रश्न– 1286 मान किसे कहते हैं?

उत्तर किसी दूसरे को देने के लिए बांट पैला– 8 सेर, पसेरी– 5 सेर , चौथिया– एक सेर, लीटर, मीटर, कांटे तराजू आदि को कम मात्रा में देकर कीमत पूरी या ज्यादा लेने को मान कहते हैं अथवा ठग विद्या सहित अपना माल कम देकर किमत अधिक लेने को मान कहते हैं।

प्रश्न– 1287 उन्मान किसे कहते हैं?

उत्तर किसी दूसरे से कुछ माल लेना है तो ज्यादा लेने के लिए मापने तौलने के बांट कांटे तराजू लीटर मीटर बड़े रखकर ज्यादा लेने को और चुकारा कम करने को उन्मान कहते हैं अथवा दूसरों से या दूसरों के लिए अधिक लेने को कम देने को और इनके साधनों को मानोन्मान कहते हैं।

प्रश्न– 1288–89 यह मानोन्मान नाम का अतिचार व्यापारियों को ही लगता है? ग्राहकों को नहीं क्या ऐसा है?

उत्तर आपका कथन सही है कि व्यापारी को ही मानोन्मान नाम का अतिचार दोष लगता है, शेष के नहीं। परन्तु यदि उत्तम मध्यम जघन्य पात्र को व्यापारी की तरह दाता की, श्रावक की ऐसी आदतें मालूम पड़ जाएं और फिर उसके या उनके हाथ से धन का, व्यापार का, आहार का दान लेवें तो पात्र भी पापी ही कहलायेगा, चोर कहलायेगा क्योंकि चौरार्थादान चोर के द्वारा लाया गया पदार्थ दान में लेना, एक दो बार लिया तो अतिचार दोष कहलाया तथा बार बार लिया तो अनाचार दोष कहलायेगा अथवा पात्र भी कारित और अनुमोदना से मानोन्मान अतिचार रूप पाप को प्राप्त हो जाता है क्योंकि गलत व्यापार से धन कमाकर दान में दिया और पात्र ने लिया पुनः ज्यादा आहार दान में, ज्ञान दान में, मंदिर बनाने में, धर्मशाला बनाने में, औषधिशाला बनाने में, चतुर्विध संघ की व्यवस्था बनाने में देने की प्रेरणा की तो व्यापारी को अधिक धन कमाने के

लिए गलत व्यापार भी ज्यादा करना पड़ेगा इसलिए वह पात्र भी पाप का भागी बन जाता है। इसलिए यह दोष व्यापारी और ग्राहक को भी लगता है। इसी तरह यह पाप केवल लोभी दाता को नहीं किन्तु लोभी पात्र को भी लगता है। अतः पापों में साथी होने से सभी पापी हैं।

प्रश्न— 1290 व्यापारी तो अनेक प्रकार के होते हैं तो क्या सभी व्यापारी इस दोष के अधिकारी हैं या नहीं?

उत्तर समस्त व्यापारी और ग्राहक इस पाप के अधिकारी हैं क्योंकि माला के समान कहीं न कहीं अपना सम्बन्ध जोड़े हुए हैं और वह सम्बन्ध मन वचन काय कृत कारित अनुमोदना से बना हुआ है। क्योंकि जिस प्रकार महाव्रत नवकोटियों के द्वारा पूर्ण रूप से धारण किये जाते हैं, पालन किये जाते हैं उसी तरह अणुव्रत भी नवकोटियों से धारण किये जाते हैं, पालन किये जाते हैं। अतः बुद्धिमानों को चोरी का व्यापार करने वालों से सर्वथा के लिए सम्बन्ध छोड़ देना चाहिए। तोड़ देना चाहिए अन्यथा श्रावक भी पाप का अधिकारी ही है।

प्रश्न— 1291—92 यह अतिचार दोष प्रतिमाधारी श्रावक को लगता है? या प्रतिमा रहित अव्रती श्रावक को भी दोष लगता है क्या?

उत्तर अव्रती श्रावक के अप्रत्याख्यानावरण क्रोधादि कषायोदय से संकल्प पूर्वक नियम न होने से अनाचार दोष युक्त जीवन होता है किन्तु व्रती श्रावक के अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदयाभाव होने से, संकल्प पूर्वक नियम होने से क्वचित् कदाचित् प्रत्याख्यानावरणीय क्रोधादि कषायों का तीव्रोदय होने से अनाचार दोष की संभावना या भूमिका बन जाती है तथा इसी समय अप्रत्याख्यानावरण क्रोधादि चार कषायों में से किसी एक का उदय आ जाय तो नियम से व्रत परिणाम नष्ट हो जाता है किन्तु प्रत्याख्याख्यानावरण कषाय के अनुत्कृष्ट उदय होने से और तदनुकूल उपयोग का तथा चारित्रगुण का परिणमन होने से अतिचार युक्त जीवन होता है। फिर भी बाह्य में इंद्रियगोचर अव्रती सम्यग्दृष्टि श्रावक की दिनचर्या मिथ्यादृष्टि जीवों के समान होने पर भी हेतु में तथा कषायों की धारा में अन्तर होने से आश्रव बंध, संवर और निर्जरा तत्त्व में अंतर हो जाता है। सम्यग्दृष्टि मोक्षमार्गी है, धर्मात्मा, पुण्यात्मा, संख्यात और असंख्यात जीव है तो मिथ्यादृष्टि संसारमार्गी है, अधर्मात्मा, पापी और अनंत जीव हैं।

प्रश्न— 1293 प्रतिरूपकव्यवहार अतिचार दोष किसे कहते हैं?

उत्तर जिन भोग्य पदार्थों में, भोज्य पदार्थों में समानता पाई जाती है उन्हें परस्पर में मिलावट करने को प्रतिरूपकव्यवहार अतिचार दोष कहते हैं। जैसे दूध में पानी मिला देना, आहार के समय लोगों को अधिक दिखाने के लिए फल रसों में पानी मिला देना, देशी घी में डालडा मिला देना, उच्च धान्यों में कमजोर धान्य मिला देना आदि इसी तरह उत्तम धातुओं में कम कीमत की धातुओं को मिला देना। लोभोदय से ठगने के लिए, अधिक धन कमाने के लिए यह कार्य किया जाता है।

प्रश्न— 1294 प्रतिरूपक व्यवहार नाम का अतिचार दोष क्यों लगाया जाता है?

उत्तर माया और लोभ कषाय के उदय के साथ हास्य रति तीनों वेदोदय से उत्पन्न परिणामों के द्वारा अधिक धन कमाने की तीव्र लालसा होने से, संतोषवृत्ति का अभाव होने से, पाप में आसक्ति होने

से, विषयभोगों में गृद्धता होने से, श्रृंगार अलंकार में गाढ़ प्रीति होने से यह पाप ठग विद्या मायाचार किया जाता है। प्रसंग आने पर माया कषाय लोभकषाय दृष्टिगोचर भी होने लगते हैं। जिससे परस्पर का प्रेम, विश्वास भी टूट जाता है, अनेक दोष प्रत्यक्ष दिखाई देने लगते हैं और अनेक दोष आकर निवास करने लगते हैं। ये दोष समस्त लोभी परिग्रही कषायी प्रमादी जीवों के होते हैं। अतः सावधान रहना चाहिए।

प्रश्न– 1295 इस दोष के अधिकारी समस्त प्रमादी जीव हैं ऐसा कहा है तब मुनि जन आरम्भ परिग्रह के त्यागी होने से वीतरागी भी हैं किंतु छठवें गुणस्थानवर्ती प्रमत्तसंयत मुनि प्रमादी हैं तब वे भी इस दोष के अधिकारी कैसे हो सकते हैं तो इसमें क्या हेतु हैं?

उत्तर जब ये प्रमत्तसंयत मुनिजन प्रवचन करते समय अन्यमतियों के सरागी, विषयकषायी वक्ताओं की नकल तीर्थंकरों ने, गणधरों ने, आचार्यों ने की है ऐसा कहना। जैसे जैसा बौद्ध ने प्रतिपादन किया है वैसा ही महावीर ने कहा है जैसा गीता में कहा है वैसा ही समयसार में कहा है आदि इसी तरह रजनीस के कथन को, आसाराम बापू आदि के कथन को दिगम्बराचार्यों के कथन के साथ धर्मसभा में धर्मोपदेश रूप में कह देना, सुनाना वही प्रतिरूपकव्यवहार नाम का अतिचार दोष है क्योंकि मोक्षमार्ग के बाह्य वक्ताओं के कथन को जिनोपदेश रूप में मिलावट कर धर्मसभा में धर्म के नाम पर वितरण कर दिया अतः यह दोष ही है।

प्रश्न– 1296–97 यह दोष मुनियों में क्यों आया? किस कारण से आया?

उत्तर मुनियों में इस दोष का कारण यह है कि जिस प्रकार गृहस्थ सेठ या नामधारी, आचार विचार विहीन, विवेकहीन, कर्तव्यविहीन श्रावक नाना प्रकार के खोटे हिंसक व्यापारों के द्वारा या गलत उपायों से धन कमाकर चतुर्विध संघ के लिए, आहारादि की व्यवस्था करने के लिए उनसे चन्दा लेकर, पैसा लेकर आहार कराया तो मुनिजन भी आचार विचार विहीन वक्ताओं के कथन को संग्रह कर धर्म के नाम पर उपदेश देते हैं। चन्दा करके दिया गया आहार का फल है कि यहाँ वहाँ से बटोरकर प्रवचन भी सुनने को मिलता है और न्याय नीति से स्वयं की कमाई से दिया गया आहार औषधि आदि देने से जिनोपदेश सुनने को मिलता है। कहावत है – 'जैसा खाओ अन्न वैसा होय मन और जिसका खाओ अन्न उसका होय मन, जैसा पियो पानी वैसी बोलो वाणी।' यह मनुष्य जैसा भक्ष्य अभक्ष्य भोजन करता है वैसा ही मन होता है और जैसा मन है वैसे ही अधिकतर वचन निकलते हैं अथवा जिसके हाथ का भोजन किया जाता है वैसा ही उसके हाथ के समान ही मन होता है और मन के अनुसार ही वचन व्यवहार होता है ऐसा यह सामान्य नियम है, सर्वथा नहीं क्योंकि यदि सर्वथा ऐसा ही मान लिया जाये एकरूपता ही रहती है तो मायाचार मायाकषाय का कार्य बन नहीं सकता है, छल कपट की सिद्धि नहीं हो सकती है।

प्रश्न– 1298 छल कपट किसे कहते हैं?

उत्तर मन में कुछ चिन्तन होता है, वचन से कुछ और ही कहा जाता है तथा काय से कुछ और ही

किया जाता है। इसे मायाचार कहते हैं तथा दूसरों को कष्ट में डालने के लिए, धोखे में रखने के लिए भी मन वचन काय के कुटिल प्रयोग को छलकपट मायाचार कहते हैं।

प्रश्न— 1299 क्या यह प्राणी दूसरों को वास्तव में धोखे में कष्ट में डाल सकता है, या नहीं?

उत्तर उपादान उपादेय की दृष्टि से अपने आपको धोखे में कष्ट में डालता है क्योंकि मन वचन काय की क्रिया आत्मगत होने से आश्रव बंध तथा उदय स्वयं में आने से दुर्गति में गमन, भव भ्रमण, नाना तरह के दुःख स्वयं को भी भोगने पड़ेंगे किन्तु निमित्त नैमित्तिक संबंध की अपेक्षा एक दूसरों को कष्ट में, दुःख में या सुख में पहुंचाया जाता है प्राप्त कराया जाता है इससे दोनों ही दुःखी होते हैं। नारायण प्रतिनारायण की तरह नरक में जाकर दुःख भोगते हैं।

प्रश्न— 1300 अचौर्याणुव्रत और अचौर्यमहाव्रत में क्या अन्तर है जबकि दोनों में बिना दिये मिट्टी जल को ग्रहण करने के लिए मना किया है?

उत्तर क्वचित् कदाचित् अणुव्रती श्रावक के स्वनिमित्तक त्याग होने पर भी परनिमित्त से या पर के लिए बिना दिये भी कायकृत के बिना मनवचनकाय कारित अनुमोदना से व्रत की विराधना कर लेता है किन्तु महाव्रती अपने व्रत को नवकोटियों से पालता है विराधना नहीं करता है। यही इन दोनों में अन्तर है। अथवा श्रावक के स्थूल रूप से त्याग है तो मुनियों के सूक्ष्म रूप से त्याग है।

Note- प्र.1205 से लेकर के 1300तक चोरीपाप, अचौर्याणुव्रत, भावना तथा अतिचारों का वर्णन समाप्त हुआ।

प्रश्न— 1301 कुशील पाप मैथुन कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर स्त्री पुरुष नपुंसक वेदों के उदय से तथा संयमघाती कर्मोदय के साथ कामवासना की दाह को, आकांक्षा को शान्त करने के लिए परस्पर में आलिंगन करने को रमण करने को या रमण करने की भावना को, इच्छा को मैथुनपाप कुशीलपाप कहते हैं।

प्रश्न— 1302—03 स्त्रीवेद किसे कहते हैं? कितने भेद हैं?

उत्तर पुरुषों के, पुरुष के या जिस किसी के साथ भी रमण करने की भावना को, गर्भयोनि सहित दाढ़ी मूँछ के बिना शरीर की रचना को, भीरू स्वभाव को, मध्यम पुरुषार्थी को अथवा मैं स्त्री हूँ इस प्रकार अनुभव करने को स्त्रीवेद कहते हैं। इस कलिकाल के प्रभाव से आजकल किन्हीं किन्हीं के दाढ़ी मूँछें देखी जा रही हैं और बालक बालिकाओं के बाह्य भेष में, चर्या में, बोलचान में संक्रमण हो रहा है जो निरंतर पाप को ही दूराचार को बढ़ावा दे रहा है। इसके दो भेद हैं।

प्रश्न— 1304 भावस्त्रीवेद किसे कहते हैं?

उत्तर मोहनीय कर्म के नोकषाय रूप स्त्रीवेदोदय से उत्पन्न आत्म परिणाम को, भीरू स्वभाव को, रमण भाव को, अपने मिथ्यात्व असंयम भाव को, गल्ती के छिपाने रूप भाव को, दूसरों में इन्हीं दोषों को लगाने रूप भाव को, तिरछी निगाह की भावना को कि कोई हमारी चतुराई को समझ न ले, हमारा सर्वत्र आदर सम्मान हो, गुणगान हो उसे भावस्त्रीवेद कहते हैं।

प्रश्न– 1305 द्रव्य स्त्रीवेद किसे कहते हैं?

उत्तर भावस्त्रीवेद के साथ आंगोपांग नाम कर्मोदय से गर्भयोनि स्तन, दाढ़ी मूँछ के बालों के बिना शरीर की रचना को, द्रव्य भाव चेष्टाओं के द्वारा, तिरछी निगाह आदि के द्वारा जो दूसरों को आच्छादित करती है, दोष उत्पन्न करती है, दोष लगाती है उसे द्रव्य स्त्रीवेद कहते हैं। अत्यधिक पतले वस्त्रों से या नाना विकार युक्त चेष्टाओं के द्वारा, स्तन आदि अंगों को दिखाकर पुरुषों को अपनी तरफ आकर्षित कर, काम वासना से पीड़ित कर देने को द्रव्य स्त्रीवेद कहते हैं।

प्रश्न– 1306–07 पुरुषवेद किसे कहते हैं? कितने भेद होते हैं?

उत्तर स्त्रियों के साथ अथवा जिस किसीके साथ अथवा स्त्री के साथ रमण करने की भावना को क्रिया को पुरुषवेद कहते हैं अथवा लिंग दाढ़ीमूँछ सहित शरीर की रचना को अथवा कर्मठ उत्कृष्ट पुरुषार्थी को निर्भय स्वभाव को मैं पुरुष हूँ इस प्रकार अनुभव करने को अपनी प्रतिज्ञा को वचन को अन्तपर्यन्त निभाने वाले को पुरुषवेद कहते हैं। द्रव्य पुरुषवेद और भावपुरुषवेद ये दो भेद हैं।

प्रश्न– 1308 भावपुरुष वेद किसे कहते हैं?

उत्तर मोहनीय कर्म के भेद स्वरूप नोकषाय रूप पुरुषवेदोदय से उत्पन्न हुए परिणामों में, संमोह को भाव पुरुषवेद कहते हैं। जो प्रतिज्ञा को निभाने में दृढ़ है, उत्तम पुरुषार्थी है, उत्तमगुणों को धारण करने वाला है। उत्तम भोगों को भोगने में समर्थ है, स्वयं में उत्तम है। सुख दुःख को झेलने में समर्थ है उसे भावपुरूषवेद कहते हैं।

प्रश्न– 1309 द्रव्य पुरुषवेद किसे कहते हैं?

उत्तर द्रव्य पुरुषवेद आंगोपांग नाम कर्म के उदय से शरीर में उत्पन्न हुए लिंग दाढ़ी मूँछ की रचना को द्रव्य पुरुषवेद कहते हैं। यह प्रतिज्ञा को, वचन को अंतपर्यन्त निभाने में कर्मठ होता है, निर्भय होता है, नाना शक्ति, नाना कलाओं से सहित होता है। हर प्रकार से आये हुए कष्टों को जीतने में समर्थ होता है। उसे द्रव्य पुरुष वेद कहते हैं?

प्रश्न– 1310–12 नपुंसक वेद किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर स्त्रियों के, स्त्री के साथ तथा पुरुषों के, पुरुष के साथ या परस्पर में नपुंसकों के साथ काम क्रीड़ा करने के भाव को, रमण करने के भाव को या रमण क्रिया करने वाले को, जिस किसी व्यक्ति या वस्तु के साथ रमण कर कामवासना को शमन करने की इच्छा को नपुंसक वेद कहते हैं। इसके दो भेद हैं। नामः– भाव नपुंसक वेद, द्रव्य नपुंसक वेद।

प्रश्न– 1313 भाव नपुंसक वेद किसे कहते हैं?

उत्तर मोहनीय कर्म के उत्तर प्रकृतियों में नोकषाय रूप नपुंसक वेदोदय से उत्पन्न आत्मा में संमोह को स्त्री और पुरुष के साथ या जिस किसी के साथ रमण करने के भाव को भावनपुंसक वेद कहते हैं। इसकी कामाग्नि अवा की, भट्ठा की अग्नि के समान होती है, परिणाम अस्थिर होते हैं। कभी कायर होता है तो कभी कर्मठ होता है, निर्लज्ज होता है, हीन पुरुषार्थी होता है, कामक्रीड़ा का साधन न होने से अनंगक्रीड़ा करते हुए भी तृप्ति नहीं होती कामाग्नि इसको अधिक समय तक

जलाती रहती है। मन अस्थिर रहता है।

प्रश्न– 1314 द्रव्य नपुंसक वेद किसे कहते हैं?

उत्तर जिसके शरीर में स्त्री और पुरुष के मिश्र रूप में चिह्न पाये जायें अथवा स्त्री जैसी गर्भ योनि का आकार न हो, पुरुष के लिंग जैसा भी आकार न हो किन्तु दोनों से भिन्न तीसरा आकार हो। दाढ़ी मूँछ होती भी है और नहीं भी होती। कुछ चाल ढाल वार्तालाप स्त्रियों जैसी होती है और कुछ पुरुषों जैसी हो, वस्त्रालंकार, नाचना गाना दोनों के समान हो। शरीर की रचना और भाव कहीं कहीं दोनों के समान होते हैं कहीं कहीं असमान होते हैं। उसे द्रव्य नपुंसक वेद कहते हैं।

प्रश्न– 1315 इन तीनों वेदों की कामाग्नि किसके समान होती है?

उत्तर पुरुषवेद की कामाग्नि वीर्य निकलने के बाद थोडे समय में समाप्त हो जाती है, घास की अग्नि के समान जल्दी बुझ जाती है शांत हो जाती है। स्त्रीवेद की कामाग्नि को शान्त होने में पुरुष की कामाग्नि की अपेक्षा अधिक समय लगता है। इसकी कामाग्नि कंडे की आग के समान घास की अग्नि की अपेक्षा इसको शान्त होने में अधिक समय लगता है। इसी तरह नपुंसक वेद की कामाग्नि को शान्त होने में सबसे ज्यादा समय लगता है जैसे अवा की, भट्ठा की अग्नि बहुत दिनों तक जलती रहती है। इसी तरह नपुंसक वेद की कामाग्नि होती है। वह अनंगक्रीड़ा करता हुआ भी तृप्ति को प्राप्त नहीं होता है ऐसा समझना चाहिए।

प्रश्न– 1316–17 कुशील पाप के अधिकारी कौन जीव हैं? किसको किस तरह से पाप का आश्रवबंध होता है, लगता है?

उत्तर द्रव्य और भावरूप से कुशील पाप मैथुन कर्म के अधिकारी मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर पंचम गुणस्थान तक देशव्रती 6वीं प्रतिमा तक श्रावक अधिकारी हैं क्योंकि यहाँ तक गृहस्थगण दाम्पत्य जीवन अच्छी तरह से लौकिक कार्य करते हुए परमार्थ को साधते हैं।

प्रश्न– 1318 क्या पंचमगुणस्थानवर्ती समस्त श्रावक श्राविकायें आर्यिकायें इस कुशील पाप के द्रव्य और भाव से अधिकारी हैं या नहीं?

उत्तर नहीं, पंचमगुणस्थानवर्ती सभी साधक और साध्वी द्रव्य से और भाव से कामसेवन के, कुशीलपाप के अधिकारी नहीं हैं किंतु पंचम गुणस्थान में भी दर्शनप्रतिमा से लेकर छठवीं रात्रिभोजन त्याग या दिवामैथुन त्याग प्रतिमा पर्यन्त श्रावक श्राविकायें द्रव्य और भाव से अथवा मन वचन काय से मैथुन कर्म कुशील पाप के अधिकारी हैं। सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा से लेकर ग्याहरवीं उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा पर्यन्त तथा आगे के मुनिजन आर्यिका आदि द्रव्य से मैथुन कर्म के अधिकारी नहीं हैं किन्तु भाव मैथुन पाप तो क्वचित् कदाचित् पाया जाता है। कारण छठवें गुणस्थान तक कार्यरूप में मैथुन संज्ञा पायी जाती है। संकल्प पूर्वक इन्होंने दाम्पत्य जीवन का नौकोटी से त्याग कर त्यागी व्रती महाव्रती का जीवन स्वीकार किया है।

प्रश्न– 1319 तो क्या मुनिजन इस पाप के अधिकारी हो सकते हैं?

उत्तर मैथुन संज्ञा की अपेक्षा कार्य रूप से परिणत उपरोक्त तथा छठवें गुणस्थानवर्ती मुनिजन

अधिकारी हैं अर्थात् क्वचित् कदाचित् परिवर्तन स्वरूप संसार में मुनियों के यह मैथुन संज्ञा गृहस्थों के समान नहीं होती है किन्तु भिन्न प्रकार से संज्वलन कषाय के तीव्र उदयानुसार भावात्मक कार्य रूप में होती है, शरीर से कार्य रूप में नहीं होती है। श्रेणीगत ध्यानावस्था में मैथुन संज्ञा कर्मोदय रूप कारण की अपेक्षा अनिवृत्तिकरण नामक नौवें गुणस्थान के सवेद भाग पर्यन्त मुनिजन अधिकारी हैं क्योंकि वेद कर्म का उदय यहाँ तक पाया जाता है किन्तु उत्कृष्ट धर्मध्यान या शुक्लध्यानावस्था होने से मैथुनसंज्ञा कार्य रूप में नहीं होती है।

प्रश्न– 1320 ब्रह्मचर्याणुव्रत किसे कहते है?

उत्तर संकल्पपूर्वक नवकोटियों से स्त्री मात्र का या स्वस्त्री के बिना शेष परस्त्री वेश्या, क्वांरी, विधवा और त्यक्ता स्त्रियों को त्यागकर अथवा पुरुष मात्र का या अपने पति को छोड़कर शेष पुरुषों का त्याग कर सभी में माँ बहिन बेटी का परिणाम रखकर या पिता भाई पुत्र का परिणाम रखकर नियम का पालन करने को तथा जिसके साथ पाणिग्रहण संस्कार हुआ है उसको भी पर्व के दिनों में अथवा जब कभी भी त्यागकर नियम का पालन करने को ब्रह्मचर्याणुव्रत कहते हैं क्योंकि त्याग का नाम व्रत है और भोग का नाम अव्रत है अथवा अनन्तानुबन्धी कषाय, अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदयाभाव में तथा प्रत्याख्यानावरण क्रोधादि कषायोदय के सद्भाव में जो बालक बालिकाओं का या श्रावक श्राविकाओं का मैथुनकर्म का सीमित समय पर्यन्त या अंतपर्यन्त नियम पालन करने को ब्रह्मचर्याणुव्रत कहते हैं।

प्रश्न– 1321–22 इस व्रत को निर्दोष पालन करने के लिए क्या करना चाहिए? कितने प्रकार की होती है? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर इस व्रत को निर्दोष पालन करने के लिए निरन्तर सतत् विशेष चिन्तन करना चाहिए उसे भावना कहते हैं। उसके पाँच भेद हैं। नामः– 1. स्त्रीरागकथाश्रवण त्याग या पुरुषरागकथाश्रवण त्याग 2. तन्मनोहरांग निरीक्षण त्याग 3. पूर्वरतानुस्मरण त्याग 4. वृष्येष्ट रस त्याग 5. स्वशरीर संस्कार त्याग। इन पाँच भावनाओं की ब्रह्मचर्याणुव्रत को निर्दोष पालन करने के लिए सतत भावना करनी चाहिए।

प्रश्न– 1323 स्त्रीरागकथा श्रवण त्याग या पुरुषरागकथाश्रवण त्याग भावना किसे कहते हैं?

उत्तर कोई ब्रह्मचर्याणुव्रती श्रावक श्राविकायें परस्पर में एक दूसरे के मन में काम वासना उत्पन्न करने कराने के लिए, मैथुन भावना जागृत करने के लिए परस्पर के रूप लावण्य वस्त्रालंकार शरीर के अंग उपांगों का कथन करने कराने का, सुनने सुनाने का त्याग करने को ब्रह्मचर्याणुव्रत की प्रथम भावना स्त्रीरागकथाश्रवण त्याग या पुरुषरागकथाश्रवण त्याग कहते हैं।

प्रश्न– 1324 गृहस्थ श्रावक इस प्रकार की भावना नहीं कर सकता है क्योंकि इनके परस्पर का संसर्ग हमेशा बना रहता है?

उत्तर यहाँ कथन गृहस्थों का ही है। जिनको जो वस्तु हमेशा प्राप्त होती रहती है, हमेशा देखते हैं, सुनते हैं उनको उस वस्तु में राग आकर्षण भाव प्रायः कर समाप्त हो जाता है क्योंकि जो वस्तु

हमेशा उपयोग में आती है उसमें आश्चर्य नहीं होता है जैसे प्रतिदिन दाल रोटी खाते हैं तो उसमें सामान्य रुचि होती है किन्तु किसी किसी दिन या बहुत दिन के बाद जो विशेष भोजन तैयार किया जाता है या मिलता है तो उसमें विशेष रुचि आसक्ति होती है आश्चर्य होता है। अतः गृहस्थ को भोग सामग्री रूप लावण्य युक्त चेतन अचेतन वस्तुओं का हमेशा मेल मिलाप होने से, वार्तालाप होने से, सुनने सुनाने से बाल्यकाल से ही उनको तृप्ति हो जाती है। इस कारण गृहस्थों को इस भावना को भाने में, चिंतन करने में परिश्रम नहीं होता है किन्तु जिनको पूरी, कचोड़ी, मिठाई, लड्डू आदि के समान कभी कभी प्राप्त होती है, सुनने में आती है तो आश्चर्य होता है सो यह बात अधिकतर गृहत्यागियों में पाई जाती है।

प्रश्न– 1325 क्या यह भावना गृहत्यागी मुनिजन भा सकते हैं, चिन्तन कर सकते हैं क्या?

उत्तर हाँ अवश्य करते ही हैं किन्तु महाव्रती मुनिजन महाव्रतानुसार चिन्तन करते हैं, तभी तो नग्न रूप में रहकर सर्वत्र आहार विहार निहार करके बाला, युवा, वृद्धाओं के बीच में रहकर के भी अपने ब्रह्मचर्यव्रत में दृढ़ रहते हैं। कहीं पर भी नग्नरूपता में आंच नहीं आती है और जो त्यागी व्रती मुनिजन या आर्यिका आदि इस भावना से मुख मोड़ लेते हैं पराङ्मुख हो जाते हैं तो वे पतनकर पुनः विवाह आदि कर गृहस्थ बन जाते हैं। सन्तान पैदाकर रौद्रों की तरह दुर्मरणकर नरकगति के पात्र होते हैं। इसी तरह गृहस्थ, त्यागी व्रती भावना भाते हैं तो व्रत में स्थिर रहते हैं यदि भावना नहीं भाते हैं तो पदभ्रष्ट होकर पशुवत् चेष्टायें करते हैं, करने लग जाते है।

प्रश्न– 1326 इस भावना का चिन्तन केवल श्रावक को करना चाहिए या श्राविकाओं को भी करना चाहिए?

उत्तर इस भावना का चिन्तन दोनों को करना चाहिए क्योंकि धर्म नियमव्रत दोनों के पास हैं। अपने अपने धर्म की रक्षा करना सभी का कर्तव्य है। किसी भी श्रावक श्राविका को नरक निगोद में नहीं जाना है अतः सभी श्रावक श्राविकाओं को अपना अपना ब्रह्मचर्यव्रत निर्दोष रखने के लिए, पालन करने के लिए भावना का सतत चिन्तन करना चाहिए।

प्रश्न– 1327 यदि अकेला या अकेली चिन्तन करे तो क्या आपत्ति है?

उत्तर घर में रहते हुए यदि पत्नि विरक्त हो गई और पति कामी बना रहा तो व्यभिचारी, परस्त्रीगामी, वेश्यागामी या अनेकों का जीवन बिगाड़ेगा, मारपीट करेगा, बदनाम हो जायेगा अथवा समर्थ होने से पत्नी का व्रत पल नहीं सकता या तो घर छोड़कर अन्यत्र निवास करेगा या धर्मव्रत नष्ट होगा। इसी तरह यदि पति विरक्त हो गया और पत्नि कामी बनी रही तो वह आत्महत्या की सोचेगी या परपुरुषगामिनी, व्यभिचारणी हो जायेगी। अनंगक्रीड़ा करना, इधर उधर ताकना, रोना, बैचेन होना, चिड़चिड़ापन होना, किसी कार्य में मन न लगना, गर्मी चढ़ जाना, पागलपन आना, झगड़ा करना आदि दोष उत्पन्न हो जाते हैं। अतः गृहस्थ को परस्पर में प्रेमपूर्वक संतोषवृत्ति से परस्पर की साक्षी पूर्वक नियम लेना चाहिए ताकि दोनों का नियम अच्छी तरह से निभ सके। अन्यथा परस्पर की सलाह के बिना कामोन्माद के कारण मरणकर व्यन्तर देवों की

पर्याय में जन्म धारण कर लग गया तो कितना परेशान करेगा या करेगी वह समय ही बतायेगा या वर्तमान में जिनको लगे हुए हैं उनके पास जाकर तलाश कर लो तो मालूम हो जायेगा।

प्रश्न– 1328 यदि ऐसा है तो गृहस्थ कभी भी व्रत नियम नहीं ले सकता क्योंकि जवानी में घर का कोई भी व्यक्ति संयम के लिए अनुमति न देगा?

उत्तर आपका प्रश्न सत्य है परन्तु यदि आपकी पूर्ण सामर्थ्य है कि उपसर्ग परीषह आने पर किंचित् मात्र भी चलायमान नहीं होंगे। मरना मंजूर है पर डरकर भागना, पलायनवादी होना, दीन वचन बोलना, कर्मोदय से भयभीत होकर धर्म छोड़कर भाग जाना आदि कष्टों के सामने आने पर कर्मठ बने रहने की तैयारी है तो व्रत को लेने में कठिनाई नहीं है किन्तु नियम लेकर यदि घर में रहोगे तो संकट में पड़ जाओगे। अतः विरक्ति है तो नियम से संयम धारण कर लो आगम से विरोध नहीं है किंतु प्रारंभ में परिवार की पूर्ण व्यवस्था कर आज्ञा मांगना जरूरी है।

प्रश्न– 1329 तन्मनोहरांग निरीक्षण त्याग भावना किसे कहते हैं?

उत्तर परस्पर के मन में कामवासना उत्पन्न करने वाले को, मन को हरने वाले अंगों को देखने के त्याग को तन्मनोहरांग निरीक्षण त्याग भावना कहते हैं अर्थात् श्रावक, श्राविकाओं के अंगों को देखने का त्याग करें तथा श्राविकायें, श्रावकों के अंगों को देखने का त्याग करें। मतलब कामवासना पूर्वक, राग पूर्वक देखने का त्याग करें। वासना पूर्वक किसी को भी न देखें।

प्रश्न– 1330 मनोहर अंग किसे कहते हैं?

उत्तर परस्पर में स्त्रियों का पुरुषों के प्रति और पुरुषों को स्त्रियों के प्रति शरीर के जिन अंगों को देखकर मन कामवासना से पीड़ित हो जाए उसे मनोहर अंग कहते हैं। शरीर के अंगों को देखकर यह कितना सुन्दर अभूतपूर्व अंग है। इसके आलिंगन, चुंबन के बिना मेरा जीवन अधूरा है। इस प्रकार विकारोत्पादक अंग को मनोहर अंग कहते हैं।

प्रश्न– 1331 क्या शरीर के किसी एक अंग का नाम मनोहरांग है या सर्वांग का?

उत्तर शरीर के किसी एक अंग का नाम मनोहर अंग नहीं है, न सर्वांग का नाम मनोहरांग है किन्तु जिस किसी अंग को देखकर मन कामवासना से पीड़ित हो जाये, मन में विकार उत्पन्न हो जायें तो उसे मनोहरांग कहते हैं। देखा जाता है, पढ़ा जाता है, सुना जाता है, कि कोई व्यक्ति स्त्रियों की चोटी देखकर विकार को प्राप्त हुआ, कोई स्तनों को देखकर, कोई गुप्तांग को देखकर, कोई मुख को देखकर, कोई उनकी छाया वस्त्रालंकार को देखकर, कोई आवाज को सुरीले कंठ को सुनकर, कोई उनकी सुगंध को सूंघकर, कोई उनके हाथ के स्वादिष्ट भोजन को करके, कोई स्पर्शकर, कोई जूते चप्पलों को देखकर, कोई चित्रकला, संगीत कला, नृत्यकला, वार्तालाप की कला आदि को देखकर काम से पीड़ित हो आक्रमण कर बैठे। अतः किसी एक अंग का नाम मनोहर अंग नहीं किंतु जिससे मन हरा जाय उसका नाम मनोहरांग है। एक घटी घटना याद आ रही है कि इंटरवॉल के समय स्कूल से बालक बालिकायें निकले। आगे आगे बालिकायें और पीछे पीछे बालक। उस समय माली के लड़के ने ब्राह्मण की लड़की की लम्बी काले घुंघराले बालों की दो चोटियों को देखकर व्यंग किया कि आज तो सूर्योदय पूर्व की अपेक्षा पश्चिम से

उदित हो रहा है क्योंकि वो एक दूसरे को चाहते भी थे परन्तु अनेक बालक बालिकाओं के बीच में व्यंग होने से उसने जवाब दिया कि पिताजी कहा करते हैं कि उल्लू को दिन में नहीं दिखता, रात्रि में दिखता है परन्तु आज हम देख रहे हैं कि उल्लू को दिन में ही दिख रहा है यह बड़ा आश्चर्य है। अतः किसी विशेष अंग को मनोहरांग नहीं कहते हैं।

प्रश्न– 1332 नग्न दिगम्बर मुनियों के सामने नाना वस्त्रालंकारों से युक्त विकार सहित बालिकायें आती हैं तब मुनिजन क्या सोचते हैं?

उत्तर नग्न दिगम्बर मुनि युवतियों के सामने आने पर आँख से आँख मिलाकर वार्तालाप नहीं करते हैं तथा मर्यादा में रहकर ही धर्मचर्चा करते हैं। धर्म चर्चा के साथ साथ माँ बहिन पुत्री जैसा भाव रखकर वार्तालाप करते हैं। लौकिक हंसी मजाक, आलिंगन नहीं करते हैं तथा यह आत्मा भी हमारे आत्मा के समान अनन्तगुणों का पिण्ड है। इसके साथ यदि मैंने दुर्विचार, दुर्व्यवहार किया तो दोनों का अधः पतन होगा। धर्म की, समाज की, माँ बाप की, जाति कुल की बदनामी होगी, साथ में हमारी और इसकी भी बदनामी होगी। जैसा हम इसके साथ दुर्व्यवहार करेंगे तो दूसरे लोग भी हमारे पूर्व के परिवार के साथ वैसा ही व्यवहार करेंगे। इस कारण इनके साथ गलत व्यवहार करना कदापि योग्य नहीं है। इस प्रकार विचार करने से देखते हुए भी मन से नहीं देखते, प्रसंगवश बोलते हुए भी नहीं बोलते हैं। सुनते हुए भी नहीं सुनते हैं। यह आध्यात्म की कुंजी आश्चर्यकारी है। जो हर किसीको प्राप्त नहीं होती है।

प्रश्न– 1333 जिस प्रकार यहाँ यह प्रश्न मुनियों के लिए किया है तो वैसा ही प्रश्न आर्यिका आदि माताओं के लिए भी हो सकता है या नहीं?

उत्तर हाँ, अवश्य ही प्रश्न होता ही है क्योंकि मोक्षमार्गी हैं, महावीर का झण्डा हाथ में लिया है उसकी बदनामी महावीर की बदनामी है। जिस प्रकार मुनियों के साथ धर्म है वैसा ही उनके बलवीर्य के अनुसार आर्यिकाओं के पास भी रत्नत्रय धर्म है। वे भी मुनियों के समान अपने धर्म की रक्षा करना चाहती हैं, पद भ्रष्ट होना, नरक निगोद का पात्र होना उनको भी इष्ट नहीं है। अतः अपने शीलधर्म को, ब्रह्मचर्य धर्म को, व्रत को निर्दोष पालन करने के लिए सतत संलग्न है मुनियों के समान चिन्तन करना चाहिए। तभी आर्यिका व्रत का पालन निर्दोष हो सकता है।

प्रश्न– 1334 यहाँ प्रसंग गृहस्थों का है और आप बीच में मुनि आर्यिका का कथन क्यों ले आये?

उत्तर बात सत्य है कि गृहस्थों का कथन चल रहा है। पर आप प्रश्नकर्ता को सर्वप्रथम सोचना चाहिए कि प्रकरण किसका चल रहा है यदि आप प्रकरण के अनुसार प्रश्न करते हो तो प्रश्न के अनुसार, प्रकरण के अनुसार समाधान किया जाता अतः जैसा आपका प्रश्न वैसा ही हमारा समाधान तब हमारा दोष क्या? यदि बिना प्रश्न के समाधान किया जाता तो हमारा दोष था। यदि प्रश्न के उत्तर को छिपाते हैं तो ज्ञानावरणीयकर्म का आश्रव बन्ध हो जाता है अथवा संबोधन वाक्यों में दोष का विचार नहीं किया जाता है। संबोधन वाक्य में मुख्यतः मन में संतोष प्राप्त हो, आकुलता, चिन्ता दूर हो यह भाव प्रधान होता है।

प्रश्न– 1335 सम्बोधन वाक्य किसे कहते हैं?

उत्तर संतोष प्राप्त कराने वाले वाक्य को या दुःख मुक्त कराने वाले वाक्य को संबोधन वाक्य कहते हैं। इस वचन में सत्यासत्य का विचार नहीं किया जाता है जैसे पिताजी ने बच्चे को मारा। बच्चा रोता हुआ माँ के पास आया और शिकायत की कि पिताजी ने मारा है तो माँ कहती है कि तुमने कोई गल्ती की होगी, बेटा कोई गल्ती मत करना, मुँह से पुचकारती है, गालों पर, मस्तिष्क पर, सिर पर हाथ फेरती है, आंसू पोंछती है, समझाती है कि मत रोओ, पैसे देती है, खाने को देती है। इतना सब कुछ परिश्रम करने पर भी यदि बच्चे ने रोना बन्द नहीं किया तो कह देती है कि यह डण्डा लो और जाओ दरवाजा बन्द कर दो, सांकल लगा दो, अन्दर नहीं आने देना, घुसने नहीं देना, तुमको मारा है ना और हम तुम्हारे पिताजी को खाने को नहीं देंगे तब बच्चा शान्त हो जाता है। दुःख भूल जाता है। खाने खेलने लगता है। अतः यह संबोधन वाक्य है। पिताजी को घर में आने दिया है, खाने को दिया है और बच्चे को समझाया है कि रोना बन्द कर दे नहीं तो रोते रोते स्वास्थ्य बिगड़ जाएगा, आँख भी खराब हो जायेगी आदि।

प्रश्न– 1336 पूर्वरतानुस्मरण त्याग नाम की भावना किसे कहते हैं?

उत्तर नियमव्रत लेने के पूर्व जो कामसेवन या कामवर्धक ऐसे श्रृंगार अलंकार, वस्त्र, अनंगक्रीड़ा या काम क्रिया सम्बन्धी सामग्री का उपयोग किया था, आलिंगन किया था अब व्रत नियम लेने के बाद में पुनः भोगने के लिए यदि पूर्व कार्य को याद किया तो काम वासना पुनः पुनः जागृत होगी और आकुलता होगी जिससे व्रत भंग होगा अतः याद करने का त्याग कराया। जिससे व्रत सही रहता है अन्यथा कामवासना की चर्चा होने से व्रत समूल नष्ट हो जायेगा। उन्माद भी बढ़ेगा।

प्रश्न– 1337–38 यह भोगवासना गृहस्थों के बन सकती है किंतु अविवाहितों के नहीं? जिसने जो कार्य किया नहीं वह क्यों याद करेगा?

उत्तर भोगी गृहस्थों के तो तद्भव सम्बन्धी भोग वासना की याद आ सकती है और पूर्वबद्ध कर्मोदय से भी वासना बन सकती है किन्तु जो अविवाहित हैं, उनको गृहस्थों के भोग क्रिया स्वनिमित्तिक नहीं बन सकती है क्योंकि वर्तमान में इन्होंने कामक्रिया अनंगक्रीड़ा की नहीं है फिर भी पूर्वबद्ध कर्मोदय से या कुसंगति से, अप्रशस्त कथाओं के सुनने से, पत्रिकाओं को पढ़ने से या दैनिक समाचारपत्रों में अश्लील चित्रों को देखने से अविवाहितों को भी भावना बन जाती है। इसलिए अश्लील चित्र को देखने का, तत्सम्बन्धी विचारों का, कथनों के पढ़ने का, सुनने का त्याग करना चाहिए। तभी यह व्रत मजबूत हो सकता है। अन्यथा जो आजकल अविवाहित बालक बालिकायें बिगड़ रहे हैं इसका मूल कारण है भोगी गृहस्थों की संगति, नंगे चित्र, नंगा संगीत, नंगे लेखों को पढ़ने से यह वार्ता दिमाग में भर जाती है और यह भावना स्थिर रहकर धीरे धीरे व्रत भंग कराकर अधःपतन करा देती है। अन्यथा अविवाहितों को याद क्यों आये?

प्रश्न– 1339 याद आना, जानना ज्ञान का विषय है और यदि जानना पाप है तो सर्वज्ञ, ज्ञानी महापापी ठहरेगें क्योंकि वे सब कुछ जानते हैं?

उत्तर याद आना बुरा नहीं है, जानना बुरा नहीं है किन्तु याद कर, जानकर पुनः विषय भोगों में लगना

फंसना बुरा है, हानिकारक है। सर्वज्ञ जानते हुए भी ज्ञायक होकर ज्ञेय को केवल जानते हैं, किन्तु अच्छा है या बुरा है, मेरा है या तेरा है, मेरे को चाहिए या उसको इसको चाहिए इस प्रकार से नहीं जानते हैं। इसलिए केवलज्ञानी का जानना बुरा नहीं किन्तु प्रमादियों का कषाय सहित, रागद्वेष सहित अच्छा बुरा, मेरा तेरा आदि ऐसा जानना बुरा है, हानिकारक है, पाप रूप ही है। पापकर्म बन्ध का कारण है। जो कालातंर में उदय में आकर नाना दुःखों को प्राप्त कराता है।

प्रश्न– 1340 याद आना और याद करना इन दोनों में क्या अंतर है?

उत्तर याद आना यह किसी बाह्य साधन को प्राप्त कर या अपने आप बिना किसी प्रसंग के कि हमने ऐसा किया था या ऐसा हुआ था, ऐसी घटना घटी थी इसका नाम याद आना यह हानिकारक नहीं है। इसमें अपना नवीन कोई विशेष पुरुषार्थ नहीं है किन्तु याद करने में अपना वर्तमान का कषायपूर्वक पुरुषार्थ है, हानिकारक है तथा यदि त्याग के लिए याद किया है तो लाभदायक है। फिर भी भगवन्तों ने, आचार्यों ने याद करने का त्याग कराया है याद आने का नहीं यही इन दोनों में अंतर है। कदाचित् अपने आप याद आ जाय तो भी त्याग की भावना करना, वैराग्य भावना भाना लाभदायक है अन्यथा हानिकारक है जो प्रत्यक्ष में सभी के अनुभव में आ रहा है।

प्रश्न– 1341 यदि पूर्वभुक्त कामक्रिया की याद नहीं आये याद नहीं करें तो प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान किसका किया जायेगा?

उत्तर यदि आत्म संशोधन के लिए स्मरण किया है तो उत्तम है किन्तु पुनः कामभोग के लिए स्मरण किया है तो हानिकारक है। निदान आर्तध्यान निदानशल्य है जो भावीकाल से सम्बन्ध रखता है। रौद्रध्यान भी है जैसे कि मैंने बहुत अच्छा किया था या भोगा था या रमण किया था। पुनः करूंगा, ज्यादा करूंगा यही प्रसन्नता भावी भोग भावना, वासना ही त्रिकाली रौद्रध्यान है महान अनर्थकारी है और निन्दा, गर्हा, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना पूर्वक पूर्व भोगों का चिंतन आत्मशुद्धि के लिए साधन होने से सुख के साधन है, आत्मधर्म है। इसके लिए याद करना लाभदायक है, मोक्षमार्ग है, धर्मध्यान है। भविष्य में शुक्लध्यान का साधकतम साधन बनेगा।

प्रश्न– 1342 बाल ब्रह्मचारी मुनियों के यह भावना नहीं बन सकती है क्योंकि इन्होंने कामभोग किया ही नहीं है ऐसा है क्या?

उत्तर बात सही है कि जिसने दूध पिया ही नहीं है तो उसे दूध के स्वाद की याद कैसे आयेगी? दूध के सम्बन्ध में ग्रहण करने का, त्याग करने का, स्वाद का विचार क्या कर सकता है? नहीं कर सकता है। इसी तरह जिन बाल ब्रह्मचारी मुनियों के मन में भोग विलास की भावना ही उत्पन्न नहीं हुई तो उनके लिए यह भावना निषेध रूप में नहीं बन सकती है किन्तु वर्तमान में व्रत लेने के पहले जो धर्मसाधन किया है तो उसका चिन्तन विधि रूप में कि मेरी धर्म साधना छूट न जाय, पाप वासना प्रवेश न कर जाय इस प्रकार चिंतन करते हैं अथवा कुसंगतिवश पूर्वबद्ध कर्मोदय से, हंसी मजाक के कारण, गलत भोजनपान के कारण कुछ वचनालाप हो गया तो उसकी पुनः पुनः निन्दा गर्हा, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त करने के लिए स्मरण भी कर लेते हैं किन्तु अच्छा मानकर, हितकारी समझकर, सुखकारक चिन्तन नहीं करते हैं।

प्रश्न– 1343 वृष्येष्ट रसत्याग भावना किसे कहते हैं?

उत्तर जो भोजन आसानी से पाचन न हो सके तथा पचाने के लिए अलग से किसी विशेष औषधि का, व्यायाम का या अन्य भी प्रक्रिया आदि की आवश्यकता पड़े, जो अत्यन्त इष्ट है और पौष्टिक है, तुष्टि पुष्टिकारक है उसे वृष्येष्ट रस कहते हैं।

प्रश्न– 1344 वृष्यरस आहार किसे कहते हैं?

उत्तर जिस भोजन से रजोवीर्य चर्बी आदि धातु उपधातुयें अधिक मात्रा में उत्पन्न हों उसे वृष्यरस भोजन कहते हैं। जैसे चना, उड़द, जौ, दूध, घी, श्वेतमूसरी आदि। गोंद, मेवा, मिष्ठान, पक्वान्न आदि सामग्री, कामोन्दीपन मिर्चमसाला आदि को वृष्यरस आहार कहते हैं क्योंकि इन सामग्रियों का पाचन आसानी से नहीं होता पचाने की ताकत चाहिए। कमजोर व्यक्ति पचा नहीं सकता।

प्रश्न– 1345–46 इन सामग्रियों को वृष्यरस क्यों कहा? वृष्यरस में क्यों ग्रहण किया है?

उत्तर ये आहार की सामग्रियां यदि सामान्य रूप से ग्रहण की जायें तो पचाने में दिक्कत नहीं, कष्ट नहीं होगा किन्तु अपनी उदराग्नि को सोचे समझे बिना शक्ति से अधिक मात्रा में ग्रहण कर लिया तो पाचन न होने से वायु का संतुलन बिगड़ जाने से वात पित्त कफ की वृद्धि होने से बीमारी की वृद्धि होगी, मन में बेचैनी बढ़ेगी स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण ध्यानाध्ययन में बाधा उत्पन्न होगी और लीवर, आमाशय, पक्वाशय भी बिगड़ जायेगा, किडनी फैल हो जायेगी जैसे अग्नि कम है और उसमें ईंधन अधिक मात्रा में डाल दिया तो अग्नि शीघ्र ही बुझ जायेगी ईंधन नहीं जलेगा वैसे ही उदराग्नि कमजोर है और भोजन शक्तिशाली, अधिक मात्रा में या कच्चा अग्नि से अपक्व या अधपका आहार ग्रहण किया खाया तो उदराग्नि मंद होने से भोजन पचेगा नहीं। अपच होने से पेट में दर्द, कमर में दर्द, उल्टी होना, वमन होना, मलबद्ध दोष होना, गैस बनना, डकारें आना आदि भयंकर बीमारी होने से, असाध्य रोग होने से भोग और योग दोनों से वंचित हो जाता है। भोग और योग दोनों ही प्राप्त नहीं कर पाता तथा परिवार से प्रेमालाप, आलिंगन न ले पाता है न दे पाता है। अतः ऐसे वृष्यरस का त्याग करना श्रेष्ठ है। जिससे शारीरिक स्वास्थ्य और आत्मसाधना में कठिनाई नहीं आयेगी।

प्रश्न– 1347–49 इष्ट रस किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर जो भोजन सामग्री मनोनुकूल हो, अत्यधिक राग को बढ़ाने वाली हो, गाढ़ प्रीति युक्त हो उसे इष्टरस भोजन कहते हैं। इसके दो भेद हैं। स्वादिष्ट रस और पौष्टिकरस।

प्रश्न– 1350–52 स्वादिष्ट रस किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर जो भोजन में स्वाद बढ़ाये, रुचि पैदा करें, आसक्ति पैदा कर दे उसे स्वादिष्ट रस कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं खट्टा– नींबू। मीठा– गुड़ शक्कर। कडुआ– चिरायता नीम आदि। कषायला– आंवलादि। चरपरा– मिर्चादि पदार्थ स्वादिष्ट रस कहलाते हैं। ये पदार्थ भोजन में प्रीति उत्पन्न करते हैं। इसी तरह नमक भी स्वादिष्ट और पौष्टिक है। औषधि हैं रुचिकारक है हड्डियों को मजबूत बनाता है। भोजन पचाता है, मात्रानुसार सेवन करने से वात पित्त कफ संतुलित रहते हैं किंतु प्रमाण का उल्लंघन करने से हानिकारक है आदि अनेक गुण मौजूद हैं।

प्रश्न— 1353—55 पौष्टिकरस किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर जिस भोजन से शरीर में पुष्टि हो, मजबूती उत्पन्न हो, ताकत जागृत हो ऐसे आहार को पाचन करने से शरीर में अधिक धातु और उपधातुओं की उत्पत्ति वृद्धि होती है इसलिए ऐसे आहार को वृष्यरस या पौष्टिकरस आहार कहते हैं। इस पौष्टिक आहार रस के 6 भेद हैं। नामः— दूध, दही, घी, शक्कर, नमक और तेल के सेवन से शरीर पुष्ट होता है। स्फूर्ति आती है और ऐसे पदार्थों का सेवन पाचन भाग्यवान पुण्यात्मा जीव करता है।

प्रश्न— 1356 इस प्रकार वृष्येष्ट रसयुक्त आहार ग्रहण न करने से क्या हानि है?

उत्तर इस प्रकार वृष्येष्टरस आहार ग्रहण न करने से कमजोरी आयेगी। चिड़चिड़ापन आयेगा, ध्यानाध्ययन में मन स्थिर न रहेगा, वैयावृत्ति न कर सकोगे, यात्रा करने की ताकत न रहेगी, स्थिर आसन की ताकत न होने से उपसर्ग परीषह न जीत सकोगे तब कर्मों की निर्जरा और संवर भी प्राप्त न होगा, कमजोरी के कारण मनोबल और दिमाग सही न होने से पागलपन भी प्राप्त होगा जिससे मोक्षमार्ग और समाधि साधना बिगड़ेगी। शारीरिक सुख और आत्मसुख भी प्राप्त न होगा आदि अनेक हानियां प्राप्त होती हैं।

प्रश्न— 1357 क्या वृष्येष्ट रस युक्त आहार ग्रहण न करने से सभी को कमजोरी आती है या कुछ कुछ को आती है?

उत्तर इस वृष्येष्ट रस युक्त आहार ग्रहण न करने से सभी को कमजोरी नहीं आती है, किन्हीं किन्हीं को आती है। देखा जा रहा है कि गरीब का, मजदूर का, भिखारी का आहार एकदम नीरस, रूक्ष, रूखा, सूखा होता है वे लोग नमक मिर्ची से अपने अपने क्षेत्रानुसार भोजन कर लेते हैं फिर भी अंतरंग में वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम होने से उनको उक्त आहार से ताकत आती है। ऐसे ही ऋद्धिधारक महामुनियों को आहार किये बिना उपवासों से या नीरस आहार करने से उत्कृट ताकत आती है किन्तु जिनके तीव्र वीर्यान्तराय कर्मोदय चल रहा है उनके खूब गरिष्ट, पौष्टिक, सरस आहार करते हुए भी, नाना दवाईंया खाते रहने पर भी ताकत नहीं आती ऐसा भी देखा जाता है। अतः मूल कारण वीर्यांतराय कर्मोदय और क्षयोपशम कमजोरी और ताकत के लिए समझना चाहिए। यह आहार तो कर्म का नोकर्म है, भावों का साक्षात् कर्म नहीं। फिर भी सामर्थ्य और कमजोरी के लिए ऐसा आहार का अन्वय व्यतिरेक संबंध पाया जाता है।

प्रश्न— 1358—59 तो फिर कर्मकाण्ड में 'रूक्खाहारादि बलहरं दव्वं' ऐसा क्यों कहा? रूखा आहार बल को हरने वाला नोकर्म द्रव्य है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर यह एक सामान्य नियम है कि रूखा आहार वीर्यान्तराय कर्म का नोकर्म है अर्थात् वीर्यान्तराय कर्म के तीव्रोदय से बाह्य में कमजोरी को देखकर कहा जाता है कि नीरस आहार करने से कमजोरी आई है पर वास्तव में कार्य के प्रति अंतरंग मुख्य कारण हैं भोजन सामग्री नहीं। यदि सरस भोजन को सर्वत्र ही ताकत का साधन माना जाय तो फिर गरीब, मजदूर और ऋद्धि संपन्न मुनियों को कभी भी ताकत नहीं आना चाहिए और ऐसे पौष्टिक सरस आहार करने वाले को कमजोर नहीं होना चाहिए।

प्रश्न— 1360 इस प्रकार वृष्येष्टरस युक्त आहार करने से क्या हानि है?

उत्तर अत्यधिक मात्रा में वृष्येष्टरस युक्त आहार करने से शरीर में अत्यधिक रजोवीर्य या धातु उपधातुओं की वृद्धि होने से, उपयोग की स्थिति सही न होने से, स्थिर न होने से ब्रह्मचर्य बिगड़ सकता है, बिगड़ जाता है। स्वप्न दोष उत्पन्न होगा, कषायों की वृद्धि होगी और वेदोदय होने से कामोद्रेक जागृत होगा बढ़ेगा। शारीरिक बल अधिक होने के कारण वैर विरोध, झगड़ा, मान माया कषाय की स्थिति बन जाती है आत्म साधना बिगड़ने से मोक्षमार्ग भी नष्ट होता जाता है जिससे अधःपतन अवश्यंभावी है। लोभ और क्रोध भी वृद्धिंगत होता है।

प्रश्न— 1361 वृष्येष्टरस आहार के ग्रहण करने से या त्याग से हानि है तो फिर किस प्रकार का आहार लेना चाहिए?

उत्तर अपने निज के बलाबल के अनुसार जो आहार आसानी से बिना परिश्रम के, बिना औषधि के पच जाये ऐसा आहार ग्रहण करना चाहिए तथा ऐसा आहार सात्विक होने के कारण हानिकारक नहीं है। कहा भी है 'शक्तितस्त्याग तपसी' त.सू. अ. 6 अंतरंग और बहिरंग बलवीर्य को समझकर तदनुसार त्याग तप ग्रहण करना चाहिए। तभी कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो सकता है अन्यथा संक्लेश की उत्पत्ति होने से पाप कर्म का आश्रव बंध कर भवभ्रमण होगा। नाना प्रकार की यातनायें उठानी पड़ेगी अतः सावधानी पूर्वक आहारचर्या करना चाहिए।

प्रश्न— 1362 स्वशरीर संस्कार किसे कहते हैं?

उत्तर सजाने को, शृंगारित करने को संस्कार कहते हैं। शरीर नामकर्मोदय से प्राप्त पर्याय को शरीर कहते हैं अथवा जो जीर्णशीर्ण अवस्था को प्राप्त हो उसे शरीर कहते हैं। स्व अपने को कहते हैं अर्थात् अपने शरीर को नाना प्रकार से सुगन्धित द्रव्यों से, पुष्पों से, तेलों से स्नोपाउडर से, वस्त्राभूषणों से सजाने को तथा लौकिक भौतिक नाना साधनों से शरीर के सजाने को स्वशरीर संस्कार कहते हैं। इसी तरह दूसरों को सजाने के लिए प्रयोग करने को परशरीर संस्कार कहते हैं तथा दोनों को सजाने के लिए सतत कार्य रूप में परिणत होने को उभय संस्कार कहते हैं। इन संस्कारों को मोही, कामी, रागी प्राणी ही करते हैं वैरागी नहीं। मुमुक्षु जीव नहीं करते बुभुक्षु जीव करते हैं क्योंकि ये संसारमार्गी होते हैं।

प्रश्न— 1363 संसारी प्राणी शरीर को क्यों सजाता है?

उत्तर यह मोही प्राणी, पापी जब मलमूत्र से उत्पन्न हुए, मलमूत्र से पुष्ट हुए, मलमूत्र से वृद्धि को प्राप्त हुए मलमूत्र को जन्म देने वाले शरीर को आत्मा समझ कर या सर्वस्व मानकर यह शरीर ही सबकुछ हमारा है पुनः शरीर प्राप्त करने के लिए विश्वास कर शरीर को खूब सजाता है।

प्रश्न— 1364 शरीर को संस्कारित करने का क्या फल है?

उत्तर शरीर में आसक्ति होना, शृंगार में समय लगाना, विषय भोगों में मन का फंसना फंसाना, नीचगोत्र का आश्रव बंध होना और नीचगोत्र का आश्रवबंध आदि के दो गुणस्थानों में मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी कषायोदय से होता है और इस कर्म का फल तिर्यंच नरकगति में तथा मलेच्छ मनुष्यों में, हीनाचारी मनुष्यों में, शूद्रों में जन्म होता है जो सबसे निन्दित गर्हित हैं इनके उदय

होता है। यहाँ पर पूर्व संस्कार वश पुनः नवीन पाप कर्मों को बांध कर अधोगति में जाता है।

प्रश्न— 1365 मनुष्य जानता हुआ भी यह कार्य क्यों करता है?

उत्तर इसका कारण यह है कि इस जीव का संसार भ्रमण ज्यादा है। अभी अवसर्पिणी काल के आगे आनेवाले शेष पंचमकाल के, छठवें काल के तथा उत्सर्पिणी के छठवें काल के पंचमकाल के नाना प्रकार के दुःख भोगना है। इन कार्यों को जानता हुआ भी, समझाने पर भी तथा स्वयं के जीवन में दुर्घटनाओं से गुजरता हुआ दुःख भोग रहा है। दुःख प्राप्त करने वाले जीवों को देख रहा है फिर भी शराबी के समान बार बार उसमें फंसता है, रमता है। यह आश्चर्य की बात है शरीर को चाहना, श्रृंगारित करना, मलेच्छपना है, मलेच्छाचरण है क्योंकि मल + इच्छ अवर्ण इवर्ण ए। अ + इ मिलकर ए हो जाता है जिसका अर्थ है मल को चाहना।

प्रश्न— 1366 शरीर संस्कार का त्याग क्यों कराया?

उत्तर अब उपरोक्त अवस्था तथा नाना दुःख, अपमान प्राप्त न हो, मलेच्छावस्था, नीचगति नरक तिर्यंच गति की प्राप्ति न हो, संसार के नाना प्रकार के दुःख प्राप्त न हो, जन्म मरण के दुःख न हो तथा वैराग्य की प्राप्ति हो, ब्रह्मचर्य का पालन हो इसलिए शरीर संस्कार का त्याग कराया।

प्रश्न— 1367 स्वशरीर संस्कार त्याग नाम की भावना का चिन्तन कौन सा जीव करता हैं?

उत्तर जो निकट भव्य और मोक्षमार्गी है या मोक्षमार्ग में प्रवेश करने का इच्छुक है, पाप से भयभीत है, ब्रह्मचर्य व्रत को निर्दोष पालना चाहता है। आश्रव बंध से विरक्त है। ऐसा जीव चाहे मिथ्यादृष्टि हो, सम्यग्दृष्टि हो, देशव्रती हो, मुनि हो इस पवित्र भावना का सतत चिन्तन करते हैं।

प्रश्न— 1368 किस भावना की उत्पत्ति किस इंद्रियजय से होती है?

उत्तर प्रथम भावना की उत्पत्ति कर्णेंद्रियजय से होती है। दूसरी भावना की उत्पत्ति चक्षुइंद्रियजय से होती है। तीसरी भावना की उत्पत्ति मन वश में करने से होती है। चौथी भावना की उत्पत्ति रसना इंद्रिय को वश में करने से होती है। और पाँचवी भावना की उत्पत्ति स्पर्शेंद्रिय को वश में करने से होती है अथवा इंद्रियों को वश में करने के लिए, कषायों को जीतने के लिए, कर्मों के आश्रव बंध को रोकने के लिए, पूर्वबद्ध कर्मों की विशेष निर्जरा कराने के लिए, ब्रह्मचर्यव्रत का निर्दोष पालन करने के लिए इन भावनाओं का पुनः पुनः चिंतन करना चाहिए।

प्रश्न— 1369 घ्राणेंद्रिय को वश में करने के लिए अलग से भावना क्यों नहीं बताई?

उत्तर घ्राणेन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न लब्धि और उपयोग को भावघ्राणेन्द्रिय कहते हैं। इस घ्राणेंद्रिय को वश में करने के लिए अलग से भावना इसलिए नहीं बताई है कि यदि अलग से बताते हैं तो छह भावनायें हो जाती हैं और प्रारम्भ में सूत्रकार ने प्रत्येक व्रत की पाँच पाँच भावनाओं को कहने की प्रतिज्ञा की है। इस कारण अलग से भावना नहीं बताई है किन्तु घ्राणेंद्रिय को वश में करने के लिए जो फूल, इत्र, अगर, तगर चन्दन सुगन्धित द्रव्यों को सूंघा है, पाप कर्म का उपार्जन किया है सो उस कर्म का संक्रमण कराने के लिए घ्राण से संबंधित मन की विषय वासना का त्याग करना पूर्वरतानुस्मरण त्याग भावना है। इससे ही घ्राणेंद्रिय वश में होती है।

प्रश्न— 1370—72 ब्रह्मचर्याणुव्रत के अतिचार किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर ब्रह्मचर्याणुव्रत लेने के बाद कामवासना के निमित्त स्व या पर के निमित्त उत्पन्न हुई मलिनता को अतिचार दोष कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं। 1. अन्य विवाहाकरण 2. अनंग क्रीड़ा 3. विटत्व 4. विपुलतृषा 5. इत्त्वरिकागमन। ये कषायों और वेदोदय से, प्रमाद से, अज्ञान से, असमर्थता से या कुसंगति से दबाववश या प्रेमवश अतिचार दोष उत्पन्न हो जाते हैं।

प्रश्न— 1373 अन्य विवाहाकरण अतिचार दोष किसे कहते हैं?

उत्तर जिसका कोई मार्गदर्शक न हो, सहायक न हो उसका विवाह कराना कदाचित् अणुव्रतधारी के लिए दोषयुक्त होने पर भी क्षम्य है क्योंकि यहाँ पर ब्रह्मचर्याणुव्रत का कथन है, प्रकरण है। यहाँ पर कथन ब्रह्मचर्य धर्म का, ब्रह्मचर्य प्रतिमा का, ब्रह्मचर्य महाव्रत का नहीं है। अतः जिसके सहायक हैं, रक्षक हैं, जानकार हैं, फिर भी उनका विवाह करना कराना अथवा अपना ही ब्रह्मचर्याणुव्रत नियम लेने के बाद पुनः विवाह कर लेना अन्य विवाहाकरण अतिचार कहते हैं। क्योंकि अन्यपद के दोनों अर्थ होते हैं। अन्य दूसरा या दूसरों का जैसे महाराज श्री के ये शिष्य हैं और भी अन्य शिष्य हैं। यह अन्यपद दूसरे शिष्य हैं इस अर्थ में आया है। अतः अन्य का अर्थ दूसरा भी होता है। इसलिए अपना ही दूसरा विवाह कर लेना अन्यविवाहाकरण कहा है।

प्रश्न— 1374 जिसका कोई सहायक नहीं है असमर्थ है अरक्षक है उसका तो विवाह करा सकते हैं?

उत्तर असहाय बालक बालिकाओं का करा सकते हैं जो सम्यग्दर्शन का व्यवहारिक स्थितिकरण और वात्सल्य अंग हैं इससे समाज की मर्यादा बनी रहती है। यदि उनका सम्बन्ध नहीं कराया तो जो मन को रोकने में और ब्रह्मचर्यव्रत पालन करने में असमर्थ है तो वह पागल हो जायेगा या पशुवत् चेष्टा करेगा या करेगी। जिससे उसका जीवन बिगड़ेगा, माँ बाप की, समाज की, धर्म की बदनामी होगी अतः कमजोर की रक्षा करना समर्थ का कर्तव्य है, क्षत्रियों का धर्म है।

प्रश्न— 1375 यदि गृहस्थ ब्रह्मचर्याणुव्रती अपने पुत्र पुत्रियों का या असमर्थों का विवाह न कराये तो क्या आपत्ति है, क्या हानि है?

उत्तर अपने पुत्र पुत्रियों का विवाह न कराये और ये अपने मन को वश में करने के लिए असमर्थ है तब इनका तन मन बिगड़ने से जीवन और धर्म बदनाम होगा। इस कारण कोई भी गृहस्थ अणुव्रती नहीं बन सकता तथा एक के व्रती बनने पर पूरे परिवार को भी व्रती बनना होगा। जैसे नवकोटियों से ब्रह्मचर्याणुव्रत का पालन किया जाता है वैसे ही परिग्रह परिमाण व्रत का भी पालन किया जाता है। जो आपका कहना है कि व्रती गृहस्थ अपने पुत्र पुत्रियों का विवाह न कराये तो विवाहादि की चर्चा भी न करे, न जन्मोत्सव मनाये, न वस्त्राभूषण बनवाये, मकान, दुकान, व्यापार सब बन्द कर दें यदि नहीं करेगा तो परिग्रहप्रमाण व्रत में दोष लगेगा। अतः गृहस्थ योग्यायोग्य का, बलाबल का विचारकर स्वनिमित्तक व्रत लेता है स्वयं के पापों को, कर्मों को नष्ट करने के लिए नवकोटियों से व्रत को पालता है। गृहस्थ के व्रत का नाम अणुव्रत या स्थूलव्रत

है। जिनके द्वारा आत्मा में संक्लेश न हो, परिवार के पालन पोषण करने में बाधा की उपस्थिति न हो, बदनामी न हो उसीका नाम व्रत है अतः नियमव्रत उसीका नाम है तभी तो मोक्षमार्ग बनता है। इसलिए अपना ही दूसरा विवाह करना अथवा समर्थों का, सहायकों का, रक्षकों का विवाह कराना अन्य विवाहाकरण अतिचार दोष हैं। यदि अपने पुत्र पुत्रियों के विवाह नहीं कराये तो वे ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी बन नहीं सकते हैं तब मन को अपने आधीन करने में असमर्थ होने के कारण पागलपने को, उन्मादपने को प्राप्त हो जायेंगे यही हानि है।

प्रश्न– 1376 अनंगक्रीड़ा नाम का अतिचार दोष किसे कहते हैं?

उत्तर कामसेवन के निश्चित अंग योनि लिंग को छोड़कर शेष अंगों से, अन्य स्थानों से या अन्य जड़ साधनों से काम की बाधा शान्त कर देने को या तृप्ति कर लेने को या तृप्ति प्रदान करा देने को अनंगक्रीड़ा अतिचार कहते हैं।

प्रश्न– 1377–78 इस अनंगक्रीड़ा को अतिचार दोष क्यों कहा? अनाचार दोष क्यों नहीं कहा है?

उत्तर देवों के यहाँ जो मनुष्यों के निश्चित अंगों को छोड़कर शेष अंगों से क्रीड़ा करने को अनंगक्रीड़ा अतिचार दोष कहा है उसी क्रीड़ा को देवगति में काय प्रवीचार नाम से कहा है जो अनाचार रूप ही है और वे नाम स्पर्शप्रवीचार, रूपप्रवीचार, शब्दप्रवीचार और मनप्रवीचार है। ये अन्य प्रवीचार मनुष्यों के क्वचित् कदाचित् होने से अतिचार दोष कहे हैं तथा पुनः पुनः अधिकतर होने लगे तो अनाचार दोष हो जाते हैं। इस कारण व्रतियों को अपने व्रत की रक्षा करने के लिए प्रमाद छोड़कर अनंगक्रीड़ा से बचने के लिए सतत सावधान रहना चाहिए।

प्रश्न– 1379 इस अनंगक्रीड़ा नामक अतिचार के स्वामी कौन हैं?

उत्तर अनन्तानुबन्धी कषाय और अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदयाभाव रूप क्षय होने से तथा प्रत्याख्यानावरण कषाय का तीव्रोदय होने से और बाह्य में कुसंगति या प्रमाद पूर्वक गलत आहार विहार होने से यह अतिचार दोष उत्पन्न होता है, हो जाता है। इस अनंगक्रीड़ा नामक अतिचार के स्वामी आर्यखण्ड के कर्मभूमिज व्रती प्रतिमाधारी गर्भजन्म वाले आर्य मनुष्य मनुष्यनी तथा मलेच्छ मनुष्य मनुष्यनी है।

प्रश्न– 1380 इन मनुष्य मनुष्यनी के अलावा शेष मनुष्य मनुष्यनी या तिर्यंच तिर्यंचनी स्वामी क्यों नहीं हैं?

उत्तर हाँ, भोगभूमिज आर्य आर्याओं के व्रत होता नहीं है। मलेच्छों में तथा मलेच्छखण्डों में उत्पन्न हुए, वहीं पर निवास करने वालों के धर्म सम्बन्धी और धर्म के आचार विचार हीन होने से, समीचीन कार्यक्रम न होने के कारण संयम हीन हैं। तिर्यंचों के अनंग क्रीड़ा का प्रसंग ही नहीं आता है क्योंकि तिर्यंच पशुपक्षी या जानवरों में केवल ऋतुमति के समय, गर्भधारण की योग्यता के समय ही काम क्रीड़ा की भावना उत्पन्न होती है और काम क्रीड़ा करते हैं, शेष अन्य समयों में नहीं। अतः इन प्राणियों का जीवन अनाचारमय होता है। कारण तीव्रकषाय और तीव्रवेदोदय होने के कारण अनाचारमय प्रवृत्ति होती है, अतिचारमय नहीं।

प्रश्न– 1381 अनंगक्रीड़ा रूप प्रवृत्ति किस किस इंद्रिय विषय और कषायों से उत्पन्न

होती है जागृत होती है?

उत्तर स्पर्शनेंद्रिय की स्पर्श से, रसनेंद्रिय की रसना से, घ्राणेंद्रिय की गंध से, चक्षुइंद्रिय की देखने से, कर्णेंद्रिय की सुनने से और मन में अनर्गल विचार करने से अनंगक्रीड़ा के भाव होते हैं तथा स्पर्शेंद्रिय में भी काय से प्रवीचार में, कामक्रीड़ा में कबूतरों की तरह पुनः पुनः रमण भाव, काम क्रिया करने से कामतीव्राभिनिवेश नाम का अतिचार उत्पन्न होता है। इसलिए आत्मा का अहित करने वाले विषय कषायों से व्रतियों को सदा सावधान रहना चाहिए। नहीं तो बेलगाम के घोड़े की तरह ये विषय कषाय अधोगति में ले जाकर पटक देंगे। अतः प्रमादी मत बनो।

प्रश्न– 1382 यह अनंगक्रीड़ा अतिचार किसको लगता है और किसको नहीं?

उत्तर यह दोष व्रती प्रतिमाधारी को भी लगता है और महाव्रती मुनियों को भी लगता है, अव्रतियों को नहीं क्योंकि यहाँ अनाचार प्रवृत्ति होती है क्योंकि जो बैठेगा, खड़ा होगा, चलेगा दौड़ेगा वही गिरेगा। जो धरती में लेटा है वह कहाँ से गिरेगा? इसे गिरने का मौका, प्रसंग ही प्राप्त न होगा अथवा जो व्यापार करेगा वही घाटा और मुनाफा उठायेगा, फल भोगेगा। जो व्यापार नहीं करेगा उसे घाटा मुनाफा कुछ भी न होगा। इसी तरह दोष व्रती को लगेंगे, अव्रती को नहीं।

प्रश्न– 1383 यह अतिचार दोष क्यों लगता है?

उत्तर जब किसी व्रती श्रावक या श्राविका के तीव्र वेद का उदय चल रहा है और अधिक पौष्टिक गरिष्ठ भोजन करने से, काम सेवन के लिए परस्पर के अंगों को अभूतपूर्व मानकर देखने से, तदनुकूल स्पर्श करने से, आहारपानी में शरीर की पुष्टि के लिए उपयोग लगाने से तथा जो कामसेवी हैं, अयोग्य आचार विचार वाले हैं, शरीर प्रदर्शन करने वाले हैं उनकी संगति से, परस्पर में दम्पति का वियोग होने से, बीच में व्यवधान होने से, अकेलेपन का अनुभव होने से तथा मन को न सम्हालने से एकाएक आकस्मिक संयोग होने पर अनंगक्रीड़ा तथा अनंगक्रीड़ा के परिणाम उत्पन्न होकर स्व पर इच्छा से कार्य रूप में परिणमन कर जाते हैं।

प्रश्न– 1384 विटत्व अतिचार दोष किसे कहते हैं?

उत्तर काम भोग की भावना उत्पन्न करने वाले, बढ़ाने वाले, पद विरुद्ध, धर्म विरुद्ध, सज्जनों के विरुद्ध वचन प्रयोग को विटत्व कहते हैं। इन वचनों के प्रयोग से लोक में निन्दा होती है, बदनामी होती है, कोई विश्वास नहीं करता, माँ बहिनें भी परहेज करने लगती हैं तथा निकट सम्बन्धी रिश्तेदार नातेदार भी लज्जित और भयभीत हो जाते हैं।

प्रश्न– 1385 विटत्ववचन क्यों बोले जाते हैं?

उत्तर काम वासना की भावना पूर्वक कामवर्धक आवाज करते हुए योनि को, स्तनों को, लिंग को व्यक्तियों के सामने खुजाना, चुस्त और पतले वस्त्र धारण कर अंग प्रदर्शित करना इन अंगों को टकटकी लगाकर देखना, इन अंगों को ऊपर उठाकर आवाज करते हुए दिखाना, नग्न पिक्चर देखना, संगीत सुनना, कामवर्धक श्रृंगारालंकार धारण करना, इशारा करना, कामवर्धक मानसिक तनाव को बताने वाले वचन बोले जाते हैं क्योंकि इन वचनों से सामान्य वैरागी भी रागी बनकर काम चेष्टाओं में फंस जाते हैं इसलिए इन्हें अशिष्ट वचन कहते हैं। इन विटत्व वचनों से अपनी और सामने वाले की लज्जा मर्यादा प्रायः कर समाप्त हो जाती है।

प्रश्न– 1386–87 इन वचनों को कौन बोलता है? और कौन नहीं बोलता है?

उत्तर जो निर्लज्य है, कामी, मान मर्यादा का जिसे ख्याल नहीं है, अनाड़ी है, जो धर्म की, माँ बाप की, जाति कुल की मर्यादा और अपनी इज्जत का भी ख्याल नहीं ऐसा व्यक्ति इन वचनों को बोलता है तथा जो शीलवान हैं, ब्रह्मचर्य को पालते हैं पालने के इच्छुक हैं, पाप से भयभीत है, मुमुक्षु हैं, लज्जावान हैं, धर्म की, माँ बाप की, जाति कुल की, मर्यादा को जानते हैं, लोक निन्दा से भयभीत हैं सदाचार सद्विचार वाले हैं ऐसे सज्जन पुरुष विटत्ववचन नहीं बोलते हैं, न सोचते हैं।

प्रश्न– 1388 विवाहित गृहस्थ श्रावक श्राविकायें दम्पति इस प्रकार के वचन तो बोल सकते हैं क्या?

उत्तर जो दम्पति श्रावक श्राविकायें हैं वे पर्व और व्रत के दिनों को छोड़कर, शेष चालू दिनों में कदाचित् कामवर्धक, श्रृंगारवर्धक, रागवर्धक वचन प्रयोग कर लेते हैं क्योंकि पति पत्नी का सम्बंध है। दूसरों के साथ, अन्यों के साथ अशिष्ट वचन प्रयोग, पद विरुद्ध वचन प्रयोग नहीं करते हैं क्योंकि पापभीरू हैं, कर्मबन्ध से डरते हैं और धर्म भावना है।

प्रश्न– 1389 अशिष्ट वचनों को व्रती क्यों नहीं बोल सकता है शब्द तो पुद्गल है उससे गुण दोषों का क्या सम्बन्ध है?

उत्तर व्रती मोक्षमार्गी है, मोक्षमार्ग में गमन कर रहा है और अशिष्ट वचन प्रयोग संसारमार्ग है। दोनों मार्गों पर पथिक एक साथ गमन कर नहीं सकता। इसी तरह मोक्षमार्ग संसार मार्ग, योगमार्ग भोगमार्ग एक साथ एक जीव में एक समय में हो नहीं सकता है। अतः व्रती ऐसे वचनों को नहीं बोलता है। कदाचित् वाचालपने के कारण या प्रमाद वश, असावधानी पूर्वक, अज्ञानता सहित कुसंगति से बोल दिया तो अतिचार दोष लगा और अधिक बोले तो अनाचार दोष हो जाता है तथा शब्द पौद्गलिक होने पर भी भावों का संकेत पाकर प्राणियों के कल्याण अकल्याण में, गुण दोष में, पुण्य पाप में, सुख दुःख में सहायक होते हैं। अतः उत्थानकारक वचनों का प्रयोग करना चाहिए और पतनकारक वचनों का त्याग करना चाहिए।

प्रश्न– 1390 विटत्ववचन दोष के स्वामी कौन से जीव हैं तथा मुनिजन ऐसे वचनों को बोल सकते हैं क्या?

उत्तर विटत्ववचन के स्वामी प्रमादी जीव हैं। जो आरम्भ परिग्रह से सहित हैं, श्रृंगार अलंकार युक्त हैं, गृहस्थ हैं, विषय कषायों से पीड़ित हैं। मुनि प्रमादी होने से तीव्र प्रमाद के कारण अशिष्ट वचन विटत्व वचन कभी कभी विट रूप में प्रयोग कर लेते हैं। कारण कुछ पूर्व का दुस्संस्कार होने से, असंयमी अनाचारी गृहस्थों की संगति होने से, मुनिजन भी ऐसे विटत्व वचनों को बोल लेते हैं किन्तु जो प्रमाद को छोड़ने के इच्छुक हैं, निर्मल, स्वच्छ ध्यान कर अनादिकालीन कर्मों को क्षय कर मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं तो उनको ऐसे वचनों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

प्रश्न– 1391 विटत्ववचनों के प्रयोग से क्या हानि है?

उत्तर इन अशिष्ट वचनों के प्रयोग से हर सज्जन व्यक्ति श्रावक श्राविकायें लज्जित हो जाते हैं। वैर

विरोध बन जाता है, मर्यादायें टूट जाती है। विश्वास टूट जाता है। सज्जन साथ नहीं देते हैं, भयभीत हो जाते हैं, मान मर्यादा नष्ट हो जाती है। लज्जा समाप्त हो जाती है। माँ बाप, भाई बहिन, बाल बच्चे भी या गुरुजन, शिष्यजन, मित्रमंडली, सगेसंबंधी और व्यवहारीजन समुदाय भी विश्वास खो बैठते हैं। विषयकषायों की उत्पत्ति होने के कारण, मन में संक्लेश होने से मोक्षमार्ग कलंकित हो जाता है। प्रायः कर नष्ट भी हो जाता है। आदि हानि है।

प्रश्न– 1392 विपुलतृषा अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर जिस प्रकार कबूतर अत्यधिक कामी होकर के पुनः पुनः अनेक बार मैथुन करता है तो भी तृप्त नहीं होता है उसी प्रकार जो व्रती बनकर भी पुनः पुनः काम सेवन की चेष्टा करता हुआ भी, मन वचन काय की प्रवृत्ति करता हुआ भी तृप्त नहीं होता। जिस तरह भौंरा पुष्प पर गुनगुनाता है उसी तरह कामी कामिनी के प्रति, कामिनी कामी प्रति पुनः पुनः गुनगुनाते हैं सो इसे ही विपुलतृषा नामक अतिचार दोष कहते हैं। वह भौंरा फूल में से सुगन्धि के लिए वहीं वहीं मंडराता है, आसक्त होकर पुष्प पर बैठा और पुष्प बन्द हो गया। आसक्ति के कारण पुष्प को छोड़कर बाहर न निकल सका, हाथी ने आकर तोड़कर पुष्प को खा लिया भौंरा मर गया इसी तरह ये कामीजन कामक्रीड़ा में मंडराते रहते हैं। इसीकी वार्ता, स्पर्शन, आलिंगन करते रहते हैं। कामी जीव मर जाता है पर छोड़ता नहीं इसे ही विपुल तृषा नाम का अतिचार दोष कहते हैं।

प्रश्न– 1393 विपुलतृषा नाम के अतिचार का सम्बन्ध क्या मन से है या वचन से है या काय से है?

उत्तर विपुलतृषा नामक अतिचार का सम्बन्ध सीधा मन से है, वचन काय से नहीं क्योंकि देखा जाता है कि बोलना बन्द हो गया, गमन क्रिया समाप्त हो गई, इंद्रियां शिथिल हो गई, शरीर शिथिल हो गया, उठने बैठने की, चलने की, फिरने की ताकत, खाने पीने की, सोने की ताकत नहीं रही, परिवार को बुलाकर उनको देखने की इच्छा प्रकट कर बुलाता है और बुलवाता है, वार्तालाप करता है। मानसिक और वाचनिक चेष्टायें करता है। मन में काम वासना जीवित है किन्तु शारीरिक बल कमजोर होने के कारण चेष्टायें नहीं कर पाता परन्तु भाव में विषयकषाय होने से विवेकहीन होकर भट्ठा की अग्नि के समान अंदर ही अंदर जला करता है।

प्रश्न– 1394 क्या मैथुन क्रिया के अलावा शेष समस्त विषयों में विपुलतृषा नाम का अतिचार दोष नहीं आता?

उत्तर ब्रह्मचर्यव्रत में बाधा पाँचों इंद्रिय विषयों में रमण करने से आती है तथा पाँचों पापों में और सप्तव्यसनों में भी विपुलतृषा तीव्र लालसा उत्पन्न होती है। जैसे हिंसा की तीव्र लालसा, झूठ पाप की लालसा, चोरी करने की लालसा, परिग्रह संचय करने की, संरक्षण, संवर्धन करने की लालसा देखी जाती है तभी तो तीव्र रौद्रध्यान से सातवें नरक तक की आयु बांध लेता है। अतः सभी प्रकार के पाँचों इंद्रियों के शुभाशुभ विषयों में तीव्र लालसा उत्पन्न होती है। परन्तु यहाँ पर ब्रह्मचर्याणुव्रत के अतिचारों का वर्णन, कथन, प्रकरण होने से इसका कथन किया शेष विपुलतृषाओं का कथन नहीं किया। कुशील पाप को छोड़कर शेष चार पापों में अर्थात् एक एक

पाप में एक एक रौद्रध्यान होता है जैसे हिंसा पाप में हिंसानंदी रौद्रध्यान, झूठ पाप में मृषानंदी रौद्रध्यान, चोरी पाप में चौर्यानन्दी रौद्रध्यान, परिग्रह पाप में परिग्रहानन्दी रौद्रध्यान होता हैं किन्तु कुशील पाप में चारों ही रौद्रध्यान आ जाते हैं। काम सेवन में संख्यात, असंख्यात, अनन्त जीवों की विराधना होती है। इतने जीवों की विराधना होने पर भी आनन्द मानना हिंसानंदी रौद्रध्यान है। संसार में धर्म विवाह करने वाले भी, जानते हुए भी मुँह से नहीं बोलते हैं कि या मैं कामसेवन करता हूँ या बदल कर बोलता है अतः झूठ पाप है और इसमें आनन्द मानना मृषानंदी रौद्रध्यान है। छिपकर के काम सेवन करते हैं, खुलेआम नहीं करते हैं। अतः छिपकर कामसेवन करने से चोरी पाप हुआ और मेरी क्रिया को किसी ने न देखा है, न सुना है ऐसी अपनी इस कला पर प्रसन्न होना चौर्यानन्दी रौद्रध्यान है। इसी तरह काम सेवन माया कषाय, लोभकषाय, रतिकषाय और वेदोदय का कार्य है। मोहकर्म अन्तरंग परिग्रह है। इसके साथ बाह्य सामग्री को ग्रहण किया है। दोनों प्रकार के परिग्रह में आनन्द मानना परिग्रहानन्दी रौद्रध्यान है। इस प्रकार काम सेवन में पाँचों पाप, सप्त व्यसन, चारों रौद्रध्यान बिना बुलाये अपने आप आ जाते हैं।

प्रश्न– 1395 इस दोष का स्वामी कौन सा जीव है और कौन जीव नहीं है?

उत्तर **इस दोष का स्वामी व्रती श्रावक श्राविका है, अव्रती नहीं। मुनि इस दोष के अधिकारी नहीं क्योंकि वे महाव्रती हैं।**

प्रश्न– 1396 इस दोष के अधिकारी मुनिजन क्यों नहीं होते हैं?

उत्तर **क्योंकि मुनि अवस्था में तीन चौकड़ी कषायों का उदयाभाव होने से संयमभाव होता है, महाव्रत धारण किये जाते हैं संज्वलन कषाय का तीव्रोदय होने से और वेदकर्म का मंदोदय होने से काम वासना को काम रूप से परिणमन कराने में असमर्थ होता है, मनरूप से मैथुन संज्ञा होती है, पर वह जल की रेखा के समान मन रूप से उत्पन्न होकर मन में ही समाप्त हो जाती है। दूसरी बात यह है कि जिस प्रकार गृहस्थ के पास पत्नी 24 घंटे या रात्रिभर या अधिकतर रहने से कामक्रीड़ा, कामकथा आदि सब बन जाते हैं क्योंकि गृहस्थ को पाप से भय नहीं, लज्जा नहीं। कौन किसे क्या कहेगा? कारण सभी गृहस्थों की चर्या एकसमान होती है किन्तु मुनियों के पास स्त्रियां होती नहीं है। क्योंकि वे त्यागी हैं। श्रावक श्राविकाओं का सम्बन्ध केवल आहार में, गुरुदर्शन पूजन में, धर्मोंपदेश में होता है शेष समय में नहीं। मुनिजन रात्रि में अकेले रहते नहीं तब दिन में भी अकेले कैसे रह सकते हैं? क्योंकि संघ में मुनि आर्यिका श्रावक श्राविकायें रहते हैं। तब मुनियों के पाप की वासना रूप विपुलतृषा कैसे हो सकती है? धर्म की, आत्मसाधना की, मोक्षमार्ग की, विपुलतृषा, तीव्र आकांक्षा हो सकती है किन्तु पाप की नहीं होगी। इस कारण मुनियों के यह अतिचार दोष नहीं बनता, न लगता है। कदाचित् असावधानी पूर्वक गलत आहार, विहार, संगति, चर्चा, पठनपाठन होने से तथा तदनुकूल चिन्तन होने से दुर्भाग्यवशात् कामवासना स्वरूप विपुलतृषा परिणाम बना कि वह मुनिपद से गिरा, मुनिपद में न रहकर रौद्रों की तरह वस्त्र धारण कर गृहस्थ हो जायेगा जो आजकल प्रत्यक्ष दिख रहा है। बाल्यकाल में अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रत लेकर, दिगम्बर मुनि, आर्यिका आदि बनकर भी स्वच्छन्द आचार विचार होने से पतन कर, गिर कर तन मन से पुनः वापिस गृहस्थ बन गये।**

प्रश्न— 1397 इत्वरिकागमन नामक अतिचार दोष किसे कहते हैं?

उत्तर कामवासना पूर्वक दुर्भावना सहित, व्यभिचारिणी स्त्रियों के पास आने जाने को, निर्लज्ज तथा पाप से निर्भय होकर, तन मन धन और धर्म की परवाह न कर, जाति कुल की लज्जा मर्यादा का ध्यान न रखकर, गमनागमन करने कराने को इत्वरिकागमन नामक अतिचार दोष कहते हैं। यह दोष गृहरागी व्रतियों को लगता है अव्रतियों को नहीं।

प्रश्न— 1398 इत्वरिका किसे कहते हैं?

उत्तर लज्जा मर्यादा को, शीलव्रत को नष्ट कर स्वेच्छा से मनमाना आचरण करने वाली को इत्वरिका कहते हैं। देव शास्त्र गुरु की साक्षी, पंचों की साक्षी, माँ बाप की, भाई बन्धुओं की साक्षी, गृहस्थाचार्य की साक्षी, अग्नि की साक्षी, परस्पर में जिसके साथ पाणिग्रहण संस्कार हुआ है ऐसे पति को छोड़कर पर पुरुष के साथ रमण करने वाली को इत्वरिका व्यभिचारिणी स्त्री कहते हैं। ऐसी व्यभिचारिणी स्त्री पति सहित, पति के बिना व्यभिचारिणीस्त्री, त्यक्ता व्यभिचारिणी, विधवा व्यभिचारिणी स्त्री, क्वांरी व्यभिचारिणी स्त्री को इत्वरिका व्यभिचारिणी स्त्री कहते हैं।

प्रश्न— 1399 पति सहित व्यभिचारिणी इत्वरिका स्त्री किसे कहते हैं?

उत्तर पति के साथ रहने वाली स्त्री पति से कामक्रीड़ा में तृप्ति न होने से, परपुरुष के साथ रमण करने वाली स्त्री को पति सहित व्यभिचारिणी स्त्री कहते हैं।

प्रश्न— 1400 पति रहित व्यभिचारिणी इत्वरिका स्त्री किसे कहते है?

उत्तर पति मौजूद है और त्याग भी नहीं किया है, न मिलन हो रहा है किन्तु पति सर्विस के लिए, व्यापार के निमित्त, यात्रा के निमित्त या किसी अन्य प्रयोजन वश बाहर परदेश चले गये तब मन को न सम्हालने के कारण परपुरुष से रमण करने वाली स्त्री को पति रहित व्यभिचारिणी स्त्री कहते हैं क्योंकि ऐसा पति मौजूद होने पर भी ना के बराबर है।

प्रश्न— 1401 त्यक्ता व्यभिचारिणी इत्वरिका स्त्री किसे कहते हैं?

उत्तर पति मौजूद है, पास में हो या दूर हो परन्तु मन वचन काय से या वचन काय से या काय से त्याग दिया है, पति प्रेम से वंचित है। ऐसी परपुरुषगामिनी को त्यक्ता इत्वरिका कहते हैं।

प्रश्न— 1402 विधवा व्यभिचारिणी स्त्री किसे कहते हैं?

उत्तर जिसका लौकिक सांसारिक विषय भोगों में सहायक ऐसा पति मर गया है उसे विधवा स्त्री कहते हैं। ऐसी परपुरुष से काम सेवन करने वाली स्त्री को विधवा व्यभिचारिणी स्त्री कहते हैं।

प्रश्न— 1403 क्वांरिका व्यभिचारिणी स्त्री किसे कहते हैं?

उत्तर जिस बालिका ने अभी माँ बाप की, पंचों की, अग्नि की साक्षी किसी को स्वीकार नहीं किया, पति नहीं बनाया फिर भी परपुरुष को क्वांरे या विवाहे को प्रेम से या बलात् स्वीकार कर काम सेवन करने वाली को क्वांरिका इत्वरिका स्त्री कहते हैं।

प्रश्न— 1404 ब्रह्मचारिणी, सन्यासिनी, साध्वी व्यभिचारिणी स्त्री किसे कहते हैं?

उत्तर यद्यपि ये महापुरुषार्थ को धारण करने वाली हैं। महान तपस्विनी हैं फिर भी पूर्व संस्कार वश

तथा वर्तमान की असावधानी पूर्वक पापी, महाकलंकी गृहस्थों की या अधोगामी नामधारी पापी, मायावी त्यागियों के संसर्ग से पाप कार्यों में फंस जायें। काम सेवन मन से या तन से, मन से वचन से करने लगें या मन वचन काय से करने लगें तो इन्हें ब्रह्मचारिणी सन्यासिनी इत्वरिकास्त्री कहते हैं। क्योंकि दुराचार भी अनादि काल से चला आ रहा है।

प्रश्न– 1405 इन इत्वरिका स्त्रियों के साथ गमनागमन करने को दोष क्यों कहा?

उत्तर क्वचित् कदाचित् अपना मन वचन काय शुद्ध है, किसी प्रकार का विकार नहीं है, कलंक नहीं है। फिर भी बार बार संगति करने से, वार्तालाप करने से मन में विकार उत्पन्न हो सकता है। लोक में निन्दा, तिरस्कार हो सकता है। जिससे अपना तन मन धन और धर्म ये चारों नष्ट हो सकते हैं अतः जीवन को, परिवार को, समाज को सुरक्षित रखने के लिए दोष बताया है। अतः जो पाप भीरू हैं वे इनकी संगति वार्तालाप करना त्याग करें छोड़ दें।

प्रश्न– 1406 निज पत्नी का भी त्याग करना चाहिए क्योंकि भाव हिंसा बराबर होने से दोष ही है इसलिए त्याग करना ही श्रेष्ठ है?

उत्तर किसी भी प्रकार की स्त्री हो द्रव्य हिंसा तो बराबर होती है केवल भाव हिंसा में हीनाधिकता पाई जाती है जो समस्त प्रकार से अंतरंग बहिरंग पाप से भयभीत हैं वे तो क्या निज पत्नि या परस्त्री आदि सभी का त्याग करें यही उत्तम मार्ग है किन्तु इस प्रकार कार्य करने में जो असमर्थ हैं। वे सर्वप्रथम परस्त्रियों और वेश्याओं का हमेशा के लिए त्याग करें तथा अभ्यास करते करते पर्व दिनों में और फिर चालू दिनों में भी अपनी स्त्री का त्याग भी करते जायें अथवा पर के साथ रमण करने से जिस प्रकार तन मन धन धर्म की हानि होती है वैसी हानि अपनी पत्नी के साथ रमण करने से नहीं होती है फिर भी अधिकता होने से तनादि की हानि होती ही है। तभी तो महाव्रतियों को सभी का त्याग कराया तथा जो श्रावकगण महाव्रतों को धारण करने के लिए उत्सुक हैं उन्हें निज पत्नि का भी त्याग करना चाहिए।

प्रश्न– 1407 वेश्या और परस्त्री में क्या अंतर है जबकि ये दोनों ही पर हैं?

उत्तर वेश्या हर एक व्यक्ति के साथ रमण करती है उसकी यही आजीविका है उसके पास मर्यादा, लज्जा, भय नाम की कोई वस्तु नहीं है, खुलेआम इसका व्यापार चलता है किन्तु परस्त्री लज्जा मर्यादा सहित होने से हर एक के साथ में रमण नहीं करती किंतु भयभीत होती हुई छिपकर करती है वेश्या जैसा इसका व्यापार नहीं है, न वैसा जीवन है। वेश्या के कोई एक स्वामी नहीं होते किन्तु परस्त्री का कोई न कोई अधिकारी अवश्य होता है। परस्त्री का सुधरना थोड़ा संभव हो सकता है किन्तु वेश्या का सुधरना थोड़ा कठिन है, असंभव नहीं है। यही इन दोनों में अंतर है तथा अन्य भी अन्तर हो सकते हैं सो यथावसर सोच समझकर लगा लेना चाहिए।

प्रश्न– 1408 इन इत्वरिका स्त्रियों की संगति से अपन बिगड़ सकते हैं तो ये भी अपनी संगति से सुधर सकती हैं ऐसा क्यों नहीं कहते हो?

उत्तर आपका प्रश्न अति सुन्दर है परन्तु कोई भी कार्य करने के पहले अपने बलाबल का विचार विमर्श कर लेना चाहिए। यदि अपने पुरुषार्थ पर पूर्ण विश्वास है कि हमारा मन चलायमान ही नहीं होगा

तो इनके सुधारने का प्रयास करना चाहिए। यदि तन मन उपसर्ग परीषहों को जीतने में असमर्थ है तो इनसे दूर रहना चाहिए। अन्यथा उनके पतन के साथ अपना भी पतन अवश्यंभावी है जिससे सागरों पर्यन्त नरक निगोद में जाकर अर्धपुद्गल परिवर्तन काल तक अथवा अनंत काल तक कुयोनियों में जन्म मरण कर अनेक दुःखों को भोगना पड़ेगा कोई बचाने वाला नहीं। धर्म परिवार की, समाज की लज्जा, मान, मर्यादा सुरक्षित रखने के लिए इनकी संगति का त्याग कर देना उत्तम है। अन्यथा अनेकों का पतन होना अवश्यंभावी है।

प्रश्न– 1409–12 संगति किसे कहते हैं? कितने प्रकार की होती है? नाम कौन कौन हैं? प्रत्येक की परिभाषा बताना चाहिए?

उत्तर जिस किसी को अपने कार्य में सहायक मानकर उसके साथ दिनचर्या करने को संगति कहते है। जैसे कोई व्यक्ति अपने स्थान को छोड़कर दूसरे के पास जाता है तो जाने वाले ने उस स्थान पर रहने वाले की संगति की जैसे मंदिरजी में देवशास्त्रगुरु के पास बैठकर धर्मोपदेश सुना, वार्तालाप किया, सेवा की तो अपन ने उनकी संगति की, यदि विहार करते हुए अपने पास आये तो उन्होंने अपनी संगति की। अतः गमनकर जो जिसके पास में जाता है उसने रहने वाले की संगति की। वह संगति दो प्रकार की होती है। सत्संगति और कुसंगति। सदाचार सद्विचार सात्विक वृत्तिवालों को सज्जन कहते हैं। इनकी संगति को सत्संगति कहते हैं अथवा मोक्षमार्गस्थ सज्जनों की संगति करने को सत्संगति कहते हैं तथा जो अशिष्ट आचार विचार वाले हैं व्यसन सेवी हैं सदाचार सद्विचार के त्यागी हैं उनको दुर्जन कहते हैं और इनके पास में जाकर निवास करने को कुसंगति कहते हैं।

प्रश्न– 1413 इन संगतियों का क्या फल है?

उत्तर सज्जनों की संगति से सुख, ऊर्ध्वगति में गमन, गुण प्रशंसा, गुणों की प्राप्ति, दोषों की हानि, जीवन में सुधार होना आदि लाभ है तथा इनसे विपरीत दुर्जनों की संगति से हानि ही हानि होती है। दुःख की प्राप्ति, अधोगति में गमन, निन्दा बदनामी, गुणों की हानि, दोषों का आरोपण, जीवन में असदाचार, असद्विचारों का आना यह कुसंगति का फल है।

प्रश्न– 1414 गृहस्थ इन इत्वरिका स्त्रियों की संगति कर सकता है तथा व्यापार भी कर सकता है क्या?

उत्तर गृहस्थ भी इनकी संगति नहीं कर सकता है तथा न्यायनीति का विचार कर व्यापार मर्यादा को ध्यान में रखकर करता है परन्तु लोक निन्दा को, लोक निगाह को भी ध्यान में रखना चाहिए। क्योंकि बद से बदनाम बुरा होता है।

प्रश्न– 1415 व्यभिचारिणी स्त्रियों का कथन करते समय वेश्याओं को क्यों ग्रहण नहीं किया?

उत्तर ग्रहण किया ही है, क्योंकि परपुरुषों के साथ रमणता के कारण समानता होने से व्यभिचारपने में कोई अंतर नहीं रह जाता है। वेश्याओं की अपेक्षा परस्त्री सेवन में ज्यादा हानि है इस कारण परस्त्रियों के कथन के साथ वेश्याओं को ग्रहण कर ही लिया है।

Note- 1301 से 1415 तक कुशीलपाप, ब्रह्मचर्याणुव्रत, भावना तथा अतिचारों का वर्णन समाप्त हुआ।

प्रश्न– 1416 परिग्रह और परिग्रह पाप किसे कहते हैं?

उत्तर मोक्षमार्ग से भिन्न विषयभोगों की सामग्री में यह मेरी है इसके बिना हमारा जीवन अधूरा है, निष्फल है सो उस सामग्री के अर्जन, रक्षण, संवर्धन आदि में उपयोग लगाने को स्थिर करने को परिग्रह कहते हैं और इनमें आसक्ति भाव को मूर्च्छा परिग्रह पाप कहते हैं।

प्रश्न– 1417 परिग्रह पाप किस कारण से उत्पन्न होता है?

उत्तर यह परिग्रह पाप भोगोपभोग की सामग्री को देखकर, फिर उस सामग्री में उपयोग लगाकर कि यह सामग्री हमारे जीवनोपयोगी है, काम में आने वाली है इसके बिना अपना जीवन निष्फल समझना, निरूपयोगी समझना ऐसा विचार कर उसके प्रति आकर्षण भाव को लोभ कषाय की तीव्रता या मन्दता होने पर, पर के प्रति झुकाव भाव को माध्यम बनाकर परिग्रह पाप उत्पन्न होता है अथवा रौद्रध्यान के कारणभूत अंतरंग बहिरंग सामग्री से परिग्रह पाप उत्पन्न होता है।

प्रश्न– 1418–19 परिग्रह पाप के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर दो भेद हैं। अंतरंग परिग्रह और बहिरंग परिग्रह। अंतरंग परिग्रह के 14 भेद और बहिरंग परिग्रह के 10 भेद होते हैं। यह कथन मोहनीय कर्म की अपेक्षा से किया गया है।

प्रश्न– 1420 अंतरंग परिग्रह के भेद तथा नाम कौन कौन हैं?

उत्तर अंतरंग परिग्रह के मोहनीय कर्मोदय की अपेक्षा 14 भेद हैं। 1. मिथ्यात्व 2. क्रोधकषाय 3. मान कषाय 4. मायाकषाय 5. लोभकषाय 6. हास्य कषाय 7. रतिकषाय 8. अरतिकषाय 9. शोक कषाय 10. भय कषाय 11. जुगुप्सा कषाय 12. स्त्रीवेदकषाय 13. पुरुषवेदकषाय 14. नपुंसक वेद कषाय। पूर्ण घातिया कर्मोदय की अपेक्षा 47 भेद हैं। घातिया और अघातियाकर्मों की अपेक्षा अंतरंगपरिग्रह के 148 भेद हैं। भावों की अपेक्षा संख्यात, असंख्यात और अनन्तभेद हैं।

प्रश्न– 1421 बहिरंग परिग्रह के भेद तथा नाम कौन कौन हैं?

उत्तर बहिरंग परिग्रह के दस भेद हैं। नाम :– 1. खेत 2. मकान 3. चांदी 4. सोना 5. धन 6. धान्य 7. दासी 8. दास 9. कुप्य 10. भाण्ड। इनके अवान्तर भेद अनेक हैं।

प्रश्न– 1422 अंतरंग आत्मपरिणामों को परिग्रह क्यों कहा?

उत्तर आत्म का विकारी भाव ही अंतरंग परिग्रह है, भाव संसार है, संसार भ्रमण का, आश्रव बंध का प्रधान कारण है। इन अंतरंग परिणामों को कोई भी सामान्य संसारी प्रमादी जीव साक्षात् नहीं समझ सकता है। इनका उपादान कारण कषायवान, संसारी प्राणी है, इंद्रियों के अगोचर हैं। चेतन स्वरूप होने से इन परिणामों को अंतरंग परिग्रह कहा है। उपादान उपादेय की दृष्टि से या अंतरंग व्याप्य व्यापक भावों की अपेक्षा इनकी सत्ता आत्मा में ही है।

प्रश्न– 1423 जब ये आत्मा के परिणाम हैं तो इनको अंतरंग परिग्रह क्यों कहा?

उत्तर ये परिणाम आत्मा के ही है आत्मा ही उपादान कारण है फिर भी पर निमित्त से होते हैं इसलिए पर के हैं। जैसे पुत्र माँ के साथ में होने से माँ का कहा जाता है तथा पिता के साथ में होने

से पिता का कहा जाता है। पर क्या पुत्र एक का है? अकेले ने पैदा किया है? नहीं, तो जो जिसके साथ में होता है वह उस ही का कहा जाता है। इसी तरह जब परिणामों को निमित्त के साथ देखते हैं तो पर के नजर आते हैं, पर के कहे जाते हैं तथा उपादान के साथ में देखने से आत्मा के कहे जाते हैं अथवा विकार स्वरूप होने से पर के कहे जाते हैं। अनादि काल से हैं, अंत सहित है, शाश्वत रहने वाले नहीं हैं और समस्त योनियों में तथा समस्त आत्म प्रदेशों से ग्रहण किये जाते हैं। छूटते भी हैं इसलिए इन्हें परिग्रह पाप कहा है तथा जब तक ये परिणाम आत्मा में रहते हैं तब तक आत्मा संसार में डूबा रहता है और शुद्ध नहीं हो पाता है।

प्रश्न— 1424 खेत मकान आदि दसों को बाह्य परिग्रह क्यों कहा?

उत्तर **आत्म द्रव्य से भिन्न इनकी सत्ता है, भिन्न स्वभाव वाले हैं, कार्य भी भिन्न स्वभाव वाले हैं, इंद्रिय गोचर हैं। समस्त असंयमी, देशसंयमी प्रमादी जीवों के पाये जाते हैं तथा सबके दृष्टिगोचर हैं अतः ये बाह्य परिग्रह कहे जाते हैं। कार्य कारण संबंध को लिये हुये हैं, पतन के साधन हैं।**

प्रश्न— 1425 बाह्य परिग्रह को कितने भागों में बांटा गया है?

उत्तर **दो या तीन भागों में बांटा गया है। चेतन और अचेतन अथवा चेतन, अचेतन और मिश्र परिग्रह।**

प्रश्न— 1426—28 चेतन परिग्रह किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन—कौन है?

उत्तर **ज्ञाता दृष्टावाली आत्मा के राग द्वेष मोह आदि विकारी भावों को भाव परिग्रह कहते हैं अथवा ज्ञाता दृष्टा स्वभाव वाले शरीरधारी प्राणी मनुष्य या पशु पक्षी चैतन्य परिग्रह कहलाते हैं। दासी दास, चार पैर वाले हाथी, घोड़े, गाय, बैल, भैंस भैंसा कुत्ता, बिल्ली। दो पैर वाले तोता मैंना, तीतर, कबूतर, मुर्गा, चिड़िया आदि।**

प्रश्न— 1429—30 दासी किसे कहते हैं? यहाँ माँ, बहिन, बेटी, पत्नी आदि को परिग्रह तो कहा नहीं है तो क्या ये परिग्रह नहीं हैं?

उत्तर **जो स्त्रीवेदी सेवा, नौकरी, वैय्यावृत्ति करके आजीविका चलाती है उसे दासी कहते हैं अथवा सेवा करने वाली या पालन पोषण करने वाली को दासी कहते हैं। यहाँ पर दासी पद से माँ बहिन बेटी आदि को ग्रहण कर लेना चाहिए क्योंकि यदि ये परिग्रह न हों तो इनके त्याग का उपदेश क्यों किया, क्यों दिया? पत्नी आदि को छोड़ने के लिए क्यों कहा? कदाचित् दासी सेविका नरक निगोद को प्राप्त न करायें कारण दासी को केवल सेविका मानकर गृहस्थोचित् कार्य कराने के लिए स्वीकार किया है, स्वीकार कर रखा है। जीवनसंगिनी मानकर स्वीकार नहीं किया है किन्तु पत्नी को जीवनसाथिनी मानकर स्वीकार किया है। इसी तरह माँ बहिन आदि को गृहस्थावस्था में त्रिकाली सम्बन्धी मानकर, अपनत्व मानकर, राग सहित स्वीकार किया है। इनके माध्यम से नरक निगोद का पात्र बन जाता है। अतः दासी परिग्रह के साथ सभी स्त्रीवेदियों को ग्रहण कर लेना चाहिए क्योंकि ये परिवार के सदस्य स्वार्थ पूर्वक प्रेम दिखाते हैं अन्यथा आँखें दिखाते हैं।**

प्रश्न— 1431 दास परिग्रह किसे कहते हैं? पिता पुत्र भाई आदि को परिग्रह क्यों नहीं कहा, यदि ये परिग्रह नहीं हैं तो इनका त्याग क्यों कराया?

उत्तर जो पुरुष वेदी सेवा करके आजीविका चलाते हैं उन्हें दास परिग्रह कहते हैं। यहाँ भी पिता पुत्र, भाई पति आदि पुरुषवेदियों को दास पद से ग्रहण कर लेना चाहिए। ये पुरुष वेदी भी राग द्वेष मोह को उत्पन्न कराने वाले हैं, नरक निगोद में जाने के लिए भूमिका बनाने वाले हैं। अतः ये परिग्रह हैं तभी तो इनका त्याग कराया है। अन्यथा यदि धर्म के, आत्मसाधना के साधन होते तो इनका त्याग क्यों कराते? इसलिए दासी पद से स्त्रीवेदियों को और दास पद से पुरुषवेदियों को ग्रहण कर लेना चाहिए। ये स्वार्थ पूर्वक अंतिम श्वांस पर्यंत चूसने का काम करते हैं।

प्रश्न– 1432 अचेतन परिग्रह किसे कहते हैं?

उत्तर चेतन पदार्थ से भिन्न वस्तुओं को अचेतन परिग्रह कहते हैं। इनके अर्जन, रक्षण, संवर्धन करने में ममत्व परिणाम को अथवा अचेतन वस्तुओं के प्रति आकर्षण भाव को अचेतन परिग्रह कहते हैं। यहाँ चारित्र गुण पर्याय अचेतन होने से इन कषाय भावों को अचेतन परिग्रह कहते हैं।

प्रश्न– 1433–34 इस अचेतन परिग्रह के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर अचेतन परिग्रह के आठ भेद हैं जो उपलक्षण रूप से समझना चाहिए। 1. हिरण्य 2. सुवर्ण 3. धन 4. धान्य 5. खेती 6. मकान 7. वस्त्र 8. बर्तन। इनके समान और भी जो जो हैं उन सभी को ग्रहण कर लेना चाहिए।

प्रश्न– 1435 लोहा तांबा पीतल ऐल्युमीनियम प्लास्टिक कांच लकड़ी आदि को तो परिग्रह कहा नहीं है फिर ये वस्तुयें परिग्रह नहीं है क्या?

उत्तर इनको परिग्रह कहा ही है यहाँ पर भी चांदी पद से चांदी से कम कीमत वाली सभी धातुओं को लकड़ी, पत्थर, तांबा पीतल, लोहा आदि धातुओं को तथा इनसे निर्मित भोग्य सामग्रियों को हिरण्य पद से ग्रहण कर लेना चाहिए। अतः ये सभी परिग्रह ही है।

प्रश्न– 1436 हीरा मोती माणिक रत्न आदि को परिग्रह क्यों नहीं कहा?

उत्तर नहीं, कहा ही है। यहाँ पर भी सुवर्ण धातु से समस्त कीमती धातुओं को ग्रहण कर लेना चाहिए। क्योंकि ये रत्नादि भी स्वर्ण के समान राग द्वेष और मोह को उत्पन्न कराने वाले हैं। आर्तध्यान, रौद्रध्यान, कृष्ण, नील, कापोत लेश्या को उत्पन्न कराकर नरक निगोद का पात्र बना देते हैं। यहाँ इन धातुओं से भी शत्रु बन जाता है। निद्रा, आहार, पानी, व्यापार, पूजा सब कुछ छूट जाता है जीवन भी खतरे में पड़ जाता है। अतः स्वर्ण के समान सभी कीमती धातुओं को, आभूषणों को ग्रहण कर लेना चाहिए। अतः ये सभी परिग्रह ही है तभी तो इनका त्याग कराया है।

प्रश्न– 1437 खेत किसे कहते हैं?

उत्तर जिसस्थान में धान्य सब्जी फल फूल आदि आजीविका के साधनों का उत्पादन किया जाय उसे खेत कहते हैं। इसीके समान जिस स्थान पर ठहर कर व्यापार किया जाय, धनोपार्जन किया जाय, आजीविका चलायी जाये उसे उपलक्षण से खेत कहते हैं।

प्रश्न– 1438 वास्तु किसे कहते हैं?

उत्तर निवास स्थान को वास्तु कहते हैं अथवा जहाँ पर रहकर प्राणी अपने आपको सुरक्षितपने का

अनुभव करता है। पशुपक्षियों से, चोर डाकुओं से अपनी रक्षा कर लेता है। गर्मी सर्दी हवापानी से अपने को साफ स्वच्छ रख लेता है उसे वास्तु कहते हैं फिर वह स्थान चाहे घास की झोपड़ी हो, मिट्टी पत्थर का, लकड़ी का, सीमेन्ट का, चूना का, पत्तों का और कितना सुन्दर सुसंस्कारित हो, गुफा हो, वृक्ष की कोटर हो आदि रक्षा के आश्रय स्थान को वास्तु मकान कहते हैं।

प्रश्न– 1439 धन परिग्रह किसे कहते हैं?

उत्तर गाय, भैंस, घोड़ा, गधा, हाथी, सिंह, बन्दर, बिल्ली आदि चतुस्पदी पशु और दो पैर वाले पक्षी आदि आजीविका के साधन होने से इनको धन कहते हैं परंतु यहाँ पर अचेतन परिग्रह का प्रकरण होने से, प्रसंग होने से इनको ग्रहण न कर राजमुद्रा से चिह्नित कागज के नोट को, इल्युमीनियम के सिक्के को, लोहे के, स्टील के, चांदी के, सोने के सिक्के आदि मुद्राओं को अचेतन धन परिग्रह कहते हैं। और भी इनके समान अचेतन पद से वस्तुओं को ग्रहण कर लेना चाहिए।

प्रश्न– 1440 धान्य परिग्रह किसे कहते हैं?

उत्तर गेहूँ, दाल, चावल, मूँग, मटर, चना, जव, मसूर आदि को धान्य कहते हैं तथा तिल, सरसों, मूँगफली आदि को तिलहन कहते हैं। ये सभी धान्य परिग्रह कहलाते हैं।

प्रश्न– 1441 कुप्य अचेतन परिग्रह किसे कहते हैं?

उत्तर कुप्य वस्त्र को कहते हैं। शरीर की रक्षा के लिए, विकार को, लज्जा को छिपाने के साधनों को, आवरण करने वालों को वस्त्र कहते हैं। इसके अनेक भेद हैं जैसे कपास का, चर्म का, रेशम का, ऊन का, सन का, घास का, पत्तों का, प्लास्टिक का, रेक्जीन का, नाइलोन का, टेरालीन, टेरीकॉटन, पॉलिस्टर, वल्कल, कागज आदि आवरणों को वस्त्र कहते हैं।

प्रश्न– 1442 भाण्ड परिग्रह किसे कहते हैं?

उत्तर बर्तनों को भाण्ड कहते हैं। वे बर्तन मिट्टी के, घास के, पत्ते के, पत्थर के, सोने के, चांदी ताबां, पीतल, लोहा, प्लास्टिक, लकड़ी, कागज आदि खाने पीने के, लगाने की सामग्री के रखने के पात्रों को, शीशी बोतल आदि भोग्य भोज्य सामग्री को सुरक्षित रखने के साधनों को, थाली, गिलास, लोटा, कटोरी, गंजिया आदि पात्रों को भाण्ड परिग्रह कहते हैं।

प्रश्न– 1443 मिश्र परिग्रह किसे कहते हैं?

उत्तर पुत्र पुत्रियों को, पशु पक्षियों को, दास दासी को वस्त्रालंकार आभूषणों से सहित होने को अर्थात् चेतन अचेतन से मिले हुये को मिश्र परिग्रह कहते हैं क्योंकि जिस प्रकार इन सामग्रियों के पृथक् पृथक् होने पर राग द्वेष मोह उत्पन्न होता है उसी प्रकार इनके मिश्रण से और अधिक मात्रा में विकार उत्पन्न होता है अतः इसे मिश्र परिग्रह कहते हैं।

प्रश्न– 1444 दास दासी को आदि लेकर भाण्ड पर्यन्त वस्तुओं को क्या कहते हैं?

उत्तर दास दासी को आदि लेकर भाण्ड पर्यन्त वस्तुओं को परिग्रह कहते हैं क्योंकि ये विषय कषायानुसार आत्मा के समस्त प्रदेशों से या समस्त योनियों में राग द्वेष मोह से ग्रहण किये जाते हैं, परिग्रह संज्ञा है। बाहर में सबके परिचय में आने से इन्हें बाह्य परिग्रह कहते हैं।

प्रश्न– 1445 यदि ये दास दासी आदि बाह्य परिग्रह हैं, पाप हैं तो इन्हें लोक व्यवहार में पुण्य का फल क्यों कहा जाता है?

उत्तर लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय कर्मों के क्षयोपशम से तथा सातावेदनीय आदि पुण्य प्रकृतियों के उदय से वस्तुयें प्राप्त होती है। अतः पुण्य का फल है किन्तु स्वीकार करना, संरक्षण करना, संवर्धन करना, देखरेख करना लोभकषाय है, परिग्रह संज्ञा है। कामभोग की भावना सहित अर्जनादि करना, सम्हालना, सजाना, श्रृंगारित करना, उपयोग में लाना, माया कषाय, लोभ कषाय, हास्य, रति, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसक वेदोदय से होता है। इस कारण अंतरंग में परिग्रह पाप का कारण होने से कार्यकारण में अभेद विवक्षा करके इसको परिग्रह पाप कहते हैं। इनमें अतृप्ति भाव होने से बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह नरकायु का आश्रव बन्ध कराता है। इसलिए पाप ही है। संसार में पतन कराने का अनन्यतम साधन है क्योंकि जब तक इनके प्रति त्याग की, परत्व की भावना जागृत नहीं हुई है तब तक एकमात्र दुर्ध्यान ही होता है।

प्रश्न– 1446 परिग्रह पाप है तो धनवानों को पुण्यात्मा, पुण्य का फल वाला क्यों कहा जाता है? सर्वत्र सम्मान क्यों पाता है।

उत्तर सर्वत्र पाप पाँच ही पढ़े जाते हैं, पढ़ाये जाते हैं। आप से पूछा जाय कि पाप कितने हैं तो आप भी पाप पाँच ही बतायेंगे चार नहीं फिर भी परिग्रह वालों को, धनवानों को पुण्यात्मा बताते हो तो यह परस्पर में विरुद्ध बात है। यदि परिग्रह पाप नहीं है तो नरकायु का आश्रव बंध पुण्य से मानने का प्रसंग आयेगा? पुनः यह परिग्रह वाला पुण्यात्मा तो परिग्रह का त्यागी पापी कहलायेगा? अपरिग्रह महाव्रत भी व्यर्थ हो जायेगा, अणुव्रत भी निष्फल हो जायेगा। परिग्रह का त्याग क्यों करना कराना पड़ा? अतः केवल बाह्य सामग्री का प्राप्त होना पुण्य का फल है और स्वीकार करना आदि प्रारम्भ से लेकर अंत पर्यन्त पाप रूप ही है। प्रकृति बंध, स्थिति बंध, अनुभाग बंध, प्रदेशबन्ध इन चारों की अपेक्षा मोहनीय कर्म पाप रूप ही है। इसमें किंचित् मात्र भी पुण्य का अंश नहीं है तथा लोक में धनवानों को भूत नैगमनय की अपेक्षा पुण्यात्मा कहा जाता है अथवा धनवान होने के साथ साथ यदि संयम सहित आवश्यकों का पालन करता है, अणुव्रती है तो वह वर्तमान नय से पुण्यात्मा, धर्मात्मा अवश्य है और यह वास्तविक है। अतः इस लोक परिभाषा से जिन सिद्धान्त का कोई सम्बन्ध नहीं है अथवा जो ख्याति पूजा लाभ से पीड़ित हैं, धन के लोलुपी है ऐसे साधु और गृहस्थ धनवानों को पुण्यात्मा कहते हैं। यदि ये लोभी धनवानों की प्रशंसा नहीं करें और सभा में मंच पर माईक के द्वारा माला न पहनायें, गुणगान नहीं करे तो सेठों से अर्थ व्यवस्था, धन प्राप्त नहीं हो सकता है। प्रायः कर देखा जाता है कि सेठों की जो प्रशंसा गुणगान नहीं करते हैं वे साधु और गृहस्थ धनवानों की उपेक्षा के पात्र बन जाते हैं और जो माला पहनाते पहनवाते हैं, उनको इन सेठों से व्यवस्था प्राप्त हो जाती है। अतः कर्म सिद्धान्त से ये सब महान पापी हैं। इस प्रकार के आचरण वाले साधुओं ने और धनवानों ने मध्यम और जघन्य स्थिति वाले जैन समाज को विशेष कार्यक्रमों में भागीदार न बनाकर एकदम पीछे धकेल दिया। आचार विचार विहीन ये धनवान लोग आगे आ जाते हैं। अतः इस पंचम काल

में पापी लोग आगे आ आ करके धर्म के कार्यक्रमों को खरीद लेते हैं तथा सदाचारी लोग पीछे हट जाते हैं। इस कारण उन धनवानों का सम्मान नहीं है किन्तु धन के लोभी धन का सम्मान करते हैं। यदि उस व्यक्ति का सम्मान करते हैं तो सर्वत्र सर्वकाल अन्यत्र बिना प्रसंग के प्रतिभावान मानकर सम्मान होना चाहिए पर होता नहीं, कोई करता नहीं इससे सिद्ध होता है कि यह सम्मान धनवान का नहीं किन्तु धन प्राप्त करने के लिए धन का सम्मान है। जैसे कामी चारुदत्त संडास में पड़ा हुआ सुअर के चांटने पर प्रिया चांट रही है ऐसा समझ रहा था वैसे ही ये धनवान लोग धन के सम्मान को देख कर अपना सम्मान मानकर प्रसन्न होते हैं।

प्रश्न— 1447 परिग्रह परिमाणुव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर **अपनी शक्ति के अनुसार तथा परिवार की व्यवस्थानुसार स्वनिमित्तक प्रयोजनभूत चेतन अचेतन और मिश्र सामग्री का प्रमाण कर शेष का त्याग कर देना परिग्रह प्रमाण अणुव्रत है अथवा जो भोग उपभोग सामग्री है उसी का प्रमाण करना जो नहीं हैं उसका क्या प्रमाण करना।**

प्रश्न— 1448 आजकल शेष परिग्रह का प्रमाण तो बन सकता है किंतु रुपया पैसा का कैसे प्रमाण किया जाये?

उत्तर **शेष मकान, वस्त्राभूषण, वाहन, दासी, दास का नियम तो बन सकता है किन्तु रुपया पैसा का नहीं बन सकता है क्योंकि जो वस्त्राभूषण, खाद्य सामग्री इस वर्ष सौ रुपया में आती है वही सामग्री अगले वर्ष कीमत बढ़कर 110—125 तक पहुंच जाती है और कीमत प्रत्येक वर्ष में बढ़ेगी वस्तु नहीं बढ़ेगी, न आपका प्रमाण बढ़ेगा। अतः भविष्य का जीवन संकट में पड़ जायेगा। इस कारण प्रतिवर्ष के हिसाब से खर्च के अनुसार रुपयों का प्रमाण प्रतिवर्ष का करना चाहिए। जिससे परिवार की दिनचर्या में, अपने व्रतों में किसी प्रकार का संक्लेश न हो, मन दुःखी न हो और सबका जीवन सुख से व्यतीत होता रहे जिससे धर्म और धर्मात्माओं की प्रभावना हो।**

प्रश्न— 1449—1450 यह परिग्रह प्रमाणाणुव्रत कितनी कोटियों से पालन किया जाता है? परिग्रह पाप का त्याग कितने प्रकार से किया जाता है?

उत्तर **यह व्रत नव कोटियों से धारण किया जाता है तथा पालन किया जाता है और जरूरत के अलावा शेष नवकोटियों से परिग्रह पाप का त्याग किया जाता है। वे नव कोटियां इस प्रकार हैं। मन से कृत कारित अनुमोदना, वचन से कृत कारित अनुमोदना, काय से कृत कारित अनुमोदना। ये नव कोटियां गृहस्थों के स्थूल रूप से और मुनियों के सूक्ष्म रूप से होती हैं।**

प्रश्न— 1451—52 इस व्रत को निर्दोष पालन करने के लिए क्या करना चाहिए? भावनाओं के कितने भेद हैं?

उत्तर **इस व्रत को निर्दोष पालन करने के लिए कुछ विशेष भावनाओं का चिन्तन करना चाहिए। इनके 5 भेद हैं। जो तत्त्वार्थ सूत्र, चारित्रपाहुड और बृहद् प्रतिक्रमण से जानी जातीं हैं**

प्रश्न— 1453 इन भावनाओं के नाम कौन कौन हैं?

उत्तर 1. स्पर्शेंद्रिय के इष्ट विषय में राग का और अनिष्टविषय में द्वेष का त्याग 2. रसनेंद्रिय के

इष्टविषय में राग का और अनिष्ट विषय में द्वेष का त्याग 3. घ्राणेंद्रिय के इष्ट विषय में राग का और अनिष्ट विषय में द्वेष का त्याग 4. चक्षु इंद्रिय के इष्ट विषय में राग और अनिष्ट विषय में द्वेष का त्याग 5. कर्णेद्रिय के इष्ट विषय में राग का और अनिष्ट विषय में द्वेष का त्याग।

प्रश्न– 1454 इष्ट विषय मनोज्ञविषय किसे कहते हैं?

उत्तर जो विषय मन को अच्छा लगे, आसक्ति को प्राप्त हो, प्रीति को, आकर्षण को प्राप्त हो उसे मनोज्ञ कहते हैं।

प्रश्न– 1455 राग किसे कहते हैं?

उत्तर माया कषाय, लोभ कषाय, हास्य कषाय, रतिकषाय, स्त्रीवेद कषाय, पुरुषवेद कषाय, नपुंसक वेद कषायोदय से उत्पन्न आत्म परिणाम को राग कहते हैं क्योंकि इनमें विषयों के माध्यम से मन में आनन्द का अनुभव होता है।

प्रश्न– 1456 अनिष्ट विषय अमनोज्ञ विषय किसे कहते हैं?

उत्तर जो विषय मन को अच्छा न लगे, अप्रीति उत्पन्न हो, आकर्षण प्राप्त न हो, घृणा हो जाये उसे अमनोज्ञ विषय कहते हैं।

प्रश्न– 1457 द्वेष किसे कहते हैं?

उत्तर क्रोध कषाय, मान कषाय, अरति कषाय, शोक कषाय, भय कषाय, जुगुप्सा कषायोदय से उत्पन्न आत्म परिणाम को द्वेष कहते हैं क्योंकि इन कर्मोदयों से विषय भोगों में, इनकी सामग्रियों में मन प्रेम को प्राप्त नहीं होता, खिन्न मन होता है।

प्रश्न– 1458–60 स्पर्शेंद्रिय किसे कहते हैं? इस स्पर्शेंद्रिय के कितने विषय हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर शरीर के जिस स्थान से छूकर हल्का भारी आदि विषय का ज्ञान हो उसे अथवा विषयों के द्वारा विषयी का ज्ञान हो उसे स्पर्शेंद्रिय कहते हैं। इसके आठ भेद हैं। हल्का भारी, रूखा चिकना, कोमल कठोर, ठण्डा गर्म ये स्पर्शेंद्रिय के विषयों के नाम हैं अथवा इन विषयों के जानने के उपाय को स्पर्शेंद्रिय कहते हैं अथवा सर्वांग शरीर को स्पर्शेंद्रिय कहते हैं।

प्रश्न– 1461 स्पर्शेंद्रिय के विषयों के प्राप्त होने पर क्या करना चाहिए?

उत्तर स्पर्शेंद्रिय के विषयों के प्राप्त होने पर राग और द्वेष रूप विकार का त्याग करना चाहिए क्योंकि विकारों के त्याग से आश्रव बंध का निरोध हो जाता है, कर्मों का संवर निर्जरा होती हैं, आत्मा की शुद्धि होती है। जिससे अपूर्व आनंद का अनुभव होता है।

प्रश्न– 1462 इष्टानिष्ट विषयों के प्राप्त होने पर राग द्वेष का त्याग किस प्रकार से करना चाहिए?

उत्तर हल्का भारी आदि 8 प्रकार के विषयों के प्राप्त होने पर यदि मन में अच्छा मानकर, विश्वास कर, रमण करना, आसक्त हो जाना, प्रीति कर पुनः पुनः ग्रहण करने के विचारों को तथा यदि मन के अनुकूल नहीं है तो अप्रीति भाव करना, मन मलिन करना, राग द्वेष है। इस प्रकार इन विचारों

से आत्मा कर्मों से बंधती है। संसार में भ्रमण होता है, नाना तरह से दुःख होता है, दुर्गति में जाकर जन्म मरण के और नाना तरह से दुःख भोगने पड़ते हैं अतः ये विषय विष से भी अनन्तगुणे हानिकारक हैं विष से भी अनन्तगुणे कष्ट देते हैं। विष के सेवन से एक भव बिगड़ता है किन्तु विषयों से अनेक भवों से कमाया गया यह मनुष्य भव नष्ट होता है सभी सुख सामग्री का व्यक्ति भोग नहीं कर सकता। नाना तरह की बीमारियों के आने से सांसारिक सुख भी नहीं भोग पाता फिर परमार्थ सुख तो बहुत दूर रहा। अतः परमार्थ सुख पाने के लिए इन विषयों का राग द्वेष विकारों का सब प्रकार से त्याग करना चाहिए।

प्रश्न— 1463 रसनेंद्रिय किसे कहते हैं?

उत्तर जिसके द्वारा खट्टा मीठा आदि पदार्थों का स्वाद मालुम हो उसे रसनेंद्रिय कहते हैं अथवा अपने शरीर के जिस स्थान से, भाग से स्वाद का ज्ञान हो उसे रसनेंद्रिय कहते हैं अथवा इन विषयों के द्वारा विषयी का ज्ञान हो उसे रसनेंद्रिय कहते हैं।

प्रश्न— 1464—65 रसनेंद्रिय के विषयों के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर रसनेंद्रिय के विषयों के पाँच भेद हैं। खट्टा, मीठा, चरपरा, कडुवा और कषायला तथा दूध, दही, घी, तेल, शक्कर, नमक अथवा इन रसों के स्वादिष्ट और पौष्टिक ये दो भेद किये गये हैं। स्वादिष्ट के खट्टा, मीठा आदि पाँच भेद तथा पौष्टिक रस के दूध आदि 6 भेद हैं। इस प्रकार यहाँ रसों के भेद और नाम गिनाये हैं जिनको स्थिर मन से भली प्रकार समझना चाहिए।

प्रश्न— 1466 रसनेंद्रिय के विषयों के प्राप्त होने पर क्या करना चाहिए?

उत्तर इन विषयों के प्राप्त होने पर वे विषय चाहे स्वादिष्ट हों या पौष्टिक हों, अनुकूल हों या प्रतिकूल दोनों प्रकार के विषयों में राग द्वेष के त्याग करने को सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए और व्रतों को निर्दोष पालन करने की इच्छा है तो इन रसों का त्याग ही करना चाहिए। इसी में हित है।

प्रश्न— 1467 रसनेंद्रिय के विषयों के प्राप्त होने पर कैसे त्याग करना चाहिए?

उत्तर इस भोजन सम्बन्धी स्वादिष्ट और पौष्टिक रस युक्त सामग्री के प्राप्त होने पर अथवा मन के अनुकूल भोजन सामग्री के मिलने पर राग तथा प्रतिकूल सामग्री के प्राप्त होने पर द्वेष का त्याग करना चाहिए क्योंकि राग द्वेष विकार हैं। इन विकारों से कर्म बंध, कर्मोदय से पुनः विकार, विकार से भवभ्रमण, भवभ्रमण से इंद्रियजन्य सुख या दुःख की प्राप्ति, लोक में निन्दा, बदनामी, अपयश, जगह जगह तिरस्कार, अपमान प्राप्त होता है। विषय कषाय आत्मा का पतन कराने वाले हैं, अहितकारी है। अतः विषयकषायों के त्याग से, राग द्वेष मोह के त्याग से, आत्म शान्ति, आत्मसुख प्राप्त होता है इसलिए दुःख का साधन समझकर रसों का त्याग करना श्रेष्ठ है। अन्यथा भोजन में तीव्र लोलुपता होने से मछली के समान कष्ट भोगना पड़ेगा।

प्रश्न— 1468—70 घ्राणेंद्रिय किसे कहते हैं? विषयों के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर नाक के जिस स्थान से सूंघकर सुगन्धादि का ज्ञान हो उसे अथवा इनके जानने के उपाय को घ्राणेंद्रिय कहते हैं। घ्राणेंद्रिय के विषय के मूल में दो भेद हैं तथा इनके अवान्तर भेद संख्यात

असंख्यात और अनन्त हैं। जैसे सुगन्ध के लिए अनेक जाति के पुष्पों में सुगन्ध की मात्रा में बहुत अंतर अनुभव में आयेगा। जिस वनस्पति का फूल, तना, जड़, लकड़ी, पत्ते, मिट्टी आदि का जो नाम है वही नाम अविभाग प्रतिच्छेदों की मात्रानुसार व्यवहार में बोला जाता हैं।

प्रश्न– 1471 घ्राणेंद्रिय के विषयों के प्राप्त होने पर क्या करना चाहिए?

उत्तर घ्राणेंद्रिय के विषयों के प्राप्त होने पर अनुकूल या प्रतिकूल दोनों विषयों में राग द्वेष का त्याग करना चाहिए।

प्रश्न– 1472 द्वेष और दोष में क्या अन्तर है?

उत्तर राग के विरुद्ध स्वभाव को, परिणामों को द्वेष कहते हैं अथवा क्रोध कषाय, मान कषाय, अरति कषाय, शोक कषाय, भय कषाय, जुगुप्सा कषाय के परिणामों को द्वेष कहते हैं तथा आत्मा में उत्पन्न हुए औदयिक भावों, क्षायोपशमिक भावों, औपशमिक भावों और भव्यत्वभाव को दोष कहते हैं। यद्यपि इन भावों का उपादान साधन आत्मा है। औपशमिक भाव, समीचीन क्षायोपशमिक भाव यद्यपि मोक्षमार्ग को साधते हैं, संवर निर्जरातत्त्व हैं, प्रतिपाती हैं, विभाव हैं, मोक्षमार्ग स्वरूप हैं। मोक्ष के लिए साक्षात् कारण नहीं हैं, परम्परा साधन हैं। मोह की 26 प्रकृतियों कीसत्ता वालों की अपेक्षा औपशमिक भाव से क्षायोपशमिक भाव और क्षायोपशमिक भाव से क्षायिक भाव तथा क्षायिक भाव से मोक्ष अथवा 28 की सत्ता वालों की अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव से क्षायिक भाव और क्षायिक भाव से मोक्ष की प्राप्ति होती है। अतः जो छूट जाय तो उसे निर्दोष कैसे कहेंगे? इन दोनों भावों को जात्यन्तर रूप से या साधन रूप से निर्दोष कहा है, पूर्ण रूप से निर्दोष नहीं अथवा चारित्र मोहोदय से द्वेष और घातिया अघातिया कर्मोदय से दोष होते हैं। यही अन्तर है।

प्रश्न– 1473 घ्राणेंद्रिय के विषयों के प्राप्त होने पर किस प्रकार से राग द्वेष का त्याग करना चाहिए?

उत्तर घ्राणेंद्रिय के विषयों के अनुकूल या प्रतिकूल प्राप्त होने पर दोनों में विकार को प्राप्त न होना क्योंकि विकार से कर्मबन्ध, कर्मबन्ध से उदय, उदय से भव भ्रमण तथा दुःख। यदि सबसे बचना चाहते हो तो अनुकूल और प्रतिकूल विषयों के प्राप्त होने पर राग द्वेष का त्याग करना चाहिए। ये ही आत्मा का अहित करने वाले हैं, पतन कराने वाले हैं भोंरे के समान संसारी प्राणी गंध के विषय में आसक्त होकर अपना सर्व विनाश कर लेता है ऐसा जानकर छोड़ना चाहिये।

प्रश्न– 1474–76 चक्षु इंद्रिय किसे कहते हैं? विषय के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर आँख के जिस स्थान से रूप का ज्ञान हो अथवा रूप के जानने के साधन को अथवा बाह्य दृश्य के जानने के उपाय को चक्षु इंद्रिय कहते हैं। इसके विषय पाँच हैं। काला, पीला, नीला, लाल और सफेद। इन्हीं पाँचो रंगों में मात्राओं के अंश की अपेक्षा अनेक भेद हैं या इन्हीं के परस्पर में मिश्रण से उत्पन्न संख्यात, असंख्यात और अनन्त भेद हो जाते हैं।

प्रश्न– 1477–78 विषयी किसे कहते हैं? विषय किसे कहते हैं?

उत्तर इंद्रियों के द्वारा, मन के द्वारा या उपयोग के द्वारा स्व या पर पदार्थों के ग्रहण करने वाले को

अथवा स्पर्श रस गन्ध रूप शब्दों के ग्रहण करने वाले को है उसे विषयी कहते हैं तथा इंद्रिय मन और उपयोग के द्वारा जो ग्रहण किया जाय, जाना जाय उसे विषय कहते हैं।

प्रश्न— 1479 चक्षु इंद्रिय के विषयों के प्राप्त होने पर क्या करना चाहिए?

उत्तर नेत्रों के सामने अनुकूल या प्रतिकूल विषय काला, पीला, नीला, लाल, सफेद रंगों के आने पर अपने अपने अवान्तर भेदों से युक्त विषयों को अहितकारी, अकल्याणकारी, पतन का साधन समझकर राग द्वेष का त्याग करना चाहिए क्योंकि ईंधन का त्याग करने से, ईंधन अग्नि में न डालने से, न मिलाने से या अग्नि को ईंधन का संयोग न मिलने से शान्त हो जाती है, बुझ जाती है, समाप्त हो जाती है। इसी तरह इंद्रिय विषयों का त्याग करने से, राग द्वेष को छोड़ने से आत्म साधना निर्बाध सिद्ध होती है।

प्रश्न— 1480 चक्षु इंद्रिय के विषयों के प्राप्त होने पर किस प्रकार से त्याग करना चाहिए?

उत्तर इन रूप रंगों के प्राप्त होने पर ये विषय आत्मा को किंचित् शरीर में उत्पन्न हुई खाज को खुजलाने के समान सुख का लोभ देकर अनन्त दुःख प्राप्त कराते हैं। अशुचि, अपवित्रता प्राप्त कराते हैं अतः दुर्जन के समान दोष युक्त समझकर त्याग करना चाहिए।

प्रश्न— 1481—83 कर्णेंद्रिय किसे कहते हैं? विषय कितने हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर जिसके द्वारा शब्दों को सुनकर शब्दों का, अर्थों का ज्ञान हो अथवा शब्दों के सुनने के उपाय को कर्णेंद्रिय कहते हैं। इसके विषय 7 हैं। नामः— 1. षडज 2. ऋषभ 3. गान्धार 4. मध्यम 5. पंचम 6. धैवत और 7. निषध । इन 7 कण्ठ स्वरों के उतार चढ़ाव के कारण अनेक भेद प्रभेद हो जाते हैं। गद्य भाषा, पद्य भाषा कण्ठ भेद से, क्षेत्र भेद से और निज निज की कलाओं के भेद से अनेक भेद प्रभेद हो जाते हैं। जैसे णमोकार मंत्र आर्या छन्द में होने पर भी गायक लोग अनेक स्वरों में गाते हैं। इसलिए भाषा के अनंत भेद हो जाते हैं जो आगमगम्य तथा किंचित् अनुभवगम्य भी हैं और इनका ज्ञान उपयोग स्थिर करने से होगा, चंचलता होने से नहीं होगा।

प्रश्न— 1484 इन विषयों के प्राप्त होने पर क्या करना चाहिए?

उत्तर इन अनुकूल मनोज्ञ और प्रतिकूल अमनोज्ञ शब्दों को सुनकर राग द्वेष का त्याग करना चाहिए।

प्रश्न— 1485 किस प्रकार से विचार कर त्याग करना चाहिए?

उत्तर ये शब्द कर्णेंद्रिय के विषय सुनने के बाद में मन के अन्दर राग अथवा द्वेष उत्पन्न कराने वाले होने से समुत्पत्ति कषाय कहलाते हैं। जिससे आत्मा में नाना तरह की आकुलतायें उत्पन्न होती हैं जिससे पुनः नवीन कर्मों का आश्रवबंध भव भ्रमण दुःख भोगना होता है। इसी कर्णेंद्रिय के विषय में आसक्त हो हिरण सर्प पराधीनता को, काम वासना के कष्ट को और यहाँ तक की मृत्यु को भी प्राप्त हो जाते हैं। अतः दोष युक्त हानिकारक समझकर त्याग करना चाहिए। इस प्रकार परिग्रहप्रमाण अणुव्रत को सुरक्षित रखने के लिए निरन्तर इन पाँचों इंद्रियों के इष्टानिष्ट विषयों में राग द्वेष का त्याग करना चाहिए।

प्रश्न— 1486—87 परिग्रह प्रमाणाणुव्रत के अतिचार कितने हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर परिग्रह प्रमाणाणुव्रत के पाँच अतिचार होते हैं। नामः— 1. अतिवाहन 2. अतिसंग्रह 3. आश्चर्य 4. अतिलोभ 5. अतिभार लादना।

प्रश्न— 1488—89 अतिवाहन अतिचार किसे कहते हैं? किस कारण से होता हैं?

उत्तर जिस समय नियम लिया था उस समय संतोषवृत्ति थी किंतु की हुई वाहन की मर्यादा का उल्लंघन करने को अतिवाहन नाम का अतिचार कहते हैं। बाद में किसी कारण वश वाहन सस्ते हो गए या धनवृद्धि को प्राप्त हुआ या चुकारा में मिल गया या शादी आदि के नेंगाचार में मिल गया या किसी इनाम में मिल गया तब वाहनों की वृद्धि हो सकती है तथा वर्तमान में जरूरत नहीं है फिर भी प्रमादवश लोभादि कषायों के कारण पूर्वक उत्साह सहित स्वीकार कर लिया।

प्रश्न— 1490—92 वाहन किसे कहते हैं? कितने प्रकार के हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमनागमन के बाह्य साधनों को वाहन कहते हैं। दो भेद हैं 1. चेतन वाहन 2. अचेतन वाहन ।

प्रश्न— 1493 चेतन वाहन किसे कहते हैं तथा किस कार्य में उपयोग होता है?

उत्तर हाथी, घोड़ा, भैंसा, बैल, बकरा, ऊंट, गधा, भेड़, सुअर आदि के द्वारा गाड़ी बांधकर या इनकी पीठ पर सवार होकर या सामग्री रखकर क्षेत्रान्तर के लिए, क्षेत्रान्तर से गमनागमन करने को चेतन सवारी या चेतन वाहन कहते हैं। जैसे गजरथ, ऊंटगाड़ी, बैलगाड़ी, घोड़ागाड़ी, गधा, भैंसागाड़ी, बकरे की सवारी आदि से देशान्तर गमनागमन कर आजीविका चलाते हैं, तीर्थयात्रा भी करते हैं, पर्यटन करते हैं, लोक व्यवहार भी निभाते हैं।

प्रश्न— 1494 मनुष्य को क्या वाहन कह सकते हैं?

उत्तर हाँ, मनुष्यों को भी चेतन वाहन कह सकते हैं क्योंकि शहरों में मनुष्य मनुष्यनी दो या चार पहिये के ठेलों में सामान ढोते हैं तथा शिखरजी में बच्चों को गोदी ले जाते हैं या यात्रियों को डोली में ले जाते हैं। कुलीगिरी, पल्लेदारी करते हैं अतः मनुष्यों को भी चेतन वाहन कह सकते हैं।

प्रश्न— 1495 अचेतन वाहन किसे कहते हैं?

उत्तर जिस वाहन को खींचने वाले चेतन प्राणी मनुष्य पशु पक्षी आदि न हो तथा अचेतन यंत्र, इंजन डीजल, पेट्रोल, मिट्टी के तेल, कोयला, अग्नि आदि से चलने वाले को तथा अग्नि, वायु, भाप आदि एकेंद्रिय जीव हैं, स्थावर हैं, तिर्यंच हैं फिर भी त्रसों जैसी चेतनता, उत्कृष्ट ज्ञान का विकास न होने से अचेतनपने का व्यवहार किया है। जैसे मनुष्य में मूर्खता, अविवेकता होने के कारण जड़, पशु निगोदिया नारकीपने का व्यवहार किया जाता है। गाड़ी, मोटर, ट्रक, ट्रेन, प्लेन, रॉकेट आदि को अचेतन वाहन कहते हैं। देवों के विमान अचेतन हैं किंतु खींचने वाले देव चेतन हैं।

प्रश्न— 1496 वाहनों को अधिक रखने का निषेध क्यों किया?

उत्तर जरूरत से ज्यादा रखने का कारण ममत्व परिणाम है और वह भाव माया कषाय और लोभकषोयोदय से हुआ है, हास्य रति स्त्रीवेद पुरुषवेद नपुंसक वेदोदय से उत्पन्न परिणाम से ग्रहण किया है, संरक्षण करने में समय भी निष्प्रयोजन नष्ट होता है। पुनः पुनः रौद्रध्यान उत्पन्न होता है। जगह घिरी रहती है, रुपया फंसा रहता है। पशुओं के पालन पोषण में कष्ट होता है,

असमय में मृत्यु होने, बीमार होने आदि से मानसिक विकल्प भी बढ़ जाते हैं इसलिए अधिक वाहन रखने का निषेध किया है। जरूरत से ज्यादा क्यों रखना? यदि नहीं रखेंगे तो किसी और के उपयोग में आयेगी, मंहगाई नहीं बढ़ेगी, चोरी भी नहीं होगी क्योंकि उपयुक्त सामग्री सबके पास मौजूद है। अतः अपनी आत्मा को दुर्ध्यान से बचाने के लिए, पवित्र बनाने के लिए कषायों को जीतने के लिए अधिक वाहनों का त्याग कराया।

प्रश्न— 1497 पशुवाहन रखने में, इनकी भोजनपान की व्यवस्था करने में कष्ट होता है किंतु अचेतन वाहन तो अधिक रख सकते हैं क्या?

उत्तर वाहन वाहन है क्या चेतन या अचेतन, वाहन रखने से रक्षा करने की चिन्ता में वृद्धि होती है। जिस प्रकार चेतन वाहन से पाप की वृद्धि होती है। उसी प्रकार अचेतन वाहनों से भी आकुलता होने से, मोह होने से पाप कर्म का आश्रवबंध होता है अतः दोनों प्रकार के वाहन आत्मा के पतन के कारण, परिग्रह पाप और रौद्रध्यान का साधन होने से त्यागने योग्य हैं।

प्रश्न— 1498—1500 अचेतन वाहन कौन कौन हैं? नाम बताओ? हानि क्या है?

उत्तर साईकिल, स्कूटर, साईकिलरिक्शा, बस, ट्रक, ट्रेन, प्लेन, हवाई जहाज आदि अचेतन वाहन कहे जाते हैं ये भी अत्यधिक रखने से जगह की चिन्ता हो जाती है जो आकुलता स्वरूप है, आर्तध्यान रौद्रध्यान होता है और पतन होता है। यही महान हानि है।

प्रश्न— 1501 अतिसंग्रह अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर प्रतिज्ञा करने के बाद निःप्रयोजन पाँचों इंद्रियों के विषयों का संग्रह कर लेना, चेतनाचेतन सामग्री को काम में आने वाली हैं या नहीं फिर भी अत्यधिक कमाई के लोभ से एकत्रित कर ली अतः अतिसंग्रह अतिचार पापरूप है। इस प्रकार की भावना अधिक समय तक रहने से अनाचार है।

प्रश्न— 1502—03 अतिसंग्रह किन वस्तुओं का किया जाता है? किस कारण से किया जाता है?

उत्तर भोग और उपभोग के योग्य वस्तुओं का संग्रह किया जाता है तथा जिससे अधिक कमाई हो पुण्य पाप का विचार किये बिना लोभ से संग्रह कर लेते हैं। भविष्य में अधिक कमाई होगी इस भावना से, लोक में प्रशंसा के लोभ से, ख्याति पूजा लाभ की भावना से, विषय भोगों में तथा इनकी साधनभूत सामग्री में अतिलम्पटता होने से, निष्प्रपोजन सामग्री का भी संग्रह कर लेता है जिससे बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह की भावना से युक्त हो नरकायु का बन्ध कर नरक में जन्म धारण कर नाना प्रकार के दुःखों को भोगता है। इन नरकों के दुःखों से जो भयभीत हैं वे अतिसंग्रह तथा इसकी भावना का जीवन पर्यन्त के लिए त्याग करें।

प्रश्न— 1504 निष्प्रयोजन वस्तु किसे कहते हैं?

उत्तर जिस वस्तु से या सामग्री से अपना लौकिक कार्य या लोकोत्तर कार्य सिद्ध न हो रहा हो तो उस वस्तु को निष्प्रयोजन कहते हैं जैसे जन्मान्ध व्यक्ति अपने उपयोग के लिए नम्बरवाला चश्मा रख ले या नग्न दिगम्बर मुद्राधारी साधु अपने पास कपड़ों का बर्तनों का संग्रह करके रख ले तो नग्न महाव्रती इस सामग्री का क्या करेगा? क्या वस्त्र पहनेगा या पहनायेगा? पहनाना भी

पहनने के बराबर है क्योंकि कारित क्रिया भी कृत के समान फल देती है। बर्तनों का करेगा क्या? भोजन बनायेगा या बर्तनों में क्या खायेगा? ब्रह्मचारी व्रती शादी की योजना से, विवाह के विचारों से लड़की क्यों देखेगा? जो निष्प्रयोजन है, यदि देखेगा तो पद भ्रष्ट होगा तथा जो मोक्षमार्ग के विरोधी है और जिनके संग्रह कर लेने पर आत्म ध्यान, आत्मसाधना, व्यवहार मोक्षमार्ग और निश्चय मोक्षमार्ग नष्ट हो जाय तो उस वस्तु को निष्प्रयोजन वस्तु कहते हैं।

प्रश्न– 1505–06 संसार में प्रत्येक वस्तु किसी न किसी के काम में आती है क्योंकि उपयोग करने वाले असंख्यात प्राणी हैं? तब निष्प्रयोजन क्या रहा?

उत्तर संसार में प्रत्येक प्राणी अनन्त आकांक्षाओं को धारण करता हुआ समस्त पदार्थों को अपने भोग में, उपभोग में लाना चाहता है भोगने की इच्छा करता है। भले ही तन की ताकत हो या न हो। इसलिए इस संसारी जीवने अनन्तबार समस्त पुद्गल पिण्डों को भोगकर छोड़ दिया है। उसकी बात यहाँ नहीं है। यहाँ तो मोक्षमार्ग से प्रयोजन है। इसके बिना शेष निष्प्रयोजन है। यदि संसारमार्ग की बात होती तो मोक्षमार्ग की चर्चा निष्प्रयोजन होती अर्थात् वह वस्तु की, पदार्थ की, व्यक्ति की प्रक्रिया के बदलने से अनुकूल प्रतिकूलपने को, प्रयोजनभूत निष्प्रयोजनपने को प्राप्त हो जाता है। यदि प्रक्रिया मोक्षमार्ग के अनुकूल है तो प्रयोजनभूत है तथा प्रक्रिया मोक्षमार्ग के विरुद्ध स्वभाववाली है तो निष्प्रयोजन है। ऐसा निश्चय करना चाहिए।

प्रश्न– 1507 पुद्गलपिण्ड तो आकाश में रहता है वह अपने आप संग्रह को प्राप्त हो जाता है फिर अतिसंग्रह अतिचार दोष क्यों नहीं कहा?

उत्तर आपका प्रश्न सत्य है वस्तु पुद्गल पिण्ड होने से, रूप रस गन्ध स्पर्श वाला होने से अपने आप क्षेत्रान्तर क्रिया नहीं करता किंतु पुद्गल स्कंध काल द्रव्य के निमित्त से तथा वायु, पानी और जीव के निमित्त से क्षेत्रान्तर क्रिया करता है। इनके माध्यम से संग्रह को प्राप्त हो जाता है फिर भी अतिसंग्रह दोष नहीं लगता क्योंकि मजदूर भी सामग्री का संग्रह करता है, मुनीम भी गोदामों में अत्यधिक संग्रह कर लेते हैं पर इनको यह दोष नहीं लगता है यह दोष तो मालिक को लगता है, नौकर को नहीं। नौकर तो आज्ञाकारी है मालिक नहीं, अधिकारी नहीं इसलिए केवल संग्रह का नाम अतिसंग्रह नहीं है किन्तु लोभपूर्वक कषायपूर्वक संग्रह का नाम अतिसंग्रह अतिचार दोष है तथा यह दोष व्रतियों को लगता है अव्रतियों को नहीं। जैसे चीटियां भोजन सामग्री को लोभ से कितना संग्रह कर लेती हैं फिर भी व्रताभाव होने से इनको अतिसंग्रह दोष नहीं लगता

प्रश्न– 1508 विस्मय अतिचार दोष किसे कहते हैं?

उत्तर भोग और उपभोग की वस्तुओं को प्राप्त कर मन में अभूतपूर्व समझकर, अतिशयकारी मानकर आश्चर्य करने को विस्मय कहते हैं। जैसे तुमने कोई चेतन या अचेतन वस्तु देखी, सुनी, प्राप्त हुई तब मन में विचार उत्पन्न हुआ कि आज तक हमने ऐसा पहले कभी नहीं देखा, न सुना, न सूंघा, न चखा, न स्पर्श किया, यह तो अभूतपूर्व है सो इसे विस्मयातिचार कहते हैं।

प्रश्न– 1509 बाह्य वस्तु को देखकर आश्चर्य क्यों होता है?

उत्तर बाह्य वस्तुओं को प्राप्तकर इंद्रिय विषय से सम्बन्ध जोड़कर अदृष्टपूर्व, अश्रुतपूर्व, अभूतपूर्व

मानकर कितना सुंदर रूप है हमने ऐसा कभी प्राप्त नहीं किया है आदि विचारों से आश्चर्य उत्पन्न होता है। अथवा भोग और उपभोग में अतृप्ति भाव होने से लोभकषाय आदि का तीव्रोदय होने से विस्मय आश्चर्य उत्पन्न होता है। अतः मोक्षमार्ग में चर्या के लिए इंद्रियजय परमावश्यक है। यदि इंद्रियजय प्राप्त हो गया है तो भोगोपभोग की बाह्य वस्तुओं में आश्चर्य कहाँ से होगा आप ही बतायें। अतः मोक्षमार्गी साधक विषयभोगों की साधनभूत सामग्री में आश्चर्य को प्राप्त नहीं होता क्योंकि कामभोगों की सामग्री को अनंतवार भोग कर छोड़ा अतः वमन के समान होने से आश्चर्य क्यों होगा? आश्चर्य तो नवीन वस्तुओं में होता है।

प्रश्न— 1510 किसी के ज्ञान, ध्यान, तप, मुनिमुद्रा, त्याग, जिनबिम्ब को देखकर आश्चर्य होता है तो क्या यह भी दोष है, अतिचार है?

उत्तर मोक्षमार्ग के, आत्म साधना के उपायभूत ज्ञान आदि को देखकर सुनकर जो आश्चर्य होता है वह दोष न होकर गुण है, प्रमोद भावना है, मोक्षमार्ग है। संसारमार्ग का खंडन करने वाला है।

प्रश्न— 1511 यह विस्मय नाम का अतिचार दोष गृहस्थों को लगता है या मुनियों को भी लगता है?

उत्तर यहाँ गृहस्थों का कथन है जब गृहस्थ श्रावक का मन इतना मजबूत हो जाता है कि उसके सामने भोगोपभोग की सामग्री आने पर भी चलायमान नहीं होता है क्योंकि वह कर्म सिद्धान्त का जानकार है, संसार शरीर भोगों से विरक्त होता है। जो भोगोपभोग की वस्तुयें नाना रूप में, नाना नामों से, नाना आकार में दिखाई दे रहे हैं वे अनादिकाल से अब तक अनन्तवार अनेक रुपों को धारण कर हमारे अनुभव में आईं है अतः सादृश्य सामान्य होने के कारण मेरे लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं है और है ही क्या? जब गृहस्थ अपने मन को इतने समय तक बिना किसी विस्मय के, परिश्रम के रोक सकता है तो साधू परमेष्ठी का मन यहाँ वहाँ क्यों जायेगा? क्यों भटकेगा? अतः मोक्षमार्गियों को ज्ञान और वैराग्य के द्वारा मन को सम्हालना चाहिए किन्तु विवेकहीन होने से दोनों को विस्मय अतिचार उत्पन्न होता है।

प्रश्न— 1512 आजकल कुछ साधुवर्ग, त्यागी व्रती, आर्यिकायें, क्षुल्लक क्षुल्लिकायें बाह्य सामग्री को देखकर आश्चर्य करते हैं तो क्या साधुओं का यह लक्षण ठीक है। जब यह श्रावक का विस्मय नाम का अतिचार है तो क्या साधुओं का अनाचार नहीं है यदि है तो क्यों?

उत्तर आजकल जो त्यागी वर्ग बाह्य विषयभोगों की सामग्री को देखकर या सुनकर आश्चर्य करते हैं सो उनका यह विचार मुनिपद का, रत्नत्रय का घातक है क्योंकि उन्होंने तत्त्व व्यवस्था, अपने पद की गरिमा, महिमा नहीं समझी, न अवधारण किया है ये संसार की अवस्थायें अनन्तबार घट चुकी है, घट रहीं हैं और घटेगी कोई अभूतपूर्व नहीं है क्योंकि जब अनन्तानंत अवसर्पिणी उत्सर्पिणी अनंतानंत हुंडावसर्पिणी हुंडाउत्सर्पिणी व्यतीत हो चुकी हैं तो आज जो घटनायें घट रही हैं वे भी सादृश्य सामान्य रूप से अनन्तबार घट चुकी है फिर आपको आश्चर्य क्यों अदृश्यपूर्व, अदृष्ट पूर्व, अश्रुतपूर्व, अभूतपूर्व क्यों मालूम पड़ रही है? आप वैरागियों को इस प्रकार

सोचना चाहिए अरे सामान्य गृहस्थ तो त्यागी व्रतियों को, मुनियों को, प्रतिमाधारियों को देखकर आश्चर्य करते हैं सो इनका यह आश्चर्य ऊर्ध्वगति को ले जाता है या ले जाने वाला है तथा साधुवर्ग गृहस्थों की कलाओं को या लौकिक घटनाओं को देखकर सुनकर आश्चर्य करते हैं यही बड़ा आश्चर्य है। यह ऐसा समझना कि गृहस्थ की निगाह गुरु चरणों में तो गुरुओं की निगाह गृहस्थ के जेब में। ऐसा क्यों? जिनके पास संस्था है, योजनायें हैं, मंदिर मठ हैं, संघ में चौका चूल्हा, गाड़ी, मोटर है उनको रुपया पैसा की जरूरत होती है इसलिए ये लोग जेब पर निगाह रखते हैं। प्राईवेट में कमरा बन्द कर, पहरेदार बैठाकर अंदर वार्तालाप करते हैं, माला पहनवाकर, तालियां बजवाकर, प्रशंसा करके कराके धनवानों से धन लूटते हैं। ये लौकिक नेता कडुवे लुटेरे हैं तो ये नामधारी, भेषधारी साधु मीठे लुटेरे हैं ये आदर सम्मान, प्रशंसा का लोभ देकर धन लूटते हैं इस कारण इनकी निगाहें गृहस्थों के जेबों पर रहती हैं। तभी ये हर जगह जाकर पैसों वालों को आगे कर गरीब वर्ग को पीछे हटा देते हैं। गरीब लोग कहते भी हैं कि उन महाराज के, माताजी के दर्शन दुर्लभ है। पैसे वालों को तो हाथ से, पीछी से आशीर्वाद प्राप्त हो जाता है तथा गरीब को उसके पास पहुंचने का मौका ही नहीं मिलता है कदाचित् कुछ भाग्यवशात् चले गये तो वहाँ बैठे चमचे कहते हैं कि जाओ जाओ समय हो गया है। उस त्यागी की उस गरीब पर निगाह ही नहीं पड़ पाती है। यदि इन बातों को पढ़कर मन में संदेह हो तो उक्त साधुओं के, गणिनी आर्यिकाओं के पास माध्यस्थ बनकर चले जाओ तब स्वयं को अनुभव हो जायेगा कि सत्य बात क्या है? अतः जो वास्तविक यथार्थ जिनमुद्राधारी हैं, सम्यक्विचार धारी हैं ऐसे श्रावक और साधुओं का कर्तव्य है कि वे किसी भी प्रकार के लौकिक विषय भोगों के साधनों को देखकर विस्मय को प्राप्त न हो। तभी उनका व्रत और मोक्षमार्ग सुरक्षित रह सकता है अन्यथा नहीं।

प्रश्न– 1513 अतिलोभ किसे कहते हैं?

उत्तर बाह्य भोग और उपभोग की सामग्री को प्राप्त कर पुनः पुनः अधिक अधिक प्राप्त हो इस प्रकार की भावना को अतिलोभ कहते हैं। सामग्री की प्राप्ति भाग्य के आधीन है पर तीव्र लालसा ही बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह कहलाती है जिससे नरकायु का आश्रवबंध होता है और नरक में जाकर सागरों पर्यन्त दुःख भोगने पड़ते हैं। व्रती बनने की भूमिका में या व्रती बनते ही इन परिणामों की व्युच्छित्ति हो जाती है किन्तु क्वचित् कदाचित् संगति के कारण ये परिणाम होने लगे तो आचार्यश्री कहते हैं कि हे भव्य ये तेरे परिणाम अभी अतिचार स्वरूप हैं यदि भावों को नहीं सम्हालता है तो ये परिणाम वृद्धि को प्राप्त कर, अनाचार रूप होकर धर्म से, मोक्षमार्ग से, अपने कर्तव्यपथ से पतन कराकर मिथ्यात्व में ले जायेंगे और रौद्रों के समान नरक का पात्र बनाकर नरक ले जाकर असंख्यात वर्षों तक नाना दुःख प्राप्त करायेंगे।

प्रश्न– 1514 इस जीव को अतिलोभ है यह कैसे मालुम होगा?

उत्तर जिस प्रकार मच्छमार मछली मारने के लिए जाल फैलाता है मछली आये या न आये पर मन में अब आयेगी अब आयेगी ऐसी रटन लगाये बैठा है इसी तरह जो आत्महित के कर्तव्य को, धर्म को छोड़कर धन कमाने के स्थान पर जाकर बैठा है कि ग्राहक अब आयेगा अब आयेगा

आस लगाये बैठा है यहाँ वहाँ देखता हुआ समय व्यतीत करता है किन्तु दानपूजा, स्वाध्याय, व्रत संयम पालन करने के लिए समय नहीं दुर्ध्यान लगाये दुकान पर ऑफिस में बैठा है मच्छमार की तरह। धर्म के लिए कहीं स्वास्थ्य का, कहीं अकेलेपन आदि का बहाना बना लेता है किन्तु पाप के लिए कोई बहाना नहीं बनाता यही अतिलोभ है ऐसा समझो।

प्रश्न– 1515 यह जीव जानता हुआ भी अतिलोभ को क्यों प्राप्त होता है?

उत्तर यह जीव जानता हुआ भी, नाना कष्ट उठाता हुआ भी, निन्दा को, बदनामी को सहन करता हुआ भी सहन करता हुआ भी अपनी आदत नहीं सुधारता है, पाप नहीं छोड़ता है। कारण अभी संसार में भ्रमण करना बाकी है। नाना तरह के नरक निगोद के मारन ताड़न, छेदन भेदन, पीड़न, वध बन्धन आदि के दुःखों को भोगना शेष बचा है इसलिए जानता हुआ भी अतिलोभ को प्राप्त होता है जिन प्रणीत निर्दोष धर्म में प्रीति नहीं करता है यह बहुत बड़ा खेद है, दुःख है।

प्रश्न– 1516 अतिलोभ के स्वामी कौन कौन जीव हैं?

उत्तर अतिलोभ के स्वामी समस्त प्रमादी प्रत्याख्यानावरणीय कषाय के तीव्रोदय से युक्त देशसंयमी जीव हैं क्योंकि प्रमाद के कारण बाह्य भोगोपभोग सामग्री में तीव्र लोभ को प्राप्त हो जाता है।

प्रश्न– 1517 आरम्भपरिग्रह के त्यागी मुनि अतिलोभ के स्वामी कैसे हो सकते हैं?

उत्तर प्रत्येक कषाय का अपने अपने गुणस्थानानुसार प्रतिपात के समय तीव्रोदय होता है और उस समय सावधान नहीं हुआ तो निश्चित ही नीचे पतन हो जायेगा क्योंकि प्रत्येक गुणस्थान में तत्सम्बन्धी कषाय का तीव्रोदय प्रतिपात के, गिरने के समय में होता है। जैसे अनन्तानुबन्धी कषाय का तीव्रोदय मिथ्यात्व गुणस्थान और सासादनगुणस्थान में होता है, अप्रत्याख्यानावरण कषाय का तीव्रोदय अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में होता है। प्रत्याख्यानावरण कषाय का तीव्रोदय देशव्रती नामक पंचमगुणस्थानवर्ती श्रावक के होता है। संज्वलनकषाय का तीव्रोदय प्रमत्तसंयत नामक छठवें गुणस्थान में होता है अथवा अपना उपयोग लक्ष्य से हटा कि कषाय का तीव्रोदय या उदीरणा होने से प्रतिपात हुआ या उपयोग अत्यन्त कलुषित होने से, प्रतिपात के सम्मुख होने से कषाय का तीव्रोदय हो जाता है। प्रतिपद्यस्थान अगले गुणस्थान को प्राप्त करने के सम्मुख होने से कषाय का मंदोदय होता है या मंदोदय होने से अगले गुणस्थान को प्राप्त करने की भूमिका बन जाती है और धीरे धीरे भूमिका बनते बनते अगला गुणस्थान प्राप्त हुआ कि तद्गुणस्थान सम्बन्धी कषाय अभाव को प्राप्त हो जाती है अथवा कषाय का अभाव होते ही अगला गुणस्थान प्राप्त होता है क्योंकि दोनों पर्यायें हैं और पर्याय का, उत्पाद व्यय का समय एक ही है, समय भेद नहीं तथा प्रत्येक गुणस्थानों में मध्य की अवस्था में मध्यम स्थान होता है, मध्यम परिणाम होता है। इसलिए गिरते समय या गिरने के सम्मुख होने पर परिणामों में संक्लेश की वृद्धि होने से कषायों का तीव्रोदय होता है।

प्रश्न– 1518 यदि प्रत्येक कषाय का तीव्रोदय गृहस्थ और मुनियों के समान है तो फिर क्या अंतर रहा दोनों समान हुए?

उत्तर आपका प्रश्न सही है किन्तु तीव्रोदय की अपेक्षा समानता होने पर भी शक्ति की अपेक्षा अन्तर

है क्योंकि भट्ठा की और घास की अग्नि में अग्नि की अपेक्षा अन्तर न होने पर भी ईंधन में अन्तर होने से शक्ति में अन्तर पड़ जाता है। घास की अग्नि बाह्य में दिख जाती है, जल्दी बुझ जाती है और भट्ठा की अग्नि बाह्य में न दिखने पर भी अन्दर ही अन्दर धधकती रहती है। ऐसे ही क्वचित् कदाचित् मुनि की कषायाग्नि घास के समान बाहर में दिख जाती है किन्तु गृहस्थ की कषायाग्नि भट्ठा के समान बाहर में न दिखने पर भी अंदर ही अंदर धधकती रहती है। अतः व्रती गृहस्थ का अतिलोभ अधोगति का साधन है। महाव्रती का अतिलोभ दुर्गति का साधन नहीं बन पाता किन्तु सुगति का साधन बन जाता है किन्तु द्वीपायन मुनि के समान यदि महाव्रतियों का क्रोध आदि कषायरूप परिणाम विषय कषायों के साथ, ख्याति पूजा लाभ के साथ उत्पन्न होकर वृद्धि को प्राप्त हो जाय तो दुर्गति का साधन बन जाता है। इसलिए दुर्गति से बचना है तो विषयकषाय सम्बन्धी अतिलोभ को छोड़कर रत्नत्रय से सम्बन्ध जोड़ लो।

प्रश्न— 1519 अतिभारवहन किसे कहते हैं?

उत्तर अपने या पर के शारीरिक बल से ज्यादा लोभकषायोदय के कारण अधिक भार लादकर ले जाने को अतिभारवहन कहते हैं।

प्रश्न— 1520 अतिभारवहन अतिचार क्यों लगाया जाता है?

उत्तर अतिभार वहन तीव्र लोभोदय से रुपया बचाने के लिए अथवा अधिक पैसा कमाने के लिए अथवा पशु को, कुली को, दासी दास को धन का लोभ देकर कष्ट देने के लिए पशु के, दासी दास के कष्ट को न देखकर अपना कार्य सफल करने के लिए अतिभार वहन दोष लगाया जाता है इनकी शक्ति से अधिक भार लादकर ले जाते हैं। बिचारे वे पशु कितने रोते हैं, कितने दुःखी होते हैं, लोभी प्राणी इन कष्टों को नहीं देखते हैं कि इन्होंने खाया की नहीं खाया, पैर का दर्द, गदर्न का दर्द कैसा है कौन जाने?

प्रश्न— 1521 यह दोष गृहस्थों के सम्भव है किन्तु त्यागीव्रतियों के कैसे सम्भव है?

उत्तर यह दोष सामान्य अव्रती गृहस्थों के सम्भव है क्योंकि उनके पास कोई व्रत नियम नहीं है किन्तु जो गृहस्थ त्यागीव्रती हैं उनके भी सामान्यतया समस्त आरम्भ परिग्रह का सद्भाव होने के कारण कदाचित् गृहस्थों की संगति होने के कारण यह दोष सम्भव है किंतु गृहत्यागी व्रतियों के, मुनियों के यह दोष संभव नहीं है।

प्रश्न— 1522 आजकल यह दोष मुनियों के, आर्यिकाओं के, ब्रह्मचारिणी बहनों के भी देखा जा रहा है तो क्या सत्य है या गलत?

उत्तर आपका कथन सत्य है कि जिन भेषधारियों के यह अतिचार दोष देखा जा रहा है वास्तव में वे त्यागी व्रती नहीं हैं, वे जिनधर्म की विराधना करने वाले केवल लिंगधारी हैं। घर में रहकर इस प्रकार का धन कमाया जा नहीं सकता था, न ऐसा ऐशोराम था तथा घर में रहकर विषय तृप्ति, धन तृप्ति नहीं हुई अतः साधु बनकर तृप्ति करने का अभ्यास करने लगे, साधन जुटा लिए। यदि मठाधीश न बनकर, गृहस्थ बनकर धन कमाते तो जीवन पर्यन्त क्या मर करके भी इतना धन न कमा पाते कारण अधिक धन की प्राप्ति अन्याय मार्ग से होती है, न्याय मार्ग से नहीं। जैसे

नदी में बाढ़ गन्दे पानी से आती है, स्वच्छ जल से नहीं। उसी तरह गृहस्थ के धन की वृद्धि गन्दे अन्याय मार्ग से, खोटे व्यापारों से बढ़ती है, न्याय मार्ग से नहीं। इसी प्रकार यदि कोई त्यागीव्रती, दिगम्बर साधु इन व्यापारों से सहित है तो वह नग्न रूप में साधु रूप में गृहस्थ है, साधु नहीं। क्या कांचली के निकल जाने से सर्प निर्विष हो जाता है? नहीं, तो क्या केवल बाह्य भेष बदलने से त्यागीव्रती महाव्रती हो सकता है? नहीं, अतः उक्त पात्रों में यह दोष है तो वे नाटक मंच के समान गृहस्थ त्यागी पात्रों का भेष बनाकर अभिनय कर रहे हैं। अतः जो मुमुक्षु हैं वे मठाधीशों से बचकर रहें इसी में कल्याण है।

प्रश्न– 1523 अहिंसाणुव्रत और परिग्रह प्रमाणाणुव्रत इन दोनों में अतिभारारोपण अतिचार कहा है तो इन दोनों में क्या अन्तर है?

उत्तर अहिंसाणुव्रत में जो अतिभारारोपण नाम का अतिचार दोष कहा है वह क्रोधोदय से होता है ऐसा समझना और परिग्रह प्रमाणाणुव्रत में अतिभारारोपण अतिचार कहा है सो यह लोभोदय से समझना। इन दोनों में यही अन्तर है अथवा भार लादना प्रथम व्रत का अतिचार है तो भार ढोना अंतिम व्रत का अतिचार है। आधार भेद से आधेय में अंतर हो जाता है।

प्रश्न– 1524 इन दोनों अतिचारों में कषायाधार की अपेक्षा से अंतर है यह कैसे मालूम हुआ?

उत्तर जब पर के प्राणों को घातने के लिए तत्पर होते हैं तब उस समय क्रोध कषाय की मुख्यता होती है तथा पर पदार्थों को संग्रह करने की इच्छा लोभ कषायोदय से होती है। कहा है – 'मूर्च्छा परिग्रहः' ममत्व परिणाम का नाम मूर्च्छा है, परिग्रह है तथा अतिभार वहन यह अतिचार परिग्रह प्रमाणव्रत का है। अतः दोनों में नाम की अपेक्षा अंतर नहीं है किंतु आधार की अपेक्षा अंतर है जो लक्षणों से जाना जाता है।

प्रश्न– 1525 समस्त पापों का मूल आधार प्रमाद है अतः प्रमाद का ही कथन करना चाहिए उनके भेद प्रभेदों का नहीं?

उत्तर आपका प्रश्न सही है परन्तु यह प्रमाद पद हाथी के पैर के समान संग्रह नय से कहा गया है समस्त पाप प्रमाद से ही होते हैं ऐसा सूत्रकारजी ने कहा है परन्तु प्रमाद के अनेक भेद प्रभेद होने से यह कार्य किस कषाय से या प्रमाद के किस अवान्तर भेदरूप प्रमाद से उत्पन्न हुआ है। इसका ज्ञान नहीं हो सकता है। अतः यह कार्य साक्षात् किस परिणाम से उत्पन्न हुआ है। यह बतलाना भी आवश्यक हो जाता है। इसलिए कोई दोष नहीं है।

Note- यहाँ तक 1416 से 1525 तक परिग्रह पाप, परिग्रह प्रमाणाणुव्रत, भावना तथा अतिचारों का वर्णन समाप्त हुआ।

प्रश्न– 1526–28 गुणव्रत किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर जिन नियम व्रतों या प्रतिज्ञाओं से मूलगुणों को, अणुव्रतों को पालन करने की शक्ति प्राप्त हो, व्रतों का निर्दोष पालन हो, अणुव्रतों के पालन करने में वृद्धि हो उसे गुणव्रत कहते हैं। इसके तीन

भेद हैं। नामः– दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदण्डव्रत।

प्रश्न– 1529 दिग्व्रत नामक गुणव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर जीवन पर्यन्त के लिए क्षेत्र सम्बन्धी और काल सम्बन्धी नियम करने को दिग्व्रत नामक गुणव्रत कहते हैं। जैसे जीवन पर्यन्त धर्म क्षेत्र के बाहर नहीं जाऊँगा ऐसा नियम करना।

प्रश्न– 1530 क्षेत्र सम्बन्धी दिग्व्रत गुणव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर नदी, समुद्र, तालाब, नाले, गृह, मकान, गली, मोहल्ला आदि में आने जाने की मर्यादा संकल्प पूर्वक जीवन पर्यन्त के लिए करने को क्षेत्र सम्बन्धी दिग्व्रत कहते हैं।

प्रश्न– 1531 काल सम्बन्धी दिग्व्रत नामक गुणव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर कोई विधि रूप में या निषेध रूप में जीवन पर्यन्त के लिए संकल्प पूर्वक नियम करने को काल संबंधी दिग्व्रत कहते हैं। जैसे जीवन पर्यन्त कंदमूलों का तीन मकारों का त्याग करता हूँ।

प्रश्न– 1532 द्रव्य सम्बन्धी दिग्व्रत किसे कहते हैं?

उत्तर उस क्षेत्र काल में चेतन अचेतन और मिश्र द्रव्यों का जीवन पर्यन्त के लिए त्याग करने को या विधिरूप में ग्रहण करने को द्रव्य सम्बन्धी दिग्व्रत कहते हैं। जैसे जब तक मैं इस क्षेत्र में हूँ या इतने काल पर्यन्त के लिए इस वस्तु को ग्रहण न करूंगा या जीवन पर्यन्त तक इस वस्तु को न छोड़ूंगा जैसे जीवन पर्यन्त के लिए अभक्ष्य वस्तुओं का त्याग करना द्रव्य का नियम है। इस तरह संकल्प पूर्वक विधि और निषेध करने को द्रव्य संबन्धी दिग्व्रत कहते हैं।

प्रश्न– 1533 भाव सम्बन्धी दिग्व्रत किसे कहते हैं?

उत्तर जो अन्याय अभक्ष्य और अविश्वास मिथ्यात्व के परिणाम हैं उनको जीवन पर्यन्त के लिए त्याग करने को भाव संबंधी गुणव्रत कहते हैं। इस प्रकार इस व्रत में द्रव्य क्षेत्र काल और भाव विरुद्ध स्वभाव वाले होने से त्याग करने योग्य हैं।

प्रश्न– 1534 दिग्व्रत में सिर्फ दिशाओं के नियम को करने के लिए कहा है, द्रव्यादि के लिए नहीं कहा है फिर आपने क्यों कहा?

उत्तर आपकी आशंका ठीक है कि आचार्यों ने दिग्व्रत में दिशा का ही संकेत किया है, द्रव्यादि का नहीं परन्तु आप जरा सोचो यदि किसी ने पूर्व दिशा में जाने का त्याग कर दिया है तो वह पूर्व दिशा में नहीं जायेगा तो पूर्व दिशा में न जाने से तत्संबंधी सामग्री का भी त्याग हो गया अब वह सामग्री मिलेगी नहीं। तत्संबंधी क्षेत्र का भी स्पर्श न होगा, जब वहाँ गया नहीं तो उस काल का भी त्याग कहलाया तत्संबंधी परिणाम नहीं हुए, भाव भी नहीं हुए तभी तो वहाँ वह न गया। अतः तत्संबंधी भावों का त्याग कहलाया इसलिए स्व या पर चतुष्टय एक समय में एक साथ आ जाते हैं क्योंकि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन चारों का घनिष्ट संबंध है। जहाँ पर एक का नाम लिया वहाँ पर पारिशेष न्याय से शेष तीन का अपने आप ग्रहण हो जाता है केवल चिंतन करो।

प्रश्न– 1535 दिग्व्रत को धारण करने से क्या लाभ है?

उत्तर दिग्व्रत को धारण करने से यह लाभ कि जहाँ तक का आपने नियम लिया है वहाँ तक के अन्दर

शुभाशुभ कार्य स्वरूप कार्यो को करो या मत करो पुण्य पाप कर्मों का आश्रवबंध चालू रहेगा। नियम के बाहर के शुभाशुभ कार्यों का विकल्प न होने से कर्मों का संवर हो जाता है तथा तत् संबंधी आश्रवबंध नहीं होता और संकल्प विकल्प का त्याग कर उस स्थान के बाहर जाने आने का त्याग करने से महाव्रत कहे जाते हैं यदि अपनी पूर्व प्रतिज्ञा को भूल कर लोभ से बाहर कोई वस्तु भेजी या मंगाई तो व्रत भंग होने से कर्मों का आश्रव बंध होता है अतः जिस प्रकार जीवन पर्यन्त समस्त पापों को त्याग करने से महाव्रत कहे जाते हैं उसी तरह सीमा के बाहर द्रव्यादि चतुष्टय का त्याग होने से वह महाव्रत का स्वरूप अपने आप सिद्ध हो जाता है।

प्रश्न— 1536 महाव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर हिंसादि पापों को मन से कृत, कारित अनुमोदना, वचन से कृत, कारित, अनुमोदना, काय से कृत, कारित, अनुमोदना पूर्वक त्याग करने को अर्थात् नव कोटियों से पाँचों पापों का त्याग करने को महाव्रत कहते हैं।

प्रश्न— 1537 ये महाव्रत कैसे उत्पन्न होते हैं?

उत्तर बाह्य में दिगम्बर मुद्राधारी और अंतरंग में मिथ्यादृष्टि जीव के अनन्तानुबन्धी आदि तीन चौकड़ी का अभाव होने से, अव्रती सम्यग्दृष्टि जीव के अप्रत्याख्यानावरण आदि दो चौकड़ी कषायों का अभाव होने से, देशव्रती के प्रत्याख्यानावरण कषाय चौकड़ी का अभाव होने से महाव्रत द्रव्य और भाव रूप में उत्पन्न होते हैं। महाव्रतों का धारी, आरम्भ परिग्रह का त्यागी, शृंगारालंकार का त्यागी, विषय भोगों का त्यागी, ज्ञान ध्यान में लीन दिगम्बर मुनि होता है।

प्रश्न— 1538 इस दिग्व्रत को निर्दोष पालन करने के लिए क्या करना चाहिए?

उत्तर दिग्व्रत को निर्दोष पालन करने के लिए अपनी दिनचर्या सावधानी पूर्वक कर प्रमाद को छोड़कर अतिचारों को टालना चाहिए।

प्रश्न— 1539—41 अतिचार किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर देव शास्त्र गुरु की साक्षी, पंचों की साक्षी, देवी देवताओं की साक्षी, अपने आपकी साक्षी सावधानी पूर्वक जो प्रतिज्ञा की है तो उस प्रतिज्ञा में असावधानी पूर्वक परिणामों में शिथिलता होने को तथा दिनचर्या में असावधानी होने को अतिचार कहते हैं। 5 भेद हैं। 1. ऊर्ध्वव्यतिक्रम 2. अधः व्यतिक्रम 3. तिर्यग्व्यतिक्रम 4. क्षेत्रवृद्धि 5. विस्मरण।

प्रश्न— 1542—43 ऊर्ध्वव्यतिक्रम अतिचार किसे कहते हैं? किस कारण से होता है?

उत्तर ऊपर पर्वत पर या शिखर पर या मकानों के ऊपर जिन मंदिर है, गुरुजन ध्यानाध्ययन तप की, आत्मा की साधना में तत्पर हैं सो उनके दर्शन, पूजन, वन्दन के लिए जाना है ऐसा नियम लिया था किन्तु प्रमादवश इसका उल्लंघन कर घूमने के लिए, भ्रमण करने के लिए, भोग विलास के लिए, सौन्दर्य देखने के लिए, व्यापार के लिए, धनवृद्धि के निमित्त ऊपर चले जाना जहाँ कुछ भी धर्म नहीं, धर्म का साधन नहीं निष्प्रयोजन जाने को, दूसरों को भेजने को, प्रशंसा करने को, प्रोत्साहन देने को ऊर्ध्वव्यतिक्रम नामक अतिचार कहते हैं। इस दोष की उत्पत्ति विषय के, धन के लोभ से या अपराध को छिपाने के निमित्त से होती है।

प्रश्न— 1544—45 अधः व्यतिक्रम अतिचार किसे कहते हैं? किस कारण से होता है?

उत्तर नीचे भूमि के अन्दर तलघर में नदी या पर्वत की गुफा में, कन्दराओं में देवशास्त्रगुरु का समागम प्राप्त होना है, ध्यानाध्ययन के लिए जाने का नियम लिया था किन्तु नीचे जहाँ पर धर्मायतन, धर्मसाधन नहीं है केवल प्रमाद पूर्वक घूमने के, भ्रमण के निमित्त, विषय भोगों के निमित्त, धन के लोभ के निमित्त, व्यापार के निमित्त या ख्याति पूजा लाभ के निमित्त, सोने चांदी, हीरे रत्नों की खदानों को देखने के लिए या शहर देखने के लिए चले जाना भेजना और अनुमोदना करने को अधः व्यतिक्रम नामक अतिचार कहते हैं। यह दोष भी प्रमाद पूर्वक असावधानी से, कुसंगति से, कमजोरी से या किसी के दबाव वश या प्रेम प्रसंग से भी उत्पन्न होता है।

प्रश्न— 1546—47 तिर्यग्व्यतिक्रम अतिचार किसे कहते हैं? यह अतिचार किस कारण से उत्पन्न होता है?

उत्तर पूर्व दिशा, अग्नि कोण, दक्षिणदिशा, नैऋृतकोण, पश्चिम दिशा, वायव्यकोण, उत्तर दिशा, ईशान कोण इस प्रकार इन चार दिशा चार विदिशाओं में जहाँ तक धर्म साधन, धर्मायतन है वहाँ तक आने जाने का नियम किया था किन्तु प्रमाद पूर्वक धनादि के लोभ से, विषयभोगों के निमित्त तथा ख्याति पूजा लाभ के निमित्त, तिर्यग् दिशाओं में चले जाने को तिर्यग्व्यतिक्रम अतिचार कहते हैं। इसमें भी स्वयं जाना भेजना अनुमोदना करना सहायता करना आदि से यह दोष प्रमाद पूर्वक, असावधानी से देशव्रतियों के उत्पन्न होता है।

प्रश्न— 1548—49 क्षेत्र वृद्धि नाम का अतिचार किसे कहते हैं? यह किस कारण से उत्पन्न होता है?

उत्तर लोभवश या किसी भी प्रमाद के अंश के आधीन होकर की हुई मर्यादा को उल्लंघन कर दूसरी दिशा में उस मर्यादा को मिला कर व्यापारादि करने को या युद्ध आदि के निमित्त किसी को नीचा दिखाने को या धोखे में डालने के लिए मर्यादा बढ़ा लेने को क्षेत्रवृद्धि अतिचार कहते हैं। जैसे पूर्व दिशा में दस कि.मी. जाने का नियम लिया था किन्तु बाद में पश्चिम दिशा में या किसी भी दिशा में, किसी भी प्रकार की, किसी भी उपाय से, लाभादि की भावना से वहाँ की वार्ता को सुनकर या देखकर उस समय पूर्व दिशा की या किसी भी दिशा की मर्यादा को कम कर पश्चिम दिशा में या किसी भी दिशा में मिलाकर मर्यादा की वृद्धि कर लेने को, करा लेने को, करा देने को, अनुमोदना करने को क्षेत्रवृद्धि नामक अतिचार दोष कहते हैं।

प्रश्न— 1550 विस्मरण अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर किसी कारण वश या कुसंगति से ज्ञानावरण कर्म के उदय से या उपयोग की अस्थिरता से मर्यादा भूल जाने को, मर्यादा की थी या नहीं, कितनी की थी या बिल्कुल नहीं की थी सो इन विचारों को विस्मरण अतिचार कहते हैं।

प्रश्न— 1551 ऊर्ध्वदिशा का नियम करने वाले श्रावक श्राविकायें क्या वायुयान से या जहाज से गमनागमन कर सकते हैं या नहीं?

उत्तर यदि धर्म साधना के लिए, धर्म प्रभावना के लिए, दर्शन, पूजन, वन्दन, ध्यानाध्ययन करने के लिए क्योंकि आजकल विदेशों में भी जिन मंदिर बन चुके हैं इसलिए कदाचित् वायुयान से, आकाशमार्ग से गमनागमन करना योग्य हो सकता है किन्तु केवल व्यापार के लिए, सौन्दर्य देखने के लिए, विवाहादि करने के लिए, भोग विलास के लिए, गमनागमन नहीं कर सकते हैं। क्योंकि धर्म कार्य के अलावा केवल लोभ से, माया से अथवा किसी भी कषाय से विमान में बैठना अतिचार है अशुभ लेश्यायें है, आर्तध्यान रौद्रध्यान है, दुर्भावना है अतः व्रती श्रावक श्राविकायें कृत्रिम अकृत्रिम विमान से भ्रमण नहीं करें। पूर्ण वर्ज्य है त्याज्य है।

प्रश्न— 1552—54 क्यों वर्ज्य है? क्या विद्याधर व्रती बनकर आकाश मार्ग से गमन नहीं करते थे? यदि करते थे तो आज क्यों नहीं कर सकते हैं?

उत्तर क्योंकि विद्याधरों के विमान विद्या से, मंत्र से निर्मित होते थे, अहिंसक होते थे इन विमानों से गमनागमन करने पर जीवों की विराधना नहीं होती थी किन्तु आजकल के विमान हिंसार्थक हैं हिंसा के साधन हैं। ईंधन से, अग्नि, पानी, हवा से चलते हैं। पेट्रोल, डीजल, तेलादि से गमनागमन करते हैं। स्थावर अनंत जीव तथा संख्यात असंख्यात त्रस जीव मारे जाते हैं। आग लग जाती है, प्रतिवर्ष अनेक विमान दुर्घटनाओं से नष्ट हो जाते हैं जिससे जनहानि धन हानि होती है। यदि विमान समुद्र में गिर गया तो कुछ भी शेष नहीं बचता पूर्णरूप से नष्ट हो जाता है ये हिंसक हैं तो वे अहिंसक थे। अतः विद्याधर व्रती लोग धर्म के निमित्त अपने विमानों से गमनागमन करते थे और व्रतीजन वर्तमान के विमानों से गमनागमन नहीं कर सकते हैं।

प्रश्न— 1555 व्रती लोग पानी के जहाजों से समुद्र की लहरों का आनन्द ले सकते हैं क्या?

उत्तर नीचे अधोलोक में जहाँ तक धर्मायतन है वहाँ तक जाने आने का नियम लिया था किन्तु पाताल में धर्मायतन के बिना केवल भ्रमण, व्यापार, विषयभोग, कुछ देखने या ख्याति पूजा लाभ की भावना से पनडुब्बी आदि में बैठकर लौकिक व्यक्तियों की तरह घूमने चल दिये लोभ से जल जहाजों में बैठकर आनन्द नहीं ले सकते हैं। यदि प्रमादवश एकादबार गमनागमन किया तो अतिचार दोष हुआ और पुनः पुनः गमनागमन किया तो अनाचार दोष हुआ जो व्रत को समूल नष्ट कर देता है। धर्म के उद्देश्य के बिना निष्प्रयोजन घूमना अनर्थदंड पाप ही है।

प्रश्न— 1556—57 व्रती अणुव्रती प्रतिमाधारी देश विदेशों में विमानों से या किसी अन्य साधनों से भ्रमण कर सकते हैं या नहीं? क्या हानि है?

उत्तर नहीं जा सकते हैं क्योंकि विदेशों में जाने के लिए पानी के रास्ते से या आकाशमार्ग से जा सकते हैं तो सर्वप्रथम आदि के चारों अतिचार उत्पन्न होकर व्रत को भंग करने लगते हैं और प्रतिज्ञा भूल गये तो पाँचों अतिचार दोष लगने लग जाते हैं। जिस प्रकार विदेशी लोग यहाँ आकर यहाँ की वस्तुओं को, कलाओं को देखकर आश्चर्य करने लगते हैं तो यहाँ के लोग वहाँ जाकर आश्चर्य पूर्वक देखते हैं, सुनते हैं, खाते हैं, पीते हैं, पहनते हैं और बड़े प्रसन्न होते हैं। सर्वप्रथम दिग्व्रत के अतिचार लगते हैं। वहाँ की विकार को उत्पन्न करने वाली सामग्री को देखकर आश्चर्य

हुआ तो परिग्रह प्रमाणाणुव्रत का अतिचार तथा इष्टानिष्ट विचार हुए तो आर्तध्यान तथा आनन्द आया तो रौद्रध्यान है अतः सभी पाप बिना बुलाये आ जाते हैं। इसलिए जो मोक्षाभिलाषी हैं, पाप से भयभीत हैं सम्यग्दृष्टि हैं तो वे स्वप्न में भी वहाँ जाने की न सोचे न जाये क्योंकि वहाँ जाने से व्यक्ति अन्याय और अभक्ष्य से बच नहीं सकता है तथा अन्यदृष्टिप्रशंसा और अन्यदृष्टिस्तव अतिचारों से बच नहीं सकता है। वहाँ पर जाने से जाति कुल और धर्म की मर्यादायें सब कुछ नष्ट हो जाती हैं अतः हानि ही हानि है।

Note- यहाँ तक 1526 से 1557 पर्यन्त दिग्व्रत की परिभाषा, दिग्व्रत का लक्षण तथा अतिचारों का वर्णन समाप्त हुआ।

प्रश्न— 1558 देशव्रत में गुणव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर दिग्व्रत में जीवन पर्यन्त के लिए जहाँ तक धर्मायतन हैं देवशास्त्रगुरु का समागम प्राप्त होता है वहाँ तक की मर्यादा रखकर शेष का त्याग कर दिया था क्योंकि निष्प्रयोजन पाप कर्मों का आश्रवबंध हो तो देशव्रत में थोड़े समय के लिए द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का नियम कर जैसे द्रव्य का, भोजन का, पान का, वस्त्राभूषण का, मकान, दुकान, दासी, दास, परिवार आदि का इतने समय के लिए त्याग करता हूँ बाद में जीवन बचा तो ग्रहण करुंगा अन्यथा त्याग रहेगा जैसे सेठ सुदर्शन वारिषेण कुमार आदि। क्षेत्रः— इतने क्षेत्र में जाऊँगा शेष के आगे नहीं। कालः— एक घंटा दोपहर रात्रि दिन पक्ष महीना वर्ष आदि तक त्याग करता हूँ बाद में जीवन रहा तो इनका उपभोग करूंगा। अन्यथा जीवन पर्यन्त त्याग रहेगा। इस प्रकार दिग्व्रत के अन्दर मर्यादा को सूक्ष्म कर लेने को देशव्रत कहते हैं।

प्रश्न— 1559 यह व्रत क्यों धारण किया जाता है जबकि दिग्व्रत स्वीकार कर लिया है?

उत्तर दिग्व्रत में जीवन पर्यन्त के लिए हो गया अब यदि पुनः व्रत की अनुप्रेक्षा नहीं की तो क्षयोपशम अल्प होने से भूल सकते हैं अतः व्रत का संस्कार बना रहे पर भव में साथ जाय इसलिए हमेशा अभ्यास बना रहे नित्य प्रति अपने परिणामों को न बिगाड़ते हुए तथा सुरक्षित रखते हुए व्रतों का पालन हो। अतः यह देशव्रत सार्थक है व्यर्थ नहीं है अथवा दिग्वत में जहाँ तक की मर्यादा की है वहाँ तक के अन्दर से सम्बन्धित पुण्य पाप का आश्रवबंध होता है और मर्यादा के बाहर पुण्यपाप कर्म का आश्रव बंध नहीं होता है। जीवन पर्यन्त के लिए मर्यादा की है क्वचित् कदाचित् वहाँ तक जा सकते हैं, पर अभी तो वहाँ जाना नहीं है निष्प्रयोजन पाप कर्मों का आश्रवबंध क्यों? अतः नित्य प्रति द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को समझकर जहाँ तक कुछ लौकिक लोकोत्तर प्रयोजन है तो वहाँ तक रखकर शेष का त्याग कर देने से कर्मों का आश्रवबंध नहीं होगा क्योंकि जितना मन वचन काय का विस्तार होगा उतना कर्मों का आश्रवबंध अधिक होगा और जितना कम मन वचन काय का व्यापार होगा उतना कर्मों का आश्रवबंध कम होगा।

प्रश्न— 1560 योगों के द्वारा आत्म प्रदेशों में कम्पन की हीनाधिकता होने पर क्या कर्मों के आश्रव बंध में अन्तर पड़ता है या नहीं?

उत्तर योगों की कम्पनता में हीनाधिकता होने पर समय प्रबद्ध के प्रदेश पुंज में हीनाधिकपना हो जाता हैं स्थितिबन्ध और अनुभाग बन्ध में अंतर पड़ता ही है क्योंकि योग से प्रकृतिबंध प्रदेशबंध तथा कषाय से स्थितिबंध और अनुभागबन्ध होता है। सामान्य समय प्रबद्ध की अपेक्षा अंतर नहीं है किंतु प्रदेश गणना की अपेक्षा अंतर हो जाता है

प्रश्न– 1561 समय प्रबद्ध किसे कहते हैं?

उत्तर जो एक समय में सिद्धों के अनंतवें भाग और अभव्यों से अनन्तगुणे कर्म वर्गणायें आकर आत्म प्रदेशों के साथ एकमेक होकर ठहर जाती हैं सम्बन्ध को प्राप्त होती है उसे समय प्रबद्ध कहते हैं अथवा एक समय में बंधने वाले कर्म स्कधों के समूह को समय प्रबद्ध कहते हैं।

प्रश्न– 1562 देशव्रत को निर्दोष पालन करने के लिए क्या करना चाहिए?

उत्तर देशव्रत को निर्दोष पालन करने के लिए अतिचारों को छोड़ना चाहिए और सावधानी पूर्वक दिनचर्या का पालन करना चाहिए।

प्रश्न– 1563–1564 देशव्रत के अतिचारों के कितने भेद हैं? नाम कौन–कौन हैं?

उत्तर देशव्रत के अतिचारों के पाँच भेद हैं। नामः– 1. आनयन 2. प्रेष्यप्रयोग 3. शब्दानुपात 4. रूपानुपात 5. पुद्गलक्षेप।

प्रश्न– 1565 आनयन अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर देशव्रत का नियम लेकर मर्यादित क्षेत्र में रहकर निवास करते हुए किसी लौकिक कार्य के लिए, विषय भोगों के लिए, ख्याति पूजा लाभ की भावना से किसी को बाहर से बुलाकर कार्य कराने को आनयन प्रयोग अतिचार कहते हैं।

प्रश्न– 1566 बाहर से बुलाकर कार्य कराने को अतिचार दोष क्यों कहा?

उत्तर मर्यादा से, सीमा से बाहर के व्यक्ति को बुलाकर काम कराने को अतिचार इसलिए कहा है कि नियम लिया था पाप को दूर करने के लिए, आरम्भ परिग्रह को त्यागने के लिए, दुर्ध्यान दुर्लेश्यायें आदि विकारों को समाप्त करने के लिए, षट्काय के जीवों की रक्षा करने के लिए त्याग का संकल्प किया था क्योंकि आरम्भ से जाने, अनजाने षट्काय जीवों की विराधना होती है और उसे आपने बुलाया वो बिना समिति के गमनागमन करेगा। काम भी बिना समिति के करेगा तथा आपकी आज्ञा मानकर कार्य कर रहा है सो उस आरम्भ परिग्रह के माध्यम से उत्पन्न पाप का अधिकारी वह नहीं होगा किन्तु आपकी आज्ञा मानकर करने से पाप का अधिकारी नहीं, आज्ञा करने वाला, आज्ञा देने वाला पाप का अधिकारी है।

प्रश्न– 1567 इस विषय में दृष्टान्त कौन सा है?

उत्तर जिस प्रकार राजा सैनिकों को युद्ध करने की आज्ञा देता है, राजा स्वयं युद्ध नहीं करता है किन्तु सैनिक ही मारकाट करते हैं परन्तु पाप के फल को भोगने के लिए नरक निगोद में राजा को ही जाना पड़ता है, सैनिक स्वर्ग में भी और मोक्ष में भी जा सकते हैं, नरक निगोद में भी जा सकते हैं किन्तु नारद, रौद्र, नारायण, प्रतिनारायण आदि राजा महाराजा अत्यधिक पाप के

अधिकारी बनकर नरक निगोद के ही पात्र होते हैं जिस प्रकार आज्ञा देने से पाप का अधिकारी राजा होता है उसी प्रकार आज्ञा मानने वाला उतना पाप का अधिकारी नहीं होता है इसलिए मर्यादा के बाहर से बुलाकर लौकिक कार्य कराने को अतिचार कहा है।

प्रश्न– 1568 धर्मकार्य तो करा सकते हैं जिससे अतिचार दोष न लगे?

उत्तर सर्वप्रथम पाप का त्याग किया जाता है इस दृष्टि से विचारा जाये तो धर्म करा सकते हैं परन्तु वह धर्म कार्य भी सीमा के बाहर, पद के विरुद्ध कार्य करने से उत्कृष्ट धर्म की विराधना हो जाती है और अपनी प्रतिज्ञा तो भंग हुई क्योंकि गृहस्थ का धर्मकार्य और मुनियों के धर्म कार्य में अन्तर है। गृहस्थ के धर्म कार्य आरम्भ परिग्रह से सहित होते हैं और मुनियों के इनके त्याग से होते हैं। फिर भी आरम्भ परिग्रह का नाम धर्म नहीं धर्मकार्य नहीं क्योंकि ध्यानाध्ययन, तप, दान पूजा धर्म कार्य हैं आरम्भ परिग्रह नहीं। यद्यपि पूजा पाठ में आरम्भ परिग्रह है और आरम्भ परिग्रह जहाँ है वहाँ नियम से हिंसा पाप तो होता ही है प्रतिज्ञा भंग नाम का दोष तो लगता ही है। अतः अपनी प्रतिज्ञा भंग नहीं करना चाहिए। (ये तीन लाइनें महाव्रतियों कि अपेक्षा लिखी गई हैं गृहस्थों की अपेक्षा से नहीं ऐसा समझना) ध्यानाध्ययन की अपेक्षा पूजा पाठ में दान आदि कार्यों में आरम्भ विशेष होता है। जैसे श्री प. पू. विष्णुकुमार मुनि ने 700 मुनियों की रक्षा करने के लिए अपना मुनिव्रत छोड़कर गृहस्थ पद स्वीकार कर लिया था तब 700 मुनियों की रक्षा की। श्री विष्णु कुमार मुनि का वह कार्य सर्वत्र निर्दोष नहीं था किन्तु विशेष रूप से व्यवहार धर्म के लिए निर्दोष था तो भी स्वयं के लिए सदोष था इसलिए विष्णुकुमारजी को पुनः दीक्षा लेनी पड़ी, प्रायश्चित लेना पड़ा क्योंकि वे गुणस्थान से भी गिर गये थे और पंचम गुणस्थान में आ गये। इन विष्णुकुमार मुनि के समान तो तुम गृहस्थों का धर्म कार्य नहीं है। तुम्हारा धर्म कार्य तो आरम्भ परिग्रह से सहित है। इसलिए विष्णुकुमार मुनि का वह कार्य न होकर भी सातसौ मुनियों की रक्षा की फिर भी प्रायश्चित्त किया। इस पुण्य पाप को दूर कर शुद्धात्मा का ध्यानाध्ययन करना चाहिए। इसलिए धर्मध्यान के लिए सीमा के बाहर से बुलाना हानिकारक नहीं है। फिर भी ध्यानाध्ययन तपादि की मात्रा में और दानपूजा में उत्पन्न हुए संकल्प विकल्पों से पुण्य की मात्रा में, आत्मशुद्धि की मात्रा में अन्तर समझकर प्रवृत्ति करना चाहिए। अतः प्रसंगानुसार धर्म कार्य के लिए बुला सकते हैं और नहीं भी किन्तु दृष्टि निवृत्ति मार्ग में रखना चाहिए। दूसरी बात यह है कि पाप का त्याग कराया पुण्य कार्य का नहीं फिर भी पुण्य कार्यों की पद के अनुसार मात्रा में अन्तर है जो पुण्य कार्य गृहस्थ को ऊपर उठाने में सहायता करता है वही गृहस्थ धर्म मुनि पद से गिराने में सहायक हो जाता है क्योंकि मुनिपद बहुत ऊँचा है इसलिए आचार्यों ने दोनों के कार्य भिन्न भिन्न बताये।

प्रश्न– 1569 आनयन प्रयोग क्यों करना पड़ा अर्थात् मर्यादा के बाहर से क्यों बुलाना पड़ा?

उत्तर नियम लेते समय याद नहीं रहा कि अभी कोई काम शेष बचा है या नहीं किन्तु नियम ले लिया, धारण कर लिया बाद में याद आया कि अब यह काम शेष बचा तो प्रमादवश काम के लिए बाहर से बुला लिया यदि नहीं बुलाया तो आकुलता बढ़ती जाती है अतः आकुलता को समाप्त करने

के लिए बुलाकर काम करा लिया अतः काम का लोभ होने से अतिचार कहा है।

प्रश्न– 1570 प्रेष्यप्रयोग अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर की हुई मर्यादा के बाहर काम कराने के लिए किसी व्यक्ति को भेजने के लिए प्रयत्न करने को प्रेष्य प्रयोग अतिचार कहते हैं अथवा हमने नियम लिया है, किया है कि इस स्थान से बाहर नहीं जायेंगे पर अब बाहर का काम आ गया है अतः तुम वहाँ जाकर काम कर वापिस आ जाना यह प्रेष्यप्रयोग नाम का अतिचार है। यह प्रमादवश कषायवश एकादबार कराने से अतिचार और अधिक बार कराने से अनाचार हो जाता है।

प्रश्न– 1571 मर्यादा के बाहर भेजने को कार्य कराने को अतिचार क्यों कहा?

उत्तर इस क्षेत्र के बाहर हम नहीं जायेंगे इस प्रकार नियम किया है और किसी व्यक्ति को काम के लिए भेजा वह बिना समिति के गया कार्य आरम्भ किया, आरम्भ में असावधानी होने से जीव हिंसा होगी प्रमाद होने से समस्त पाप हो जाते हैं। क्रिया कर्म में कृत कारितानुमोदना बराबर है। अतः व्रत की विराधना होने से दोष कहा है। कदाचित् सावधानी पूर्वक स्वयं करने से पाप नहीं होगा किंतु दूसरों से कराने पर अवश्य ही व्रत की विराधना और पापाश्रव होता है।

प्रश्न– 1572–73 हम किसी को न बुलायेंगे न भेजेंगे किंतु जो अपने आप आ रहा है या जा रहा है उससे काम करा लिया जाय तो क्या हमको दोष लगेगा? हमने न बुलाया है न भेजा है तो दोष क्यों लगेगा?

उत्तर मन में काम की आकुलता है, काम कराने के लिए व्यक्ति की तलाश है, मैंने काम करने को सोचा है, कोई साधन मिल जाय तो काम करा लेवे और साधन के अभाव में अपने भावों को व्यक्त नहीं किया किन्तु साधन के उपलब्ध होने पर उसका उपयोग कर लिया अतः दोष ही है। इस कारण इच्छानुसार कोई आये तो उससे करा लें। पूछते हैं कि आप जा रहे हो या आ रहे हो, जरूरी काम है, पता लगाना, मालुम पड़ने पर काम करा लिया जाता है यदि काम नहीं हुआ तो आकुलता बनी रहती है और कार्य सफल हो गया तो मन प्रसन्न हो गया। इस कारण किसी को बुलाओ या भेजो तो कार्य के साथ साथ आरम्भ कराया हिंसा पाप, प्रमाद कषाय होने से भाव परिग्रह पाप भी कराया या स्वयं में उत्पन्न हुआ जिससे जीव हिंसा तो होगी ही होगी सो पाप होगा ही होगा और पाप भी अतिचारादि दोषों के बिना हो नहीं सकता। अतः पाप ही है।

प्रश्न– 1574 उक्त कथनानुसार श्रावक या मुनिजन फोन से तो काम करा सकते हैं?

उत्तर नहीं, मर्यादा के बाहर फोन से अथवा अन्य किसी भी साधनों से गृहस्थ कार्य नहीं करा सकते हैं। पाप तो पाप ही है। जब गृहस्थ को फोन से कार्य करना कराना अनुमोदना करना दोष कहा है तब आचार्य, उपाध्याय, मुनि, गणिनीआर्यिका, आर्यिका, क्षुल्लक, क्षुल्लिका, श्रावक श्राविका आदि त्यागी गण कैसे करा सकते हैं? त्यागियों को तो अनाचार दोष लगेगा ही क्योंकि श्रावक की अपेक्षा गृह त्यागियों का त्याग अधिक और सूक्ष्म होता है अतः देशव्रती श्रावक मर्यादा के अन्दर रहकर और गृहत्यागी तथा महाव्रती मुनिजन फोन, मोबाईल आदि से वार्तालाप न कर सकते हैं न करा सकते हैं न अनुमोदना कर सकते हैं।

प्रश्न– 1575 शब्दानुपात अतिचार दोष किसे कहते हैं?

उत्तर मर्यादा के अन्दर रहकर के किसी अन्य व्यक्ति को अपना अभिप्राय समझाने के लिए स्पष्ट या अस्पष्ट शब्द उच्चारण करने को शब्दानुपात अतिचार कहते हैं। अपने कार्य की योजना को मर्यादा के बाहर स्थित व्यक्ति को बोलकर, चिल्लाकर आरम्भ को या सांसारिक विषय भोगों के कार्य को समझा देने को या निष्प्रयोजन वचनालाप को शब्दानुपात अतिचार कहते हैं।

प्रश्न– 1576 शब्दानुपात को अतिचार दोष क्यों कहा?

उत्तर उपयोग में अस्थिरता होने से, आकुलता होने से शब्द बोला गया तथा आरम्भ पाप के कार्यों में लगा दिया जिससे संख्यात, असंख्यात और अनन्त जीवों की विराधना होने से व्रत भंग के साथ उपयोग में चपलता होने से इसको शब्दानुपात अतिचार कहते हैं या कहा है। पत्र से या फैक्स से सूचना भेजना पुद्गलक्षेप अतिचार है और फोन से वार्तालाप करना सूचना भेजना शब्दानुपात तथा पुद्गलक्षेप नाम का अतिचार है।

प्रश्न– 1577 यह शब्दानुपात अतिचार दोष क्यों लगाया जाता है?

उत्तर मर्यादा के बाहर या अन्दर पद के विरुद्ध, व्रत के विरुद्ध वह अन्दर के या बाहर के व्यक्ति को ही प्रमाद के, कषाय के आधीन होकर कार्य कराया जाता है इस कारण शब्दानुपात नामक अतिचार दोष लगाया जाता है।

प्रश्न– 1578–79 शब्दानुपात और आनयनप्रयोग में तथा शब्दानुपात और प्रेष्यप्रयोग में क्या अन्तर है? यदि अंतर नहीं है तो एक ही है क्या?

उत्तर इन अतिचारों में अन्तर अवश्य है यदि अन्तर नहीं होता तो अलग अलग नाम नहीं गिनाते तथा यदि शब्दानुपात अतिचार को आनयन प्रयोग में, प्रेष्यप्रयोग में अन्तर्भाव कर लेते हैं तो चार ही अतिचार दोष हुए तब पाँचवें नम्बर का दूसरा कोई अतिचार देखना पड़ेगा, खोजना पड़ेगा। क्योंकि किसी को बुलाना है या भेजना है तो शब्द का प्रयोग तो करना होगा वह शब्द स्पष्ट बोलो या अस्पष्ट बोलो अतः इन दोनों अतिचारों से भिन्न बताने के लिए शब्दानुपात अतिचार को भिन्न कहा है। इसलिए मर्यादा के अन्दर ही रहकर अंदर के व्यक्ति से विरुद्ध कार्य करने के लिए शब्द बोलकर प्रेरित करना शब्दानुपात अतिचार कहा है। आनयन प्रयोग और प्रेष्यप्रयोग तो शरीर के, आँख के, हाथ के, इशारे से सामने वाले व्यक्ति को संकेत कर भेज सकते हैं या बुला सकते हैं परन्तु व्यक्ति सामने नहीं हैं या पीठ करके खड़ा है तो उसे वचन से आवाज कर अपने सम्मुख कार्य कराना अतः इसे अलग से शब्दानुपात अतिचार कहा है अर्थात् उक्त दो अतिचार बिना वचन के उत्पन्न होते हैं तथा शब्दानुपात अतिचार वचन प्रयोग से उत्पन्न होता है।

प्रश्न– 1580 जिसने मौनव्रत लिया है या गूंगा है वह तो शब्द बोल नहीं सकता तब उन्हें यह अतिचार दोष कैसे लगेगा?

उत्तर मौनव्रत वाले या गूंगे मुँह से अस्पष्ट उच्चारण कर या अपूर्ण बोलकर, तालियां बजाकर, जंघा पीटकर, पत्थर बजाकर या लिखकर तो ये अनिष्ट या इष्ट कार्य प्रमाद पूर्वक करा सकते हैं

कराते ही हैं तब तो यह दोष लगता ही है। अतः किसी भी प्रकार स्पष्ट या अस्पष्ट ध्वनि कर व्यक्ति से अनिष्ट या इष्ट कार्य करा लेना शब्दानुपात अतिचार दोष कहा है।

प्रश्न– 1581 रूपानुपात अतिचार दोष किसे कहते हैं?

उत्तर अपने शरीर को या शरीर के अंग को दिखाकर, इशारा कर या अनुक्तज्ञान के समान चेहरा बतलाकर शरीर के माध्यम से अभिप्राय समझा देने को रूपानुपात अतिचार दोष कहते हैं। इस दोष में सिर्फ शरीर व्यापार की मुख्यता रहती है।

प्रश्न– 1582 यह अतिचार दोष अलग से क्यों कहा?

उत्तर देशव्रती श्रावक सोचता है कि नियम लिया है सबको मालुम है तब यदि बाहर से बुलाया या बाहर किसी को भेजा या आवाज की तो लोग समझ जायेंगे, जान लेंगे तो हमारी हंसी करेंगे, मजाक उड़ायेंगे, धर्म की भी हंसी होगी कि जैन लोग त्यागी व्रती नियम ले करके भी लोभवश व्रतभंग कर देते हैं। अतः निन्दा से भयभीत होकर मेरे अभिप्राय को जान न सके इसलिए मायाचार का सहारा लेकर रूप दिखाकर या किसी प्रकार से इशारा कर आरम्भादि पाप कार्य के लिए प्रेरित करने को रूपानुपात अतिचार कहते हैं।

प्रश्न– 1583 रूपानुपात नामक अतिचार को आदि के दो अतिचारों में अन्तर्भाव कर सकते हैं क्या?

उत्तर नहीं कर सकते हैं, भले ही क्वचित् कदाचित् रूपानुपात के कुछ चिह्न लक्षण उनमें पाये जाते हैं तो भी अन्तर्भाव नहीं कर सकते हैं क्योंकि ग्रन्थकारों ने, सूत्रकारजी ने अलग से इस नाम को गिनाया है। आप के कथनानुसार यदि अन्तर्भाव कर भी लिया जाये तो चार अतिचार शेष रह जाते हैं। तब पाँचवें अतिचार की कल्पना अलग से करनी पड़ेगी क्योंकि अतिचारों की संख्या पाँच बताने की प्रतिज्ञा की है।

प्रश्न– 1584 पुद्गलक्षेप अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर हमारे अभिप्राय को कोई समझ न ले, देख न ले इस विचार से मर्यादा के बाहर स्थित व्यक्ति को अपना अभिप्राय बताने के लिए कंकर, पत्थर, कागज, लकड़ी या कुछ भी पुद्गलपिण्ड फेंककर, संकेत पहुंचाकर अपने कार्य के लिए प्रेरित कर देने को पुद्गलक्षेप अतिचार कहते हैं।

प्रश्न– 1585–86 यह देशव्रती श्रावक क्या मर्यादा के बाहर पत्र आदि के द्वारा व्यवहार कर सकते हैं? पत्र डाल सकते हैं क्या?

उत्तर नहीं कर सकते हैं, नहीं डाल सकते हैं क्योंकि पत्र भी तो पुद्गल पिण्ड है सीमा के बाहर पत्र, फैक्स कैसे भेजेगा? यदि डालेगा तो अतिचार दोष लगेगा क्योंकि पुद्गलक्षेप अतिचार दोष बतलाया है। संतोषवृत्ति के अभ्यास से आकुलता के अभाव से व्रत लिया था किन्तु अब लोभवश, प्रमादवश आकुलता होने से मन वश में नहीं रहा तभी तो पत्रादि के द्वारा अपना संकेत पहुंचाया। मन वश में था तो पत्र क्यों डाला?

प्रश्न– 1587 मुनि गृहत्यागीजन चातुर्मास के समय अथवा अन्य समय में भी पत्र

व्यवहार कर सकते हैं या करा सकते हैं क्या?

उत्तर न कर सकते, न करा सकते हैं क्योंकि चातुर्मास में आहार निहार की सीमा अत्यन्त अल्प रह जाती है केवल विहार का त्याग कर दिया जाता है। आहार के लिए श्रावक के घर आना जाना, निहार के लिए जंगल जाना आना, दर्शन पूजन वन्दन के लिए गृह चैत्यालय या समाधि कराने के लिए या कोई श्रावक साधु बीमार है अपने पास में आने के लिए असमर्थ है तो इनके पास आ जा सकते हैं इसके अलावा शेष प्रसंगों पर अपने स्थान पर जहाँ वर्षायोग का संकल्प किया है वहीं पर निवास करना ध्यानाध्ययन करना और भी अन्य धर्मकार्य करना चाहिए। यदि मन वश में नहीं है तो त्याग क्यों करना? नियम क्यों लेना? जब मन उपयोग गृहस्थों के प्रति या अन्य लौकिक कार्यों के प्रति लालायित है, अतृप्ति भाव है तो नियम, व्रत, दीक्षा लेने से क्या प्रयोजन सिद्ध होने वाला है? आ. श्रीकुंदकुंद ने लिं.पा. गा. 18 में कहा है। 'पव्वज्ज हीण गहिणं णेहं सीसम्मि बट्टदे बहुसो। आयार विणय हीणो तिरिक्ख जोणी ण सो सवणो।।' जो साधु असंयमी गृहस्थ शिष्य पर अधिक स्नेह रखता है। आचरण से, विनय से हीन है वह तिर्यंच है, साधु नहीं है। अतः गृहस्थ के लिए बार बार पत्र डालना डलवाना, फैक्स करना कराना पुद्गलक्षेप अतिचार है, अनाचार है और फोन से वार्तालाप करना टेलीविजन से प्रचार प्रसार करना कराना शब्दानुपात और पुद्गलक्षेप नाम के अतिचार दोष हैं पुनः पुनः करने कराने से अनाचार दोष लगते हैं। गृहत्यागियों का, मुनियों का अनाचार ही है। चातुर्मास के अलावा शेष समयों में भी गृहत्यागी, मुनिजनों को असंयमी गृहस्थों के लिए पत्र व्यवहार नहीं करना चाहिए।

प्रश्न– 1588 भक्तों को पत्र लिखने या लिखवाने में क्या दोष है?

उत्तर सर्वप्रथम मन में विकल्प आया कि पत्र लिखना है फिर बाजार से, दुकान से पत्र मंगाया लिखा और डाला पुनः प्रत्युत्तर की भावना बनी रही तथा वापिस जवाब नहीं आया तो उनको हमारा पत्र मिला या नहीं। यदि मिला है तो क्या नाराज हैं? कारण क्या है? पुनः पत्र डालो आदि आकुलतायें होती रहती हैं तथा उपयोग में चंचलता होने से ध्यानाध्ययन में मन लग नहीं पाता है अतः हानि ही हानि है। इसलिए पत्र डालना ही है या फोन करना ही है। ऐसा क्यों? भक्तों के प्रति या सगे सम्बन्धियों के प्रति तीव्र प्रेम है तो नियम करने के पहले पत्र व्यवहार कर लो बाद में नियम करो जिससे व्यवहार न बिगड़े और नियम पले अतः पत्र लिखनादि पुद्गलक्षेप अतिचार है।

Note- इस प्रकार 1558 से 1588 तक देशव्रत का लक्षण तथा अतिचारों का वर्णन समाप्त हुआ।

प्रश्न– 1589–90 अनर्थदण्ड किसे कहते हैं? अनर्थदण्डव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर जिस कार्य को करने से निष्प्रयोजन कर्म का बन्ध, प्रतिज्ञा भंग हो लोक में निन्दा हो, बदनामी हो, अपमान तिरस्कार हो, मोक्षमार्ग आत्म सुख शान्ति नष्ट हो, भंग हो उसे अनर्थदण्ड कहते हैं जिस कर्तव्य पालन से पाप कर्मों का संवर और पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा हो, प्रतिज्ञा का पालन हो, प्रशंसा हो, सुख शान्ति की प्राप्ति हो, मोक्षमार्ग की सिद्धि हो उसे अनर्थदण्ड व्रत कहते हैं।

प्रश्न– 1591 इस प्रकार के कार्यों का त्याग क्यों कराया?

उत्तर एक घटी हुई यथार्थ घटना है जो इस प्रकार है यहाँ दी जा रही है एक दम्पति थे वे दोनों पढ़े लिखे डिग्री प्राप्त थे। दोनों अपना अपना काम सम्हालते थे। शादी किये थोड़ा समय व्यतीत हुआ था। पतिदेव सर्विस और साथ साथ व्यापार भी करते थे। पत्नी अपने घर का काम सम्हालती थी। व्यापार में झगड़े होने लगे, केस मुकदमे चलने लगे, वकीलों की आवश्यकता पड़ती थी और वकीलों को हमेशा पैसा देने पर भी परेशान करते थे इसलिए चिन्ता हुई क्या किया जाय तो सोचते–सोचते इस निर्णय पर पहुंचे कि पुत्र को वकील बनाया जाय ताकि परेशानी समाप्त हो जायेगी। उधर पत्नी नौकरों से परेशान थी, नौकर चोरी करके भी ले जाते हैं तथा नौकरों का परस्पर में वैर बना रहता है उनको समझाने में परेशानी आती है पुनः पुलिस की आवश्यकता होती है और पुलिस जल्दी आती नहीं अतः परेशानी ही परेशानी अतः क्लेक्टर के पास जाने से काम जल्दी हो जाता पर बार बार कलेक्टर को कहाँ तक बुलाये रुपया पैसा खर्च होता है इसप्रकार सोचते सोचते निर्णय पर पहुंची कि हम अपने पुत्र को कलेक्टर बनायेंगे। दोनों के अपने अपने अभिप्राय और निर्णय थे कुछ समय बाद दोनों में वाद विवाद हो गया विवाद इतना बढ़ गया कि परस्पर में मारपीट भी होने लगी। रात्रि में गस्ती लगाने वाली पुलिस ने पकड़ लिया, गिरफ्तार कर बांधकर जेल में ले जाकर बन्द कर दिया, बाद में दोनों के ऊपर मान हानि का, मारपीट का केस चालू हुआ। पेशी पड़ी, दोनों कोर्ट में जज के सामने लाये गये, खूब वाद विवाद हुआ, न्यायाधीश चक्कर में पड़ गया कि मैं क्या निर्णय दूं? सोचते सोचते पूंछने लगा आखिर आप लोग क्या चाहते हैं? यह हमने समझ लिया, पर उस पुत्र से पूंछा जाय तो समाधान जल्दी हो जायेगा कि पुत्र क्या चाहता है, वह क्या बनना चाहता है? आप लोग अपने पुत्र को बुलाओ तब दोनों ने कहा कि अभी गर्भ ही नहीं रहा तब सन्तान कहाँ से होगी फिर पुत्र से क्या पूंछना? तब न्यायाधीश ने कहा कि जब पुत्र ही पैदा नहीं हुआ है तो मूर्खों वादविवाद क्यों किया? इतने समय तक धन खर्च किया, समय बर्बाद किया, बदनामी हुई, मारपीट की, इज्जत बिगड़ी, परस्पर में वैर बना, शत्रुता हुई, प्रेम टूटा, भोजन पान की व्यवस्था नष्ट हुई, सुख का आनंद नहीं आया, इतने समय तक का दाम्पत्य जीवन व्यर्थ गया आदि। इसी तरह की आजकल अनेक प्रकार की हंसी मजाक में निष्प्रयोजन दुर्घटनायें पेपरों में, टी.वी. में पढ़ने में, देखने में, सुनने में आती हैं अतः निष्प्रयोजन कार्यों का त्याग कराया।

प्रश्न– 1592–93 अनर्थदण्ड के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर प्रमादपूर्वक, असावधानी सहित जो आत्म सुख शान्ति के बिना, मोक्षमार्ग रूपी प्रयोजन के बिना और लोक में सद्व्यवहार के बिना किए गए ऐसे अनर्थदण्ड के पाँच भेद हैं। नामः– 1. पापोपदेश अनर्थदण्ड 2. हिंसादान अनर्थदण्ड 3. अपध्यान अनर्थदण्ड 4. दुश्रुति अनर्थदण्ड 5. प्रमादचर्याअनर्थदण्ड।

प्रश्न– 1594 पापोपदेश अनर्थदण्ड किसे कहते हैं?

उत्तर जिन वचनों से प्राणी संसार मार्ग में, पापकर्म में फंस जाय उसे पापोपदेश अनर्थदण्ड पाप कहते

हैं जैसे तिर्यंचप्राणी, पशुपक्षी, जानवर या क्वचित् कदाचित् मनुष्यों के दासी दास रूप में या पति पत्नी रूप में, क्रय विक्रय की कथा करने कराने, सुनने सुनाने, मारने की, काटने की कथा करना, छेदकर, भेदकर वश में कर लेने को या छेदने भेदने का उपदेश करना, खेती करना, शस्त्र कला सीखने सिखाने का, बनाने बनवाने का, कामभोग का, श्रृंगारालंकार का, युद्ध करने का, व्यापार का, आरम्भ परिग्रह का, विवाहादि का, लौकिक मारण, उच्चाटन, विद्वेषणादि का उपदेश करने को पापोपदेश अनर्थदण्ड पाप कहते हैं।

प्रश्न– 1595 उपरोक्त कथन को पापोपदेश अनर्थदण्ड क्यों कहा?

उत्तर **क्योंकि उपरोक्त कथन करने से तिर्यंच, पशु पक्षी, जानवर तथा गरीब कमजोर हीन बुद्धि वाले बालक बालिकायें या स्त्री पुरुष विषय भोगों के, आजीविका के साधन बनाकर नाना तरह से पीड़ित किये जाते हैं, मृत्यु के, रोग के शिकार बन जाते हैं। अंधे, लूलेलंगड़े बनाकर भीख मांग मांग कर, मंगवाकर आजीविका के साधन बना लिए जाते हैं, जान से भी मार दिए जाते हैं। अतः दुःख के साधन होने से इस प्रकार के उपदेश को अनर्थदण्ड कहा।**

प्रश्न– 1596 हिंसादान अनर्थदण्ड किसे कहते हैं?

उत्तर **जिस वचन से, काय से बाह्य साधनों को ग्रहण करने कराने से प्राणियों का घात हो हिंसा हो उसे हिंसादान अनर्थदण्ड कहते हैं। जैसे लाठी, पत्थर, तलवार, बर्छी, बल्लम, त्रिशूल, कुल्हाड़ी, गेंती, फावड़ा, चाकू, बन्दूक, राइफल, पिस्तोल, बम जहर आदि प्राण घातक सामग्री को स्वयं ग्रहण करने को या दूसरों को ग्रहण कराने को हिंसादान अनर्थदण्ड कहते हैं। हिंसा + दान बराबर हिंसादान। हिंसा + आदान बराबर हिंसादान इस प्रकार हिंसादान पद के हिंसा के साधनों को देना और ग्रहण करना दोनों अर्थ होते हैं। सो दोनों अर्थ इष्ट हैं।**

प्रश्न– 1597 हिंसा के साधनों को देकर या लेकर हर्षित होने को पाप क्यों कहा?

उत्तर **इस प्रकार हिंसा के साधनों को देकर या लेकर प्राणियों की हिंसा की जाती है तथा अपने हाथ में होने से स्वयं का घात भी कर लिया जाता है। दूसरों को तो मारते ही है अपना और अपने परिवार का, रिश्तेदार, नातेदारों का भी घातकर लिया जाता है, कर दिया जाता है जो वर्तमान में खूब देखा, सुना और पढ़ा जा रहा है। जैसे बन्दूक से, राईफल आदि या मिट्टी के तेल को, पैट्रोल को, डीजल को डालकर आग लगा लेते हैं, जहर खाकर, तालाब में कुंए में गिरकर, फांसी लगाकर मर जाते हैं। और भी अन्य साधनों से स्वयं का या दूसरों का घात कर डालते हैं। इस प्रकार की हिंसाकर हर्षित होना हिंसानंदी रौद्रध्यान है अतः पाप ही है ऐसा कहा है।**

प्रश्न– 1598 इन इन साधनों से आत्महत्या भी की जाती है यह कैसे मालूम हुआ?

उत्तर **इन साधनों से आत्महत्या की जाती है इस बात की जानकारी यहाँ की मृत्यु की वार्ताओं को सुनकर, पेपरों में पढ़कर, टी.वी. में विज्ञापन पढ़कर सुनकर या देखकर मोही, प्रमादी, पापी, कमजोर दिलवाला प्राणी इन साधनों से आत्महत्या कर लेता है और करा भी देता है।**

प्रश्न– 1599 यह मूर्ख प्राणी आत्महत्या क्यों कर लेता है?

उत्तर **यह मूर्ख पुरुषार्थहीन समस्याओं से जूझने में अपने आपको असमर्थ अनुभव करता हुआ कर्तव्य**

पालन करने में हताश होकर और ऐसे प्रसंगों पर योग्य संबोधन साधन न मिलने पर कमजोर मन वाला, अपना मुख कालाकर आत्महत्या कर लेता है।

प्रश्न— 1600 अपध्यान अनर्थदण्ड किसे कहते हैं?

उत्तर राग से अथवा द्वेष से दूसरों का धन, मकान, दुकान, खेती, बाड़ी, पुत्र, पुत्रियों को, पति पत्नी को अपहरण करने कराने के कष्ट में डालने के विचारों को, बीमार पड़ जायें, घाटा लग जाये, चोरी हो जाये, मर जाये, वियोग हो जाये आदि योजनाओं को अपध्यान अनर्थदण्ड कहते हैं।

प्रश्न— 1601 इस प्रकार दूसरों को दुःखी करने के विचारों को अपध्यान अनर्थदण्ड क्यों कहा?

उत्तर दूसरों को हानि पहुंचाने के विचारों से, स्वयं के मन वचन काय में कम्पन होने से, स्वयं में ही पाप कर्मों का आश्रवबंध होता है और वे कर्म उदय में आकर अपना फल देते हैं, आत्मा स्वयं पूर्वकृत अपराध का फल भोगता हैं जो ये कार्य बिना मतलब के हैं। जैसे आपने किसी को जलाने के लिए अंगारा हाथ में लिया जलाने को फेंका यदि उसका पापोदय चल रहा है तो जलेगा और पुण्योदय है तो नहीं जलेगा किंतु आप सर्वप्रथम जले अपनी दुर्भावना से कर्मों से बंधे और व्यर्थ में बदनाम भी हुए और सज्जनों के बीच में विश्वास भी हट गया। प्रेम समाप्त हुआ यह हानि है।

प्रश्न— 1602 इस प्रकार का विचार कौन सा जीव करता है?

उत्तर इस प्रकार का विचार दूसरों को दुःखी करने का क्षुद्र बुद्धि वाला, मिथ्यादृष्टि, अशुभलेश्याओं से युक्त आर्तध्यानी, रौद्रध्यानी, पापी, प्रमादी, मोही, विकारी, दुर्बुद्धि व्यक्ति, अधोमार्गी चिन्तन करता है। यह चिन्तन ही अपध्यान नाम का अनर्थदण्ड कहलाता है।

प्रश्न— 1603 दुश्रुति अनर्थदण्ड किसे कहते हैं?

उत्तर यह मोक्षमार्गी जीव जिन वचनों के द्वारा अथवा कोई भी जीव विषय भोगों में, कामवासना में, दुध्र्यानों में, वैर विरोध में पड़ जाये ऐसी कथा करना सुनना सुनाना आदि को दुश्रुति अनर्थदण्ड कहते हैं अथवा शांत रस को छोड़कर शेष आठों रसों का वर्णन सुनना सुनाना, आरम्भ परिग्रह के वचनों को, हंसी मजाक के वचनों को दुश्रुति अनर्थदण्ड पाप कहते हैं।

प्रश्न— 1604 उक्त वचन व्यवहार को दुश्रुति अनर्थदण्ड पाप क्यों कहा है?

उत्तर धर्म विरुद्ध, भोग प्रिय, सत् संस्कार हीन, राग द्वेष मोहरूपी विकार को उत्पन्न करने वाले होने से, आत्म पतन के साधन होने से, दुर्भावना रूप विचारों का साधन होने से दुश्रुति अनर्थदण्ड पाप कहा जाता है अथवा पाप का साधन होने से पाप कहा जाता है।

प्रश्न— 1605 प्रमादचर्या अनर्थदण्ड किसे कहते हैं?

उत्तर प्रमाद पूर्वक आलस्य असावधानी सहित चर्या करने को आचरण पालने को प्रमादचर्या अनर्थदण्ड कहते हैं। प्रमाद पूर्वक गमनागमन, बोलचाल, सोना बैठना, खाना पीना आदि मन वचन काय की क्रिया, चर्या करने को प्रमादचर्या अनर्थदण्ड कहते हैं।

प्रश्न– 1606 प्रमादचर्या नामक अनर्थदण्ड किस प्रकार से किया जाता है?

उत्तर मन वचन काय की चंचलता पूर्वक प्रमाद युक्त भूमि खोदना, अग्नि जलाना, पानी फैलाना, कागज फाड़ना, चटाई तोड़ना, कपड़ा मोड़ना, फाड़ना, पैर हिलाना, मटकना, मटकाना, हंसी मजाक करना, घास तोड़ना, हवा करना, वनस्पति की विराधना करना, निष्प्रयोजन घूमना प्रमादचर्या अनर्थदण्ड कहलाता है। असावधानी पूर्वक निष्प्रयोजन अनर्गल क्रिया करने को प्रमादचर्या अनर्थदण्ड कहते हैं।

प्रश्न– 1607 उक्त कार्यों को अनर्थदण्ड पाप रूप क्यों कहा?

उत्तर उक्त कार्यों के करने से अपना मोक्षमार्ग नष्ट होता है, आत्म पतन होता है, सुख शान्ति समाप्त होती है, प्रत्यक्ष में दुःख की उत्पत्ति वृद्धि होती है, व्यर्थ में निष्प्रयोजन पाप क्रिया होने से अनन्त संसार के साधनभूत कर्मों का आश्रव बन्ध होता है। चतुर्गति में भ्रमण होता है। जगह जगह अपमान तिरस्कार होता है इसलिए इनको अनर्थदण्ड पाप कहा है।

प्रश्न– 1608 उक्त कार्यों से विरक्त होने को क्या कहते हैं अथवा अनर्थदण्ड त्याग व्रत किसे कहते हैं?

उत्तर उक्त कार्यों को पाप रूप जानकर, अनिष्ट फल देने वाला जानकर त्याग करना चाहिए क्योंकि इन कार्यों को करने से आत्मा की पवित्रता नष्ट होती है, दुष्कर्मों में प्रवृत्ति होती है इसलिए इनके त्याग को अनर्थदण्ड त्यागव्रत कहते हैं। यह मोक्षमार्गियों के होता है।

प्रश्न– 1609 इस व्रत को निर्दोष पालन करने के लिए क्या करना चाहिए?

उत्तर इस व्रत को निर्दोष पालन करने के लिए अतिचारों को त्यागना चाहिए क्योंकि दूषित व्रत सद्गति का प्रदायक नहीं होता किंतु सद्गति में बाधक बन दुर्गति का साधन बन जाता है।

प्रश्न– 1610 अतिचारों की उत्पत्ति किस कारण से होती हैं?

उत्तर अतिचार आदि दोषों की उत्पत्ति प्रमाद से, अज्ञान होने से, कमजोरी होने से, कुसंगति होने से, पराधीन होने से, लोभादि कषायों के आधीन होने से अतिचार दोषों की उत्पत्ति होती है।

प्रश्न– 1611–12 अनर्थदण्डव्रत के अतिचारों के कितने भेद हैं? कौन कौन हैं?

उत्तर अनर्थदण्ड व्रत के अतिचारों के पाँच भेद हैं। नामः– 1. कन्दर्प अतिचार 2. कौत्कुच्य अतिचार 3. मौखर्य अतिचार 4. असमीक्ष्याधिकरण अतिचार 5. उपभोग परिभोगानर्थक्य अतिचार इनको त्याग करना चाहिए।

प्रश्न– 1613–14 कन्दर्प अतिचार किसे कहते हैं? किन से या कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर कामवासना पूर्वक राग द्वेष मोह से विकार युक्त होकर हंसी मजाक करने को, कपट व्यवहार करने को, चुगलखोरी करने को, कामवासना पूर्वक विकथाओं के करने को पाप को बढ़ाने वाली चर्चाओं के करने को कन्दर्प अतिचार कहते हैं। यह अतिचार मन वचन काय की कामवासना पूर्वक प्रवृत्ति होने से, काम सेवन के विचारों से, कामी स्त्री पुरुषों की संगति से, अत्यन्त वीर्यवर्द्धक या रजवर्द्धक पाचन शक्ति की सामर्थ्य से अधिक गरिष्ठ और पौष्टिक आहार कर लेने से कन्दर्प

अतिचार उत्पन्न होता है जैसे ईंधन से, हवा से अग्नि उत्पन्न होकर वृद्धि को प्राप्त होती है वैसे ही भोगी, विषय लम्पटी मनुष्यों की, पशु पक्षियों की संगति से, इनकी काम क्रियाओं को देखने से कन्दर्प अतिचार उत्पन्न होता है।

प्रश्न– 1615 कन्दर्प अतिचार कब उत्पन्न होता है?

उत्तर जब प्राणी मनुष्य फालतू बिना काम के निष्प्रयोजन कोई कार्य कर रहा है, बैठा है, खड़ा है, सो रहा है, जाग रहा है, बातें कर रहा है, मन इधर उधर कामवासना से युक्त होकर विचार कर रहा है, विकार युक्त चेष्टायें कर रहा है। वासना पूर्वक दूसरों की निंदा, बताने से, बुराई करने से, विरोध की कथा, शृंगारालंकार की कथा करने से कन्दर्प नाम का अतिचार दोष उत्पन्न होता है अथवा मैथुनेच्छापूर्वक मन वचन काय की चेष्टा करने से कन्दर्प अतिचार उत्पन्न होता है।

प्रश्न– 1616 कौत्कुच्य अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर काम सेवन की भावना सहित अशिष्ट आचार विचार पूर्वक काय से, शरीर के सभी अंगों से, दूसरों के शरीर को देखकर अपने शरीर के अंगों के द्वारा, उसके गाल को, बदन को, स्तनों के दबाने को, आकुलता पैदा कर देने को, शरीर के अंगों को, उपांगों को कुतकुताने से दोनों के मन में काम विकार उत्पन्न हो सकता है, हो जाता है इसलिए इसे कौत्कुच्य अतिचार कहते हैं। हंसी मजाक में कुत्कुता सकते हैं क्या? नहीं, कुत्कुताने से रागादिक विकार तो होते ही हैं।

प्रश्न– 1617 यह अतिचार कब उत्पन्न होता है?

उत्तर काम वासना पूर्वक मन वचन काय की चेष्टा से जब तृप्ति नहीं हो पाती है तो माया कषाय लोभ कषाय और वेदकर्मों के तीव्रोदय से उत्पन्न हंसी मजाक करते हुए काय के द्वारा गुदगुदाने से कौत्कुच्य नाम का अतिचार उत्पन्न होता है।

प्रश्न– 1618 मौखर्य अतिचार दोष किसे कहते हैं?

उत्तर विषय कषाय पूर्वक अधिक वचन प्रयोग करने को, अधिक बकवास करने को, अशिष्ट वचन प्रयोग को मौखर्यातिचार कहते हैं।

प्रश्न– 1619 अधिक वचन प्रयोग किसे कहते हैं तथा क्या हानि है?

उत्तर जितने वचनों से अपना अभिप्राय सामने वाला व्यक्ति सही ढंग से समझ ले उसे सीमित वचन कहते हैं। समझने के बाद में क्या समझना? निष्प्रयोजन है। ऐसे निष्प्रयोजन वचनों के द्वारा सुनने वाले के मन में कोई आश्चर्य नहीं होता है, उत्साह नहीं होता है किन्तु शिर और दुःखने लगता है। ज्यादा बोलने से उस वक्ता के प्रति मन में विरक्ति भाव उत्पन्न हो जाता है।

प्रश्न– 1620 अधिक वचन मौखर्य वचन की पहचान क्या है?

उत्तर सज्जनों की सभा में आवश्यकता के बिना, इष्ट तत्त्व की सिद्धि के प्रयोजन के बिना, जिनवचनों को सुनकर श्रोतागण थक जायें, बैचेन हो जायें, नीचे देखने लगें, नींद आने लगे, जंभाई आने लगे, भागने की कोशिश करें, चेहरा बिगड़ने लगे, उठकर जाने लगें तब समझ लो कि यह मेरा वचन प्रयोग अधिक मौखर्य वचन प्रयोग है।

प्रश्न– 1621 अधिक बोलने से क्या हानि है?

उत्तर अधिक बोलनेसे इज्जत समाप्त हो जाती है, कोई विश्वास नहीं करता, असमय में भाषा वर्गणायें समाप्त हो जाती है जिससे गूंगापन का आश्रव बंध होता है, अधिक बकवास करने वाले से लोग परहेज करने लग जाते हैं कि यह आ गया अब कान फोड़ डालेगा, चैन नहीं लेने देगा आदि और भी हानि प्राप्त होती है जो चिन्तन से भी समझ में आ सकती हैं।

प्रश्न– 1622 असमीक्ष्याधिकरण अतिचार दोष किसे कहते हैं?

उत्तर बिना विचारे अनर्गल विषय भोगों की अनुपयोगी सामग्री को लोभ वश समस्त चेतन अचेतन और मिश्र सामग्री के संग्रह कर लेने को असमीक्ष्याधिकरण अतिचार दोष कहते हैं।

प्रश्न– 1623 गृहस्थ को सामग्री का संग्रह करना ही चाहिए नहीं करे तो प्रसंग आने पर क्या करेगा?

उत्तर गृहस्थ को भविष्य के लिए सामग्री की जरूरत है अन्यथा असमय में जरूरत पड़ने पर क्या करेगा? सगे सम्बन्धी भोजन करने बैठे तब लेने जायेगा? शादी वगैरह का प्रसंग आ गया तो उस समय क्या व्यवस्था करेगा? अतः प्रसंग आने के पहले से ही अंहिसा धर्म, परिग्रह प्रमाण व्रत की प्रतिज्ञा को ध्यान में रखते हुए उचित सामग्री का संग्रह करना हानिकारक नहीं है किन्तु बहुत समय तक काम में आने वाली नहीं हैं फिर भी अभी से संग्रह करके रख ली। जबकि वह सामग्री सड़ेगी, घुनेगी, फूल जायेगी, अंकुर आ जायेंगे, कपड़ों में अभी से कीड़े लग जायेंगे। धन की हानि, प्राणियों की हानि और आकुलता होती है, अतः धन वृद्धि के लोभ से व्यापार के कारण अधिक संग्रह कर लेते हैं। मुनाफा होने पर अनाचारी हो जाते हैं। घाटा होने पर रोते हैं यहाँ तक की आत्महत्या कर डालते हैं। सामग्री के संग्रह कर लेने पर उसमें संख्यात, असंख्यात और अनन्त जीव उत्पन्न होते हैं और मरते हैं जिससे उपयोग करने वाले के स्वास्थ्य में हानि होती है। मांस, रक्त, हड्डी, चर्बी धातु उपधातुओं के खाने का भी दोष आता है, जिससे तन मन धन और धर्म चारों नष्ट होते हैं दुर्ध्यान और अशुभ लेश्याओं से मरकर दुर्गतियों में जाकर यातानायें भोगनी पड़ती हैं तब अधिक संग्रह करने से क्या लाभ? हाँ क्वचित् कदाचित् दानपूजा के निमित्त, अतिथि सत्कार के लिए, शादी आदि के निमित्त तथा अन्य भी कार्यों के निमित्त भी सीमित संग्रह सीमित समय के लिए कर सकते हैं। पर शर्त है कि अपनी तन की धन की सामर्थ्य को समझ लेना चाहिए। अन्यथा असमीक्ष्याधिकरण दोष उत्पन्न होता है।

प्रश्न– 1624 इस असमीक्ष्याधिकरण को दोष क्यों कहा?

उत्तर पाप कर्म का बन्ध होने से, परिणामों में संक्लेश होने से, दुर्ध्यान और दुर्गति का कारण होने से अतिचार दोष कहा है।

प्रश्न– 1625 उपभोग परिभोगानर्थक्य अतिचार दोष किसे कहते हैं?

उत्तर उपभोग परिभोग की सामग्री को जो अपने काम की नहीं है फिर भी लोभवश प्रमादवश रख लेना, संग्रह कर लेना कि भविष्य में कभी भी काम में आयेगी इस विचार से संग्रह कर रख लेने को उपभोग परिभोगानर्थक्य अतिचार कहते हैं?

प्रश्न– 1626 उपभोग वस्तु किसे कहते हैं?

उत्तर जो भोग सामग्री भोगने के बाद पुनः पुनः भोगने में आये अथवा स्पर्शनेंद्रिय, घ्राणेंद्रिय, चक्षुइंद्रिय और कर्णेंद्रिय का विषय वही पुनः भोगने में आने को उपभोग कहते हैं।

प्रश्न– 1627 परिभोग वस्तु किसे कहते हैं?

उत्तर जो एक बार भोगने के बाद में पुनः भोगने में नहीं आये, भोगकर पुनः प्रयोग में न लाई जाये या एक बार भोगने के बाद त्याग कर दिया जाये उसे परिभोग कहते हैं। जैसे रसनेंद्रिय का विषय जो भोजन किया है पुनः मुँह से बाहर निकालकर क्या सज्जन पुरुष खाते हैं? केवल एक कुत्ता ही उल्टी कर पुनः वापिस खा लेता है अतः रसनेंद्रिय का विषय परिभोग कहलाता है। इस प्रकार इन अतिचारों को संसार का साधन समझकर आत्मशुद्धि के लिए त्यागना चाहिए।

Note- यहाँ तक 1589 से 1627 तक अनर्थदण्ड पाप, अनर्थदण्ड व्रत का लक्षण तथा अतिचारों का वर्णन समाप्त हुआ।

प्रश्न– 1628–30 शिक्षाव्रत किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर जिन विचारों से या आचरणों से अणुव्रतों की वृद्धि करने की शिक्षा प्राप्त हो उसे शिक्षाव्रत कहते हैं। शिक्षाव्रत के चार भेद हैं। नामः– 1. सामायिक शिक्षाव्रत 2. प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत 3. उपभोग परिभोग शिक्षाव्रत 4. अतिथि संविभाग शिक्षाव्रत।

प्रश्न– 1631 सामायिक शिक्षाव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर नाना प्रकार की विषम अवस्थाओं के प्राप्त होने पर, उपसर्ग परीषहों के आने पर, अपने उपयोग को परपदार्थों से भिन्न कर, अपने निज स्वरूप में या मोक्षमार्ग में या मोक्षमार्ग के साधनों में स्थिर करने को सामायिक शिक्षाव्रत कहते हैं।

प्रश्न– 1632–34 उपसर्ग किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? कौन करता है?

उत्तर असातावेदनीय और अन्तरायकर्मोदय से अथवा समस्त घातिया कर्मोदय से पर के माध्यम से उत्पन्न हुई आपत्ति को उपसर्ग कहते हैं। कोई उपसर्ग शरीर से स्पर्शकर और कोई उपसर्ग शरीर से दूर रहकर ही कष्ट का वेदन कराते हैं। उपसर्गों के चार भेद हैं। नामः– 1. मनुष्यकृत 2. देवकृत 3. तिर्यंचकृत 4. अचेतनकृत आपत्ति को धीरवीर, उत्साही, मोक्ष के निमित्त, उद्यमशील श्रावकों के द्वारा, साधकों के द्वारा जीते जाते हैं। ये उपसर्ग चेतन प्राणियों के द्वारा तथा अचेतन वस्तुओं के द्वारा किए जाते हैं। इन उपसर्गों में अंतरंग असाता वेदनीय कर्मोदय प्रधान कारण है और बहिरंग कारण चेतन अचेतन वस्तुयें अनेक हो सकती है।

प्रश्न– 1635 सहन करने में और जीतने में क्या अन्तर है?

उत्तर समर्थ व्यक्तियों के द्वारा, प्राणियों के द्वारा उत्पन्न आपत्ति को कमजोर साधक या मनुष्य सहन करता है यदि कमजोर व्यक्ति प्रतिकार करेगा तो ज्यादा आपत्ति आ सकती है तब ज्यादा आपत्ति के भय से सहन कर लेता है और समर्थ साधक कमजोरों के द्वारा या समर्थों के द्वारा उत्पन्न आपत्ति को कर्मों के संवर और निर्जरा करने के लिए समर्थ होने पर भी प्रतिकार नहीं करता

प्रतिकार करने की नहीं सोचता न हीन परिणामी, न हीन पुरुषार्थी होता है। प्रतिज्ञा में मन लगाकर प्रतिकार नहीं करता। किन्तु दृढ़ रहता है। आपत्तियों के सामने आने पर प्रतिकार करने की भावना कायरता है, सहन करना है और प्रतिकार करने की भावना न होना तथा आपत्ति का वेदन न करना निश्चल ध्यान में स्थिर रहना जीतना है यही अन्तर है अर्थात् सहन करना हीन पुरुथार्थ है और जीतना उत्कृष्ट पुरुषार्थ है मोक्षमार्ग है सुख का साधन है।

प्रश्न– 1636–38 परीषह किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? किस कारण से उत्पन्न होते हैं?

उत्तर असातावेदनीय कर्म, मोहनीय कर्म, ज्ञानावरणीय कर्म और अंतराय कर्मोदय से अन्तरंग में उत्पन्न बाधा को तथा वात पित्त कफ के विकार से शरीर में उत्पन्न हुई आकुलता को, हर्ष विषाद को परीषह कहते हैं। ये 22 होते हैं। कुछ परीषह स्वनिमित्तिक तथा कुछ पर निमित्तिक होते हैं।

प्रश्न– 1639 इन 22 परीषहों के नाम कौन कौन हैं?

उत्तर 1. क्षुधा परीषह 2. तृषा परीषह 3. शीत परीषह 4. उष्ण परीषह 5. दंशमशक परीषह 6. नग्न परीषह 7. अरति परीषह 8. स्त्री परीषह 9. चर्या परीषह 10. निषद्या परीषह 11. शय्या परीषह 12. आक्रोश परीषह 13. वध परीषह 14. याचना परीषह 15. अलाभ परीषह 16. रोग परीषह 17. तृण स्पर्श परीषह 18. मल परीषह 19. सत्कार पुरस्कार परीषह 20. प्रज्ञा परीषह 21. अज्ञान परीषह 22. अदर्शन परीषह।

प्रश्न– 1640 क्षुधा परीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर जो साधक या साधु मुनि आहार के नहीं मिलने पर, थोड़ा मिलने पर या अन्तराय उल्टी आदि के हो जाने पर या बीमारी के कारण खाया नहीं जाने पर भी तीव्र नारकियों जैसी भूख लगने पर भी आकुल व्याकुल नहीं होते किन्तु ध्यानाध्ययन, दानपूजादि, षडावश्यकों की हानि न करते हुए मूलगुणों का, उत्तरगुणों का पालन करने में तत्पर रहते हैं जैसे गरम सन्तप्त पात्र में किंचित् पानी की बूंद शीघ्र ही जलकर सूख जाती है। उसी प्रकार उदराग्नि के तीव्र होने पर किंचित् आहार शीघ्र ही पच जाता है, गला भी सूख जाता है। असातावेदनीय कर्म की तीव्र उदीरणा होने पर मोहोदय से युक्त तथा अन्तराय कर्मोदय से सहित आहार न मिलने पर प्राप्ति की अपेक्षा अप्राप्ति में ही विशेष संतोषवृत्ति को धारण करने वाले के क्षुधा परीषहजय होता है अर्थात् भयंकर तीव्र भूख के लगने पर भी उपेक्षाभाव या माध्यस्थ भाव, समता भाव या अपने सल्लक्ष्य में उपयोग को स्थिर रखकर आवश्यकों के पालन में तत्पर रहने को क्षुधा परीषहजय कहते हैं।

प्रश्न– 1641 तृषा परीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर जिन्होंने स्नान का त्याग कर दिया है अथवा बार बार स्नान न करने का नियम लिया है तथा अपने घर में या पर घर में भोजन अत्यंत तीक्ष्ण या नमक या पक्वान्न मिष्ठान के करने पर पानी की कमी होने से तीव्र पित्तज्वर आदि के आने से प्यास के लगने पर भी पानी की आकांक्षा नहीं करते किन्तु ध्यानाध्ययन, षडावश्यकों में मन केंद्रित करने को प्यास की तरफ लक्ष्य के न जाने को तृषा परीषहजय कहते हैं।

प्रश्न– 1642 शीत परीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर सेठ सुदर्शन, वारिषेणकुमार, जिनदत्त आदि जैसा कोई साधक सामायिक या ध्यान करने के लिए जंगल में या जलाशय, श्मशान में वस्त्राभूषण त्याग कर ठहर गये हैं। जैसे वृक्ष की शाखायें प्रतिशाखायें तथा क्वचित् कदाचित् स्कंध भी हवा के झकोरों से कांपता है पर जड़े नहीं हिलती हैं वैसे ही वर्षा, ओला, कोहरा आदि से, हवा की तीव्रता से, शरीर कांप रहा है पर मन नहीं कांपता है न शीत को प्रतिकार करने की भावना करते हैं, न लिहाफ/रजाई, ऊनी वस्त्र, न शैय्या और उष्णता प्राप्त करने की आकांक्षा करते हैं उसे शीत परीषहजय कहते हैं।

प्रश्न– 1643 उष्ण परीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर गर्मी का मौसम है, पानी सूख गया है, हवा रुकी हुई है, वृक्षों के पत्ते गिर गये हैं, उष्ण लूं लपट चल रही है, आसपास के स्थलों में आग जल रही है, उसकी गर्मी से शरीर भी गरम हो गया है, शरीर के अन्दर पानी न होने से पसीना आना रुक गया है, मुँह, कंठ सूख गया है फिर भी गर्मी को दूर करने के लिए पानी की, छाया की, ठण्ड हवा की आकांक्षा नहीं करते फिर भी ये कमजोर प्राणी उष्ण बाधा कैसे सहन कर रहे हैं, इनकी गर्मी कैसे दूर हो इसमें चित्त लग रहा है, स्वयं की प्रतिकार की भावना के त्यागी होने को उष्ण परीषहजय कहते हैं।

प्रश्न– 1644 दंशमशक परीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर दंशमशक, मक्खी, पिस्सू, खटमल, कीट, चींटी आदि के द्वारा उत्पन्न बाधा को बिना प्रतिकार के उपयोग को अन्यत्र तत्त्व चिंतन में, अनुप्रेक्षाओं के चिंतन में मन को केंद्रित कर जीत लेने को दंशमशक परीषहजय कहते हैं किन्तु मनवचन काय से इन क्षुद्रजन्तुओं को बाधा नहीं पहुंचाते हैं न प्रतिकार करते हैं मोक्ष प्राप्ति के निमित्त परीषह जीतते हैं।

प्रश्न– 1645 नग्न परीषहजय कहते हैं?

उत्तर निर्विकार, निर्लज्ज, निःस्वार्थ, निष्कपट, निष्पक्ष दिगम्बर रूप धारक या गृहस्थ श्रावक साधक सामायिक काल तक अथवा जीवन पर्यन्त के लिए मन में समस्त प्रकार से माँ, बहिन, बेटी, अन्य स्त्रियों के प्रति लज्जादि विकारों को प्राप्त न होते हुए, अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन करने को नग्न परीषहजय कहते हैं क्योंकि बहिरंग नग्नता सहित अन्तरंग नग्नता मोक्ष प्राप्ति की साक्षात् कारणपने को प्राप्त होती है इसके बिना मोक्ष प्राप्ति तीनों कालों में किसी भी प्राणी को न हुई है, न होने वाली है और न भविष्य में होगी।

प्रश्न– 1646 अरति परीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर जो साधक बाह्य इंद्रिय विषयों के प्रति उपेक्षा बुद्धि, विरक्ति भाव, माध्यस्थ भाव को धारण किये हुए हैं। पाँचों इन्द्रियों के इष्टानिष्ट विषयों के प्राप्त होने पर राग द्वेष को प्राप्त नहीं होते हैं किन्तु अपनी आत्म साधना के बल पर वारिषेण कुमार के समान अरति अप्रीति भाव को रति या प्रीतिभाव को प्राप्त न होकर तत्त्व चिन्तन में मन स्थिर कर लेने को अरति परीषहजय कहते हैं।

प्रश्न– 1647 स्त्री परीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर एकान्त स्थान में मंदिर, बगीचा, शौच के समय, विहार के समय धर्मशाला में, वसतिका में, आहार के समय, स्वाध्याय, प्रवचन, चर्चा के समय नवयौवनवती कामिनियों के द्वारा अथवा स्त्री स्वभाव को प्राप्त चंचल मनवाले युवकों के द्वारा, काम विकार को प्राप्त न होना, इनके हावभावों को, चाल ढाल, वस्त्राभूषण को देखकर सुनकर पढ़कर या स्पर्श कराने पर भी कामचेष्टा को, कामवर्द्धक वचनों को निष्फल कर देने को, स्त्री विषयक विकार न होने देने को स्त्री परीषहजय कहते हैं।

प्रश्न– 1648 चर्या परीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर गमनागमन करते समय नग्न पैर होकर पैरों में कोई चप्पल, जूता, मोजा, कपड़ा, कागज, टाट, फट्टी, प्लास्टिक, रेक्जीन, खड़ाऊं आदि को धारण किये बिना कंकरीली, पथरीली गलियों से गर्मी, ठण्डी के मौसम में चर्या करते हुए खेद खिन्न न होने को तथा मूलगुणों का, उत्तरगुणों का पालन करते हुए, चर्या के कष्टों में उपेक्षा भाव होने को चर्या परीषहजय कहते हैं।

प्रश्न– 1649 निषद्या परीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर अभ्यास विहीन व्यक्ति श्मशान, पर्वत, मन्दिर, गुफा, कंकरीली, पथरीली, ठण्डी, गर्मी, मिट्टी धूल वाली भूमि पर आसन लगाकर वीरासन से, कुत्कुटिकासन आदि के लगाने से जो चलायमान न होते हुए आसन से सम्बन्धित आपत्तियों को दृढ़ता से जीतने को निषद्या परीषहजय कहते हैं।

प्रश्न– 1650 शय्या परीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर ध्यानाध्ययन, गमनागमन तथा नाना प्रकार के परिश्रम करने पर उत्पन्न हुई थकावट को दूर करने के लिए कंकरीली, पथरीली, गर्म, ठण्डी, कंटीली आदि भूमि पर एक करवट से या संकल्प कर कि हम इस आसन से शयन करेंगे और शयन करने के बाद उत्पन्न हुई बाधा को शान्ति पूर्वक उपयोग को अन्यत्र तत्त्वचिन्तन में लगाकर शैय्या सम्बन्धी आपत्तियों को कर्मठ भावों से जीत लेने को शय्या परीषहजय कहते हैं। पलंग, डनलॉप या रूई, पत्ते, कागज, जूट, घास आदि से तैयार की गई मुलायम या कठोर शैय्या में शयन थकावट को दूर करने के लिए या आनंद लेने के लिए किया जाता है। उपयोग सही रूप में है तो कोई भी परीषह बाधा उत्पन्न नहीं करते।

प्रश्न– 1651 आक्रोश परीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि, व्रती या मुनिजनों के, साधर्मी या विधर्मी भाईयों के द्वारा उत्पन्न अपमानजनक शब्दों को सुनकर किसी भी प्रकार से मन में खेद खिन्न न होने को प्रतिकार करने की भावना उत्पन्न न होने को आक्रोश परीषहजय कहते हैं।

प्रश्न– 1652 वध परीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर सकारण या निष्कारण वैर बांधकर बदला चुकाने के लिए राग से अथवा द्वेष से रस्सी से, डण्डे से, पत्थर से, अस्त्र शस्त्र से, जान से मारने के लिए या जान से मारने के समान मारने को, ताड़ना देने को वध कहते हैं तथा इससे उत्पन्न बाधा को धैर्य पूर्वक उपयोग को तत्त्व चिन्तन में लगाकर प्रतिकार की भावना के त्याग को वध परीषहजय कहते हैं।

प्रश्न– 1653 याचना परीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर तपादि के द्वारा या बीमारी के द्वारा उत्पन्न हुई कमजोरी को दूर करने के लिए, भोजनादि के लिए, शरीरादि सम्बन्धी जरूरत की पूर्ति के लिए, आवश्यकता के लिए मृत्यु के सम्मुख अवस्था हो रही है, मरने के समान अवस्था हो रही है तो भी याचना न करने को तथा मांगने से प्रेम, विश्वास टूट जाता है, मांगने वाले के श्री, **ह्री**, धृति, लक्ष्मी, बुद्धि ये 5 गुण समाप्त हो जाते है। अतः मांगने से मौत अच्छी आदि विचारों को याचना परीषह जय कहते हैं।

प्रश्न– 1654 अलाभ परीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर जो दिन में सुबह अथवा शाम की एक बेला में, दोनों में नहीं, एक ही बार आहार निमित्त चर्या करते हैं ऐसा नहीं कि सुबह आहार के लिए निकले और किसी कारणवश सुबह आहार विधि ा न मिली तो पुनः शाम को आहार के लिए निकल पड़े किन्तु सुबह आहार निमित्त चर्या नहीं की तो शाम को आहार चर्या कर सकते हैं यदि सुबह आहार चर्या कर ली है तो शाम को अब दुबारा आहार के निमित्त चर्या गमनागमन नहीं करेंगे ऐसा लाभ की अपेक्षा अलाभ ही श्रेष्ठ है इसीसे ध्यानाध्ययन, तपश्चरण की वृद्धि होती है, प्रतिज्ञा का, संयम का पालन होता है। इस प्रकार सन्तोषवृत्ति को अलाभ परीषहजय कहते हैं।

प्रश्न– 1655 रोग परीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर वात, पित्त, कफ के सम्मिश्रण से उत्पन्न शरीर में विकार को रोग कहते हैं। यह शरीर रोगों का पिटारा है, अपवित्र है, घृणा का स्थान है, पतनशील स्वभाव वाला है, नाना कृमियों का खजाना है, सप्तधातु और उपधातुओं से उत्पन्न, पुष्ट और वृद्धि को प्राप्त होता है इन्हीं को उत्पन्न करता है। ऐसे शरीर में उत्पन्न विषमता के कारण व्याधि, रोग की बाधा को लक्ष्य में न लेने को या मानसिक, कायिक रोगों की बाधा को उपयोग में न लेने को परीषहजय कहते हैं।

प्रश्न– 1656 तृणस्पर्श परीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर गमनागमन, आसन, उठने बैठने में, शयन करने में, पैरों में, शरीर के किसी भी अंग में, तृण, कांटा, पत्थर, मिट्टी या कोई भी नुकीली तीक्ष्ण वस्तु के चुभ जाने पर उत्पन्न वेदना को धैर्य पूर्वक जीत लेने को तृणस्पर्श परीषहजय कहते हैं।

प्रश्न– 1657 मल परीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर शरीर के एक भाग में या सर्वांग में पसीना के कारण या तेलादि के मर्दन से धूल मैल चिपक गई है, लग गई है, शरीर से दुर्गन्ध निकल रही है, खुजली आ रही है फिर भी न खुजाते हैं, न घबराते हैं, न सफाई की, न स्नान करने की सोचते हैं, न कहते हैं, न करवाते हैं, न ही मन में शरीर के प्रति राग द्वेष भाव को धारण करते हैं किन्तु माध्यस्थ भाव को धारण करते हैं इसे ही मल परीषहजय कहते हैं।

प्रश्न– 1658 सत्कार पुरस्कार परीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर गुणकीर्तन, प्रशंसा, पूजा, आदर, सम्मान, आसनदान, उच्चस्थान देने को सत्कार कहते हैं और किसी लौकिक या लोकोत्तर कार्य करने के पहले आज्ञा मांगकर आगे कर कार्य करने को पुरस्कार कहते हैं अर्थात् जिससे आज्ञा मांगी जाय या जिसको आगे कर कार्य प्रारम्भ किया

जाय तो उस व्यक्ति के प्रति बहुमान भाव को सत्कार पुरस्कार कहते हैं। इस प्रकार यह सत्कार पुरस्कार के प्राप्त न होने पर दुःखी होने को सत्कार पुरस्कार परीषह या मिथ्याचारित्र कहते हैं कि बहुत तपस्वी हूँ, ज्ञानी ध्यानी हूँ, अनेक गुणों से सम्पन्न हूँ फिर भी ये मेरा आदर सम्मान नहीं करते, न मेरे से कुछ पूछते हैं, न आज्ञा मांगते हैं इसे परीषह कहते हैं इस परीषह के प्राप्त होने पर दुःखी न होने को सत्कार पुरस्कार परीषहजय कहते हैं।

प्रश्न— 1659 प्रज्ञा परीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर अनेक शास्त्रों के ज्ञाता होने पर, जिनमत अन्यमत के ज्ञाता होने पर, न्याय, सिद्धान्त, व्याकरण के जानकार होने पर भी मैं सब से अधिक ज्ञानी हूँ, मेरे समान कोई जानकार नहीं है, ज्ञान के संबंध में ज्ञानमद से मानी होकर दूसरे ज्ञानियों का अपमान करने को या अपने को विशेष ज्ञानी मानने को प्रज्ञा परीषह कहते हैं और ज्ञान का घमण्ड न करने को, सरल परिणामी होने को प्रज्ञा परीषहजय कहते हैं। यह परीषह ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होता है।

प्रश्न— 1660 अज्ञान परीषहजय किसे कहते है?

उत्तर अल्पक्षयोपशम या विशेष क्षयोपशम होने पर भी दूसरों के द्वारा ज्ञान के सम्बन्धित तूँ अज्ञानी है, मूर्ख है इन शब्दों को सुनकर अपने में अपमानितपने का अनुभव कर खेद खिन्न होने को अज्ञान परीषह कहते हैं किन्तु ज्ञान के सम्बन्ध में अपमान तिरस्कार के होने पर भी ये ऐसा कर्म क्यों बांधते हैं इस भावना से दुःखी होकर बोलने वाले, करने वाले व्यक्ति के ऊपर कृपा बुद्धि करने को अज्ञान परीषह जय कहते हैं। यह परीषह ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से होता है।

प्रश्न— 1661 अदर्शन परीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर मेरा मन शुद्ध है, पुराना दीक्षित हूँ, अनेक शास्त्रों का ज्ञाता हूँ फिर भी मेरे में कोई उत्कृष्ट अतिशय चमत्कार, आश्चर्यकारी कला सिद्ध नहीं हो रही है। शास्त्रों में केवल यह प्रलाप मात्र है कि ऐसा करने से ऋद्धि सिद्धि की प्राप्ति होती है ऐसा चिन्तन कर मोक्षमार्ग से श्रद्धान हट जाने को अदर्शन परीषह कहते हैं और अपनी साधना में दोष न देकर, उत्साहित होकर, अपने बल वीर्य को न छिपाकर मोक्षमार्ग के साधनों में दृढ़ विश्वास करने को अदर्शन परीषहजय कहते हैं। यह परीषह दर्शनमोहनीय कर्म के उदय से होता है।

प्रश्न— 1662 इन आपत्तियों के प्राप्त होने पर क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए?

उत्तर इन आपत्तियों के प्राप्त होने पर मोक्षमार्गियों को, आत्म साधना करने वालों को, आत्म साधना से विमुख नहीं होना चाहिए। अपना लक्ष्य ध्येय बदलना नहीं चाहिए किन्तु जिस प्रकार देशसैनिक देश की, प्रजा की रक्षा करने के लिए अपना जीवन दान दे देते हैं तो क्या हे ज्ञानी ध्यानी साधु श्रावक अपनी आत्मरक्षा के लिए, आत्म धर्म की प्रतिज्ञा की, मोक्षमार्ग की रक्षा करने के लिए अपना जीवनदान नहीं दे सकते हैं? उस देशसैनिक से भी गये बीते हो गये अतः आपत्तियों के सामने आने पर कर्मठ रहना, पलायनवादी न होना क्षत्रिय धर्म है, साधु श्रावक का धर्म है दृढ़ रहना मजबूत रहना चाहिए। आपत्तियों के सामने घबराना, पलायनवादी होना कायरों

का नामर्दों का काम है और कर्मठ रहना वीरों का काम है।

प्रश्न— 1663 उपसर्ग और परीषह में क्या अन्तर है?

उत्तर उपसर्ग परनिमित्तक ही होते हैं। दोनों में अन्तरंग निमित्त एक समान है, कष्ट का अनुभव समान होता है। परीषहों में कुछ परीषह पर के माध्यम से और कुछ परीषह स्वनिमित्तक होते हैं।

प्रश्न— 1664 सामायिक कब करना चाहिए?

उत्तर अष्टमी चतुर्दशी के दिन विशेष रूप से अव्रती जीवों को तथा व्रतियों को प्रतिदिन सामायिक अवश्य ही करना चाहिए क्योंकि सामायिक से ही कर्म नष्ट होते हैं। जीवन में हर प्रकार की समस्याओं के सामने आने पर स्थिर मन से स्वपर तत्त्व का चिन्तन करना चाहिए।

प्रश्न— 1665 सामायिक किस प्रकार से और क्यों करना चाहिए?

उत्तर मन वचन काय की शुद्धि पूर्वक, प्रसन्न मन से चारों दिशाओं में कृत्रिम और अकृत्रिम चैत्य चैत्यालयों को, नव देवताओं को नमस्कार कर दिग्बंधन कर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की शुद्धि कर पूर्व या उत्तर दिशा की तरफ मुँह कर, आसन लगाकर, पंचपरमेष्ठी के स्वरूप का, अतिशय क्षेत्र, सिद्ध क्षेत्रों का, बीजाक्षरों का, मंत्रपदों का, द्रव्यों का, तत्त्वों का, पदार्थों का, अस्तिकायों का चिन्तन करना, अपनी आत्मा का चिन्तन करना, संसार शरीर भोगों से छूटने के लिए, कर्मबन्धन को नष्ट करने के लिए सामायिक करना चाहिए।

प्रश्न— 1666 सामायिक कहाँ करना चाहिए?

उत्तर सामायिक चैत्यालय में, मंदिर में, देवशास्त्र और गुरु के सामने, एकान्त स्थान में, श्मशान में, नदी के किनारे, समुद्र, तालाब के किनारे, पर्वत में, हरे भरे बगीचों में, जंगलों में, गिरि गुफाओं में, कन्दराओं में, वृक्ष की कोटरों में मन प्रसन्न कर ध्यान करना चाहिए।

प्रश्न— 1667 सामायिक करते समय किस प्रकार चिन्तन करना चाहिए?

उत्तर यह संसार चतुर्गति स्वरूप नाना प्रकार के दुःखों से भरा हुआ है, अनित्य है, शाश्वत नहीं है, अशरण है, अशुभ है, दुःख स्वरूप है, अचेतन है, मोक्षपद से, मोक्षमार्ग से विपरीत स्वभाव वाला है, असार है, स्वार्थ से भरा हुआ है ऐसा संसार है। शरीर नाना व्याधियों से युक्त, मल मूत्र का पिटारा, सप्तधातुओं से और उपधातुओं से भरपूर इन्हीं को निकालता है, कृमियों से भरा है, यह शरीर जीर्ण शीर्ण स्वभाव वाला है, अपवित्र है, रजवीर्य से उत्पन्न हुआ है। भोग भी घृणा के स्थान, क्षणनश्वर है, मांस पिण्ड का स्पर्श करना है। जिस प्रकार कुत्ता सूखी हड्डी चबाकर भी अपने जबड़ों से निकले खून को पीकर, हड्डी से निकलता हुआ मानकर सुखी होता है उसी प्रकार मोही कामी प्राणी विष के समान विषयों को भोगकर अनन्त संसारी होता है। इसी प्रकार मैंने भी संसार शरीर भोगों में लम्पट होकर नाना दुःख भोगे हैं। इस प्रकार चिन्तन करना चाहिए। तभी सामायिक सफल होगी तथा सामायिक करते समय यदि उपसर्ग परीषह आ जाय तो सीता, चन्दना, सुदर्शन, वारिषेणकुमार, पाण्डव, गजकुमार की तरह अनन्तमती, रेवती रानी, नीली आदि की तरह सामायिक से, अपने लक्ष्य से चलायमान नहीं होना चाहिए। यदि चलायमान हुए तो पुनः पुनः संसार शरीर भोगों को प्राप्त कर दुःखी होना पड़ेगा।

प्रश्न— 1668 सामायिक करते समय श्रावक साधक और साधु मुनियों की क्या अवस्था होती है?

उत्तर सामायिक करते समय श्रावक की, साधक की अवस्था मुनियों जैसी होती है क्योंकि स्थिरता और भावों की विशुद्धि, वृद्धि उपसर्ग युक्त मुनियों के समान हो जाती है तथा मुनियों की अवस्था धातुपाषाण की प्रतिमाओं के समान हो जाती है जैसे धातु पाषाण की प्रतिमाओं में कितना भी आदर सम्मान, विनय अविनय, उपसर्ग परीषह आदि उपद्रवों के आने से किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता वह न प्रसन्न होती है, न दुःखी होती है किन्तु माध्यस्थ भाव से स्थित रहती है उसी तरह मुनिजन भयंकर से भयंकर आपत्तियों के और आदर सम्मान प्राप्त होने पर भी अपने लक्ष्य से उपयोग से चलायमान नहीं होते हैं।

प्रश्न— 1669 सामायिक काल में वस्त्रधारी गृहस्थ यदि मुनियों जैसा हो जाता है तो क्या श्रावक छठवें सातवें गुणस्थान वाला हो जाता है?

उत्तर नहीं, मुनियों जैसा प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थान नहीं हो जाता है किन्तु गृहस्थ श्रावक, अगृहस्थ श्रावक वस्त्रधारी होने से असंयम और देशसंयम गुणस्थान का उल्लंघन नहीं करते। यदि वस्त्र युक्तावस्था में प्रमत्ताप्रमत गुणस्थान आ जाता है तो फिर उसे श्रेणी आरोहण करने में, केवलज्ञान प्राप्त करने में, मोक्ष प्राप्त करने में क्या आपत्ति हो सकती है, अर्थात् नहीं हो सकती है।

प्रश्न— 1670 तो फिर क्यों कहा कि वस्त्रधारी श्रावक सामायिक काल में मुनियों जैसा हो जाता है?

उत्तर केवल बाह्य मुद्रा को, लेश्या को, सरल परिणामों को, स्थिरता को कुछ अंशों की अपेक्षा क्षायोपशमिक भावों में निर्मलता को देखकर कहा है कि यह श्रावक वस्त्रधारी उपसर्ग सहित मुनि के समान सामायिक काल में हो जाता है किन्तु गुणस्थान की वृद्धि नहीं होती है क्योंकि गुणस्थानों की वृद्धि कषायों के अभाव में और कषायों के मंदोदय में लेश्याओं की विशुद्धि होती है। जिससे तन में, मन में, आसन में और किंचित् क्षायोपशमिक ज्ञान में भी निर्मलता स्वच्छता आ जाती है। इसलिए मुनियों जैसा कहा है मुनि नहीं। यह उपमालंकारत्मक कथन है।

प्रश्न— 1671—72 सामायिक शिक्षाव्रत के अतिचार कितने हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर सामायिक शिक्षाव्रत के अतिचारों के पाँच भेद हैं।नामः— 1. मनोयोग दुष्प्रणिधान 2. वचनयोगदुष्प्रणिधान 3. काययोगदुष्प्रणिधान 4. अनादर 5. स्मृत्यनुपस्थान।

प्रश्न— 1673 मनोयोग दुष्प्रणिधान अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर सामायिक करते समय भावमन पूर्वक मनोवर्गणा के निमित्त से आत्म प्रदेशों में परिस्पंदन होने को मनोयोग कहते हैं। मन में नाना विकारी तरंगों के उत्पन्न होने को, मन में विषयकषायों की भावना, शृंगार अलंकार की, आरम्भ परिग्रह की भावना, ख्याति पूजा लाभ की भावना को मनोविकार कहते हैं तथा सामायिक करते समय मन के अन्दर नाना प्रकार के मोक्षमार्ग से विरुद्ध, प्रतिज्ञा के विरुद्ध मन के विचारों को मनोयोग दुष्प्रणिधान अतिचार कहते हैं।

प्रश्न– 1674 उक्त विचारों को अतिचार दोष क्यों कहा?

उत्तर क्योंकि ये विचार आत्मा को मोक्षमार्गोपयोगी कर्तव्य पथ से छुड़ाकर संसार के मार्ग में लगा देते हैं। ये विचार मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषायोदय से युक्त होने के कारण सत् विश्वास का घात कर अविश्वास और मिथ्याचारित्र की ओर ले जाते हैं तथा अनंत संसार के कारण भूत कर्मों का आश्रवबंध कराते हैं। इसलिए इन्हें अतिचार दोष कहा है।

प्रश्न– 1675 वचनयोग दुष्प्रणिधान किसे कहते हैं?

उत्तर सामायिक करते समय तत्सम्बन्धी वाक्य रचना को छोड़कर उपरोक्त भावानुसार वचन रचना को तथा मोक्षमार्ग के विरुद्ध वैर विरोध को उत्पन्न करने वाले विपरीत वचन प्रयोग को वचनयोग दुष्प्रणिधान कहते हैं।

प्रश्न– 1676–77 उपरोक्त वचनयोग को दुष्प्रणिधान क्यों कहा? क्या हानि है?

उत्तर उपरोक्त वचन मोक्षमार्ग के विरुद्ध स्वभाव वाले होने से, निन्दा बदनामी के कारण होने से, हिंसादि पापों के, व्यसनों के सहायक होने से, विषय कषायों की पुष्टि करने वाले होने से, आरम्भ परिग्रह को, श्रृंगार अलंकार को, ख्याति पूजा लाभ की दुर्भावना को उत्पन्न करने वाले, प्रेरणा देने वाले होने से वचनयोग दुष्प्रणिधान कहा है। जिससे स्वयं का मोक्षमार्ग नष्ट होता है, सद्वचन तक भी नष्ट हो जाते हैं, अधिक वाचालपना आ जाता है, विश्वास टूट जाता है, लोक व्यवहार, लोक प्रेम भी नष्ट हो जाता है। इस प्रकार के असत्वचनप्रयोग से सभी साथियों का पतन होता है यही हानि प्राप्त होती है और अन्य भी हानियां हो सकती हैं। असत्वचन प्रयोग से महाभारत जैसा अत्याचार उत्पन्न हो जाता है जो आज भी अनेकों जगह देखा जा रहा है।

प्रश्न– 1678 काययोग दुष्प्रणिधान किसे कहते हैं?

उत्तर सामायिक करते समय शरीर को, शरीर के अंग उपांगों के चलायमान करने को, हिलाने डुलाने को, आँखों के मटकाने को, इधर उधर शरीर से इशारा करने को, शराबी के समान नींद से, प्रमाद से झूलने को, दीवाल आदि का सहारा लेकर नींद निकालने को काययोग, शरीर के द्वारा काम चेष्टा आदि सूचक इशारा करने को दुष्प्रणिधान अतिचार दोष कहते हैं।

प्रश्न– 1679–80 शरीर के कम्पन को अतिचार दोष क्यों कहा? क्या हानि है?

उत्तर केवल शरीर के कम्पन को अतिचार नहीं कहा है। यदि केवल शरीर के कम्पन को अतिचार दोष कहते तो केवली भगवान के भी शरीर में कम्पन होता है उनके भी अतिचार दोष लगने का प्रसंग आता। इसलिए प्रमाद पूर्वक, कषाय पूर्वक शरीर में कम्पन करने को अतिचार दोष कहा है क्योंकि शरीर सप्तधातुओं और सप्त उपधातुओं से भरा हुआ है और सभी धातुओं उपधातुओं में संख्यात, असंख्यात और अनन्त जीव पाये जाते हैं। ये क्षुद्रप्राणी भी प्रमाद पूर्वक शरीर के कम्पन करने से अकालमरण को प्राप्त होते हैं अथवा कदाचित् कुछ प्राणी मृत्यु को प्राप्त न हों तो भी प्रमाद पूर्वक चर्या होने से जीव हिंसा का पाप लगता ही है तथा इस हिंसापाप के साथ चारों पाप बिना बुलाये अपने आप आ जाते हैं क्योंकि प्रमाद ही, असावधानी ही समस्त अनर्थों की जड़ है। जिससे लौकिक लोकोत्तर सुखानुभूति नष्ट हो जाती है यही हानि है।

प्रश्न– 1681 अनादर अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर सामायिक की प्रतिज्ञा करके प्रमादवश या अन्य कारणवश अभी थोड़ा काम कर लें, वार्तालाप कर लें, नींद ले लें फिर सामायिक कर लेंगे अभी जल्दी क्या? बहुत समय है आदि विचारों के साथ अनुत्साही होने को या बोझा मानकर या भय से, लज्जा से, आशा, तृष्णा से सामायिक कर लेने को अनादर अतिचार कहते हैं अथवा आदर सम्मान न करने को अनादर कहते हैं।

प्रश्न– 1682 अनादर भाव क्यों उत्पन्न होता है?

उत्तर प्रमाद होने से, कमजोरी होने से, अजानकारी, कर्तव्यपथ के प्रति लगाव झुकाव न होने से, क्षमादि भावों का अभाव होने से, विषय भोगों में लंपटता होने से, विषय कषायी प्राणियों की संगति होने से सामायिक करने में अनादर भाव उत्पन्न होता है।

प्रश्न– 1683 स्मृत्यनुपस्थान अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर सामायिक करते समय पाठ को, पूजा को, मंत्र जप को प्रसंग पाकर उच्चारण कर फिर भूल जाना लज्जा से, भय से, क्षयोपशम ज्ञान कम होने से तथा अनर्गल प्रसंग प्राप्त होने से दूसरा पाठ मंत्र स्तोत्र आदि बोलकर पुनः तीसरा पाठ आदि बोलने को स्मृत्यनुपस्थान अतिचार कहते हैं।

प्रश्न– 1684 स्मृत्यनुपस्थान अतिचार दोष क्यों कहा?

उत्तर जब ध्यान करने योग्य चिन्तन करने योग्य विषय ही भूल गये तब क्या मनन करोगे? आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान किसका करोगे? अतः मूल में भूल होने से आत्म साधन कैसे करोगे? अतः सामायिक में करने योग्य कर्तव्य को भूल जाना अतिचार दोष कहा है।

प्रश्न– 1685 स्मृत्यनुपस्थान से क्या हानि है?

उत्तर जिस प्रकार यदि अपन गन्तव्य स्थान को या रास्ता का पता भूल गये तो यहाँ वहाँ बिना मतलब के पागल की तरह भटकते फिरते हैं, दुःखी हो जाते हैं और असुरक्षित होने से नाना कष्ट उठाते हैं उसी प्रकार कर्तव्य पाठ को भूल गये तो मोक्षमार्ग और मोक्ष की प्राप्ति न होगी। जिससे कुछ कम चौरासी लाख योनियों में भटकना पड़ेगा। असुरक्षित अशरण होकर नाना प्रकार के दुःख, अपमान, वध बन्धन, मारण ताड़न, छेदन भेदन आदि दुःख भोगने पड़ेंगे। सुख की हानि होगी। यही हानि है और सामायिक व्रती को अपने आप भी गुणदोषों का विचार कर लेना चाहिये

Note- यहाँ 1628 से 1685 तक सामायिक शिक्षाव्रत और इसके अतिचारों का वर्णन समाप्त हुआ।

प्रश्न– 1686 प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर प्रोषध– एकाशन पूर्वक, उपवास– चारों प्रकार के आहार के त्याग को प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत कहते हैं। जैसे अष्टमी को उपवास करना है तो सप्तमी के दिन एकाशन कर बाद में देवशास्त्रगुरु के समक्ष अष्टमी के दिन उपवास का नियम लेकर चारों प्रकार के आहार का त्याग कर पुनः नवमी के लिए एकाशन करने को प्रोषधोपवास कहते हैं। इसी तरह तेरस के दिन एकाशन कर चौदस को उपवास कर पूर्णिमा, अमावस्या को एकाशन करने को प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत कहते

हैं। इस पद्धति के अनुसार प्रोषधोपवास करना चाहिये अन्य प्रकार से नहीं।

प्रश्न– 1687–88 चारों प्रकार के आहार के त्याग करने को उपवास कहते हैं क्या? अन्य किसी के त्याग को भी उपवास कहते हैं क्या?

उत्तर चारों प्रकार के आहार पानी के त्याग को उपवास कहते हैं ऐसा उपवास तो अन्यमती भी कर सकते हैं। भव्य अभव्य, सभी कर्मभूमिज, सैनी सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव भी कर सकते हैं किन्तु आरम्भ परिग्रह का, विषयकषायों का त्याग तो सैनी, भव्य, सम्यग्दृष्टि, मोक्षमार्गी ही कर सकते हैं अन्य नहीं। नारकी देव और भोगभूमिज प्राणी नहीं कर सकते हैं क्योंकि नारकियों के तीव्र क्रोध का उदय होने से तीव्र अशुभ लेश्यायें होती हैं तथा देवों के तीव्र लोभोदय होने से तीव्र शुभ लेश्यायें होती है जिससे नारकी, देव और भोगभूमिज द्रव्य भाव से सामान्यतः इन तीनों में लेश्याओं की एकरूपता होने से ये प्राणी व्रत उपवास के अधिकारी नहीं हैं क्योंकि उपवास के दिन चारों प्रकार के आहार का, विषयकषायों का त्याग, आरम्भ परिग्रह का, श्रृंगार अलंकार का भी त्याग करना चाहिए। अतः नारकी, देव और भोगभूमिजों के संयम घातिकर्मों का तीव्रोदय होने पर संयम का आभाव होने से तप नहीं कर सकते हैं क्योंकि तपश्चरण करने के लिए कर्मभूमि, गर्भज जन्म, औदारिक शरीर, मनुष्य गति और पर्याप्तावस्था आदि चाहिये।

प्रश्न– 1689–90 प्रोषधोपवास के दिन क्या करना चाहिए? प्रोषधोपवास करते हुए किस प्रकार से समय व्यतीत करना चाहिए?

उत्तर प्रोषधोपवास उपवास या एकाशन के दिन भी देव शास्त्र गुरु के समक्ष ध्यानाध्ययन, पठनपाठन, धर्म चर्चा, जाप करते हुए समय व्यतीत करना चाहिए तथा श्रृंगार अलंकार, आरम्भ परिग्रह रूप क्रियाओं को, विषय कषायों को, आहार आदि संज्ञाओं को वश में करके, आर्तध्यान रौद्रध्यान को, अशुभ लेश्याओं को वश में करके, सत्कार्य सद्विचार करके, सावधानी पूर्वक, प्रमाद को छोड़कर धर्मध्यान पूर्वक समय व्यतीत करना चाहिए।

प्रश्न– 1691 प्रोषधोपवास के दिन तेलादि से स्नान कर सकते हैं क्या?

उत्तर प्रोषधोपवास आदि के दिन हिंसार्थक, प्राणिघातक, शौक श्रृंगार का साधन होने से ऐसे तेल साबुन आदि लगाकर स्नान नहीं कर सकते हैं।

प्रश्न– 1692 स्नान किये बिना दानपूजा आदि सत्कार्य कैसे कर सकते हैं?

उत्तर प्राणिघातक साधनों से युक्त स्नान का त्यागकर केवल शुद्धजल, प्रासुक जल या अचित्त जल से शरीर की शुद्धिकर या कपड़ा गीलाकर शरीर को पोंछकर भी दानपूजा आदि षडावश्यकों का यथावसर हानि न करके करना चाहिए क्योंकि व्रत, त्याग, संयम स्वीकार किया है। कर्मों को नष्ट करने के लिए, पाप को समाप्त करने के लिए, दुराचारों को नष्ट करने के लिए उपवास किया है, न कि कर्मों को बांधने के लिए, न कि पाप करने के लिए व्रत किया है।

प्रश्न– 1693 गृहस्थ होने के कारण बिना स्नान के दान पूजा स्वाध्याय अभिषेक आदि कैसे कर सकते हैं?

उत्तर जीव हिंसार्थक प्राणिघातक स्नान सम्बन्धी सामग्री का त्याग करके, शुद्ध जल से या गीले कपड़े से शरीर की शुद्धि करके धर्मानुष्ठान करना चाहिए इसलिए धर्मकार्य के लिए शरीर की शुद्धि की आवश्यकता है अन्यथा यदि तेल साबुन उबटन आदि लगाकर स्नान किया तो जहाँ तक तेल साबुन का अंश जायेगा वहाँ तक के जीव मरते जायेंगे तथा ऐसे पानी के प्रयोग से प्रयोग करने वाले मनुष्यों की भी विराधना हो जाती है। द्रव्य शुद्धि के बिना धर्मकार्य करने पर भी यथार्थ सफलता नहीं मिलती है किंतु परिश्रम व्यर्थ चला जाता है।

प्रश्न– 1694 यदि स्नान किये बिना ही अभिषेक दानपूजा की तो क्या दोष होगा?

उत्तर यदि स्नान के बिना धर्मानुष्ठान किये तो प्रमाद का सद्भाव होने से पाप का ही आश्रव बंध होगा तथा द्रव्य शुद्धि के बिना क्षेत्रकाल भाव की शुद्धि नहीं होती और अशुद्धि से हानि ही हानि है।

प्रश्न– 1695 यदि स्वास्थ्य खराब होने से स्नान बिना अभिषेक कर सकते हैं क्या?

उत्तर शरीर की, द्रव्य की अशुद्धि होने से काय से कृत के द्वारा अभिषेक दान स्वाध्याय नहीं कर सकते हैं किन्तु आपके पास 108 कोटियों में से दो कम करके 106 कोटियों से अभिषेकादि करने के लिए कोई बाधा नहीं है। यदि आप विवेकवान हैं तो कैसी भी किसी भी हालत में हैं कैसी भी शुद्धाशुद्ध अवस्था है फिर भी आपके पुण्यार्जन में कोई बाधा नहीं आती है। अन्यथा आकुलता होने से पाप कर्मों का ही आश्रव बंध होता है। द्रव्यादि की अशुद्धि होने से पुण्यकर्म का आश्रव बंध लेशमात्र भी न होगा।

प्रश्न– 1696 एक सौ आठ कोटि कौन कौन हैं कि जिनके द्वारा पुण्य कर्मों में या पाप कर्मों में विशेषता आती है?

उत्तर मन वचनकाय को कृत कारित अनुमोदना से गुणा करने पर 9 भेद हुए। इन 9 में समरम्भ .... X 3 = 27 भेद हुए। इन 27 में क्रोध मान माया लोभ इन 4 से गुणा करने पर 27 X 4 = 108 भेद कोटियां हो जाती हैं। अब इनके साथ प्रमाद पूर्वक प्रवृत्ति होती है चर्या होती है तो पाप कर्म का आश्रवबंध होता है तथा यदि प्रमादों को छोड़कर सावधानी पूर्वक धर्मानुष्ठान किया तो पाप की हानि, पुण्य की वृद्धि होती है जो मोक्षमार्ग में सहायता पहुंचाता है। सुखशान्ति से समय व्यतीत होता है। इन दोनों कार्यों की अधिकारणी चतुर्गति की सैनी पंचेंद्रिय जीव राशि है अथवा समस्त प्राणी इनके अधिकारी हैं।

प्रश्न– 1697 पुण्य पाप कर्मों के आश्रव बंध में क्या हेतु है?

उत्तर सावधानी, अप्रमत्तभाव, असावधानी, प्रमत्तभाव ही पुण्य पाप के आश्रव बंध में अन्तरंग प्रधान हेतु हैं और बहिरंग अप्रधान हेतु है।

प्रश्न– 1698 क्या उदाहरण है कि जिससे दृढ़ विश्वास उत्पन्न हो जाय?

उत्तर जब जंगल में राम और सीता ने चारण मुनिराज को आहारदान दिया था उस समय वहीं पर पास में बैठा हुआ जटायु पक्षी जातिस्मरण को प्राप्त कर अपनी निन्दा गर्हा करता हुआ पूर्वकृत अपने पाप की घृणा कर रहा था, दान की अनुमोदना की, बाद में व्रत धारण किया और अन्त

में समाधिमरण कर जो फल सीता ने 60 वर्ष तक आर्यिका पद में रहकर तपकर अंत में समाधिमरण कर सोलहवें स्वर्ग में प्रतींद्र पद पाया वही पद उस जटायु पक्षी ने भी उत्कृष्ट पद पाया। दूसरा उदाहरण आदिनाथ का जीव भूतकाल के आठवें भव में जब वज्रजंघ और श्रीमती की पर्याय में चारणमुनि को आहारदान दे रहे थे उस समय वहीं पर सर्प, बन्दर, नेवला और सिंह ये चारों जंगली जानवर क्रूर, दुष्ट परिणामी, महान पापी, आर्त रौद्रध्यानी, मांसाहारी जीवों में दान की अनुमोदना कर, दुष्कर्मों को छोड़कर अन्त में मरणकर जो दान का फल राजा रानी ने उत्तम भोगभूमि में आर्य आर्या पद पाया उसी स्थान पर इन चारों तिर्यंचों ने उसी उत्तम भोगभूमि में पद पाया सुख पाया। इन 108 कोटियों में से एक भी कोटि किसी भी कार्य में लगी तब मुख्यता और गौणता से सभी कोटियां आ जाती हैं बुलानी नहीं पड़ती। अतः आप घबरायें नहीं सावधान रहे। जब पतित, मांसाहारी पशु पक्षी भी सत्कार्य की अनुमोदना करके फल पा सकते हैं। अपनी सावधानी और साधना के अनुसार फल प्राप्त कर सकते हैं तो आप मनुष्य हैं आप क्यों फल प्राप्त न कर लेंगे? जब ये तिर्यंच प्राणी मांसाहारी दुष्ट परिणामी भी पापों को छोड़कर दान की अनुमोदना करके उत्कृष्ट फल को पा सकते हैं। तो आप भी क्रमशः मोक्षफल प्राप्त कर ले तो क्या आश्चर्य है?

प्रश्न– 1699–1700 प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत के अतिचारों के कितने भेद हैं? नाम कौन हैं?

उत्तर प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत के अतिचारों के पाँच भेद हैं। नामः– 1. अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्ग1 2. अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितादान 3. अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जित संस्तरोपक्रमण 4. अनादर 5. स्मृत्यनुपस्थान।

प्रश्न– 1701 अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्ग अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर उपवास करके, कमजोरी का अनुभव कर अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्ग विना देखे, विना साफ किए भूमि पर जिस किसी भी स्थान पर पूजा के बर्तन, भोजन के बर्तन अन्य किसी भी प्रकार की वस्तु के रख देने को अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्ग अतिचार कहते हैं।

प्रश्न– 1702 इसको अतिचार दोष क्यों कहा?

उत्तर उपवास के द्वारा थकावट होने से, कमजोरी होने के कारण, प्रमाद के कारण उपवास सम्बन्धी कार्यों में अनुत्साह होने को, व्रत की विराधना होने से, हिंसादि पापों का कारण होने से अतिचार कहा है। निष्प्रयोजन कर्मबन्ध भी होता है।

प्रश्न– 1703 किस प्रकार से उपवास के दिन अथवा चालू दिनों में वस्तु को स्थान पर रखना जिससे दोष न लगे?

उत्तर सर्वप्रथम भूमि को देखकर फिर जिस वस्तु को रखना है उसके नीचे के भाग को देखना और मुलायम वस्त्र से भूमि को तथा वस्तु के निचले भाग को साफ कर रखने से न जीव हिंसा होती है न पाप का आश्रवबंध होता है किंतु पाप कर्मों का संवर, पूर्व बद्ध कर्म की निर्जरा और पुण्य की वृद्धि होती है इसलिए सावधानी पूर्वक कार्य करने से दोष नहीं लगता है।

प्रश्न– 1704–05 यह दोष क्यों नहीं लगता है? और क्यों लगता है?

उत्तर प्रमाद का अभाव होने से, सावधानी पूर्वक प्रवृत्ति करने से तथा अनन्तानुबन्धी कषाय और अप्रत्याख्यानावरण कषाय का तथा तत्सम्बन्धी प्रमाद का अभाव होने से उक्त अतिचार दोष नहीं लगता है तथा आगे की कषाय का और प्रमाद का सद्भाव होने से असावधानी पूर्वक कार्य रूप में परिणत होने से दोष लगता ही है कर्मबन्ध होता ही है।

प्रश्न– 1706 अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जितादान किसे कहते हैं?

उत्तर बिना देखे, शोधे, साफ किये वस्तु ग्रहण करने को अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितादान अतिचार कहते हैं।

प्रश्न– 1707–09 इसको अतिचार दोष क्यों कहा? किस वस्तु को ग्रहण करना चाहिए? किस वस्तु को ग्रहण नहीं करना चाहिए?

उत्तर इस प्रकार विना शोधे देखे साफ किये वस्तु के ग्रहण कर लेने को दोष कहा है क्योंकि प्रमाद पूर्वक वस्तु को ग्रहण करने से जीवों की विराधना होने से तथा यदि कोई विषैला जन्तु बैठा है तो वह उठानेवाले को डस सकता है, बिच्छू भी डंक मार सकती है अतः प्रमाद पूर्वक ग्रहण करने से स्व और पर का घात अवश्यंभावी है। पूजापाठ की सामग्री और पात्र, भोजन पान की सामग्री और पात्र, व्यापार आदि की सामग्री और पात्र आदि को ग्रहण करने से यह अतिचार दोष उत्पन्न होता है। वह भोग तथा उपभोग के योग्य चेतन अचेतन और मिश्र सामग्री हो सकती है। मोक्षमार्गोपयोगी सामग्री समिति पूर्वक ग्रहण करना चाहिए तथा मोक्षमार्ग के विरुद्ध, अपने पद के विरुद्ध दुर्ध्यान को उत्पन्न करने वाली सामग्री ग्रहण नहीं करना चाहिए।

प्रश्न– 1710 अभी तक अचेतन वस्तु को रखने में उठाने में दोष लगता है ऐसा पढ़ा है सुना है किन्तु यहाँ चेतन सामग्री को रखने आदि में दोष बताया है सो इस प्रकार कथन करने का क्या उद्देश्य है?

उत्तर बात सत्य है किन्तु आपने अनुभव किया होगा कि गोद के छोटे बालक बालिका को जल्दबाजी में रखने उठाने में, घसीटने आदि में हाथ पैर की हड्डियां, शरीर की नसें चल विचल हो जाती हैं, हड्डियां टूट जाती है अतः असावधानी होने से बच्चों का जीवन बिगड़ जाता है। बच्चों को उछालने, लोकने या झूले में भी अधिक ऊँचे तक झुलाने से, झूले की लड़ी के टूट जाने से, हाथ से उछालने पर पुनः लोकने में भूल हो जाने से, नीचे गिर जाने पर हाथ पैर टूट जाते हैं, सिर में चोट आ जाती है, भयभीत भी हो जाता है, आँख नाक कान में भी चोट आ जाती है जो प्रत्यक्ष देखा जा रहा है और दृष्टिगोचर भी हो जाता है। अतः चेतन का नाम लिया है।

प्रश्न– 1711 यह कैसे मालुम हो कि बालक बालिकाओं को उठाने बैठाने में भी यह दोष आता है?

उत्तर असावधानी पूर्वक बालक बालिकाओं के उठाने बैठाने में, उनके रोने से, बेहोश हो जाने से, चेहरा बिगड़ जाने से मालुम हो जाता है कि यह असावधानी का, जल्दबाजी का फल है। अतः इसलिए कहा है कि चेतन या अचेतन सामग्री को किसी भी वस्तु को उठाने में, रखने में, ग्रहण करने में सावधानी वर्तो अन्यथा असावधानी करने से ही समस्त पाप कर्मों का आश्रव बंध होता है इसलिए दोष ही है ऐसा कहा है।

प्रश्न– 1712 अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जित संस्तरोपकरण अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर प्रमाद पूर्वक बिना देखे विना शोधे विना साफ किये बैठने लेटने के आसनों को, बिस्तरों को अथवा कोई व्यापार सम्बन्धी भोगोपभोग संबंधी सामग्री को, उपकरणों को उठाना, रखना, घसीटना, फेंकना आदि कार्यों से जीव मारो या मत मारो फिर भी जीव हिंसा पाप होता ही है। इस कारण प्रमाद पूर्वक उक्त कार्यों को करने से, जीव विराधना होने के कारण अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जित संस्तरोपकरण अतिचार कहते हैं।

प्रश्न– 1713 उक्त सामग्रियों को रखने में उठाने में अतिचार क्यों लगता है?

उत्तर उक्त वस्तुओं को प्रमाद पूर्वक उठाने में रखने में जीवों की विराधना होने से, स्वपर का घात होने से, निष्प्रयोजन कर्मबन्ध होने से, दुर्गति के कारण ऐसे विषयभोगों में रुचि होती है, दुर्गति स्वरूप निष्कृष्ट फल का साधन होने से, विषय कषायों में प्रवृत्ति होने को अतिचार कहा है क्योंकि असावधानी पूर्वक दिनचर्या होने से नवीन कर्मों का स्थितिबंध और अनुभाग बंध भी होता है।

प्रश्न– 1714 वस्तु संस्तर उपकरणादि को किस प्रकार से रखना उठाना और ग्रहण करना चाहिए जिससे पाप कर्मों का आश्रवबंध न हो?

उत्तर वस्त्राभूषण बिछाने के, ओढ़ने के, बिस्तर चद्दरें आदि को जमीन और जमीन से सम्बन्ध रखने वाली उपकरण के निचले भाग को सावधानी पूर्वक देखकर, फटकार कर, साफ कर तथा भूमि को साफ स्वच्छ कर रखना उठाना आदि कार्य करना चाहिए जिससे दुष्कर्म न बंधेगा।

प्रश्न– 1715–16 अनादर अतिचार किसे कहते हैं? अनादर भाव को अतिचार दोष क्यों कहा?

उत्तर बिना मानकषाय के बिना, अहंकार के कोई किसी का अपमान नहीं करता, अनादर नहीं करता यह अनादरभाव मानकषाय स्वरूप होने से प्रमाद ही अनादर है, अतिचार है तथा ये परिणाम अधिक समय तक रुक गए तो अनाचार दोष बनकर व्रत का समूल विनाश कर देते हैं। इसलिए पाप का साधन होने से अतिचार दोष कहा। उत्साह न होने से, कमजोरी होने से, अजानकारी होने से तथा प्रमाद के कारण उपवास में असावधानी होती है। जैसे उपवास करने के बाद में भूख प्यास, सर्दी गर्मी आदि के कारण मेरे को यह कष्ट हो रहा है ऐसा विचार करने से अतिचार दोष लगता है यदि उपवास नहीं करते तो ऐसी तकलीफ न होती इस प्रकार विचार करना अनादर दोष है।

प्रश्न– 1717 उपवास का अनादर करने से क्या हानि प्राप्त होती है?

उत्तर अनादर करने से आत्म धर्म की हानि होती है मानकषाय की पुष्टि होती है। जैसे आपने किसी को जलाने के लिए अग्नि का अंगारा लिया तब वह जले या न जले किन्तु आपका हाथ तो जलेगा ही इसी तरह आपने व्रत का अनादर किया तो मन वचन काय की क्रिया स्वयं में हुई, प्रदेश परिस्पंदन स्वयं का हुआ, आश्रव बंध स्वयं में हुआ, उदय भी स्वयं में और फल भी स्वयं में होता है अतः यही हानि है और इससे अधिक हानि क्या हो सकती है।

प्रश्न– 1718–19 सामायिक शिक्षाव्रत और प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत इन दोनों में

अनादर नाम का अतिचार कहा है तो क्या दोनों अनादरों में अंतर नहीं है या अंतर है या दोनों एक ही अतिचार दोष हैं?

उत्तर दोनों शिक्षाव्रतों के अतिचारों में अनादर नाम एक है किन्तु विषय प्रसंग प्रतिज्ञा अलग–अलग होने से अनादर भी दोनों का अलग अलग है। सामायिक के सम्बन्ध में अपमान अनादर भाव सामायिक का अतिचार दोष है और उपवास के कारण उत्पन्न गर्मी सर्दी, भूख प्यास आदि की बाधा से घबराया हुआ मन उपवास का अनादर है अर्थात् यह अनादर भाव जिस व्रत के साथ उत्पन्न होगा वह उसी का दोष कहलायेगा। अतः आश्रय भेद से भी दोष में भेद हो जाया करते हैं यही इन दोनों में अन्तर है।

प्रश्न– 1720–22 प्रमाद किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन–कौन हैं?

उत्तर असावधानी आलस्य को प्रमाद कहते हैं अथवा अनुत्साह को प्रमाद कहते हैं। इस प्रमाद के दो भेद हैं, 15 भेद हैं, 80 भेद हैं 37500 भेद हैं, संख्यात असंख्यात और अनन्त भेद हैं। 1 चर्यासम्बन्धी प्रमाद, 2 अध्यात्म सम्बन्धी प्रमाद अथवा चार विकथायें, चार कषाय, पाँच इंद्रियविषय प्रवृत्ति आधीनता, निद्रा और प्रणेय ये 15 प्रमाद के नाम हैं। 4 X 4 X 5 इनका परस्पर में गुणा करने से 80 भेद होते हैं। 25 विकथायें, 25 कषायें, पाँच इंद्रिय और एकमन, पाँच निद्रायें राग और द्वेष ये दो इन सबका परस्पर में गुणा करने से 25 X 25 = 625 X 6 = 3750 X 5 = 18750 X 2 = 37500 इस प्रकार ये सब मिलाकर 37500 प्रमाद के भेद हैं।

प्रश्न– 1723 चर्या सम्बन्धी प्रमाद किसे कहते हैं?

उत्तर जो व्रतों के पालन में, समिति के पालन में, मूलगुणों के उत्तरगुणों के पालन में, धर्मानुष्ठान में, षड्आवश्यकों के पालन करने में, अनुत्साह करने को, कुछ का कुछ करने को, बोलने को चर्या सम्बन्धी प्रमाद कहते हैं अथवा की गई प्रतिज्ञा के पालन करने में असावधानी होने को अनुत्साही होने को चर्या सम्बन्धी प्रमाद कहते हैं।

प्रश्न– 1724 अध्यात्म सम्बन्धी प्रमाद किसे कहते हैं?

उत्तर बाह्याचरण में सर्वप्रकार से सावधान रहने पर भी, समर्थ होने पर भी उपशमश्रेणी या क्षपक श्रेणी के योग्य परिणामों में बाधक परिणाम को या विकल्पात्मक परिणाम को अध्यात्म सम्बन्धी प्रमाद कहते हैं और ये दोनों ही प्रमाद केवलज्ञान की प्राप्ति में अत्यन्त बाधक हैं।

प्रश्न– 1725–26 स्मृत्यनुपस्थापन अतिचार किसे कहते हैं? यह अतिचार दोष किस कारणसे उत्पन्न होता है?

उत्तर प्रोषधोपवास, उपवास, एकासन किया है तो उस व्रत की गर्मी से, कमजोरी से, भूल से, अल्पक्षयोपशम के कारण करने योग्य ध्यानाध्ययन जपादि सत्कार्यों को भूल जाना और विषय कषायों में विकथाओं में, आरम्भपरिग्रह में लग जाने से, कर्तव्य पालन न करने को स्मृत्यनुपस्थापन अतिचार दोष कहते हैं। असंयमी अव्रतियों की संगति से भी यह दोष उत्पन्न हो जाता है।

प्रश्न– 1727 इसको अतिचार दोष क्यों कहा?

उत्तर करने योग्य कार्यों को भूल जाने से, अनर्गल कार्य करने से, कल्याण के मार्ग की विराधना होने से अतिचार कहा है।

प्रश्न– 1728 करने योग्य षडावश्यक कर्तव्यों का पालन न करने से क्या हानि है?

उत्तर षडावश्यक कर्तव्यों के पालन न करने से तीव्र कषाय होती है जिससे अपना पद और व्रत समाप्त हो जाता है। साम्परायिकाश्रव की समादान क्रिया कहलाती है उसे व्रत भंगी भी कहते हैं। लोक में हीन दृष्टि से देखा जाता है, निन्दा का पात्र होता है, बदनामी होती है, आकुलता व्याकुलता का सद्भाव होने से, अध्यात्म सुख शान्ति प्राप्त नहीं कर पाता तथा तीव्र पाप कर्मोंको बांधकर दुर्गतिका पात्र होता है आदि हानि होती हैं।

प्रश्न– 1729 दिग्व्रत में स्मृत्यन्तराधान अतिचार और सामायिक शिक्षाव्रत तथा प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत में समृत्यनुपस्थान अतिचार कहा है तो इनमें क्या अंतर है जब कि नाम एक है?

उत्तर इन तीनों के अतिचारों के नाम एक ही हैं परन्तु आश्रय के भेद से तीनों में अन्तर है। प्रतिज्ञा और भाव में अंतर है। कार्य में अन्तर है क्योंकि दिग्व्रत जीवन पर्यन्त के लिए है इसकी सीमा और काल क्षेत्र विशाल है। सामायिक शिक्षाव्रत का काल और क्षेत्र एकदम सूक्ष्म और थोड़ा है। परन्तु उतने समय तक, उतने क्षेत्र में परिणाम उत्कृष्ट स्वच्छ और निर्मल हैं किन्तु प्रोषधोपवासशिक्षाव्रत में परिणाम विस्तार रूप में है, स्थूल परिवर्तन सहित, विकल्प सहित है। क्षेत्र और काल भी सामायिक की अपेक्षा विस्तृत है। इस कारण इन अतिचारों से आश्रव बंध में अंतर अवश्य पड़ता है और इनके प्रायश्चित्त में भी अंतर हो जाता है। इसलिए नाम एक होने पर भी आश्रय भेद से कार्य में फल में अन्तर हो जाता है। जो आगम में दृष्टव्य है।

प्रश्न– 1730 इन अतिचारों को जानकर क्या करना चाहिए?

उत्तर इन अतिचारों को जानकर छोड़ना चाहिए क्योंकि इनको त्यागे बिना आत्म साधना बन नहीं सकती किन्तु विराधना ही होती है जैसे मक्खी को मिठाई में चिपकी हुई देखकर भी खाली तो इससे उल्टी ही होगी, कष्ट बढ़ेगा ही या जहर को, अपथ्य भोजन को जान कर भी खाया तो मृत्यु और स्वास्थ्य की हानि होती है इनको दोषयुक्त, कष्टदायक, हानिकारक समझकर त्याग किया तो लाभ ही लाभ होगा इसी तरह अतिचारों को दोषयुक्त पापरूप, प्रतिज्ञा के भंग स्वरूप जानकर त्याग करना चाहिए जिससे व्रत की और जीवन की रक्षा हो अन्यथा तन, मन, धन और धर्म इन चारों की हानि होती है लोक में निन्दा, अविश्वास, अपमान, तिरस्कार और दुःख की प्राप्ति होती है और भी इसी तरह अतिचारों को, कुसंगति को छोड़ना, व्रतों का पालन करना, ध्यान का अभ्यास करना आदि निषेध और विधि के कार्यों को करने से आत्मशुद्धि होती है, अन्य साधनों से आत्म शुद्धि नहीं होती किन्तु विराधना ही होती है और विराधना से संसार में भ्रमण तथा नाना प्रकार के दुःख भोगने पड़ते है कोई बचाने वाला नहीं होता ना आँसु पोंछने वाला होगा अतः सावधानी रखनी चाहिए। इस प्रकार अवधारण करना चाहिए।

Note- इस प्रकार 1686 से 1730 तक प्रोषधोपवास व्रत तथा अतिचारों का वर्णन समाप्त हुआ।

प्रश्न— 1731—33 उपभोग परिभोग परिमाण शिक्षाव्रत किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर पाँचों इंद्रियों के विषय कषायों को, कामवासना को जीतने के लिए, देवशास्त्रगुरु की साक्षी पूर्वक अणुव्रतों को निर्दोष पालन करने का जो संकल्प किया है उसे निर्दोष पालन करने की शिक्षा की, उपाय की जानकारी हो, प्राप्ति हो सो उस उपाय को ही भोगोपभोग प्रमाण अथवा भोग उपभोग की सामग्री का प्रयोजनानुसार प्रमाण कर शेष का त्याग करने को भोग उपभोग प्रमाण शिक्षाव्रत कहते हैं। इसी को नियम, व्रत कहते हैं। दो भेद हैं। नामः— यम और नियम।

प्रश्न— 1734 यम किसे कहते हैं?

उत्तर जो भोग और उपभोग की सामग्री है उसको पाप का, कर्म बन्ध का, राग द्वेष का कारण मानकर जीवन पर्यन्त के लिए त्याग करने को यमव्रत कहते हैं और अशुद्ध अभक्ष्य सामग्री का त्याग तो जीवन पर्यंत होता है किंतु शुद्ध सामग्री का त्याग भी यम रूप से किया जा सकता है।

प्रश्न— 1735 नियम किसे कहते हैं?

उत्तर जो भोग और उपभोग की चेतन अचेतन सामग्री है उसको द्रव्य क्षेत्र काल और भाव की मर्यादा कर थोड़े समय के लिए त्याग करने को नियम कहते हैं। जैसे जो भक्ष्य शुद्ध है अपने जीवन में उपयोग में आने वाली है या आने के योग्य है या आ रही है ऐसी भोजन सामग्री या समस्त इंद्रिय विषयसामग्री त्याग करने योग्य हैं तथा त्याग धर्म का पालन करना योग्य हैं।

प्रश्न— 1736 किन किन वस्तुओं का त्याग यम रूप से किया जाता है?

उत्तर मद्य मांस मधु तथा इनके समान लक्षणों को धारण करने वाली सामग्री, सप्त व्यसन, मर्यादा के बाहर समस्त प्रकार की भोजन सामग्री, औषधि, हिंसक श्रृंगार अलंकार की सामग्री, त्रसजीवों की विराधना कर इनकी धातुओं उपधातुओं से तैयार की गई विषय वस्तु का, मिलावट की वस्तु का, कन्दमूल का, आचार मुरब्बा का त्याग जीवन पर्यन्त के लिए करना चाहिए अथवा जिन वस्तुओं को जीवन में अपनाने से संख्यात, असंख्यात और अनन्त जीवों की हिंसा हो, विराधना हो उनका त्याग जीवन भर के लिए कर देना चाहिए।

प्रश्न— 1737 किन किन वस्तुओं का त्याग नियम रूप से किया जाता है?

उत्तर जो भोजन सामग्री भक्ष्य है, शुद्ध है, मर्यादित है उसका त्याग थोड़े समय के लिए या प्रान्त के लिए, जब तक इस क्षेत्र में हैं तब तक के लिए नियम पूर्वक त्याग तथा अभक्ष्य पदार्थों का जीवन पर्यन्त के लिए यमरूप से त्याग किया जाता है। जैसे नियम से नियम पूर्वक त्याग करने योग्य भोजन पान सामग्री, पलंग, आसन, घर, दुकान, वस्त्र आभूषण, सवारी, औषधि, स्नान, श्रृंगार अलंकार, तेल, ताम्बूल का, अपनी निज पति या पत्नि का त्याग नियम रूप से किया जाता है तथा अपनी पत्नि या पति के अलावा शेष समस्त प्रकार की वेश्यायें, परस्त्री का, वेश्यागामी, परस्त्रीगामी व्याभिचारी पुरुषों का त्याग यम रूप से किया जाता है आदि। उपयोग में आनेवाली विषय सामग्री का त्याग अपने बल वीर्य को न छिपाकर परिणामों को सम्हालते हुए नियम पूर्वक

करना चाहिए। यदि त्याग नहीं किया तो उसका जीवन पशुपक्षियों के समान है।

प्रश्न– 1738 भोग और उपभोग सामग्री का त्याग यम और नियम रूप से क्यों किया जाता है?

उत्तर जिनका संयम पालन करने का अभ्यास है, आदत में आ चुका है तब उन वस्तुओं का त्याग यमरूप से किया जाता है और त्याग करने पर किसी प्रकार से कष्ट का अनुभव नहीं होता है किन्तु जिनका अभ्यास नहीं है वे अभ्यास करना चाहते हैं तो उनके लिए त्याग नियम रूप से कराया जाता है जिससे उनके मन में आकुलता न हो, निराकुलता बनी रहे। इस प्रकार अभ्यास करना और कराना चाहिए।

प्रश्न– 1739–40 उपभोगपरिभोग परिमाणव्रत के अतिचारों के कितने भेद हैं? नाम कौन–कौन हैं?

उत्तर उपभोगपरिभोग परिमाणव्रत के अतिचारों के पाँच भेद हैं। नामः– 1. सचित्ताहार 2. सचित्त संबंध आहार 3. सचित्तसम्मिश्राहार 4. अभिषवाहार 5. दुपक्वाहार अथवा 1. अनुप्रेक्षा 2. अनुस्मृति 3. अतितृषा 4. अतिलौल्य 5. अनुभव।

प्रश्न– 1741 सचित्त आहार किसे कहते हैं?

उत्तर जो भोजन सामग्री जीव सहित है। वर्तमान में इस बीजमें, फल में जीव मौजूद है या भविष्य में आने की सम्भावना है उसे सचित्ताहार कहते हैं। अर्थात् जीव सहित वस्तु को सचित्त कहते हैं और उसके ग्रहण करने को खा लेने को सचित्ताहार कहते हैं। जैसे अनछना जल त्रस स्थावर जीवों से युक्त होने के कारण सचित्त है तथा छना जल जलकायिक जीवों से सहित होने के कारण सचित्त है। अंकुरित धान्य या अंकुर को उत्पन्न करने की शक्ति से युक्त भोजन सामग्री को सचित्ताहार कहते हैं अथवा जिस भोजन सामग्री की मर्यादा समाप्त हो चुकी है ऐसा भोजनपान ग्रहण करना खा पी लेना सचित्ताहार कहलाता है।

प्रश्न– 1742 सचित्त सम्बन्धाहार किसे कहते हैं?

उत्तर जिस भोजन सामग्री में त्रस जीव और स्थावर जीव आकर मिल गये हैं, सम्बन्ध प्राप्त कर लिया है उसे सचित्त सम्बन्धाहार कहते हैं। जैसे किसी पात्र में सुधारकर फल रखे हैं, फल रस निकालकर रखा है तब इन्हीं फलों के साथ साबित फल रख दिये हैं या सचित्त जल या फलों के बीजों को सुधारे गये फलों के साथ या रसों के साथ में रख दिए हैं उसे सचित्त सम्बन्धाहार कहते हैं।

प्रश्न– 1743 सचित्त सम्मिश्राहार किसे कहते हैं?

उत्तर जो भोजन सामग्री जीवों से मिल चुकी है, पीने योग्य पदार्थों में, रसों में दाल आदि रसीले पदार्थों में जीव जिन्दा मिल चुके हैं इनको अलग करना अशक्य हैं ऐसे सचित्ताचित्त के मिश्रण को, एकमेक रूप में होने को सचित्त संमिश्राहार कहते हैं। ऐसा प्रसंग सुधारी हुई सामग्री को खुला रखने से, जीवों के स्थान पर रखने से जीव आकर चिपक जाते हैं, मिल जाते हैं।

प्रश्न— 1744 सचित्त सम्बन्ध आहार और सचित्त सम्मिश्राहार में क्या अंतर हैं?

उत्तर जो आहार शुद्ध है अचित्त है किन्तु सचित सामग्री से सम्बन्ध प्राप्त कर लिया है पुनः संशोधन कर सचित्त वस्तु को अलग कर सकते हैं परन्तु सचित्त सम्मिश्राहार में शुद्धाहार से सचित्ताहार को अलग नहीं कर सकते हैं। यही इन दोनों में अंतर है। अथवा शुद्ध आहार सामग्री सचित्त आहार वस्तु से या अशुद्ध आहार अमर्यादित वस्तु से मिल चुकी है। एक रस रूप में नहीं हुई है स्वतंत्र अस्तित्व बनाये रखे हैं अलग करना शक्य है किन्तु सचित्त सम्मिश्र में मिलकर एकरूप हो जाता है पृथक् नहीं कर सकते हैं, पृथक् करना अशक्य है जैसे दूध से शक्कर अलग नहीं कर सकते हैं। सचित्त सम्बन्ध में कदाचित् अशुद्ध वस्तु को अलग कर खा सकते हैं किंतु सचित्त सम्मिश्राहार में अन्तराय करना अवश्यंभावी है। यही अंतर है।

प्रश्न— 1745—46 अभिषव आहार किसे कहते हैं? इस प्रकार के आहार से क्या हानि प्राप्त होती है?

उत्तर गरिष्ठ भोजन को अथवा जो भोजन सरलता से बिना परिश्रम के आसानी से पाचन न हो सके या जिसके पाचन के लिए औषधि का प्रयोग करना पड़े अथवा पाचन में अत्यन्त भारी होने से, कामवेदना को जागृत कर दे, अत्यन्त शक्तिशाली होने से गेस बना देता है, शक्तिवर्द्धक होने से, क्षण क्षण में क्रोधादि कषायों का उद्रेक होने से परस्पर में वैर विरोध होगा, शत्रुता का कारण होने से, कषायों की तीव्रता होने से, पाप कर्मों के आश्रव बंध में विशेषता होने से आदि ऐसे गरिष्ठ आहार को अभिषव आहार कहते हैं। उक्त हानि भी होती है।

प्रश्न— 1747 इस प्रकार गरिष्ठ आहार को अतिचार दोष युक्त क्यों कहा?

उत्तर गरिष्ठ आहार से स्वास्थ्य बिगड़ जाता है, प्रमाद असावधानी होने से अपने कर्तव्यों के पालन करने में, ध्यानाध्यन तपश्चरण में, मूलगुणों उत्तरगुणों के पालन करने में, नींद आने से सामायिकादि कार्यों में बाधा उत्पन्न होती है इस कारण प्रमाद का कारण होने से गरिष्ठाहार को अतिचार दोष कहा है। इससे लोक व्यवहार, धर्म व्यवहार की हानि होने से मोक्षमार्ग भी समूल रूप से बिगड़ जाता है, नष्ट हो जाता है।

प्रश्न— 1748 क्या भोजन का नाम अतिचार दोष है?

उत्तर नहीं, भोजन का नाम अतिचार दोष नहीं है किन्तु प्रमाद का नाम, चंचलता, चपलता का नाम अतिचार दोष है और प्रमाद का कारण होने से कारण में कार्य का उपचार करके अथवा अभेद विवक्षा करके आहार को ही अतिचार दोष कहा है। अतः नय लगाने से कोई दोष नहीं है।

प्रश्न— 1749 दुपक्वाहार किसे कहते हैं?

उत्तर जो भोजन सामग्री अत्यधिक पक चुकी है या अग्नि से ज्यादा जल चुकी है जिसका स्वाद बिगड़ गया है या जो भोज्य पदार्थ, शब्जी फल स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, सड़ गल गया है रूप रस गन्ध स्पर्श बिगड़ गया है, स्वाद बिगड़ गया है उसे दुपक्वाहार कहते हैं। इस प्रकार के आहार को ग्रहण करने से तन, मन, धन और धर्म चारों ही नष्ट होते हैं और ये चारों अपने नष्ट होने के साथ साथ साथ में रहने वालों को भी हानि प्राप्त होती है।

प्रश्न– 1750 उपभोगपरिभोग प्रमाणव्रत का पालन रसना इंद्रिय या समस्त इंद्रियों को वश में करने से या विराधना इनमें प्रवृत्ति करने से होती है?

उत्तर आ. श्री उमास्वामीजी ने इन पाँचों अतिचारों को केवल रसनेंद्रिय के विषय से सम्बन्ध रखने वाला कहा है किन्तु आ. श्री समंतभद्रजी ने पाँचों इन्द्रिय के विषयों से सम्बन्ध रखने वाला कहा है। क्योंकि कषायों की उत्पत्ति समस्त इंद्रिय विषयों से होती है तथा समस्त दोषों के मूल कारण विषयकषाय ही हैं ये विषयकषाय ही समस्त अनर्थों की जड़ हैं इसलिए 'अर्पितानर्पित सिद्धेः सूत्रानुसार अपेक्षा भेद से कोई दोष नहीं है अथवा आ. श्री समन्तभद्रानुसार अतिचारों का कथन समझना चाहिए।

प्रश्न– 1751–52 अनुप्रेक्षा अतिचार किसे कहते हैं? इस अनुप्रेक्षा को अतिचार दोष क्यों कहा?

उत्तर व्रत धारण करने के पहले जो पाँचों इंद्रियों के भोग भोगे हैं उनको पुनः पुनः भोगने के लिए और मैंने अच्छा भोगा था, भोगूंगा इस प्रकार की भावना को कि बहुत अच्छा आनन्द आया था पुनः आनन्द आयेगा अतः इन विचारों को अनुप्रेक्षा अतिचार कहा है। इस अनुप्रेक्षा को अतिचार इसलिए कहा है कि पाप का विषय, भोगों का चिन्तन कर पुनः नवीन भोग भोगने के लिए चिन्तन करने को अनुप्रेक्षा अतिचार कहा है। केवल चिन्तन करने का नाम अतिचार नहीं है यदि चिन्तन करने का नाम अतिचार होता तो अनुप्रेक्षा स्वाध्याय जो अंतरंग तप है, संसार शरीर भोगों का चिन्तन, द्वादश भावना और मतिज्ञान को 'मननं मतिः' मनन करने को मतिज्ञान कहते हैं इनको भी अतिचार मानने का प्रसंग प्राप्त होता है। इस कारण केवल विचार करने का नाम अनुप्रेक्षा अतिचार नहीं है किन्तु पुनः भोगने के लिए, भोगों का आनन्द लेने के लिए चिन्तन करना अतिचार कहा है। यदि विरक्त होने के लिए, धारणा ज्ञान मजबूत करने के लिए, प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान आलोचना निन्दा गर्हा गुण प्राप्त करने के लिए, वैराग्य प्राप्त करने के लिए संसार शरीर भोगों का पुनः पुनः चिन्तन करना गुणकारी है आत्म कल्याण का मार्ग है आत्म साधना की सीढ़ी है।

प्रश्न– 1753 अनुस्मृति अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर अव्रती अवस्था में अथवा व्रत धारण करने के पहले जो विषय भोग भोगे थे, सेवन किये थे अब भूल गये हैं तो पुनः परिश्रम कर कैसे भोगा था, किसके साथ भोगा था, कहाँ भोगा था, कब भोगा था, कितना आनन्द आया था आदि याद करने को अनुस्मृति अतिचार कहते हैं।

प्रश्न– 1754 अनुप्रेक्षा और अनुस्मृति अतिचार में क्या अन्तर है?

उत्तर अनुप्रेक्षा अतिचार में जो याद है उसी का चिन्तन किया जाता है किन्तु अनुस्मृति अतिचार में याद नहीं है पुनः पुनः खोद खोदकर मन लगा कर याद करना कि मैंने इस प्रकार भोग भोगा था यही इन दोनों में अन्तर है।

प्रश्न– 1755 अनुस्मृति को अतिचार क्यों कहा है?

उत्तर पुनः पाप कर्म का साधन होने से, दुर्भावना होने से, दुर्भावना होने से आत्म मलिनता का

साधन होने से, प्रतिज्ञा को नष्ट करने वाला होने से अतिचार दोष कहा है।

प्रश्न– 1756 अतितृषा अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर जैसे कबूतर पुनः पुनः काम सेवन करके भी तृप्त नहीं होता उसी प्रकार जो व्रती पुनः पुनः काम सेवन करके भी तृप्त नहीं होता है अथवा किसी भी इंद्रियों के विषय में अत्यधिक अतृप्त होने को, तीव्र आकांक्षा होने को अतितृषा अतिचार दोष कहते हैं। इस अतिचार में रमण की, भोगने की भावना सतत बनी रहती है।

प्रश्न– 1757 अतिलौल्य अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर भोग विलास की भोगों को भोगने की आकांक्षा को अतिलौल्य अतिचार कहते हैं। रमण करते हुए अतृप्त रहता है।

प्रश्न– 1758 अतितृषा अतिचार और अतिलौल्य अतिचार में क्या अन्तर है?

उत्तर अतितृषा अतिचार में भावी काल में भोगने की भावना करते करते भी अतृप्त रहता है किन्तु अतिलौल्य अतिचार में वर्तमान में भोगते हुए भी भोगों में अतृप्त रहता है। प्रथम अतिचार में भावना में अतृप्त है तो दूसरे में भोगों में अतृप्ति है अथवा प्रथम कारण में अतृप्ति है तो दूसरे कार्य में अतृप्ति है अतृप्ति दोनों में है। प्रथम भावीकाल के लिए हैं तो दूसरा वर्तमान काल के लिए यही अन्तर है।

प्रश्न– 1759 अनुभव अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर इन्द्रियजन्य विषय भोगों को भोगते हुए अथवा विषय भोगों को न भोगते हुए भी मानसिक विचारों से तदनुरूप परिणति क्रिया से युक्त होने को परिणमन करने को अनुभव अतिचार कहते हैं।

प्रश्न– 1760 अनुभव और ज्ञान में क्या अन्तर है?

उत्तर अनुभव परिणति क्रिया से सहित होता है तथा ज्ञान ज्ञप्ति क्रिया से युक्त होता है। जैसे नर्स गर्भ की वेदना जानती है किन्तु अनुभव नहीं करती अथवा समस्त प्राणी परस्पर में एक दूसरे के सुख दुःख को जानते हैं किन्तु अनुभव नहीं करते हैं जैसे सामने वाले व्यक्ति के पेट में दर्द हो रहा है तो अपन नेत्र से देखकर, कान से सुनकर, दुःख हो रहा है ऐसा अनुमान लगा लेते हैं किन्तु कितनी मात्रा में दुःख हो रहा है इसके लिए कोई बाह्य चिह्न नहीं है जब स्वयं में घटना घटेगी तब मालुम होगा कि कितनी मात्रा में दुःख हो रहा है। इसी प्रकार सुख को भी समझो। केवलज्ञानी सर्वज्ञ संसार के समस्त मानसिक दुःख, शारीरिक दुःख, क्षेत्रजन्य दुःख, कालजन्य दुःख, आगंतुक दुःख, अपमान जन्य दुःख को या सातावेदनीय कर्मोदय जन्य सुख को जानते हैं। पर बाह्य का अनुभव नहीं करते। यदि ऐसा न माना जाये तो सर्वज्ञकेवली अरिहन्त भगवान को भी संसार के समस्त इष्टानिष्ट विषय भोगों का, भक्ष्याभक्ष्य का, काम भोग के सुख या दुःख का तथा संसार के समस्त शुभाशुभ कार्यों के सेवनपने का, अनुभव करने का प्रसंग आता है और भी एक अनिष्ट प्रसंग प्राप्त होता है कि केवली भगवान के मद्य मांस मधु आदि सप्त व्यसन सेवन करने का और स्वाद का भी प्रसंग आता है तथा जब उनको शराब का स्वाद आया तो पी अवश्य है पीने से नशा भी आता है मतवाला होने से निष्प्रयोजन वचनालाप से वाचालपने का मौखर्यपने

का दोष आता है कहाँ तक लिखा जायें क्रमशः धीरे धीरे समस्त दोषों का आगमन होने से दुर्गुणों का आगमन होने से, सद्गुणों का निष्कासन होने से, भ्रष्टों से भी विशिष्ट भ्रष्टपने का प्रसंग आता है। इसलिए अनुभव और ज्ञान में अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है अतः अनुभव और ज्ञान दोनों अलग अलग हैं एक नहीं हैं।

प्रश्न– 1761–62 अनुभव को अतिचार दोष क्यों कहा? क्या सभी प्रकार के अनुभव अतिचार कहलाते हैं?

उत्तर सभी प्रकार के अनुभव का नाम अतिचार नहीं है किन्तु जो अनुभव पुनः आहारादि संज्ञाओं को, दुर्ध्यानों को, दुर्लेश्याओं को उत्पन्न कराकर कामभोगों में फंसाता है ऐसे अनुभव का नाम अतिचार है। किंतु शेष अनुभव का नाम अतिचार नहीं है यह सद्गुण है।

प्रश्न– 1763–64 इस प्रकार का अनुभव कब होता है? इस प्रकार के अनुभव को अतिचार दोष क्यों कहा?

उत्तर विषय भोगों को भोगते समय जो अनुभव आनन्द हो रहा था उसकी बात नहीं है किन्तु जिस प्रकार भट्ठी के जलाने पर भूमि गरम हो जाती है फिर भट्ठी हटा देने पर भूमि गरम भट्ठी के समान जलाने का काम करती है। उसी तरह भोजन आदि विषय भोग विलासों की सामग्री हट जाती है फिर भी भोगवासना का मानसिक तनाव खिचाव के कारण तदनुरूप परिणामों से अनुभव होता रहता है इस कारण उस अनुभव को अतिचार दोष कहा है। पुनः भोगने के लिए भोग के अनुभव को अतिचार कहा है किन्तु सभी प्रकार के अनुभवों को नहीं।

Note- प्र. 1731–1764 तक उपभोग परिभोग परिमाण शिक्षाव्रत तथा अतिचारों का वर्णन समाप्त हुआ।

प्रश्न– 1765–66 अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत किसे कहते हैं? पात्र किसे कहते हैं?

उत्तर जो गृहत्यागी या गृहरागी मोक्षमार्गानुरूप गुणों से युक्त हैं उनके लिए निज की चेतन अचेतन सामग्री का विभाग करने को अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत कहते हैं। जो मोक्षमार्ग के साधनभूत गुणों से, रत्नत्रय से युक्त हैं उन्हें पात्र कहते हैं।

प्रश्न– 1767–68 पात्र के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर मोक्षमार्गोपयोगी पात्र तीन प्रकार के होते हैं? नामः– 1. उत्तम पात्र 2. मध्यम पात्र 3. जघन्य पात्र। ये तीनों ही रत्नत्रय सहित होने से आत्म साधक हैं रत्नत्रय के आराधक हैं।

प्रश्न– 1769–72 उत्तम पात्र किसे कहते हैं? भेद कितने हैं? नाम कौन कौन हैं? उत्तम पात्र में भी उत्तम पात्र किसे कहते हैं?

उत्तर विषय कषायों की आधीनता के, आरम्भ परिग्रह, श्रृंगारालंकार के, दुर्भावना, वैरविरोध के त्यागी, ख्याति पूजा लाभ की भावना के त्यागी, ज्ञान ध्यानस्वाध्याय में सतत संलग्न, नाना प्रकार के तत्त्व चिन्तन में संलग्न गृह त्यागी निर्ग्रन्थ पदधारी को उत्तम पात्र कहते हैं। उत्तम पात्र के तीन भेद हैं। नामः– आचार्य परमेष्ठी, उपाध्याय परमेष्ठी और साधु परमेष्ठी ये तीन भेद उत्तम पात्र के हैं। उत्तम पात्र में उत्तमपात्र 36 मूलगुणों के धारक आचार्य परमेष्ठी महाव्रती तथा परम संतोष

व्रत के धारी उत्तम पात्र कहलाते हैं। ये मुमुक्षुओं को रत्नत्रय धर्म प्रदान कर, दीक्षा शिक्षा देकर मोक्षमार्ग में प्रवेश कराते हैं। प्रायश्चित्त, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान देकर, जो पंचाचारों को पालन की अनुमति देकर पालन करते कराते हैं। नाना तरह से उपसर्ग परीषह को जीतते हैं उन्हें आचार्य परमेष्ठी कहते हैं। ये उत्तम में उत्तम पात्र कहलाते हैं।

प्रश्न– 1773 उत्तम पात्र में मध्यम पात्र किसे कहते हैं?

उत्तर उत्तमपात्रों में भी महाव्रत धारी 25 मूलगुणों के धारक स्वसमय और परसमय के ज्ञाता, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के यथानुरूप ज्ञाता, आचार्य भगवन्त के द्वारा प्रदत्त शिष्यों को अध्ययन कराने वाले तथा स्वयं करने वालों को उत्तम पात्र में मध्यम पात्र उपाध्याय परमेष्ठी कहते हैं।

प्रश्न– 1774 उत्तम पात्र में जघन्य पात्र किसे कहते हैं?

उत्तर जो निर्ग्रन्थ पदधारी 28 मूलगुणों के धारक नग्न दिगम्बर मुनि एकमात्र आत्म साधना ही जिनका लक्ष्य है जिन्हें पर की चिंता नहीं, केवल आत्म चिन्ता से युक्त हों उसे उत्तम पात्र में जघन्य पात्र कहते हैं ये एकमात्र मौन पूर्वक आत्म साधना करते हैं।

प्रश्न– 1775 मुनिजन केवल आत्म साधना में लगे रहते हैं इसमें क्या उदाहरण हैं?

उत्तर जैसे घरों में गोद के छोटे बच्चे को कमाने की, लाने की, देने की, हानि लाभ की कोई चिन्ता नहीं होती, किसी के जन्म मरण में कोई हर्ष विषाद नहीं होता, उन्हें केवल अपने खाने पीने खेलकूद से मतलब है, उसीमें प्रसन्न रहते हैं, अपने काम से काम, इसी तरह मुनिजन गोद के बालक के समान आत्म साधना से प्रयोजन है पर से, संघ की व्यवस्था से कोई मतलब नहीं पर की चिन्ता आचार्य जाने। आर्यिका उत्तम पात्र हैं क्योंकि महाव्रती है।

प्रश्न– 1776–78 मध्यम पात्र किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर पंचम गुणस्थानवर्ती दर्शन प्रतिमा से लेकर उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा तक के वस्त्रधारी गृहरागी और गृहत्यागी श्रावक मध्यमपात्र कहलाते हैं। इसके तीन भेद हैं। मध्यम पात्र में उत्तम पात्र, मध्यम पात्र में मध्यम पात्र और मध्यम पात्र में जघन्य पात्र।

प्रश्न– 1779 मध्यम पात्र में उत्तमपात्र किसे कहते हैं?

उत्तर दसवीं अनुमति त्याग और ग्यारहवीं प्रतिमा वाले उद्दिष्टत्याग ऐलक क्षुल्लक क्षुल्लिका ये मध्यम पात्र में उत्तम पात्र हैं। ऐलकादि तीन गृहत्यागी ही और दसवीं वाले गृह त्यागी और रागी दोनों प्रकार के होते हैं।

प्रश्न– 1780 मध्यम पात्र में मध्यम पात्र किसे कहते हैं?

उत्तर सातवीं प्रतिमा से लेकर नौवीं प्रतिमा तक श्रावक ब्रह्मचर्य प्रतिमा, आरम्भ त्याग प्रतिमा, परिग्रह त्याग प्रतिमा ये तीन प्रतिमाधारी श्रावक मध्यम पात्र में मध्यम पात्र कहलाते हैं।

प्रश्न– 1781 मध्यम पात्र में जघन्य पात्र किसे कहते हैं?

उत्तर दर्शन प्रतिमा से लेकर रात्रिभोजन त्याग या दिवामैथुन त्याग नाम की छठवीं प्रतिमा तक श्रावकों को मध्यम पात्र में जघन्य पात्र कहते हैं।

प्रश्न– 1782–84 जघन्य पात्र किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन[2] हैं?

उत्तर आहार आदि संज्ञाओं से पीड़ित, आरम्भ परिग्रह से सहित, विषय कषायों से युक्त, देवशास्त्र गुरु भक्त, रत्नत्रय सहित अव्रती गृहस्थ को जघन्य पात्र कहते हैं। इसके तीन भेद हैं। 1.जघन्य पात्र में उत्तम पात्र 2. जघन्य पात्र में मध्यम पात्र और 3. जघन्यपात्र में जघन्य पात्र।

प्रश्न– 1785 जघन्य पात्र में उत्तमपात्र किसे कहते हैं?

उत्तर जो मूलगुणों का पालन करता है, षडावश्यकों का पालन करता है, मिथ्यात्व अन्याय और अभक्ष्य का त्यागी है, प्रशम संवेग आदि गुणों का धारक पालक है, देव शास्त्र गुरु का भक्त है ऐसे सम्यग्दृष्टि को जघन्य पात्र में उत्तमपात्र कहते हैं।

प्रश्न– 1786 जघन्य पात्र में मध्यम पात्र किसे कहते हैं?

उत्तर मिश्र गुणस्थानवर्ती है, जो श्रद्धानाश्रद्धान, असंयमभाव स्वरूप है, मूलगुणों का, षडावश्यकों का पालन करता है तथा उपरोक्त सभी गुण मौजूद हैं उसे जघन्य पात्र में मध्यम पात्र कहते हैं। यह असत्कार्य का, अभक्ष्य पदार्थों के सेवन का संकल्प पूर्वक त्यागी है। संसार मार्गी हैं।

प्रश्न– 1787 जघन्य पात्र में जघन्य पात्र किसे कहते हैं?

उत्तर जो अव्यक्त मिथ्यात्व का वेदन करता है सभी सत्कार्यों का पालन करता है। दृढ़ संकल्प पूर्वक पापों का त्याग नहीं किया है किंतु पाप करता भी नहीं है अन्याय अभक्ष्य का सेवन नहीं करता तथा संकल्प पूर्वक त्याग भी नहीं किया है उसे जघन्य पात्र में जघन्य पात्र कहते हैं। मोक्षमार्ग में गमन करने का इच्छुक है, देव शास्त्र गुरु का भक्त है, मिथ्यात्व गुणस्थान वाला है, द्रव्य मिथ्यात्व का त्यागी है इसलिए इसे जघन्य पात्र में जघन्य पात्र कहते हैं।

प्रश्न– 1788 गृहत्यागी और गृहरागी किसे कहते हैं?

उत्तर जिन्होंने गृह का गृह के कार्यों का और गृह के विचारों का त्याग कर दिया है विरक्ति भाव को प्राप्त हुए हैं उन्हें गृहत्यागी कहते हैं तथा जो गृह के त्यागी, गृह के कार्यों के त्यागी तथा गृह विचारों के त्यागी नहीं हैं किंतु गृहादिक में प्रीतिवान हैं उन्हें गृहरागी कहते हैं।

प्रश्न– 1789 अतिथि किसे कहते हैं?

उत्तर रत्नत्रय पूर्वक संयम सहित द्रव्य क्षेत्र काल भाव से शुद्ध शुद्धात्मा की साधना करने वाले को अतिथि कहते हैं अथवा जिस दाता का पुण्य क्षीण हो गया है, घर पर, दरवाजे पर आया हुआ महान पुरुषार्थी आत्मा आदर सम्मान, आहार पानी प्राप्त किए बिना खाली पेट चला गया और इस गृहस्थ को पाप देकर तथा पुण्य लेकर भी चला गया उसे अतिथि कहते हैं। ऐसा अतिथि दिगम्बर 28, 25 और 36 मूलगुणों का धारी हो सकता है।

प्रश्न– 1790 जिसके आने का समय निश्चित न हो उसे अतिथि कहते हैं ऐसी परिभाषा करने में क्या दोष है?

उत्तर नहीं, कदाचित् प्रथमादि दिन मालुम न हो अथवा आने के पूर्व किसी न किसी प्रकार से मालुम हो ही जाता है अतः मालुम हो जाने से अतिथिपना नहीं रह पायेगा इस कारण यह परिभाषा

कालवाची न मानकर व्यक्तिवाचक मानना चाहिये किन्तु वैरागी, संयमी, व्यक्ति वाचक परिभाषा मानने से कोई दोष नहीं आता है क्योंकि जो आरम्भ परिग्रह के, श्रृंगार अलंकार, विषय कषायों के, ख्याति पूजा लाभ आदि पाप कर्मों के त्यागी हैं उन्हें अतिथि कहते हैं यह परिभाषा हर वक्त हर अवस्था में सभी क्षेत्रों में निर्दोष सिद्ध होती है कारण यह लक्षण गृहत्यागियों में, दिगम्बरों में हर तरह से पाया जाता है।

प्रश्न— 1791 अतिथि संविभाग व्रत में गृहस्थ भी पात्र है गृहस्थ भी अतिथि है क्योंकि गृहस्थ को भी मध्यम और जघन्य पात्र कहा है न?

उत्तर गृहस्थ की तिथि जो हमेशा मालूम है तथा जो रिश्तेदार, नातेदार हैं उनकी भी आने के पूर्व फोन से सूचना मिल जाती है तथा त्यागी व्रतियों की, साधुओं की भी आने की सूचना मिल जाती है तभी तो उनकी अगवानी करने के लिए, गेट बनवाना, मंदिर, गलियां, मोहल्ला सजाना सजवाना, गाजे बाजे के साथ लाना, पूजा पाद प्रक्षालन करना, आरती उतारना, उपहार वितरण करना, प्रसाद बांटना आदि कार्यों की व्यवस्था बिना मालुम हुए कैसे कर सकते हैं बताओ? मालुम होना न होना यह अतिथि की परिभाषा ठीक नहीं है किन्तु जो संयमी मोक्षमार्ग के साधक रत्नत्रय गुणों से सहित हैं उसे ही मोक्ष के निमित्त अतिथि मानकर आदर सम्मान करना चाहिए।

प्रश्न— 1792 आजकल किसी धनवान को, राजकर्मचारी को, नेता को भी विशेष कार्यक्रमों में अतिथि मानकर आदर करते हैं सो ठीक है क्या?

उत्तर आजकल जो विशेष कार्यक्रमों में धनवान को, राजनेता, राजकर्मचारी को विशेष अतिथि मानकर आदर सम्मान करते हैं सो यहाँ पर भी कालवाची न मानकर व्यक्ति वाचक मानकर ही आदर सम्मान करते हैं। ये लोकव्यवहार में अतिथि है किंतु मोक्षमार्ग में नहीं।

प्रश्न— 1793 अतिथि के लिए किस प्रकार का संविभाग करना चाहिए?

उत्तर अतिथि के लिए जो स्वयं की निजी मन वचन काय रूप तथा चेतन अचेतन और मिश्र रूप सम्पत्ति है वह देना चाहिए। जो अतिथि को ध्यानाध्ययन, तपश्चरण में सहायक हो अथवा अव्रती गृहस्थ, देशव्रती अणुव्रती श्रावक अतिथि हैं। जघन्य मध्यम पात्र है तो उसे भी आजीविका में, धर्मकार्य में सहायक हो ऐसी चेतन अचेतन मिश्र सामग्री देना चाहिए क्योंकि यह गृहस्थ गृह त्यागी नहीं है तथा जिससे राग द्वेष मोह विषय विकार उत्पन्न न हो ऐसी सामग्री देना चाहिए और वह भी अपने और अपने परिवार के मन में खेद न हो अपनी शक्ति के अनुसार देना चाहिए तथा ख्याति पूजा लाभ की दुर्भावना को छोड़कर मोक्ष के निमित्त समीचीन पात्र के लिए विभाग बटवारा करना चाहिये।

प्रश्न— 1794 अतिथिसंविभाग किस विधि से करना चाहिए?

उत्तर आरम्भ परिग्रह के त्यागी मुनियों की नवधाभक्ति पूर्वक, मन वचन काय की शुद्धिपूर्वक, पंच सूना पाप रहित, ध्यानाध्ययन, तपश्चरण में सहायक, योग्याहार, तन मन से शुद्ध श्रावकों के द्वारा तैयार की गई शुद्ध औषधि, शुद्ध उपकरण, वसतिका मोक्षमार्ग में सहायक हो ऐसी सामग्री देना चाहिए, किंतु संयम घातक विकारोत्पादक सामग्री नहीं देना चाहिए।

प्रश्न– 1795 शुद्ध आहार किसे कहते हैं?

उत्तर जिस व्यापार में संख्यात, अंसख्यात, अनंत जीवों की विराधना हो ऐसे व्यापारों से, व्यसनों के माध्यम से कमाया हो ऐसा धन या सामग्री न हो। सात्विक न्यायनीति से धन उपार्जन किया हो, द्रव्य शुद्धि, क्षेत्र शुद्धि, काल शुद्धि और भावशुद्धि, मन वचन काय की शुद्धि पूर्वक, ख्याति पूजा लाभ की भावना को त्यागकर, मर्यादित भोजन को 46 दोष और 32 अंतरायों को टालकर बनाने को शुद्ध आहार कहते हैं। ऐसा आहार देने को शुद्ध आहार दान कहते हैं।

प्रश्न– 1796 शुद्ध औषधि किसे कहते हैं?

उत्तर जो जड़ी बूटियां, भस्म, रसायन आदि शुद्ध श्रावक ने विवेक सहित सावधानी पूर्वक दुकान से, जंगल से या किसी के घर से मंगाकर, देखकर, शोध कर, धोकर सुखाकर कूट पीसकर या दूध घी पानी आदि में पकाकर, उबालकर मर्यादा के अन्दर तैयार कर यथायोग्य उपयोग में लेने को, पात्र में देने को शुद्ध औषधिदान कहते हैं।

प्रश्न– 1797 जो औषधि आयुर्वेदीय औषधिशाला में तैयार की है वह तो शुद्ध है तो क्या श्रावक मोक्षमार्गी पात्र के लिए दे सकते हैं या ले सकते हैं?

उत्तर नहीं, क्योंकि वह औषधिशाला जिनधर्म के अनुसार द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से अशुद्ध है क्योंकि वहाँ गोली या चूर्ण बनाने के लिए पानी की, गोमूत्र आदि की या पत्ती के रसों की भावना दी जाती है या अदरक का रस नींबू आँवला के रस से तैयार की जायेगी और ये वस्तुयें आगम की मर्यादा के बाहर होने से अभक्ष्य है अतः दान में न दे सकते हैं, न ले सकते हैं क्योंकि ये सामग्रियां अभक्ष्य हैं तथा बनाने वालों की मन वचन काय की शुद्धि नहीं होती है। धर्मानुकूल संशोधन की प्रक्रिया ठीक नहीं है। बनाने वालों का आचार विचार ठीक नहीं है इस कारण लोक दृष्टि में भले ही शुद्ध माना जाय पर आगम दृष्टि में शुद्ध नहीं है।

प्रश्न– 1798 वसतिका दान किसे कहते हैं?

उत्तर जो गुप्त हो, प्रकाशवाली हो, वायु संचार के लिए, आने जाने के रास्ते हो, कीड़े मकोड़ों से रहित हो, कोलाहल से रहित हो, पराधीनता से रहित हो, ध्यानाध्ययन तप की सिद्धि में सहायक हो, स्वच्छ हो, उपसर्ग परीषह की बाधा होने की सम्भावना न हो, कामी विकारी स्त्री पुरुषों का आवागमन न हो सो उसे वसतिका कहते हैं। ऐसी वसतिका दान में देने को वसतिका दान कहते हैं। कामवासना श्रृंगार अलंकार आदि की भावना को यदि उत्पन्न कराने वाला स्थान है कामसेवन, जुआ खेलना, मनोरंजन करना, व्यापार, नाटक आदि का स्थान बन गया हो तो उसे वसतिका न कहकर गृहस्थ का घर कहना चाहिए।

प्रश्न– 1799 उपकरण दान किसे कहते हैं?

उत्तर जो उपकार करे उसे उपकरण कहते हैं। मोक्षमार्ग में सहायक अन्तरंग उपकरण रत्नत्रय धर्म है और इस अंतरंग उपकरण का बाह्य साधन देवशास्त्रगुरु हैं तथा गुरुपद का निर्वाह करने में बाह्य साधन संयम का उपकरण पीछी, ज्ञान का उपकरण शास्त्र और शुचि का उपकरण कमण्डलु संयमी साधुओं के लिए प्रदान करने को उपकरण दान कहते हैं। आर्यिकाओं को,

क्षुल्लिकाओं को, ऐलक को, क्षुल्लक, ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी बहनों को वस्त्रदान भी देना चाहिए यह भी उपकरण दान है। यह वस्त्र इन के लिए परिग्रह नहीं है यदि आर्यिका के लिए वस्त्रदान परिग्रह माना जाये तो आर्यिका को परिग्रह दिया तब आर्यिका ने अपना परिग्रह त्याग नामक महाव्रत दूषित किया मूल से विराधना की अतः दोनों भ्रष्ट हो गए आर्यिका परिग्रह ग्रहण कर भ्रष्ट हुई और गृहस्थ श्रावक ने परिग्रह देकर पद भ्रष्ट किया। अतः दोनों नष्ट हुए।

प्रश्न– 1800–01 विधि किसे कहते हैं? कितने प्रकार की होती है?

उत्तर दान की पद्धति को, उपाय को विधि कहते हैं। वह विधि नव प्रकार की होती है। नामः– 1. पड़गाहन करना 2. उच्च स्थान पर बैठाना 3. पाद प्रक्षालन करना 4. अष्ट द्रव्य से पूजन करना 5. नमस्कार करना 6. मन शुद्धि 7. वचन शुद्धि 8. काय शुद्धि 9. आहार जल शुद्धि।

प्रश्न– 1802 पड़गाहन भक्ति किसे कहते हैं?

उत्तर मोक्षमार्गस्थ पात्र को बुलाने के लिए सम्मुख जाना या मोक्षमार्गस्थ पात्र के सन्मुख आने पर बुलाना परिक्रमा लगाकर पैर धोकर अंदर ले जाने को पड़िगाहन भक्ति कहते हैं।

प्रश्न– 1803 उच्चस्थान भक्ति किसे कहते हैं?

उत्तर अंदर ले जाकर शुद्ध, निर्दोष, जीव जन्तु रहित, हलन चलन रहित, जूठन न लगी हो, मकड़ी आदि का जाला न लगा हो, दुर्गंध युक्त न हो ऐसे आसन को उच्चासन कहते हैं।

प्रश्न– 1804 पादप्रक्षालन भक्ति किसे कहते हैं?

उत्तर जो आहार देने वाले श्रावक श्राविकायें,घृणा को और मूर्खता को छोड़ कर, परम प्रीति से, भक्ति पूर्वक पात्र के पैरों पर पानी डालकर धोते हैं उसको पाद प्रक्षालन भक्ति कहते हैं?

प्रश्न– 1805 अष्टद्रव्य से पूजन भक्ति किसे कहते हैं?

उत्तर सामने थाली में या ठोने में स्थापना कर प्रीति पूर्वक गुणगान गाते हुए पृथक् पृथक् मंत्र बोलकर जलादि के चढ़ाने को अष्टद्रव्य से पूजन भक्ति कहते हैं।

प्रश्न– 1806 नमस्कार भक्ति किसे कहते हैं?

उत्तर पूजा करने के बाद में मानादि कषायों को त्याग कर, गवासन से बैठकर, हाथ जोड़कर, माथा झुकाने को नमस्कार भक्ति कहते हैं।

प्रश्न– 1807 मनशुद्धि भक्ति किसे कहते हैं?

उत्तर मन में आर्तध्यान, रौद्रध्यान, विषयकषाय, श्रृंगार अलंकार, आरम्भ परिग्रह, वैर विरोध की भावना के त्याग को मनशुद्धि भक्ति कहते हैं।

प्रश्न– 1808 वचन शुद्धि भक्ति किसे कहते हैं?

उत्तर उपरोक्त सद्भावनापूर्वक या दुर्भावना के त्याग पूर्वक यथार्थ वचन उच्चारण करने को वचन शुद्धि भक्ति कहते हैं।

प्रश्न– 1809 कायशुद्धि भक्ति किसे कहते हैं?

उत्तर सूतक पातक के बिना, शारीरिक रोग के बिना, मलमूत्र बाहर न निकल रहा हो, शरीर वस्त्रादि

की शुद्धि को काय शुद्धि कहते हैं।

प्रश्न– 1810 आहार शुद्धि भक्ति किसे कहते हैं?

उत्तर दोषों को टालकर, मन वचन काय की शुद्धि पूर्वक, आत्म साधना के योग्य शुद्ध आहार देने को आहारजल शुद्धि भक्ति कहते हैं।

प्रश्न– 1811–13 द्रव्य किसे कहते हैं? दाता किसे कहते हैं? पात्र किसे कहते हैं?

उत्तर दान पूजा की सामग्री को, शरीर की शुद्धि को आहार जल की शुद्धि को द्रव्यशुद्धि कहते हैं। देने वाले को दाता कहते हैं तथा दाता के द्वारा दी गई वस्तु के ग्रहण करने वाले को पात्र कहते हैं। कभी गृहस्थ किसी कार्य में दाता है तो मुनिजन, सर्वज्ञकेवली, गृह त्यागी, श्रावकजन पात्र हैं और ये किसी कार्य में मुनिजन, सर्वज्ञकेवली, गृहत्यागी दाता हैं तो गृहस्थ भी पात्र हैं अतः प्रसंगानुसार दाता और पात्र में परिवर्तन हो जाता है। जैसे ''कभी गाड़ी नाव पर तो कभी नाव गाड़ी पर।'' जलाशय में गाड़ी नाव पर होती है पर पानी रहित भूमि पर नाव गाड़ी पर होती है। इनका विशेष वर्णन पं. दौलतरामजी कृत छहढाला की सुरक्षाचक्र ज्ञानवर्धिनी प्रश्नोत्तरी टीका की छठवीं ढाल में ऐषणा समिति प्र.– 39–120 तक विस्तार से समझना चाहिए। पृ. 215–236। अनु० आ० श्री वासुपूज्य सागर।

प्रश्न– 1814 किसकी वस्तु का दान देना चाहिए?

उत्तर न्याय नीति से कमाई गई निज की संपत्ति का दान देना चाहिए और दूसरों की संपत्ति का दान नहीं देना चाहिए। कदाचित् दूसरों की संपत्ति देने का प्रसंग आ जाय तो उस मालिक की आज्ञा मिलने पर, कहने पर और मालिक की इच्छानुसार देना चाहिए अपने नाम पर नहीं।

प्रश्न– 1815 किसी दूसरे की सामग्री को दान में देने से क्या दोष है?

उत्तर उसका मन नहीं है और आपने उसकी वस्तु दान में दे दी तो उसका मन दुःखेगा तथा दूसरों का मन दुःखाने से हिंसा पाप होता है तथा वह शुद्ध है या अशुद्ध, भक्ष्य है या अभक्ष्य आपको मालुम नहीं कि किस प्रकार से तैयार की है मालिक की आज्ञा के बिना देने से अनीश्वर नाम का दोष आता है तथा झूठ पाप, चोरी पाप, कुशील पाप और परिग्रह पाप का, मायाचार का भी भी प्रसंग आता है, भय लगा रहता है। लोभकषाय, मानकषाय, माया कषाय की वृद्धि होती है पुष्टि होती है अतः निज की संपत्ति के देने में कोई दोष नहीं आता तथा निज की संपत्ति का, सामग्री का भी दान देते समय अपनी सामर्थ्य का भी ध्यान रखना चाहिए।

प्रश्न– 1816 जिसके पास धन नहीं है तो वह दान ही नहीं दे सकता है क्या?

उत्तर ऐसा नहीं है, अरे भाई तेरे पास में धन नहीं है तो क्या तूँ अपनी आत्मा का उत्थान नहीं चाहता है यदि चाहता है तो जड़ की क्यों चिन्ता करता है? चेतन धन तो आपके पास में है, मन वचन काय आपके पास है, शक्ति आपके पास हैं, विवेक आपके पास है। दानान्तराय कर्म के क्षयोपशम होने पर आपके पास जैसा रूखा सूखा भोजन है, पानी है वह तो शुद्धि पूर्वक दान में दे सकते हैं। दूसरों के घरों में जाकर मान कषाय को छोड़कर मन वचन काय से कार्य में सहायता कर

सकते हैं, इसमें धन की आवश्यकता नहीं है, विवेक की पुरुषार्थ की जरूरत है, शक्ति के अनुसार दान देने में ही श्रेष्ठता है अतः भाग्योदय से जो आपको प्राप्त हुआ है उसको योगों की शुद्धि पूर्वक दान में देना चाहिए अन्यथा वसन्तऋतु में पतझड़ होने के बाद ठूंठ की तरह उस गृहस्थ की अवस्था हो जाती है जैसे ठूंठ से किसी भी पशु पक्षी को छाया नहीं मिलती भूख प्यास नहीं मिटती है इसी तरह इस गृहस्थ से किसी को कोई लाभ सहायता प्राप्त नहीं हो पाती है। कर्तव्यविहीन गृहस्थों की पाप की संतति शान्त नहीं हो पाती न धर्म की प्रभावना होती है किंतु लोभी परिग्रही नाम से बदनाम हो जाते हैं।

प्रश्न– 1817–19 अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत के अतिचारों के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं? किस कारण से उत्पन्न होते हैं?

उत्तर अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत के अतिचारों के पाँच भेद हैं। नामः– 1. सचित्तनिक्षेप 2. सचित्त पिधान 3. परव्यपदेश 4. मात्सर्य 5. काल अतिक्रम। ये अतिचार प्रमाद पूर्वक असावधानी पूर्वक लोभ से अविवेक से कमजोरी से उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न– 1820 सचित्तनिक्षेप अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर अचित्त वस्तु, सुधारी गई वस्तु, छिन्न भिन्न की गई वस्तु, अग्निपक्व वस्तु को सचित्त पत्रादि में रखकर या अनछने पानी से या छने पानी से थाली, गिलास, लोटा, कटोरी आदि धोकर उसमें आहार सामग्री रखकर देने को सचित्त निक्षेप कहते हैं।

प्रश्न– 1821 सचित्त पत्र आदि पर रखकर आहार देने को अतिचार क्यों कहा?

उत्तर जीवों की रक्षा करना धर्म कहा है क्योंकि दया धर्म है और 5वीं प्रतिमा से लेकर आगे तक सभी ने सचित्त वस्तु के सेवन करने का तथा आहार में देने का त्याग किया है तथा वर्तमान में जीव न होने पर भी, योनिभूत जीव होने से जीव विराधना होती है। प्रतिज्ञा भंग होती है। जिह्वा लोलुपता की वृद्धि होती है। असावधानी और अविवेकता होने से दोष कहा है।

प्रश्न– 1822 आजकल तो यह दोष लग नहीं सकता क्योंकि थाली, लोटा, गिलास आदि से काम करते हैं?

उत्तर ऐसा नहीं है, आजकल भी ये अतिचार दोष लगते ही हैं जैसे अनछने पानी से या छने पानी से प्रासुक या गरम किये बिना बर्तन धो लिए, कपड़े गीले कर लिए, हाथ धो लिए और उस ही पात्र से, वस्त्र से या हाथ से आहार दे दिया अथवा आहार सामग्री को लेकर श्रावक दूसरों के घरों में बरसात के समय या बरसात में जा रहा है। तो उस समय बारिस होने से बारिस की बौछारों से बर्तन भीग गये, कपड़ा गीला हो गया और वैसा ही आहार पानी मिला हुआ पात्र को दान में दे दिया तब यह दोष लग जाता है। अपने ही कमरे में तूफान या कोहरे के सहारे पानी की बूंदे आकर आहार सामग्री में मिल गई और ऐसे आहार को पात्र में दे देने को सचित्त निक्षेप आहार कहते हैं। अतः सचित्त पत्ते न होने पर भी उक्त दोष लग जाता है।

प्रश्न– 1823 जब जंगल में आहार देते थे तथा जब ऐसे बर्तन नहीं थे अतः उस समय सचित्त पत्रादि में रखकर देते थे तब यह दोष लगता था?

उत्तर ऐसा नहीं है आजकल भी जब कोई वैद्यराज ने बीमार मुनि आर्यिका आदि को देखकर औषधि बताई कि पान के पत्ते में, तुलसी, अडूसा, नीम, बेल, नींबू के पत्ते, पोदीना, धनिया की पत्ती, पालक पत्ती, मैंथी पत्ती, बथुआ पत्ती, चने की पत्ती, मूली पत्ती आदि औषधि या चटनी आहार में देना, पत्तियां बाजार से या जंगल से मंगा ली, पत्तियों का पानी सूख न पाया या दुकानदार ने, किसान ने, माली ने, मजदूर ने पानी डाला है वह सूख न पाया और आहार में तैयार करके दे दी या उनके अशुद्ध पानी से गीली को ही पानी से धोकर दे दी फिर भी वहाँ के पानी का सम्बन्ध अंश वंश के समान तार, लगाव तो टूटा नहीं सम्बन्ध बना रहा तब वह दोष तो आया ही आया, लगा ही लगा रहा जैसे होटलों में हर किसी के भोजन कर लेने के बाद पानी से धोकर थाल में खिला देते हैं। उसके जूठेपन का सम्बन्ध न टूटने से मद्य मांस का दोष आता है। भयंकर रोगी के जूंठे बर्तन में भोजन करने से रोग के कीटाणु और जहरीली पुद्गल वर्गणाओं सहित जूंठे बर्तनों में भोजनपान करने से निरोगी के शरीर में प्रवेश कर इसको भी रोगी बना देती हैं जिसे संक्रामक रोग वैज्ञानिकों ने कहा है। इसी तरह नाली, गटर आदि बाहर के अशुद्ध पानी से धुले हुए सब्जी फल आदि को उस पानी का सम्बन्ध तोड़े बिना आहार में धोकर देने से दोष आता ही है तथा छने या अनछने पानी से गीले वस्त्रों को धारण कर आहार देने से वही दोष आता है क्योंकि प्रथम तो उस पानी के जीव, फिर शरीर की गर्मी से सम्मूर्च्छन जीव पैदा हुए और मरे तब उस समय दाता श्रावक श्राविकाओं का शरीर को खुजाते हुए वस्त्रों को सम्हालते हुए आहार दान देने से वही दोष आता है।

प्रश्न– 1824 इस प्रकार गृह त्यागी को या गृहस्थव्रती को न देवे किन्तु गृहस्थ व्रती स्वयं तो खा सकता है?

उत्तर यदि आप अंतरंग से वास्तविक व्रती हैं। बारह व्रतों को और प्रतिमाओं को धारण किया है पालन करते हैं तो किसी भी सचित्त त्यागी व्रती को न खिला सकते हैं न स्वयं खा सकते हैं क्योंकि उपभोग परिभोग परिमाणव्रत के अतिचारों में बताया जा चुका है कारण इस व्रत के अतिचार स्वनिमित्तक होते हैं और अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत के अतिचार परनिमित्तक होते हैं। अतः उत्तम फलों की प्राप्ति के लिए व्रतों का निर्दोष पालन करना चाहिए।

प्रश्न– 1825 सचित्तपिधान नाम का अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर सुधारी गई या तैयार आहार की सामग्री को सचित्त पत्ते से ढक कर या कच्चे पानी से धोकर ऐसे थाली, लोटा, गिलास या कच्चे छने, अनछने नल के पानी से गीले कर सामान ढक कर देने को सचित्तपिधान अतिचार कहते हैं।

प्रश्न– 1826–27 यह अतिचार दोष आजकल किस प्रकार से लगता है? यह दोष क्यों कहा?

उत्तर असावधानी से, नासमझ से, कमजोरी से, भय से, लज्जा से, देखादेखी करने से यह दोष लगता है और पात्र की प्रतिज्ञा भंग होती है इस प्रकार यह दोष लगता है। जीव हिंसा होने से, पाप कर्म का आश्रव बंध होने से, परिणाम कलुषित होने से अतिचार कहा है।

प्रश्न— 1828 आजकल दाता लोगों के द्वारा सचित्त गीले कपड़ों से आहार दिया जाने लगा है तो क्या यह अनुचित है या उचित?

उत्तर छने या अनछने, सचित्त जल से गीलेकर कपड़े पहनकर आहार दान देने से सर्वप्रथम शरीर की गर्मी से और पानी की शीतलता से सम्मूर्च्छन जीवों की उत्पत्ति और मरण होने से अहिंसाव्रत घाता जाता है, शरीर में खुजली हो जाती है, गीले कपड़ों में हाथ लग जाने से हाथ भी सचित्त जल से संयुक्त होने के कारण हथेली भी सचित्त हो गई तब सचित्त भक्षण का भी दोष आता है और भी अनेक दोष आते हैं। अतः ऐसा आहार देना अनुचित ही है।

प्रश्न— 1829 परव्यपदेश नामक अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर स्वेच्छा से आहार न देकर दूसरों के कहने पर भय से, लज्जा से, लोभ से, मायाचार पूर्वक नीचा दिखाने के लिए प्रमाद पूर्वक देने को, ख्याति पूजा लाभ की भावना पूर्वक देने, आर्त रौद्रध्यान पूर्वक देने को, अशुभ लेश्याओं के साथ देने को परव्यपदेश नामक अतिचार दोष कहते हैं।

प्रश्न— 1830 परव्यपदेश नाम का अतिचार दोष किस प्रकार से लगता है?

उत्तर जैसे आजकल पिच्छिधारियों के आने पर कमेटी वालों ने मीटिंग की और श्राविकाओं की आहार देने के लिए बारी लगा दी कि इस तारीख को तुमको चौका लगाना है सो यहाँ पर इच्छा न होने पर भी कमेटी में प्रस्ताव के पास होने पर लगाना ही पड़ेगा, आहार कराना ही पड़ेगा अथवा किसी ने कहा कि महाराज आये हैं आप भी चौका लगा ले अथवा किसी भी उत्तम मध्यम जघन्य पात्र को आहार देते समय इधरउधर कौवे की तरह देख रहे हैं, बातें कर रहे हैं, उल्लू की तरह आँख बन्दकर बैठ गये, बच्चों की तरह नींद निकालने लगे, पात्र का हाथ, थाली, कटोरा खाली है तब किसी ने इशारा किया बोलकर कहा कि क्या कर रहे हो, कहाँ देख रहे हो, सो रहे हो, आहार दो, हाथ खाली है, कटोरा थाली खाली है। कुछ दो तब देने लगे तब यह कहलाया परव्यपदेश। प्रमाद पूर्वक, असावधानी पूर्वक दान देने से, उपयोग के हट जाने पर किसी अन्य से संकेत मिलने पर दान देने से परव्यपदेश अतिचार दोष होता है। मन में यहाँ वहाँ के नाना प्रकार के संकल्प विकल्प होने से यह अतिचार दोष लगता है।

प्रश्न— 1831 यह अतिचार दोष क्यों लगता है?

उत्तर मन चंचल होने से, उपयोग की अस्थिरता होने से, कमजोरी, अल्प क्षयोपशम ज्ञान होने से, विवेकहीन होने से, बीमारी होने से, प्रमाद असावधानी होने से, लोभ होने से, विषयकषायों में रमणभाव होने से परव्यपदेश नाम का अतिचार दोष लगता है।

प्रश्न— 1832—33 परप्रेरणा से दान दिया पर दान तो दिया निमित्त कुछ भी हो दान देने को अतिचार दोष क्यों कहा? यदि यह दोष हैं तो कारित भंग को भी अतिचार दोष कहना होगा?

उत्तर प्रतिज्ञा कर पालन स्वेच्छा से निर्मल मन से आत्म कल्याण की भावना से ओतप्रोत होकर किया जाता है क्वचित् कदाचित् प्रथम बार दूसरे के कहने पर दान दिया तो गुण माना जा सकता है

पुनः पुनः प्रेरणा करने पर देना तो दोष ही है क्योंकि पाप के लिए, विषय भोगों के लिए दूसरों के संकेत की चिन्ता नहीं करता, स्वेच्छा से कर्तव्य मानकर करता है और धर्म की कर्तव्य की पालना के लिए परोपदेश की राह देखता है अतः अतिचार दोष ही है। प्रेरणा देने वाला स्वयं करते हुए प्रेरणा दे रहा है अतः उसका गुण है तथा प्रेरणा करने वाला भी यदि स्वयं नहीं देता है, अपने सदाचार, सद्विचार को नहीं देखता है, न समझता है, केवल दूसरों से कराने के पीछे लगा है तो इसका भी दोष ही है क्योंकि स्वकृत कर्तव्य को भूल ही गया है। दूध पीये बिना दूध का स्वाद कैसे आयेगा? इसी तरह स्वयं किये बिना दानपूजा का आनन्द कैसे आयेगा? इस कारण इसका भी दोष ही है किन्तु प्रेरणा मिलने पर कर रहा है इसलिए दोषी ही है क्योंकि उस प्रमादी ने अपना कर्तव्य नहीं समझा, प्रमाद के कारण अपना कर्तव्य खो बैठा इस कारण परव्यपदेश अतिचार दोष कहा गया है।

प्रश्न– 1834 यदि परव्यपदेश अतिचार है तो पर के लिए धर्मोपदेश भी अतिचार दोष कहलाया?

उत्तर परव्यपदेश, परोपदेश, धर्मोपदेश देने वाले का गुण है कर्तव्य है, वात्सल्य प्रभावना अंग है। अपायविचय धर्मध्यान है क्योंकि जब कौवे को खाने के लिए दाना मिलता है तो वह अपने सभी साथियों को भोजन करने के लिए बुला लेता है कि हम अपनी भूख को दाना खाकर मिटा रहे हैं तो हे साथियो! आओ आप लोग भी खाकर भूख मिटा लो। तब क्या धर्मात्मा बनकर भी दीन दुःखी प्राणियों को कर्तव्य के मार्ग में न लगाये तो वह धर्मात्मा कैसा? कौवे से भी गया बीता हो गया। इस कारण उस धर्मात्मा का गुण हुआ धर्म कहलाया और आपका प्रमाद होने से, कर्तव्यविहीन होने से परव्यपदेश अतिचार दोष कहलाया।

प्रश्न– 1835 मात्सर्य अतिचार दोष किसे कहते हैं?

उत्तर राजा उग्रसेन की तरह अहंकार पूर्वक कि मैं ही आहार दूंगा, दूसरा नहीं। मेरे समान दूसरा कोई दाता नहीं तथा दूसरों को नीचा दिखाने के लिए, अपमान निन्दा कराने के लिए और अपना बड़प्पन दिखाते हुए दान देने को मात्सर्य अतिचार दोष कहते हैं।

प्रश्न– 1836–37 मात्सर्य भाव को अतिचार दोष क्यों कहा? यह दानी धर्मात्मा दोष क्यों लगाता है?

उत्तर अहंकार मानकषाय रूप होने से इसे अतिचार दोष कहा है क्योंकि मानकषाय स्वयं पाप रूप ही है। यह कषाय नामधारी दाता को, धर्मात्मा को अधोगति का रावण की तरह पात्र बनाता है तथा मरणकर नाना प्रकार के कष्टों को प्राप्त कराता है। इस कारण दान दाता ऐसे परिणाम बनाता है कारण जो वृक्ष अकड़कर खड़े रहते हैं वे तूफान आने पर या नदी का पूर बाढ़ आने पर जड़ मूल से उखड़कर नष्ट हो जाते हैं, अपना अस्तित्व खो बैठते हैं। स्थान से हटकर उखड़कर बहकर कहीं दूर देशों में जा पहुंचते हैं, मुर्दे जैसे हो जाते हैं। इसी तरह मानकषाय के कारण मानी अपना अस्तित्व खोकर कहीं दूसरे देशों में जाकर मुर्दों के जैसा हो जाता है। अहंकारी मानी बनकर अपने कर्तव्यों में दोष लगाता है।

प्रश्न– 1838–40 मुर्दा किसे कहते हैं? कितने प्रकार के होते हैं? नाम कौन[2] हैं?

उत्तर चेतना शक्तिविहीन शरीर को अथवा कर्तव्य विहीन व्यक्ति को अथवा आवश्यक कार्यविहीन मानव को मुर्दा कहते हैं। मुर्दा के दो भेद हैं। 1. चल चेतन मुर्दा 2. अचल अचेतन मुर्दा। ये दोनों मुर्दा चारों गतियों में होते हैं।

प्रश्न– 1841–43 चल चेतन मुर्दा किसे कहते हैं? अचल अचेतन मुर्दा किसे कहते हैं? कौन मुर्दा अपूज्य है और कौन पूज्य है।

उत्तर जो चेतन प्राणी मिथ्यादृष्टि है, विषयकषायी है, सत्कर्तव्य विहीन है, अन्याय करने वाला है, अभक्ष्यभक्षण करने वाला है, मोक्षमार्ग के विपरीत आचार विचार करने वाला, सम्यक्रत्नत्रय से विपरीत बुद्धिवाला है इसे चलता फिरता चेतन मुर्दा कहते हैं। चेतनता है किन्तु चेतनता का कार्य नहीं कर रहा है इसलिए इसे चल मुर्दा कहते हैं। चेतन आत्मा अपनी आयु पूर्णकर शरीर को छोड़कर नवीन शरीर को ग्रहण करने के लिए चला गया है अतः जीव रहित शरीर अचल अचेतन मुर्दा है। चल मुर्दा उभयलोक में अपूज्य है तथा अचलमुर्दा यदि पापी जीव का है तो यहीं अपूज्य है तथा संयमी मोक्षमार्गी का अचलमुर्दा है तो यहाँ भी पूज्य है और देवों के द्वारा भी पूज्य हैं ऐसा निश्चय करना चाहिए।

प्रश्न– 1844 कैसे पता चले कि यह दाता मानकषाय पूर्वक दान दे रहा है?

उत्तर अपने पास कोई सामग्री है, आहार में देना है, पर अभी कोई देखनेवाला नहीं है तब तक सामग्री नही दे रहा है और जब देखने वाले आये तो उनको दिखाने के लिए कि मैं ऐसी उत्कृष्ट कीमती सामग्री आहार में दे रहा हूँ , मेरी प्रशंसा करेंगे, बड़ा दानी कहेंगे कि इन्होंने मेवा दिया, रस पिलाया आदि। अपनी प्रशंसा सुनकर खूब प्रसन्न होता है, रुपया पैसा दान में निकालता है, बाजे बजवाता है, मिठाईयां फल बांटता है। पूरी के समान फूल जाता है। आपको मालुम है कि पूरी के फूलने का और फूले रहने का समय बहुत कम है तथा पचके रहने का समय बहुत ज्यादा है। जब पाकाचार्य कड़ाई में. पूड़ी डालता है तो पकते समय, सिकते समय पूड़ी फूल जाती है और कड़ाई से निकालने के थोड़ी देर बाद पचक जाती है। ऐसे ही प्रमादी जीव अपनी प्रशंसा सुन थोड़ी देर के लिए फूल जाता है बाद में, थोड़ी देर में अपमानजनक तिरस्कारात्मक वचन सुनकर कितनी दुःख की अवस्था को प्राप्त होता है यह दोनों को अनुभव हो जाता है। अतः मानीदाता सर्वत्र दुःखी होता है।

प्रश्न– 1845 कालातिक्रम अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर प्रमादपूर्वक विषय भोगों में, शृंगार अलंकार में फंसकर आहारदान की बेला को टालकर सामायिक काल में आहार देने को कालातिक्रम अतिचार दोष कहते हैं। समय का उल्लंघन कर आहारदान देने को कलातिक्रम अतिचार दोष कहते हैं।

प्रश्न– 1846 इस कालातिक्रम को अतिचार दोष क्यों कहा?

उत्तर ध्यान का, सामायिक का समय टालकर अर्थात् बाधा उत्पन्न कर पठनपाठन का व्याघातकर सामायिक के समय आहार देने से सामायिक नहीं कर पाया तथा थोड़ा समय मिल भी गया तो

नींद निकालेगा और असमय में आहार देने से भूख प्यास भी मर जाती है। स्वास्थ्य की हानि होती है जिससे मन बैचेन होने के कारण सत्कार्य में स्थिर नहीं हो पाता, प्रतिज्ञा की हानि होने से अतिचार दोष कहा है। गुणों की प्राप्ति, स्थिति, वृद्धि के लिए दान दिया जाता है किन्तु गुणों की प्राप्ति न होने से तथा विराधना होने से दोष कहा है।

प्रश्न— 1847 यह व्रती प्रतिमाधारी दोष क्यों लगाता है?

उत्तर स्वयं ने दूध या मिठाई फल खा लिए, नास्ता कर लिया अब अपने को भूंख नहीं लगी ऐसा समझकर रामायण महाभारत को देखने के लिए, टी.वी. के पास बैठकर देखते रहे अथवा खा पीकर नींद लेने लगे या अन्य प्रकार से किसी कार्यक्रम में लग गये इस प्रकार प्रमाद से, आलस्य से यह अतिचार दोष लगाया जाता है। यदि आजकल व्रती या अव्रती आहार के पहले चाय, नास्ता, दूध पानी नहीं खाये पिये तो समय पर ही आहार दान दिया जाय जिससे पात्र के ध्यानाध्यन, पठन पाठन में बाधा नहीं आयेगी, न स्वास्थ्य बिगड़ेगा तथा दोनों के आवश्यक कर्तव्यों का यथानुकूल पालन होता रहेगा। चाय नास्ता किये बिना, असमय में आहार दिये जाने पर भूख प्यास कैसी होती है, स्वयं को अनुभव हो जायेगा अतः धर्मात्माओं को धर्म और धर्मात्माओं की रक्षा करते हुए दिनचर्या को निभाना चाहिए। समय का ध्यान रखना चाहिए।

प्रश्न— 1848 तीसरे और चौथे शिक्षाव्रत में क्या अंतर है?

उत्तर तीसरा शिक्षाव्रत आत्मगत है इसका पालन अपने लिए करना है और चौथा शिक्षाव्रत आत्मगत और परगत है अपनी प्रतिज्ञा का पालन करते हुए पात्र की प्रतिज्ञा का पालन कराना चाहिए, यही इन दोनों में अंतर है किंतु फल की प्राप्ति स्वयं को होगी पर को नहीं।

प्रश्न— 1849 अंतिम उपसंहार रूप में अणुव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर अप्रत्याख्यानावरणकषाय के उदयाभाव में पापों के एकदेश त्याग को या संयमरूप व्रतों को संकल्प पूर्वक किंचित् पालन करने को अणुव्रत कहते हैं। गृहस्थों के व्रतों को अणुव्रत कहते हैं।

प्रश्न— 1850 गुणव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर अपने जिन आचार विचारों से अणुव्रतों में वृद्धि हो उसे गुणव्रत कहते हैं।

प्रश्न— 1851 शिक्षाव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर अपने जिन आचार विचारों से, दिनचर्या से अणुव्रतों के पालन करने की शिक्षा प्राप्त हो उसे शिक्षाव्रत कहते हैं।

Note- यहाँ तक 1765—1851 पर्यन्त अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत का, विधि, द्रव्य, दातृ, पात्र का, अतिचारों का, अणुव्रत, गुणव्रत, शिक्षाव्रतों का कथन किया।

प्रश्न— 1852 सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर सम्यग्— समीचीन, दर्शन विश्वास को सम्यग्दर्शन कहते हैं। जिस वस्तु का जिस प्रकार का शक्ति को शक्ति रूप में, व्यक्त को व्यक्त रूप में, उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य को उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य रूप में, कर्मों के उदय उदीरणादि दस करणों को उसी रूप में विश्वास करने को अथवा चैतन्य

स्वरूपी आत्मा की वर्तमान में क्या अवस्था है, स्वभाव को स्वभाव रूप में, विभाव को विभाव रूप में, योग्यता को योग्यता रूप में, अयोग्य को अयोग्यरूप में विश्वास करने को सम्यग्दर्शन कहते हैं। विकार त्यागने योग्य है, विकार से आत्मा का पतन होता है, दुःख है, संसार चक्र है, भविष्य में रत्नत्रय से परिणमनकर कर्मों को, संसार भ्रमण को नष्टकर शुद्धरूप से परिणमन करूंगा मैं शक्ति रूप से अनन्त चतुष्टय का स्वामी बनने वाला हूँ, शुद्ध बुद्ध होने की मेरे में योग्यता है इस प्रकार श्रद्धान करने को, विश्वास करने को सम्यग्दर्शन कहते हैं। यह सम्यग्दर्शन युक्त आत्मा अनन्त संसार को छेदकर अर्धपुद्गल परिवर्तन काल के अंदर मोक्ष पा लेता है।

प्रश्न– 1853 यथावत् वस्तु स्वरूप की जानकारी के लिए, विश्वास करने के लिए किस उपाय का सहारा लेना चाहिए?

उत्तर त्रिकाल में वस्तु का स्वरूप क्या है? कैसा था? कैसा रहेगा इस प्रकार वस्तु स्वरूप को समझने के लिए प्रमाण नय और निक्षेप का सहारा लेना चाहिए क्योंकि जिसने प्रमाण नय निक्षेप के द्वारा वस्तु स्वरूप को नहीं समझा है उसको वस्तु स्वरूप की यथार्थ अनुभूति नहीं हो सकती है और वस्तु स्वरूप की अनुभूति गलत होने पर भी सही मालुम पड़ती है तथा सही होने पर भी गलत मालुम पड़ती है क्योंकि स्वर्ण की परीक्षा घिसना, छेदना, तपाना, ताड़ना, बजाना आवाज से इन चार उपायों के द्वारा की जाती है उसी प्रकार पदार्थ की तत्त्व की परीक्षा प्रमाण नय निक्षेप और स्वसंवेदन ज्ञान से की जाती है। अतः चार उपायों से तत्त्व निर्णय करना चाहिए।

प्रश्न– 1854 सम्यग्दर्शन को सुरक्षित रखने के लिए क्या करना चाहिए?

उत्तर सम्यग्दर्शन को सुरक्षित रखने के लिए दोषों को, अतिचारों को टालना चाहिए जिससे सम्यग्दर्शन निर्दोष रह सके।

प्रश्न– 1855–56 सम्यग्दर्शन के अतिचारों के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर सम्यग्दर्शन के पाँच अतिचार हैं। नामः– 1. शंका अतिचार 2. कांक्षा अतिचार 3. विचिकित्सा अतिचार 4. अन्यदृष्टि प्रशंसा अतिचार 5. अन्यदृष्टि स्तव अतिचार। .

प्रश्न– 1857 शंका अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर शंका संदेह को डोलायमान विचारों को वस्तु तत्त्व के संबन्ध में सत्य है या असत्य अस्थिरता परिणाम को शंका अतिचार कहते हैं। यह शंका श्रद्धान के सम्बन्ध में ज्ञान के सम्बन्ध में और चारित्र के सम्बन्ध में उत्पन्न होती है। शंका तीनों का अतिचार है और वही शंका जिसके सम्बन्ध में हो सो वह अतिचार उसीका समझना चाहिए।

प्रश्न– 1858 शंका किन कारणों से उत्पन्न होती है?

उत्तर अल्पक्षयोपशम ज्ञान होने से, स्वयं स्वाध्याय न करने से, निर्णायक बुद्धि न होने से, भयंकर उपसर्ग परीषह होने से, कुसंगति से, सत् संस्कार हीन परिवार होने से, छाया देने वाले रक्षा करने वाले हीन चारित्री होने से शंका अतिचार उत्पन्न हो जाता है अथवा भयकषाय का उदय होने से, धर्म विरुद्ध वार्ता को सुनकर या विरुद्धाकार को देखकर सन्देह को प्राप्त हो जाता है कि

यह सत्य है या असत्य श्रद्धान के विषयों में होने से शंका अतिचार कहा गया है।

प्रश्न— 1859 किन विषयों में शंका उत्पन्न होती है?

उत्तर छह द्रव्यों में, सात तत्त्वों में, नव पदार्थों में, पंचास्तिकायों में, ज्ञेय तत्त्वों में, हेयोपादेय तत्त्वों के विषय में वक्ताओं से प्रवचन सुनकर इनका कहना सत्य है या उनका कहना सत्य है इस प्रकार अस्थिर विचार उत्पन्न होने से शंका अतिचार उत्पन्न हो जाता है।

प्रश्न— 1860 सम्यग्दर्शन का विषय क्या है कि जिसमें यह प्राणी संदेह को प्राप्त हो जाता है?

उत्तर देव शास्त्र गुरु, सात तत्त्व, नव पदार्थ, छह द्रव्य, पंचास्तिकाय, पंचपरमेष्ठी, अपनी निजात्मा, रत्नत्रय धर्म और मोक्षमार्ग में सन्देह करना कि ये सत्य हैं या असत्य, सुख के साधन हैं या दुःख के साधन हैं। इनके माध्यम से संसार में पतन होगा या उत्थान आदि विचारों को शंका संदेह कहते हैं जो थोड़ी देर के लिए हो एकादबार हो तो अतिचार कहलाते हैं पुनः पुनः हो तो अनाचार कहलाते हैं।

प्रश्न— 1861 अतिचार और अनाचार दोष किस कारण से उत्पन्न होते हैं?

उत्तर दर्शनमोहनीय कर्म के अवान्तर भेदों में से सम्यक्त्व मोहनीय देशघाती कर्म प्रकृति के उदय से शंका अतिचार दोष उत्पन्न होता है और सम्यक्मिथ्यात्व जात्यन्तर रूप सर्वघाती तथा मिथ्यात्व दर्शनमोह सर्वघाती कर्मोदय से अनाचार दोष उत्पन्न होता है। अथवा अनाचार स्वरूप भावों के होते ही मिथ्यात्व कर्म उदय में आ जाता है। दोनों ही दोष मोक्षमार्ग के घातक हैं। प्रथम शंका किंचित् घातती है तो दूसरी शंका पूर्ण रूप से घातती है।

प्रश्न— 1862 वस्तु किस प्रकार की है कि जिस पर विश्वास किया जाय?

उत्तर वस्तुतत्त्व अनन्त धर्म वाला है और प्रत्येक धर्म अपने प्रतिपक्षी धर्म सहित हैं तभी तो सापेक्ष धर्म कहा जाता है सापेक्ष धर्म का मतलब है प्रतिपक्ष धर्म सहित। इन सापेक्ष धर्मों की सिद्धि, अनेकान्त धर्मों की सिद्धि स्याद्वाद नय से होती है। जैसे सत् धर्म का प्रतिपक्षी असत्धर्म है, नित्य धर्म का प्रतिपक्षी अनित्यधर्म, शुद्ध धर्म का प्रतिपक्षी अशुद्ध धर्म, एक धर्म का प्रतिपक्षी अनेक धर्म, व्यय का प्रतिपक्षी उत्पाद आदि। यदि इन अनन्त युगलों में से किसी एक युगल में या एक ही धर्म में शंका हुई तो उसके प्रतिपक्षी धर्म में शंका हुई तथा सभी धर्म द्रव्य के साथ तादात्म्य सम्बन्ध और परस्पर में धर्म अविनाभाव सम्बन्ध रखने वाले हैं अतः युगल धर्म में शंका होने से पूर्ण वस्तु में शंका कहलायी और जब वस्तु में शंका होने से, एकांगी दृष्टि होने से एकान्त मिथ्यात्व कहलाया जैसे लोक में एक नेत्रवाला व्यक्ति मंगल कार्यों के प्रारम्भ करते समय सामने आ जाय तो अपशकुन माना जाता है और सामने आ जाने से मंगलकार्य स्थिगित कर दिया जाता है, रोक देते हैं इसी तरह एकान्ती के सामने आने पर एकांगी प्रतिपक्षी धर्म को त्यागकर, छोड़कर अपने ही मोक्षमार्ग में अपशकुन करता हुआ विनाश को प्राप्त होता है।

प्रश्न— 1863 शंका करने से क्या हानि होती है?

उत्तर यदि लोक व्यवहार में व्यापारी और ग्राहक के मन में किसी प्रकार की शंका हो जाय तो व्यापार

नहीं चल सकता। पति पत्नि के मन में शंका हो जाय तो दाम्पत्य जीवन संकट में पड़ जाता है, सुख शरदपूर्णिमा की चांदनी जैसी अवस्था अमावस्या की रात्रि जैसी बन जाती है। मित्रों में संदेह हो जाय तो मित्रता स्थिर नहीं रह पाती, मालिक और नौकर में अविश्वास पैदा हो जाय तो दोनों का जीवन संकट में पड़ जाता है, दोनों का समय स्वर्ग जैसा न रहकर नरकों के नारकियों जैसा बन जाता है। इसी तरह गुरु शिष्य का सम्बन्ध है। इनके मन में परस्पर में संदेह पैदा हो जाय तो दोनोंका आपस में प्रेम वात्सल्य नष्ट हो जाता है और समय आर्तध्यान, रौद्रध्यान से युक्त होकर गुजरने लगता है फिर जिस प्रकार दूध के फट जाने पर, दही बन जाने पर वापिस दूध नहीं बनता उसी तरह गुरु शिष्य का मन परस्पर में संदेह युक्त होने से, विश्वास समाप्त हो जाने से पुनः एकरूप में हो जाना जरा कठिन सा प्रतीत होता है फिर कितने भव व्यतीत हो जाय मालुम नहीं अतः जब लोक में शंका होने से लोक व्यवहार में हानि प्राप्त होती है तो इसी तरह मोक्षमार्ग में मोक्षमार्ग के साधनों में शंका होने से अपना स्वयं का मोक्षमार्ग प्रायः नष्ट हो जाता है। अतः शंका अतिचार से यही हानि है।

प्रश्न– 1864 कांक्षा अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर **रत्नत्रय धर्म को धारणकर रत्नत्रय का फल सांसारिक सुख चाहना, इंद्रपद, राज्यपद, विषय सुख चाहना कांक्षा नाम का अतिचार है अथवा धन चाहना, शादी, विवाह आदि की आकांक्षा करना, पुत्र चाहना, पूजा प्रतिष्ठा चाहना, विषयभोगों की चाहना आदि को कांक्षा अतिचार कहते हैं।**

प्रश्न– 1865 कांक्षा नाम का अतिचार कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर **जब विषय भोगों की सामग्री पर्याप्त नहीं होती है और कषाय का तीव्रोदय होने से मन तृप्त नहीं हो पाता है तब कुछ पाप कर्मों का क्षयोपशम होने पर धर्म धारण कर लिया अथवा लोगों पर प्रभाव जमाने के लिए या जैनों से कुछ प्राप्त करने के लिए जिनधर्म धारण कर लिया और फल प्राप्त होने के बाद धर्म छोड़कर वापिस जहाँ के तहाँ आ गया विषयाभिलाषापूर्वक धर्म पालने से कांक्षा अतिचार उत्पन्न होता है।**

प्रश्न– 1866 कांक्षा की पूर्ति के लिए यह जीव क्या क्या उपाय करता है?

उत्तर **यह दुरात्मना पापी जीव मोक्षमार्ग के साधनों को भोग का, आजीविका का साधन बना लेता है। जैसे चारित्रहीन पंडितों ने पंचकल्याणक प्रतिष्ठाओं को, विधि विधानों को, पूजा पाठ को और यथायोग्य धर्मानुष्ठान क्रियाओं को, प्रवचनों को, ज्ञानदान को, शास्त्र लेखन कार्य को, अनुवाद आदि मोक्षमार्गोंपयोगी कार्यों को, लोभ, माया, मोह के कारण आजीविका का साधन बना लिया है। यह कार्य विषय अतृप्ति के कारण करता है।**

प्रश्न– 1867 समस्त प्रमादी असंयमी कर्मभूमिज प्राणियों का आजीविका के चलाये बिना जीवन निभ नहीं सकता अतः कांक्षा करना क्या बुरा है?

उत्तर **संसारी, मोही, प्रमादी, असंयमी प्राणियों का आजीविका चलाना बुरा नहीं है किन्तु न्यायनीति से चलाना कर्तव्य है, पेटी नहीं भरना है किन्तु पेट भरना है और वह पेट न्याय से भी भर सकते हैं और अन्याय से भी, भक्ष्य पदार्थों से भी भर सकते हैं और अभक्ष्य से भी। अतः इसमें पाप नहीं**

है और है भी। यदि न्यायनीति से पेट भरा तो पाप नहीं है किन्तु अन्याय अनीति से पेट भरा तो पाप ही पाप है परन्तु धर्मकार्य, आत्म कल्याण के लिए किये जाते हैं। अतः त्यागी व्रती जो संयम को पालन कर जगह जगह धर्माचरण का लोप करते हैं, आहार के साधनों को जुटाते हैं, पुनः व्यवस्था को बनाते हैं, धर्म को, मोक्षमार्ग को आजीविका का साधन बनाते हैं, यही कारण है कि आजकल खाने पीने के पीछे धर्म को नहीं गिनते हैं, न गुरु की बात मानते हैं और जब किसी गुरु ने मार्गदर्शन दिया तो समयाभाव के कारण धर्म को छोड़कर चले जाते हैं और मन में आ जाय, लग जाय तो कोढ़ी की तरह, कुष्टी की तरह धर्म को छोड़ देते हैं किन्तु पाप को नहीं छोड़ते हैं यह काल की ही महिमा है, क्योंकि इन प्राणियों को आगे आने वाले दुष्काल में नाना प्रकार के अनिष्ट दुःखों को भोगना है इसलिए ह्रदय की आँख नहीं खोल रहे हैं।

प्रश्न– 1868 यदि मोक्ष के साधनों को भोग का आजीविका का साधन बना लिया तो क्या दोष है?

उत्तर यदि मोक्ष के साधनों को आजीविका का साधन बना लिया तो फिर मोक्ष का क्या साधन होगा? आपको इसका विचार करना होगा।

प्रश्न– 1869 इस विषय में कैसा चिन्तन करे कि जिससे न मोक्षमार्ग बिगड़े न व्यवहार मार्ग बिगड़े सर्वत्र मंगल बना रहे।

उत्तर मोक्षमार्ग पूज्य है तो मोक्षमार्ग के साधन भी पूज्य हैं। अतः इनको आजीविका का साधन नहीं बनाना चाहिए क्योंकि आजीविका भोग और उपभोग स्वरूप है इस आजीविका को मोक्ष का साधन, मोक्षमार्ग का साधन नहीं समझना चाहिए। दोनों कार्यों को परस्पर में मिला देना बुद्धिमानी का कार्य नहीं है। जिस प्रकार जन्म देने वाली माँ पूज्य होती है, आदर सम्मान के योग्य होती है, आजीविका चलाने के लिए माँ नहीं होती। यदि कोई जवान अपनी माँ को शरीर का व्यापार कराकर, उससे धन कमाकर अपनी आजीविका चलाये तो उसे क्या कहेंगे? इसी तरह यदि कोई श्रावक या साधु धर्माचरण को, तप को, दानपूजा को, आजीविका का साधन बना ले तो उसके समान निकृष्ट, पतित, कृतघ्नी और कौन होगा? अतः मोक्षमार्ग धर्माचरण माँ के समान पूज्य है, श्रेष्ठ है, उत्तम है इसलिए इसे भोग का साधन नहीं बनाना चाहिए ऐसा चिंतन करो।

प्रश्न– 1870 समस्त प्रमादी प्राणी जीवों के भोगाकांक्षा के विना व्यापार करना, सर्विस करना, खेती करना आदि हो नहीं सकते तो फिर सभी दोषी हुए?

उत्तर व्यापार करना, धन कमाना, शादी करना, सन्तान पैदा करना, वस्त्राभूषण धारण करना, भोजनपान की इच्छा करना आदि कार्यकलाप इच्छा पूर्वक ही होते हैं अतः सभी कार्य इच्छा पूर्वक होने से सम्यग्दर्शन के अतिचार नहीं है किन्तु धर्म के विषय में श्रद्धान कर उस श्रद्धान का फल विषय सुख चाहना, विषय सुख की सामग्री चाहना, उपाय चाहना सम्यग्दर्शन का कांक्षा नाम का अतिचार है। यह दोष मिथ्यादृष्टि जीवों को नहीं लगता है।

प्रश्न– 1871 विचिकित्सा अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर विचिकित्सा ग्लानि को कहते हैं। मोक्षमार्गियों के मलिन शरीर को अथवा अन्य किसी के भी

मलिन शरीर को देखकर घृणा करने को अथवा मोक्षमार्ग के साधनों में घृणा करने को या साधकों में घृणा करने को विचिकित्सा अतिचार कहते हैं।

प्रश्न– 1872–73 विचिकित्सा अतिचार के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर विचिकित्सा अतिचार के दो भेद हैं। नामः– भावविचिकित्सा अतिचार और द्रव्य विचिकित्सा अतिचार। जमादार, डॉक्टर आदि मलमूत्रादि से घृणा नहीं करते हैं फिर भी यह गुण नहीं है।

प्रश्न– 1874 भावविचिकित्सा अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर मोक्षमार्ग के साधनभूत, संवर निर्जरा तत्त्व के अनुरूप, व्रत उपवास, अणुव्रत महाव्रत, मूलगुण उत्तरगुण आदि नियम संयम व्रतादि, सदाचार सद्विचारों के प्रति अन्तरंग में घृणा भाव बैठाकर मन में छीछी धिक्धिक् के भावों को भावविचिकित्सातिचार कहते हैं।

प्रश्न– 1875 द्रव्य विचिकित्सा अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर शरीर की मलिनता को, मलमूत्र को, कोई असाध्य रोग को बीमारी के कारण शरीर से निकलती हुई दुर्गन्ध को सूंघता हुआ मन मलिन कर नाक सिकोड़ने को, थूँकने को, मुँह को, नाक को, आँख को बन्द कर लेने को, छी छी शब्द उच्चारण करने को द्रव्य विचिकित्सा अतिचार कहते हैं। घृणा करने वाला व्यक्ति स्वयं अपने कर्तव्य से च्युत होता है। संसार में अपना पतन करने वाला माना जाता है और इस घृणा के कारण सामने वाले के गुणों को प्राप्त नहीं कर पाता।

प्रश्न– 1876 यह जुगुप्सा अतिचार किस कारण से उत्पन्न होता है?

उत्तर यह विचिकित्सा अतिचार जुगुप्सा मोहनीय कर्मोदय से उत्पन्न होता है। अनन्तानुबन्धी कषायोदय के साथ ग्लानि अनाचार रूप होकर सम्यग्दर्शन का समूल विनाश कर देती है। अप्रत्याख्यानावरण कषायोदय के साथ जुगुप्सा श्रद्धान के विषय में अतिक्रम, व्यतिक्रम और अतिचार दोष उत्पन्न होते हैं। इन अतिचारों को उत्पन्न करने में मूल कारण दर्शन मोहनीय कर्म है और इसका अवान्तर भेद सम्यक्त्व मोहनीय है तथा इसी तरह सम्यक्त्व मोहनीय के उदय के साथ किस चारित्र मोहनीय कर्म का उदय है उसके और उसकी तीव्रता के अनुसार दोष उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण कषाय और संज्वलनकषायोदय से दोषों को समझना चाहिए।

प्रश्न– 1877 सम्यग्दर्शन के सभी भेदों में ये दोष लगते हैं या किसी विशेष सम्यग्दर्शन में दोष लगते हैं?

उत्तर सम्यग्दर्शन के अनेक भेद होने पर भी सभी सम्यग्दर्शनों में दोष नहीं लगते किन्तु क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन में या वेदक सम्यग्दर्शन में क्वचित् कदाचित् अत्यन्त प्रतिकूल अवस्था के प्राप्त होने पर या भयंकर उपसर्ग परीषह के आने पर अतिचार दोष उत्पन्न होते हैं, शेष में नहीं क्योंकि दर्शनमोह के सत्व के अभाव में या उदय के अभाव में पूर्ण निर्मल, निर्दोष स्वच्छ सम्यग्दर्शन के परिणाम होते हैं अर्थात् कृतकृत्य वेदक सम्यग्दर्शन, उपशम सम्यग्दर्शन और क्षायिक सम्यग्दर्शन में सम्यक्त्व मोहनीय का अभाव होने से, अव्यक्त वेदन से, उदय होने पर भी वेदन न होने से निश्चल अवस्था में चल, मलिन, अगाढ़ दोष, अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार दोष नहीं लगते हैं क्योंकि कारण के अभाव में कार्य नहीं होता ऐसा नियम है।

प्रश्न– 1878 सम्यग्दर्शन में या मोक्षमार्ग में जुगुप्सा करने से क्या हानि है?

उत्तर सम्यग्दर्शन में, मोक्षमार्ग में या मोक्षमार्ग के साधनों में ग्लानि घृणा करने से इन साधनों का समागम प्राप्त न करने से मोक्षमार्ग की तथा इनके गुणों की प्राप्ति नहीं हो सकती है तथा क्वचित् कदाचित् प्राप्ति हो चुकी है तो वह मार्ग और गुण कलंकित होकर नष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार लोक में यदि आप किसी से घृणा करते हैं तो उसके पास जायेंगे नहीं तब आपको उससे या उसके गुणों का लाभ योग कैसे प्राप्त होगा? जब गुणों की प्राप्ति नहीं हुई तो वृद्धि कहाँ से होगी? जैसे आपका रत्न मल में गिर गया तो आप अब यदि मल से घृणा करेंगे तो वह रत्न आपको कैसे प्राप्त होगा? बताओ। नहीं प्राप्त होगा वह तो मल में ही पड़ा रहेगा। इसी तरह आप अब यदि जिस गुरु से घृणा करते हैं या कर रहे हैं या करोगे तो उस गुरु के पास जायेंगे नहीं, सम्पर्क करेंगे नहीं तो उनमें जो व्रत, तप, संयम ध्यानाध्ययन, निर्भयता, निर्लोभता, ख्याति पूजा लाभ की भावना की निरपेक्षता आदि महान गुण हैं वे कैसे प्राप्त होंगे? और आपके पास मूर्खता, अविवेकता, अहंकारता, पंथव्यामोह, पक्षपात, मानकषाय आदि जो ये अनाचार स्वरूप महान दोष हैं उनका निष्कासन कैसे होगा? निराकरण कैसे होगा? अतः जुगुप्सा करने से लौकिक और लोकोत्तर गुणों की प्राप्ति नहीं हो सकती है तथा गुणों के बिना आपका पतन अवश्यंभावी है। यही महान हानि है अतः घृणा मत करो, प्रीति करो।

प्रश्न– 1879–80 अन्यदृष्टि प्रशंसा किसे कहते हैं? ऐसा करने से क्या हानि प्राप्त होती है?

उत्तर जो देव शास्त्र गुरु की आज्ञा के प्रतिकूल आचार विचार वाले ऐसे प्रत्यक्ष दिखने वाले मिथ्यादृष्टि जीव तथा जिन धर्म की विराधना करने वाले नामधारी वेष बनाने वाले साधू और गृहस्थों की कुछ बोलने की कला, तप करने की कला, लोगों को आकर्षण करने की कला आदि गुणों को देखकर मन में प्रसन्न होना हर्ष मानना आदि को अन्यदृष्टि प्रशंसा दोष कहते हैं। मन से पाप की, मिथ्यात्व की अनुमोदना करने से रत्नत्रय की प्राप्ति नहीं होती है और यहीं पर दुर्मरण कर दुर्गतियों में जाकर नाना दुःखों को भोगते हैं। जो सबको मालुम है आज जो बड़ेबड़े उच्चकोटि के विद्वान सिद्धान्ताचार्य सद्गुरु आदि अनेक उपाधियों से विभूषित थे वे अन्त में अस्पताल में सड़ते सड़ते, अशुद्ध दवाईयां खाते पीते मरे, हाय हाय करते मरे तो क्या ऐसे मरण से सद्गति की प्राप्ति हो सकती है? यदि ये शास्त्र ज्ञानी पंडित सही वास्तविक अन्तरंग से ज्ञानी थे तो भले ही सारा जीवन असंयम पूर्वक व्यतीत किया पर अंत में मरण करने के लिए गुरुओं के पास, आचार्यों के पास में जाकर जिनेंद्रवर्णी की तरह या अनेक सद्गृहस्थों की तरह जिनदीक्षा लेकर समाधि पूर्वक मरण करते अभी वर्तमान में ऐसे बहुत श्रावक श्राविकायें हुए हैं जो कम पढ़े लिखे थे वे अपना अन्त समय जानकर, आज्ञाकारी बनकर आचार्यों, मुनियों के पास गणिनी आर्यिकाओं या आर्यिकाओं के पास या किसी त्यागी व्रती के पास में यथावसर जाकर उच्च पद पाकर समाधिमरण किया ऐसे सैकड़ों उदाहरण हैं तथा इसी प्रकार की तैयारी में जगह जगह श्रावक श्राविकायें उम्मीदवार हैं। इस कारण अन्यदृष्टिप्रशंसा अतिचार से अनाचार रूप में परिणमन कर

यह प्राणी इस भव को और अनेक भवों को बिगाड़ता है तथा साथ में रहने वाले अनेकों का जीवन बिगाड़ता है आदि हानियां प्राप्त होती है।

प्रश्न– 1881 अन्यदृष्टियों की मिथ्यादृष्टियों की प्रशंसा यह जीव क्यों करता है?

उत्तर सम्यक्त्व मोहनीय तथा लोभ और मायाकषाय के तीव्रोदय से, श्रद्धान में कमी होने से, समीचीन शास्त्रों का अध्ययन न होने से, कुसंगति होने से, विशेष स्वयं की उपज का ज्ञान न होने से, यहाँ वहाँ का भाड़े के मकान जैसा ज्ञान होने से, गुण दोषों की पहचान न होने से, मूर्खतावश लोभकषाय के कारण मिथ्यादृष्टियों की मन ही मन में प्रशंसा करने लग जाता है, आनन्दित होता है। इससे मिथ्यात्व की आराधना कर सम्यक्त्व की विराधना करता है

प्रश्न– 1882 क्या वैद्यों की, पुलिस की, मंत्रतंत्रवादियों की, ज्योतिषियों की, असंयमी पंडितों की, शिक्षागुरुओं की मन में प्रशंसा कर सकते हैं?

उत्तर जब ये मोक्षमार्ग के बाहर हैं तो इनकी प्रशंसा क्यों? इनमें कोई कोई दुराचारी भी होते हैं, सदाचारी भी होते हैं, मिथ्यादृष्टि भी होते हैं, अन्याय का, अभक्ष्य का सेवन करने वाले हैं, सप्त व्यसनों का सेवन करने वाले हैं अतः ये पत्थर की नाव के समान है अतः इनके प्रति भले ही लौकिक कला गुणों से परिपूर्ण हों तो भी इनके प्रति मन में प्रसन्न होना मिथ्यात्व की अनुमोदना होने से मिथ्यात्व की आराधना सम्यक्त्व की विराधना होती है। अतः नहीं कर सकते हैं।

प्रश्न– 1883 भले ही उक्त पदवीधारी मिथ्यादृष्टि हो पर लोक व्यवहार मानकर आदर सम्मान करने में क्या हानि है?

उत्तर ये मिथ्यादृष्टि जीव है, महान पापी हैं, आत्मघाती, विश्वासघाती हैं, सर्प के समान, बिच्छू के समान आचरण करने वाले हैं। यहाँ लोक व्यवहार मानकर भी नहीं कर सकते हैं क्योंकि यह अतिचार भावात्मक है, वचनात्मक द्रव्यात्मक नहीं। यदि इसको भी वचनात्मक मान लिया तो अन्यदृष्टि स्तव और अन्यदृष्टि प्रशंसा अतिचार में कोई भेद नहीं रह जाता, दोनों एक ही हो जायेंगे। इनके प्रति मन में बहुमान का भाव भय, आशा, स्नेह और लोभकषाय के बिना आ नहीं सकता। इनके साथ आदर सम्मान करना मिथ्यात्वाराधना है हानिकारक ही है।

प्रश्न– 1884 आजकल अनेक साधुवर्ग, आर्यिकायें, त्यागी वर्ग राज्य कर्मचारी नेताओं का सम्मान करते कराते हैं सो यह ठीक है या गलत?

उत्तर इन चारित्रहीन, मांसाहारी, शराबी, जुआरी, सप्त व्यसनी, अन्यायी, अभक्षी भ्रष्ट नेताओं का, भ्रष्टाचरण वाले समाज का, समाज नेताओं और अन्य कार्यकर्ताओं का धर्ममंच पर लाना धार्मिक कार्यक्रमों में उनका आदर सम्मान करना हानिकारक है। तथाकथित इन साधुओं को त्यागीव्रतियों को आ. श्री शान्तिसागरजी महाराज को आदर्श मानकर अपनी दिनचर्या निभाना चाहिए। देखो जब बोम्बे हाईकोर्ट ने जिन मंदिर में हरिजन प्रवेश का कानून पास कर दिया तो कानून को रद्द करने के लिए आ. श्री शान्तिसागरजी महाराज ने अनेक दिगम्बर जैन पंडित और सेठों के विरोध करने पर भी अपने त्याग तप जप के साथ आत्म विश्वास के बल पर सरकार को नियम रद्द करने के लिए बाध्य होना पड़ा, नियम वापिस लेना, रद्द करना पड़ा अतः उनके पद चिह्नों पर

चलने वाले ये साधु वर्ग अपनी प्रशंसा के लिए, ख्याति पूजा लाभ के लिए, भय, आशा, स्नेह और लोभ के कारण हरिजनों को तथा उनके समान आचरण करने वालों को धर्म मंच पर आदर सम्मान कराकर भरपूर प्रसन्न होते हैं। यह धर्ममंच धर्मसभा है, समवशरण है और समवशरण में अनाचारी, दुराचारी, शूद्र प्रवेश नहीं करते, न कर पाते हैं। अतः अनाचारियों को धर्मसभा में बुलाकर आदर सम्मान करना देव शास्त्र गुरु का अवर्णवाद करना है।

प्रश्न– 1885 यदि इन राजनेताओं को साथ में न लिया जाय तो धर्म का प्रचार प्रसार नहीं हो सकता है अतः नेताओं को लाना क्यों आवश्यक नहीं है?

उत्तर दिगम्बराचार्यों ने सम्यग्दर्शन का अंग प्रभावना कहा है प्रचार प्रसार करना नहीं कहा है। आ. श्री समन्तभद्रजी ने कहा है– "अज्ञान तिमिर व्याप्ति मपाकृत्य यथायथम्। जिन शासन माहात्म्य प्रकाशस्स्यात् प्रभावना।।" र.क.श्रा. प्रभावना अंग। 18 श्लोक जो समाज में अज्ञान अंधकार छाया हुआ है वह जिस किसी उपाय से हटाकर जिन शासन की महिमा को प्रकाशित करना उसे प्रभावना अंग कहते हैं किंतु आजकल समाज को सही दिशा बोध देने वाले, आचार्योपाध्याय, साधू, आर्यिकायें, क्षुल्लक, क्षुल्लिकायें, ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी, पंडितवर्ग, सेठवर्ग, पदाधिकारीगण ख्याति पूजा लाभ के चक्कर में पड़कर अपना सर्वस्व खोकर अंधकार में रहकर समाज को अंधकार में रखते हैं। संस्कृत में चर क्रियापद गमन अर्थ में आता है। प्र उपसर्ग पूर्वक चर्‌धातु से प्रत्यय लगाकर प्रचार शब्द बनता है जिसका अर्थ होता है उत्कृष्ट रूप से गमन। कहाँ के लिए? आत्मा के लिए अर्थात् उत्कृष्ट रूप से निज आत्मा में गमन करने को प्रचार कहते हैं। अतः प्रचार पद स्वार्थवाची है और प्रभावना अंग स्वार्थ और परार्थवाची है। इसलिए सूर्य चन्द्र के समान आचार्यों ने प्रभावना को सम्यग्दर्शन का अंग कहा है, प्रचार प्रसार को नहीं।

प्रश्न– 1886 तो फिर प्रचार प्रसार किसका होता है?

उत्तर लोक व्यवहार में प्रचार प्रसार का परार्थवाची अर्थ मानकर राजनेताओं का, कम्पनी का अपना नाम चारों तरफ फैल जाये हमको पहचाने, हमारा व्यापार वृद्धि को प्राप्त हो, माल सप्लाई हो इसलिए प्रचार प्रसार, विज्ञापन निकाला जाता है और अब यह शब्द धर्म में प्रयोग होने लगा है दीपक की तरह, जिस प्रकार दीपक के नीचे अंधेरा होता है और चारों तरफ प्रकाश इसी तरह आजकल जैनों की दशा चल रही है। समाज में पंथवाद का, पक्षपात का, विधवा विवाह जो परस्त्री सेवन, वेश्या सेवन का ही रूप है। बहुओं को जलाना, तलाक देना, दहेज मांगना आदि अनेक अनर्थकारी अन्धकार फैल रहा है। इस पर समर्थ, निष्पक्ष, निस्वार्थ समाज द्वारा बीड़ा नहीं उठाया जाता अतः लौकिक वस्तुओं का, गलत कार्यों का प्रचार होता है तथा नेताओं से सम्मान होने के बाद स्कूल के लिए, धर्मशाला के लिए, आश्रम के लिए, अस्पताल के लिए, मंदिर के लिए, जमीन की, अर्थ सहायता की भावना पूर्वक वार्तालाप करते हैं और व्यक्त भी कर देते हैं। लाभ की भावना, ख्याति की भावना, पूजा की भावना करने के साथ ही ये कार्य किये जाते हैं जो मिथ्याचारित्र स्वरूप है अर्थात् उन नेताओं का सम्मान कर मांगते हैं। सीधा धन जगह भूमि न

मांगकर हम यहाँ यह काम कराना चाहते हैं ऐसा दीन वचन बोलकर मांगते हैं।

प्रश्न– 1887–88 तो क्या धर्ममंच पर राजा, मंत्री, राष्ट्रपति आदि का सम्मान नहीं कर सकते हैं? यदि नहीं कर सकते हैं तो फिर कहाँ करना चाहिए?

उत्तर यदि राजा, मंत्री, राष्ट्रपति आदि सदाचारी हैं, सद्विचारी हैं, देवशास्त्रगुरु के भक्त हैं। मिथ्यात्व अन्याय अभक्ष्य के त्यागी है, व्यसनों के त्यागी हैं तो धर्ममंच पर अपना सहधर्मी मानकर, बोलकर आदर सम्मान कर सकते हैं, मन में प्रसन्न हो सकते हैं। जिनका मिथ्यात्व, अनाचारीपना, अन्याय का, अभक्ष्य का सेवन, सप्त व्यसन सेवन प्रत्यक्ष में दिखाई दे रहा है ऐसे दुराचारियों का, अनाचारियों का धर्ममंच पर आदर सम्मान करना पाप की, मिथ्याचारित्र की अनुमोदना करना है। इन अनाचारियों का सम्मान करना, अनाचार का, दुराचार का सम्मान करना है। आपको यदि जिनधर्म का सही रूप में विश्वास है, यथार्थ अनुभव किया है। वैराग्य युक्त हो जिनधर्म स्वीकार किया है तो सम्यग्दर्शन के अन्यदृष्टि प्रशंसा और अन्यदृष्टि स्तव इन दो अतिचारों पर पुनः पुनः सूक्ष्म दृष्टि से भी चिन्तन करना चाहिए कि हमारे जीवन में इनका कहाँ तक प्रवेश हो गया है या हो रहा है। यदि आप लोग बलात् भय, आशा, स्नेह और लोभ पूर्वक इनका आदर सम्मान करना चाहते हैं तो कार्यक्रमों में दो प्रकार के मंच बनवाना चाहिए। एक धर्ममंच और दूसरा राजमंच। धर्ममंच पर केवल धर्मकार्य, धर्मानुष्ठान और राजमंच पर, लोकमंच पर नाटक, सांस्कृतिक कार्यक्रम, मीटिंग, तथा असंयमीजनों का आदर सम्मान करना चाहिए। अन्यथा नन्हे मुन्ने बच्चे इस रहस्य को न समझ कर मूढ़ता में पड़ जायेंगे। आदर सम्मान की एक और नवीन मूढ़ता जिनधर्म में प्रवेश करती जा रही है। इसमें धर्म कार्य न के बराबर होते हैं।

प्रश्न– 1889 राजमंच किस प्रकार का होना चाहिए और कहाँ पर होना चाहिए?

उत्तर धर्ममंच के समान सुन्दर सजावट वाला होना चाहिए। धर्ममंच से राजमंच कुछ थोड़ा नीचा होना चाहिए। सटा हुआ हो या पृथक् हो, पृथक्करण के वस्त्र आसन अलग हों, परदा लगा हो, धार्मिक कार्यक्रम करते समय परदा खुला हो, और राजमंच के कार्यक्रम होते समय धर्ममंच का परदा बन्द होना चाहिए क्योंकि धर्ममंच पर धार्मिक श्रावक श्राविकायें हो और राजमंच के ऊपर भी श्रावक श्राविकायें भी हो सकते हैं परन्तु राजमंच पर सब प्रकार के नेता, श्रोता आयेंगे। सूटबूट, मोजा पहने, चमड़े के बेल्ट, शराबी, मांसाहारी, व्यभिचारी भी होंगे। लाली लगायें, नेलपॉलिश लगायें होगी, मासिकधर्म से युक्त हो सकती हैं, सूतक पातक वाले भी हो सकते हैं आदि कारणों से युक्त होने के कारण लोकाचार या लोक विनय मानकर, कहकर आदर सम्मान करना चाहिए तथा नवीन पीढ़ी वालों को यह गुप्त रहस्य बता देना चाहिए। अन्यथा मोक्षमार्ग बिगड़ेगा नष्ट होगा सन्तति भी प्रायः कर हर तरह से पतन की ओर चलती चली जायेगी।

प्रश्न– 1890 कहीं पर भी आदर सम्मान करो पुनः पुनः करने से सम्यग्दर्शन का अतिचार बदलकर अनाचार क्यों न बन जायेगा?

उत्तर आपका कहना सत्य है पर हेतु के अनुसार ही गुण और दोषों का, पुण्य और पापकर्मों का आश्रव बंध होता है, केवल व्यापार से नहीं। अन्यथा संसारमार्ग और मोक्षमार्ग में कोई निर्दोष व्यवस्था

नहीं बन सकती अतः अतिचार की भावना ही सीमा का उल्लंघन कर अनाचार हो जाती है।

प्रश्न— 1891—94 भय किसे कहते हैं? कैसे उत्पन्न होता है? कितने प्रकार का होता है? नाम कौन—कौन हैं?

उत्तर डरपोक स्वभाव को, कम्पन, भीरू स्वभाव को भय कहते हैं। अंतरंग में भय कषाय की उदीरणा होने से, अत्यन्त विनाशकारी रूप के देखने से, उसमें मन लगाने से, भय कम्पन उत्पन्न होता है। भय सात प्रकार का, संख्यात, असंख्यात, अनन्त प्रकार का होता है। 1. इसलोक भय 2. परलोक भय 3. वेदनाभय 4. अगुप्ति भय 5. अरक्षक भय 6. मरण भय 7. आकस्मिक भय। यह नेता बड़ा खुंखार है यदि इसका सम्मान नहीं किया तो यह क्या अनर्थ कर डालेगा, अपना सारा व्यापार, लेनदेन चौपट हो जायेगा यह जैसा कहे वैसा कर लो अन्यथा हमारा जीवन, धन, परिवार, सुख व्यवस्था बिगड़ जायेगी। धनादि का, परिवार के सदस्यों का अपहरण भी हो सकता है अतः दुर्व्यवस्था प्राप्त न हो इस भय से संसारमार्ग का, संसारमार्गियों का आदर सम्मान करने को भय कहते हैं और कम्पन का जो आधार होगा या जिसके माध्यम से कम्पन हो सो वही भय का साधन है परन्तु यदि मेरे सातिशय पुण्य का उदय चल रहा है तो मेरा कोई कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता है और यदि पाप कर्म का उदय आ गया है तो लाख बचाने वाले मौजूद हों तो भी कोई भी सुधार नहीं कर सकता है। अतः निर्भय होकर दिनचर्या सम्हालना चाहिए।

प्रश्न— 1895 आशा किसे कहते हैं?

उत्तर हम इन देश नेताओं का आदर सम्मान करेंगे तो भविष्य में हमको धनादि का लाभ होगा, पूजा, प्रतिष्ठा, आदर, सम्मान प्राप्त होगा, मेरी कीर्ति फैलेगी भविष्य में प्राप्त होगा इस भावना से इसे आशा कहते हैं अर्थात् भविष्य में प्राप्त करने की भावना को आशा कहते हैं।

प्रश्न— 1896 स्नेह किसे कहते हैं?

उत्तर— वर्तमान कालीन प्रेम को स्नेह कहते हैं। ये साथी हैं, मित्र हैं, सगे सम्बन्धी हैं, रिश्तेदार नातेदार हैं आदि इनका आदर सम्मान करना चाहिए जिससे हमारे सारे इष्टकार्य सिद्ध हो जायेंगे अन्यथा प्रेम टूट जायेगा सारा कार्यक्रम चौपट हो जायेगा। इनका आदर सम्मान न करने से प्रेम टूटेगा फिर कोई साथी न होगा अतः स्नेह के कारण भी व्यक्ति न्यायनीति को भूलकर, अन्यायपूर्वक आचरण करने से मिथ्यात्वाराधना होती है। जो आजकल प्रत्यक्ष दिख रहा है।

प्रश्न— 1897 लोभ किसे कहते हैं?

उत्तर—सत्यासत्य का, अच्छा बुरापने का, सम्यक्मिथ्या का विचार किये बिना वर्तमान में अनर्गल कार्यकर विषय भोगों में साधनभूत सामग्री प्राप्त करने की भावना को लोभ कहते हैं। हम इन राजनेताओं को या धनवानों का आदर सम्मान करेंगे तो वर्तमान में कुछ मंत्र तंत्रादि मिल जायेंगे, धन वैभव प्राप्त होगा, पूजा प्रतिष्ठा मिलेगी इसलिए सम्मान करना चाहिए। इन चारों से अपना मोक्षमार्ग नष्ट होता है। भय— डर के करना। आशा— भविष्य में प्राप्त करने की आकांक्षा स्नेह— प्रेम से करना लोभ— वर्तमान में विषय सामग्री चाहना। इन चार कारणों से बहिर्दृष्टिवालों का मन से प्रसन्न होना मोक्षमार्ग से पतित होने की भावना है और माध्यस्थ भावधारण करना

उत्कृष्ट भावना है। जो ऊर्ध्वगति के लिए साधनभूत भावना है।

प्रश्न– 1898 अन्यदृष्टि स्तव किसे कहते हैं?

उत्तर–मिथ्यादृष्टियों का वचन से गुणकीर्तन करना, सराहना, प्रशंसा करने को अन्यदृष्टि स्तव कहते हैं जो कथन या जितना कथन अन्यदृष्टि प्रशंसा में किया है उतना ही कथन यहाँ भी जानना चाहिए क्योंकि दोनों ही अतिचार सम्यग्दर्शन के हैं फिर भी अलग अलग हैं।

प्रश्न– 1899 यदि ये दोनों अतिचार अलग अलग हैं तो इनका चिन्तन कैसे किया जाये या अनुभव में आ जाये कि ये अलग अलग हैं।

उत्तर–अन्यदृष्टि प्रशंसा में मन की मुख्यता रहती है और अन्यदृष्टि स्तव में वचन की मुख्यता रहती है यही इन दोनों में अंतर है। प्रथम भावात्मक है तो दूसरा वचनात्मक है। प्रथम कारण है तो दूसरा कार्य है। भावकारण है वचन कार्य है। कहीं कहीं वचन सुनकर फिर परिणाम बने, कुसंगति या मिथ्याशास्त्रों का अध्ययन करने से अतः वचन कारण है और भाव मन कार्य है । स्थूल दृष्टि से जैसा मन में विचार आया वैसा ही उसी समय जिह्वा कण्ठ तालु आदि में कम्पन हुआ जिससे मन का विचार वचनात्मक रूप कार्य में भी परिणमन का सहायक बना, कारण बना। विचार उत्पन्न होते ही वचनकाय का भी व्यापार हो जाता है इस कारण मुख्य और गौण रूप से दोनों में भिन्न भिन्नपना है और अभेद विवक्षा से दोनों एक हो जाते हैं।

Note- यहाँ तक 1852 से लेकर 1899 पर्यन्त सम्यग्दर्शन का स्वरूप तथा अतिचारों का वर्णन समाप्त हुआ।

प्रश्न– 1900–02 सल्लेखना किसे कहते हैं? समाधि किसे कहते हैं? इन दोनों में क्या अन्तर है?

उत्तर–सम्यक्रत्नत्रयपूर्वक काय और कषायों के क्षीण करने को, नष्ट करने को सल्लेखना कहते हैं। किसी भी प्रकार से उपसर्ग परिषह आये या आधि, व्याधि, उपाधि में समता भाव, माध्यस्थ भाव रखने को या सम्यक्रत्नत्रयपूर्वक अपने लक्ष्य बिन्दु पर उपयोग केंद्रित करने को स्थिर ध्यान करने को समाधि कहते हैं। इन दोनों में निषेध और विधि का अन्तर है। समाधिमरण तो सभी मतमतांतरों में मानी गई है जैसे जलसमाधि, अग्निसमाधि आदि। सल्लेखना एकमात्र जैनों में ही मानी गई है। समाधि कारण है और सल्लेखना कार्य है।

प्रश्न– 1903–04 सल्लेखना क्यों धारण की जाती है? सल्लेखना किसके लिए धारण की जाती है?

उत्तर–देवशास्त्रगुरु की साक्षी, पंचों की साक्षी, देवी देवताओं की साक्षी, माता पिता की साक्षी, पति पत्नि में परस्पर में एक दूसरे की साक्षी या स्वयं की साक्षी जो मोक्षमार्ग के अनुरूप आत्मशुद्धि के अनुरूप प्रतिज्ञा की है, यम– नियम स्वीकार किया है। अब इस प्रतिज्ञा को निभाने में शरीर बाधा उत्पन्न कर रहा है, भयंकर उपसर्ग परीषह उत्पन्न हो रहा है, वृद्धावस्था आ चुकी है, भयंकर दुर्भिक्ष अकाल पड़ रहा है इनका प्रतिकार करने पर भी यदि प्रतिकार न हो सके तो अपनी प्रतिज्ञा को परभवमें साथ में ले जाने के लिए आहार पानी के त्याग को सल्लेखना कहते हैं तथा धर्म की रक्षा के लिए सल्लेखना स्वीकार की जाती है।

प्रश्न– 1905 सल्लेखना कब धारण की जाती है?

उत्तर भयंकर उपसर्ग आ जाये, अकाल पड़ जाये, शरीर अत्यन्त शिथिल हो जाये, भयंकर रोग उत्पन्न हो जाये, इनको दूर करने का प्रयास करने पर भी ये दूर न हो सकें तब रत्नत्रय धर्म की रक्षा करने के लिए आहार पानी के त्याग को, विषयकषायों के त्याग को, आरंभ परिग्रह के त्याग को, शरीर धन परिवार मकान दुकान से ममत्व के त्याग को तथा ऐसे विकट प्रसंग के आने पर सल्लेखना धारण की जाती है। ''उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रूजायां च निःप्रतीकारे। धर्माय तनुविमोचन माहुः सल्लेखना मार्याः।।'' 122 आ. समन्तभद्र र.क.श्रा. प्रतिकार करने पर भी जिसका प्रतिकार नहीं हो पा रहा है भयंकर उपसर्ग होने पर, अकाल पड़ने पर, भयंकर असाध्य रोग के होने पर, वृद्धावस्था के आने पर, धर्म की रक्षा करने के लिए आहार पानी आदि समस्त प्रकार से अंतरंग विकार और बाह्य सामग्री का त्याग करना चाहिए।

प्रश्न– 1906 सल्लेखना को निर्दोष पालने के लिए क्या उपाय करना चाहिए?

उत्तर सल्लेखना व्रत धारण करने के बाद, नियम स्वीकार करने के बाद, कुछ ऐसे कारण पद विरुद्ध, धर्म विरुद्ध हुए जिनको दूर करना चाहिए इन परिणामों को दूर किये बिना सल्लेखना व्रत निर्दोष नहीं पलता और इन परिणामों का नाम अतिचार है ये अग्नि और वज्र के समान हैं जिस प्रकार अग्नि से समस्त ईंधन जलकर राख हो जाता है या वज्रपात से विशाल पर्वत, पत्थर की शिला, वृक्ष, मकान दुकान चूर चूर हो जाते हैं उसी प्रकार इन अतिचारों से सल्लेखना धर्म, अभ्यास किया हुआ तप त्याग, ज्ञान, दानपूजा आदि सद्धर्म नष्ट हो जाते हैं।

प्रश्न– 1907–08 सल्लेखनाव्रत के अतिचारों के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर सल्लेखनाव्रत के अतिचारों के पाँच भेद हैं। नामः– 1. जीविताशंसा 2. मरणाशंसा 3. मित्रानुराग 4. सुखानुबन्ध 5. निदानबंध।

प्रश्न– 1909 जीविताशंसा अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर समाधिमरण का नियम धारण करने से पहले भयंकर जिसका प्रतिकार करने पर भी निराकरण नहीं हो पा रहा है ऐसे कोई उपसर्ग परीषह के आने पर, दुर्भिक्ष अकाल पड़ने पर, शरीर अत्यन्त शिथिल होने पर जिससे व्रत पालन करने में, ध्यानाध्ययन करने में विघ्न बाधायें उपस्थित हो रही हैं उस समय समाधिमरण स्वीकार करने के बाद उपसर्ग आदि का निवारण हो गया, सेवा करने वाले मिल गये, स्वास्थ्य भी ठीक हो गया, भोजन पान पर्याप्तावस्था में इच्छानुकूल प्राप्त होने लगा अब भाव बने कि थोड़ा और जीवित रहते, यहाँ का आनंद लेते तथा सभी से मनभर मनोरंजन करते अतः सल्लेखना करने से क्या मिलेगा? ये सहायक नहीं मिलेंगे, न ऐसी सुख सुविधा मिलेगी इस कारण अभी मेरा मरण न हो तो अच्छा है, जो आहार पानी का और भी अनेक प्रकार की सामग्री का त्याग किया था अब पुनः चालू कर लें तो अच्छा होगा अन्यथा पछताना होगा आदि विचारों को जीविताशंसा जीने की इच्छा नाम का अतिचार दोष कहते हैं।

प्रश्न– 1910 इस प्रकार के परिणाम सल्लेखना लेने के बाद क्यों उत्पन्न होते हैं?

उत्तर शरीर में, परिवार में, रिश्तेदारों में, नातेदारों में, विषयभोगों में, चेतन अचेतन मिश्र सामग्री में गाढ़ प्रेम होने से और मरण से भय होने के कारण जीवन की आकांक्षा उत्पन्न हो जाती है।

प्रश्न– 1911 मरणाशंसा अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर कुछ इन्द्रियजन्य विषयसुख में कमी आने पर, सामग्री अनुपलब्ध होने पर, स्वास्थ्य बिगड़ जाने पर, अपमान तिरस्कार होने पर, कामना की पूर्ति में बाधा उपस्थित होने पर, पदवी छिन जाने पर, धनादि के विनाश होने पर, आज्ञाकारियों के वियोग होने पर किन्तु अपने जीवन में किसी प्रकार का संकट नहीं, उपद्रव नहीं, व्रत नियम संयम का पालन अच्छी तरह से हो रहा है फिर भी कुछ शारीरिक वेदना से घबड़ा कर, नाना प्रकार की प्रतिकूल अवस्थाओं के सामने आने पर मरने की इच्छा करने को मरणाशंसा अतिचार कहते हैं।

प्रश्न– 1912 इस प्रकार मरण के परिणाम क्यों उत्पन्न हो जाते हैं?

उत्तर विषयसुख के ध्वंसक कारणों के मिलने पर, तत्सम्बन्धी अपहरणकर्ताओं के मिलने पर, इनके वियोग होने पर, इनके बिना जीवन कैसा आदि अनुभव होने पर तथा अपना जीवन अधूरा जैसा अनुभव कर मरण के विचार उत्पन्न हो जाते हैं।

प्रश्न– 1913 देशसैनिक समाज की, प्रजा की, देश की रक्षा करने के लिए अपना जीवनदान देने को तैयार रहते हैं तो उनका यह अतिचार दोष क्यों नहीं?

उत्तर यदि वे देशसैनिक सम्यग्दृष्टि हैं, मिथ्यात्व अन्याय और अभक्ष्य के त्यागी है, धर्म की दृष्टि है, धर्म और धर्मायतन की रक्षा के लिए कटिबद्ध हैं, असमर्थ की रक्षा करना क्षत्रिय धर्म है किन्तु सल्लेखना धारण करने के बाद कष्ट से भयभीत होकर मरने का विचार करें तो अतिचार है। रणक्षेत्र में केवल मरने की इच्छा का नाम अतिचार नहीं है, वह तो अनाचार है।

प्रश्न– 1914 संथारा ग्रहण करना, सल्लेखना, समाधिमरण करना आत्महत्या है आत्मघात होने से, करने से अक्षम्य अपराध नहीं है क्या?

उत्तर यदि लोकेषणा है, पूजा प्रतिष्ठा प्रशंसा की भावना पूर्वक, भोगवासना पूर्वक, संथारा ग्रहण किया है तो अवश्य ही अक्षम्य अपराध हैं किन्तु संसार बंधनों से, कष्टों से, अनादिकालीन कर्मबन्धन से छूटने के लिए, आत्मशुद्धि के लिए संथारा आदि स्वीकार किया है, आहार पानी, औषधि, सेवा आदि का त्याग किया है कि मेरे आत्मधर्म की, की हुई प्रतिज्ञा की रक्षा हो तो वह आत्महत्या नहीं किंतु क्षत्रियधर्म है, वीरों का धर्म है, कायरों का धर्म नहीं, कायरता नहीं है। क्योंकि देश की, राज्य की, प्रजा की, समाज की और धर्म की रक्षा करने के लिए देश सैनिक या सत्संगठन, सदस्यगण अपना जीवनदान देने को तत्पर रहते हैं और जीवनदान दे देते हैं तो वह आत्महत्या नहीं कहा, अपराध नहीं कहा किन्तु धर्म कहा तो धर्मात्माओं ने आत्मधर्म की रक्षा के लिए मरण स्वीकार किया तब वह अपराध कैसे कहा जाये? वह तो महान आत्मधर्म है।

प्रश्न– 1915 एक राजा असमर्थ राजा पर बिना अपराध के चढ़ाई करने जा रहा है तो क्या यह अपराध अतिचार रूप है या अनाचार रूप?

उत्तर यह समर्थ राजा का अन्याय है, अनाचार है, अत्याचार है क्योंकि कमजोर की रक्षा करना इसका कर्तव्य था, धर्म था किन्तु अपने क्षत्रियधर्म का पालन न कर और परेशान करने चल दिया इसलिए यह अत्याचार है, अनाचार है, पाप रूप ही है। अक्षम्य अपराध है। यह अपराध धर्मदृष्टि से भी गलत है और राज्यनीति से भी गलत है। लोक में बदनामी भी होती है।

प्रश्न– 1916 आक्रमणकर्ता के सामने आने पर उसका प्रतिकार कर सकते हैं क्या?

उत्तर आक्रमणकर्ता के सामने आने पर, अपने और उसके बलाबल का विचार कर, न्यायनीति का विचार कर प्रतिकार कर सकते है। सर्वप्रथम मित्रता बनाना श्रेष्ठ है। यदि इस उपाय से काम नहीं बने तो जैसा प्रसंग हो वैसा करना चाहिए क्योंकि गृहस्थ विरोधी हिंसा का त्यागी नहीं होता है। कमजोर पर, असमर्थ पर शस्त्र चलाना, दबाना यह भी क्षत्रिय धर्म नहीं है किन्तु पाप है अधर्म है अक्षम्य अपराध है।

प्रश्न– 1917 असमर्थ की, देश की, समाज की रक्षा करने के लिए मर जाना क्षत्रिय धर्म है तब तो यह गुण कल्याण करने वाला कहलाया पाप नहीं?

उत्तर असमर्थ आदि की रक्षा करने के लिए मर जाना क्षत्रिय धर्म है, आत्म धर्म नहीं है, लोक में गुण है, पाप नहीं। इसलिए जब धर्म धारण कर जीवन से हताश होकर मरने की इच्छा को अतिचार कहा है तो जहाँ मोक्षमार्ग के अनुरूप धर्म न हो वहाँ समाधिमरण का अतिचार कैसे कहा जाय? वह तो धर्म और धर्म की रक्षा के बिना मरण के विचार आत्महत्या है। अक्षम्य अपराध है।

प्रश्न– 1918 यदि मरण की इच्छा नहीं है तो समाधिमरण करने वाला आहारपानी का त्याग क्यों करता है?

उत्तर मरने की इच्छा अवश्य है पर दृष्टि मरने की न होकर आत्मधर्म की, प्रतिज्ञा की रक्षा करने की है वह तो रत्नत्रय धर्म की रक्षा करने की सोच रहा है। रक्षा के उपाय में क्या करना पड़ता है वे सब कार्य उसी के अन्तर्गत आ जाते हैं। त्यागी व्रती ने सल्लेखना व्रत धारण करने वाले ने केवल मरण करना प्रधान हेतु नहीं बनाया है किन्तु वहाँ प्रधान हेतु धर्म की रक्षा करना बनाया है इसलिए दोष नहीं है। अतः जब देशसैनिक देश की रक्षा के लिए अपना जीवन दान देते हैं तो वे अपराधी नहीं हैं। तब आत्मधर्म की, की हुई प्रतिज्ञा की रक्षा के लिए, धर्म से सम्बन्धित वचनों की रक्षा के लिए, निस्वार्थ, निष्कपट भावों से आहार पानी, सेवा, पराधीनता का त्याग करना अपराधीपना कैसे? अर्थात् विषय कषायों के आधीन होना ही अपराध है, आत्महत्या है।

प्रश्न– 1919 मित्रानुराग अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर समाधिमरण की प्रतिज्ञा करने के बाद मित्रों को याद करना, मित्रों को यादकर अपने व्रत से विह्वल हो उठना, घबराना, हाय मित्र, हाय मित्र कर आकुलव्याकुल होना, परस्पर में एक साथ मिलकर अथवा अकेले ही मानस प्रत्यक्ष पूर्वक मित्र का आलिंगन करते हुए, चुंबन करते हुए, पूर्व के सांसारिक, व्यापारिक भोग सम्बन्धी, आरम्भ परिग्रह सम्बन्धी, शृंगार अलंकार सम्बन्धी नामोच्चारण करते हुए अब कहाँ मिलोगे? कब मिलोगे? कैसे मिलोगे आदि विचारकर व्रत शिथिल होने को मित्रानुराग अतिचार कहते हैं।

प्रश्न– 1920 मित्र किसे कहते हैं?

उत्तर जो चन्द्रमा में चांदनी के समान, सूर्य में प्रताप और प्रकाश के समान सदा निरन्तर सुख दुःख में साथ निभाये, सुख में सुखी, दुःख में दुःखी हो उसे मित्र कहते हैं अन्यथा जो सुख में सुखी और दुःखी अवस्था में साथ छोड़ दे वह यम का दूत है, मित्र नहीं, ठग है, स्वार्थी है।

प्रश्न– 1921 मित्रों के प्रति अनुराग को अतिचार दोष क्यों कहा?

उत्तर मित्रों से प्रेम को, मित्रों की याद करने को, संगति करने को अतिचार नहीं कहा है किन्तु मित्रों के साथ जो विषयभोग भोगे हैं, सांसारिक पाप कर्म किये हैं उनकी पुनः भोगने की इच्छा उत्पन्न हो सकती है, निदान आर्तध्यान बन सकता है जिससे आत्म साधना की जगह आत्मविराधना भी हो सकती है, रौद्रध्यान भी बन सकता है इस कारण इतने समय तक जो तप त्याग का अभ्यास किया है, व्रत का पालन किया है वह सब दुर्भावना आने से नष्ट भ्रष्ट हो जायेगा इसलिए मित्रानुराग को अतिचार कहा, पाप कहा। अन्यथा यदि ध्यानाध्ययन के लिए, धर्मसाधना के लिए, दीक्षा आदि त्याग के लिए, दानपूजा, यात्रा धर्मानुष्ठान के लिए याद कर रहा है तो वह हानिकारक नहीं, गुणकारक है।

प्रश्न– 1922 यदि ऐसा है तो मित्रानुराग को गुण कहना चाहिए, दोषदायक नहीं?

उत्तर यदि मित्र की याद धर्म कार्य के लिए, धर्म में प्रवेश, वृद्धि और रक्षा के हेतु की जा रही है तो गुण ही है, दोष नहीं किन्तु यदि विषय भोगों के हेतु याद किया है तो अवश्य ही हानिकारक है दोषदायक है। अन्तरंग हेतु के अनुसार ही बाह्य कार्यकारण कलापों की संज्ञा हो जाती है। यदि मित्रों की याद विषयभोगों का हेतु बनाया है तो पाप है और धर्म का हेतु है तो गुण है ऐसा निश्चय करना चाहिए। अतः हेतु के अनुसार ही मोक्ष मार्ग, संसार मार्ग की व्यवस्था बनती है।

प्रश्न– 1923 सुखानुबन्ध अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर समाधिमरण का नियम करने के पहले जो इंद्रिय सुख का अनुभव किया था वह चाहे स्पर्श का हो, स्वाद का हो, गन्ध का हो, देखने का हो, सुनने का हो पुनः इसी सुख को प्राप्त करने के लिए लालायित होने को सुखानुबन्ध अतिचार कहते हैं।

प्रश्न– 1924–26 सुख किसे कहते हैं? वह सुख कैसे प्राप्त होता है? वह सुख किस प्रकार का है?

उत्तर सु– सुन्दर अच्छा। ख– इंद्रियों का। इन्द्रियों के द्वारा स्पर्श से, स्वाद से, सूंघकर के, देख करके, सुन करके जो मन आनन्द का, हर्ष का, प्रसन्नता का अनुभव करे उसे सुख कहते हैं। यह परिभाषा संसारी मोही प्राणियों के लिए है। अरहन्तों के, सिद्ध भगवन्तों के इंद्रियां नहीं हैं तब उनके सुख नहीं होना चाहिए पर ऐसा नहीं है क्योंकि सुख के विनाश के लिए कोई भी प्राणी तप, ध्यान, साधना नहीं करता। फिर भी अरहन्त, सिद्धों के अनन्त सुख कहा है जो क्षायिक भाव स्वरूप है और क्षायिकभाव का अन्त होता नहीं, सुख उत्पन्न होता है इस कारण सादि तथा अन्त को समाप्ति को प्राप्त न होगा, इस कारण अनंत वह उनका सुख सादि अनन्त भंग से युक्त है। सु– सुन्दर अच्छा। ख– आकाश अर्थात् आकाश के समान निर्मल स्वच्छ सीमातीत अनन्त

स्वाधीन स्वतंत्र जो है वह अनन्तसुख, आत्मसुख जो सिद्धों में, अरहन्तों में पाया जाता है यह सुख इंद्रियातीत है, अविनाशी है, सीमातीत है। यह सुख क्षायिक भावस्वरूप है इस सुख में इंद्रियों की, इंद्रिय विषय सामग्री की आवश्यकता नहीं है, स्वभाव से उत्पन्न होता है। इंद्रियजन्य सुख की प्राप्ति सातावेदनीय कर्मोदय से, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय कर्म के क्षयोपशम से तथा राग रूप मोहनीय कर्मोदय से होती है अथवा अघातिया कर्म के भेद स्वरूप पुण्योदय से इंद्रिय सुख की तथा विषय सामग्री की प्राप्ति होती है। बाह्य सामग्री के मौजूद रहने पर भी तदनुकूल उपयोग है तो सुख का अनुभव हो सकता है यदि उपयोग प्रतिकूल है तो सुख का अनुभव नहीं होगा। इस कारण इंद्रियजन्य सुख कर्माधीन है, दुखमिश्रित है, अंतसहित है, पाप का बीज है, दुर्गति का साधन है, आत्मा को मलिनता प्रदान करने वाला है, आकुलतामय है।

प्रश्न– 1927 सुखानुबन्ध को अतिचार क्यों कहा जबकि सुख आत्मा का स्वभाव गुण है?

उत्तर यहाँ जिस सुख का कथन अतिचार रूप में किया जा रहा है वह सुख आत्मा का स्वभाव न होकर विभाव पर्याय है कर्मोदयजन्य होने से औदयिक भाव है इसलिए औदयिक भाव विकार स्वरूप होने से अतिचार कहा है। यह सुख नवीन बन्ध कराने वाला है आकुलतारूप है किन्तु जो सुख आकाश के समान आत्म स्वरूप कहा है वह अतिचार नहीं है गुण है। पुनः इंद्रियजन्य सुख में लालसा अतिचार कहा है क्योंकि यह लालसा दुःख को उत्पन्न करने वाली है।

प्रश्न– 1928 निदान अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर सल्लेखना व्रत लेने के बाद किसी श्रावक श्राविकाओं के या अन्य किसी के शारीरिक या बाह्य सौन्दर्य को देखकर यह मेरे को प्राप्त हो, इसी भव में प्राप्त हो, परभव में प्राप्त हो इसे निदान अतिचार कहते हैं क्योंकि यह समाधि उत्कृष्ट फल को देने वाली है परन्तु निदानबन्ध से हीन फल को प्राप्त करने की इच्छा होने से अतिचार दोष कहा है।

प्रश्न– 1929 निदान आर्तध्यान और निदान अतिचार में क्या अन्तर है?

उत्तर निदान आर्तध्यान चारों गतियों में समस्त प्राणियों के होता है और निदान अतिचार सल्लेखना व्रतधारी चतुर्थ गुणस्थानवर्ती अविरत सम्यग्दृष्टि, पंचम गुणस्थानवर्ती देशव्रती जीवों के, पतन के सम्मुख महाव्रती मुनियों के भी होता है क्योंकि सल्लेखना व्रत का निदान अतिचार कहा है और सल्लेखना व्रत कर्मभूमिज मनुष्य और तिर्यंचों के होता है।

प्रश्न– 1930 निदानशल्य और निदान अतिचार में क्या अन्तर है?

उत्तर निदान शल्य चुभन स्वरूप है और निदान अतिचार स्थिर स्वरूप है। निदान शल्य समस्त पंचेंद्रिय जीवों के हो सकती है अथवा चारों गतियों के प्राणी स्वामी है। निदान अतिचार राग और द्वेष परिणामों से होता है। प्राप्त करने की इच्छा और बदला चुकाने की भी भावना हो सकती है किन्तु निदान अतिचार सल्लेखना व्रत के बाद उत्पन्न होता है। निदान शल्य सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि भव्य अभव्य जीवों के होती है किन्तु निदानातिचार भव्य सम्यग्दृष्टि व्रती और सल्लेखनाव्रतधारी जीवों के होता है। यही अंतर है तथा और भी अंतर हो सकते हैं।

प्रश्न– 1931 सल्लेखना के समय शृंगार अलंकार युक्त श्रावक श्राविकाओं को पास में आना क्यों मना किया जाता है?

उत्तर समाधिके समय नाना प्रकारके वस्त्रालंकार युक्त श्रावक श्राविकाओं को इसलिए मना किया जाता है जैसे बच्चों के सामने खिलौने के समान, विषय भोगों की सामग्री सामने आने पर, दिखने पर, दिखाने पर यह मेरे को चाहिए या मेरी है ऐसा विचार कर मन लालायित हो उठता है, रोने लगते हैं। इसी तरह सल्लेखना व्रत लेने के बाद नाजुकता आ जाती है, बालक के समान बुद्धि हो जाती है अतः निदान भाव बन सकते हैं इसलिए वस्त्रालंकार युक्त श्रावक श्राविकाओं को, अन्य जिस किसी को भी मना किया जाता है कारण मन बिगड़ने से सारा जीवन बिगड़ जायेगा क्योंकि निदान आर्तध्यान और निदान अतिचार विषय सामग्री को देखने सुनने आदि से उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न– 1932–35 सभी टोटल अतिचार कितने हैं? इनका कौन कौन त्याग करता है? क्या फल पाता है? कहाँ तक जाता है?

उत्तर अणुव्रतों के 25 अतिचार, गुणव्रतों के 15 अतिचार, शिक्षाव्रतों के 20 अतिचार, सम्यग्दर्शन के 5 अतिचार, सल्लेखना के 5 अतिचार इस प्रकार ये सब 70 अतिचार हुए। इन सभी अतिचारों को पंचमगुणस्थान वाला अणुव्रती, दर्शन प्रतिमा से लेकर उद्दिष्ट त्याग नामक ग्यारहवीं प्रतिमा तक का श्रावक श्राविकायें क्षुल्लक क्षुल्लिकायें त्याग करते हैं। संख्यातगुणी, असंख्यातगुणी कर्मों की निर्जरा सम्यक्त्वाचरण तथा संयमाचरण का पालन करने वाला करता है। नवीन पापकर्मों का संवर और भविष्य के लिए सातिशय पुण्यकर्मों को बांधता है। स्थिरता पूर्वक शरीर को छोड़कर उत्कृष्ट समाधि पूर्वक मरणकर सोलहवें स्वर्ग में 22 सागर की आयु पाकर वहाँ के दिव्य भोग भोगकर, मरणकर वहाँ से यहाँ मनुष्य होकर, दीक्षा ग्रहण कर, तपकर, कर्मों को क्षयकर मोक्षपद प्राप्त कर लेता है। यदि अचरमशरीरी है, कुछ संसार बाकी है, शेष बचा है तो उत्कृष्ट वैमानिक देवों में तथा उत्तम मनुष्यों में भ्रमणकर अन्त में मोक्ष पाता है।

Note- इस प्रकार 1900 से 1935 तक सल्लेखनाव्रत और स्वामी तथा अतिचारों का वर्णन समाप्त हुआ। यहाँ तक 998 से 1935 तक दर्शन प्रतिमा, व्रत प्रतिमा का कथन, परिभाषा, भावना और अतिचारों का वर्णन समाप्त हुआ।

प्रश्न– 1936–39 तीसरी प्रतिमा का नाम क्या है? स्वरूप क्या है? स्वामी कौन है? कितने बार करना चाहिए?

उत्तर तीसरी प्रतिमा का नाम सामायिक प्रतिमा है। यथाजात रूप, नग्न रूप, दिगम्बर मुनि के समान मुद्रा धारण कर, निर्विकार होकर, पूर्व दिशा या उत्तर दिशा से प्रारम्भकर, पूर्वदिशा, दक्षिणदिशा, पश्चिमदिशा और उत्तर दिशा में अर्थात् सर्वप्रथम पूर्व दिशा में खड़े होकर कृतिकर्म कर समस्त धर्मायतनों को नमस्कार कर, कायोत्सर्ग कर, नारियल के आकार जैसी अंजुलि बांधकर पूर्व से उत्तर और उत्तर से दक्षिण की ओर घुमाकर इस प्रकार तीन बार आवर्त कर, नमस्कार, वन्दना करना चाहिए। इस तरह चारों दिशाओं में चार नमस्कार, चार कायोत्सर्ग और बारह आवर्त करना चाहिए फिर खड़े होकर या बैठकर आत्म चिन्तन कर, तीर्थयात्रा कर, वंदनकर नाना

जिनबिम्बों का मन से दर्शन, चिन्तन, द्रव्य, तत्त्व, पदार्थ और अस्तिकायों का चिन्तन, द्रव्य गुण पर्यायों का चिन्तन, बीजाक्षरों का चिन्तन, परमेष्ठियों का चिन्तन, गुणस्थान, जीवसमास, मार्गणास्थानों का चिन्तन मनन करना चाहिए। इस प्रकार सामायिक प्रतिमा के स्वामी गृहत्यागी और गृहरागी दोनों प्रकार के श्रावक श्राविकायें हैं। दिन में सामायिक तीनवार या अनेकवार करना चाहिए। वारिषेणकुमार, सेठ सुदर्शन के समान अपने भावानुसार रात्रि दिन भी कर सकते हैं कोई दोष नहीं है क्योंकि जब कर्मों को बांधने का, पापकर्म या क्रियाकर्म हमेशा करते हैं तो कर्मों का क्षय करने का काम भी हमेशा करना चाहिए अतः कोई दोष नहीं है।

प्रश्न– 1940 सामायिक किस प्रकार से करना चाहिए?

उत्तर प्रातः काल उठकर सर्वप्रथम अपने स्थान पर ही अपने हाथ की दोनों हथेलियों को मिलाकर देखने से, हस्तरेखाओं के मिल जाने से सिद्धशिला का आकार बन जाता है। आठ अंगुलियों के 24 पोरे होने से गदेली के सामने भरतक्षेत्र के 24 तीर्थंकरों का और पिछले भाग में ऐरावतक्षेत्र के 24 तीर्थंकरों का ध्यान करो। बाद में दोनों हाथों की आठ अंगुली और दो अंगूठे ये दस पूर्व विदेह के और फिर पृष्ठ भाग के दस अपर विदेह के 20 तीर्थंकरों का चिन्तन करना चाहिए। फिर बाद में अपनी शय्या छोड़कर लघुशंका अथवा दीर्घशंका कर हाथ पैर, मुँख धोकर या स्नानकर क्योंकि भोगी गृहस्थ का शरीर है। नग्न होकर या अन्य श्रावक श्राविकाओं का परिवार का संचरण चालू हो गया है तो शुद्ध वस्त्र धारणकर एकान्त स्थान में, मंदिर में, श्मशान में, पर्वत में, जंगल में, नदी में, तालाब में, वृक्ष की कोटर में यथायोग्य कहीं पर भी जाकर खड़े होकर या बैठकर शुद्ध होने के योग्य अपनी आत्मा का ध्यान करना चाहिए अथवा अपनी साधनानुसार जहाँ कहीं पर भी ध्यान कर सकते हैं। दृढ़ धर्मी के लिए कहीं पर भी बाधा नहीं आती।

प्रश्न– 1941 किस प्रकार से आत्मा का ध्यान करना चाहिए?

उत्तर सर्वप्रथम पूर्व दिशा में खड़े होकर या बैठकर मनवचनकाय से शुद्ध हो कर और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की शुद्धिकर, चत्तारिदण्डक बोलकर, 9 बार णमोकार मंत्र का जाप कर, 24 तीर्थंकरों को और समस्त धर्मायतनों को भाव पूर्वक नमस्कार कर, हाथ जोड़कर, तीन आवर्तकर, नमस्कार कर फिर इसी प्रकार पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर में कृतिकर्म करना चाहिए। इसके बाद जितने समय तक मन में आकुलता उत्पन्न न हो तब तक आत्मध्यान, आत्मचिन्तन करना चाहिए। यह सामायिक दिन में सूर्योदय का सन्धि काल, प्रातः काल, मध्याह्नकाल और सांयकाल का सन्धि काल, आधा काल पूर्व का तथा बाद के आधे काल तक निराकुल होकर तत्त्व चिन्तन करना चाहिए। समस्त ज्ञेय पदार्थों का बिना, मिलावट किये बिना, हीनाधिक किये बिना यथावत् जिस प्रकार वस्तु का शुद्ध या अशुद्ध स्वरूप है उसका उसी रूप में चिन्तन करना चाहिए। किसी एक विषय को केंद्र बिन्दु बनाकर उपयोग स्थिरकर सर्वप्रथम नयों का सहारा लेकर बाद में उसका भी त्यागकर नयपक्षातिक्रान्त अवस्था को प्राप्त करना चाहिए। यदि प्राप्त न हो रही हो तो उस अवस्था को प्राप्त करने के लिए निर्ग्रन्थपद, मुनिपद धारण कर चिन्तन ध्यान करना चाहिए। जिस प्रकार पक्षी आकाश में सर्वप्रथम पंखों को उत्थान पतन के द्वारा वेगभर लेता है बाद में पंखों के कम्पन को रोककर सीधा आकाश में तैरता है। उसी तरह प्रारम्भ दशा में सावलम्बन ध्यान का

चिन्तन कर बाद में बिना विकल्प के निरालम्बन ध्यान करना चाहिए। इस ध्यान से नवीन पाप कर्मों का आश्रव बंध न होकरसंवर होता है, सातिशय पुण्य प्रकृतियों का आश्रव बंध होता है, पूर्वबद्ध कर्मों की संख्याात गुणी असंख्यात गुणी निर्जरा होती है, स्वास्थ्यलाभ और आत्मशुद्धि की प्राप्ति होती है इससे लोकव्यवहार में आदरसम्मान, पूजा प्रतिष्ठा प्राप्त होती है।

प्रश्न– 1942 कृतिकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर करने योग्य कार्यों को कृतिकर्म कहते हैं जिनके द्वारा बांधे गये कर्म नष्ट किये जायें या आत्मशुद्धि की प्राप्ति हो उसे कृतिकर्म कहते हैं। जैसे चत्तारि मंगल पाठ बोलकर, अड्ढाइज्जदीव दो समुद्देसु पाठ बोलना, फिर कायोत्सर्ग, फिर थोस्सामि चतुर्विंशति तीर्थंकर स्तुतिपाठ बोलना नमस्कार आदि करने को कृतिकर्म कहते हैं क्योंकि इन कार्यों में मन स्थिर होने से कर्मों की विशेष निर्जरा होती हैं। नवीन कर्मों का संवर होता है।

प्रश्न– 1943 ध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर किसी भी शुद्ध और अशुद्ध वस्तु में तथा इन्हीं की द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा द्रव्य, गुण, पर्यायों में, उत्पाद व्यय ध्रौव्य में मन केंद्रित करने को, स्थिर कर लेने को ध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 1944–46 ध्यान के स्वामी कौन हैं? ध्यान किस क्षेत्र में होता है? ध्यान कितने समय तक होता है?

उत्तर समस्त संसारी प्राणी, भव्य अभव्य, सैनी असैनी, त्रस स्थावर, एकेंद्रिय से लेकर पंचेंद्रिय पर्यन्त, चारों गतियों के समस्त जीव और अरिहंत सिद्ध परमेष्ठी भी ध्यान के स्वामी हैं क्योंकि ध्यान के अनेक भेद प्रभेद हैं। कोई न कोई ध्यान समस्त प्राणियों में पाया जाता है, सभी ध्यान सभी जीवों में पाये जाते हैं ऐसा मत समझना किन्तु समस्त प्राणियों में संसारी और मुक्त जीवों में कोई न कोई ध्यान अवश्य पाया जाता है। यह ध्यान समस्त लोकाकाश में स्थित सूक्ष्मबादर, पर्याप्त अपर्याप्त, छद्मस्थ और केवलियों के होता है। वज्रवृषभ नाराचसंहनन वालों के सातवें नरक तक जाने के लिए तथा ऊर्ध्वलोक में सर्वार्थसिद्धि विमान तक और मोक्ष में जाने के लिए अन्तर्मुहूर्त काल तक के लिए होता है यह ध्यान वज्रवृषभनाराच संहनन सहित चरम शरीरी उत्कृष्ट परिणामों के धारक महाव्रतधारी, आर्यखण्डोत्पन्न, आर्य नामधारी, उच्चगोत्री, उच्च आचार विचार वाले, निर्दोष व्रतों के पालन करने वाले दिगम्बर निर्ग्रन्थ मुनियों के होता है। जो मणिप्रभा के समान है अथवा छहों संहनन वालों के अपने अपने वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम होने पर उत्तम मध्यम और जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक ध्यान होता है।

प्रश्न– 1947 इन ध्यानों का सामान्यतया क्या फल है?

उत्तर कुछ ध्यानों का फल संसार भ्रमण है तथा कुछ ध्यानों का फल संसार भ्रमण की मर्यादा कर सीमा बांधना है और कुछ ध्यानों का फल संसार भ्रमण रोकना है तथा कुछ ध्यान का फल संसार का अंत करना और मोक्ष प्राप्त कराना है।

प्रश्न– 1948 ध्यान क्या संहननवालों के या बिना संहनन वालों के भी होता है?

उत्तर हाँ दोनों के अवश्य ही होता है। यदि चतुर्गति में भ्रमण करना है तो तीव्र आर्तध्यान रौद्रध्यान होगा या संसार भ्रमण को नष्ट कर मोक्ष प्राप्त करना है तो परम उत्कृष्ट शुक्लध्यान संहनन धारियों के ही होता है। बिना संहनन के देव नारकियों के ऐसा ध्यान नहीं होता।

प्रश्न– 1949–51 संसार में क्या ऐसे भी प्राणी हैं जो बिना संहनन के ध्यान करते हैं? सिद्ध भी ध्यान करते हैं क्या? सिद्धों में ध्यान है?

उत्तर हाँ अवश्य है। जो संहनन के अलावा भी ध्यान करते हैं जैसे देव, नारकी, एकेंद्रिय जीव, आहारक ऋद्धिधारी और सिद्ध भगवंत संहनन के अभाव में ही ध्यान करते हैं तथा ध्यान होता है। ये जीव न साक्षात् मोक्ष के लिए ध्यान करते हैं, न चतुर्गति भ्रमण करने के लिए करते हैं। नारकी जीव नरक में, देवपद, भोगभूमि, मोक्ष, एकेंद्रिय पर्याय, विकलत्रय पर्याय और असैनी पंचेद्रिय जीवों में, सूक्ष्म जीवों में, लब्ध्यपर्याप्तक जीवों में पैदा नहीं होते हैं। देव भी देवों में, नारकियों में, मोक्ष में, भोगभूमिजों में, विकलत्रयों में, असैनी पंचेंद्रिय तिर्यंचों में, अग्निकाय, वायुकायिक जीवों में, सूक्ष्मजीवों में, लब्ध्यपर्याप्तक जीवों में पैदा नहीं होते हैं। एकेंद्रिय जीव देव नारकी, भोगभूमिज, कुभोगभूमिजों में जन्म धारण नहीं करता, मोक्ष प्राप्त नहीं करता है क्योंकि उक्त जीवों के उक्त पर्यायों में उत्पन्न होने के योग्य ध्यान परिणाम ही उत्पन्न नहीं होते हैं तथा सिद्ध भगवन्तों के स्वभाव से च्युत न होने के लिए, संसार में पतन न होने के लिए और स्वस्वभाव में स्थिर रहने के लिए ध्यान होता है। सिद्ध भगवन्त बिना संहनन के अपने स्वरूप में स्थिर रहते हुए ध्यान पर्याय से परिणमन करते रहते हैं। अनन्तानन्तकाल व्यतीत हो जाने पर भी ध्यान पर्याय से च्युत न हुए हैं, न हैं, और भविष्य काल में च्युत न होंगे। अतः सिद्धों में ध्यान है।

प्रश्न– 1952 औदयिकादि पाँच भावों में से किस भाव से कौन सा ध्यान होता है?

उत्तर आर्तध्यान रौद्रध्यान औदयिकभाव है। धर्मध्यान क्षायोपशमिक भाव है। शुक्लध्यान औपशमिकभाव क्षायिकभाव हैं। ध्यान चारित्र गुण की पर्याय नैमित्तिक भाव होने से पारिणमिक भाव नहीं है।

प्रश्न– 1953–54 ध्यान का क्या फल है? ध्यान के कितने भेद हैं?

उत्तर मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषायोदय से युक्त आर्तध्यान और रौद्रध्यान से चतुर्गतिरूप संसार में भ्रमण होता है। मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय के अभाव में आर्तध्यान,रौद्रध्यान केवल पापकर्म को बांध कर संसार में रोककर रखते हैं। पूर्ण धर्मध्यान और शुक्लध्यान के आदि के तीन पायों से संसार की मर्यादा कम होती है क्रमशः मोक्षमार्ग में गमन करते करते मोक्ष की निकटता आती रहती है और चौथे शुक्लध्यान के अंतिम पाये से मोक्ष की प्राप्ति होती है अर्थात् आदि के दो ध्यानों से संसार की मर्यादा बढ़ती जाती है, संसार की सीमा नहीं बन पाती है। मध्य के ध्यानों से संसार की सीमा बन जाती है। मोक्ष की निकटता प्राप्त या संसार भ्रमण का किनारा प्राप्त होता है और अंतिम शुक्लध्यान के अन्तिम पाये से संसार का अंत या मोक्ष की प्राप्ति होती है अथवा आर्तध्यान और रौद्रध्यान से आश्रव बंध होता है। मध्य के 7 ध्यानों से संवर और निर्जरा तत्त्व की प्राप्ति होती है तथा योगों के अभाव होने पर तथा व्युपरतक्रियानिर्वृत्ति शुक्लध्यान से एकमात्र पूर्ण संवर पूर्ण निर्जरा तत्त्व की तथा सुंदर द्रव्यमोक्ष और भावमोक्ष की

प्राप्ति होती हैं। ध्यान सामान्य की अपेक्षा एक प्रकार का, विशेष की अपेक्षा से शुद्ध और अशुद्ध ध्यान दो प्रकार का, शुद्ध, अशुद्ध और मिश्रध्यान की अपेक्षा तीन प्रकार का, आर्त, रौद्र, धर्मध्यान और शुक्लध्यान के भेद से चार प्रकार का है। इन्हीं के अवान्तर भेद सोलह हो जाते हैं। अर्थपर्याय की अपेक्षा और ज्ञेयज्ञायक संबंध की अपेक्षा संख्यात, असंख्यात और अनन्त भेद हैं।

प्रश्न— 1955 सामान्य की अपेक्षा ध्यान किसे कहते हैं जो एक प्रकार का है?

उत्तर अनन्त धर्मात्मक अखण्ड वस्तु में मन को स्थिर कर लेने को अथवा योग की चंचलता के अभाव को ध्यान कहते हैं यह सिद्धों में होता है अथवा द्रव्य गुण पर्याय का, गुणस्थान, जीव समास, मार्गणा, संसार मोक्ष, त्रस स्थावर, भव्य अभव्य भेद न करके अखण्ड रूप से चिन्तन करने को सामान्य ध्यान कहते हैं जो एक रूप है।

प्रश्न— 1956—57 विशेष की अपेक्षा शुद्धध्यान किसे कहते हैं? इसके स्वामी कौन से जीव हैं?

उत्तर मोहनीय कर्म का उदयाभाव रूप क्षय की अपेक्षा, मोहनीय कर्म का उदय और सत्त्व के क्षय की अपेक्षा, घातिकर्मों के क्षय की अपेक्षा, समस्त कर्मों के क्षय की अपेक्षा एकदेश शुद्धात्मा में अथवा पूर्णरूप से शुद्धात्मा में योग और उपयोग के स्थिर होने को शुद्ध ध्यान कहते हैं। इसके स्वामी उपशान्तमोही, क्षीणमोही सयोगकेवली अयोगकेवली और सिद्ध परमेष्ठी हैं।

प्रश्न— 1958—59 अशुद्धध्यान किसे कहते हैं? इसके स्वामी कौन से जीव हैं?

उ़त्तर आठों कर्मोदय से युक्त, भावकर्म और नोकर्मों से युक्त, पूर्ण अशुद्धावस्था में, विषय कषायों से परिपूर्ण अशुद्धात्मा में, अशुद्धभावों से सहित होकर, अशुद्ध रूप परिणमन कर, स्थिर होने को अशुद्धध्यान कहते हैं। इसके छद्मस्थ रागी, प्रमादी, असंयमी जीव स्वामी हैं।

प्रश्न— 1960—1961 मिश्रध्यान किसे कहते हैं? इसके स्वामी कौन से जीव हैं?

उत्तर मिथ्यात्व विषयकषायों के समान, दुर्लेश्याओं के समान, असंयम के समान पूर्ण रूप से न तो अशुद्ध है और पूर्ण वीतरागियों के समान न शुद्ध है उसे मिश्रध्यान कहते हैं। इसके स्वामी मोक्षमार्गस्थ चौथे गुणस्थान से लेकर दसवें गुणस्थान तक के सरागी सम्यग्दृष्टि जीव हैं।

प्रश्न— 1962—63 शुद्धध्यान का दूसरा नाम क्या है? इसके स्वामी कौन से जीव हैं?

उत्तर शुद्धध्यान का दूसरा नाम ही शुक्लध्यान है। इसके स्वामी छद्मस्थवीतरागी उपशान्तमोही और छद्मस्थवीतरागी क्षीणमोही मुनि, सर्वज्ञ सर्वदर्शी और सिद्ध भगवन्त प्रभु हैं।

प्रश्न— 1964—65 अशुद्धध्यान का दूसरा नाम क्या है? इसके स्वामी कौन हैं?

उत्तर आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान को अशुद्धध्यान कहते हैं। ये आर्तध्यान और रौद्रध्यान पाँचवें गुणस्थान तक तथा निदान आर्तध्यान के बिना शेष तीन आर्तध्यान के स्वामी प्रमत्तसंयत गुणस्थान तक के जीव हैं और चारों गतियों के समस्त प्राणी स्वामी हैं।

प्रश्न— 1966—67 मिश्रध्यान का दूसरा नाम क्या है? इसके स्वामी कौन हैं?

उत्तर मिश्रध्यान का दूसरा नाम धर्मध्यान है। इसके स्वामी अविरत सम्यग्दृष्टि से लेकर सूक्ष्मसाम्पराय

नामक दसवें गुणस्थान तक के सरागी सम्यग्दृष्टि जीव हैं। चौथे गुणस्थान के योग्य धर्मध्यान के स्वामी चारों गतियों के सम्यग्दृष्टि जीव हैं। पंचम गुणस्थानवर्ती जीव धर्मध्यान के स्वामी मनुष्य और तिर्यंच हैं तथा आगे के गुणस्थानों के योग्य धर्मध्यान के स्वामी मुनिजन हैं।

प्रश्न– 1968 इस धर्मध्यान के स्वामी मिथ्यादृष्टि अभव्य जीव क्यों नहीं जबकि ये मूलगुण, उत्तरगुण, अणुव्रत, महाव्रत और षडावश्यकों का पालन करते हैं। तपश्चरण भी करते हैं फिर मिथ्यादृष्टि जीव स्वामी क्यों नहीं हैं?

उत्तर मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषायोदय से कलुषित परिणाम वाले मिथ्यादृष्टि जीवों के ये उत्कृष्ट सत्कार्य, धर्मध्यान के, मोक्षमार्ग के अंग स्वरूप मोक्षमार्ग के साधक न होकर बाधक बन जाते हैं। संसारमार्ग के साधक बन जाते हैं जैसे स्वादिष्ट पौष्टिक दूध जहर के संसर्ग से जहर के समान प्राणहर्ता बन जाता है। इसी तरह ये धर्म के अंग मिथ्यात्व और विषयकषायों के संसर्ग से संसार के साधक, दुःख के साधक बन जाते हैं। अतः धर्मध्यान के स्वामी मिथ्यादृष्टि जीव नहीं है किन्तु सम्यग्दृष्टि जीव ही धर्मध्यान के स्वामी हैं ऐसा बता आये हैं क्योंकि जिनके पर्याय धर्म होगा वे ही धर्मध्यान करेंगे जिनके पर्याय धर्म नहीं हैं वे कैसे चिंतन करेंगे?

प्रश्न– 1969 ध्यान अंतरंग तप है अथवा अंतरंग तप का ध्यान अंतिम भेद है फिर इसे कुध्यान दुर्ध्यान क्यों कहा?

उत्तर ध्यान अंतरंग तप अवश्य है परन्तु विषय कषायों से मिश्रित होने के कारण आत्मा के अहित का साधक बन जाता है। आश्रव बंध स्वरूप होने से, संसार रूपी फल को देने वाले होने से आर्त ध्यान रौद्रध्यान को दुर्ध्यान कुध्यान कहा है। इन्हीं को कुतप भी कहा है।

प्रश्न– 1970 ध्यान के जो चार भेद बताये हैं वे किस किस प्रकार के नाम वाले हैं?

उत्तर ध्यान के चार नाम हैं – आर्तध्यान 1 रौद्रध्यान 2 धर्मध्यान 3 और शुक्लध्यान 4।

प्रश्न– 1971–72 आर्तध्यान किसे कहते हैं? इसे अशुभध्यान क्यों कहा?

उत्तर जब मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी आदि कषायोदय से विषयकषायों में, असंयम में, शृंगारालंकार में, आरम्भ परिग्रह में परिणमन करने से परिणामों में जो आकुलता विकलता, हाय हाय उत्पन्न होती है उसे आर्तध्यान कहते हैं तथा कष्ट का साधन होने से अशुभ कहा जाता है।

प्रश्न– 1973–74 इसके कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर इसके चार भेद हैं। नामः– 1. इष्टवियोगजार्तध्यान 2. अनिष्टसंयोगजार्तध्यान 3. वेदनाआर्त ध्यान 4. निदान आर्तध्यान।

प्रश्न– 1975–77 इष्ट किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर जो कामभोग के लिए अत्यन्त प्रिय हो, अपने मनोनुकूल हो, आसक्ति को बढ़ाने वाला हो, जो अपनी ओर खींचनेवाला हो उसे इष्ट कहते हैं। दो भेद हैं। लौकिक इष्ट और अलौकिक या लोकोत्तर इष्ट।

प्रश्न– 1978–79 लौकिक इष्ट किसे कहते हैं? लोकोत्तर इष्ट किसे कहते हैं?

उत्तर जो विषयभोगों में, सांसारिक कार्यों में, आरम्भ परिग्रह में, शृंगारालंकार में, व्यापार में, वैर विरोध में लेन देन में सहायक हो, आजीविका सम्बन्धी कार्यों में अति या सामान्य सहायक हो उसे लौकिक इष्ट कहते हैं तथा जो मोक्षमार्ग में, आत्मसाधना में, आत्मसुखशांति में सहायक हो या मोक्षमार्ग को दर्शानेवाले पंच गुरु हों उन्हें अलौकिक या लोकोत्तर इष्ट कहते हैं।

प्रश्न– 1980 यहाँ किस इष्ट से प्रयोजन हैं?

उत्तर यहाँ लौकिक इष्ट से प्रयोजन है क्योंकि संसार फलदायक आर्तध्यान का प्रकरण है।

प्रश्न– 1981 यहाँ लोकोत्तर इष्ट से क्यों प्रयोजन नहीं है?

उत्तर नहीं, क्योंकि अलौकिक इष्ट मोक्षमार्ग का साधन है और यहाँ कथन दुर्ध्यान का चल रहा है। तथा अलौकिक इष्ट आर्तध्यान रौद्रध्यान का कारण नहीं क्योंकि सूर्योदय अन्धकार की उत्पत्ति का कारण नहीं होता है किन्तु प्रकाश का कारण है। इसी तरह लोकोत्तर अलौकिक इष्ट संसार का कारण नहीं है किन्तु मोक्ष का कारण शाश्वत आत्मसुख का कारण है।

प्रश्न– 1982 इष्ट वियोगज आर्तध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर विषय भोगों में, कषायों की पुष्टि में सहायक सामग्री के वियोग होने पर पुनः मिलन आलिंगन करने के लिए जो मन में संकल्प विकल्प, आकुलता व्याकुला उत्पन्न होती है उसे इष्टवियोगज आर्तध्यान कहते हैं अथवा विषय भोगों में, तत्सम्बन्धी सामग्री में, भावीकाल में बाधा उत्पन्न न हो, वियोग विच्छेद न हो, सदा हमेशा पूर्णिमा की चांदनी के समान अवस्था चलती रहे अर्थात् विच्छेद होने पर पुनः मिलन के विचारों को या भविष्य में कभी वियोग न हो हमेशा पास में बनी रहे उसे इष्ट वियोगज आर्तध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 1983 स्पर्शेंद्रियजन्य इष्ट वियोगज आर्तध्यान कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर स्पर्शेंद्रिय के अनुकूल विषयों में बाधा उत्पन्न होने पर जो मन में विकलता घबराहट उत्पन्न होती है उसे स्पर्शेंद्रियजन्य इष्ट वियोगज आर्तध्यान कहते हैं जैसे स्पर्शेंद्रिय के आठ विषयों में या किसी भी एकाध विषय में मन रममाण हो रहा है तब उस समय उस रममाण अवस्था में किंचित् प्रतिकूलता अनुभव में आने पर जो मन में चपलता हुई उसे स्पर्शेंद्रियजन्य आर्तध्यान कहते हैं। जैसे स्पर्शेंद्रिय के कोमल विषय में मन लग रहा है उस समय किंचित् भी कठोरपना स्पर्श आ गया तब मन में किरकिराहट आने लगी कि यह कठोर है वैसा कोमल मुलायम अच्छा था अथवा चिकनेपन में, लचीली अवस्था में हाथ फेरते हुए मन हर्षित हो रहा था तब रूखापन बीच में आ गया उसका अनुभव होने से द्वेष परिणाम हुआ और चिकनेपन के लिए पुनः मन लालायित हुआ घी तेल आदि चिकने पदार्थ के लिए मन आकुलित होने लगा तब वह स्पर्शेंद्रिय के चिकने विषय के वियोग में आर्तध्यान कहलाया। इसी तरह सर्दी से घबराहट हो, गर्मी के लिए मन ललचाने लगा या गर्मी से घबराकर ठण्डी हवा, पानी के लिए मन ललचाने लगा तब यह आर्तध्यान कहलाया। इसी तरह हल्का भारी के सम्बन्ध में समझना चाहिए। मायाकषाय, लोभकषाय, हास्यरति, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसक वेदोदय से विषयभोगों में मन रममाण हो रहा है किंतु भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, वीर्यान्तराय कर्मोदय से स्पर्शेंद्रिय के विषयों में बाधा उत्पन्न होती

है, कमजोरी आती है अर्थात् इष्ट सामग्री का वियोग होता है या भोग उपभोग में बाधा उत्पन्न होती है और भोगने की भी शक्ति नष्ट हो जाती है इस कारण स्पर्शेंद्रिय जन्य इष्ट वियोगज नाम का आर्तध्यान उत्पन्न होता है। यह ध्यान एकेंद्रिय जीवों के कम मात्रा में होता है और आगे आगे अनंतगुणा अनंतगुणा अधिक मात्रा में बढ़ता जाता है तथा सभी जीवों के होता है।

प्रश्न– 1984 रसनेंद्रियजन्य आर्तध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर रसनेंद्रिय के स्वाद के माध्यम से चखने के सम्बन्ध में उत्पन्न हुई विकलता को, पुनः प्राप्त करने की आकुलता को रसनेंद्रिय जन्य इष्ट वियोगज आर्तध्यान कहते हैं। यह ध्यान द्वीन्द्रिय जीवों से लेकर आगे के समस्त प्रमादी जीवों के उपयोगानुसार उत्पन्न होता है।

प्रश्न– 1985 रसनेंद्रिय जन्य इष्टवियोगज आर्तध्यान कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर रसनेंद्रिय का विषय सामान्यतया पाँच या छह प्रकार का खट्टा, मीठा, कडुवा, कषायला और चिरपरा। इन पाँचों रसों के अवान्तर भेद मात्रानुसार असंख्यात लोक प्रमाण हैं फिर भी मोटे तौर पर सैकड़ों भेद तो अपने अनुभव में आ सकते हैं। भोजन करते समय भोजन सामग्री में नमक पर्याप्त मात्रा में है किन्तु बीच में किसी ने दूसरी वस्तु मिला दी या पुनः नमक ज्यादा डाल दिया तब पुनः पूर्व के नमक की याद कर और अब के नमक की कम या ज्यादा होने से उत्पन्न हुई मन में व्याकुलता को कि पहले का स्वाद इष्ट था, अच्छी मनोनुकूल रुचि थी इत्यादि विचारों को स्वाद से उत्पन्न इष्ट वियोगज आर्तध्यान कहते है। इसी तरह घी तेल दही आदि स्वादों में मन लग रहा है परन्तु स्वाद के बीच में किसी ने दूसरी वस्तु मिला दी या हटा दी तब मनोनुकूल स्वाद के लिए मन अधीर हो उठने को अर्थात् स्वादिष्ट रस पाँच प्रकार के और पौष्टिक रस छह प्रकार के रसना के विषयों में से किसी भी एक विषय में या समुच्चय रूप सभी विषयों में प्रतिकूलता के सद्भाव में अनुकूलता के अभाव में पुनः अनुकूल विषय प्राप्त करने के लिए यह उत्पन्न होता है अथवा मन आलू की सब्जी चाय आदि के लिए आकुलित है कि हमको यह खाना है या पीना है किन्तु मिल नहीं रहा है या मिल रहा है तो मन के स्वाद के प्रतिकूल के सद्भाव में, अनुकूलता के अभाव में, पुनः अनुकूल विषय प्राप्त करने के लिए यह उत्पन्न होता है। अपने मनोनुकूल सब्जी चाय आदि के लिए आकुलित परिणाम रसनाजन्य इष्टवियोगजार्तध्यान है अथवा चाहिए कुछ, बनाया कुछ और खिलाया कुछ तो उन बनाने वालों के ऊपर, खिलाने वालों के ऊपर कषाय उत्पन्न हुई कि वैसा क्यों न बनाया? क्यों न खिलाया? यह भी इष्ट की प्राप्ति के लिए आर्तध्यान उत्पन्न हुआ कहलाया।

प्रश्न– 1986 कैसे मालुम हो कि यह हमें या सामने वाले को आर्तध्यान हो रहा है?

उत्तर यदि तत्त्वज्ञान है या परिभाषा, लक्षण शास्त्र की जानकारी है तो समझ सकते हैं कि हमारे अन्दर इस प्रकार का विचार चल रहा है और यह ध्यान है अथवा चेहरा से, नाक की सिकुड़न से, नाक बन्द करने से, आँख की चाल से, कानों के बन्द करने से मालुम हो जाता है कि इसका मन हास्ययुक्त प्रसन्न है या अप्रसन्न, रौद्रध्यानी है या आर्तध्यानी। सामने वाले के मुख पर मलिनता दिखने से, नाक के सिकुड़ने से, खांसी आने से, बारबार पानी के द्वारा ग्रास उतारने से या किसी

अन्य पदार्थों को मिलाकर गले के नीचे उतारने से या प्रतिकूल आहार के मिलने पर उल्टी भरने से या पुनः याचना करने से, इशारा करने से रसनेंद्रियजन्य इष्ट वियोगज आर्तध्यान का ज्ञान हो जाता है। जो स्थूल रूप से स्वपर ज्ञान का विषय बन जाता है।

प्रश्न– 1987 घ्राणेंद्रियजन्य इष्टवियोगज आर्तध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर नासिका के द्वारा सूंघकर मनोनुकूल गंध में बाधा उत्पन्न होने से पुनः इष्ट गन्ध की प्राप्ति के लिए आकुलता होने को घ्राणेंद्रियजन्य इष्टवियोगज आर्तध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 1988–1989 घ्राणेंद्रिय के विषय कितने हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर घ्राणेंद्रिय के विषय के दो भेद हैं। सुगन्ध और दुर्गन्ध। जिसके द्वारा गन्ध का शुभाशुभ ज्ञान हो उसे घ्राणेंद्रिय कहते हैं।

प्रश्न– 1990–91 सुगन्ध किसे कहते हैं? दुर्गन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर सज्जन, सदाचारी, सद्विचारीजन जिसको सूंघकर अच्छा कहें, मन में आनन्द का अनुभव करें उसे सुगन्ध कहते हैं तथा इससे विपरीत स्वभाव को दुर्गन्ध कहते हैं अथवा जिसको सूंघ करके भी मन सत्कार्य में लगा रहे, घृणा पैदा न हो उसे सुगन्ध कहते हैं और जिसको सूंघकर घृणा पैदा हो उसे दुर्गन्ध कहते हैं अथवा जो वर्गणायें पुण्य के द्वारा संचय को प्राप्त हुई है पुनः पुण्य कार्य में साधक हों, सहायक हों पुण्यकार्य के काम में लाई जायें उसे सुगन्ध कहते हैं। इससे विपरीत को दुर्गन्ध कहते हैं अथवा जो गंध गुण की स्वाभाविक अवस्था हो, शुभ प्रकृति हो उसे सुगंध कहते हैं और जो गन्ध गुण की विकृत अवस्था हो, स्वास्थ्य की हानि हो, पाप रूप हो, पाप का साधन, पाप प्रकृति हो, घृणा रूप हो उसे दुर्गन्ध कहते हैं।

प्रश्न– 1992 घ्राणेंद्रियजन्य इष्ट वियोगज आर्तध्यान कैसे उत्पन्न होता है।

उत्तर घ्राणेंद्रिय के सूंघने योग्य विषय के वियोग होने पर पुनः संयोग के लिए लालायित मन को इष्ट वियोगज आर्तध्यान कहते हैं अथवा इष्टवियोग होने पर पुनः मिलन के लिये या इष्ट सामग्री का वियोग नहीं हो या सदा संयोग बना रहे इससे आर्तध्यान उत्पन्न होता है जैसे इत्र, गुलाब पुष्प, केवड़ा पुष्प आदि को सूंघकर मन प्रसन्न हो रहा है तब बीच में किसी ने छुड़ा लिया, बाधा डाल दी, दुर्गन्ध मिला दी तब पुनः पूर्व सुगन्ध के लिए इष्ट वियोगज आर्तध्यान उत्पन्न होता है कि हमको वही सुगन्ध चाहिए। जो पहले प्राप्त की थी अतः इष्टवियोगज आर्तध्यान उत्पन्न होता है।

प्रश्न– 1993–94 क्या सुगन्ध से आर्तध्यान उत्पन्नहोता है? क्या दुर्गन्ध से आर्तध्यान उत्पन्न होता है?

उत्तर न सुगन्ध से आर्तध्यान उत्पन्न होता है और न दुर्गन्ध से आर्तध्यान उत्पन्न होता है किन्तु जो अपने मन के अनुकूल है उसके वियोग होने पर पुनः मिलने के विचार से या कभी भी वियोग न हो उससे इष्टवियोगज आर्तध्यान उत्पन्न होता है। जैसे कि शराबी को शराब प्रिय है, मांसाहारी को मांस प्रिय है अब इनको शराब और मांस पीने को खाने को नहीं मिले तो पुनः पीने के लिए, खाने के लिए दुःखी हो जाते हैं। अपने पीने खाने के लिए अपने घर का सामान बेच डालते हैं। लड़ाई झगड़ा होता है। मारपीट, चोरी चपाटी हो जाती है या करने लगते हैं अतः

जब मांस से, शराब से इष्ट वियोगज आर्तध्यान उत्पन्न होता है तो सुगंध और दुर्गंध से भी आर्त ध्यान उत्पन्न होता है तथा सात्विक भोजन करने वाले गरिष्ठ, पौष्टिक और तामसी तथा सात्विक भोजन के मिल जाने से, सुगन्ध के बिगड़ जाने पर, दुर्गंध से युक्त पदार्थों के माध्यम से आर्त ध्यान उत्पन्न होता है अर्थात् प्रत्येक इंद्रिय विषय सम्बन्धी पदार्थ, मन से सम्बन्ध रखने वाले पदार्थ अनन्त धर्मों के सापेक्ष युगल हैं उनको यह युगल धर्म भोगी मानव जिस परिणाम से अपना सम्बन्ध ा जोड़ता है तो वह धर्म या धर्मयुगल ध्यान में सहायक हो जाता है, साधन बन जाता है। अतः सुगन्ध और दुर्गन्ध पदार्थों से इष्ट वियोगज आर्तध्यान उत्पन्न होता है।

प्रश्न– 1995 चक्षुइंद्रियजन्य इष्टवियोगज आर्तध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर नेत्र के विषयों के माध्यम से उत्पन्न हुए विकल्पात्मक विकार को मेरे को पुनः वही रूप चाहिए जो पहले था। इसे ही चक्षु इंद्रियजन्य इष्ट वियोगज आर्तध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 1996–97 चक्षुइंद्रिय के विषय के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर चक्षुइंद्रिय के विषय के पाँच भेद हैं। नामः– 1. काला 2. पीला 3. नीला 4. लाल 5. सफेद।

प्रश्न– 1998 चक्षुइंद्रिय जन्य इष्ट वियोगज आर्तध्यान कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर अपन आँखों के द्वारा किसी चेतन, अचेतन, मिश्र पदार्थ को तथा उसका रूप अलंकार, वस्त्राभूषण को देखने में तन्मय हो रहे हैं क्योंकि वह अत्यन्त रूपवान हैं किन्तु बीच में कोई आ गया या बीच से निकल गया या लाइट बन्द हो गई या साधन बिगड़ गया या वह रूप रंग जल गया, फट गया, कीड़े लगने लगे, अन्य कुछ भी रूकावट आ गई जो अपने को देखने में बाधा उत्पन्न हो रही है तब बाधा के आने से अपन उस रूप को नहीं देख पा रहे हैं इस कारण उस रूप को देखने के लिए जो छटपटाहट उत्पन्न हुई है वही इष्टवियोग से उत्पन्न आर्तध्यान कहलाता है। जैसे अपन किसी को देख रहे हैं तो बीच में या पास में कोई विरोधी आ गया जिसके कारण भय से या लज्जा से उसे नहीं देख पा रहे हैं क्योंकि देखेंगे तो ये क्या कहेंगे? ये डाटेंगे, मारेंगे या भगा देंगे या अपमान करेंगे इस भय से नहीं देख रहे हैं या देख पा रहे हैं अतः ये यहाँ से चले जाये तो अच्छा हैं क्यों बैठे हैं? मन ही मन में दुःखी हो रहे हैं। इस कारण आँख के विषय के माध्यम से उत्पन्न हुई मन की आकुलता को नेत्रेन्द्रियजन्य इष्टवियोगज आर्तध्यान कहते हैं। यह आर्तध्यान लोभ से, भय से, लज्जा आदि से उत्पन्न होता है।

प्रश्न– 1999 इस विषय में क्या उदाहरण है कि जिससे विषय स्पष्ट हो जाय?

उत्तर जैसे कोई व्यक्ति टी. वी. में नाना चित्रकला युक्त कोई कार्यक्रम देख रहा है इसी समय लाईट चली गई या कोई बीच में आ गया या टी.वी. बिगड़ गई या कैसेट खराब हो गया तब उस समय कार्यक्रम को देखने के लिए मन में विकलता उत्पन्न हो रही है अथवा किसी का मन अपने इष्ट पदार्थ को देखने को या परिवार को देखने के लिए आकुल व्याकुल होने को किन्तु विरुद्ध सामग्री के माध्यम से नेत्र के विषय ग्रहण में जो दुःख की भावना उत्पन्न हुई कि वह वस्तु या व्यक्ति दिखकर रह गई, दिखाई नहीं दी। तब पुनः पुनः उसी वस्तु को देखने के लिए उत्कंठित हो रहा है तथा अन्य भोग उपभोग सामग्री को देखकर विह्वल हो रहा है सो उसको देखने की आकुलता

ही नेत्रेंद्रियजन्य इष्टवियोगज आर्तध्यान कहलाता है।

प्रश्न– 2000 शिष्य या भक्त देव को, गुरु को, धर्मायतन को देखने के लिए उत्कंठित है तो उसे ही नेत्रेंद्रियजन्य आर्तध्यान कह सकते हैं क्या?

उत्तर नहीं, देव शास्त्र गुरु रूप धर्मायतन को देखने के लिए जो मन में आकुलता होती है वह मैत्री भावना, प्रमोद भावना है, धर्मध्यान है, भद्रध्यान है या धर्मध्यान की भूमिका है, आर्तध्यान नहीं। आर्तध्यान भोगवासना पूर्वक भोग सामग्री के माध्यम से होता है, धर्मायतन के माध्यम से नहीं। यदि धर्मायतन से आर्तध्यान रौद्रध्यान होने लगे तो धर्मध्यान किससे होगा बताओ?

प्रश्न– 2001 कर्णेंद्रियजन्य इष्टवियोगज आर्तध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर गीत संगीत, वार्तालाप, शुभ कर्णप्रिय शब्द को सुनकर आनन्द विभोर की अवस्था के बीच में व्यवधान होने पर पुनः पूर्व के शब्द संकेत सुनने के लिए आकुलित मन को कर्णेंद्रिय जन्य इष्टवियोगज आर्तध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2002–03 कर्णेंद्रियजन्य इष्टवियोगज आर्तध्यान के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर कर्णेंद्रियजन्य इष्टवियोगज आर्तध्यान के सात भेद हैं। नामः– 1. षडज 2. ऋषभ 3. गान्धार 4. मध्यम 5. पंचम 6. धैवत 7. निषाद।

प्रश्न– 2004 कर्णेंद्रियजन्य इष्टवियोगज आर्तध्यान किस प्रकार से उत्पन्न होता है?

उत्तर कान से सुनकर शब्दों को अमनोज्ञ स्वर की आवाज से मन में पूर्व स्वर को सुनने के लिए उत्पन्न हुए संक्लेश परिणाम ही इष्ट वियोगज आर्तध्यान कहलाते हैं। जैसे अपन कोई संगीत सुन रहे हैं अच्छे सुरीले कण्ठ से मधुर आवाज आ रही है और बीच में कोई भिन्न स्वर में गाने लगा या गद्य रचना में वार्ता करने लगा या अन्य किरकिराहट आने लगी तब मन खेदखिन्न होने लगा कि हाय हाय वह स्वर कण्ठ कितना मधुर था, अच्छा था, वही सुनना है ये बीच में क्यों आ गए? हटाओ, बन्द करो, चुप रहो आदि भावना और शब्द ही इष्ट वियोगज आर्तध्यान से उत्पन्न हुए हैं। सुरीले कण्ठराग में विरुद्ध साधनों से यह आर्तध्यान उत्पन्न होता है।

प्रश्न– 2005 कामी और कामिनी की वार्ता को क्या कहते हैं?

उत्तर हाँ इनकी वार्ता को अवश्य ही कर्णेन्द्रियजन्य आर्तध्यान कहते हैं क्योंकि इनकी वार्ता मनोरंजन पूर्वक रागद्वेष को पैदा करने वाली, लौकिक कार्यों में फंसाने वाली है, निष्प्रयोजन कर्म का आश्रव बंध कराने वाली है कारण इनकी वार्ता में बाधा आ उपस्थित होने पर पूर्व की वार्ता करने के लिए सुनने के लिए आत्मा में उत्पन्न संक्लेश परिणाम को कर्णजन्य इष्ट वियोगज आर्तध्यान कहते हैं। कामी कामिनी की मन को प्रसन्न करने वाली वार्ता को रौद्रध्यान भी कहते हैं।

प्रश्न– 2006 धर्मवचन के सुनने में उत्पन्न हुई बाधा से आकुलित मन को कर्णेंद्रियजन्य आर्तध्यान क्यों नहीं कहते हो?

उत्तर नहीं, धर्म के वचनों को सुनकर मोक्षमार्ग में आनन्द उत्पन्न होता है और धर्म के वचन सुनते समय

बाधा से पीड़ित मन पाप रूप न होकर दुर्भावना को नष्ट करने वाला है। धर्मध्यान शुक्लध्यान को बढ़ाने वाला है अतः इसे आर्तध्यान न कहकर धर्मध्यान कहते हैं तथा स्वाध्याय के पाँच भेदों में यथावसर अन्तर्भाव को प्राप्त हो जाते हैं।

प्रश्न– 2007 पंचपरमेष्ठी की मूर्ति के स्पर्श में और कामीकामिनी के परस्पर के स्पर्श में क्या अन्तर है, भावों में समानता है या विषमता ?

उत्तर नहीं, दोनों प्रकार के स्पर्श के परिणामों में आकाश पाताल जैसा अन्तर है एक ही प्रकार के परिणाम नहीं होते हैं क्योंकि प्रथम परिणाम पूज्य भाव को लिए हुए हैं तो दूसरे परिणाम भोग वासना को लिए हुए हैं। प्रथम परिणाम का फल मोक्षमार्ग है तो दूसरे का फल संसार मार्ग है। पहला धर्म का साधन है तो दूसरा पाप का साधन है विकार वर्धक है इस प्रकार इन दोनों स्पर्शों में आकाश पाताल जैसा अंतर है। पहला स्पर्श ऊर्ध्वगामी है तो दूसरा अधोगामी है।

प्रश्न– 2008 इंद्रिय विषयों के बिना केवल मन से आर्तध्यान उत्पन्न होता है क्या?

उत्तर कुछ ऐसे भी प्रसंग आते हैं कि जिस समय बाह्य इंद्रिय विषय नहीं होता है फिर भी मन पूर्वभुक्त इन्द्रियजन्य भोगों में अभी समयाभाव या शक्त्याभाव के कारण बाद में भोगूंगा या अन्य व्यवधान के कारण भोगने के लिए मन आकुलित हुआ सो उस आकुलित मन को आर्तध्यान कहते हैं अतः मन से उत्पन्न होने के कारण मनोद्भव इष्टवियोगज आर्तध्यान कहते हैं अथवा विषय सुख में उत्पन्न हुई बाधा को दूर करने के लिए या निर्विघ्न भोगों के विचार को या वियोग होने पर पुनः भुक्त भोगने के विचारों को मनोद्भव आर्तध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2009 इस प्रकार का प्रसंग कब प्राप्त होता है कि जिस समय इंद्रिय विषय न होकर केवल मन रहता है?

उत्तर रात्रि का, दिन का सुनसान स्थान, अंधकार का समय, एकान्त स्थान, गुफादि में, जंगल में आँख बन्दकर बैठने या खड़े होने से, कान आँख आदि में पट्टी बांध लेने से, उपवास आदि विशेष तप करने से, दृढ़ आसन आदि लगाने से और भी अन्य समयों में इन्द्रिय विषयों के अभाव में केवल मन विषय चिन्तन का साधन बन जाता है या और भी स्थान मिल जाते हैं।

Note- इष्टवियोगज आर्तध्यान का वर्णन समाप्त हुआ।

प्रश्न– 2010 अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर संसार अवस्था में सांसारिक इंद्रियजन्य विषय सुख में बाधा उत्पन्न करने वालों का समागम होने पर बाधक कारणों को दूर करने के लिए जो मन में विकलता, बैचेनी उत्पन्न होती है उसे अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2011 अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर जब यह मोही, प्रमादी जीव विषय सुख की अवस्था में अमनोहर, अमनोज्ञ विषय के मिलने पर, विरुद्ध सामग्री चेतन, अचेतन और मिश्र सामग्री के समागम होने पर विषयसुख का अनुभव नहीं कर सकते हैं ऐसे प्रसंग पर उनको हटाने के लिए मन में जो क्रोधकषाय, मानकषाय या कदाचित् मायाकषाय, लोभकषाय के परिणाम होते हैं। अप्रिय पदार्थों के समागम से उत्पन्न हुए परिणामों

को अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान कहते हैं जो उस विरुद्ध वस्तु को या मनुष्यों को दूर करने के लिए होता है। जैसे घर में, दुकान में, अन्यत्र भी चोर, डाकू, बदमास व्यक्ति, अनाड़ी, अनाचारी, गलत आचार विचार वाले व्यक्ति का समागम होने से हमें महान हानि होगी, जन धनादि में हानि होगी, ये नष्ट भ्रष्ट कर देंगे, अतः इनको सतत निरन्तर अलग करने के लिये या अनिष्ट पदार्थों, व्यक्तियों का समागम न हो ऐसे चिन्तन से यह ध्यान उत्पन्न होता है।

प्रश्न– 2012 स्पर्शेंद्रियजन्य अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर स्पर्शेंद्रिय के आठ विषयों में अप्रिय पदार्थों के समागम से उत्पन्न विकलता को दूर करने के विचारों को या ऐसे अनिष्ट पदार्थों का कभी भी समागम न हो ऐसे विचारों को स्पर्शेंद्रियजन्य अनिष्टसंयोगजार्तध्यान कहते हैं। यह आर्तध्यान समस्त प्रमादी प्राणियों के होता है।

प्रश्न– 2013 स्पर्शेंद्रियजन्य अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर स्पर्शेंद्रिय के आठ विषय हैं। हल्का, भारी, कोमल, कठोर, रूखा, चिकना, ठण्डा, गरम। अभी ठण्डी के मौसम में ठण्डी का समागम होने से और गर्मी के मौसम में गर्मी के समागम से अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान उत्पन्न होता है क्योंकि गर्मी के मौसम में गर्मी अनिष्ट है और सर्दी के मौसम में सर्दी अनिष्ट है तथा गर्मी के मौसम में ठण्डी इष्ट है और ठण्डी के मौसम में गर्मी इष्ट है। कारण गर्मी में गर्मी और ठण्डी में ठण्डी प्रतिकूल है तथा गर्मी में ठण्डी और ठण्डी में गर्मी अनुकूल है। तब अपने मन के प्रतिकूल समागम होने पर उससे बचने के लिए, दूर करने के लिए या दूर होने के लिए उत्पन्न हुए विचार आर्तध्यान हैं इसलिए गर्मी में पंखा, कूलर, ए.सी., फ्रिज आदि के माध्यम से शीत पदार्थ, ठण्डे पदार्थों को स्पर्श करने की लालसा उत्पन्न होती है। इस लालसा विरुद्ध सामग्री के सन्निधान से अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान उत्पन्न होता है। इसी तरह अपने को हल्का वजन, हल्का स्पर्श चाहिए पर मिला भारी तो भारी को हटाने के लिए मन में जो नाना संकल्प विकल्प उत्पन्न होते हैं सो उसका नाम अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान है। इसी तरह अपने को कोमल चाहिए और मिला कठोर। तब कठोर को दूर करने के लिए जो मन में विषयकषायें उत्पन्न हो रही हैं सो मन के प्रतिकूल सामग्री को कोई निकाल ले, उठा ले या दूर हो जाये, थोड़ी देर के लिए कोई सहायता कर ले सो अच्छा होगा। अतः इसे अनिष्ट पदार्थों के संयोग से उत्पन्न स्पर्शेंद्रियजन्य अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान कहते हैं। अभी सर्दी के मौसम में हाथ, पैर, मुँह, ओंठ, गला फटने लगे तब इस फटने के दर्द को दूर करने के लिए घी, तेल, वैसलीन की याद आने लगी और चिकना पदार्थ चाहिए किन्तु मिला रूखा सो इस रूखे पदार्थ को दूर करने के विचारों को अनिष्टसंयोगज स्पर्शेंद्रियजन्य आर्तध्यान कहते हैं। इसी तरह गर्मी के मौसम में जमीन को ठण्डा करने के लिए पानी छिड़कना, छिड़कवाना, ठण्डी में आग जलाना, हीटर जलाना, कमरा बन्द करना, करवाना, गर्मी प्राप्त करने के लिए अधिक पावर का बल्ब लगवाना, लगाना, हाय हाय ठण्डी है, गर्मी है ऐसा विचार कर प्रतिकार करने की भावना को अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2014 क्या पदार्थ इष्ट और अनिष्ट होते हैं?

उत्तर हाँ, प्रत्येक पदार्थ इष्टानिष्ट आदि अनन्त धर्म वाले होते हैं। यह मोही, प्रमादी, असंयमी, संसारी आत्मा जिस परिणाम से परिणमन करता है उसी रूप से निमित्त नैमित्तिक संबंध को दोनों प्राप्त हो जाता है क्योंकि जीव और पुद्गल कर्म समकाल परिणामी एकरूप में होते हैं। दोनों के स्वरूप को परस्पर में एक दूसरे के स्वभाव में मिला देने से दुर्ध्यान उत्पन्न हो जाता है कारण प्रत्येक धर्म अपने प्रतिपक्ष धर्म से युक्त होने से सप्रतिपक्ष धर्म युगल कहलाते हैं। इसलिए संसारी मोही प्राणी वस्तु के जिस धर्म को चाहता है वह उसके लिए इष्ट और जिसको नहीं चाहता वह अनिष्ट धर्म है। यदि वस्तु स्वयं इष्ट और अनिष्ट रूप नहीं हो तो क्या जिसमें जो स्वयं में योग्यता नहीं है वह दूसरों को बलात् परिणमन नहीं करा सकता अथवा हमारी इच्छानुसार या आपकी इच्छानुसार वस्तु इष्ट अनिष्ट रूप नहीं है किन्तु वस्तु शुभाशुभ रूप में स्वयं परिणमन करती है। ऐसा आ० श्री ने समय० सर्व वि० 375–381 में कहा है। क्या घातिया अघातिया कर्म, पुण्यपाप कर्म, कर्म वर्गणाओं का विभाग हमारी तुम्हारी इच्छा से है या स्वभाव से है?

प्रश्न– 2015 रसनेंद्रियजन्य अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर मन के प्रतिकूल अप्रिय स्वादिष्ट और पौष्टिक रस के या खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय आहार के समागम होने पर जो नाना प्रकार के विकार रूप भाव उत्पन्न होते हैं उसे रसनेंद्रिय जन्य अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2016 रसनेंद्रिय जन्य अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर समस्त भोज्य पदार्थ प्रिय अप्रिय, स्वादिष्ट पौष्टिक हैं। प्रत्येक वस्तु सप्रतिपक्ष अनन्त धर्मात्मक है। जो भोज्य वस्तु एक मोही, प्रमादी, असंयमी प्राणी को प्रिय या अप्रिय लगती है वही सामग्री दूसरे को अप्रिय या प्रिय मालुम होती है इसी तरह जो सामग्री धनवान को, मध्यम वर्ग को स्वादिष्ट और पौष्टिक मालुम नहीं होती है वही सामग्री गरीब को, भिखारी को स्वादिष्ट और पुष्टि पैदा करती है क्योंकि गरीब भिखारी ये बिचारे नमक की डली और रूखी सूखी रोटी बहुत स्वाद से खाते हैं और उनको पुष्टि पैदा करती है। अपनी रुचि के अनुसार और वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशमानुसार सामर्थ्य प्राप्त होती है। भोज्य वस्तु फल देती है अथवा फल प्राप्त होता है। इसलिए यह अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान मन के प्रतिकूल भोजन के माध्यम से उत्पन्न होता है।

प्रश्न– 2017 इस रसनेंद्रियजन्य अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान के स्वामी कौन हैं और कौन नहीं हैं?

उत्तर द्वींद्रिय जीव से लेकर सैनी पंचेंद्रिय तक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर छठवें गुणस्थान तक के जीवों के तथा संख्यातवर्ष की आयुवाले पर्याप्तक कर्मभूमिज मनुष्य और तिर्यंचों के होता है तथा देवों के और नारकियों के होता है तथा असंख्यात वर्षायुष्क भोगभूमिजों के भी यह ध्यान उत्पन्न होता है। एकेंद्रिय जीवों के तथा अप्रमत्तादि गुणस्थानवर्ती मुनियों के यह आर्तध्यान उत्पन्न नहीं होता है क्योंकि ध्यानावस्था होने से यह कार्य कारण भाव नहीं पाया जाता है।

प्रश्न– 2018 इन जीवों के रसनेंद्रियजन्य अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान क्यों उत्पन्न नहीं होता है?

उत्तर एकेंद्रिय जीवों के रसनेंद्रिय कारण न होने से कार्य रूप ध्यान उत्पन्न नहीं होता। भोगभूमिजों और देवों में भी उत्पन्न नहीं होता क्योंकि इनके स्थानों में केवल पुण्यवर्गणायें प्राप्त होती है तथा इन स्थानों में विकलत्रय राशि न होने से यहाँ पुद्गल पिण्ड रूप आहार वर्गणाओं में सड़ना गलनावस्था नहीं पायी जाती है। देवों में अमृताहार होता है इस कारण इनमें भी इस ध्यान के लिए अवकाश नहीं तथा नारकी भी औदारिक वर्गाणा को ग्रहण नहीं करते क्योंकि वैक्रियिक शरीर में औदारिक वर्गणा को ग्रहण करने के लिए अवकाश नहीं। यदि नारकी मिट्टी खाते हैं तो यहाँ पर पशुबलि चढ़ानेवाले शराब चढ़ाने को कहते हैं, देवी या देवतागण बलि स्वीकार करते हैं, खाते हैं तो उनको दोष क्यों दिया जाय? अतः वैक्रियिक शरीर में औदारिक वर्गणा का कवलाहार ग्रहण नहीं होता है तथा नारकियों के आहार मार्गणा के अनुसार कर्माहार है और भयंकर मारकाट, युद्ध के कारण, कृष्णादि अशुभलेश्यायें, तीव्र हिंसानंदी रौद्रध्यान में तन्मय होने के कारण खाने पीने के लिए मन ही तैयार नहीं होता है जैसे यहाँ पर जब कभी किसी पर भयंकर तीव्र संकट आता है तब भूख प्यास सब शान्त हो जाती हैं, भूख प्यास नहीं लगती। फिर भी इन जीवों के मिथ्यात्व गुणस्थान होने से अनिष्ट संयोगज रसनेंद्रिय जन्य आर्तध्यान संभव है किन्तु भद्र परिणाम होने से कहने में नहीं आता या आहार संज्ञा की तीव्रता होने से विशेष आहार पानी को ग्रहण करने के लिए नाना प्रकार की विक्रिया करते हैं।

प्रश्न– 2019 घ्राणेंद्रियजन्य अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर मन के प्रतिकूल घ्राण का विषय प्राप्त होने पर प्रतिकूलता को दूर करने के लिए मन में उत्पन्न हुई आकुलता को ही घ्राणेंद्रियजन्य अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान कहते हैं अर्थात् गन्ध के प्राप्त होने पर घृणा करना, थूँकना, नाक सिकोड़ना, आँख बंद करना आदि ये आर्तध्यान के कार्य हैं। जैसे इत्र के सूंघते वक्त कुछ मलमूत्र की, चमड़े की, शराब की गन्ध आ गई तब मन मलिन हुआ कि यह बीच में दुर्गन्ध क्यों आ गई? नहीं आती तो अच्छा था। अतः मन में उत्पन्न हुई बैचेनी को ही अनिष्ट संयोगज घ्राणेंद्रियजन्य आर्तध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2020 घ्राणेंद्रियजन्य अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर घ्राणेंद्रिय का विषय दो प्रकार का है। नामः– सुगन्ध और दुर्गन्ध। अप्रिय गंध के संयोग होने पर घृणा करना, थूँकना, नाक सिकोड़ना, आँख बन्द करना आदि से अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान उत्पन्न होता है। जैसे इत्र के सूंघते वक्त कुछ मलमूत्र की, चमड़े की, शराब की गंध आ गई तो मन मलिन हुआ कि यह बीच में दुर्गन्ध क्यों आ गई, नहीं आती तो अच्छा था। सुगंधित द्रव्यों के माध्यम से भी यह ध्यान उत्पन्न हो जाता है जैसे सामान्य सुगंध की अपेक्षा विशेष अधिक मात्रा में सुगंध को सूंघने के लिए मन लालायित होना। सुगंधित तेल की अपेक्षा परफ्युम चाहना।

प्रश्न– 2021 सुगन्ध विषय के कितने भेद हैं?

उत्तर घ्राणेंद्रिय के विषय सुगन्ध स्वरूप भोज्य पदार्थ पुष्प, तेल, घी, इत्र, मिट्टी, पत्थर आदि।

प्रश्न– 2022 दुर्गन्ध विषय के पदार्थ कितने प्रकार के हैं?

उत्तर ऊपर जो सुगन्धित द्रव्यों के नाम गिनाये हैं वे जब बिगड़ जाते हैं सड़ जाते हैं तभी वे

दुर्गन्धित हो जाते हैं तथा मलमूत्र, मिट्टी का तेल, तारकोल, शराब, सड़ा मांस, अनेक औषधियां, विकृत रूप में सप्त धातु उपधातुयें दुर्गन्ध रूप में ये जब नासिका के विषय बनते हैं तब आत्मा में क्षोभ पैदा करते हैं, उल्टी भी हो जाती है। घ्राणेंद्रिय जन्य अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान की उत्पत्ति का मूल कारण अरतिकषाय और जुगुप्सा कषाय है जिससे घृणा पैदा उत्पन्न होती है।

प्रश्न– 2023 घ्राणेंद्रियजन्य अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान के स्वामी कौन हैं और कौन नहीं हैं?

उत्तर त्रींद्रिय जीवों से लेकर सैनी पंचेंद्रिय जीवों तक देव, नारकी, कर्मभूमिज तथा भोगभूमिज मनुष्य, तिर्यंच स्वामी हैं। एकेंद्रिय जीव, द्वींद्रिय जीव और अप्रमत्तादि मुनिजन स्वामी नहीं है। कुछ देवों को छोड़कर शेष देवगण, अहमिन्द्रों के भी यह घ्राणेंद्रियजन्य आर्तध्यान उत्पन्न हो जाता है। तथा जो राक्षस, भूतपिशाच, व्यन्तर जब किसी को लग जाते हैं तो मंत्रवादीजन मिर्ची या सड़े गले पदार्थों को सुंघाकर और सूंघ करके वो घबड़ाकर छोड़कर भाग जाते हैं, रोते चिल्लाते हैं। अतः इनके यह ध्यान संभव है क्योंकि मिथ्यात्व में आठों अशुभ ध्यान पाये जाते है

प्रश्न– 2024 चक्षुइंद्रियजन्य अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर आँख के द्वारा मनोज्ञ विषय देखते हुए, मनोरंजन करते हुए बीच में अमनोज्ञ विषय के प्राप्त होने पर जो मन में किरकिराहट हो रही है सो उस किरकिराहट को ही चक्षुइंद्रियजन्य अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2025 चक्षुइंद्रियजन्य अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर नेत्र से देखने योग्य काला, पीला, नीला, लाल, सफेद ये 5 भेद हैं। इनके अवान्तर भेद असंख्यात लोक प्रमाण है जो अविभाग प्रतिच्छेदों के द्वारा जाने जाते हैं, जाने जा सकते हैं कुछ अंशों को अपन भी आँख के द्वारा देखकर या अनुमान द्वारा जान लेते हैं। संसारी मोही प्राणी कभी किस रूप में, रंग में राग को तो कभी किस रूपरंग में द्वेष को प्राप्त होता है। कोई रूपरंग कभी प्रिय होता है तो प्रसंग बदल जाने पर वही रूपरंग अप्रिय हो जाता है और अप्रिय रूप रंग चित्र अलंकार के माध्यम से मन में खेद खिन्नपना उत्पन्न होना ही चक्षुइंद्रियजन्य अनिष्टसंयोग आर्त ध्यान उत्पन्न हुआ कहलाता है अथवा टी.वी., नाटक, कोई रंगबिरंगा कार्यक्रम चल रहा है और उस कार्यक्रम में मन लग रहा है बीच में ही किसी प्रकार की बाधा के आने से मन आकुलित हो उठा, व्यवधान हो गया प्रिय और प्रिया के अवलोकन के समय अन्य तरह से रुकावट हो गई तब उस रुकावट को दूर करने के लिए जो मन, वचन, काय में अन्यथा प्रवृत्ति होने लगती है तो उस अन्यथा प्रवृत्ति को ही अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान कहा जाता है। यह आर्तध्यान असैनी, सैनी, अभव्य, भव्य, सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टियों के विषय कषायों से होता है।

प्रश्न– 2026 चक्षुइंद्रियजन्य अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान के स्वामी कौन कौन जीव हैं तथा कौन जीव नहीं है?

उत्तर चौइंद्रिय और पंचेंद्रिय जीव कर्मभूमिज, देव, नारकी, भोगभूमिज मनुष्य, तिर्यंच इसके स्वामी हैं

तथा एकेंद्रिय द्वींद्रिय और त्रींद्रिय जीवों के आंख न होने से यह अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान उत्पन्न नहीं होता है तथा सम्यग्दृष्टि अहमिंद्रों के भी यह ध्यान उत्पन्न नहीं होता है क्योंकि इन्द्रिय विषय सामग्री न होने से, सभी समान अवस्था वाले होने से, अहमिन्द्रपना होने से यह दुर्ध्यान उत्पन्न नहीं होता किन्तु मिथ्यादृष्टि अहमिन्द्रों के होता है। नारकी जीवों में भी परस्पर में एक दूसरे के समान आकार को देखकर हाय हाय अब किसकी तरफ जाऊं, कहाँ जाऊं, कहाँ छिप जाऊं, कौन बचायेगा, कोई सामने आ जाये जो मेरी रक्षा करें यह क्यों विकराल रूप सामने आया, अब क्या करेगा, मारेगा, काटेगा? आदि विचारों से चंक्षुइंद्रियजन्य अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान उत्पन्न होता है इसी तरह देवगण, देवांगनायें परस्पर में कभी–कभी विकृत रूप को देखकर भी दुर्ध्यान को प्राप्त हो जाते हैं क्योंकि अलंकार रूप विक्रिया नाना प्रकार से करते हैं और उस विक्रिया को देखकर मन में विकलता उत्पन्न होती है। इसी तरह भोगभूमिजों में समझना क्योंकि विषयों में अतृप्ति होने से नई–नई नाना विक्रया करते हैं।

प्रश्न– 2027 कर्णेद्रियजन्य अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर कर्ण से सुरीले कण्ठ भरे संगीत सुन रहे हैं और बीच में भिन्न भिन्न कण्ठ के रागरंग के संगीत भजन सामने कोई गाने लगे तब बिना कण्ठ के या बिना प्रसंग के गद्य पद्य रचना को दूर करने, कराने के लिए, बन्द कराने के लिए जो मन, वचन, काय की क्रिया होती है उसे कर्णेद्रियजन्य अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2028 कर्णेद्रियजन्य अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर कर्णेद्रिय के विषय शब्द, स्वर सात प्रकार के होते हैं। इन्हीं सात स्वरों की मिलन रूप अवस्था के कारण वक्ताओं के या गायकों के कण्ठों की अपेक्षा कण्ठ तालु मूर्धा आदि के भेदों से तथा कण्ठ आदिकों के उतार चढ़ाव की दृष्टि से अनेक संख्यात, असंख्यात और अनन्त भेद–प्रभेद हो जाते हैं। अपने अभिप्राय के प्रतिकूल शब्द रचना को, वाक्य पद रचना को अप्रिय मानकर खेद खिन्न होने से यह कर्णेद्रियजन्य अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान उत्पन्न होता है।

प्रश्न– 2029–30 इस आर्तध्यान के स्वामी कौन–कौन जीव हैं और कौन–कौन जीव नहीं है?

उत्तर–समस्त सैनी पंचेंद्रिय, चारों गतियों के सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, भव्य, अभव्य जीव स्वामी है। एकेंद्रिय जीवों से लेकर असैनी पंचेंद्रिय जीवों तक यह ध्यान नहीं होता है क्योंकि इष्टानिष्ट का विचार करने वाला मन ही नहीं है। अहमिंद्रों के भी यह ध्यान नहीं होता है। भोगभूमियों में भी दुस्वर नाम कर्मोदय वाले जीव नहीं होते हैं, न अशुभ वचन सुनाई देते हैं। इस कारण भोगभूमियों में भी यह ध्यान नहीं होता है किन्तु शुभ में अधिक मात्रा वाला सुरीला शब्द संगीत चाहिए, हीनमात्रा वाला नहीं इस कारण मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि, भोगभूमियों में, देवों में अहमिन्द्रों मे यह कर्णेन्द्रिय जन्य अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान बन जाता है।

प्रश्न– 2031 अप्रिय शब्दों को सुनकर किस प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं?

उत्तर दूसरों के मुख से मर्म भेदी ह्रदय विदारण करने वाले, जाति, कुल और धर्म की बदनामी करने

वाले, निन्दाजनक अप्रिय वचन सुनकर ऐसा क्यों कहा, ऐसा कहने वाला कौन, क्या इसकी कमाई खाता हूँ, इसका नौकर हूँ, क्या इसने मेरे को खरीद लिया है, इसका मैं खाता हूँ, पालन पोषण करने वाला है जो इसकी बात क्यों सुनी जाय? आदि विचार कर मेरा बस चले तो इसे जड़मूल से उखाड़कर फेंक दूं यह होता कौन है? आदि भावों से कर्णेंद्रियजन्य अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान उत्पन्न होता है जो अनिष्टकारी है।

प्रश्न– 2032 प्रिय वचनों को सुनकर भी अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान क्या उत्पन्न हो सकता है?

उत्तर प्रिय वचनों को सुनते सुनते, मनोरंजन करते करते अब इससे अधिक मात्रा में शुभ सुन्दर सुनने के लिए मन आकुलित हो रहा है जिस वचन को पहले सुख रूप में अनुभव कर रहे थे अब उसी वचन से अधिक मात्रा में सुनने के लिए मन आकुलित हो उठा अतः शुभ वचनों में भी इस आर्तध्यान को उत्पन्न करने की ताकत मौजूद है जैसे भगवान सर्वज्ञकेवली आदिनाथ के शुभ वचनों को सुनकर मारीचकुमार अनिष्टपने को प्राप्त हुआ।

प्रश्न– 2033 मानसिक अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर बाह्य में इंद्रिय विषय सामग्री के बिना किसी एकान्त स्थान में, सुनसान स्थान में, अन्धकार में, श्मशान में, मन के विचारों में ही अनिष्ट पदार्थों का संयोग प्राप्त न हो अथवा मन में ही समागम प्राप्त हो गया तो कैसे दूर हो, कैसे नष्ट हो आदि विचारों को मानसिक अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान कहते हैं। यह ध्यान केवल भावात्मक होता है। इसमें बाह्य विषयों का संयोग वियोगपूर्वक पूर्वभुक्त विषय होता है, वे विषय इष्ट भी हो सकते हैं और अनिष्ट भी। इष्ट में भी अधिक मात्रा वाला चाहिए सो जो पूर्व में इष्ट अनुभव में आ रहा था अब वही अनिष्ट रूप में अनुभव आने लगा। अतः इसे मानसिक अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2034–35 वेदना किसे कहते हैं? किस कारण से उत्पन्न होती है?

उत्तर कर्मोदय आदि जन्य औदयिक आदि परिणाम स्वरूप सुख दुःख का अनुभव करने को वेदना कहते हैं। शरीर में वात, पित्त, कफ, बाह्य में सर्दीगर्मी, भोजनपान, मानअपमान, आदरसत्कार, इष्टानिष्ट अवस्थाओं के कारण तथा असातावेदनीय कर्मोदय से वेदना उत्पन्न होती है अथवा वात पित्त कफ के स्वतंत्र विकार से या दो के मिश्रण से या तीनों के मिश्रण से जो शारीरिक बीमारी उत्पन्न होती है तो उस बीमारी के कारण सुख दुःख जो कर्मोदय जन्य अनुभव होता है उसे ही वेदना कहते हैं। इसमें मूल कारण असातावेदनीय कर्म, स्थिर और अस्थिर नाम कर्मोदय से होती है अथवा वात, पित्त, कफ यथास्थान कार्य करने पर, स्थिर–अस्थिर नामकर्मोदय का अपना–अपना सही दिशा में कार्य करने पर भी मानसिक तनाव खिचाव के कारण भी असह्य दुःख की वेदना भोगनी पड़ती है।

प्रश्न– 2036 वेदना आर्तध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर वात पित्त कफ के विकार से जो शरीर में दुर्व्यवस्था होती है और उस दुर्व्यवस्था से जो मन में कष्ट का अनुभव होता है सो उस दुःखानुभव को ही दूर करने के विचारों को वेदना आर्तध्यान

कहते हैं।

प्रश्न— 2037 वेदना आर्तध्यान किसमें उत्पन्न होता है?

उत्तर वेदना आर्तध्यान मोही, विषयकषायी, असंयमी, संयमी प्रमादी जीवों में उत्पन्न होता है जब उपयोग विषयकषाय पूर्वक बाह्य विषयों में, शारीरिक बीमारियों में हीनाधिकता के साथ दुःखों को दूर करने के लिए परिणमन करता है तब वेदना आर्तध्यान उत्पन्न होता है।

प्रश्न— 2038 वेदना आर्तध्यान किस किस साधन से उत्पन्न होता है?

उत्तर असाता वेदनीय, वीर्यांतराय कर्म, संहनन नाम कर्मोदय से तथा पाँचों इंद्रिय और मन से, वात पित्त कफ के विकार से, मान अपमान से, शस्त्र प्रहार से, विष भक्षण से, रक्त क्षय से, धातु क्षय से, सर्दी गर्मी से, पतन आदि कारणों से वेदना आर्तध्यान उत्पन्न होता है।

प्रश्न— 2039 स्पर्शेंद्रियजन्य वेदना आर्तध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर शरीर के एक अंग में या सर्वांग में वात पित्त कफ के विकार से, शस्त्र प्रहार से, कांटा चुभने से, फोड़ा, गांठ हड्डी में, नशों में सूजन, जकड़न, जोड़ों में दर्द आदि से उत्पन्न पीड़ा को दूर करने के लिए उत्पन्न हुए भावों को स्पर्शेंद्रियजन्य वेदना आर्तध्यान कहते हैं।

प्रश्न— 2040 शरीर में कांटा, कंकड़ पत्थर चुभना सर्दी गर्मी लगना आदि से उत्पन्न वेदना को, दुःख को वेदना आर्तध्यान कह सकते हैं क्या?

उत्तर इस प्रकार की वेदना वेदना आर्तध्यान नहीं है किन्तु वेदना अवश्य है और इसका अंतर्भाव अनिष्टसंयोगज स्पर्शेंद्रियजन्य आर्तध्यान में हो जाता है क्योंकि इसमें बाधक वस्तुओं का मिलाप होकर, सम्बन्ध होने पर भी शरीर के अंदर प्रवेश नहीं करते हैं।

प्रश्न— 2041 स्पर्शेंद्रियजन्य वेदना आर्तध्यान और स्पर्शेंद्रियजन्य अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान में क्या अन्तर है?

उत्तर स्पर्शेन्द्रियजन्य वेदना आर्तध्यान में बाह्य सामग्री आत्मसात् हो जाती है तथा स्पर्शेंद्रियजन्य अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान में बाधक सामग्री बाहर में रहती है। शरीर के अन्दर प्रवेश नहीं करती यही इन दोनों में अंतर है।

प्रश्न— 2042 यदि ऐसा है तो शारीरिक बीमारी किसी को भी इष्ट न होने से अनिष्ट है तो इस कष्ट को अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान कहो?

उत्तर नहीं कहना चाहिए क्योंकि बीमारी शरीर से अभिन्न है और उपसर्ग परीषह आदि भिन्न है तथा भिन्न परपदार्थों के संयोग से अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान होता है अतः परपदार्थों के संयोग से उत्पन्न वेदना को स्पर्शेंद्रियजन्य अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान कहते हैं किन्तु वेदनाजन्य आर्तध्यान नहीं कहते हैं।

प्रश्न— 2043 तो वेदना आर्तध्यान किसे कहना चाहिए?

उत्तर असातावेदनीय कर्मोदय से बीमारी और बीमारी की बाह्य सामग्री द्रव्य रूप से और भावरूप से आत्मसात् आत्मपरिणामों के साथ घुलमिल कर एकरूप में, अपने आप में अनुभव करने लगता

है क्योंकि असातावेदनीयकर्म जीवविपाकी और पुद्गलविपाकी प्रकृति है अतः वेदना आत्मरूप है। अतः वेदना आर्तध्यान शरीर से अभिन्न पदार्थों के माध्यम से उत्पन्न होता है।

प्रश्न– 2044 स्पर्शेंद्रियजन्य वेदना आर्तध्यान कितने प्रकार का है?

उत्तर स्पर्शेंद्रिय का विषय आठ प्रकार का होने से स्पर्शेन्द्रियजन्य वेदना आर्तध्यान आठ प्रकार का हो जाता है। इन आठ स्पर्शों के माध्यम से खड़े होने पर, बैठने पर, चलने पर, सोने पर आदि शरीर संबंधी क्रिया करते समय, आचरण करते समय जो शरीर में कंकड़ पत्थर, कांटा आदि के समान शरीर में चुभन हो रही हैं। ठण्डी गर्मी से भी वेदना उत्पन्न होती है भारी वजन के समान शरीर भारी होने के, मस्तिष्क भारी होने के कारण सिर में दर्द, गर्दन में दर्द, कमर में दर्द होता है। पसीना आता है, हॉफी चलने लगती है। हाय हाय की चीख निकल पड़ती है। माँ बाप का नाम भी पुकारने लगते हैं। अतः स्पर्श के जिस भेद से वेदना उत्पन्न हुई सो उस वेदना का नाम उस स्पर्श के नाम से कहलायेगा क्योंकि ये स्पर्श की 8 प्रकार की विषय सामग्री शरीर के अंदर प्रवेश कर जायें तब उससे उत्पन्न वेदना से दुःखी होकर जो विह्वलता को प्राप्त होता है सो उस विह्वलता का नाम ही वेदना आर्तध्यान स्पर्शेंद्रिय जन्य समझो अथवा शारीरिक बीमारी के माध्यम से उत्पन्न वेदना को स्पर्शेंद्रियजन्य वेदना आर्तध्यान समझना चाहिये।

प्रश्न– 2045 रसनेंद्रिय जन्य वेदना आर्तध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर रसनेंद्रिय के द्वारा उत्पन्न हुई वेदना को रसनेंद्रियजन्य वेदना आर्तध्यान कहते हैं। जैसे अपनी पचनशक्ति को, उदराग्नि को न समझकर लोभ से, स्वाद से मात्रा का विचार किये बिना खा गये अब पेट फूल गया मलमूत्र अवरुद्ध हो गया, इसके माध्यम से उत्पन्न वेदना को, भयभीत होकर दूर करने के विचार को रसनेंद्रिय जन्य वेदना आर्तध्यान कहते हैं अथवा जिह्वा में उत्पन्न रोगों से उत्पन्न हुई वेदना को रसनेंद्रियजन्य वेदना आर्तध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2046 रसनेंद्रियजन्य वेदना आर्तध्यान के कितने भेद हैं?

उत्तर रस के पाँच भेद हैं और इनके अवान्तर भेद या परस्पर के मिश्रण से या प्रत्येक रस की मात्रानुसार असंख्यात लोकप्रमाण भेद हो जाते हैं इसके जिस स्वाद में रममाण होता है और उसी रस में लम्पटी बन, आसक्त होकर खाने से, रस के बराबर वेदना आर्तध्यान के भेद हो जाते हैं। इसके सामान्यतया स्थूल रूप से पाँच भेद हैं। जैसे घी के खाने से लीवर बिगड़ गया घी से वेदना उत्पन्न हुई, शक्कर के खाने से शुगर की बीमारी हो गई, मात्रा का उल्लंघन कर नमक खा लिया, प्यास लगी, मुँह सूखने लगा अतः जिस भोजन से स्वास्थ्य बिगड़ गया सो वही वेदना कहलाई तथा उस वेदना के प्रतिकार करने के लिए मन में उत्पन्न आकुलता व्याकुलता को उसी नाम वाला रसनेंद्रियजन्य वेदना आर्तध्यान कहते हैं। अतः कार्य कारण में अभेद करके कारण को ही वेदना आर्तध्यान कहा है।

प्रश्न– 2047 स्पर्शेंद्रिय और रसनेंद्रिय सम्बन्धी वेदना आर्तध्यान किस प्रकार से उत्पन्न होता है और क्या हानि होती है?

उत्तर शरीर में और रसना में उत्पन्न हुई बीमारी कैसे ठीक हो कहाँ इलाज करायें किस डॉक्टर, वैद्य

के पास जाये? कोई दवाई फायदा नहीं कर रही है, सहन नहीं हो रहा है, हाय मैं कमजोर हो गया, मरा मरा, कोई सहारा नहीं, कोई बचाने वाला नहीं, हाय हाय कितना दर्द हो रहा है। संहनन नहीं है, वीर्यान्तराय कर्मोदय से दिन प्रतिदिन कमजोरी बढ़ती जा रही है, नाना तरह के स्वादिष्ट पौष्टिक भोजन करने पर भी ताकत नहीं आ रही है आदि विचारों से दुर्धर आर्तध्यान होता है, यह ध्यान कामेंद्रियजन्य होने के कारण मोक्षमार्ग से पतन करा देता है।

प्रश्न— 2048 नासिका इंद्रियजन्य वेदना आर्तध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर नाक सम्बन्धी रोगों से उत्पन्न वेदना को दूर करने के विचार से घबड़ाने को नासिकाजन्य वेदना आर्तध्यान कहते हैं। श्वांस लेने में, छोड़ने में, फोड़ा फुंसी, खुजली आदि से नाना तरह के कष्ट होते हैं, उनको दूर करने के लिए नाना तरह की दवाईयां खाता है, शल्यचिकित्सा कराने के बाद फायदा नहीं हुआ, न जीते बनता है, न मरते बनता है आदि विचार को नासिका जन्य वेदना आर्तध्यान कहते हैं।

प्रश्न— 2049—51 घ्राणेंद्रियजन्य वेदना आर्तध्यान किस कारण से उत्पन्न होता है? कितने प्रकार का है? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर घ्राण के द्वारा सूंघने योग्य विषय दो प्रकार का है, इसके द्वारा सूंघकर वेदना उत्पन्न हुई यहाँ तक की भौरों के समान सूंघने में आसक्त होकर अपना जीवन समाप्त कर देता है। देखो भौंरा पुष्प की सुगन्धि लेने में इतना मस्त हो जाता है कि फूल के बन्द होने पर उसी में बन्द हो जाता है पर उसे मालुम नहीं कि मैं पुष्प में सूर्यास्त होने से बंद हो गया हूँ किन्तु सोचता है कि प्रातः काल सूर्योदय से फूल खिलेगा और मैं उड़ जाऊँगा। वह मूर्ख यह नहीं सोचता कि मेरी मृत्यु हो जायेगी किन्तु सूर्योदय होने के पहले ही हाथी आता है और फूल को तोड़कर खा लेता है, भौंरे की मृत्यु हो जाती है जो वह भौंरा कठोर लकड़ी को छेदकर पार हो जाता है परन्तु विषयासक्त होने के कारण फूल की पत्तियों को छेदकर बाहर नहीं आता है इसी तरह कामी भोग भावना युक्त अपने जीवन को नष्ट कर देता है। नासिका में रोग हो जायें या सुगन्ध दुर्गन्ध के सूंघने से भी नाना प्रकार की बीमारियां देखी जाती है और मृत्यु भी हो जाती है। घ्राणेंद्रिय के विषय के दो भेद हैं और इनके अवान्तर भेद संख्यात, असंख्यात और अनन्तभेद हैं। सुगन्ध और दुर्गन्ध इन्हीं की मात्राओं में अनेक भेद हैं जो अपने अनुभव में आ जाते हैं। सुगन्ध से भी वेदना होती है और मृत्यु हो जाती है जैसे आदिनाथजी वज्रजंघ और श्रीमति की पर्याय में कमरे में सुगन्धित धूप के धुंआं के कारण से मृत्यु को प्राप्त हो भोगभूमि में आर्य आर्या हुए थे। और दुर्गन्ध की वास से तो कदम कदम पर प्राणी मनुष्य दुःखी देखे जाते हैं अतः दोनों से वेदना जन्य आर्तध्यान को प्राप्त कर मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।

प्रश्न— 2052 दुर्गन्ध से वेदना आर्तध्यान तो समझ में आ गया किन्तु सुगन्ध से भी आर्तध्यान होता है यह बात समझ में नहीं आई?

उत्तर सुगन्ध से भी वेदना आर्तध्यान उत्पन्न होता है जैसे मीठा रसगुल्ला प्रारम्भ में स्वादिष्ट होकर भी जब पेट भर जाता है तृप्ति हो जाती है फिर बाद में एक भी रसगुल्ला जहर जैसा मालूम होता है यहाँ तक कि अधिक खा लेने पर पेट फूलना, दर्द होना और मृत्यु भी हो जाती है इसी तरह सुगन्ध भी सूंघते सूंघते जब अधिकता हो जाती है तब अधिक सुगन्ध वाले पदार्थों की आकांक्षा

उत्पन्न होती है और पूर्व की सुगन्ध से वेदना होने लगती है अतः ठीक ही कहा है कि सुगन्ध से घ्राणेंद्रियजन्य वेदना आर्तध्यान उत्पन्न होता है।

प्रश्न– 2053 चक्षुइंद्रियजन्य वेदना आर्तध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर आँखों में उत्पन्न रोगों के द्वारा उत्पन्न कष्ट से मानसिक घबराहट को वेदना आर्तध्यान कहते हैं जैसे आँख में मोतियाबिंदु का होना, फोड़ा होना, आँख आना, जलन होना, फूलना आदि बीमारियों को निराकरण करने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहता है इसे ही नेत्रेंद्रियजन्य वेदना आर्तध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2054 चक्षुइंद्रियजन्य वेदना आर्तध्यान कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर किसी ने आकर आँखों में पट्टी बांध दी, हाथों से आँख दबा दी, कोई तीक्ष्ण सामग्री डाल दी सो उससे उत्पन्न वेदना से, घबराहट से चक्षुइंद्रियजन्य प्रारम्भ में अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान तथा बाद में वेदना आर्तध्यान उत्पन्न होता हैं। इनको आदि लेकर और भी अन्य कारणों से नेत्रजन्य वेदना आर्तध्यान उत्पन्न होता है।

प्रश्न– 2055 चक्षुइंद्रियजन्य वेदनाआर्तध्यान के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर चक्षुइंद्रिय के पाँच विषय हैं नाम :– काला, पीला, नीला, लाल और सफेद उनके अनेक भेद प्रभेद हो जाते हैं जिनका प्रमाण असंख्यात लोक प्रमाण है क्योंकि जिस किसी भी नेत्र के विषय के माध्यम से वेदना उत्पन्न हो सकती है इसलिए चक्षुइंद्रियजन्य वेदना आर्तध्यान के असंख्यात लोकप्रमाण भेद हो जाते हैं।

प्रश्न– 2056–57 कर्णेद्रियजन्य आर्तध्यान किसे कहते हैं? कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर कान सम्बन्धी नाना रोगों से उत्पन्न वेदना को निराकरण करने के लिए जो मन में छटपटाहट होती है सो उस छटपटाहट को कर्णेद्रियजन्य वेदनाआर्तध्यान कहते हैं अथवा भयंकर आवाज से, कान में फोड़ा होने से, मैल भर जाने से, कान बन्द करने से यह आर्तध्यान उत्पन्न होता है।

प्रश्न– 2058 कर्णेद्रियजन्य वेदना आर्तध्यान कितने प्रकार का है?

उत्तर कर्णस्वर सात प्रकार के होते हैं और गद्य पद्य के अनेक भेद प्रभेद हो जाते हैं। जितने प्रकार की बीमारी है उतने ही प्रकार की ये वेदना हैं अथवा जितने प्रकार के शब्द हैं उतने प्रकार के शब्दों के माध्यम से उत्पन्न राग, द्वेष, मोह रूप वेदना आर्तध्यान उत्पन्न होता है।

प्रश्न– 2059 शरीर और इंद्रिय वेदना के अलावा क्या केवल मन से भी वेदना आर्तध्यान उत्पन्न होता है?

उत्तर अपने में, पर में या उभय में भूतकाल, वर्तमान काल और भविष्य काल की वेदना में उपयोग लगाने से पुनः पुनः कम्पन भाव को मानसिक वेदना आर्तध्यान कहते हैं क्योंकि अपनी ही भूतकाल की भुक्त वेदना को याद कर मानस प्रत्यक्ष के द्वारा वर्तमान वेदना की तरह रोना, रोम रोम खड़े होना, पसीना आना हाथ पैरों में कम्पन होना, दांत कटकटाना आदि कार्य मानसिक वेदना आर्तध्यान कहलाता है। स्व अपने में स्वयं के लिए, पर दूसरों के लिए। उभय–दोनों के

लिए वेदना आर्तध्यान उत्पन्न होता है।

प्रश्न– 2060 स्व, पर और उभय की वेदना के प्रतिकार करने को अपायविचय धर्मध्यान कहते हैं और यहाँ वेदना प्रतिकार को वेदना आर्तध्यान कहा जा रहा है सो यह तो विरुद्ध कथन है?

उत्तर नहीं, विरुद्ध कथन नहीं है, अनुकूल कथन है। आपने वेदना आर्तध्यान और अपायविचय धर्मध्यान में क्या अन्तर है यह समझा नहीं है। धर्मध्यान में निस्वार्थ, प्रत्युपकार की भावना के बिना, निष्कपट भाव से वेदना का प्रतिकार करना है जो मोक्षमार्ग है, संवर निर्जरा तत्त्व है मोक्षमार्ग का साधकतम साधन है किन्तु वेदना आर्तध्यान में जीव राग, द्वेष, मोह के कारण कर्माधीन होकर पुनः विषय भोगों के लिए, आजीविका के लिए, बदला लेने के लिए, शारीरिक सौन्दर्य के लिए, ख्याति पूजा लाभ, प्रतिष्ठा के लिए वेदना का प्रतिकार करता है जो संसार मार्ग है, आश्रवबंध तत्त्व है, आश्रवबंध का साधकतम कारण है और मिथ्याचारित्र भी हो सकता है। प्रथम उत्थान का मार्ग है, सुख का मार्ग है तथा दूसरा पतन का मार्ग है, दुःख का, कष्ट का मार्ग है, संसार का मार्ग है, अशुभ संक्लेश रूप है। इस कारण हेतु के माध्यम से ही संसार का मार्ग और मोक्ष का मार्ग बनता है अथवा धर्मध्यान स्वभाव है तो वेदना आर्तध्यान विभाव है विकार है। इस कारण अनुकूल कथन है प्रतिकूल नहीं। केवल विवक्षा समझना है।

प्रश्न– 2061 निदान किसे कहते हैं?

उत्तर निर्णय करने को निदान कहते हैं, जानकारी करने को भी निदान कहते हैं, प्राप्त करने की इच्छा को भी निदान कहते हैं। निःदान ऐसा पदच्छेद करने से दान नहीं देना ऐसा भी अर्थ होता हैं जैसे नि कल शरीर रहित अवस्था।

प्रश्न– 2062–63 निदान का कौन सा अर्थ इष्ट है? निदानार्तध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर निदान का चाहना अर्थ इष्ट है। वर्तमान में कुछ अच्छे कार्य करके, सदाचार का पालन करके, उसके फल को भविष्य में प्राप्त करने के लिए एकाग्र मन होने को तथा अपने विषय भोगों में, तत्सम्बन्धी सामग्री में बाधा उत्पन्न करने वालों के प्रति बदला लेने की भावना को निदान आर्त ध्यान कहते हैं अथवा ख्याति पूजा लाभ की भावना को निदान आर्तध्यान कहते हैं क्योंकि इसमें भी भविष्य में फल प्राप्त करने की, भोग विलास की आकांक्षा है। श्रावक या श्राविका यदि उच्चपद को प्राप्त करके भी भोगसामग्री को चाहता है तो उसका यह निदान आर्तध्यान है जो संसार में पतन स्वरूप है। नारायण आदि के समान फल प्राप्त होगा ऐसा समझना चाहिए।

प्रश्न– 2064 निदान आर्तध्यान कब उत्पन्न होता है?

उत्तर जब वर्तमान में भोग सामग्री की कमी है, अतृप्ति है, शक्ति कमजोर है, धन वैभव की कमी है, वस्त्राभूषण की कमी है, भावी काल में प्राप्त करने की भावना को, अतृप्ति को अप्राप्ति की प्राप्ति करने के लिए निदान आर्तध्यान उत्पन्न होता है।

प्रश्न– 2065–66 वर्तमान काल किसे कहते हैं? भविष्य किसे कहते हैं?

उत्तर वर्तमान काल एक समय का है अथवा रात्रिदिन को या पक्ष को, महीना को, वर्ष को, अवसर्पिणी

काल को भी वर्तमान काल कहते हैं। सो एक समय आदि के बाद से लेकर सारा जीवन और अगला भव तथा अगले अनन्त भव या आगे का समस्त समय समस्त काल भावी भविष्य कहलाता है अथवा वर्तमान एक क्षण के बाद आगे के समस्त समय भविष्य कहलाते हैं।

प्रश्न– 2067–68 क्यों और किस कारण से निदान आर्तध्यान उत्पन्न होता है? इस निदान आर्तध्यान का क्या फल है?

उत्तर जब वर्तमान काल में भाग्य और पुरुषार्थ के द्वारा प्राप्त चेतन अचेतन और मिश्र सामग्री में अतृप्ति, असंतोष होता है तब दूसरों की भोगोपभोग की सामग्री को देखकर, सुनकर मैं भी प्राप्त करूं, प्राप्त हो ऐसी आकांक्षा से विशेष जप, तप, व्रत, उपवास, त्याग, संयम, बालव्रत, बालतप का पालन करता है कि मेरे को यह पूजापाठ कर के फल, वैभव, पदवी, सौन्दर्य, सन्तान चाहिए। अतः विषय भोगों के लिए तथा विषय भोगों में सहायक सामग्री की प्राप्ति के लिए यह निदान नाम का आर्तध्यान होता है। इच्छानुसार विषय भोगों की सामग्री दिलाकर, विषय भोगों में रमण कराकर, कालान्तर में नरक निगोद का दुःख प्राप्त करता कराता है। यह निदान नाम का आर्तध्यान पाँचों इंद्रिय और मन से उत्पन्न होता है। चारों गतियों के भव्य अभव्य, सैनी असैनी, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि जीव स्वामी हैं। कदाचित् अणुव्रती भी स्वामी हैं।

प्रश्न– 2069 ख्याति पूजा लाभ की भावना रूप निदान आर्तध्यान गृहस्थों के किस प्रकार से उत्पन्न होता है?

उत्तर जैसे किसी देशसैनिक गृहस्थ के मन में आया कि में युद्ध करूंगा तो मेरी जीत होगी तब अनेक जन प्रशंसा करेंगे, प्रशंसा होगी, मेरा नाम चलेगा, यह सैनिक बहुत अच्छा है इस भावना का नाम ख्याति है। मेरे को सम्मान मिलेगा, सम्मान पत्र मिलेगा, जगह जगह लोग आदर की दृष्टि से देखेंगे, बहुमान भी प्राप्त होगा, माला पहनायी जायेगी, मेरी मूर्ति चौराहे पर लगाई जायेगी, मेरे नाम के दरवाजे बनेंगे यह पूजा की भावना है। अनेक प्रकार की पदवी, उपाधि प्राप्त होगी, स्वर्ण पदक, रजतपदक प्राप्त होंगे, धन वैभव, चेतन, अचेतन, मिश्र सामग्री इनाम रूप में प्राप्त होगी यह लाभ की भावना है। इस प्रकार की भावना निदान आर्तध्यान है जो गृहस्थों के होती है, हो सकती है। कोई गृहस्थ पूजा करते हुए सोच रहा है कि लोग कहेंगे यह कितनी सुन्दर पूजा कर रहा है, कितना अच्छा कण्ठ है, हमारी प्रशंसा होगी यह ख्याति की भावना है। लोग पुजारी, भक्त मानकर, आदर सम्मान करेंगे सो यह पूजा की भावना है और मेरी पगार बढ़ जायेगी, मकान दुकान मिल जायेगी, शादी अच्छी जगह हो जायेगी, खूब पैसा मिल जायेगा, लोग पुजारी, पंडित कहकर बुलायेंगे आदि यह लाभ की भावना है। यह ख्याति पूजा लाभ की भावना रूप निदान आर्तध्यान है। कोई गृहस्थ दान, स्वाध्याय, प्रवचन कर रहा है तब उसके मन में विचार उत्पन्न हुआ कि मुझे लोग दानवीर, पंडित कहकर पुकारेंगे, मेरा दाताओं में नाम आ जायेगा, मुनियों के द्वारा प्रशंसा होगी, सेठ पंडितों के द्वारा गुणगान गाया जायेगा यह ख्याति की भावना है। यह दाता है, दानवीर है, आदर सम्मान, माला मुकुट पहनाया जायेगा, दाता के नाम पर नारा लगाया जायेगा यह पूजा की भावना है। मुझे दानवीर की, पंडितों की आदि नाना प्रकार की पदवी प्राप्त

होगी, पंचाश्चर्य होगा यह लाभ की भावना है। इस प्रकार यह ख्याति पूजा लाभ की भावना से गृहस्थों के निदान आर्तध्यान उत्पन्न होता हैं। कदाचित् अणुव्रतियों के भी उत्पन्न हो सकता है।

प्रश्न– 2070 मुनियों के निदान आर्तध्यान क्या होता है या नहीं?

उत्तर प्रमत्ताप्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनियों के निदान आर्तध्यान नहीं होता है किन्तु विषय लोलुपी और असंतोषी कोई गृहस्थ मुनि बन गया तथा ख्याति पूजा लाभ के चक्कर में पड़कर नारायण, प्रतिनारायण, नारद, रौद्रों की तरह विषय भोगों का निदान कर बैठा अथवा प्रमत्ताप्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनि कदाचित् निदान आर्तध्यान के परिणामों को प्राप्त करते ही संयत गुणस्थान से गिरकर असंयमी मिथ्यादृष्टि होकर संसार में भ्रमण कर जाते हैं अतः निदान आर्तध्यान मुनियों के हो भी सकता है किंतु निदान के भाव आते ही भावमुनिपद छूट जाता है।

प्रश्न– 2071 मुनियों के निदान आर्तध्यान किस प्रकार से उत्पन्न होता है?

उत्तर जैसे कोई शरीर से निर्ग्रंथ और अंतरंग में 1–5वें गुणस्थान वाले द्रव्यलिंगी मुनि ध्यान करने बैठे हैं तब प्रमादवश या कमजोरी या बीमारी के कारण दीवाल से टिककर, पैर लम्बाकर बैठकर या लेटकर ध्यान कर रहे हैं। इसी समय दर्शनार्थियों के आते ही ठीक से बैठ गये, सीधे हो गये, स्थिर हो गये। कारण ये दर्शनार्थी क्या कहेंगे? ये कैसे महाराज है? कैसे ध्यान कर रहे हैं? आदि कारणों से लज्जावश सीधे बैठ गये तब ये दर्शनार्थी कहेंगे देखा! महाराज पत्थर की मूर्ति के समान ध्यान कर रहे हैं यह ख्याति की भावना है। ऐसी निश्चल मुद्रा को देखकर आदर सम्मान, प्रशंसा होगी यह पूजा की भावना है तथा दर्शनार्थीगण ये ध्यानी हैं, तपस्वी हैं आदि उपाधियां प्रदान करेंगे यह लाभ की भावना है। प्रवचन के सम्बन्ध में महाराजजी, आचार्य श्री अच्छा प्रवचन करते हैं यह ख्याति की भावना है। सिंहासन मिलेगा, माईक मंच मिलेगा यह लाभ की भावना है। श्रोतागण अच्छा ज्ञानी, प्रवचनकर्ता, वक्ता मानकर आदर सम्मान करेंगे भक्त बनेंगे यह लाभ की भावना है। जिस किसी भी प्रकार से मुनि पद में रहकर ख्याति पूजा लाभ, पदवी आदि की, स्वर्गस्थ भोग सामग्री की, वैभव की आकांक्षा कर निदान आर्तध्यान को और मिथ्याचारित्र को प्राप्त हो जाता है। यह निदान आर्तध्यान हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह इन पापों से भी ज्यादा हानिकारक है। आजकल अधिकतर साधुवर्ग, आचार्य, आर्यिका तथा छोटे बड़े त्यागी वर्ग भीड़ को इकट्ठी करने के लिए उसी प्रकार का प्रवचन करना, कार्यक्रम करना, कराना फोट्, कैसेट वितरण करना कराना, अनेक प्रकार से इनाम देकर या दिलाकर प्रजा को इकट्ठा कर अपनी प्रशंसा कराना आदि कार्य बिना ख्याति पूजा लाभ की भावना के बन नहीं सकते। ये नामधारी साधुवर्ग अपने षट् आवश्यक कर्तव्यों का, मौनव्रत का, समिति का पालन न कर, किसी भी तरह से धर्मध्यान न कर कार्यक्रमों में रम जाते हैं। उपाधियों की, पदवियों की भरमार है, ''नाम बड़े और दर्शन थोड़े'' जैसी कहावत चरितार्थ हो रही है। इसी दुश्चर्या का फल है कि साधु और श्रावक दोनों बदनाम हो रहे हैं।

प्रश्न– 2072 स्पर्शेंद्रियजन्य निदान आर्तध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर धर्म धारण करके धर्म का फल मेरे को प्राप्त हो ऐसा स्पर्शेंद्रिय की विषय सामग्री को, कामसेवन

की सामग्री को, शरीर सम्बन्धी सजावट की सामग्री, कामी कामिनी, शृंगार अलंकार, वस्त्राभूषण, तेल, मकान, शय्या, आसन, गादी तकिया आदि इसी समय में या आगामी समय में, इसी भव में या अगले भव में प्राप्त करने की आकांक्षा को स्पर्शेंद्रियजन्य निदान आर्तध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2073 स्पर्शेंद्रियजन्य निदान आर्तध्यान कितने प्रकार का है?

उत्तर स्पर्शेंद्रिय का विषय आठ प्रकार का है। यह आठ प्रकार का विषय अपने मनोनुकूल होने से और प्राप्त करने की आकांक्षा के कारण निदान आर्तध्यान भी आठ प्रकार का हो जाता है। जितने प्रकार का विषय होगा उतने प्रकार से प्राप्त करने की आकांक्षा रूप निदान आर्तध्यान होगा। अतः इस आर्तध्यान के असंख्यात लोक प्रमाण भेद हैं।

प्रश्न– 2074 ये स्पर्शेंद्रिय के आठ विषय मनोज्ञ हैं या अमनोज्ञ?

उत्तर ये आठों विषय स्पर्शेंद्रिय के मनोज्ञ भी हैं और अमनोज्ञ भी हैं क्योंकि प्रत्येक वस्तु अनन्त धर्मात्मक है। जब संसारी मोही, प्रमादी, असंयमी प्राणी वस्तु के जिस धर्म को माध्यम बनाकर परिणमन करता है अथवा अपने उपयोग को उन वस्तुओं के धर्म को माध्यम बनाकर रागरूप से परिणमन करता है तो उसे मनोज्ञविषय का आर्तध्यान कहते हैं और उसी वस्तु के प्रतिपक्षी धर्म को द्वेषभाव के माध्यम से उपयोग लगाकर परिणमन करता है तो उसे अमनोज्ञ विषय का आर्तध्यान कहते हैं अथवा यों कहो कि उस चेतन, अचेतन वस्तु का धर्म, मनोज्ञ और अमनोज्ञ इंद्रियों के माध्यम से अगोचर होकर भी, इंद्रियगम्य न होकर भी, उपयोग के माध्यम से इन्द्रिय गोचर होने लगते हैं क्योंकि प्रमत्त जीवों के द्रव्यगुण और अधिकतर पर्यायें इंद्रिय अगोचर है तथा कुछ ही मूर्तिक पर्यायें इंद्रिय गोचर हैं।

प्रश्न– 2075 निदान आर्तध्यान राग से होता है या द्वेष से बताओ?

उत्तर यह निदान आर्तध्यान राग से भी होता है और द्वेष से भी होता है। स्वयं के लिए भोग और उपभोग के सम्बन्ध में राग से होता है तथा पर के भोग और उपभोग के लिए राग से भी हो सकता है और द्वेष से भी। जैसे दूसरों को कष्ट में डालने के लिए जहर मिश्रित लड्डू बनाकर खिला दिये या कष्ट देने के विचारों से नटखट बेढंग की लड़की या लड़के से विवाह करा दिया या व्यापार करा दिया या संगति करा दी और वशिष्ट मुनि बदला चुकाने के लिए निदान आर्त ध्यान से राजा उग्रसेन की रानी के गर्भ से कंसरूप में उत्पन्न हुए और उस कंस ने समर्थ होकर अपने पिता को जीतकर बन्दी बनाया उसी प्रकार राग भाव से भी निदान किया जाता है। जैसे नारायण बलभद्र का या पारिवारिक संबंध राग पूर्वक निदान आर्तध्यान के फल हैं।

प्रश्न– 2076 जिस प्रकार पर के लिए कष्ट के विचार से द्वेष पूर्वक निदान आर्त –ध्यान होता है ठीक उसी तरह स्वयं के लिए निदान क्यों नहीं होता?

उत्तर जिस प्रकार दूसरों को कष्ट देने के लिए या जान से मारने के लिए निदान आर्तध्यान करता है ठीक उसी तरह स्वयं के लिए निदान नहीं करता क्योंकि कोई भी प्राणी स्वयं अपने आप में दुःखी नहीं होना चाहता, न मरना चाहता है फिर भी आजकल जो नरनारी स्वयं आत्महत्या करते हुए पाये जा रहे हैं वह उनका निदान आर्तध्यान का फल नहीं है किन्तु वेदना आर्तध्यान या अनिष्ट

संयोगज आर्तध्यान का फल है। जब वह प्राणी कमजोर हृदयवाला वेदना के असह्य होने के कारण या अप्रिय संगति से जब नाना प्रकार की निष्कारण कष्टदायक परिचर्या होने लगती हैं तब वह पुरुषार्थहीन होकर, जीवन से हताश हो मरण को वरण करता है। अतः स्वयं के लिए निदान आर्तध्यान राग से होता है, द्वेष से नहीं।

प्रश्न— 2077 रसनेंद्रिय जन्य निदान आर्तध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर रस नामक गुण के सामान्यतया 5 भेद हैं और विशेषतः असंख्यात लोक प्रमाण भेद हैं। स्वाद लेने वाले प्राणी शरीरधारी असंख्यात हैं सभी को खाने पीने की आकांक्षा होती है, अतः भोजन के सम्बन्ध में मेरे को इस प्रकार का स्वादिष्ट और पौष्टिक भोजन चाहिए, इस भोजन की आकांक्षा में स्वयं स्थिर हो जाना, पकवान्न मिष्ठान्न के रस प्राप्त करने के लिए स्थिर होना उसे रसनेंद्रियजन्य आर्तध्यान कहते हैं।

प्रश्न— 2078—2079 आहार संज्ञा और रसनेंद्रियजन्य आर्तध्यान में क्या अन्तर है? स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर आहार संज्ञा सामान्य है समस्त प्रमादी जीवों के एकेंद्रिय जीवों से लेकर पंचेंद्रिय पर्यन्त चारों गतियों के जीवों के होती है तथा रसनेंद्रियजन्य निदान आर्तध्यान विशेष है और मनुष्यों के होने से संख्यात प्राणी स्वामी हैं। कोई कोई खाने पीने के लोलुपी गृहस्थ त्यागीव्रती साधु बन करके भी रसनेंद्रियजन्य निदान आर्तध्यान के स्वामी हो जाते है। मायाकषाय और लोभ कषायोदय से आहार संज्ञा होती है तथा निदान आर्तध्यान चारों कषायोदय से या समस्त चारित्र मोहनीय कर्मोदय से होता है। सामान्य विशेष की अपेक्षा, स्वामी और संख्या में, आहार संज्ञा में सभी शुभाशुभ लेश्यायें होती हैं किंतु निदान आर्तध्यान में अशुभ लेश्यायें ही होती हैं यही अंतर है।

प्रश्न— 2080 रसनेंद्रियजन्य निदान आर्तध्यान कितने प्रकार का है?

उत्तर आहार के या स्वाद के जितने भेद हैं उतने ही आकांक्षा के लिप्सा के भेद हैं तथा उतने ही रसनेंद्रियजन्य निदान आर्तध्यान के भेद हैं। हमको इस प्रकार का स्वादिष्ट पौष्टिक आहार चाहिए इस भावना से रसनेंद्रियजन्य निदान आर्तध्यान भेद हो जाते हैं।

प्रश्न— 2081—82 घ्राणेंद्रियजन्य निदान आर्तध्यान किसे कहते हैं? इसके स्वामी कौन कौन जीव हैं?

उत्तर सूंघने योग्य सुगन्धित पदार्थों को भविष्य में प्राप्त करने के लिए आकुलित होने को घ्राणेंद्रिय जन्य निदान आर्तध्यान कहते हैं। आजकल कितने ही मनुष्य पुष्प, इत्र, चन्दन, तेलादि लगाकर पुनः पुनः सूंघते हुए देखे जाते हैं इस आर्तध्यान के कारण पुण्य पाप का, हिंसा अहिंसा का, अच्छे बुरे का विचार नहीं करते। तिर्यंचायु का बंध कर मरकर भौंरा बन जाते हैं, खूब पराग सूंघते रहो, मर जाओ पर छोड़ों मत उसे घ्राणेंद्रियजन्य निदान आर्तध्यान कहते हैं। त्रीं द्रिय जीव, चौइंद्रिय जीव, पंचेंद्रिय जीव चारों गतियों के घ्राणेंद्रियजन्य निदान आर्तध्यान के स्वामी हैं।

प्रश्न— 2083 घ्राणेंद्रियजन्य निदान आर्तध्यान के कितने भेद हैं?

उत्तर घ्राणेंद्रिय के विषयों के जितने भेद हैं उतने ही अथवा उनसे भी अनन्तगुणे परिणाम भेद हैं

इसलिए घ्राणेंद्रियजन्य निदान आर्तध्यान के उतने ही भेद हैं क्योंकि मकान के जितने दरवाजे हैं उतने ही हवा पानी धूल धूप के आने के रास्ते हैं। इसी तरह जितने विषय के भेद हैं उतने ही विषय को ग्रहण करने के परिणामों के भेद हैं। कदाचित् विषय की सीमा हो सकती है किन्तु परिणामों की सीमा नहीं हो सकती है अतः असंख्यात लोक प्रमाण भेद कहे हैं। सुगन्ध और दुर्गन्ध विषय के भाव भेद से इस ध्यान के भी संख्यात असंख्यात और अनन्त भेद हो जाते हैं।

प्रश्न– 2084 घ्राणेंद्रियजन्य निदान आर्तध्यान कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर भविष्य में गन्ध की पर्यायों को सूंघकर पुनः पुनः सूंघने के विचारों को, सामग्री को सूंघने के लिए संग्रह करने से या योजना बनाने से घ्राणेंद्रियजन्य निदान आर्तध्यान उत्पन्न होता है।

प्रश्न– 2085 चक्षुइंद्रियजन्य निदान आर्तध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर देखने योग्य सुन्दर चित्र, वस्त्राभूषण, स्त्री पुरुष, पशुपक्षी काम भोग की सामग्री को पुनः पुनः देखने के विचारों को अथवा भविष्य में मेरे को देखने के लिए चाहिए इस प्रकार की आकुलता को, घबराहट को, प्राप्त करने की आकांक्षा को चक्षुइंद्रियजन्य निदान आर्तध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2086 इस चक्षुइंद्रियजन्य निदान आर्तध्यान के कितने भेद हैं?

उत्तर जितने रूप के वर्ण के भेद हैं उतने चक्षु इंद्रिय जन्य निदान आर्तध्यान के भेद हैं क्योंकि देखने योग्य वस्तु के विषय के संख्यात असंख्यात या अनंत भेद होते हैं।

प्रश्न– 2087 चक्षुइंद्रियजन्य निदान आर्तध्यान से क्या हानि है?

उत्तर इस निदान आर्तध्यान के फलस्वरूप मनुष्य होकर भी टी.वी. के देखने में इतना आसक्त हो रहा है कि आँखें खराब, पढ़ाई लिखाई समाप्त हो रही है, आचार विचार, रोटी बेटी बिगड़ रही है। भारतीय, धार्मिक, पारिवारिक संस्कृति प्रायः नष्ट हो रही है। पाश्चात्य देशों की नकल करने से अपनी शिक्षा, संगति, संस्कार बिगड़ रहे है इस कारण बालक बालिकाओं में धर्म की, जातिकुल की मान मर्यादायें प्रायः कर नष्ट हो रही हैं, आँखों में अन्धापन आ रहा है। टी.वी. के कार्यक्रमों में इतने आसक्त हो रहे हैं कि चोर चोरी कर ले जाते हैं, अपहरण काण्ड हो जाते हैं और भी अनेक हानियां होती है जो वर्तमान में सबके प्रत्यक्ष हैं। ''हाथ कंगन को आरसी क्या?''

प्रश्न– 2088 शिक्षा संगति संस्कार कैसे बिगड़ रहे हैं?

उत्तर जैसे गिलास में कोई समान नहीं है खाली है तो उसमें दूध पानी, घी आदि, धान्य, मिट्टी, धूली, मलमूत्र भर दो, अच्छा बुरा कुछ भी भर सकते हो, खट्टे मीठे, रसीले सूखे कुछ भी भर दो किन्तु भरने के बाद में क्या भरोगे? यदि भरना है तो पहले खाली करो फिर बाद में भरो। इसी तरह नंगे पिक्चर, नंगे गीत, संगीत, चोरी डकैती, शल्य चिकित्सा, गर्भपात, गर्मधारण, प्रेम व्यवहार, प्रेम विवाह, चाटुकारी, व्यापार आदि कार्यों को देखकर बच्चों का दिमाग इन बाह्य कार्यकारणों से भर गया फिर पठन की चर्या, अध्ययन दिमाग में कैसे जमेगा? कैसे याद होगा? जैसे उस गिलास को पुनः भरने के लिए खाली करके फिर भर सकते हैं वैसे ही जब मन पहले की बातों से खाली हो तब पाठ याद हो जैसे लिखे पर नहीं लिखा जाता, भरे में नहीं भरा जाता इसी तरह भरे दिमाग में याद नहीं होगा, खाली दिमाग में याद होता है, स्वच्छ दिमाग में जल्दी याद होता

है। इसलिए जीवन सुधारने के लिए टी.वी. चलचित्रों का, लौकिक पत्र पत्रिकाओं को पढ़ने का, देखने का, सुनने का त्याग कर देना चाहिए। अन्यथा जीवन अनाड़ियों, अनार्यों जैसा व्यतीत होगा आदि महान हानि है। अब वर्तमान में धर्म की शिक्षा नहीं, सज्जनों की संगति नहीं तथा धर्मानुकूल संस्कार नहीं डाले जाते हैं केवल लौकिक शिक्षा, अनार्यों की संगति और अनाचार के संस्कार डाले जाते हैं। अतः सत्शिक्षा, सद्संगति और समीचीन संस्कार बिगड़ रहे हैं।

प्रश्न– 2089 नेत्रेंद्रियजन्य निदान आर्तध्यान से क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर जिस प्रकार पतंगा देखने का लोलुपी दीपक में जलकर, लाईट में झुलसकर, बार बार झपटकर, गिरकर मर जाता है उसी प्रकार यह प्राणी नेत्रेंद्रियजन्य निदान आर्तध्यानी, विषय लम्पटी बनकर अपना मन वचन काय या तन मन धन और धर्म को नष्ट कर नरक निगोद में जाकर जन्म मरण के दुःखों को भोगता है यही महान कष्टप्रद फल प्राप्त होता है।

प्रश्न– 2090 नेत्रेंद्रिय जन्य निदान आर्तध्यान कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर स्वयं के पास में आँख से देखने योग्य मनोहर रंग बिरंगी सामग्री न होने से, मन में अतृप्ति, असंतोष होने से, प्राप्त करने की आकांक्षा होने से, दूसरों के वस्त्र, अलंकार, शृंगार, शारीरिक सौंदर्य देखकर, मकान, दुकान को प्राप्त करने की भावना उत्पन्न होती है कि मेरे को चाहिए इसके बिना जीवन अधूरा है इस प्रकार यह आँखजन्य निदान आर्तध्यान उत्पन्न होता है।

प्रश्न– 2091 कर्णेंद्रियजन्य निदान आर्तध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर मनुष्यों या पशु पक्षियों की आवाज को सुनने की आकुलता हो या भविष्य में मेरे को ऐसा कण्ठ प्राप्त हो या ऐसी सुरीली आवाज मेरे को हर वक्त सुनाई दे ऐसी भावना को कर्णेंद्रिय जन्य निदान आर्तध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2092 कर्णेंद्रियजन्य निदान आर्तध्यान के कितने भेद हैं?

उत्तर बोलने वालों के, गाने वालों के जितने भेद हैं उतने ही कर्णेंद्रियजन्य निदान आर्तध्यान के भेद हैं। वर्तमान काल में भी अनेक व्यक्ति, कामी कामिनी परस्पर में आवाज सुनने के लिए बहुत दुःखी होते हैं कि मैं उसके या उसकी आवाज सुन लूं, दो शब्द सुना दे, डॉक्टर वैद्यों से कहकर कि इनके दो शब्द सुनवा दो, इस प्रकार की दवाई दो कि इनकी आवाज आ जाये चाहे कितना पैसा खर्च हो जाये, आवाज के पीछे धर्म की चिन्ता नहीं करते। शब्द विषय के बराबर भेद हैं अथवा शब्द विषयों से भी अनंत गुणे भेद हैं जो केवलज्ञान गम्य हैं।

प्रश्न– 2093 कर्णेंद्रियजन्य निदान आर्तध्यान से क्या हानि है?

उत्तर जैसे हिरण, सर्प ये बीन की आवाज को सुनने के लोलुपी सुरीली आवाज को सुनकर भागते हुए, सुरक्षित होते हुए भी सामने आकर खड़े हो जाते हैं, बिल से निकलकर बाहर आ जाते हैं। ये अपने जीवन को समाप्त करवा लेते हैं। मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। सर्प मनुष्य के आधीन हो जाते हैं अथवा टी.वी. में, रेडियों में आ रहे कार्यक्रम को सुनने में, देखने में इतने आसक्त हो जाते हैं कि खाना पीना, पढ़ना लिखना, दानपूजा, अतिथियों का आदर सम्मान, गाड़ी ट्रेन का समय, ऑफिस मंदिर का समय सब भूल जाते हैं, चोरियां हो जाती हैं, जेब कट जाते हैं, अपहरण हो

जाते हैं। टी.वी. में आ रहे खेलकूद के सम्बन्ध में, हार जीत के सम्बन्ध में सट्टा जुआ खेलने लगते हैं इससे अपना सर्वस्व खो बैठते हैं, मारपीट हो जाती है। प्रेम विवाह हो रहा हैं। आत्महत्या करते हैं तथा नवीन पीढ़ी का जीवन बहुत बिगड़ रहा है। जो सब जानते हैं।

प्रश्न— 2094 निदान आर्तध्यान और निदान शल्य में क्या अन्तर है?

उत्तर भविष्यकाल में विषय भोगों की, सामग्री की, शरीर की प्राप्ति की भावना में, आकांक्षा में स्थिर होना निदान आर्तध्यान है और शल्य कांटे की सुई की चुभन की तरह विकल्प रूप है अर्थात् आर्तध्यान स्थिर रूप है तो शल्य अस्थिर है चुभन स्वरूप है यही अंतर है।

प्रश्न— 2095 निदान आर्तध्यान और सम्यग्दर्शन के कांक्षा दोष रूप अतिचार में क्या अन्तर है?

उत्तर निदान आर्तध्यान चारित्रगुण का विकार है और कांक्षा श्रद्धान का दोष है अतिचार है। आकांक्षा जिस गुण के विकार स्वरूप हैं उसका दोष अतिचार माना जायेगा। श्रद्धान के विषय में, ज्ञान के विषय में या चारित्र के विषय में कांक्षा होना अतिचार नहीं है, दोष नहीं है किन्तु श्रद्धान ज्ञान और चारित्र को अंगीकार करके इनके फलस्वरूप सांसारिक, शारीरिक भोग चाहना, सामग्री चाहना इसका नाम अतिचार है, दोष है, जो आत्म साधना की विराधना का साधकतम साधन है। इस कारण निदान आर्तध्यान चारित्रगुण का विकार होने से चारित्र का दोष है, कांक्षा दोष श्रद्धान के योग्य पदार्थों में होने से सम्यग्दर्शन का दोष है, अतिचार है यही इन दोनों में अन्तर है। अन्य अंतर आप्तोपज्ञ आगम से, अपने निष्पक्ष, स्वतंत्र, निर्दोष चिन्तन से समझ लेना चाहिए।

प्रश्न— 2096 धर्मगुरु, धर्मायतन के वियोग होने पर उत्पन्न अंतर में वेदना को इष्ट वियोगज आर्तध्यान कह सकते हैं क्या?

उत्तर नहीं, क्योंकि आर्तध्यान विषयभोगों के निमित्त से या विषयभोगों के लिए, इंद्रिय सुख के लिए होता है और धर्मगुरु, धर्मायतन आत्महित में सहायक होने से, मोक्षमार्ग दर्शक होने से, आत्महित इष्ट होने से मोक्षमार्ग के रत्नत्रय के अंग है धर्मध्यान के अंग है। मोक्षमार्गोपदेशक होने से धर्मध्यान के साधन होने से, धर्म के अंग हैं, धर्मध्यान के विषय हैं अतः अभेद विवक्षा से धर्मध्यान ही है इसलिए इसे इष्ट वियोगज आर्तध्यान नहीं कहते, न कह सकते हैं किन्तु मोक्षमार्ग है।

प्रश्न— 2097 त्याग धर्म, केशलोंच, उपवास आदि दुःख के साधन होने से अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान कह सकते हैं क्या?

उत्तर नहीं, जिस प्रकार जलता हुआ दीपक अन्धकार का साधन नहीं, किन्तु प्रकाश का साधक है उसी प्रकार धर्म के अंग, मोक्षमार्ग के अंग है कभी भी संसार के अंग नहीं बन सकते हैं। ये त्याग, व्रत आदि का अभ्यास, वैराग्य न होने से कष्ट देने वाले मालुम पड़ते हैं किन्तु अभ्यास और वैराग्य होने से दुःख देने वाले न होकर, आत्मसुख, शान्ति के अन्यतम साधकतम साधन है। जिस प्रकार अनभ्यासी और अजानकार बालक को जब पढ़ाने भेजते हैं तब वह कितना रोता है। खाने पीने का, कपड़े का, खेलने की सामग्री का, रुपये पैसे का, लोभ देकर पढ़ने को भेजते हैं। इतने पर यदि नहीं मानता है तो मारपीटकर, जबरदस्ती, बांधकर भेजते हैं। फिर भी रोते रोते पढ़ता है।

बाद में अभ्यास हो जाने पर वह बालक प्रसन्न मन से पढ़ता है, सुखी होता है। इसी तरह संसारी प्राणी अभ्यासी इन व्रत, संयम, केशलोंच, उपवास आदि का पालन करता हुआ दुःखी नहीं होता किन्तु सुखी होता है तथा मूर्ख, प्रमादी प्राणी दुःखी होता है और मूर्खता आदि दुःख के कारण हैं, दुःख स्वरूप हैं अतः सत्संग आर्तध्यान नहीं, आर्तध्यान का कारण नहीं।

प्रश्न– 2098 किसका पालन करना अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान कहलाता है?

उत्तर मोक्षमार्ग के विरुद्ध स्वभाव वाले अविवेकता, मूर्खता, व्यसनसेवन, अन्याय, अभक्ष्यसेवन, अत्याचार, अनाचार का पालन करना, मान, मर्यादा नष्ट करना अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान कहलाता है।

प्रश्न– 2099 प्रमाद किसे कहते हैं?

उत्तर विषय कषायों से परिपूर्ण होकर मोक्षमार्ग में तथा मोक्षमार्ग के साधनों में असावधानी अनुत्साह करने को तथा अपने इष्ट लक्ष्य में स्थिर न होने प्रमाद कहते हैं।

प्रश्न– 2100 असावधानी किसे कहते हैं?

उत्तर कुछ का कुछ बोलना, कुछ का कुछ करना, कहीं की वस्तु कहीं रख देना, बायें हाथ से गमनागमन करना, अपनी जातिकुल और धर्म की मर्यादा का उल्लंघन करना आत्मोत्थ कार्यों को छोड़कर, पतन के कार्य करने को, अन्यथा विचारों को असावधानी कहते हैं।

प्रश्न– 2101 प्रमाद कितने प्रकार का होता है?

उत्तर प्रमाद दो प्रकार का है अथवा 15 प्रकार का है अथवा 80 प्रकार का है अथवा 37500 प्रकार का है अथवा अनन्त भेद हैं। चारित्र मोहनीय का परिणाम होने से अध्यवसान भावस्वरूप भी है।

प्रश्न– 2102–04 वह दो प्रकार का प्रमाद कौन सा है? नाम और लक्षण क्या है?

उत्तर वह प्रमाद चर्या सम्बन्धी और ध्यान सम्बन्धी के नाम से दो प्रकार का है। व्रत और समितियों में, मूलगुण उत्तरगुणों के पालन करने में, षडावश्यकों के पालन करने में, असावधानी वर्तना प्रथम चर्या सम्बन्धी प्रमाद है, इससे बाह्यचर्या आचरण दूषित हो जाता है। दूसरा प्रमाद संयम पूर्वक निर्विकल्प ध्यान में, अनन्त धर्मात्मक वस्तु स्वभाव में, निश्चल, निष्कंप, स्थिर नहीं हो पाता है किन्तु निश्चय, निष्कंप, शुद्ध आत्मा के बाहर विकल्प धारा में रहने से या अखण्ड के खंड कर, भेदकर कषायोदय के साथ परिणमन करने को अध्यात्म प्रमाद कहते हैं।

प्रश्न– 2105–06 इन दोनों प्रकार के प्रमादों के स्वामी कौन जीव हैं? और कौन–कौन जीव नहीं हैं?

उत्तर चारों गतियों के समस्त प्राणी मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर प्रमत्तसंयत नामक छठवें गुणस्थान तक के गृहस्थ, देशव्रती, महाव्रती स्वामी हैं। अनंतानुबंधी कषाय के उदय से मिथ्यात्व गुणस्थान और सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रमाद होता है। अप्रत्याख्यानावरण कषायोदय से मिश्र गुणस्थान और असंयत गुणस्थान तक प्रमाद होता है। प्रत्याख्यानावरण कषायोदय से पाँचवें देश संयत नामक गुणस्थान तक प्रमाद होता है तथा संज्वलन कषायोदय से प्रमत्त संयत नामक छठवें गुणस्थान तक प्रमाद होता है तथा प्रमत्तसंयत गुणस्थान से आगे अप्रमत्तसंयत गुणस्थान

से लेकर अयोगकेवली नामक चौदहवें गुणस्थान पर्यन्त तथा सिद्ध परमेष्ठी भगवन्त इस प्रमाद के स्वामी नहीं हैं क्योंकि यहाँ इन गुणस्थानों में और सिद्धों में ध्यानावस्था होने से, चारित्र मोह कर्म के तीव्रता के अभाव में तथा समूल क्षय होने से प्रमाद का अभाव है।

प्रश्न— 2107 इन दोनों प्रकार के प्रमादों का त्याग कौन कौन जीव कर सकते हैं?

उत्तर प्रथम चर्यासम्बन्धी प्रमाद का त्याग मनुष्यगति के तथा तिर्यंचगति के भव्य जीव, अभव्य जीव सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि जीव, सैनी पंचेद्रिय पर्याप्तक प्राणी, छहों संहनन वाले त्याग कर सकते हैं किन्तु दूसरा निर्विकल्प ध्यान का प्रतिबन्धक प्रमाद का त्याग भव्य सम्यग्दृष्टि, संयमी, उत्तम संहनन के धारक अथवा छहों संहनन वाले, शुभ लेश्याओं से युक्त, निर्दोष मूलगुण और उत्तरगुणों के पालक, शुद्धचारित्री, वृद्धिंगत विशुद्ध परिणामों के धारक, अप्रमत्त आदि आर्य खण्डोत्पन्न आर्य महामुनि करते हैं ये आत्म कार्य में हर तरह से कर्मठ होते हैं।

प्रश्न— 2108 ये जीव प्रमाद का त्याग करते हैं इसका खुलासा करो?

उत्तर देखो अभव्यजीव मुनि बनकर भी शुक्ललेश्या से परिणमन कर चार चार माह के चातुर्मास वर्षायोग धारण करते हैं। समस्त प्रकार से आहार विहार निहार का संकल्पपूर्वक त्यागकर स्थिर बैठकर या खड़े होकर ही रह जाते हैं। भयंकर उपसर्ग परीषहों को सहनकर अन्त में मरणकर सौधर्म स्वर्ग से लेकर नौग्रैवेयक पर्यन्त चले जाते हैं। फिर भी संसार परम्परा का, जन्म, जरा, मरण का अन्त नहीं कर पाते। जैसे नाव सैंकड़ों, लाखों यात्रियों को समुद्र पार करा देती है किन्तु स्वयं समुद्र का, जलाशय का उल्लंघन नहीं करती उसी तरह अभव्य मुनि अनादि मिथ्यादृष्टि, दूरानुदूर भव्य मिथ्यादृष्टि मुनि बनकर भी अपने शिष्यों को, अनेक श्रोताओं को, भक्तों को मोक्ष में पहुंचा देता है किन्तु स्वयं संसार का उल्लंघन नहीं करता, संसार में ही रहता है। और इसी प्रकार इस चर्या सम्बन्धी प्रमाद को बाहुबली त्याग करके भी मुनि अवस्था में एक वर्ष तक ध्यानारूढ़ रह करके भी, केवलज्ञान को, मोक्ष को प्राप्त नहीं हुए क्योंकि अंतरंग प्रमाद का त्याग नहीं किया था। अन्तरंग प्रमाद का सद्भाव होने से श्रेणी आरोहण नहीं की तब उस शुक्लध्यान को भी नहीं प्राप्त किया और शुक्लध्यान को प्राप्त किये बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती। इसलिए बहिरंग त्याग के साथ साथ अंतरंग त्याग करना परमावश्यक है। तभी तो बहिरंग त्याग का महत्व है अन्यथा त्याग का परिश्रम व्यर्थ है, निष्प्रयोजन है। इसलिए उभय प्रमाद का त्याग करना चाहिए।

प्रश्न— 2109—10 पंद्रह प्रकार के प्रमाद का त्याग कौन कौन करता है? नाम कौन कौन है?

उत्तर पंद्रह प्रकार के प्रमाद का त्याग मुनिजन करते हैं क्योंकि आदि की तीन चौकड़ी कषायोदय से उत्पन्न परिणाम प्रमाद कहलाता है। सो यह प्रमाद असंयम सहित होता है किन्तु संयम सहित प्रमाद संज्वलन कषाय के तीव्रोदय से होता है यह प्रमाद सकल संयम का विरोधी न होकर भी निर्विकल्प ध्यान का विरोधी है। अथवा निर्विकल्प ध्यान का विरोधी परिणाम प्रमाद कहलाता है। नाम :— 4 विकथायें— स्त्रीकथा, भक्तकथा, राजकथा, राष्ट्रकथा। चार कषायें— क्रोधकषाय, मानकषाय, मायाकषाय और लोभ कषाय। 5 इंद्रिय विषयों में प्रवृत्ति जैसे स्पर्शेंद्रिय के विषय में प्रवृत्ति, रसनेंद्रिय के विषय में प्रवृत्ति, घ्राणेंद्रिय के विषय में प्रवृत्ति, चक्षु इंद्रिय के विषय में

प्रवृत्ति, कर्णेन्द्रिय के विषय में प्रवृत्ति, निद्रा और प्रणेय। 4 विकथायें, + 4 कषाय + 5 इंद्रिय विषयों में प्रवृत्ति + निद्रा + प्रणेय ये प्रमाद के 15 भेद हो जाते हैं।

प्रश्न— 2111 जब कषाय प्रमाद है तो दसवें गुणस्थान तक कषायोदय से वहाँ तक प्रमाद परिणाम मानना चाहिए अतः प्रमत्तसंज्ञा 10 वें तक होनी चाहिए?

उत्तर नहीं, नहीं होनी चाहिए क्योंकि दसवें गुणस्थान में संज्वलन कषाय का तीव्रोदय नहीं पाया जाता है तथा निर्विकल्प ध्यान में स्थिरता होने से प्रमाद का सद्भाव नहीं है। कारण संज्वलन कषाय के तीव्रोदय से उत्पन्न परिणाम या श्रेणी आरोहण की भूमिका का विरोधी परिणाम प्रमाद प्ररूपण किया गया है। इसलिए यह अवस्था छठवें प्रमत्तसंयत गुणस्थान तक ही बनती है, घटित होती है, इसके आगे नहीं। प्रमाद निर्विकल्प ध्यान का घातक है, कषाय नहीं क्योंकि संज्वलन कषायों के उदय के साथ श्रेणी आरोहण करके ही ध्यान के द्वारा कषायों का क्षय करते हैं।

प्रश्न— 2112 प्रमाद के 80 भेद किस प्रकार से होते हैं?

उत्तर 4 विकथायें X 4 कषाय X 5 इंद्रिय विषयों में प्रवृत्ति इनको परस्पर में गुणा करने से 80 भेद हो जाते हैं।

प्रश्न— 2113 जब इंद्रियों को प्रमाद कहा है तो तेरहवें गुणस्थान में पंचेंद्रिय नामक कर्मोदय का सद्भाव होने से वहाँ तक प्रमाद कहना चाहिए?

उत्तर यद्यपि तेरहवें गुणस्थान में पंचेंद्रिय नाम कर्म का उदय अवश्य है पर यह अघातिकर्म की प्रकृति है और शरीर का आकार स्वरूप द्रव्येंद्रिय है, भावेंद्रिय का अभाव हो चुका है तथा साथ में घातिकर्म भी क्षय को प्राप्त हुए हैं। मुख्य बात यह है कि इंद्रियों को प्रमाद नहीं कहा है जो आपने समझ रखा है। कषायपूर्वक राग, द्वेष सहित स्पर्श में, रस में, गंध में, रूप में और नाना तरह के शब्दों में जो इंद्रियों की प्रवृत्ति विषय ग्रहण के लिए होती है उसे प्रमाद कहा है तथा भावेंद्रियों का सयोगकेवली के अभाव हो चुका है अतः इंद्रियों का नाम प्रमाद नहीं है किन्तु रागद्वेषपूर्वक इंद्रियों का विषयों में प्रवृत्ति होना प्रमाद है जो केवलियों के कषायों का, रागद्वेष का अभाव होने से प्रमाद नहीं है।

प्रश्न— 2114 37500 प्रमाद के भेद किस प्रकार से उत्पन्न होते हैं?

उत्तर 25 विकथायें X 25 कषायें X पाँचों इंद्रियों की और मन की, इन छहों की विषयों की प्रवृत्ति X 5 निद्रायें X राग, द्वेष 2 अथवा स्नेह और मोह 2 इन सभी का परस्पर में गुणा करने से 25 X 25 625 X 6 = 3750 X 5 = 18750 X 2 = 37500 भेद प्रमाद के हुए।

प्रश्न— 2115—17 विकथा किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर मोक्षमार्ग के, संयम के विरुद्ध, पद और प्रसंग के विरुद्ध वचनालाप को विकथा कहते हैं। इनके 25 भेद हैं। नामः — स्त्रीकथा[1] अर्थकथा[2] भोजनकथा[3] राजकथा[4] चोरकथा[5] वैरकथा[6] परपाखण्डकथा[7] देशकथा[8] भाषा कथा[9] गुणबन्धकथा[10] देवीकथा[11] निष्ठुरकथा[12] परपैशुन्यकथा[13] कन्दर्पकथा[14] देशकालानुचित कथा[15] भण्डकथा[16] मूर्खकथा[17] आत्मप्रशंसा कथा[18] परपरिवादकथा[19] परजुगुप्साकथा[20]

परपीडाकथा[21] कलहकथा[22] परिग्रह कथा[23] कृष्यादि आरम्भ कथा[24] संगीतवाद्य कथा[25] ये 25 विकथाओं के नाम हैं। सामान्यतः मुनिजन इन विकथाओं के त्यागी होते हैं।

प्रश्न– 2118–20 कषाय किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर स्थितिबंध और अनुभाग बंध के कारणभूत परिणाम तथा यथाख्यात चारित्र के विरोधी परिणामों को अथवा जो नाना तरह से दुःख दें उसे कषाय कहते हैं। 25 भेद हैं। नामः– अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, संज्वलनकषाय क्रोध, मान, माया और लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद ये 25 कषायों के नाम हैं।

प्रश्न– 2121–22 तीसरे नम्बर के प्रमाद का नाम क्या है? भेद कितने हैं?

उत्तर इंद्रियां पाँच होती हैं। मन सहित होने से छह भेद हो जाते हैं। नामः– स्पर्शेंद्रिय, रसनेंद्रिय घ्राणेंद्रिय चक्षुइंद्रिय और कर्णेंद्रिय तथा मन।

प्रश्न– 2123–25 निद्रा किसे कहते हैं? भेद कितने हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर आत्मा के औदयिक भाव, स्वयं के सामान्य अवलोकन के प्रतिबन्धक परिणाम को, जड़ता स्वरूप भावों को निद्रा कहते हैं। 5 भेदः– स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, निद्रा और प्रचला।

प्रश्न– 2126–27 स्नेह किसे कहते हैं? मोह किसे कहते हैं?

उत्तर आत्मभिन्न पर पदार्थों में ममत्व ये मेरे हैं और मैं इनका हूँ इस परिणाम को ममत्व को स्नेह कहते हैं। समीचीन तत्त्व में अविश्वास या निरपेक्ष तत्त्व में, तत्त्व की अवस्थाओं में विश्वास कर लेने को कि यही आत्म कल्याण का मार्ग है इसे मोह मिथ्यात्व कहते हैं।

प्रश्न– 2128–29 प्रमाद का क्या फल है? किसको प्राप्त होता है?

उत्तर समस्त पापों का, अनर्थों का मूल कारण प्रमाद है क्योंकि प्रमाद से ही हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह पाप उत्पन्न होते हैं। त. सू. अ. 7 13–17 तक– प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा, प्रमत्तयोगात् असदभिधान मनृतम्, प्रमत्तयोगात् अदत्तादानं स्तेयम्, प्रमत्तयोगात् मैथुनमब्रह्म, प्रमत्तयोगात् मूर्च्छा परिग्रहः प्रमाद के योग से ही हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह पाप होता है। इसलिए समस्त दुःखों का, संसार भ्रमण का मूल कारण प्रमाद ही है और इसकी शक्ति अचिन्त्य है, जो अल्पज्ञानियों के गम्य नहीं है और इसका फल समस्त संसारी प्रमादी जीवों को प्राप्त होता है या जीवों में प्राप्त होता है। सरागी प्रमत्त जीव तथा मुनिवर बुद्धि पूर्वक प्राप्त कर रहे हैं, भूतनैगम की अपेक्षा वीतरागी अबुद्धि पूर्वक पाते हैं।

प्रश्न– 2130–31 रौद्रध्यान के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर इस रौद्रध्यान के पाँच भेद हैं। नामः– हिंसानंदी, मृषानंदी, चौर्यानंदी, परिग्रहानंदी और एक सामान्य से इस प्रकार 5 भेद हो जाते हैं। इसी तरह सभी ध्यानों में सामान्य और विशेष भेद समझना चाहिए। क्योंकि सामान्य के बिना विशेष और विशेष के बिना सामान्यकी प्रवृत्ति नहीं होती हैं ऐसा स्याद्वादियों का न्याय है।

प्रश्न– 2132 अभी तक हमने रौद्रध्यान के चार ही भेद पढ़े हैं सुने हैं और आप यहाँ 5 भेद बता रहे हैं यह तो विरुद्ध कथन है?

उत्तर आपका प्रश्न सही है परन्तु क्या बिना सामान्य के विशेष हो सकता है? नहीं। जैसे बिना स्कंध के शाखा प्रतिशाखायें नहीं होती हैं वैसे ही बिना मूल के उत्तर या बिना मूलधन के व्याज की प्राप्ति नहीं होती है ऐसे ही बिना समान्य के विशेष और बिना विशेष के सामान्य नहीं होता इसलिए विशेष में सामान्य को मिलाकर कथन करने से रौद्रध्यान के 5 भेद हो जाते हैं।

प्रश्न– 2133–35 हिंसा किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर प्रमाद पूर्वक स्वपर और उभय के प्राणों के विघात करने को हि ंसा कहते हैं। दो भेद हैं। द्रव्यहिंसा, भावहिंसा।

प्रश्न– 2136–37 द्रव्य हिंसा किसे कहते हैं? भाव हिंसा किसे कहते हैं?

उत्तर स्वपर और उभय के द्रव्य प्राणों की विराधना करने को द्रव्य हिंसा कहते हैं। स्वपर और उभय के भाव प्राणों की विराधना करने को भाव हिंसा कहते हैं।

प्रश्न– 2138 जीवन समाप्त करने को हिंसापाप कहते हैं या केवल मन के दुःखाने को हिंसा पाप कहते हैं?

उत्तर दोनों प्रकार के प्राणों के विघात करने को हिंसा पाप कहते हैं परन्तु जहाँ पर अतिक्रम दोष, व्यतिक्रम दोष और अतिचार दोष रूप पाप का, हिंसा का कथन हो, प्रसंग हो तो वहाँ किंचित् द्रव्य प्राण और भावप्राणों की विराधना रूप हिंसा समझना तथा जहाँ पर अनाचार रूप हिंसा का प्रकरण कथन हो प्रसंग हो तो वहाँ जीवन समाप्त करना पूर्ण रूप से द्रव्यप्राण और भावप्राणों का विनाश करना रूप हिंसा पाप समझना। यथा शक्त्यनुसार चारों गतियों के प्राणी द्रव्यहिंसा और भावहिंसा पाप करते हैं। अतः एक प्राण का या सभी प्राणों का विघात करना पाप कहा है।

प्रश्न– 2139 पाँचों इंद्रियों के विषयों में हर्षित होने को हिंसानंद रौद्रध्यान क्यों कहा तथा इसे तो परिग्रहानंद रौद्रध्यान कहना चाहिये था?

उत्तर आत्मा का अहित करने वाले पतन कराने वाले विषय कषायें हैं और पतन के साधनों में प्रवृत्ति करना पाप है हिंसा है अर्थात् विषयकषाय ही स्वयं के प्राणों की विराधना करने वाले होने से हिंसा पाप हैं और इसी में आनन्द मानना हिंसानन्द रौद्रध्यान कहा है। परिग्रहानंद नहीं।

प्रश्न– 2140–41 हिंसा कितने प्रकार की है? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर हिंसा चार प्रकार की होती है। संकल्पी हिंसा, आरम्भी हिंसा, उद्योगी हिंसा, विरोधी हिंसा।

प्रश्न– 2142–43 संकल्पी हिंसा किसे कहते हैं? संकल्पीहिंसा सम्बन्धी रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर निरपराधी, असमर्थ प्राणियों की विराधना करने को, अमर्यादित भोजन करने को, मद्य मांस और मधु के सेवन करने को, उदम्बर फलों के सेवन करने को, अनन्तकायिक साधारण वनस्पति के सेवन करने को, सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति के सेवन करने को, सड़ागला अचार मुरब्बा खाने को, अमर्यादित दूध दही, घी, पानी भक्षण करने को संकल्पी हिंसा कहते हैं तथा इन्हीं कार्यों में सफलता होने पर आनंदित होने को संकल्पी हिंसाजन्य रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न— 2144 अपराधी प्राणियों को मारने से संकल्पी हिंसा का दोष लगता है या नहीं?

उत्तर नहीं, अपराधी प्राणियों को मारने से संकल्पी हिंसा का दोष नहीं लगता है किन्तु विरोधी हिंसा है अथवा धर्म की, समाज की, परिवार की,देश की रक्षा करना, रक्षा करने की योजना बनाना, कदम उठाना, प्रयास करना आदि हेतुओं से दण्ड देना समाजधर्म की, राजधर्म की रक्षा का कारण बन जाता है। रत्नत्रय साथ में होने से भद्रध्यान या अभयदान का साधन बन जाता है। अतः हेतु भिन्न होने से अपराधी को दण्ड देना महापाप नहीं है। राज्यनीति में निर्दोष है।

प्रश्न— 2145 अपराधी के अपराध को जानकर जान से न मारकर शरीर के अंगों का छेदन भेदन न कर किंचित् दण्ड देकर छोड़ देना चाहिए?

उत्तर अपराधी को अपराध की मात्रानुसार दण्ड दिया जाता है जैसे रोग और रोगी की शक्ति की अपेक्षा दवाई दी जाती है तभी रोगी निरोगी बनता है अन्यथा यदि मात्रा का और शक्ति का ध्
यान न रखा जाय तो मरीज जान से मर जाता है। इसी तरह यदि अपराधी को उचित दण्ड नहीं दिया तो प्रजा में अपराध बढ़ता ही चला जायेगा। अतः प्राणदण्ड देना, अंग का छेदन भेदन करना दोष नहीं है किन्तु गुण ही है क्योंकि अपराधियों को इस प्रकार दण्ड देने से दूसरे लोग भी पाप से, दुष्कर्म से भयभीत होकर दुराचार सेवन नहीं करेंगे। आजकल अपराधियों को ऐसा दण्ड नहीं दिया जाता है इसलिए दुनिया में दिन प्रतिदिन अपराध बढ़ता चला जा रहा है इसलिए अपराधानुसार दण्ड देना गुण है, क्षत्री धर्म है।

प्रश्न— 2146—47 आरम्भीहिंसा किसे कहते हैं? आरम्भीहिंसाजन्य रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर गृह कार्य सम्बन्धी कूटना, पीसना, झाड़ना, चूल्हा जलाना, हवा करना, पानी भरना आदि कार्य सावधानी पूर्वक, समिति पूर्वक करने को आरम्भी हिंसा कहते हैं तथा इन्हीं कार्यों में मनोनुकूल सफलता मिलने पर आनन्दित होने को आरम्भी हिंसा जन्य रौद्रध्यान कहते हैं। यदि ये ही कार्य विषयकषायाधीन होकर किये जायें तो संकल्पी हिंसा और तत्जन्य रौद्रध्यान हो जाता है।

प्रश्न— 2148 गृहकार्य समिति पूर्वक करने से उनको आरम्भी हिंसा क्यों कहा?

उत्तर समिति पूर्वक झाडू लगाना, पानी भरना, आग जलाना, पोता लगाना, दीपक जलाना, लालटेन जलाना, मच्छरों को भगाने के लिए अगरबत्ती जलाना, ऑल आउट लगाना, गमले लगाना, उनकी कटिंग करना आदि कार्यों के करने से सीधा जीवों को नहीं मारा अनाचारदोष नहीं लगाया किन्तु भूमि में गमनागमन करने वाले क्षुद्रप्राणियों को झाडू के द्वारा स्थान छुड़ाया, इकट्ठा किया, अन्य स्थान में डाला जो उन जीवों की प्रकृति के विरुद्ध अधिक या कम मात्रा में ठण्डी या गर्मी होने से वो जीव छटपटाते हैं, भयभीत होकर यहाँ वहाँ भ्रमण करते हैं। पानी के छानने से, हिलाने डुलाने से, पटकने से बहुत सारे जीव मृत्यु को प्राप्त होते हैं इसी तरह हवा पानी अग्नि आदि के प्रयोग से भी जीवों की विराधना होती है। अग्नि की गर्मी धुआं जहाँ तक जाता

है वहाँ तक के जीव झुलस जाते हैं मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। इसलिए जो सावधानी है समिति है वह अहिंसा है। जो आरम्भ है, असावधानी हैं वहाँ हिंसा है इसलिए आरम्भी हिंसा कहा है फिर भी संकल्पी हिंसा महाहिंसा नहीं है जो मोक्षमार्ग की विरोधी हो।

प्रश्न– 2149 दान पूजा के लिए पानी भरना दीपक जलाना आदि कार्य भी आरंभ हैं तो इनको आरंभी हिंसा में शामिल कर सकते हैं क्या?

उत्तर नहीं, हेतु बदलने से कार्य और कार्य फल भी बदल जाता है। इसलिए दान पूजा आदि धर्म कार्य के लिए किया गया कार्य आरम्भी हिंसा नहीं हैं। जैसे महाव्रती साधु के बीमारी आने पर शरीर में कीटाणु पैदा हुए तब उन्हें औषधि देने से नवीन कीटाणु पैदा नहीं हो सकते हैं तथा जो पैदा हो गये हैं वे मर जाते हैं या औषधि के प्रयोग से बलात् दस्त के, उल्टी के, शल्य चिकित्सा के द्वारा बाहर निकाल दिये जाते हैं और वे सब के सब मर जाते हैं। अतः हिंसा के होने पर भी गृहस्थ श्रावक के लिए महापाप न कहकर औषधिदान, अभयदान कहा है। गृहस्थ गुणदोष के संबंध में अल्प बहुत्व देखता है कि किस कार्य में गुण ज्यादा हैं और दोष कम। दान पूजा में गुण ज्यादा हैं और दोष कम। कष्ट से बचाने के लिए अपायविचय धर्मध्यान है। इसी तरह दानपूजा के निमित्त किया गया कार्य गृहस्थ धर्म का अंग है, आवश्यक कर्तव्य है, मोक्षमार्ग है, संवर निर्जरा तत्त्व है। अतः दानपूजादि षट् कर्तव्यों के पालन करने में आरंभ नहीं है किंतु इनकी तैयारी करने में आरंभ होता है सो यह हिंसा अहिंसा दोनो रूप है।

प्रश्न– 2150–51 उद्योगी हिंसा किसे कहते हैं? उद्योगी हिंसाजन्य रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर सावधानी पूर्वक आजीविका सम्बन्धी संख्यात, असंख्यात और अनन्त जीवों की रक्षा करते हुए कपड़ा, किराना, सोना, आदि का व्यापार कर, लेखन कार्य कर, पढ़ाकर, सेवा वैयावृत्ती कर, नौकरी कर, नाई, धोबी, कुम्हार, किसानी कर, सैनिक बनकर आदि साधनों से उदरपूर्ति करने को, परिवार का पालन पोषण करने को उद्योगी हिंसा कहते हैं तथा इन्हीं कार्यों में मनोनुकूल सफलता मिलने पर आनन्दित होने को उद्योगी हिंसाजन्य रौद्रध्यान कहते हैं और ये ही कार्य असावधानी पूर्वक करने से, संकल्पी हिंसा और तत्जन्य आनन्दित होने से संकल्पीहिंसा जन्य रौद्रध्यान कहते हैं। यह ध्यान अणुव्रती सातवीं प्रतिमा धारियों तक हो सकता है।

प्रश्न– 2152 सावधानीपूर्वक, समिति पूर्वक व्यापार करने को भी हिंसा क्यों कहा?

उत्तर सावधानी का नाम समिति और समितिपूर्वक कार्य करने से जीव विराधना नहीं होगी किन्तु व्यापार में जीवों की विराधना संभव है, धान्य घुन गया, घी तेल में जीव जन्तु पड़ गये, खेती में भूमि को जोतने में, खोदने में, खाद पानी डालने में जीव विराधना होती है। धातु उपधातुओं के व्यापार में, लेनदेन में, ग्राहक का मन दुःखी होता है। स्वयं के मन में हर्ष विषाद होता है अतः व्यापार में वस्तु को उठाना, रखना, देना लेना, सप्लाई करना कराना, गोदाम में रखना रखवाना आदि से जीव विराधना होती है क्योंकि प्रत्येक व्यापार का कार्य स्वयं तो कर नहीं सकते दूसरों से करवायेंगे तब समिति की भी विराधना होगी अतः उद्योग के साथ हिंसा होना अनिवार्य है पर

क्षम्य है। अतः इसे उद्योगी हिंसा कहते हैं।

प्रश्न– 2153–54 विरोधी हिंसा किसे कहते हैं? विरोधी हिंसा जन्य रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर जब कोई लोक में धर्मद्रोही, समाजद्रोही, ग्राम, नगर, देशद्रोही, परिवार का द्रोही, परिवार में द्रोही बनकर आक्रमण कर रहा है, धर्मादि को नाश करने की तैयारी कर रहा है या प्रारम्भ कर दिया है। चल अचल सम्पत्ति को नष्ट कर रहा है। तो सर्वप्रथम उसे धर्मनीति से, राज्यनीति से, समाज नीति से सभी सुखी हो, अपना अपना काम करो, अपना अपना राज्य करो, सुख भोगो, दूसरों के सुख में क्यों बाधा डालना आदि निष्कपट, निस्वार्थ भाव से सम्बोधन करना, समझाना, नहीं माने तो भय दिखाना, इतने पर भी नहीं माने तो धनादि को भेंट कर, पुरस्कार देकर, कार्यकर सन्धि कर लेना, नहीं माने तो बलाबल को समझकर शस्त्र उठाना अब जो हो सो हो सैनिक मारे जायें या प्रजा मारी जाय सो इसे विरोधी हिंसा कहते हैं और इसमें सफल होने पर मन में आनन्दित होने को विरोधी हिंसाजन्य रौद्रध्यान कहते हैं। न्यायनीति को छोड़कर दूसरों पर आक्रमण करने को संकल्पी हिंसा और तत्जन्य रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2155 धर्मादिकार्यों में आये हुए संकट को दूर करना क्षत्रिय धर्म है, असमर्थ की भी रक्षा करना धर्म है तब इसे विरोधी हिंसा क्यों कहा?

उत्तर आपका कहना सत्य है परन्तु रक्षा करना धर्म है, वह हिंसा नहीं किन्तु जीवों की विराधना करना अनेकों को विधवा बनाना, बाल बच्चों को विना माँ बाप के करना, माँ बाप को पुत्रहीन कर देना, वृद्धावस्था में असहायपने का अनुभव करा देना आदि कार्य कष्ट देने वाले आ उपस्थित कर देना यह धर्म नहीं किन्तु अधर्म है, हिंसा है, पाप है। इस कारण असमर्थ की रक्षा करना धर्म है, विराधना नहीं करना धर्म है। समर्थ व्यक्ति शस्त्र रक्षा करने के लिए चलाता है न कि मारने के लिए। जैसे शल्य चिकित्सा में डॉक्टर धर्म की दृष्टि से, जीवनदान की दृष्टि से मरीज के शरीर पर शस्त्र का प्रयोग करता है पर वह लोक व्यवहार में अपराधी नहीं है परन्तु चोर शस्त्र के प्रयोग से अपराधी दोषी हैं। दण्ड का भागी है।

प्रश्न– 2156 धर्म पर आये हुए संकट को दूर करने के लिए विरोध में जीव हिंसा हो जाये तो क्या दोष है या नहीं?

उत्तर नहीं, धर्म के नाम पर या धर्म के निमित्त की गई हिंसा पाप रूप ही है और वह हिंसा मोक्षमार्ग की भी अपेक्षा पाप ही है भले ही लोक व्यवहार में उसे अच्छा कहा जाय। यदि असमर्थ की रक्षा करने के लिए प्राणिहिंसा हिंसा पाप नहीं है तो धर्म के नाम पर अंडे, मुर्गे, बकरे, गाय, भैंस, ऊँट और मनुष्य की बलि चढ़ाना, हवन में डालना दोष क्यों माना जाय, पाप क्यों कहा जाय? अतः धर्म की रक्षा करने के लिए संकट दूर करने के लिए अहिंसात्मक भी उपाय हैं। जिनके माध्यम से धर्म की रक्षा हो सकती है और प्राणियों का जीवन भी बच सकता है।

प्रश्न– 2157 गृहस्थों के विरोधी हिंसा का त्याग न होने से वह किसी भी प्रकार से विरोध कर सकता है ऐसा स्वीकार करने में क्या दोष है?

उत्तर विरोध अनेक प्रकार का होता है ऐसा नहीं है कि विरोध हिंसारूप में ही हो, विरोध स्व पर की रक्षा करते हुए भी हो सकता है जैसे वर्तमान में महात्मा गांधी आदि ने देश स्वतंत्र कराने के लिए धर्म का सहारा लिया, शस्त्र का नहीं अथवा विरोध भी अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार रूप में हो, अनाचार रूप में न हो, प्राणीघात न हो, निष्प्रयोजन वैर विरोध क्यों बनाना? जिससे संसार में नाना प्रकार के दुःख भोगना पड़े।

प्रश्न– 2158–59 गृहस्थ कितनी प्रकार की हिंसा का त्यागी होता है? कितनी प्रकार की हिंसा का त्यागी नहीं होता है?

उत्तर सामान्य गृहस्थ सभी प्रकार की हिंसा करता है किसी भी प्रकार की हिंसा का त्यागी नहीं होता है किन्तु विशेष सम्यग्दृष्टि गृहस्थ संकल्पी हिंसा का त्यागी होता है, शेष का कुछ समय के लिए त्याग भी कर सकता है। यदि उद्देश्य सही है तो यथावसर पर्व के दिनों में छोड़ सकता है।

प्रश्न– 2160 यदि गृहस्थ घर में रहकर भी सभी प्रकार की हिंसाओं का त्याग कर दे तो क्या हानि है?

उत्तर यह सत्य है कि गृहस्थ घर में रहकर समस्त प्रकार से हिंसा का त्याग कर दे तो वह गृहस्थ न रहकर साधु बन जायेगा महाव्रती बन जायेगा। पर क्या घर में रहकर कपड़े नहीं पहनेगा? स्नान नहीं करेगा, धोना, कमाना, सलाह देना, तरण, परण, मरण में किसी प्रकार से कारित अनुमोदन आदि का प्रयोग न करेगा? यदि करेगा तो हिंसा का त्यागी नहीं कहलायेगा? अतः गृहस्थ सभी प्रकार की हिंसा का त्यागी होना असंभव बात है। हमारे लिए कोई हानि नहीं है किन्तु उस गृहस्थ का जीवन सब तरह से दुःखी हो जायेगा।

प्रश्न– 2161 रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर प्रमाद पूर्वक, अत्यन्त पापवर्धक, तीव्र शक्तिशाली कषाय पूर्वक, मोक्षमार्ग के बाह्य कार्यों को करके सफलता मिलने पर उसमें आनन्द मानने को, विषयकषायों में हर्षित होने को, प्रसन्न होने को रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2162 रौद्रध्यान कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर अनन्तानुबन्धी आदि तीन चौकड़ी क्रोध, मान, माया और लोभ कषायोदय से होने वाले कार्यों को प्रमाद पूर्वक आत्मसात् करके अथवा विषयकषायों के आधीन होकर नवीन बन्ध के लिए लौकिक कार्यों को प्रमाद सहित आत्मसात् कर आनन्दित प्रसन्न होने से रौद्रध्यान उत्पन्न होता है।

प्रश्न– 2163–64 हिंसानंद रौद्रध्यान किसे कहते हैं? हिंसानंदी रौद्रध्यानी किसे कहते हैं?

उत्तर हिंसा के कार्यों को, हिंसा के साधनों को, हिंसा की वार्ता को, हिंसक व्यक्तियों को देखकर, सुनकर, पढ़कर मन में आनन्दित, हर्षित होने को हिंसानंद रौद्रध्यान कहते हैं और इस रौद्रध्यान से सहित होने वाले को हिंसानंदी रौद्रध्यानी कहते हैं।

प्रश्न– 2165 हिंसानंद रौद्रध्यान कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर हिंसानंद रौद्रध्यान प्रमाद के प्रभेदों में से माया कषाय और लोभ कषाय, हास्य, रति, स्त्रीवेद, पुंवेद और नपुंसकवेदोदय से परिणमन करने पर जीव के हिंसानंद रौद्रध्यान उत्पन्न हो जाता है।

प्रश्न– 2166–67 हिंसानंद रौद्रध्यान के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर हिंसा पाप के जितने भेद हैं उतने ही हिंसानंद रौद्रध्यान के भेद हैं अथवा अनंतानुबंधी आदि तीन चौकड़ी कषायोदय से उत्पन्न हर्ष परिणामों के बराबर रौद्रध्यान के भेद हैं। सामान्यतया उत्पत्ति की अपेक्षा पाँचों इंद्रियों और मन के नामानुसार ही रौद्रध्यान के नाम है।

प्रश्न– 2168 स्पर्शेंद्रियजन्य हिंसानंद रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर शरीर के किसी भी एक अंग से या सर्वांग से हिंसा के कार्यों को करके, साधनों को स्पर्श करके कराके और अनुमोदना करके रोम रोम से हर्ष मानकर स्थिर होने को स्पर्शेंद्रियजन्य हिंसानंद रौद्रध्यान कहते हैं क्योंकि स्पर्श के 8 विषयों में राग कषाय से रमण कर स्थिर होना है।

प्रश्न– 2169–70 स्पर्शेंद्रियजन्य हिंसानंद रौद्रध्यान के कितने भेद हैं? हिंसानंद रौद्रध्यान को पहचानने के चिह्न क्या हैं?

उत्तर स्पर्श गुण के आठ भेद हैं या अविभाग प्रतिच्छेद की अपेक्षा असंख्यात लोक प्रमाण भेद हैं। यह संसारी आत्मा मोही प्रमादी आत्मस्वभाव को भूलकर स्पर्शेंद्रिय के विषयों में लम्पटी होकर रौद्र ध्यान के भेदों को प्राप्त होता है। इसके बाह्य चिह्न शरीर के प्रत्येक रोम रोम से हर्ष होना, रोमों का खड़ा होना, हास्य से पसीना आना, आँखे लाल हो जाना, चुटकी बजाना, नाचना आदि है किन्तु ध्यान रहे कि आत्मा विकारी, विषयकषायों से युक्त होना चाहिए अन्यथा चित्रों को, टी.वी. को, पिक्चर आदिकों में भी रौद्रध्यान मानने का प्रसंग आयेगा जो कि अनिष्ट है।

प्रश्न– 2171 स्पर्शेंद्रिय जन्य रौद्रध्यान कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर जब मोही प्राणी को मनोनुकूल शरीर के विषय, मौसम, वातावरण मिल जाता है तब उसी में रमण करता हुआ इतना हर्षित आनंदित होता है कि जैसे सूर्योदय से कमल, चन्द्रोदय से कुमुदनी खिल जाती है। इसी तरह कामिनी कामी को स्पर्श कर आनंदित होती है, विषय लम्पटी, मोहीप्राणी स्पर्शेंद्रिय के विषयों को भोगकर प्रसन्न होना ही अभेद नय से स्पर्शेंद्रियजन्य रौद्र ध्यान है भेद नयापेक्षया प्रसन्नता से स्पर्शेन्द्रिय जन्य हिंसानंद रौद्रध्यान उत्पन्न होता हैं।

प्रश्न– 2172 स्पर्शेंद्रियजन्य हिंसानंद रौद्रध्यान के स्वामी कौन हैं?

उत्तर एकेंद्रिय से लेकर पंचेंद्रिय पर्यन्त चारों गतियों के समस्त सैनी असैनी, पंचेंद्रिय पर्याप्त अपर्याप्त, सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि, भव्य और अभव्य जीव तथा गुणस्थान की अपेक्षा मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर पंचम गुणस्थान पर्यन्त जीव इस स्पर्शेंद्रियजन्य रौद्रध्यान के स्वामी हैं।

प्रश्न– 2173 रसनेंद्रियजन्य हिंसानंद रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर मनोनुकूल स्वादिष्ट पौष्टिक भोजन करते हुए जो मन में आसक्ति भाव उत्पन्न होता है, गृद्धता जागृत होती है, हा हा कितना अच्छा स्वाद है, अभूतपूर्व है ऐसा आनन्द भोजन में कभी नहीं आया अच्छा बनाया है ऐसा मानकर रसना के विषय में हर्षित होकर विषय में स्थिर होने को, इसी परिणाम को रसनेंद्रियजन्य हिंसानंद रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2174 रसनेंद्रियजन्य हिंसानंद रौद्रध्यान के कितने भेद हैं?

उत्तर रसनेंद्रियजन्य रौद्रध्यान के बाह्य में उत्पत्ति साधन की अपेक्षा 12 भेद हैं और विशेषापेक्षया असंख्यात लोकप्रमाण हैं जो केवली गम्य हैं तथा अपने क्षयोपशमानुसार अपन भी निष्पक्ष निर्दोष मतिज्ञान श्रुतज्ञान के द्वारा कुछ अनुभव कर सकते हैं, जान सकते हैं।

प्रश्न– 2175 रसनेंद्रियजन्य हिंसानंद रौद्रध्यान के 12 भेद कौन कौन हैं?

उत्तर भोजन में स्वाद बढ़ाने वाले स्वादिष्ट रस खट्टा नींबू आदि, मीठा गुड़ शक्कर आदि, कडुवा नीम चिरायता आदि, कषायला आँवला जामुन बबूल की छाल आदि, चिरपरा लाल मिर्च, हरी मिर्च, काली मिर्च आदि ये पाँच भेद हैं तथा इन्हीं के अवान्तर भेद असंख्यात लोकप्रमाण हैं। पौष्टिक रस दूध, दही, घी, तेल, नमक और मीठा ये छह पौष्टिक रस हैं। इन 11 रसों के अलावा एक सामान्य भोजन और है जो इन 11 रसों के विना भोजन नीरस कहलाता है फिर भी खाने वालों की इच्छानुसार स्वादिष्ट और पौष्टिक रस हो जाता है क्योंकि सरस भोजन से जो ताकत आती है वही ताकत नीरस भोजन से भी आती है। इस प्रकार भोजन के स्वाद के 12 भेद होने से रसनेंद्रियजन्य रौद्रध्यान के भी 12 भेद हो जाते हैं और भावों की अपेक्षा अनन्त भेद हो जाते हैं।

प्रश्न– 2176 रसनेंद्रियजन्य हिंसानंद रौद्रध्यान कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर मनोनुकूल भोजन के मिलने पर, रुचि पूर्वक भोजन करते समय आवाज करते हुए, हंसते हुए, भोजन के स्वाद की प्रशंसा करते हुए, सिर मटकाते हुए, आँख हाथ आदि से प्रसन्नता व्यक्त करते हुए तथा लज्जावश बाह्य में प्रकट न करते हुए भी मन में भोजन के प्रति आसक्ति, गृद्धता का उत्पन्न होना ही रसनेंद्रियजन्य हिंसानंद रौद्रध्यान का उत्पन्न होना है तथा खाने वाले की गृद्धता भी चेहरे आदि से प्रकट हो जाती है। जो प्रायः कर सामने वाले भी समझ लेते हैं।

प्रश्न– 2177 रसनेंद्रियजन्य हिंसानंद रौद्रध्यान के स्वामी कौन जीव हैं?

उत्तर रसनेंद्रियजन्य रौद्रध्यान के स्वामी दो इंद्रिय जीव से लेकर पंचेंद्रिय जीव तक चारों गतियों के हैं किन्तु देवों के अमृताहार होने से कवलाहार संबंधी यह ध्यान नहीं होता है क्योंकि जब भोजन नहीं तो भोजन का स्वाद भी नहीं और स्वाद नहीं तो तत्सम्बन्धी हर्ष नहीं, रौद्रध्यान नहीं इसलिए देवों के कवलाआहार की अपेक्षा रसनेंद्रिय जन्य रौद्रध्यान नहीं होता तथा एकेंद्रिय जीवों के भी रसना का अभाव होने से भी ध्यान नहीं होता अथवा देवों के भी अत्यंत गृद्धता होने से रसनेंद्रियजन्य हिंसानंद रौद्रध्यान अमृताहार से भी उत्पन्न हो जाता है।

प्रश्न– 2178 घ्राणेंद्रियजन्य हिंसानंद रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर घ्राणेंद्रिय से सुगन्ध और दुर्गन्ध को सूंघकर जो गन्ध के प्रति लोलुपता उत्पन्न होती है तो उसे ही घ्राणेंद्रियजन्य हिंसानंद रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2179 घ्राणेंद्रियजन्य हिंसानंद रौद्रध्यान के कितने भेद हैं?

उत्तर घ्राणेंद्रियजन्य रौद्रध्यान के संक्षेपतः मूलतः सुगन्ध और दुर्गन्ध ये भेद हैं किन्तु इन्हीं दो नामों के वाच्य पदार्थ मात्रानुसार, मिश्रण से पुष्प, इत्र, मिट्टी आदि सुगंधित पदार्थ तथा मिट्टीतेल, तारकॉल, बिगड़े हुए फलफूल आदि असंख्यात लोकप्रमाण भेद हैं जो केवली गम्य है, कुछ स्वगम्य भी है।

प्रश्न– 2180 अभी तक सुगन्ध के विषय से रौद्रध्यान तो सुना है पर दुर्गन्ध से भी रौद्रध्यान कैसे उत्पन्न हो सकता है?

उत्तर संसार में अनेक प्रकार की रुचिवाले प्राणी पशुपक्षी मनुष्य पाये जाते हैं वे अनन्त धर्मात्मक अनन्त पर्यायात्मक पदार्थों को अपना इंद्रिय विषय बनाकर उसी से कभी आर्तध्यान बना लेता है तो कभी रौद्रध्यान बना लेता है अथवा कभी माध्यस्थभाव रखकर धर्मध्यान बना लेता है, उत्कृष्ट ध्यानी है तो कषायों को दमन कर द्रव्यगुण पर्यायरूप से परिणमन कर शुक्लध्यान को बना लेता है। जैसे होली के समय रंग गुलाल कीचड़ रौद्रध्यान का साधन बन जाता है तो आगे पीछे अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान का साधन बन जाता है अथवा मद्य की दुर्गन्ध मद्य त्यागी को आर्तध्यान का साधन है तो मद्यपायी को मद्य की दुर्गन्ध सुखकारी बनकर रौद्रध्यान में सहायक हो जाती है। वेश्या लौकिक सज्जन को आर्तध्यान साधन होती है तो व्यभिचारी को रौद्रध्यान का साधन बन जाती है तथा मोक्षमार्गस्थ सज्जन को वैराग्य उत्पन्न कराकर धर्मध्यान में सहायक बन जाती है। इसी तरह मांसाहार मांसभोजी को सड़ागला हो, दुर्गन्धित हो फिर भी रौद्रध्यान को उत्पन्न करा देता है क्योंकि वह उसी में रचापचा रहता है अथवा झोपड़पट्टी में, नालों के किनारे, गटर के किनारे निवास करने वालों को वही दुर्गन्ध प्रिय होने से उसी में चैन से सोते हैं, बैठते हैं, रहते हैं, रौद्रध्यानी बने रहते हैं। अतः दुर्गंध से भी रौद्रध्यान होता है सो यह ठीक ही कहा है।

प्रश्न– 2181 घ्राणेंद्रियजन्य हिंसानंद रौद्रध्यान किस प्रकार से उत्पन्न होता है?

उत्तर घ्राणेंद्रिय के विषय को पाकर रमणकर भौंरे के समान आसक्त होकर, प्रसन्न होकर सूंघने में इतना आसक्त हो जाता है कि अपना सब कुछ खो बैठता है अतः इसे घ्राणेंद्रियजन्य हिंसानंद रौद्र ध्यान कहते हैं तथा प्रत्येक रौद्रध्यान राग से उत्पन्न होता है फिर भूमिका कहीं से भी बने।

प्रश्न– 2182 विषय के प्राप्त होने पर किस प्रकार विचार करता है कि जिससे हिंसानंद रौद्रध्यान बन जाता है?

उत्तर घ्राणेंद्रिय के विषयभूत गन्ध को प्राप्तकर सूंघकर सोचता है कि कितनी सुन्दर गंध है अभूतपूर्व है ऐसी मैंने कहीं भी कभी भी प्राप्त नहीं की थी अथवा जिसको पहले सूंघा था उसी के समान है या अधिक है भविष्य में भी इसी तरह सूंघेंगे इस प्रकार त्रिकाली सम्बन्ध जोड़ने से यह रौद्र ध्यान भी त्रिकाली बन जाता है। इसी तरह सभी रौद्रध्यानों को समझना चाहिए।

प्रश्न– 2183 घ्राणेंद्रियजन्य हिंसानंद रौद्रध्यान के स्वामी कौन कौन जीव हैं?

उत्तर त्रींद्रिय से लेकर पंचेंद्रिय पर्यन्त समस्त प्राणी चारों गतियों के स्वामी हैं किन्तु अहमिन्द्र नहीं क्योंकि इनके परम शुक्ललेश्या पाई जाती है तथा एकेंद्रिय और द्वींद्रिय जीवों के नासिका न होने से तत्सम्बन्धी हिंसानंद रौद्रध्यान नहीं पाया जाता अथवा मिथ्यादृष्टि अहमिंद्रों के संभव है।

प्रश्न– 2184 चक्षुइंद्रियजन्य हिंसानंद रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर आँखों से देखने योग्य रूप, अलंकार, यौवन, हष्टपुष्ट शरीर को देखकर, मनोहर मानकर उसी में प्रीतिकर प्रसन्न होने को हिंसानंद चक्षुइंद्रियजन्य रौद्रध्यान कहते हैं। भुक्त भोगों को यादकर

पुनः तद्रूप में रमण करने को चक्षुइंद्रियजन्य हिंसानंद रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2185 चक्षुइंद्रियजन्य हिंसानंद रौद्रध्यान के कितने भेद हैं?

उत्तर इस चक्षु इंद्रिय जन्य हिंसानंद रौद्रध्यान के असंख्यात लोकप्रमाण भेद हैं और विषय ग्रहण करने वालों की अपेक्षा संख्यातासंख्यात भेद है फिर भी यहाँ पर स्थूलरूप से 5 भेद माने गये हैं। पर्यायों की अपेक्षा अनन्त भेद हैं और विषय सेवन करने वालों की अपेक्षा असंख्यात भेद हैं और मनुष्यों की अपेक्षा संख्यात भेद हैं। ये सब चक्षुइंद्रियजन्य विषय सेवन करने वालों की अपेक्षा असंख्यात भेद हैं। ज्ञेय ज्ञायक संबंध की अपेक्षा अनन्त भेद हैं।

प्रश्न– 2186 विषय को देखने मात्र से क्या रौद्रध्यान उत्पन्न हो जाता है?

उत्तर नहीं, देखने मात्र से, स्पर्श मात्र से, स्वाद मात्र से, सूंघने मात्र से, सुनने मात्र से रौद्रध्यान नहीं होता है किन्तु राग पूर्वक विषय और विषयी के मिलने पर मन में जो आनन्द होता है सो विषय में उपयोग जोड़ने से, आनन्द मानने से चक्षु इन्द्रिय जन्य रौद्रध्यान उत्पन्न होता है।

प्रश्न– 2187 किस तरह के विचारों से विषय को देखकर चक्षुइंद्रियजन्य रौद्रध्यान प्राप्त होता है?

उत्तर रूप अलंकार चित्र आदि सामग्री को देखकर यह रूप अभूतपूर्व है, कितना सुन्दर है, हा हा मैंने यह कभी नहीं देखा, मैं इसी में रमण करूं, देखता रहूं, भौंरा बन जाऊँ, कितना आनन्द आ रहा है, ऐसे सुंदर रूप को भूतकाल में देखा था पर अब याद नहीं है अतः अभूत पूर्व होने से आदि विचारों से हिंसानंद रौद्रध्यान प्राप्त होता है। जिस प्रकार पतंगा दीपक की लौ में आसक्त होकर रौद्रध्यानी बनकर गिरकर मर जाता है उसी तरह यह मानव भी रूप में आसक्त होकर, देखने के विषय में आसक्त होकर, मरकर जीवन समाप्त कर देता है। टी.वी., सर्कस देखना अत्यन्त हर्षित होते हैं, तालियां पीटते हैं आदि विचारों से चक्षुइंद्रियजन्य रौद्रध्यान उत्पन्न होता है।

प्रश्न– 2188 कर्णेद्रियजन्य रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर लोकाचार से सम्बन्ध रखने वाले शब्दों को, लौकिक विषय को बताने वाले शब्दों को, आरम्भ परिग्रह, शृंगार अलंकार के शब्दों को, विषयभोगों के शब्दों को, कामवासना के उत्पादक और वृद्धि कराने वाले शब्दों को, संगीत वादित्र के शब्दों को सुनकर जो मन में हर्ष उत्पन्न होता है सो उस हर्ष को, आनन्द को कर्णेद्रियजन्य हिंसानंद रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2189 कर्णेद्रियजन्य हिंसानंद रौद्रध्यान के कितने भेद हैं?

उत्तर भाषा वर्गणाओं के, शब्द पर्यायों के जितने भेद हैं, उतने ही और उनसे भी अनन्तगुणे कर्णेद्रिय जन्य रौद्रध्यान के भेद हैं क्योंकि शब्द बोलकर व्यक्ति चला गया या शब्द पर्याय विनाश को प्राप्त हो गई पर शब्द का संस्कार, वासना, भावना का हर्ष बहुत देर तक, बहुत दिनों तक, अनेक वर्षों तक आता रहा, बना रहा जैसे जलती हुई सिगड़ी से धरती गरम हो जाती है, फिर सिगड़ी के हटा देने पर भी धरती गरम सिगड़ी के समान जलाती है उसी प्रकार शब्द पर्याय के विनाश हो जाने पर भी शब्द का आनन्द आता ही रहता है अतः वासनारूपी आनन्द कर्णेद्रियजन्य रौद्रध्यान अधिक समय तक बना रहता है इस कारण कहा है कि शब्द से भी अनन्तगुणे कर्णेन्द्रिय जन्य

हिंसानंद रौद्रध्यान के भेद हैं इस प्रकार पाँचों इंद्रियों के विषयों में आसक्त होकर रौद्रध्यान भी तत्तत् इंद्रियजन्य रौद्रध्यान भी उसी उसी नाम का इंद्रियजन्य रौद्रध्यान कहलाता है।

प्रश्न– 2190 हिंसानंद रौद्रध्यान केवल इंद्रियों से होता है या मन से भी होता है?

उत्तर यह ध्यान इन्द्रिय विषयों में फंसकर हर्ष मनाने से भी होता है। पाँचों इंद्रियों के विषय न होने पर भी केवल भुक्त घटना को याद कर मन में आनन्दित होने से मनोद्भव रौद्रध्यान होता हैं।

प्रश्न– 2191 प्रसन्नता अप्रसन्नता तो केवल मन में होती है फिर इंद्रियों के संबंध से आर्तध्यान रौद्रध्यान का कथन क्यों किया?

उत्तर प्रसन्नता अप्रसन्नता केवल मन में होती है यह केवल पंचेन्द्रिय सैनी, पर्याप्तक जीवों की अपेक्षा से कथन किया जाता है यदि सर्वथा सर्वप्रकार से केवल मन से ही ध्यान होता है, अन्य से नहीं ऐसा नियम स्वीकार किया जाय तो एकेंद्रिय से लेकर असैनी पंचेंद्रिय पर्यन्त जीवों के मन का अभाव होने से प्रसन्नता अप्रसन्नता बन नहीं सकती तथा ऐसी अवस्था होने से जब इन जीवों के आर्तध्यान, रौद्रध्यान नहीं तथा धर्मध्यान और शुक्लध्यान भी नहीं तब या तो इन जीवों में ध्यान पर्याय का अभाव होने से ध्यान पर्याय के आधारभूत चारित्र गुण का भी अभाव प्राप्त होता है और चारित्रगुण का अभाव होने से चारित्र को घातने वाले मोहनीय कर्म का भी अभाव प्राप्त होता है इससे संसार का और मोक्ष का भी अभाव होने से सर्व शून्यपने का प्रसंग आता है फिर भी संसारी प्राणियों में ध्यान का अभाव नहीं है किंतु सद्भाव है ऐसा केवली भगवान ने प्रतिपादन किया है। समस्त संसारी प्राणियों में ध्यान पर्याय का सद्भाव पाया जाता है तभी तो आश्रवबन्ध की व्यवस्था बनती है। अतः समस्त प्राणियों में जिसके जितनी इंद्रियां हैं तत्तत भाव इंद्रियजन्य कषायों का उदय होने से और उदयानुसार विषयवासना रूप में परिणमन होने से आर्तध्यान और रौद्रध्यान का सद्भाव बन जाता है। इसलिए ये ध्यानभाव इंद्रिय और मन से उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न– 2192 यदि केवल भावेंद्रिय और मन से ही ध्यान होता है तो सयोगकेवली, अयोगकेवली और सिद्धों के ध्यान का अभाव प्राप्त होता हैं?

उत्तर भावेंद्रिय और मन के बिना भी केवलियों के, सिद्धों के ध्यान पाया जाता है अन्यथा संवर निर्जरा तत्त्व की प्राप्ति, ब्रह्मचर्य महाव्रत, परिग्रह त्याग महाव्रत, संयम धर्म, तप धर्म, त्याग धर्म, आकिंचन्य धर्म, ब्रह्मचर्य धर्म की प्राप्ति बन नहीं सकती क्योंकि इनकी प्राप्ति सहेतुक है, निर्हेतुक नहीं जैसे यहाँ पर शुद्ध ध्यान के बाहर होने से संसार में पतन, बाह्य विषयों का, उपसर्ग परीषहों का वेदन, सुख दुःख का अनुभव, राग द्वेष में प्रवृत्ति, नाना प्रकार की चर्याओं में प्रवृत्ति होती है। सो उन केवलियों में, सिद्धों में ध्यान का अभाव मानने से इन सारी अवस्थाओं के सद्भाव मानने का भी प्रसंग आ जायेगा। इसलिए भावेंद्रिय और भाव मन के विना भी केवलियों के शुक्लध्यान होता है ऐसा स्वीकार करना चाहिए। ध्यानपर्याय के बिना चारित्र गुण की और चारित्र गुण के बिना ध्यानपर्याय की सिद्धि हो नहीं सकती अतः ध्यान स्वीकार करना ही पड़ता है।

प्रश्न– 2193 मृषावचन झूठवचन किसे कहते हैं?

उत्तर प्रमाद पूर्वक स्व पर और उभय के प्राणों की विराधना करने वाले तथा मोक्षमार्ग को, आत्मकल्याण

के मार्ग को घातने वाले वचनों को मृषावचन झूठ वचन कहते हैं। ये वचन संसार मार्ग के, पाप के दुर्ध्यानों के साधक है ऐसा अवधारण करना चाहिए।

प्रश्न– 2194 मृषानन्द रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर विषयकषाय पूर्वक प्रमाद सहित सांसारिक कार्यों को सिद्ध करने वाले अनर्गल वचनों को उच्चारण कर मनोनुकूल सफलता मिलने पर आनन्दित होने को मृषानन्द रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2195–96 मृषानन्द रौद्रध्यान के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर मृषानन्द रौद्रध्यान के 6 भेद हैं। नामः– स्पर्शेंद्रियजन्य मृषानन्द रौद्रध्यान, रसनेंद्रियजन्य मृषानन्द रौद्रध्यान, घ्राणेंद्रियजन्य मृषानन्द रौद्रध्यान, चक्षुइंद्रियजन्य मृषानन्द रौद्रध्यान, कर्णेद्रियजन्य मृषानन्द रौद्रध्यान और मनोद्भव मृषानन्द रौद्रध्यान।

प्रश्न– 2197 तरण परण और मरण के वचनों को भी मृषानन्द रौद्रध्यान में अन्तर्भाव कर सकते हैं क्या?

उत्तर तरण परण और मरण के वचन यदि केवल विषयभोग, ख्याति पूजा लाभ की भावना को लेकर वचन व्यवहार करते हैं तो अवश्य ही आर्तध्यान और रौद्रध्यान में अन्तर्भाव को प्राप्त हो जाते हैं तथा यदि अपने बलवीर्य को छिपाकर शक्ति से कम या ज्यादा किया तो भी दुर्ध्यानों में अन्तर्भाव हो जाता है अन्यथा अपने बलवीर्य को न छिपाकर शक्त्यनुसार तरण परण और मरण का व्यवहार किया तो भद्रध्यान में अन्तर्भाव हो जाता है क्योंकि इन कार्यों का व्यवहार अपने साधर्मी भाईयों के लिए किया जाता है जो जघन्य पात्र और मध्यम पात्र के लिए आहार दान स्वरूप है, त्याग धर्म है, सहधर्मी भाई के प्रति वात्सल्य भाव है जो सम्यग्दर्शन का अंग है।

प्रश्न– 2198–2200 तरण वचन, परण वचन और मरण वचन किसे कहते हैं?

उत्तर तरणः– पार होने को कहते हैं और इसके निमित्त दिये गये आहार को तरणाहार कहते हैं आज से करीब 35 वर्ष पहले तक प्रथा थी कि जब कोई श्रावक श्राविकायें धर्मकार्य, तीर्थयात्रायें करने जाते थे तो जानेके पहले अपने सगे संबंधियों को, परिवार वालों के, समाज के बन्धुओं को और व्यवहारीजनों को आमंत्रित कर भोजन पान कराते तथा गाजे बाजे के साथ सभी जन स्टेशन तक छोड़ने को जाते थे और जब यात्रा कर वापिस आते थे तब ऐसा ही व्यवहार किया जाता था सो इस व्यवहार को तरण आहारदान कहते हैं। परणः– विवाह को कहते हैं। विवाह के पूर्व और बाद में अपने साधर्मी भाईयों को आमंत्रित कर भोजनदान देते हैं। इससे मालुम हो जाता था कि गांव की समाज के साथ कैसी बैठक है, इसका जाति कुल कैसा है, आचार विचार समाज के साथ है या नहीं, इसके साथ पंक्ति में बैठकर भोजन करने वाले कितने व्यक्ति हैं, व्यवहार कुशल या अकुशल। कहीं समाज से बहिष्कृत तो नहीं है इत्यादि सामाजिक प्रेम, एकता बनाये रखने के लिए, अपनी शक्ति का, सम्पत्ति का सदोपयोग करने के लिए, प्रेम वात्सल्य बनाये रखने के लिए अपनी शक्ति को न छिपाकर, न ज्यादाकर भोजनपान वात्सल्य करने को परण आहारदान कहते हैं। इसी परणाहारदान के साथ जन्म का भी आहारदान समझ लेना क्योंकि परण का फल ही सन्तान प्राप्ति है। संतान की प्राप्ति होना कामपुरुषार्थ का व्यवहारिक फल है

मरणआहारः— मरण के बाद परिवार में जो 12 दिन तक कोई किसी प्रकार का धर्मानुष्ठान नहीं किया गया, न किसी उत्तम मध्यम और जघन्य पात्र ने घर में प्रवेश किया, आहार लिया तो 12 दिन तक पाप बढ़ता गया उस पाप को दूर करने के लिए सर्वप्रथम अपने साधर्मी भाईयों को भोजनदान दिया बाद में उत्तमपात्र, मध्यमपात्र आहार ले सकते हैं। जब तुम्हारा अशौच दूर हुआ नहीं समाज पंक्ति में बैठी नहीं तो ये पात्र आपके घर कैसे आयेंगे?

प्रश्न— 2201 मृत्युभोज अशुभ होने से खाने योग्य नहीं है क्योंकि वह भोजन दुःख का है, दुःखी परिवार का है?

उत्तर क्या मृत्यु का भोजन है? मरने वाला खिलाने आया है क्या? किन्तु यह अशौच दूर हुआ है पातक की अशुद्धि दूर हुई है इसके उपलक्ष्य में भोजनदान दिया है। परिवार में या जिस किसी में जो दुःख हुआ है या हो रहा है वह राग के, स्वार्थ के कारण हो रहा है यदि आप पातक के अशौच को दूर करने वाले भोजन दान का निषेध करते हैं तो जन्म के अशौच के, सूतक के भोजन का भी निषेध करना चाहिए क्योंकि दोनों ही अशौच राग से होते हैं। राग नहीं, स्वार्थ नहीं तो दुःखी क्यों होगा? जन्म के समय राग की, स्वार्थ की तीव्रता होने से इतनी प्रसन्नता बढ़ जाती है कि वह प्रसन्नता रौद्रध्यान रूप होकर, दानपूजा वैयावृत आदि सत्कार्यों से मुख मोड़ लेती है तथा जच्चा बच्चा के जीवन में कुछ गड़बड़ी हो जाय, स्वास्थ्य बिगड़ जाय, प्रसूति के समय कुछ अधिक कष्ट होने लगे तो सारा परिवार भी बहुत दुःखी हो जाता है। तो भी 10 दिन के पश्चात् समाज बन्धु, रिश्तेदार, नातेदार और व्यवहारीजन भी भोजन करते हैं अतः राग पूर्वक, स्वार्थ पूर्वक होने से दोनों प्रकार का भोजन समान है कोई अन्तर नहीं है हाँ यदि अन्तर है तो प्रथम में इष्ट वियोग जन्य आर्तध्यान से, राग से दुःखी हैं तो दूसरे में संयोग जन्य परिग्रहानंद रौद्रध्यान से, राग से प्रसन्न हैं। प्रथम राग जल्दी समाप्त हो जाता है तो दूसरा राग अन्त पर्यन्त पेलता है। हाँ, इतना अवश्य है कि खिलाने वाले की सामर्थ्य के अनुसार होना चाहिए। हमने या उसने ऐसा भोजन कराया था तुम भी ऐसा करो, इतना करो, दबाव डालना आदि मूर्खता है, उस परिवार को चूसना है, शोषण करना है, समाज की शक्ति को तोड़ना है, न मरने वाला खिलाने आता है, न जन्म लेने वाला खिलाता है किन्तु परिवार के लोग खिलाते, पिलाते हैं। मृत्यु के बाद परिवार के लोग दुःखी होते हैं ऐसा भी सर्वथा नहीं है क्योंकि यदि उसने घर गृहस्थी का काम पूरा कर लिया है, कुछ काम बचा नहीं तो परिवार के सदस्य दुःखी नहीं होते या कोई शरीर की या मानसिक वेदना से अत्यधिक दुःखी है और मृत्यु हो जाय तो भी दुःखी न होकर प्रसन्न होते हैं और कहते हैं कि अच्छा हुआ बहुत कष्ट उठा रहे थे, परिवार के सदस्य भी परेशान हो रहे थे या अत्यन्त अनाचारी, जातिकुल को बदनाम करने वाला मर जाय तो भी दुःखी नहीं होते ऐसा लोक में देखा जा रहा है किंतु जन्म के समय प्रसन्नता या अप्रसन्नता होने से सूतक लगता ही है अतः ऐसे तीन प्रसंगों पर ही समाज, सगे सम्बन्धी एकत्रित होकर मिलते हैं और इनके अलावा किसी को एकत्रित होने का समय नहीं तब परस्पर का आदान प्रदान, जान पहचान कैसे हो? अतः अपने साधर्मी भाईयों का मेल मिलाप, धर्मानुष्ठान, विवाह सम्बन्ध जन्मोत्सव, और अन्तिम यात्रा के प्रसंग पर होता हैं। इसी से परस्पर का व्यवहार प्रेम वात्सल्य भाव जागृत होता था होता

है और भविष्य में होगा तथा अपनी सम्पत्ति का प्रयोग भी साधर्मी भाईयों के प्रति, जघन्य मध्यम पात्रों के प्रति हो जाता था इसलिए चोर गुंडों को, सरकार को लूटने का, छापा मारने का मौका ही नहीं मिलता था और आजकल जैनों की सम्पत्ति का व्यय, समाज के हित में, उत्तम मध्यम और जघन्य पात्र के हित में, खर्च न होने से चोरों में, गुण्डों में, सरकार में, डाक्टरों में, पुलिस में, नशे पत्ते में, धूम्रपान में, होटलों में, घूमने फिरने में खर्च होती है, शौक श्रृंगार में खर्च होती है। यदि सत्कार्य में, पर हित, जनहित में खर्च करते तो ऐसा पाप न बढ़ता, न व्यर्थ में बीमारी आती, न वैर विरोध बढ़ता। अतः पाप घटाने के लिए उक्त प्रकार से समदत्ती दान देना चाहिए।

प्रश्न– 2202 आजकल लोग मृत्युभोज का निषेध करते हैं और नियम भी देने लगे कि ऐसा भोजन मत करो सो यह क्या उचित है?

उत्तर अनुचित है, निषेध नहीं करना चाहिए किन्तु संशोधन करना चाहिए। जो निषेध करते हैं वे स्वयं समाज को खिलाना पिलाना नहीं चाहते हैं। वे ही उनके घरों में आगे पीछे जाकर खा पी आते हैं। जैसे आजकल दहेज देने वाले विरोध करते हैं कि दहेज मत लो किन्तु जब लेने का प्रसंग आता है तो उस समय नहीं बोलते कि दहेज मत दो। लेते वक्त चुपचाप लेकर रख लेते हैं ऐसे ही समझना। दहेज देना बुरा नहीं है किंतु मांगना बुरा है।

प्रश्न– 2203 तेरही या दसवाँ के भोजन के समान समस्त प्रकार के भोजन का जो सामाजिक है उसका भी त्याग करना चाहिए?

उत्तर नहीं, त्याग नहीं करना चाहिये क्योंकि भोजनपान से ही समाज परस्पर में प्रतिष्ठा को, मान मर्यादा को प्राप्त होती है। अन्यथा पशुवत् समाज हो जायेगी और जो आजकल हो चली है, सामाजिक मान मर्यादायें समाप्त हो रही हैं, सामाजिक बन्धन टूटने से समाज में मनमानी कुचेष्टायें चालु हो गई हैं। संकुचित मनवाले पैदा हो रहे हैं, सामाजिक शिक्षा दीक्षा भी समाप्त हो रही है। अतः व्यक्तिगत त्याग करने से स्वयं का पतन होगा और सामाजिक तौर पर करने से समाज का, नवीन पीढ़ी का पतन होगा जो प्रत्यक्ष में दृष्टिगोचर हो रहा है।

प्रश्न– 2204 अभी तक हमने झूठ वचन केवल मुख से सुने हैं तो मृषानन्द रौद्रध्यान भी मुख से होगा, शेष इंद्रियों से नहीं परन्तु यहाँ पर आपने मृषानन्द रौद्रध्यान सभी इंद्रियों और मन से होता है ऐसा कहा सो यह आगम से विरोध है समीचीन नहीं है, अतः इसे मिथ्या क्यों न कहा जाये?

उत्तर नहीं, यह कथन मिथ्या नहीं, किन्तु समीचीन है। देखो यदि वचन मुख, तालु, कण्ठ, ओष्ठ, मूर्धा से उच्चारण किये जाते हैं सो यह वात सत्य है परन्तु झूठ वचन का हेतु, माध्यम, साधन कौन इंद्रिय और कौन सा विषय है यह देखना अतः झूठ पाप के निमित्त जीव पदार्थ और अजीव पदार्थ दोनों देखे जाते हैं त.सू. 22. अधिकरणं जीवाजीवाः'– पुण्यपाप कर्म के, आश्रव बंध तत्त्व के आधार जीव और अजीव पदार्थ हैं। अतः झूठ पाप के बाह्य साधन जीव पदार्थ और अजीव पदार्थ हैं तो मृषानन्द रौद्रध्यान भी जीव पदार्थ और अजीव पदार्थों के माध्यम से होता है ऐसा मानने में क्या दोष है? अतः जिस विषय के माध्यम से वचन बोलकर सफलता मिलने

पर आनंद मानने को मृषानंद रौद्रध्यान कहते हैं। अतः यह मृषानन्द रौद्रध्यान सभी इंद्रिय और मन से होता है सो यह ठीक ही कहा है।

प्रश्न— 2205 स्पर्शेंद्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर शरीर के द्वारा इष्टानिष्ट विषयभोग भोगते हुए भी अथवा न भोगते हुए भी पूंछे जाने पर बदलकर बोल दिया और सामने वाले व्यक्ति ने ईमानदार, सज्जन मानकर विश्वास कर लिया कि यह व्यक्ति योग्य है, समीचीन है इस प्रकार अपने बोलने पर उसने ईमानदार समझकर विश्वास कर लिया तब अपनी झूठ बोलने की कला पर प्रसन्न हुए कि हमने ऐसा बोला तो वह उल्लू बन गया और अपना काम हो गया अतः इस प्रकार वचन के माध्यम से उत्पन्न आनन्द को स्पर्शेंद्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न— 2206—08 स्पर्शेंद्रियजन्य मृषानन्द रौद्रध्यान क्यों उत्पन्न होता है? कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर स्पर्शेंद्रिय के किसी भी विषय में मन लग रहा है जैसे चिकनी शय्या पर लेटे हैं या बैठे हैं आनन्द ले रहे हैं सो यह प्रथम रौद्रध्यान है। अब किसी ने आकर पूंछा कि आप अच्छी तरह से बैठे हो या लेटे हो तब और अधिक मनोनुकूल शय्या चाहिए इस अभिप्राय से कहा कि ठीक नहीं है। तब उसने आपके वचन पर विश्वास कर लिया और अब अधिक उत्कृष्ट शय्या की व्यवस्था हो गई अब आपने सोचा कि सही बोल देते तो ऐसी शय्या प्राप्त न होती अतः बदलकर बोलने से कार्य की सिद्धि हुई इस प्रकार स्पर्शेंद्रिय के विषय के माध्यम से वचन झूठ बोला गया और प्रसन्न हुए इसलिए इसे स्पर्शेंद्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान कहते हैं। अब यद्यपि वचनों का उच्चारण मुख से किया, शरीर से नहीं परन्तु शब्दोच्चारण का मूल कारण हेतु माध्यम स्पर्शेंद्रिय का विषय बना इसलिए स्पर्शेंद्रिय के विषय के अनुसार स्पर्शेंद्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान आठ प्रकार का हो जाता हैं। संख्यात असंख्यात और अनंत भेद हो जाते हैं। नामः— हल्का भारी, रूखा चिकना, कोमल कठोर, ठण्डा गर्म। इन आठ विषयों में से किसी भी विषय में मन लगाए हुए हैं पुनः पुनः आसक्ति पूर्वक भोगने के लिए अधिक मात्रा में प्राप्त करने के लिए बदलकर बोलने से अपने विषय में सफलता मिलने पर प्रसन्न होने को तत्तत् नामवाला स्पर्शेंद्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान समझना चाहिए। पंखे की हवा में अरुचि होने पर ए.सी. की शीतलता में मन लालायित हो जाता है।

प्रश्न— 2209 इस स्पर्शेंद्रियजन्य मृषानन्द रौद्रध्यान के स्वामी कौन कौन जीव हैं?

उत्तर इस मृषानंद स्पशेन्द्रिय जन्य रौद्रध्यान के स्वामी समस्त पंचेंद्रिय सैनी पर्याप्तक मनुष्य, देव और नारकी जीव हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यंच बोलते हुए भी अपनी कला को नहीं जानते अतः ये स्वामी नहीं।

प्रश्न— 2210 रसनेंद्रियजन्य मृषानन्द रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर भोजन के स्वाद में रमण करते हुए, स्वाद लेते हुए भी किन्हीं दूसरों के द्वारा पूछे जाने पर कितना अच्छा स्वाद है तब अपने को और अधिक चाहिए ऐसी लालसा से पुनः प्राप्त करने के लिए बदलकर बोल दिया और मनोनुकूल स्वाद की वस्तु मिल गई तब अपने वचन की कला पर प्रसन्न हुए सो इस ठग विद्या के वचन प्रयोग को रसनेंद्रियजन्य मृषानन्द रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न— 2211 रसनेंद्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर किसी भी प्रकार का भोजनपान नहीं किया हैं फिर भी कोई भोजन देने वाला आया और पूंछा तब मन में आकांक्षा खाने की होने पर भी मना कर देना क्योंकि कम मिलेगा या मनोनुकूल नहीं है इसलिए मना कर दिया यदि यहाँ खा लिया तो फिर वहाँ क्या खायेंगे? लोलुपता पूर्वक मना कर देने को अथवा प्रेम पूर्वक आसक्ति पूर्वक खा रहे हैं फिर भी पूंछने पर कि आप खा रहे हैं तब जवाब दिया कि मेरी इच्छा नहीं है ये जबरदस्ती कर रहे हैं इसलिए खाना पड़ रहा है इस प्रकार बोलने को रसनेंद्रिय जन्य मृषानंद रौद्रध्यान राग पूर्वक वचन प्रयोग से रसनेंद्रिय के विषय से उत्पन्न होता है।

प्रश्न— 2212 इस प्रकार वचन बदलकर बोलने को मृषानंद रौद्रध्यान क्यों कहा?

उत्तर वचन बदलकर बोलने को रौद्रध्यान नहीं कहा किन्तु उसको चक्कर में डालने के लिए, वचन प्रयोग करने पर, सफलता प्राप्त होने पर, प्रसन्न होने को रसनेंद्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान कहा है क्योंकि प्रभाव जमाने के लिए, प्रशंसापात्र बनने के लिए, इंद्रिय विजेता है ऐसी प्रसिद्धि के लिए असत्य वचन बोलकर फिर अपनी प्रशंसा सुनकर आनन्दित होने को रसनेंद्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान कहा है।

प्रश्न— 2213 रसनेंद्रिय जन्य मृषानंद रौद्रध्यान के कितने भेद हैं?

उत्तर जितने भेद भोजन के और भोजन के खट्टा, मीठा, कडुआ, कषायला, चरपरा, घी, तेल आदि, स्वादिष्ट, पौष्टिक स्वाद के भेद हैं उतने ही या अनंत गुणे भोजन के परिणामों के भेद हैं और इनसे भी अनन्तगुणे असंख्यात लोक प्रमाण इस ध्यान के भेद हैं यह ध्यान केवल पंचेंद्रिय सैनी, पर्याप्तक, मनुष्य, देव, नारकी जीवों के होता है, भोगभूमिजों के नहीं।

प्रश्न— 2214 देव, नारकी जीवों में यह रसनेंद्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान कैसे उत्पन्न होता है जबकि ये भोजन करते नहीं स्वाद लेते नहीं?

उत्तर देव, नारकी जीवों में यद्यपि औदारिक वर्गणा सम्बन्धी आहार नहीं है। यह शत प्रतिशत सत्य है परन्तु आहार संज्ञा मौजूद है और जब किसी को भूत पिशाच वगैरह लग जाते हैं तो उनको निकालने के लिए मिर्च आदि का प्रयोग करते हैं तथा वह व्यक्ति अधिक भी खा लेता है और नारकी भी असाता वेदनीय कर्म की उदीरणा होने पर आहार संज्ञा की उत्पत्ति हुई तब मिट्टी खाने चला और उस समय अम्बरीश भवनवासी असुरकुमार जाति के देव भिड़ाते हैं नारकी जीव आक्रमण करते हैं, मारते हैं, पीटते हैं और जो नारकी अकेला पड़ गया, कमजोर हो गया तो वह रोता है, करुणामय दीन वचन बोलता है, चरणों मे गिरता है, क्षमा मांगता है और उस समय अपने बचाव के लिए असत्प्रलाप भी करता है जिन मनुष्य या तिर्यंचों ने यहाँ पर मांस खाया शराब पी थी, वेश्यागमन, परस्त्रीगमन आदि व्यसन का सेवन किया था तो वे नारकी वैसी ही विक्रिया कर वहाँ नरक में बांधकर अपने आधीन कर मांस शराब आदि खिलाते पिलाते हैं तब वह अपने बचाव के लिए नाना तरह से झूठ बोलता है, बचाव करके अपने स्थानों में आकर प्रसन्न होता है सो यह प्रसन्नता ही रसनेंद्रिय जन्य मृषानन्द्र रौद्रध्यान कहलाता है।

प्रश्न– 2215 इस रसनेंद्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान के स्वामी भोगभूमिज मनुष्य और वैमानिक देव अहमिन्द्र क्यों नहीं?

उत्तर इन जीवों में अशुभलेश्यायें नहीं पाई जाती हैं तथा झूठ बोलने का प्रसंग ही प्राप्त नहीं होता कि जिससे यह ध्यान बन सके अथवा मिथ्यात्व गुणस्थान में भी इनके रौद्रध्यान पाया जाता है। क्योंकि लेश्या और ध्यान में ऐसा कोई नियम नहीं है कि अशुभ लेश्याओं में धर्मध्यान नहीं हो या शुभलेश्याओं में आर्तध्यान रौद्रध्यान नहीं हो। आर्तध्यान रौद्रध्यान छहों लेश्याओं में पाये जाते हैं तथा सभी लेश्यायें आर्तध्यान रौद्रध्यान में पायी जाती हैं। मिथ्यात्व गुणस्थान में सभी लेश्यायें तथा आर्तध्यान रौद्रध्यान पाये जाते हैं। यह कथन भी नाना जीवों की अपेक्षा से किया है एक जीव की अपेक्षा से नहीं। एक जीव के, एक काल में, एक क्षेत्र में, एक साथ सभी लेश्यायें तथा सभी ध्यान नहीं पाये जाते हैं। सातवें नरक में सम्यग्दृष्टि नारकी परम कृष्णलेश्या के साथ धर्मध्यान से परिणत होता है और नौवें ग्रैवेयक में अभव्य मिथ्यादृष्टि अहमिन्द्र परम शुक्ललेश्या से परिणत हो आर्तध्यानी रौद्रध्यानी होते हैं। अतः यहाँ यह रौद्रध्यान संभव है।

प्रश्न– 2216 घ्राणेंद्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर नासिका के द्वारा सूंघने के योग्य विषय पाकर सूंघ लिया या सूंघने की आकांक्षा है या सूंघ रहे हैं परन्तु दूसरों के द्वारा पूंछने पर विश्वास दिलाने के लिए मैंने नहीं सूंघा, सूंघना नहीं चाहता हूँ। मेरी इच्छा नहीं है पर इन्होंने बलात् सुंघा दिया या धोके से सुंघा दिया मैं क्या करूं आदि वचन बोलकर उसको चक्कर में डालकर स्वयं में अपनी झूठ कला पर प्रसन्न होने को घ्राणेंद्रिय जन्य मृषानंद रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2217 घ्राणेंद्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान के कितने भेद हैं?

उत्तर सामान्यतया दो भेद हैं और विशेषतः संख्यात असंख्यात और अनन्त भेद हैं जो असंख्यात लोक प्रमाण हैं। सुगन्ध और दुर्गन्ध दो भेद हैं। इन्हीं दोनों सुगन्ध और दुर्गन्ध गुण पर्यायों से युक्त द्रव्य भी अभेद विवक्षा से दो प्रकार का हो जाता है।

प्रश्न– 2218 घ्राणेंद्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर सुगन्धित या दुर्गन्धित पदार्थ को सूंघ रहे हैं। सूंघते हुए आनन्द ले रहे हैं। किसीने आकर पूछ लिया कि कितना आनन्द आ रहा है परन्तु अपने अभिप्राय को छिपाकर कोई आनन्द नहीं है, कोई योग्य विषय नहीं है यदि सही बोलेंगे तो इसको भी देना पड़ेगा आदि विचारों से झूठ बोल दिया तब वह मान गया अपनी इस वचन कला पर प्रसन्न हुए मैंने बहुत अच्छा कहा काम हो गया इस तरह यह घ्राणेंद्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान उत्पन्न होता है।

प्रश्न– 2219 वचन तो मुख से बोले जाते हैं, नाक से नहीं, फिर घ्राणेन्द्रिय जन्य मृषानंद रौद्रध्यान क्यों कहा?

उत्तर यह बात सत्य है कि वचन मुख से बोला जाता है, नाक से नहीं परन्तु झूठ वचन का यहाँ मुख्य साधन नाक का विषय है अतः साध्य साधन भाव में अभेद विवक्षाकर घ्राणेंद्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान कहा गया है। जो उपयुक्त ही है।

प्रश्न— 2220 आनन्द भी मन में आयेगा वचन में नहीं, नाक में नहीं, फिर मृषानंद रौद्रध्यान क्यों कहा?

उत्तर आनन्द मन में ही आता है पर आनन्द रूप साध्य का निमित्त साधन झूठ वचन और घ्राणेंद्रिय है अतः साध्य और साधन में अभेद विवक्षाकर घ्राणेंद्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान कहा है।

प्रश्न— 2221 घ्राणेंद्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान क्यों उत्पन्न होता है?

उत्तर घ्राणेंद्रिय विषय में किसी भी राग कषाय से परिणत होकर आनन्द को प्राप्त होता है। हा हा कितनी अच्छी सुगन्ध आ रही है। भौंरे के समान आसक्त हो रहा है, छोड़ने में असमर्थ है क्योंकि तीव्र लालसा युक्त हो आसक्त हो रहा है इसलिए कदाचित् जानकार होने से छोड़ने में समर्थ है तो भी राग वश त्याग न कर वचन से मना कर देता है कि मैं नहीं सूंघना चाहता हूँ, इस तरह मायाकषाय और लोभ कषायोदय से तथा हास्य रति, तीनों वेदोदय से प्रेरित होकर घ्राणेंद्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान को उत्पन्न करता है।

प्रश्न— 2222 चक्षुइंद्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर मनोनुकूल चक्षु इंद्रिय के विषय में सकषाय प्रमाद पूर्वक आसक्त होकर आनन्द मानने को चक्षुइंद्रियजन्य मृषानंद रौद्रध्यान कहते हैं तथा पूंछने पर असमीचीन वचन बोलकर लोगों को अपने प्रति आकर्षित करने को चक्षु इंद्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न— 2223—24 चक्षु इंद्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर चक्षु इंद्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान के संक्षेपतः 5 भेद हैं। नामः— काला, नीला, पीला, लाल और सफेद। इन्हीं के भंग प्रतिभंग या पर्यायों की अपेक्षा संख्यात असंख्यात और अनंत भेद हो जाते हैं। इन्हीं रंगों को परस्पर में मात्रानुसार मिलाने से अनेक रंग बन जाते हैं।

प्रश्न— 2225 चक्षु इंद्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान क्यों उत्पन्न होता हैं?

उत्तर अभी संसार भ्रमण ज्यादा है, असंयम भाव है, प्रमाद अवस्था भी है, संसार के दुःख अभी भोगने के लिए शेष बचे हैं। इस लोक में अभी बदनामी उठाना है अतः अज्ञान और मोह के कारण यह ध्यान उत्पन्न होता है। किसी ने किसी रूप अलंकार में मन लगा रखा है, प्रेम भरी आँखों से देख रहा है और किसी ने आकर पूंछा कि आप कितनी लगन से देख रहे हो तो आपने कहा मैं नहीं देख रहा हूँ ऐसे झूठ वचन से चक्षु इंद्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान उत्पन्न होता है।

प्रश्न— 2226 चक्षु इंद्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान के स्वामी कौन हैं?

उत्तर इस ध्यान के स्वामी चारों गतियों के सैनी, पंचेंद्रिय पर्याप्तक, मनुष्य, देव, नारकी जीव हैं। यद्यपि चौइंद्रिय जीव के आँखें हैं, विषय भी हैं, रौद्रध्यान है परंतु ठगने के लिए या झूठे वचन बोलकर हर्षित होने की कला पास में नहीं है। अतः यह ध्यान उत्पन्न नहीं होता है।

प्रश्न— 2227 चक्षु इंद्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान के स्वामी तिर्यंच क्यों नहीं?

उत्तर क्योंकि तिर्यंचों में स्पष्ट स्वर व्यजंन युक्त भाषा नहीं पाई जाती है जिससे कि वे इन पाँचों इंद्रियों

और मन से उत्पन्न मृषानन्द रौद्रध्यान कर सकें इसी तरह भोगभूमिज तिर्यंचों में भी मृषानन्द रौद्र ध्यान उत्पन्न होने का कारण नहीं पाया जाता।

प्रश्न– 2228 कर्णेंद्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर कान के विषय में और तत्सम्बन्धी शब्दों को गद्य या पद्य रूप में उतार चढ़ाव रूप में सुरीले या कठोर कर्कश रूप में सुनकर हर्षित होने को कर्णेंद्रियजन्य मृषानन्द रौद्रध्यान कहते हैं। इंद्रिय विजेता हैं, उपसर्ग परीषहों को जीतने वाले हैं ऐसी प्रसिद्धि के लिए इन शब्दों में कोई आनन्द नहीं आ रहा है, हमको बलात् बैठा लिया है, खड़ा कर लिया है, हम नहीं सुनना चाहते आदि इसी तरह से अपने को ये ईमानदार हैं, सज्जन हैं आदि उनको अपने ऊपर विश्वास दिलाने के लिए असत्वचन बोल कर सफलता मिलने पर आनंदित होने को कर्णेंद्रिय जन्य मृषानन्द रौद्र ध्यान कहते हैं अथवा किसी के भी शब्दों को सुनकर कोर्ट में गवाही के लिए अन्यथा बोल देने को या हमने सुना नहीं या दूसरों को हराने जिताने के लिए अन्यथा बोलकर सफलता मिलने पर प्रसन्न होने को कर्णेंद्रिय जन्य मृषानंद रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2229–30 कर्णेंद्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर जितने शब्दों के भेद हैं उतने ही और उनसे अनन्त गुणे कर्णेंद्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान के भेद हैं। नामः– षडज्, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद। इन शब्द स्वरों को सुनकर प्राणी इतना आसक्त होता जा रहा है कि अपना, अपने परिवार का, बाल बच्चों का हिताहित नहीं सोचता। सर्प के, हिरण के समान अपना जीवन, धर्मकर्म, लज्जा मर्यादा, धन वैभव आदि सब कुछ नष्ट कर रहा है। इसके फल स्वरूप यहीं पर बदनामी को प्राप्त कर दुर्गति का पात्र होता है।

प्रश्न– 2231 पाँचों इंद्रियों के विषय शुभ और अशुभ होते हैं तो रौद्रध्यान शुभ विषयों से होता है या अशुभ विषय से?

उत्तर पाँचों इंद्रियों के अशुभ विषयों में प्रवृत्ति करने से या होने पर आनन्द मानने से रौद्रध्यान उत्पन्न होता है। रत्नत्रय के विना शुभ विषयों में प्रवृत्ति होने से किंचित् पुण्य का कारण शुभ योग पूर्वक मन्द रौद्रध्यान होता है परन्तु इंद्रिय विषयों में प्रवृत्ति होने से आनन्द मानने पर अशुभ रौद्रध्यान ही होगा, सद्ध्यान सद्भावना नहीं होगी क्योंकि सद् ध्यान रत्नत्रय पूर्वक ही होता है।

प्रश्न– 2232 कर्णेंद्रिय जन्य मृषानन्द रौद्रध्यान के स्वामी कौन कौन जीव हैं?

उत्तर उक्त कर्णेंद्रिय जन्य मृषानंद रौद्रध्यान के स्वामी तीनों गतियों के मनुष्य देव और नारकी जीव हैं जो सैनी पंचेंद्रिय पर्याप्तक असंयमी सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि होना चाहिए।

प्रश्न– 2233–34 चारों प्रकार के आर्तध्यान के स्वामी कौन कौन जीव हैं? कौन कौन जीव नहीं हैं?

उत्तर चारों प्रकार के आर्तध्यान के स्वामी मिथ्यादृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अविरत सम्यग्दृष्टि और देशसंयत गुणस्थान वाले हैं तथा निदान आर्तध्यान को छोड़कर शेष तीन प्रकार के आर्तध्यान के स्वामी प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती मुनिजन हैं।

प्रश्न— 2235 मुनियों के निदान आर्तध्यान क्यों नहीं होता है?

उत्तर मुनियों के निदान आर्तध्यान इसलिए नहीं होता है कि उन्होंने संयम को घातने वाली और असंयम को पुष्ट करने वालीं अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ इन 12 कषायों का उदयाभावी क्षय कर दिया है इसलिए उनके निदान आर्तध्यान का अंतरंग कारण अनन्तानुबन्धी आदि तीन चौकड़ी कषाय का आभाव है, अन्य कषाय नहीं। इसलिए मुनियों के निदान आर्तध्यान नहीं होता है। कदाचित् बाह्य विषय भोगों की सामग्री को और विषय भोगी लम्पटी प्राणियों से प्रमाद पूर्वक, अधिक समय तक सम्पर्क बनाये रखने से उनके रूप, यौवन, वस्त्राभरण में उपयोग लगाने से और मन में विषय भोगों के प्रति आकांक्षा, अतृप्ति भावना होने से निदान आर्तध्यान के परिणाम बन जाते हैं, उत्पन्न होते ही संयम परिणाम, संयत गुणस्थान छूटकर मिथ्यात्व गुणस्थान तक में पतनकर आ जाते हैं। अंतरंग बहिरंग दोनों से पद भ्रष्ट होकर विवाहादि कर गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर लेते हैं। जैसे भिन्न दसपूर्वी मुनिजन, रुद्र पदवी धारक सात्यकी पुत्र आदि तथा नारायण प्रतिनारायण पदवी को पाने वाले पूर्व भव के मुनिजनों को निदान आर्तध्यान के सम्बन्ध में समझना चाहिए। आजकल तो अनेक साधु, साध्वी पद भ्रष्ट होकर गृहस्थ जीवन में समय बिता रहे हैं। यह सब बगुला भक्ति कुसंगति, दुर्भावना का, निदान आर्तध्यान का फल है।

प्रश्न— 2236 मिथ्यात्व गुणस्थान से देशसंयत गुणस्थान पर्यन्त का निदान आर्त ध्यान एक ही प्रकार का है या भिन्न भिन्न प्रकार का है?

उत्तर सभी गुणस्थानों का निदान आर्तध्यान सामान्य जाति की अपेक्षा एक प्रकार का है उसमें भेद नहीं है किन्तु मात्रा की अपेक्षा तथा आगे आगे कषायों की तीव्रता का अभाव होने से कषायों की वासना संस्कार में हीनता होने से अंतर है। जिस प्रकार मिथ्यात्व गुणस्थान में मिथ्यादृष्टि जीवों का निदान आर्तध्यान तिर्यंचायु के आश्रव का कारण होता है उतना आगे के गुणस्थानों वाला निदान आर्तध्यान तीव्र नहीं होता है, ना तिर्यंचायु का कारण होता है तथा मात्रा कम होती है और आगे आगे संस्कार भी जल्दी समाप्त होते जाते हैं।

प्रश्न— 2237—38 निदान आर्तध्यान का साक्षात् फल? परम्परा फल क्या है?

उत्तर निदान आर्तध्यान का साक्षात् फल गुणस्थान से, विशुद्धि से, शुभ लेश्याओं से पतन होना मिथ्यात्व में आना या मिथ्यात्व गुणस्थान में ही तीव्र कषाय में प्रवृत्ति होना, तीव्र अशुभ संक्लेश होना, कषाय सहित होने से, किंचित् इंद्रिय सुख में रममाण होना या लोकानुसार प्रवृत्ति होने से कीर्ति प्रशंसा होना, इंद्रिय सुख सामग्री की प्राप्ति होना यदि देवायु के बंध के बाद निदान आर्तध्यान हुआ तो स्वर्ग के इंद्रियजन्य सुख भोगकर, मरणकर मनुष्य भव पाकर, विषय भोगों में रमणकर, असंयम पूर्वक मरण कर, नरकगति में जन्म धारणकर सागरों पर्यंत दुःख भोगेगा और दुःख भोगते हैं। सागरों पर्यन्त नाना प्रकार के मारकाट, छेदन भेदन, ताड़न पीड़न आदि रोते रोते दुःख भोगते हैं। यह परम्परा फल है। ये दोनों प्रकार की अवस्थायें आगम से जानी जाती है।

प्रश्न— 2239 निदान आर्तध्यान से क्या हानि प्राप्त होती है?

उत्तर किसी जीव ने महान तप किया, उत्कृष्ट पुरुषार्थ किया, ध्यान साधन किया जिसका उत्कृष्ट फल प्राप्त होना था अधिक मात्रा में, अधिक समय तक प्राप्त होने वाला था, रहने वाला था किन्तु हीन परिणामों से तप आदि का फल सांसारिक, पराधीन, निरतिशय, दुःख मिश्रित, पाप के बीज स्वरूप इंद्रिय सुख का निदान करके, हीन फल प्राप्त कर लिया तथा मरणकर नरक निगोद के दुःखों का पात्र बना जैसे कुत्ते को रोटी का टुकड़ा दिखाकर कहीं भी ले जाओ, पीछे पीछे चला जाता है ऐसे ही यह निदानबन्ध जीव को कर्मजन्य इंन्द्रिय सुख का लोभ देकर, आनन्द दिलाकर महान कष्टमें डाल देता है। सागरों पर्यन्त के लिए नरकों में पहुंचा देता है।

प्रश्न– 2240–41 आजकल मुनि आर्यिका आदि त्यागियों में ख्यातिपूजा लाभ रूप निदान आर्तध्यान क्यों, नहीं देखा जा रहा है? तुम्हें कैसे मालूम?

उत्तर हाँ अवश्य ही, देखो तभी तो इनके दरवाजे पर पहरेदार बैठे रहते हैं, इनके द्वारा गरीबों को दर्शन करने के लिए मना कर दिया जाता है, अभी समय नहीं है, स्वास्थ्य ठीक नहीं है, ध्यान कर रहे हैं, विश्रामकर रहे हैं, ऐसा बोलकर वापिस कर दिया जाता है। कदाचित् इसी बीच कोई धनवान या नेता या दाता आ गया तो दरवाजा खुल जाता है, पहरेदार हट जाते हैं, स्वास्थ्य भी अच्छा हो गया, विश्राम, ध्यान कहाँ चला गया पता नहीं आदि कारणों से हमको मालूम हैं।

प्रश्न– 2242 और क्या क्या करते हैं?

उत्तर उन नेताओं के साथ वार्तालाप करते समय क्या सामायिक, क्या ध्यान, क्या षडावश्यक आदि का ध्यान न रख, क्या रात्रि ,क्या दिन, कब बोलना, कब नहीं बोलना, समिति क्या है, सम्यग्दर्शन के अतिचारों में अन्यदृष्टि प्रशंसा और अन्यदृष्टि स्तव इन अतिचारों का ध्यान न करते हुए वार्तालाप करते हैं। पूजापाठ का, स्वाध्याय का, शयन का समय निकल जाता है। राजनेताओं के, धनवानों के, दाताओं के आदर सम्मान करते, कराते समय इतने मस्त हो जाते हैं कि अपने गुण दोषों का कुछ भी ध्यान नहीं रखते इससे जाना जाता है की ये निदान आर्तध्यानी हैं क्योंकि ख्यातिपूजा लाभ की भावना, क्रिया, आचरण से पहंचाना जाता है। यह ख्याति पूजा लाभ की चर्या आत्मा के लिए कलंक है या निष्कलंक यह स्वयं निष्पक्ष होकर निर्णय करो।

प्रश्न– 2243–44 ख्यातिपूजा लाभ की भावना केवल निदान आर्तध्यान है या नहीं? कुछ और भी है?

उत्तर निदान आर्तध्यान तो है ही तथा गृहीत और अगृहीत मिथ्याचारित्र भी है जो नियमतः मिथ्यात्व गुणस्थान को ही सूचित करता है क्योंकि दर्शन ज्ञान चारित्र इन तीनों में से किसी एक के साथ सम्यक् विशेषण होने से शेष दो सम्यक् हो जाते हैं और एक के साथ मिथ्या विशेषण होने से शेष दो मिथ्या हो जाते हैं ऐसा नहीं है कि दो सम्यक् हो और एक मिथ्या हो। अतः यह ख्याति पूजा लाभ की भावना उभय लोक को बिगाड़ने वाली और दुःखदाई है।

प्रश्न– 2245 इसमें क्या हेतु है कि जो ख्याति पूजा लाभ की भावना निदान आर्तध्यान और मिथ्या चारित्र कहलाती है?

उत्तर मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषाय का उपशम या उदय एक ही समय में एक ही परिणाम से

होता है किन्तु वेदक सम्यग्दर्शन से क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त करते समय सर्वप्रथम एक ही परिणाम से अनन्तानुबन्धी कषाय का क्षय कर पुनः करण करते हुए मिथ्यात्व का फिर सम्यक्‌मिथ्यात्व का फिर सम्यक्त्व प्रकृति का क्षय करते हैं। सो यह अवस्था सम्यग्दृष्टि जीव की है, मिथ्यादृष्टि जीव की नहीं। इसी तरह मोहकर्म की 24 प्रकृतियों की सत्तावाले सम्यग्दृष्टि जीव के मिथ्यात्व कर्म के उदय में आने पर सम्यक्त्व की विराधना कर मिथ्यात्व गुणस्थान में आकर एक आवली काल तक अनन्तनुबन्धी कषाय का उदय नहीं होता है इन दो अवस्थाओं को छोड़कर शेष अवस्थाओं में अन्तर नहीं है इसलिए ख्याति पूजा लाभ की भावना वालों के और निदान आर्तध्यान से परिणत जीव के मोक्षमार्ग तथा वास्तविक धर्मप्रभावना घटित नहीं होती है।

प्रश्न– 2246 वास्तविक प्रभावना किसे कहते हैं?

उत्तर अज्ञान अन्धकार, मिथ्याज्ञान निकल जाये तो इसका नाम वास्तविक धर्म प्रभावना है अन्यथा दीपक के नीचे अंधेरा जैसी प्रभावना होती है। जो मोक्षमार्ग में ग्राह्य नहीं है।

प्रश्न– 2247 इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग आर्तध्यान गृहस्थों के ठीक है क्योंकि उनके चेतन, अचेतन और मिश्र भोगोपभोग की सामग्री मकान, दुकान, दासी दास, पशु पक्षी, माता पिता, पति पत्नी, धन सम्पत्ति मौजूद है परन्तु इन सबके त्यागी मुनि आदिकों में ये दो आर्तध्यान कैसे सम्भव हैं?

उत्तर यद्यपि मुनि आदिकों में ये आर्तध्यान के कारण नहीं हैं फिर भी गर्मी सर्दी, भूख प्यास, उपसर्ग परीषहों के उपस्थित होने पर इनके माध्यम से महाव्रती मुनियों के आर्तध्यान संभव है अथवा अशिष्ट, अनाज्ञाकारी शिष्यों के संयोग से या अनाचारी, दुराचारी गुरु के संयोग से, सम्बन्ध से अनिष्ट संयोग और मोक्षमार्गानुकूल गुरु या शिष्यों के वियोग से उत्पन्न परिणाम अधिक समय ठहर जायें तो इष्ट वियोग आर्तध्यान भी संभव है या पीछी कमण्डलु आदि के वियोग से, शरीर की स्वच्छता के वियोग से, सौंदर्य के वियोग से भी इष्ट वियोग आर्तध्यान संभव है तथा शरीर में मैल के संयोग से, कमण्डलु गन्दा हो जाने से, प्रयोग के लिए उपकरण दिखे नहीं, हमारी पाटा चटाई, शय्या, आसन आदि का गृहस्थ आकर प्रयोग कर ले और अपन देख ले तो शीघ्र ही अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान उत्पन्न हो जाता है। इस कारण गृहस्थों के आर्तध्यान के कारण भोगोपभोग के पदार्थ हैं तो त्यागियों के व्यवहार धर्म की साधन सामग्री के माध्यम से (यहाँ विष्णुकुमार मुनि की कथा देखना चाहिए) आर्तध्यान उत्पन्न हो जाता है।

प्रश्न– 2248 वेदना आर्तध्यान महाव्रतियों के कैसे संभव है?

उत्तर यह शरीर सप्तमल धातुओं और सप्त उपधातुओं से भरा हुआ है फिर स्थिर नामकर्म और अस्थिर नामकर्म के कार्यों में बदलाव होने से तथा वात पित्त कफ के विकार से उत्पन्न कष्ट वेदना या बीमारी आ गई तब उसके माध्यम से मन में हुई वेदना को दूर करने के लिए आकुलता होने लगी इस कारण मुनियों के भी वेदना आर्तध्यान बन जाता है।

प्रश्न– 2249 गृहस्थ और मुनियों के वेदना आर्तध्यान समान रूप से होता है या कुछ असमानता है?

उत्तर वेदना आर्तध्यान की अपेक्षा समानता है मात्रा की अपेक्षा और फल प्राप्ति की अपेक्षा से अंतर है असमानता है।

प्रश्न– 2250 रौद्रध्यान क्या मुनियों के होता है या नहीं?

उत्तर मुनियों के रौद्रध्यान नहीं होता है क्योंकि रौद्रध्यान का मुख्य कारण संयमघाति कर्मोदय का अभाव है। इस कारण सकल संयमी महाव्रती मुनियों के रौद्रध्यान नहीं होता है।

प्रश्न– 2251 आजकल मुनियों के अनुकूल आहार विहार वातावरण आदि से प्रसन्नता रूप रौद्रध्यान है ऐसा विश्वास करने में क्या आपत्ति है?

उत्तर आगम से विरोध है क्योंकि आगम में पंचम गुणस्थान तक ही रौद्रध्यान कार्य रूप में बताया है आगे नहीं। यदि कदाचित् किसी मुनि आदि के रौद्रध्यान के परिणाम होते ही मुनि पद से गिर गया, गृहस्थपना आया तथा तीन चौकड़ी कषायों के अभाव में आहार विहार, वैयावृत, अनुकूल गर्मी सर्दी का वातावरण, गुणकीर्तन, प्रशंसा आदि को सुनकर, आदर सम्मान, पूजा आरती को प्राप्त कर प्रसन्न होते हैं, हर्ष को प्राप्त होते हैं सो यह संज्वलन कषाय के साथ हास्य रति वेद कषायोदय से प्रसन्नता होती है, आनन्द आता है सो यह आनन्द हर्ष, हास्य रौद्रध्यान की कोटियों में श्रेणी में नहीं आता है अथवा प्रमाद है जो संयम की मलिन करता है। यही आपत्ति है।

प्रश्न– 2252 चोरी किसे कहते हैं?

उत्तर जिस वस्तु का कोई दूसरा स्वामी है उस वस्तु को मालिक की स्वेच्छा पूर्वक बिना दिये प्रमाद पूर्वक कषाय सहित ले लेना, दूसरों को दे देना छिपा लेना, अपने या दूसरों के उपयोग के लिए ग्रहण कर लेना, करा देना चोरी पाप है, परिग्रह पाप है, चोरी व्यसन है।

प्रश्न– 2253 मालिक के सामने मालिक की स्वेच्छा के बिना भय दिखाकर बलात् सामग्री ले लेने को चोरी पाप कह सकते हैं या नहीं?

उत्तर अपहरण का, मारपीट आदि का भय दिखाकर मालिक के सामने या उसके हाथ से ही अथवा उसे ही किसी प्रकार का भय, आशा, स्नेह और लोभ देकर बालक बालिकाओं आदि का अपहरण कर लूंगा ऐसा बोलकर चेतन अचेतन और मिश्र वस्तु को प्रमाद पूर्वक ले लेने को चोरी पाप कहते हैं क्योंकि धन की चोरी होने पर व्यक्ति जिन्दा में ही मरने जैसा दुःख का अनुभव करता है।

प्रश्न– 2254–55 चोरी में सफलता मिलने पर आनन्द मानने को क्या कहते हैं? इसके कितने भेद हैं?

उत्तर चोरी में सफलता मिलने पर आनन्द मानने को चौर्यानन्द रौद्रध्यान कहते हैं अथवा किसी की भी धनादि की चोरी होने पर आनन्द मानने को चौर्यानन्द रौद्रध्यान कहते हैं। सामान्यतया चौर्यानन्द रौद्रध्यान एक प्रकार का है। द्रव्य चौर्यानन्द और भाव चौर्यानन्द के भेद से दो प्रकार का है। मन वचन और काय की अपेक्षा तीन प्रकार का है अथवा कृत कारित अनुमोदना की अपेक्षा तीन प्रकार का है। पाँचों इंद्रियों के विषयों की अपेक्षा पाँच प्रकार का है। मन सहित होने की अपेक्षा छह प्रकार का है। इसी तरह संख्यात असंख्यात और अनंत प्रकार का है।

प्रश्न— 2256— सामान्य से चौर्यानंद रौद्रध्यान एक प्रकार का कहा है सो वह किस प्रकार है या कैसे होता है?

उत्तर सामान्य से प्रमाद पूर्वक विकार को छिपाकर सफलता मिलने पर हमारी इस छिपाने की कला को किसीने देखा नहीं कि मैं कितना चतुर हूँ। इस प्रकार विचार कर प्रसन्न होने को चौर्यानन्द रौद्रध्यान कहते हैं अथवा मोक्षमार्ग से भ्रष्ट होकर आदर सम्मान के लिए, मोक्षमार्गी बनने को, अपनी प्रशंसा, गुण कीर्तन, सुनकर प्रसन्न होने को सामान्य चौर्यानन्द रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न— 2257 चौर्यानंद रौद्रध्यान के जो दो भेद बतलाये हैं उनके नाम कौन[2] हैं?

उत्तर चौर्यानन्द रौद्रध्यान के दो भेद बतलाये हैं। नामः— द्रव्य चौर्यानन्द और भावचौर्यानन्द।

प्रश्न— 2258 द्रव्य चौर्यानन्द रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर जिस चेतन अचेतन और मिश्र सामग्री का मालिक कोई प्रजा है, सरकार है इनकी सामग्री को छिपाकर ले लेना तथा वस्तु के मालिक को प्रमादवश कष्ट में डालकर, दिल दुःखा कर, अपहरण कर, प्रसन्न होने को परद्रव्य अपहरण चौर्यानंद रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न— 2259 भाव चौर्यानन्द रौद्रध्यान पुनः दूसरे प्रकार से किसे कहते हैं?

उत्तर इंद्रियों के अगोचर ऐसे आत्मगत विकारी भावों को, इंद्रियों के विषयों में प्रीति को छिपाकर, ईमानदार रूप में प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिए, सुनकर, मानकर मन ही मन में आनंदित होने को चौर्यानन्द रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न— 2260 भाव चौर्यानंद रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर द्रव्य के परिणाम को भाव कहते हैं यह भाव सभी द्रव्यों में पाया जाता है परन्तु यहाँ पर मोक्षमार्ग का प्रकरण होने से जीव सम्बन्धी भावों को ग्रहण करना है अतः पूर्वबद्ध कर्मोदय से, क्षय से, क्षयोपशम से, उपशम से आत्मा में उत्पन्न हुए परिणामों को भाव कहते हैं पूर्वबद्ध कर्म की जिस अवस्था में जो भाव उत्पन्न हुआ उसका वही नाम हो जाता है जैसे कर्मोदय से औदयिक भाव, कर्मों के क्षय से क्षायिकभाव, कर्मों के क्षयोपशम से क्षायोपशमिकभाव, कर्मों के उपशम से औपशमिकभाव होता है। अतः भाव चौर्यानन्द चारित्रगुण का विकारी भाव है जो औदयिक भाव स्वरूप है, पुनः नवीन बन्ध भाव को लिए हुए है। इस विकारी भाव को छिपाकर, सफलता मिलने पर आनन्द मनाने को भाव चौर्यानन्द रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न— 2261—63 द्रव्य कितने हैं? नाम कौन कौन हैं? किस द्रव्य में कौन सा भाव पाया जाता है?

उत्तर द्रव्य छः हैं। नामः— जीव द्रव्य, पुद्गल द्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाश द्रव्य और काल द्रव्य। संसारी भव्य जीव द्रव्य में औदयिकभाव, क्षायिकभाव, क्षायोपशमिकभाव औपशमिकभाव तथा पारिणामिक भाव ये पाँचों पाये जाते हैं और अभव्य जीवों के पारिणामिक भाव, औदयिक भाव तथा क्षायोपशमिक भाव पाये जाते हैं। पूर्ण शुद्ध सिद्ध जीवों में पारिणामिक भाव और क्षायिकभाव पाया जाता है। पुद्गल द्रव्य में पारिणामिक भाव और औदयिक भाव पाया जाता है तथा शेष चार द्रव्यों में पारिणामिक भाव पाया जाता है।

प्रश्न–2264–65 चौर्यानन्द रौद्रध्यान के तीन भेद कौन हैं? कैसे उत्पन्न होते हैं?

उत्तर मन चौर्यानंद, वचन चौर्यानंद, काय चौर्यानंद अथवा कृत चौर्यानंद, कारित चौर्यानन्द और अनुमोदना चौर्यानंद ये तीन नाम हैं। प्रमाद और कषाय पूर्वक ये तीनों चौर्यानंद रौद्रध्यान संसारी असंयमी या देश संयमी जीवों में उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न– 2266 मन या मनोगत चौर्यानंद रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर मन के असत्विचारों को छिपाकर अपने को गुण रूप में प्रकाशन कर, प्रशंसा सुनकर, प्रमाद पूर्वक मन में प्रसन्न होने को मनोगत चौर्यानंद रौद्रध्यान कहते हैं अथवा दूसरों के चेतन अचेतन और मिश्र वस्तुओं को अपहरण करने के विचारों को पलटकर मेरे ऐसे विचार नहीं हैं न हुए हैं न होंगे ऐसा विश्वास दिलाकर आनन्दित होने को मनोगत चौर्यानन्द रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2267 वचनगत चौर्यानंद रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर प्रमाद पूर्वक दूसरों के चेतन अचेतन और मिश्र धन को अपहरण करने के वचनों के उच्चारण को भी पुनः किसी भय आदि से वचनों को बदलकर मैंने ऐसा नहीं कहा है क्योंकि मैं धर्मात्मा हूँ। नाना प्रकार से ईमानदारी के लिए, सत्यवादी हैं ऐसा विश्वास उत्पन्न कराने के लिए वचन बोलकर सफलता मिलने पर हर्षित होने को वचनगत चौर्यानंद रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2268 कायगत चौर्यानन्द रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर प्रमाद पूर्वक पर धन को शरीर के द्वारा इधर उधर करके फिर पकड़े जाने पर मैंने नहीं किया ऐसा काय के द्वारा इशारा व्यक्त कर, सज्जन बनकर, शरीर के माध्यम से प्रसन्न होने को शरीर में रोमटे उठने को कायगत चौर्यानंद रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2269 प्रसन्नता मन में ही होती है फिर वचनगत और कायगत चौर्यानन्द रौद्रध्यान क्यों कहा?

उत्तर प्रसन्नता मन में ही होती है, वचन और शरीर में नहीं क्योंकि ये दोनों पुद्गल के परिणाम हैं, जड़ हैं, अचेतन हैं फिर भी उस मन की प्रसन्नता का कारण, साधन क्या बना? उसमें अभेद विवक्षा कर साध्य साधन में भेद न करके कथन करने को तत्सम्बन्धी रौद्रध्यान कहा है।

प्रश्न– 2270 स्वकृत या परकृत चोरी करके हर्ष मानने को क्या कहते हैं?

उत्तर स्वयं चोरी करके या दूसरे से कराके प्रसन्न होने को स्वकृत चौर्यानंद रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2271 स्वकृत चौर्यानंद रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर स्वयं चोरी करके किसी को मालुम नहीं पड़ने पर फिर स्वयं अपनी कला में प्रसन्न होने को स्वकृत चौर्यानंद रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2272 कारित चौर्यानन्द रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर किन्हीं से दूसरों की चोरी कराके फिर आनन्दित होने को, हर्ष मानने को कारित चौर्यानंद रौद्र ध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2273 अनुमोदना चौर्यानन्द रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर किसी ने किसी की चोरी की है या स्वयं ने किसी की चोरी कराके या उपाय बताकर चोरी कराके प्रसन्न होने को या चोरों की प्रशंसा करना, चोरी की प्रशंसा करना, सराहना करना आदि को अनुमोदना चौर्यानन्द रौद्रध्यान कहते हैं। कषायों, विकथाओं की अपेक्षा चार प्रकार का है।

प्रश्न– 2274 पाँच प्रकार का चौर्यानंद रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर पाँचों इंद्रियों के विषयों में रमण करके भी पूंछे जाने पर अपनी विषय वासना को, सामग्री के अपहरण कर लेने पर बदल कर, छिपाकर मैंने ऐसा नहीं किया ऐसी ठग विद्या को पंच विध चौर्यानंद रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2275 छह प्रकार का चौर्यानंद रौद्रध्यान किस प्रकार का होता है?

उत्तर पाँच इंद्रिय और मन से किसी की सामग्री का अपहरण करके, विचार बना करके भी पकड़े जाने पर अपनी मन वचन काय की क्रिया को छिपा करके बदल कर बोल देने को, अपनी कला पर प्रसन्न होने को छह प्रकार का चौर्यानंद रौद्रध्यान कहते हैं अथवा जिस जिस इंद्रिय विषय में फंसकर रमण करके भी छिपाकर मनोनुकूल सफलता होने पर आनन्दित होने को उस उस इंद्रिय जन्य उस उस नामवाला चौर्यानंद रौद्रध्यान उत्पन्न होता है।

प्रश्न– 2276 स्पर्शेंद्रिय जन्य चौर्यानंद रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर प्रमाद पूर्वक शरीर के द्वारा किसीकी वस्तु ग्रहण कर छिपा लेने को पुनः पूंछने पर भी न बताना मारण ताडन, छेदन भेदन, तपन, ठण्डी गर्मी के दुःख सहना तथा भेद न खुलने पर अपनी कला पर, सहन शक्ति पर आनन्दित होने को शरीरेंद्रिय जन्य चौर्यानंद रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2277 स्पर्शेंद्रिय जन्य चौर्यानंद रौद्रध्यान के कितने भेद हैं?

उत्तर स्पर्शेंद्रिय जन्य चौर्यानन्द रौद्रध्यान के आठ भेद हैं, संख्यात, असंख्यात और अनन्त भेद हैं। स्पर्श के आठ विषय हैं जैसे पुष्प शय्या पर लेटे हैं, कूलर में, ए.सी. में बैठे हैं और किसी ने कहा कि आप कितना आनन्द ले रहे हैं तब उस समय अधिक मात्रा में चाहिये ऐसे अपने इस अभिप्राय को छिपाकर, बदलकर बोले कि कोई आनन्द नहीं आ रहा है मैं नहीं चाहता हूँ परन्तु इन्होंने जबरदस्ती बैठा लिया है आदि वचन में झूठ पाप है और अभिप्राय में चोरी पाप है तथा आनंद मानना चौर्यानंद रौद्रध्यान है इसी तरह सभी प्रकार के स्पर्श के आठ विषयों में समझना चाहिए क्योंकि अभिप्राय को छिपाकर आनंद मानना चौर्यानंद रौद्रध्यान कहा है।

प्रश्न– 2278 रसनेंद्रिय जन्य चौर्यानंद रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर प्रमाद पूर्वक भोजन सामग्री को दाता के दिये बिना खा लेना अथवा दाता की इच्छा के बिना भय दिखाकर डाकुओं के, छापामारों के समान बलात् भोजन ग्रहण करने को और पूछने पर छिपाकर, नहीं बताकर, सफलता मिलने पर हर्षित होने को रसनेंद्रिय जन्य रौद्रध्यान कहते हैं अथवा स्वादिष्ट, पौष्टिक आहार में आनंद लेते हुए अभिप्राय को छिपाकर अन्यथा बोल कर सफलता में स्थिर होने को, आनंद मानने को चौर्यानंद रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2279 रसनेंद्रिय चौर्यानंद रौद्रध्यान के कितने भेद हैं?

उत्तर रस के 5 भेद हैं अथवा स्वादिष्ट रस 5 प्रकार के, पौष्टिक रस 6 प्रकार के, अवान्तर भेद संख्यातासंख्यात अनंत प्रकार के हैं। अपना मन किसी भी स्वादिष्ट पौष्टिक रस में रममाण हो रहा है, आनन्द ले रहा है किसी ने आकर पूंछ लिया और कहा कि बहुत अच्छा स्वाद आ रहा है, हाँ स्वाद ठीक है थोड़ा और दो इस अभिप्राय को छिपाकर सामग्री मिलने पर आनंद मानने को रसनेंद्रिय जन्य चौर्यानंद रौद्रध्यान कहलाता है।

प्रश्न– 2280 घ्राणेंद्रिय जन्य चौर्यानंद रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर प्रमाद पूर्वक घ्राण के द्वारा सुगन्धित फूल इत्र तेल आदि को छिपकर, छिपाकर सूंघ लेने को ताकि कोई देख न ले फिर सूंघकर आनंदित होने को घ्राणेंद्रिय जन्य चौर्यानंद रौद्रध्यान कहते हैं या सूंघने के बाद गंध आदि से किसी ने मालुम कर लिया कि इन्होंने यह सूंघा है आकर पूंछा कि आपने यह सूंघा क्या? तब मैं पकड़ा जाऊंगा, चोर कहलाऊँगा, आदर सम्मान प्राप्त न होगा इसलिए इस भावना से अपने अभिप्राय को छिपाकर वचन से झूठ बोलकर मन में प्रसन्न होने को घ्राणेंद्रिय जन्य चौर्यानंद रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2281 घ्राणेंद्रिय जन्य चौर्यानंद रौद्रध्यान के कितने भेद हैं?

उत्तर घ्राणेंद्रिय के विषय दो प्रकार के हैं सुगन्ध और दुर्गन्ध। इनके संख्यात, असंख्यात और अनंत भेद प्रभेद हैं। सुगन्ध और दुर्गन्ध को सूंघकर भौंरे के समान गंध में आसक्त होना, प्रसन्न होना रौद्रध्यान है किन्तु यहाँ पर चौर्यानन्द रौद्रध्यान का वर्णन चल रहा है अतः विषय को सूंघकर अभिप्राय को छिपाकर मैं नहीं सूंघ रहा हूँ, न मैंने सूंघा है इस प्रकार बोलकर विश्वास उपजाकर अपनी इस ठगविद्या पर खुश होने को घ्राणेंद्रिय जन्य चौर्यानन्द रौद्रध्यान समझना चाहिए।

प्रश्न– 2282 चक्षु इंद्रिय जन्य चौर्यानंद रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर प्रमाद पूर्वक किसी भी दृश्य वस्तु को देखने में अत्यन्त आसक्त हो रहा है, खिल खिलाकर हँस रहा है परंतु बीच में आकर किसी दूसरे ने खूब खूब प्रशंसा की पर अपनी लोलुपता को छिपाकर, प्रशंसा प्राप्त करने के लिए अन्यथा बोल देने को चक्षु इंद्रिय जन्य चौर्यानन्द रौद्रध्यान कहते हैं। देखने में प्रसन्न होना रौद्रध्यान है और छिपाकर प्रसन्न होना चौर्यानंद रौद्रध्यान है।

प्रश्न– 2283–84 चक्षु इंद्रिय जन्य रौद्रध्यान के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर चक्षु इंद्रिय जन्य चौर्यानन्द रौद्रध्यान के स्थूल विषय की अपेक्षा 5 भेद हैं और इनके ही परस्पर में मिलाने से तथा अविभाग प्रतिच्छेदानुसार संख्यात असंख्यात और अनंत प्रकार के भेद हो जाते हैं जो असंख्यात लोक प्रमाण हैं। नामः– काला, पीला, नीला, लाल और सफेद ये रंगों के 5 नाम हैं। मोही प्रमादी और असंयमी प्राणी इन्हीं रूप रंगों में आसक्त होकर आनन्द मानता हुआ रौद्रध्यान को उत्पन्न करता है। रमण करता हुआ, आनन्द लेता हुआ पूंछे जाने पर भोगासक्ति को छिपाकर, लोभ के वशीभूत होता हुआ मैं सज्जन हूँ, ईमानदार हूँ ऐसा विश्वास उत्पन्न कराने के लिए अपने अभिप्राय को वचन में बदलकर, बोलकर ठग विद्या में प्रसन्न होने से चक्षु इंद्रिय जन्य चौर्यानन्द रौद्रध्यान कहलाता है। जैसे अपन किसी रूप को छिपकर देख रहे हैं कोई देख न ले इस विचार से बोल दिया कि मैं नहीं देख रहा हूँ तब उसके मान जाने पर प्रसन्न होने को

चक्षु इंद्रिय जन्य चौर्यानंद रौद्रध्यान कहते हैं जिस विषय में मन लगाकर भी छिपा रहा है तो उस ध्यान का विषयानुसार वही नाम होगा जो विषय का है।

प्रश्न– 2285 कर्णेद्रिय जन्य चौर्यानंद रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर किन्हीं जीवों के सुस्वर या दुस्वर को सुनकर प्रसन्न होकर दूसरों के द्वारा पूंछे जाने पर सुनी अनसुनी कर दी हमने सुना ही नहीं बोल दिया या कोर्ट कचहरी में जाकर झूठी गवाही देकर या सलाह देकर इसने ऐसा किया है या इसने ऐसा नहीं किया है इस प्रकार यथार्थ वात को छिपाकर, अभिप्राय दबाकर अनर्गल वचन प्रलाप को कर्णेद्रिय जन्य चौर्यानंद रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2286 कर्णेद्रिय जन्य चौर्यानंद रौद्रध्यान के कितने भेद हैं? नाम कौन[2] हैं?

उत्तर सुस्वर और दुस्वरों को सुनकर आनन्द विभोर होने को रौद्रध्यान तथा कपट पूर्वक स्वरों को या व्यजंनों को सप्त स्वरों में या सप्त दुस्वरों में विभाग कर गणना करने को संख्यात, असंख्यात या अनंत भेद स्वरूप असंख्यात लोक प्रमाण भेद हैं जो अल्पज्ञों के लिए अनंत ही है क्योंकि छद्मस्थ प्राणी इनकी सीमा नहीं पा सकते हैं। गद्य, पद्य, षडज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद इनके उतार चढ़ाव से अनेक भेद प्रभेद हो जाते हैं जो छद्मस्थ प्राणी कुछ समझ लेते हैं। इस प्रकार पाँचों इंद्रियों के विषय भोगों की सामग्री को, रहस्यमय कार्यों को छिपकर ग्रहण करने को, सेवन करने को, मनोनुकूल आनन्द लेकर हर्ष मानने को कर्णेद्रिय जन्य रौद्र ध्यान कहते हैं तथा प्रत्येक विषय को छिपकर सेवन करने को या किसी के द्वारा समझ लेने पर अभिप्राय को छिपाकर, वचन बदलकर, धोके में डालकर, अपना कार्य सिद्ध कर हर्षित होने को तत्तत् इंद्रिय जन्य चौर्यानन्द रौद्रध्यान कहते हैं। विषय के अनुसार ही रौद्रध्यान का नाम होगा। जो अपने आपकी रक्षा करने के लिए निर्दोष रीती से चिंतनकर समझ लेना चाहिए।

प्रश्न– 2287 मन से चौर्यानन्द रौद्रध्यान किस तरह से उत्पन्न होता है?

उत्तर अपनी आत्मा से भिन्न सत्तावाली चेतन अचेतन और मिश्र भोग उपभोग की सामग्री को प्रमाद पूर्वक मन ही मन में ग्रहण कर, स्पर्श कर, खाकर, सूंघकर, देखकर, सुन करके हर्ष मानने को जिस प्रकार सेवन करते समय मन में भाव उत्पन्न हुए थे उसी प्रकार विषय सामग्री के अभाव में भी विचार हो रहे हैं, आनन्द आ रहा है तो इसे ही मनोद्भव चौर्यानंद रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2288 मृषानंद रौद्रध्यान में और चौर्यानंद रौद्रध्यान में क्या अन्तर है?

उत्तर मृषानंद रौद्रध्यान में विषय सेवन करके वचन बदलकर बोलना है और चौर्यानन्द रौद्रध्यान में छिपकर काम कर लेना है भावों को छिपाना है। प्रमाद की अपेक्षा दोनों समान है क्योंकि दोनों में अंतरंग साधन प्रमाद मुख्य है। मृषानंद रौद्रध्यान में वचन की मुख्यता है और चौर्यानंद रौद्र ध्यान में अभिप्राय को छिपाना है। दोनों ही पाप हैं, दोनों पापों को करके आनन्द मानना भी समान है इसलिए वचन और भाव की अपेक्षा अंतर है।

प्रश्न– 2289 देवों के और भोगभूमिजों के जब सतत शुभ लेश्यायें पाई जाती है तो आर्तध्यान रौद्रध्यान कैसे संभव है?

उत्तर मिथ्यात्व गुणस्थान होने से वैमानिक देवों के तथा भोगभूमिजों के सतत शुभ लेश्यायें होने पर

भी आर्तध्यान रौद्रध्यान पाये जाते हैं क्योंकि धर्मध्यान की प्राप्ति रत्नत्रयपूर्वक ही होती है। मिथ्यात्व में नहीं। कारण मिथ्यात्व गुणस्थान में छहों लेश्यायें पाई जाती है तथा छहों लेश्याओं में आर्तध्यान और रौद्रध्यान पाये जाते हैं। अतः इन जीवों का दुर्ध्यान अपनी समझ में आये या न आये यह भिन्न बात है क्योंकि केवलियों ने प्रतिपादन किया है अतः विश्वास करने योग्य ही है। यद्यपि मिथ्यादृष्टि जीव बाह्य में सदाचार का पालन करते हुए भी धर्मध्यान के अधिकारी नहीं है। ऐसा कर्म सिद्धांत का अकाट्य नियम है। अर्थात् अन्याय और अभक्ष्य का सेवन करने वालों के तीन काल में भी धर्मध्यान संभव नहीं एकमात्र आर्तध्यान और रौद्रध्यान ही संभव हैं।

प्रश्न– 2290 परिग्रह किसे कहते हैं?

उत्तर प्रमाद और कषाय पूर्वक परि– समस्त आत्म प्रदेशों से या समस्त योनियों में या चारों गतियों में। ग्रह–चेतन अचेतन मिश्र भिन्न सत्ता वाले पदार्थ और विकारी परिणाम स्वीकार किये जायें, ग्रहण किये जायें, आत्मसात् कर लिये जायें तो उसे परिग्रह कहते हैं अथवा आत्मा के विकारी भावों को परिग्रह कहते हैं तथा विकारी भावों के साधनभूत, निमित्तकारण द्रव्य कर्मों को और दृष्टिगोचर, इंद्रियगोचर शरीरादि नोकर्मों को, स्थूल या सूक्ष्म पुद्गल पिण्ड को भी परिग्रह कहते हैं। आत्मा में आश्रवबंध तथा भ्रमण कराने वाली सामग्री के ग्रहण करने को परिग्रह कहते हैं।

प्रश्न– 2291–94 परिग्रह के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं? इस परिग्रह के स्वामी कौन जीव हैं? कौन जीव नहीं हैं?

उत्तर एक प्रकार का, दो प्रकार का है, तीन प्रकार का है, चार चार प्रकार का है, आठ प्रकार का है, 148 प्रकार का है, संख्यातासंख्यातानंत प्रकार का परिग्रह कहा है। चेतन अचेतन मिश्र आदि ज्ञानावर्णादि कर्म परिग्रहों के नाम हैं। इन परिग्रहों के स्वामी प्रमादी, कषायी तथा समस्त गुणस्थान, मार्गणा, जीव समास वाले विकारी संसारी प्राणी हैं। सिद्धजीव इन परिग्रहों के स्वामी नहीं हैं ऐसा वर्तमान नय की अपेक्षा समझना किन्तु भूतपूर्व नय की अपेक्षा समस्त परिग्रह के स्वामी सिद्ध भगवान भी हैं ऐसा नय विभाग से समझना चाहिए।

प्रश्न– 2295 एक प्रकार का परिग्रह कौन सा है?

उत्तर सामान्य से, अभेदनय से, संग्रहनय से अशुद्ध स्वरूप परिग्रह एक ही प्रकार का है।

प्रश्न– 2296 दो प्रकार का परिग्रह कौन सा है?

उत्तर अंतरंग परिग्रह और बहिरंग परिग्रह या द्रव्य परिग्रह और भाव परिग्रह या चेतन और अचेतन या पुण्य पाप या घातिया अघातिया कर्मों की अपेक्षा परिग्रह दो प्रकार का कहा है। यह व्यवहार नय का, भेद नय का विषय है, नयाभासों का विषय नहीं है

प्रश्न– 2297–98 अंतरंग परिग्रह किसे कहते हैं? बहिरंग परिग्रह किसे कहते हैं?

उत्तर अनादिअनंत, अनादिसान्त, सादिसान्त आत्मा के नैमित्तिक विकारी भावों को, आश्रव बंध के हेतु भूत औदयिक भाव और क्षायोपशमिक भावों को अंतरंग परिग्रह कहते हैं। इस अंतरंग परिग्रह के कारण स्वरूप या कार्य स्वरूप द्रव्यकर्म और नोकर्म, इंद्रिय ग्राह्य बाह्य सामग्री को बहिरंग

परिग्रह कहते हैं अथवा उक्त परिणामों को अंतरंग परिग्रह तथा द्रव्यकर्म और नोकर्म को बहिरंग परिग्रह कहते हैं। अंतरंग परिग्रह तथा द्रव्यकर्म अनुभव गोचर, और नोकर्म इंद्रियगोचर है।

प्रश्न– 2299–02 तीन प्रकार का परिग्रह कौन सा है? सचित्त परिग्रह किसे कहते हैं? अचित्त परिग्रह किसे कहते हैं? मिश्र परिग्रह किसे कहते हैं?

उत्तर सचित्त परिग्रह, अचित्त परिग्रह और मिश्र परिग्रह के भेद से तीन प्रकार का है। सचित्त परिग्रहः– आत्म शक्ति सहित, चैतन्य शक्ति युक्त, चेतना सहित मनुष्य मनुष्यनी, माता पिता, पुत्र पुत्री, पति पत्नि, भाई बहिन, मामा मामी, राजा रानी, नाना नानी, पशु पक्षी, दो पैर वाले, चार पैर वाले ये सभी चेतन परिग्रह कहलाते हैं। अचेतन परिग्रहः– मकान दुकान, वस्त्र आभूषण, धातु उपधातु पात्र, शृंगार के समान, भोगोपभोग की सामग्री, खेत जमीन आदि इनमें चैतन्य शक्ति न होने के कारण इसे अचेतन परिग्रह कहते हैं। मिश्र परिग्रहः– सचित्त और अचित्त परिग्रह के मिश्रण को मिश्र परिग्रह कहते हैं अर्थात् वस्त्र आभूषण, शृंगार अलंकार सहित परिवार के जन के समूह को मिश्र परिग्रह कहते हैं। जैसे वस्त्राभूषण सहित बालक बालिकायें आदि।

प्रश्न– 2303–06 चार चार प्रकार का परिग्रह किसे कहते हैं? आठ प्रकार का परिग्रह किसे कहते हैं? 148 प्रकार का परिग्रह किसे कहते हैं? संख्यात, असंख्यात और अनंत प्रकार का परिग्रह किसे कहते हैं?

उत्तर चार घातिया कर्म और चार अघातिया कर्म। घातिया कर्म जो चैतन्य गुणों को, अनंत चतुष्टय स्वरूप ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य इन गुणों को घातने वाले होने से इन्हें घातिया कर्म कहते हैं अथवा जिन कर्मों को घातने के लिए बुद्धि पूर्वक पुरुषार्थ किया जाय, ध्यान किया जाय उसे घातिया कर्म कहते हैं। अघातिया कर्म जो आत्मा के अचैतन्य चार गुणों को अगुरुलघु, अवगाहन, अव्याबाध, सूक्ष्मत्वगुणों को उत्पन्न नहीं होने देते हैं अतः इन्हें घातिया कर्म कहते हैं। आयुकर्म के बराबर तीन अघातिया कर्मों की स्थिति करने के लिए ध्यान होता है क्योंकि ये सर्वज्ञ हैं, वीतरागी हैं इनके इच्छा न होने से ध्यान होता है ऐसा कहा है। इन कर्मों का सम्बन्ध आत्मा में होने से मिथ्यादृष्टि, असंयमी, प्रमादी, कषायी, छद्मस्थ, सयोगी, अयोगी मुनियों को संसारी कहा जाता है और इन्हीं को क्षय करके मुक्त हुआ, मोक्ष को प्राप्त हुआ सिद्ध शुद्ध विशेषणों से युक्त कहा जाता है। घातिकर्म और अघातिकर्मों को मिलाकर एक साथ मूल प्रकृतियों की अपेक्षा आठ प्रकार का परिग्रह कहा जाता है। इन आठ कर्मों की उत्तर प्रकृतियों की अपेक्षा 148 प्रकार का कहा जाता है। मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानियों के उत्कृष्ट विषय की अपेक्षा संख्यात प्रकार का परिग्रह, अवधिज्ञानी और मनःपर्यय ज्ञानियों के उत्कृष्ट विषय की अपेक्षा असंख्यात प्रकार का परिग्रह और केवलज्ञानियों के उत्कृष्ट विषय की अपेक्षा अनंत प्रकार का परिग्रह कहा है।

प्रश्न– 2307 इन उपरोक्त 5 ज्ञानों के विषय को परिग्रह क्यों कहा?

उत्तर न ज्ञान परिग्रह है और न ज्ञान का विषय परिग्रह है। यदि ज्ञान और ज्ञान के विषय को परिग्रह माना जाय तो फिर सिद्धों में आत्मभूत, वीतराग, निष्परिग्रह, निरंजन, निष्कलंक विशेषण बन नहीं सकते हैं इसलिए ज्ञान ज्ञेय पदार्थ परिग्रह नहीं है किन्तु संसारी, मोही, कषायी, प्रमादी, असंयमी

संज्ञावाला प्राणी समस्त पदार्थों के ऊपर अपना राज्य करना चाहता है, सबका स्वामी बनना चाहता है इसलिए मोहियों की, प्रमादियों की आकांक्षा को देखकर संख्यात असंख्यात और अनंत प्रकार का परिग्रह कहा है।

प्रश्न– 2308 परिग्रहानंद रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर उपरोक्त समस्त प्रकार के परिग्रहों के अर्जन, ग्रहण, संग्रह, संवर्द्धन कर, संरक्षण कर पुनः पुनः प्रमाद पूर्वक कषाय सहित पाँचों इंद्रियों के समस्त विषयों को यथावसर, यथानुकूल आनन्द मानने, मनाने को, हर्षित होने को परिग्रहानंद रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2309 उपरोक्त समस्त परिग्रह से परिग्रहानंद रौद्रध्यान होता है क्या ?

उत्तर उपरोक्त समस्त प्रकार के परिग्रह से परिग्रहानंद रौद्रध्यान नहीं होता है क्योंकि ज्ञानावरणादि आठ कर्म प्रकृतियां सत्ता में स्थित होने से किसी भी प्रकार से, किसी भी ध्यान के कारण नहीं हैं परन्तु जब निषेक रचना होकर उदयावलि में प्रवेश कर उदय में आती हैं तो आर्तध्यान रौद्र ध्यान में साधन बन जाती हैं। इसी तरह और भी जब यह मानव बाह्य सामग्री में कषाय पूर्वक उपयोग लगाता है तो दुर्ध्यान उत्पन्न होता है, अन्यथा नहीं।

प्रश्न– 2310–11 द्रव्यकर्म क्या दुर्ध्यानों में कारण है? उदाहरण सहित समझाओ?

उत्तर नहीं, जब तक द्रव्य कर्म सत्ता में रहता है तब तक किसी भी प्रकार से आत्मा को विकार रूप में परिणमन कराने के लिए समर्थ नहीं है। जैसे सर्वांग सुन्दर निर्विकार गोद की बाल कन्या पुरुष को कामवासना से पीड़ित नहीं कर सकती, न ही साधन बनती है किन्तु वही बाल्यावस्था को छोड़कर यौवनावस्था में प्रवेश कर तन में अथवा तन मन में विकार को प्राप्त कर, शरीर से, शृंगार आदि से विकार को बाह्य में प्रकट कर देती है तब उसी कन्या के माध्यम से पुरुष विकार को प्राप्त होता है। इसी तरह सत्ता में स्थित कर्म बालकन्या के समान आत्मा को विकार उत्पन्न करने में असमर्थ होता है परन्तु वही कर्म जब आबाधाकाल पूर्ण कर उदयावलि में प्रवेश करता है और संक्रमण करके, अपकर्षण करके, उदय या उदीरणा रूप से जब निकलने लगता है तभी आत्मा में विकार की स्थिति बनती हैं, अन्यथा नहीं इस प्रकार समझना चाहिए।

प्रश्न– 2312 परिग्रहानंद रौद्रध्यान के कितने भेद हैं?

उत्तर जितने परिग्रह के भेद हैं उतने ही या उनसे भी अनन्तगुणे परिग्रहानंद रौद्रध्यान के भेद हैं फिर भी सामान्यतया उत्पत्ति की अपेक्षा पाँचों इंद्रिय और मन से होने वाला होने से 6 प्रकार का परिग्रहानंद रौद्रध्यान समझना चाहिए क्योंकि ऊपर जितने प्रकार के परिग्रह के भेद प्रभेद बतलाये हैं वे सभी पाँचों इंद्रिय और मन के द्वारा अर्जन, संचय, संवर्द्धन, संरक्षण किये जाते हैं। अर्जन करना– धन कमाना। संचय करना– संग्रह करना, इकट्ठा करना। संवर्द्धन– वृद्धि करना बढ़ाना। संरक्षण करना– सम्हालना, रक्षा करना। ये चारों परिग्रह पाप के कार्य हैं।

प्रश्न– 2313 यह संसारी, असंयमी प्राणी उपरोक्त चार कार्य क्यों करता है? किस कारण से करता है?

उत्तर यह संसारी, मोही, प्रमादी, असंयमी, मिथ्यादृष्टि जीव भोग और उपभोग की सामग्री को भोगते

हुए अतृप्ति होने से, असंतोष होने से यह कार्य करता है तथा माया, लोभ और राग रूप कषायोदय से उत्पन्न परिणामों के द्वारा बाह्य में सामग्री को देखने आदि से, मन लगाने से, लोलुपता से अर्जन, संचय, संवर्द्धन, संरक्षण करता है। यदि विषय कषायों की प्रवृत्ति अंतरंग में नहीं होय तो बाहर में कैसे आयेगी? जैसे घड़े के अंदर पानी ठंडा है तो बाहर भी ठंडा होगा और अंदर गरम है तो बाहर भी गरम होगा।

प्रश्न— 2314 पाँचों इंद्रिय और मन से परिग्रहानन्द रौद्रध्यान कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर केवल इंद्रिय और मन से परिग्रहानन्द रौद्रध्यान उत्पन्न नहीं होता है यदि स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण इंद्रिय और मन से ही परिग्रहानन्द रौद्रध्यान उत्पन्न होना माना जाय तो समस्त मुनियों को, सर्वज्ञ हो या असर्वज्ञ, केवली हो या छद्मस्थ, वीतरागी हो या सरागी, उपशमक हो या क्षपक श्रेणी में हो या श्रेणी अवस्था के बाहर, प्रमत्त हो या अप्रमत्त, संयमी हो या असंयमी, सम्यग्दृष्टि हो या मिथ्यादृष्टि, भव्य हो या अभव्य, सैनी हो या असैनी, सकलेंद्रिय हो या विकलेंद्रिय, ऐकेंद्रिय हो या विकलेंद्रिय, पर्याप्तक हो या अपर्याप्तक इन सभी के केवल इंद्रिय और मन से परिग्रहानन्द रौद्रध्यान उत्पन्न नहीं होता है किन्तु जब इंद्रिय और मन अनुकूल या प्रतिकूल विषय को पाकर राग रूप से या द्वेष रूप से परिणमन करता हुआ, प्रसन्न होता हुआ आनन्द मानता मनाता है सो उस आनंद से ही परिग्रहानंद रौद्रध्यान उत्पन्न होता हैं।

प्रश्न— 2315 परिग्रहानंद रौद्रध्यान इंद्रिय विषयों में रमण करने से किस प्रकार उत्पन्न होता है?

उत्तर जब यह प्रमादी जीव पाँचों इंद्रिय और मन के विषयों में राग से या द्वेष से या किसी भी कषाय को करते हुए मनोनुकूल सफलता मिलने पर आनन्द मानने से परिग्रहानंद रौद्रध्यान उत्पन्न होता है मोक्षमार्ग के बाहर विषयों में आनन्द मानना ही रौद्रध्यान है तथा हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह पाप से परिणत अवस्था में आनंद आया है सो उस आनंद का उसी पाप के नामानुसार ध्यान का नाम होगा जैसे हिंसा पाप से परिणत अवस्था में आनंद मानना हिंसानंद रौद्रध्यान, झूठ पाप से परिणत अवस्था में आनन्द मानना मृषानंद रौद्रध्यान, चोरी पाप से परिणत अवस्था में आनन्द मानना चौर्यानंद रौद्रध्यान और परिग्रह पाप से परिणत अवस्था में आनन्द मानने से परिग्रहानंद रौद्रध्यान होता है अर्थात् पाप करके सफलता मिलने पर आनन्द आता है और यह आनन्द ही पाप के नाम के अनुसार रौद्रध्यान का नाम हो जाता है।

प्रश्न 2316 आपने रागरूप कषायोदय से परिणत अवस्था में परिग्रहानंद रौद्रध्यान कहा है सो ठीक है परन्तु क्रोधादि द्वेष प्रकृतियों के उदय से परिणत अवस्था में भी आनन्द होता हुआ सुना जाता है जैसे क्रोध में आनंद, मान में आनंदादि अतः सभी से रौद्रध्यान होता है ऐसा मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर अनंतानुबंधी क्रोधकषाय, मानकषाय, मायाकषाय, लोभकषाय, अप्रत्याख्याानावरणीय क्रोधकषाय, मानकषाय, मायाकषाय, लोभकषाय, प्रत्याख्यानावरणीय क्रोधकषाय, मानकषाय, मायाकषाय, लोभकषाय, संज्वलन क्रोधकषाय, मानकषाय, मायाकषाय, लोभकषाय, हास्यकषाय, रतिकषाय,

अरतिकषाय, शोककषाय, भयकषाय, जुगुप्साकषाय, स्त्रीवेदकषाय, पुरुषवेदकषाय, नपुंसकवेद कषाय रूप सम्पूर्ण चारित्र मोहनीय कर्मोदय से आर्तध्यान तो उत्पन्न होता है और कदाचित् रौद्र ध्यान की भूमिका बन सकती है किन्तु रौद्रध्यान होता नहीं क्योंकि रौद्रध्यान आनन्द मानने से होता है। विषय कषायों में परिणमन करते हुए मनोनुकूल सफलता मिलने पर आनन्द मानने से परिग्रहानंद रौद्रध्यान उत्पन्न होता है, मोक्षमार्ग के बाहर आश्रव बंध के कारण ऐसे मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योगों के द्वारा पाँचों इन्द्रियों के विषय भोगों में रमण कर आनन्द मानने से ही रौद्रध्यान उत्पन्न होता है।

प्रश्न– 2317 विषय और विषय के साधनभूत सचित्त अचित्त और मिश्र सामग्री को परिग्रह कह सकते हैं क्या?

उत्तर **विषय और विषय की साधनभूत सामग्री साक्षात् परिग्रह नहीं है। साक्षात् परिग्रह तो प्रमाद, कषाय, असंयम, विषय वासना, ख्याति पूजा लाभ, अशुभ लेश्यायें, वैर विरोध, शृंगारालंकार, वस्त्राभूषण आदि की भावना है तथा इनकी जो बाह्य साधनभूत सामग्री है वह अभेद विवक्षा से साधन में साध्य का आरोपण कर साधन को ही परिग्रह पाप कहा है क्योंकि निमित्त नैमित्तिक संबंध की अपेक्षा या हेतु हेतुमद भाव की अपेक्षा यदि साधन के साधन को भी परिग्रह पाप नहीं कहते तो इनके त्याग का उपदेश, परिग्रह प्रमाण अणुव्रत और परिग्रह त्याग महाव्रत, भोग उपभोग प्रमाण शिक्षाव्रत या गुणव्रत का पालन भी मिथ्या प्रलाप कहलाता फिर पुण्य पाप की, संसारमार्ग, मोक्षमार्ग की, कर्तव्या कर्तव्य की, हेयोपादेय की, हिताहित की, शुभाशुभ की परिभाषा घटित नहीं होगी किसी भी प्रकार की व्यवस्था नहीं बन सकती अतः साधन के साधन से भी रौद्रध्यान की उत्पत्ति हो जाती है।**

प्रश्न– 2318 जब यह बाह्य सामग्री वास्तविक परिग्रह नहीं है तो इसका त्याग क्यों कराया?

उत्तर **'निमित्ताभावे नैमित्तिकाभावात्' – निमित्त के अभाव में नैमित्तिक का अभाव हो जाता है। इस परिभाषा या नीति के अनुसार बाह्य परिग्रह को परिग्रह नहीं माना तो अंतरंग परिग्रह भी नहीं बन सकता। जबकी दोनों का सद्भाव आगम से भी सिद्ध है और तर्क से, अनुमान से भी सिद्ध है इसलिए प्रत्येक नय और नयों का विषय ये दोनों नय सापेक्ष होने से वस्तु तत्त्व का और मोक्षमार्ग का ही प्रतिपादन करते हैं। इस कारण नय और नय का विषय दोनों ही समीचीन है तभी तो समीचीनता होने से मोक्षमार्ग और विपरीतता होने से संसारमार्ग सिद्ध होता है।**

प्रश्न– 2319 अभाव को प्राप्त होता है तो होने दो क्या हानि है?

उत्तर **नहीं, यदि आप व्यक्तिगत, पुरुषार्थ पूर्वक ध्यान के योग से, उभय परिग्रह का त्याग करना अभाव करना कहते हो तब तो ठीक है परन्तु यदि आप समस्त प्रकार से, समस्त नयों से समस्त जीवों में उभय परिग्रह का अभाव करना सिद्ध करेंगे तो संसार का अभाव होने से संसार के कारण भूत आश्रव बंध का भी अभाव प्राप्त होता है और संसार का अभाव होने से मोक्ष का भी अभाव प्राप्त होता है तथा मोक्ष के कारणभूत संवर निर्जरा तत्त्व का अभाव प्राप्त होता है इन सबका**

अभाव होने से जीव अजीव का भी अभाव होता है। जिससे सर्वापहार क्विप् प्रत्यय के समान या शून्यवादी बौद्ध मत का भी प्रसंग आता है यही महान हानि है जो प्रत्यक्ष, आगम, अनुमान से भी विरोध है अतः उभय परिग्रह के सद्भाव से ही ग्रहण और त्याग की व्यवस्था बनती है।

प्रश्न– 2320 स्पर्शेंद्रिय जन्य परिग्रहानंद रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर शारीरिक श्रृंगार अलंकार की सामग्री का अर्जन, संग्रह, संवर्द्धन, संरक्षण कर आनन्दित होने को हर्ष मनाने को स्पर्शेंद्रिय जन्य परिग्रहानंद रौद्रध्यान कहते हैं अथवा स्पर्शेंद्रिय के विषय सेवन के योग्य आठ प्रकार की हल्का भारी आदि सामग्री का मनोनुकूल अर्जनादि करके, पुनः पुनः आत्मसात् करके प्रसन्न होने को, जीवन में उतारकर आनन्द मानने को स्पर्शेंद्रिय जन्य परिग्रहानंद रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2321 शरीर सम्बन्धी परिग्रह कौन सा है कि जिसके माध्यम से स्पर्शेंद्रिय जन्य परिग्रहानंद रौद्रध्यान उत्पन्न होता है?

उत्तर शारीरिक सम्बन्धी वस्त्राभूषण, स्नो पाउडर, तेल, स्पर्श का विषय हल्का भारी, कोमल कठोर, ठण्डा गरम, रूखा चिकना इनको प्राप्त कर संग्रह आदि कर या जीवन में प्रयोग कर मनोनुकूल सफलता पाकर आनंदित होने को स्पर्शेंद्रिय जन्य परिग्रहानंद रौद्रध्यान होता है।

प्रश्न– 2322 स्पर्शेंद्रिय जन्य परिग्रहानंद रौद्रध्यान के कितने भेद हैं?

उत्तर स्पर्शेंद्रिय जन्य परिग्रहानन्द रौद्रध्यान के भी विषय के अनुसार स्पर्श के आठ भेद हैं तथा इन्हीं के परस्पर में मिलाने से और अगुरुलघु गुण के द्वारा या अविभाग प्रतिच्छेदों के माध्यम से संख्यात असंख्यात और अनन्त भेद हो जाते हैं।

प्रश्न– 2323 रसनेंद्रिय परिग्रहानंद रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर रसनेंद्रिय के विषय स्वरूप सामग्री को एकत्रित कर तथा स्वाद में एकाग्रमन से आनन्दित होने को रसनेंद्रिय जन्य परिग्रहानन्द रौद्रध्यान कहते हैं अथवा खाने पीने की स्वादिष्ट, पौष्टिक रस की सामग्री को, स्वाद से खाकर आनन्दित होने को या अर्जन, संग्रह, संवर्द्धन, संरक्षण करने को और करके प्रसन्न होने को रसनेंद्रिय जन्य परिग्रहानन्द रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2324–26 रसनेंद्रिय जन्य परिग्रहानन्द रौद्रध्यान की सामग्री कौन कौन है? रौद्रध्यान कैसे उत्पन्न होता है? कितने भेद हैं?

उत्तर रसनेंद्रिय का विषय पाँच प्रकार का है। इनके अवान्तर संख्यात, असंख्यात और अनन्त भेद हैं फिर भी उस भोजन सामग्री का संग्रह करके, खा पी करके मन में आनन्दित होकर एकाग्र होने से रसनेंद्रिय जन्य परिग्रहानन्द रौद्रध्यान उत्पन्न होता है। कवलाहार की सामग्री चार प्रकार की होती है। खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय अथवा आहार मार्गणा के अनुसार आहार के 6 भेद हैं। कवलाहार मनुष्य, त्रस तिर्यंचों का, ओजाहार अण्डज जीवों का जब तक ये अण्डे में हैं तब तक लेपाहार वनस्पतियों का तथा शेष चार स्थावरों का, मनसाहार देवों का, कर्माहार नारकियों का, कर्माहार नोकमाहार केवलियों का। यथासंभव चारों गतियों में आहार को ग्रहण कर आनन्दित

होने को रसनेंद्रिय जन्य परिग्रहानंद रौद्रध्यान कहलाता है। जब खाने पीने की सामग्री में कमी रह जाती है और आकांक्षा बनी रहती है फिर एकाएक सामग्री के मिलने पर अत्यन्त लोलुपता बढ़ती है सो इस लोलुपता से ही रसनेंद्रिय जन्य परिग्रहानंद रौद्रध्यान उत्पन्न होता है।

प्रश्न– 2327 घ्राणेंद्रिय जन्य परिग्रहानन्द रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर नासिका से सूंघने योग्य गन्धयुक्त सुगन्धित पदार्थ पुष्प, इत्र, तेल, स्नोपाउडर, क्रीम वगैरह फल, दूध दही घी, आम, नींबू आदि द्रव्यों को सूंघकर घ्राण के विषय में आसक्त होकर, आनन्द मानकर, तद्रूप परिणमन करने को घ्राणेंद्रिय जन्य परिग्रहानंद रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2328 घ्राणेंद्रिय जन्य परिग्रहानंद रौद्रध्यान के भेद कितने हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर सूंघने के योग्य सामग्री दो प्रकार की है सुगन्ध और दुर्गन्ध। इन्हीं की मात्रानुसार सुगन्ध और दुर्गन्ध के संख्यात असंख्यात और अनंत भेद हो जाते हैं। सुगन्ध– पुष्प, घी, फल, केशर, इत्र, तैलादि सुगन्धित द्रव्य तथा ये पदार्थ जब सड़ जाते हैं नाना विकृत रूप में परिणमन कर जाते हैं, बिगड़ जाने से दुर्गन्ध युक्त हो जाते हैं तथा दुर्गन्ध पदार्थ मल मूत्र, सप्तधातु और उपधातुयें परस्पर में मिश्रत होकर दुर्गन्ध युक्त हो जाती हैं। शराब, मांस, सड़ा गला भोजनपान ये सब दुर्गन्धित पदार्थ हैं। इन्हीं के संख्यात, असंख्यात और अनंत भेद हैं।

प्रश्न– 2329 सुगन्ध से परिग्रहानंद रौद्रध्यान तो सुना है सो ठीक है किन्तु दुर्गंध से भी रौद्रध्यान कैसे हो सकता है?

उत्तर प्रत्येक पदार्थ प्रतिपक्ष धर्म सहित हैं इस नियमानुसार सुगंध का प्रतिपक्षी दुर्गंध और दुर्गंध का प्रतिपक्षी सुगन्ध है। इस कारण दुर्गन्ध से भी प्रीति होती है जैसे मांस के प्रेमी, शराब के प्रेमी खाते पीते हैं और वे उसी में प्रसन्न होते हैं इस प्रसन्नता का नाम ही दुर्गन्ध से सम्बन्धित परिग्रहानंद रौद्रध्यान या सुअर बड़े प्रेम से मल को खाता है, कौऐ, कुत्ते सड़े गले मांस को खाते हैं अथवा नाली गटर साफ करने वाले, वहीं पास में निवास करने वाले, मांसाहारी, शराबी, भिखारी मांग मांग कर खाने वाले, बीन बीन कर खाने वाले उसी में बड़े प्रसन्न होते हैं इस कारण कहा है कि दुर्गन्ध से भी घ्राणेंद्रिय जन्य परिग्रहानंद रौद्रध्यान उत्पन्न होता है।

प्रश्न– 2330 घ्राणेंद्रिय भी पुद्गल है इसका विषय भी पुद्गल है तब पुद्गल से रौद्रध्यान कैसे उत्पन्न हो सकता है?

उत्तर जो द्रव्येंद्रिय है वह पुद्गल है विषय तो पुद्गल ही है किन्तु भावेंद्रिय तो आत्मस्वरूप है ज्ञान स्वरूप है क्योंकि लब्धि और उपयोग को भावेंद्रिय कहा है और जब यह भावेंद्रिय चारित्र मोह के साथ में मिलकर विकार रूप होकर परिणमन करती है तब अभेद विवक्षाकर हेतु हेतुमद्भाव के अनुसार दुर्ध्यान का कारण या दुर्ध्यानरूप ही हो जाती है तथा कर्मोदय और कर्मोदय का कारण बाह्य नोकर्म सामग्री भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

प्रश्न– 2331 चक्षुइंद्रिय जन्य परिग्रहानंद रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर आँख से देखने योग्य रूप अलंकार चित्रादि सामग्री वस्त्राभूषण युक्त मनुष्य मनुष्यनी, तिर्यंच तिर्यंचनी, देव देवांगना आदि को अर्जन, संग्रह, संवर्द्धन और संरक्षण करके, कराके पुनः पुनः सामग्री को देखकर खुशी मनाने को, मनवाने को, प्रशंसा करने को, अनुमोदन करने को चक्षु इंद्रिय जन्य परिग्रहानन्द रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न— 2332 नेत्रेंद्रिय की विषय सामग्री कौन कौन हैं कि जिसके माध्यम से यह रौद्रध्यान उत्पन्न होता है और क्या हानि प्राप्त होती है?

उत्तर आँख से देखने योग्य काला, पीला, नीला, लाल, सफेद, वस्त्रों के रंग, चित्रकला, आभूषणों का सौन्दर्य, भोजन सामग्री का सौन्दर्य, कामी कामिनी का सौन्दर्य, नाना तरह के रंग बिरंगे चित्र, मूर्तियों का आकार आदि में मोहित होकर एकाग्रमन से आनन्दित होने पर या हर्षित होने पर चक्षु इंद्रिय जन्य परिग्रहानन्द रौद्रध्यान उत्पन्न होता है या इस इन्द्रिय विषय को अभूतपूर्व मानकर प्रसन्न होने को कि मैंने ऐसा रूप अलंकार कभी नहीं देखा कितना आश्चर्यकारी है उसी के रूप अलंकार को देखकर अपना धर्म कर्म सब कुछ छोड़ दिया। ध्यान अध्ययन षडावश्यक भी छोड़ दिया। सामग्री को न छोड़ने से दिन प्रतिदिन पाप ही बढ़ता गया जिससे दुःखी हुआ।

प्रश्न— 2333 चक्षु इंद्रिय जन्य परिग्रहानन्द रौद्रध्यान के कितने भेद हैं?

उत्तर चक्षु इंद्रिय जन्य परिग्रहानन्द रौद्रध्यान के सामान्यतया 5 तथा संख्यात असंख्यात और अनंत भेद हैं जो असंख्यात लोक प्रमाण हैं।

प्रश्न— 2334 कर्णेंद्रिय जन्य परिग्रहानंद रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर कान से सुनकर अनेक प्रकार के स्वर व्यजंनों से युक्त गद्य पद्यमय रचना, गीत संगीत, निन्दा प्रशंसा के वचनों के माध्यम से उत्पन्न आह्लाद को, आनन्द को, प्रसन्नता को कर्णेंद्रिय जन्य परिग्रहानन्द रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न— 2335—36 कर्णेंद्रिय की विषय सामग्री क्या है कि जिसके माध्यम से कर्णेंद्रिय जन्य परिग्रहानंद रौद्रध्यान उत्पन्न होता है? कितने भेद हैं?

उत्तर कान का विषय अक्षररूप भाषा, अनक्षर रूप भाषा, जनपद आदि 10 प्रकार का सत्य वचन, षडज ऋषभादि 7 प्रकार का संगीत स्वर और इन्हीं के उतार चढ़ाव के भेदानुसार संख्यात और असंख्यात तथा अनंत भेद हैं। इन शब्दों के साथ अपने उपयोग को परिणमाने से यह ध्यान उत्पन्न होता है।

प्रश्न— 2337 कर्णेंद्रिय जन्य परिग्रहानंद रौद्रध्यान क्यों उत्पन्न होता है?

उत्तर षडज ऋषभ आदि शब्दों के 7 भेद हैं। इनके उतार चढ़ाव से अनेक भेद प्रभेद हो जाते हैं। स्वर व्यजंनों के उच्चारण स्थान कंठ तालु, मूर्द्धा दंत ओष्ठ हैं। बाँसुरी वीणा, तबला पेटी, सितार मेघ गर्जना पशु पक्षियों की आवाज को, ध्वनि को सुनकर मोहित होकर राग से या द्वेष से आकंठ आसक्त होकर मुग्ध होने को, प्रसन्न होने से, अतृप्ति असंतोष भाव से यह रौद्रध्यान उत्पन्न होता है। जब यह जीव मोही बन कर यह स्वर कण्ठ अभूतपूर्व है ऐसा मैंने कभी नहीं सुना हा हा

कितना मनोज्ञ संगीत है ऐसी भावना से कर्णेन्द्रिय जन्य परिग्रहानन्द रौद्रध्यान उत्पन्न होता है।

प्रश्न– 2338 कर्णेंद्रिय जन्य परिग्रहानन्द रौद्रध्यान के स्वामी कौन जीव हैं?

उत्तर कर्णेंद्रिय जन्य परिग्रहानंद रौद्रध्यान के स्वामी सैनी पंचेंद्रिय पर्याप्तक जीव हैं क्योंकि आनन्द मन से या मन में आता है। एकेंद्रिय जीव से लेकर असैनी पंचेंद्रिय पर्यन्त जीवों के रौद्रध्यान का अस्तित्व बताया है किन्तु कार्य रूप से परिणत नहीं होता है क्योंकि उनके मन का अभाव है हाँ आर्तध्यान तो कार्यरूप से पाया जाता है और रौद्रध्यान भी मन के विना तत्तत् इंद्रिय जन्य विषय कषायों में प्रवृत्ति होने से इंद्रिय जन्य ज्ञान और कषायों के उदयानुसार परिणमन करने से तत्तत् इंद्रिय जन्य परिग्रहानन्द रौद्रध्यान उत्पन्न होता है अर्थात् जिस जीव के जो या जितनी इंद्रियां हैं उसके वहीं तक ध्यान होता है और जो इंद्रिय नहीं है तथा आगे की इंद्रियजन्य रौद्र ध्यान भी नहीं है जैसे कोई त्रींद्रिय जीव है तो उसके स्पर्शन रसना और घ्राणेंद्रिय जन्य रौद्र ध्यान होगा किन्तु चक्षु कर्णेंद्रिय जन्य रौद्रध्यान नहीं होगा।

प्रश्न– 2339 पाप पाँच हैं और रौद्रध्यान चार हैं जबकि मैथुन सेवन करके जीव आनन्द मानते हैं, आनंदित होते हैं अतः मैथुन पाप के कारण मैथुनानंद रौद्र ध्यान मानकर सामान्य सहित रौद्रध्यान के 6 भेद स्वीकार करना चाहिए या पाप पाँच न बताकर चार बताना चाहिए सो ऐसा क्यों नहीं किया?

उत्तर आपका कहना सत्य है ठीक है कि मैथुनानन्द नाम का पाँचवां रौद्रध्यान मानना चाहिए परन्तु आचार्यों ने शास्त्रों में चार ही रौद्रध्यान बताये हैं और सामान्य सहित पाँच तथा मैथुन सेवन में चारों ही रौद्रध्यान और शेष चारों ही पापों का अन्तर्भाव हो जाता है और चारों ही आर्तध्यान चिन्तन करने से अनुभव में आ जाते हैं।

प्रश्न– 2340 सो कैसे चिन्तन करें कि मैथुन सेवन में चारों रौद्रध्यान चारों आर्त ध्यान अनुभव में आ जाये?

उत्तर मैथुन सेवन के समय तीव्र निर्दय परिणाम होता है तभी तो ऐसे हिंसक कार्य में प्रवृत्त होता है। एक बार मैथुन सेवन में नौ लाख सम्मूर्च्छन, लब्ध्यपर्याप्तक, नपुंसक वेदी मनुष्य और प्रत्येक लिंग के आघात से असंख्यात करोड़ त्रसस्थावर जीव मारे जाते हैं तथा असंयम प्रमाद और कषाय मौजूद हैं अतः इतने जीवों की विराधना होने से हिंसापाप तथा आनन्द मानने से हिंसानंद रौद्र ध्यान हुआ। धर्म विवाह करने वाले दम्पति भी एकाएक नहीं बोलते हैं कि हम ऐसा करते हैं सब जानते हैं पर बोलते नहीं दोनों पति पत्नि एक दूसरे का सहारा लेकर बचने की कोशिश कर लेते हैं कि हम त्यागना चाहते हैं परन्तु वो नहीं चाहती इसी तरह पत्नी भी हम छोड़ना चाहते हैं परन्तु वो नहीं मानते। यानि पाप को छिपाने के लिए झूठ बोलते हैं। अतः झूठ पाप कहलाया तब परस्त्री सेवी और वेश्या सेवी तो बहुत दूर रहा वो सत्य कैसे बोलेंगे? अतः मृषा पाप और आनंद मानने से मृषानंद रौद्रध्यान कहलाया क्योंकि ये अपने मुँह से स्पष्ट नहीं बोलते कि मैंने इसके साथ किया, यहाँ किया, इस समय किया, ऐसा ऐसा किया बोलकर बचने से आनंद मानता है कि अच्छा हुआ बच गये। बदलकर बोलने से प्रसन्न होता है। काम सेवी कितना भी समर्थ

हो पर वह छिपकर के ही कामसेवन करता है खुले आम नहीं । छिपकर के काम सेवन कर मेरे को किसी ने नहीं देखा, मेरी कला कितनी अच्छी है आदि विचार करना चोरी पाप और चौर्यानंद रौद्रध्यान है क्योंकि छिपकर काम सेवन करके आनन्द माना है। कामवासना की पूर्ति के लिए धन का संचय करता है, याचना करता है, व्यापार, नौकरी आदि नीच काम भी करता है और विषयकषाय स्वयं अंतरंग परिग्रह पाप है और धनादि का अर्जन संग्रह संवर्द्धन संरक्षण बाह्य परिग्रह दोनों होने से परिग्रह पाप और इसी में आनन्द मानना परिग्रहानंद रौद्रध्यान है।

प्रश्न– 2341 मैथुन सेवन से आर्तध्यान कैसे उत्पन्न हो सकता है?

उत्तर मैथुन सेवन की भावना उत्पन्न हुई कि मैथुन सेवन करना है कब, कहाँ, कैसे, किससे, किसके साथ करना है, किस समय मौका है, रात्रि में मौका मिलेगा या दिन में मौका मिलेगा आदि विचार निदान आर्तध्यान है। काम की पीड़ा असहनीय है, मरने की, भागने की सोचता है, खाना पीना, नींद लेना, आदान प्रदान, आदर सम्मान, विनय, मान मर्यादा, लज्जा आदि गुण धर्म सब नष्ट हो जाते हैं। काम की पीड़ा असह्य होने से, विना मन के या मन मार के सहन करना पड़ रहा है जैसे जेल में कैदी को सहन करना पड़ता है इस कारण वेदना आर्तध्यान है। काम सेवन प्रिय है, जीवन का सार है, संयोग मिल नहीं रहा है, सामने दिखाई नहीं दे रहा है या कहीं चली गई है, कहीं चला गया है, कब मिलेगा, कब मिलेगी, कितने समय के बाद मिलेगा या मिलेगी यानि अपने काम सेवन की सामग्री और इसकी भी साधनभूत सामग्री के विच्छेद होने पर पुनः मिलन के विचारों को अथवा नवीन मिलन के, विवाह के या संयोग के विचारों को इष्टवियोगज आर्तध्यान कहते हैं। वियोगज के दो अर्थ होते हैं – वि–विशेष, योग–संबंध से, ज–उत्पन्न हुआ। इष्ट–प्रिय वस्तु व्यक्ति। प्रिय वस्तु व्यक्ति विशेष के माध्यम से, संबंध से उत्पन्न हुआ ध्यान इष्ट वियोगज आर्तध्यान अथवा वि– विच्छेद, योग– संबंध से, ज– उत्पन्न हुआ। इस संबंध के विच्छेद से उत्पन्न हुआ। काम सेवन की द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव में हीनता होने से, तदनुकूल सामग्री की पूर्णता न होने से, कमी होने से इष्ट वियोगज आर्तध्यान है। सब साधन मौजूद हैं, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव अनुकूल हैं पर सामने परिवार के सदस्य सगे सम्बन्धी या मित्रमण्डली या कोई विशेष कार्यक्रम चल रहा है तथा अंतरंग में दोनों के मन में कामवेदना हो रही है, छटपटाहट चल रही है पर बाहर की प्रतिकूलता का सद्भाव होने से कार्य नहीं हो रहा है क्योंकि ऐसे प्रसंग पर ये कोई सदस्य, कार्यक्रम अनुकूल न होने से प्रतिकूल है, इष्ट न होने से अनिष्ट है मन के प्रतिकूल होने से ये क्यों बैठे हैं, क्यों नहीं जाते हैं? कार्यक्रम जल्दी समाप्त हो जाये तो अच्छा है इत्यादि यह अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान है। भविष्य में कामसेवन करने का निर्णय कर लेना निदान आर्तध्यान है इस प्रकार मैथुन सेवन में समस्त आर्त और रौद्रध्यान आ जाते हैं इस कारण मैथुनानंद नाम अलग से न देकर आर्तध्यान और रौद्रध्यान नहीं कहा है तथा यह मैथुन सेवन या अनंगक्रीड़ा हाथी के पैर के समान समस्त दुर्ध्यानों को, पापों को, व्यसनों को दुर्लेश्याओं को, अनर्थकारी विकारों को, समस्त दुर्गतियों के दुःखों को अपने में संजोये हुए हैं। जैसे हाथी के पैर में सभी मनुष्यों के, पशु पक्षियों के पैर समा जाते हैं इसी तरह इस मैथुन सेवन पाप में समस्त अनर्थकारी कार्यकलाप, दुर्ध्यान अन्तर्भाव को प्राप्त हो जाते हैं।

प्रश्न— 2342 इन दोनों रौद्रध्यान और आर्तध्यान का क्या फल है?

उत्तर यदि ये दोनों ध्यान मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषायोदय के साथ हैं तो नरक और तिर्यंच गति के कारण हैं, निगोद को प्राप्त कराते हैं और सम्यग्दर्शन के साथ, देशसंयम के साथ, निदान के विना शेष तीन आर्तध्यान सकल संयम के साथ में हैं तो पुण्य कर्मों के स्थिति, अनुभागबंध में तीव्रता तथा पाप कर्मों के स्थिति, अनुभागबंध में हीनता लाते हैं और चारित्रों में मलिनता लाते हैं पर नरक निगोद और तिर्यंचगति का पात्र नहीं बनाते हैं। फिर भी मोक्षमार्गियों को हमेशा भयभीत रहना चाहिए क्योंकि सज्जनों की सज्जनता इसीमें है।

प्रश्न— 2343 सामान्यतः आर्तध्यान कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर अनुकूल सामग्री की प्राप्ति के लिए इष्ट वियोगज आर्तध्यान होता है। प्रतिकूल को दूर करने के लिए अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान होता है। भविष्य में प्राप्ति के लिए निदान आर्तध्यान होता है। स्वार्थ पूर्वक कष्ट को दूर करने के लिए वेदना आर्तध्यान होता है।

प्रश्न— 2344 आजकल मुनिजन आहार करते हुए, वार्तालाप करते हुए, अनुकूल ठण्डी गर्मी, आसन, शय्या करते हुए, प्रसन्न मुद्रा में हंसते हुए, संगति में प्रशंसा के वचनों को सुनकर आनन्दित होते हुए देखे जाते हैं अतः मुनियों के और गृह त्यागियों के भी रौद्रध्यान मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर यह सत्य है कि गृह त्यागी तथा मुनिजन हंसते हुए, प्रसन्न होते हुए, आनंद लेते हुए, हंसाते हुए देखे जाते हैं पर वह उनके रौद्रध्यान नहीं कहा जाता है वह प्रमाद है, हास्य कषाय का कार्य है, रौद्रध्यान नहीं क्योंकि रौद्रध्यान का कारण असंयम है। रौद्रध्यान का परिणाम अनन्तानुबंधी कषाय, अप्रत्याख्यानावरण कषाय तथा प्रत्याख्यानावरण कषायोदय से विषय भोगों में, संसार शरीर भोगों में मोही बनकर आनन्द को, हर्ष को प्राप्त होता है सो यही रौद्रध्यान है। केवल संज्वलन कषायोदय से भाव परिणाम रौद्रध्यान नहीं ऐसा समझना चाहिए। यदि संज्वलन कषायोदय से रौद्रध्यान माना जाय तो सूक्ष्मसांपराय नामक 10वें गुणस्थान तक भी रौद्रध्यान का परिणाम मानना पड़ेगा इसकारण असंयम प्रत्यय से रौद्रध्यान होता है या रौद्रध्यान से असंयम होता है अर्थात् असंयम में, अव्रत में आनंद मानना रौद्रध्यान है, असंयम ही रौद्रध्यान है इसलिए रौद्रध्यान का परिणाम पंचमगुणस्थान तक कहा गया है, आगे नहीं।

प्रश्न— 2345 इन दोनों आर्तध्यान और रौद्रध्यान को समझकर क्या करना चाहिए?

उत्तर ये दोनों आर्तध्यान और रौद्रध्यान दुःख के कारण, निन्दा के, अपमान के, बदनामी के, संसार भ्रमण के कारण मानकर, समझकर छोड़ देना चाहिए। अन्यथा संसार भ्रमण के कारणभूत कर्मों के आश्रव और बंध का कारण होकर, आश्रव बंध कराकर अनेक सागरों पर्यन्त के लिए नरक निगोद में, हीन जाति के देवों में जन्म दिलाकर कष्ट प्राप्त करायेंगे कोई बचानेवाला नहीं होगा।

प्रश्न— 2346—50 धर्म किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? स्वामी कौन कौन हैं? फल क्या है? फल किसको प्राप्त होता है?

उत्तर परम शुद्ध स्वरूप, शुद्ध बुद्ध आत्मा को प्राप्त कराने वाले साधनों को, धर्म कहते हैं अथवा जो संसारी आत्माओं को संसार बंधन से, संसार भ्रमण से, दु:खों से बचाकर, उठाकर कर्मों को क्षय कराकर, उत्तम सुख, मोक्ष में पहुंचा दे उसे धर्म कहते हैं। वस्तु स्वभाव को धर्म कहते हैं। अपनी आत्मा से भिन्न समस्त प्राणियों की रक्षा करने को धर्म कहते हैं। रत्नत्रय को धर्म कहते हैं। दान पूजा को, षडावश्यकों के पालने को धर्म कहते हैं। उत्तम क्षमादि दस भावों को धर्म कहते हैं। गृहस्थ धर्म और मुनिधर्म की अपेक्षा, अणुव्रत और महाव्रतों की अपेक्षा, निश्चय धर्म और व्यवहार धर्म की अपेक्षा, सागार धर्म और अनगार धर्म की अपेक्षा दो भेद हैं। रत्नत्रय की अपेक्षा 3 भेद आराधनाओं की अपेक्षा चार भेद आदि संख्यात, असंख्यात और अनन्त भेद हैं। चारों गतियों के जीव तथा मुक्त जीव भी स्वामी हैं। पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा होना, नवीन पाप कर्मों का तथा अवस्था विशेष होने से पुण्यकर्मों का संवर होना, स्वर्ग के, भोगभूमि के इंद्रिय सुख प्राप्त होना, कष्टों को क्षय करना, विशेष मोक्षमार्ग की प्राप्ति, मोक्ष की प्राप्ति होना यह धर्म का फल है। व्यवहार धर्म का फल संसार के उत्तम उत्तम पद, वैभव, सुख, फल प्राप्त होना, उत्तम संहनन, उत्तम शरीर, उत्तम भाव, उत्तम लेश्यायें, उत्तम शिक्षा, संगति संस्कार प्राप्त होना, उत्तम परिवार प्राप्त होना, सदाचारी सद्विचारी कुलों में जन्म लेना, निरोग शरीर, सुन्दर शरीर, सर्वांग सुन्दर अंग प्रत्यंग, धन वैभव होना, संवर निर्जरा तत्त्व की प्राप्ति होना आदि व्यवहार धर्म का फल है और मोक्ष की प्राप्ति, स्वतंत्र, निश्चल, द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मों का क्षय करना, पूर्ण शुद्ध बुद्ध अवस्था प्राप्त होना, त्रिलोक पूज्य उत्तम पद की प्राप्ति होना निश्चयधर्म का फल है। इस फल की प्राप्ति भव्य, पर्याप्तक, सैनीपंचेंद्रिय, विशुद्ध परिणामों वाले, शुक्ललेश्या वाले वज्रवृषभ नाराच संहनन वाले, त्रिवेदी मनुष्यों को होती हैं। वे मनुष्य द्रव्य से पुरुष वेदी और भाव से तीनों वेदवाले हो सकते हैं किंतु नारकी, तिर्यंच और देवों को यह फल प्राप्त नहीं होता।

प्रश्न– 2351–53 धर्मध्यान किसे कहते हैं? धर्मध्यान के स्वामी कौन जीव हैं? और कौन जीव नहीं हैं?

उत्तर उपरोक्त धर्मों से तन्मय होकर, संसार शरीर भोगों से विरक्त होकर और जिन्होंने एकमात्र मोक्ष तत्त्व की प्राप्ति का लक्ष्य बना लिया है ऐसे निकट भव्य जीव, तद्भव मोक्षगामी सैनी पंचेंद्रिय पर्याप्तक आदि विशेषणों से युक्त सरागी चौथे गुणस्थान से लेकर सरागी दसवें गुणस्थान तक के सम्यग्दृष्टि, अणुव्रती और महाव्रती मुनि प्रमत्त संयत से लेकर सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान पर्यन्त धर्मध्यान के स्वामी है। अभव्य जीव, मिथ्यादृष्टि जीव, एकेंद्रिय जीवों से लेकर असैनी पंचेंद्रिय पर्यन्त, समस्त निगोदिया, मलेच्छ आचार विचार वाले, मिथ्यात्व गुणस्थान वाले, अन्याय और अभक्ष्यभोजी, व्यसन सेवन करने वाले जीव न धर्मध्यान को पाते हैं न धर्मध्यान के फल को पाते हैं किन्तु संसार चक्र में, चारों गतियों में, 84लाख योनियों में डूबे रहते हैं।

प्रश्न– 2354–55 धर्मध्यान के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर धर्मध्यान के चार भेद हैं अथवा दस भेद हैं अथवा संख्यात असंख्यात और अनन्त भेद हैं क्योंकि जितने धर्म हैं उतने ही धर्मों में स्थिर होने के परिणाम हैं, उतने ही धर्मध्यान है। चैतन्य स्वरूप

आत्मा में ज्ञान दर्शन ये गुण चेतन हैं, शेष अनंतगुण अचेतन हैं। **नामः— 1.आज्ञा विचय धर्मध्यान 2. अपायविचयधर्मध्यान 3. विपाक विचय धर्मध्यान 4. संस्थान विचय धर्मध्यान अथवा 1. पदस्थ धर्मध्यान 2. पिण्डस्थ धर्मध्यान 3. रूपस्थ धर्मध्यान 4. रूपातीत धर्मध्यान। 10 नाम :— 1. अपाय विचय धर्मध्यान 2. उपायविचय धर्मध्यान 3. जीव विचय धर्मध्यान 4. अजीव विचय धर्मध्यान 5. विपाक विचय धर्मध्यान 6. विराग विचय धर्मध्यान 7. भवविचय धर्मध्यान 8. संस्थान विचय धर्मध्यान 9. आज्ञा विचय धर्मध्यान 10. कारण विचय धर्मध्यान।**

प्रश्न— 2356 आज्ञा विचय धर्मध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर केवलज्ञानी, सर्वज्ञ भगवान, तीर्थंकर, अरिहन्त प्रभु की आज्ञा का, ज्ञेय हेय और उपादेय को अपने क्षायोपशमिक ज्ञान के अनुसार, विशेष सहयोग के बिना, संदेह किये बिना, समीचीन विश्वास के साथ चिन्तन, मनन, पालन करने को आज्ञा विचय धर्मध्यान कहते हैं।

प्रश्न— 2357—58 मोक्षमार्गी श्रद्धानी और ज्ञानी जीव कितने प्रकार के हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर मोक्षमार्गी श्रद्धानी और ज्ञानी दो दो प्रकार के हैं। एक आज्ञाप्रधानी, दूसरा परीक्षाप्रधानी।

प्रश्न— 2359—60 आज्ञा प्रधानी किसे कहते हैं? परीक्षा प्रधानी किसे कहते हैं?

उत्तर अपने ज्ञान का विशेष क्षयोपशम न होने से केवल जो भगवान ने कहा वही सत्य है क्योंकि केवलीभगवान अन्यथा वादी नहीं होते है क्योंकि उनके राग, द्वेष, मोह समूल रूप से विनाश को प्राप्त हुए हैं। इसलिए इनकी आज्ञा मानकर श्रद्धान करना, ज्ञान करना आज्ञा प्रधानीपना है। अपने क्षायिक सम्यग्दर्शनादि के साथ, क्षायोपशमिक ज्ञानानुसार किसी भी वक्ता ने अपना वक्तव्य दिया बताया तो उस वक्तव्य में ऐसा क्यों कहा, ऐसा कहना चाहिए, इसका ऐसा अर्थ होना चाहिए इत्यादि प्रकार किसी भी विषय में गुण दोष की पहंचान के लिए, विशेष ऊहापोह करके सही गलत की जानकारी करने को परीक्षा कहते हैं और करने वाले को परीक्षा प्रधानी कहते हैं।

प्रश्न— 2361—2362 परीक्षा कहाँ तक करना चाहिए? आज्ञा कब मानना चाहिए?

उत्तर जहाँ तक अपना क्षयोपशम है वहाँ तक विशेष ऊहापोह कर ग्रहण करना चाहिए तथा जब अपना ज्ञान काम नहीं करे, अपने ज्ञान के बाहर की बात हो, कोई विशेष अनेकांतवादी, स्याद्वादी ज्ञानी प्राप्त न हो, नहीं समझाये तब अब भगवान ने कहा सो सही इस प्रकार स्वीकार कर लेना चाहिए। जैसे अग्नि क्यों गरम है इसमें क्या परीक्षा करोगे? स्वभावो तर्क अगोचरः।

प्रश्न— 2363—65 ज्ञेय किसे कहते हैं? हेय किसे कहते हैं? उपादेय किसे कहते हैं?

उत्तर 6 द्रव्य, 7 तत्त्व, नव पदार्थ, पंचास्तिकाय, भूगोल, नदी, समुद्र, तालाब, पर्वत, जंगल आदि का, खगोल सूर्य चन्द्र, ग्रह नक्षत्र आदि का उपदेश जानने योग्य है, ज्ञेय तत्त्व है। जिनके माध्यम से आत्मा में विकार उत्पन्न हो, विषय कषायों की उत्पत्ति हो, पतन के मार्ग में चली जाये उसे हेय छोड़ने योग्य कहते हैं इसलिए यह हेय तत्त्व है। जिन उपायों से साधनों से आत्मा का उत्थान हो, आत्मा सुख के मार्ग में, मोक्षमार्ग में लगे उसे ग्रहण करने योग्य उपादेय तत्त्व कहते हैं। इस प्रकार जिनोपदेश ज्ञेय तत्त्व, हेय तत्त्व और उपादेय तत्त्व रूप में समझना चाहिए।

प्रश्न– 2366 जिनेंद्र भगवान ने क्या आज्ञा दी है?

उत्तर हे भव्य आत्माओं! हमने अपनी आत्मा में लगे हुए अनादिकालीन कर्मों को जिस उपाय से जिस आत्म साधना से क्षय किया है वही उपाय वही आत्म साधना आप लोग करो, उसी उपाय से उसी आत्म साधना से आप लोग अपनी आत्मा में लगे हुए अनादिकालीन कर्मों का क्षय करो ऐसी भगवान की आज्ञा है, अन्य उपायों से नहीं। यदि सुखी होना चाहते हो तो हमारे जैसा कार्य करो यह आज्ञा दी है।

प्रश्न– 2367 गृहस्थ बनने की, आजीविका चलाने की, शादी आदि करने का और षट्कर्मों का उपदेश भगवान ने दिया था सो यह सदोष है क्या?

उत्तर गृहस्थ बनने का, गृहस्थी को निभाने का, आजीविका सम्बन्धी षट्कर्मों का, विवाहादि संतति चलाने का उपदेश आदिनाथजी ने राज्यावस्था में दिया था, मुनि अवस्था में नहीं, केवली सर्वज्ञावस्था में उपदेश नहीं दिया था। यदि केवली अवस्था में भी इस प्रकार उपदेश देने लगें तो उन्हीं सर्वज्ञकेवली भगवान ने पापोपदेश अनर्थदण्ड त्यागव्रत नाम का गुणव्रत श्रावक श्राविकाओं के लिए के लिए क्यों कहा? 'आप खाये काकड़ी दूसरों को दे आकड़ी'। आप उपदेश करें और श्रावक श्राविकाओं को, साधुओं को मना करें कि ऐसा वचन मत बोलो, पापोपदेश नाम देकर त्याग करायें। अतः जिस समय आदिनाथ ने आजीविका सम्बन्धी षट्कर्मों का उपदेश दिया था उस समय वे स्वयं गृहस्थ थे, सरागी थे, न मुनि थे, न त्यागी थे फिर भी पंचमगुणस्थान वर्ती, देशव्रती थे तभी तो उस उपदेश से जो पाप का बंध हुआ था उसी का फल था कि मुनि दीक्षा लेकर 6 महीने का उपवास किया और 7 महीने 8 दिन तक गांव गांव, नगर नगर घूमते रहे कोई आहार देने वाला सामने नहीं आया न आहार मिला उस पापोपदश का, मूक प्राणियों का मुँह बंद कराया था सो उसका फल प्राप्त हुआ कि स्वयं का मुँह बंद हो गया।

प्रश्न– 2368 तीर्थंकरों ने गृहस्थ बनने को नहीं कहा है तो उपासकाध्ययनांग का उपदेश क्यों दिया?

उत्तर जो मानव पशुओं जैसा, मलेच्छों जैसा आचरण पालन कर रहे हैं उनको अत्याचार अनाचार छोड़कर सद्गृहस्थ बनने का उपदेश दिया कि मूलगुणों का, षडावश्यकों का पालन करो तथा जो इसी में मस्त हो रहे हैं आगे बढ़ने की कोशिश नहीं कर रहे हैं तो उनको श्रावक व्रती बनने की, अणुव्रतों को, प्रतिमा के व्रतों को पालन करने के लिए, षडावश्यकों को पालन करने के लिए उपासकाध्ययनांग का उपदेश दिया अर्थात् उपर उठने का उपदेश दिया नीचे गिरने का नहीं, बीच में रुकने का नहीं गुरुओं ने भी भगवान के अनुसार ही मार्गदर्शन दिया।

प्रश्न– 2369 श्रोताओं में मुनि बनने की ताकत है तो मुनि बनें यदि ताकत न हो तो क्या करें?

उत्तर जिनोपदेश सुनकर, मुनिपद धारण कर उस उपाय का अभ्यास करे कि जिस उपाय से कर्मों का क्षय हो और वह उपाय है तत्त्व चिन्तन, मनन ध्यान, यदि ताकत न हो तो अणुव्रत धारण कर, षडावश्यकों का पालन करें तथा अणुव्रती बनने की, साधना करने की ताकत न हो तो उचित

मूलगुणों को धारण कर पालन करें, यथाशक्ति सप्तक्षेत्रों में दान दें, संयमव्रत तप का भी अभ्यासकर पात्रता को बढ़ाये ऐसी जिनेन्द्रदेव ने जिनेन्द्र बनने की आज्ञा दी है।

प्रश्न— 2370—71 कमजोर असमर्थ होने के कारण उपसर्ग परीषह सहन नहीं कर सकते हैं तब क्या करें? शक्ति है इसका उदाहरण देकर समझाओ?

उत्तर अपने में मोही, कामी, प्रमादी, बहानेबाज धर्म करने की ताकत नहीं है। मोक्षमार्ग में आने की ताकत नहीं है, पाप करने की, व्यापार करने की, भोगोपभोग सेवन करने की, लड़ाई झगड़े करने की, इधर उधर घूमने की ताकत है, सन्तान पैदा करने की ताकत है। क्या यह बहाना, टालमटोल करना आत्मवंचना करना नहीं है? अपनी आत्मा को ठगना नहीं हैं क्या? जब तेरे में दुष्कर्म करने की ताकत है तो दुष्कर्म को छोड़ने की भी ताकत है, सत्कर्म करने की भी ताकत है, थोड़ी अपनी दृष्टि बदलकर, उपयोग को अंदरकर चिन्तन कर। जैसे आपके पास में रुपया है, रुपया में नहीं लिखा है और न रुपया कहता है कि आप मेरे को व्यय करना, अपव्यय नहीं। आपकी बुद्धि और विवेक के ऊपर है कि आप उस रुपया का सदोपयोग करना चाहते हैं या दुरोपयोग। उस रुपया से आप मोक्षमार्ग, आत्मकल्याण सम्बन्धी दानपूजा, यात्रा, प्रतिष्ठा, जीर्णोद्वार, मंदिर बनवाना, शास्त्र दान देना, सेवा कर धर्म की प्रभावना करना कराना, लोक व्यवहार सम्बन्धी सत्कार्य गरीबों की सहायता करना, पढ़ाई लिखाई की, आजीविका की व्यवस्था करना, व्यापार में लगा देना, विवाहादि करा देना, गरीबों की, कमजोरों की धन के द्वारा चिन्ताओं को दूर करना, भोजन पान की, औषधि की, वस्त्राभूषणों के द्वारा चिन्तायें दूर कर देना। मद्य मांस का सेवन करना, होटलों में जाकर व्यर्थ में अशुद्ध भोजन करना, वेश्या सेवन करना, परस्त्री सेवन करना, मारकाट करना करवाना, अपहरण करना कराना, मुकदमा लड़ना, दीन दुःखियों को कष्ट देना, नाना तरह के समाज में देश में शत्रुओं को शस्त्र आदि देकर उपद्रव करना कराना आदि पाप का उपार्जन करना, पुण्य का उपार्जन करना, पापों का त्याग कर, तप, त्याग और आकिंचन आदि धर्मों के पालन करने में लगना लगाना इत्यादि अच्छे बुरे कार्य धन के द्वारा किये जाते हैं पर धन में, रुपया में लिखा नहीं है न वह कहता है परन्तु व्यक्ति अपनी बुद्धि और पुरुषार्थ से उसका सदोपयोग दुरोपयोग करता है। इसी तरह आत्मबल, काय बल, ज्ञान बल मिला है अब इस बल का, शक्ति का उपयोग पाप में करना या पुण्य में करना या दोनों को काटने में करना यह उस व्यक्ति के आधार पर है, शक्ति नहीं कहती कि मुझे इस काम में लगाओ, उस काम में नहीं। शक्ति शक्ति है अतः आत्महित के लिए बहाना बनाना योग्य नहीं है। जब पाप बंध का काम स्वयं करते हो तो पाप कर्म को काटने का काम स्वयं करो। संसार भ्रमण का कार्य दुःख का कार्य स्वयं करते हो तो मोक्ष प्राप्ति का कार्य, सुख प्राप्ति का कार्य स्वयं करो। इसी में हित है।

प्रश्न— 2372 तो भगवान ने शादी करने की, खेती, व्यापार करने की, अस्त्र,शस्त्र चलाने की, आजीविका चलाने की आज्ञा या उपदेश नहीं किया क्या?

उत्तर नहीं, भगवान केवली सर्वज्ञ वीतरागी ने इन दुःख के साधनभूत लौकिक कार्यों की, जो दुःख स्वरूप हैं, आरम्भ परिग्रह स्वरूप हैं इनका उपदेश या आज्ञा कैसे कर सकते हैं ? कैसे दे सकते हैं ? इन कार्यों की आज्ञा देना पापोपदेश है, हिंसादान है, पाप है, जो गृहस्थ अणुव्रती है, वह

ऐसा उपदेश नहीं दे सकता तो फिर केवली भगवान कैसे दे सकते हैं? इस कारण इनका त्याग करना कराना त्याग धर्म है, तप धर्म है, और इनका उपदेश धर्मोपदेश है। समाज में, देश में, प्रजा में पाप प्रवृत्ति की वृद्धि न हो, पशुवत् चेष्टायें न हो, मलेच्छाचरण का प्रवेश न होने पाय ऐसा मानकर धर्मात्मा राजाओं ने, राज्यनेताओं ने, गृहस्थाचार्यों ने इसका उपदेश दिया ताकि प्रजा में पात्रता बनी रहे। पात्र है तो वस्तु ला सकते हो, सुरक्षित रख सकते हो। पात्र नहीं है तो वस्तु कैसे लाओगे? कैसे सम्हालोगे? अतः अपात्रता दूर करने के लिए सत् पात्र और सत् पात्रता होना जरूरी हैं इसके बिना पशुपना है, मलेच्छपना है, जिसके पास धर्म और धर्मसाधना नहीं है सो उसका जीवन पशुवत्, मलेच्छवत् समझना चाहिए, मनुष्य नहीं, मनुष्यपना नहीं।

प्रश्न– 2373–74 देव, गुरु और शास्त्र की आज्ञा को सुनकर, पढ़कर क्या करना चाहिए? उदाहरण देकर समझाओ?

उत्तर देव, गुरु शास्त्र की आज्ञा को, उपदेश को, सुनकर, पढ़कर आत्महित के लिए पुनः पुनः विचार करना चाहिए कि इस उपदेश से ही हित होगा, अन्य से नहीं। इस प्रकार केवल विचारना नहीं है, चिन्तन नहीं करना है, किन्तु आत्मसात् करना है, जीवन में उतारना है, दिनचर्या में लाना है तभी आज्ञा को मानना, आज्ञा का पालन करना कहलाता है। जैसे आप डॉक्टर या वैद्यराज के पास गये, अपनी जांच कराई, तब आप को उन्होंने दवाई दी, आपने दवाई लाकर अलमारी में, ताले के अन्दर सुरक्षित रख ली, आपने पैसा भी खर्च किया, समय खराब किया और डॉक्टर वैद्य को परेशान किया फिर भी स्वास्थ्य लाभ नहीं हुआ। क्यों नहीं हुआ? आपने डॉक्टर की आज्ञा मानी, औषधि खरीदकर ले आये और लेकर रख ली। तो आपने आज्ञा मानकर भी उसका पालन नहीं किया, दवाई का प्रयोग नहीं किया तब कैसे लाभ हो? इसी तरह जिनेन्द्र की आज्ञा मानकर भी जीवन में न उतारने से, संसार बन्धन से छुटकारा नहीं मिला और मिलेगा भी कैसे आप ही बताओ? अतः संसार बन्धन को तोड़ने के लिए मन वच काय की चंचलता को रोकना चाहिये।

प्रश्न– 2375 जिनेन्द्र भगवान ने कर्मोदय जन्य इंद्रिय जन्य सुख को प्राप्त करने की आज्ञा दी है या नहीं?

उत्तर नहीं, आत्मोत्थ सुख प्राप्त करने की आज्ञा दी है उसी के लिए पुरुषार्थ बताया है क्योंकि यह सुख सादि अनन्त, स्वभावगत, शाश्वत सुख हमेशा आत्मा में रहने वाला है। इस सुख को प्राप्त करने के लिए प्रयास करने पर, साधना करने पर इंद्रिय सुख, कर्मोदय जन्य सुख बिना प्रयत्न के प्राप्त होता है। जैसे किसान खेत में बीज बोता है सो वह पुनः फल प्राप्ति के लिए बोता है किन्तु भूषा अपने आप बिना प्रयास के प्राप्त होता है, उसके लिए अलग से प्रयत्न नहीं करना पड़ता है। इसी तरह मोक्षमार्ग की साधना, आराधना करने पर अचरम शरीरी होने से संसार के उत्तम सुख बिना प्रयत्न के प्राप्त होते हैं। इस कारण जिनेंद्र ने इंद्रिय सुख को प्राप्त करने का मार्ग नहीं बताया किन्तु धर्म साधना करने पर बिना प्रयत्न के प्राप्त होता है।

प्रश्न– 2376 अपाय विचय धर्मध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर चतुर्गति के दुःखों से, संसार बंधन से छुटकारा कैसे प्राप्त हो, मेरी आत्मा कैसे शुद्ध हो या संसारी

आत्मा मिथ्यात्व, असंयम, विषय कषायों से कैसे छूटें? क्या उपाय करूं? क्या साधन करूं? आदि विचार करने को अपाय विचय धर्मध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2377 केवल दुःख से बचाने का नाम अपायविचय धर्मध्यान है या कोई विशेष हेतु भी है?

उत्तर नहीं, केवल दुःख से बचाने का नाम धर्मध्यान नहीं है किन्तु निःस्वार्थ, निष्कपट, ख्याति पूजा लाभ की दुर्भावना को छोड़कर, सम्यक्हेतुपूर्वक दुःख से बचाने का नाम अपायविचय धर्मध्यान है। यदि हेतु दुःख से बचाने के साथ साथ विषय भोगों का है, ख्याति पूजा लाभ का है कि इनका स्वास्थ्य अच्छा हो जाये तो व्यापार करेंगे, धन कमायेंगे, हम इनके साथ भोग भोगेंगे, काम सुख का अनुभव करेंगे, इंद्रिय सुख का आनन्द लेंगे यह महान निदान आर्तध्यान है और रौद्रध्यान भी है, धर्मध्यान नहीं है। अतः कार्यकलाप के साथ साथ अपना हेतु, अभिप्राय भी निष्कपट निःस्वार्थ मोक्षमार्गानुकूल बनाना चाहिए। क्योंकि हेतु के अनुसार ही कार्य सम्यक मिथ्या हो जाते हैं।

प्रश्न– 2378 केवल दुःख से बचाने का नाम धर्मध्यान क्यों नहीं? जैसे कोर्ट में फांसी की सजा से वकील लोग अपनी वक्तव्य कला से अपराधी को निरपराधी और निरपराधी को अपराधी सिद्ध कर देते हैं तब वे कष्टों से बचाते हैं अतः वकीलों को धर्मध्यानी मान लो?

उत्तर नहीं, वे धर्मध्यानी नहीं हैं। वकील, न्यायाधीश धन के, परिवार के, समाज के लोभ से, दुर्भावना से अपराधी को निरपराधी और निरपराधी को अपराधी सिद्ध कर देते हैं यह तो उन वकीलों का, न्यायाधीशों का, न्याय का, कानून का गला घोंटना है, इस अत्याचार का ही फल है कि आज देश में, समाज में जगह जगह अत्याचार अनाचार बढ़ रहा है, वृद्धि को प्राप्त हो रहा है, बदमाशी, लूटमार, गुंडेगर्दी बढ़ रही है और पुलिस राजनेतागण चुपचाप अपना पेट और पेटी की पूर्ति करने में लगे हुए हैं। अतः इस कारण अपराधी को सजा दिलाना न्याय है और लोभ से पक्षपात कर अपराधी को बचा लेना अन्याय है, राजनियम का, न्याय का गला घोंटना है यह हर तरह से महान अपराध है, क्षत्रिय धर्म नहीं है किन्तु कायरता है, नामर्दपना है। इसलिए केवल कष्ट से बचाना धर्मध्यान नहीं है। सम्यक्हेतु के होने पर निरपराधी को बचाना, अपराधी को दण्डित करना, कराना अपाय विचय धर्मध्यान है अथवा अपराधी को सज्जन रूप में बदल देना कि वह जीवन में कभी भी ऐसा अपराध न करेगा, स्व पर निमित्तक मन वचन काय से, सब तरह से निरपराधी हुआ अतः यही वास्तविक अपायविचय धर्मध्यान है।

प्रश्न– 2379 केवल चिन्तन करने का नाम धर्मध्यान है क्या?

उत्तर नहीं, केवल चिंतन करने का नाम धर्मध्यान नहीं किन्तु चिन्तन के अनुसार तद्रूप मनवचन काय से परिणमन करना, आत्मसात् करना इसका नाम अपायविचय धर्मध्यान है। जैसे कोई गड्ढे में गिर गया तो उसको उठाने के लिए ची ची करना, हाय–हाय कितना दुःखी है ऐसा केवल चिंतन करने से उसका दुःख दूर हो जायेगा क्या? नहीं अतः केवल चिंतन का नाम धर्मध्यान नहीं किन्तु उसको दुःख से बचाने के लिए तत्पर हो जाना, गड्ढे से निकालने में लग जाना, पास में जाकर

संबोधन करना तब उसका कष्ट कम होगा, दूर होगा। अतः आत्मकल्याण की भावना से कष्ट को दूर करने का नाम अपायविचय धर्मध्यान हैं।

प्रश्न– 2380–81 विपाक किसे कहते हैं? विपाक विचय धर्मध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर पूर्वबद्ध कर्म द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव तथा भवरूप योग्य सामग्री को पाकर जब कर्म अपने नामानुसार फल देने के सम्मुख हुआ, उदयावली में प्रवेश किया, उदयक्षण को प्राप्त हुआ, फल देने लगा सो उसे विपाक कहते हैं और किस कर्म का क्या फल है, कहाँ प्राप्त होता है, किस मौसम में, किसके साथ, कितनी मात्रा में प्राप्त होता है, क्यों प्राप्त होता है? कर्म संक्रमण कर, अपकर्षणकर, उदय, उदीरणाकर नाना प्रकार से फल देते हैं आदि विचार करने को विपाक विचय धर्मध्यान कहते हैं, किन्तु उसे निदान आर्तध्यान नहीं कहते हैं।

प्रश्न– 2382–83 विपाक विचय धर्मध्यान कौन करता है? कौन नहीं करता?

उत्तर जिन्होंने कर्म प्रकृतियों के नाम, लक्षण, स्थिति, फलदान शक्ति, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव को भली प्रकार से समझ लिया है वही जीव विपाक विचय धर्मध्यान को ध्याता है, चिन्तन करता है किन्तु जिस जीव ने कर्म प्रकृतियों की अवस्था को नहीं समझा है वह जीव इस ध्यान को नहीं ध्याता है। केवल पढ़ने सुनने सुनाने का नाम ध्यान नहीं किंतु स्थिर होना ध्यान है।

प्रश्न– 2384 विपाक विचय धर्मध्यान और निदान आर्तध्यान में क्या अन्तर है?

उत्तर विपाक विचय धर्मध्यान में किस कर्म का क्या फल है आदि विचार किया जाता है और निदान आर्तध्यान में यह व्रत जप तप कर रहा हूँ इसका सांसारिक विषय भोगों संबंधी फल मेरे को चाहिए। यही विपाक विचय धर्मध्यान और निदान आर्तध्यान में अंतर है।

अन्तर प्रदर्शन

विपाक विचय धर्मध्यान	निदान आर्तध्यान
1. विपाकविचय धर्मध्यान में कर्म फल का विचारक निष्पक्ष, निष्कांक्ष और संतोषवृत्ति वाला होता है।	1. कर्म के, धर्म के फल को चाहकर आकांक्षा से भरपूर होता है, असंतोष वृत्ति वाला, लोलुपता युक्त होता है।
2. मोक्षमार्गी जीव ही स्वामी हैं।	2. संसारमार्गी, मोक्षमार्गी, अभव्य और भव्य दोनों जीव स्वामी हैं।
3. भव्य सम्यग्दृष्टि जीव ही स्वामी हैं।	3. अभव्य और भव्य, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनों जीव स्वामी हैं।
4. सैनी जीव ही स्वामी हैं।	4. सैनी जीव और असैनी जीव स्वामी हैं।
5. साम्यभाव, सरल भावों से होता है।	5. कुटिल और वक्र परिणामों से होता है।
6. शुभलेश्याओं में होता है।	6. शुभ और अशुभलेश्याओं में होता है।
7. असंयमी देश संयमी और सकल संयमी जीवों के होता है।	7. असंयमी और देशसंयमी जीवों के होता है। मुनियों के होते ही पतन हो जाता है।
8. सम्यग्दृष्टि देशव्रती और महाव्रती मुनियों के	8. मिथ्यादृष्टि सम्यग्दृष्टि और देशव्रती जीवों के

होता है।	होता है।
9. आत्म सुख का साधन है कारण है।	9. किंचित् इंद्रियसुख का कारण है किंतु महान दुःख का कारण है।
10. स्वर्ग सुख का और मोक्ष सुख का कारण है।	10. सुगति का और दुर्गति का कारण है।
11. पंचेंद्रिय जीवों के ही होता है।	11. एकेंद्रिय विकलेंद्रिय और सकलेंद्रिय जीवों के होता है।
12. चौथे से सातवें गुणस्थान तक होता है।	12. पहले से पाँचवें गुणस्थान तक होता है।
13. शुभ ही होता है।	13. अशुभ ही होता है।
14. धर्म रूप ही होता है।	14. अधर्मरूप ही होता है।
15. संख्यात मनुष्य प्राणी स्वामी है, तिर्यंच प्राणी भी स्वामी हैं।	15. संख्यात असंख्यात और अनंत प्राणी स्वामी है।
16. मनुष्य और तिर्यंचों के होता है।	16. चारों गतियों के जीवों के होता है।
17. कर्मभूमिज जीवों के होता है।	17. कर्मभूमिजों के होता है।
18. नवीन पाप कर्म का और नवीन पापपुण्य का संवर होता है।	18. नवीन पाप को और निरतिशय किंचित् पुण्य को बांधता है।
19. पूर्वबद्ध कर्मों की संख्यात, असंख्यात गुणी अविपाक और सविपाकनिर्जरा होती है।	19. नवीन कर्मों को संख्यात, असंख्यात गुणे रूप से बांधता है। सविपाक निर्जरा भी होती है।
20. परम्परा से मोक्ष का हेतु है।	20. साक्षात् और परम्परा से अनंत दुःखों को प्राप्त कराता है।
21. मोक्षमार्ग है।	21. संसार शरीर भोग का, कलह का मार्ग है।
22. मोक्षप्राप्ति में सहायभूत सातिशय पुण्य कर्म का आश्रव होता है, किंचित् पाप कर्म का भी आश्रव बंध होता है पर नगण्य है।	22. संसार मार्ग में सहायभूत सातिशय पाप का आश्रव किंचित् निरतिशय हीन मात्रा में भोग के निमित्त पुण्य का भी आश्रव कर्ता है, बंध करता है।
23. धर्मात्माओं के होता है।	23. अधर्मात्माओं और धर्मात्माओं के होता है।
24. पुण्यात्माओं के होता है।	24. पापात्माओं के होता है।
25. सम्यक्क्षायोपशमिक भाव है और संयम सहित भी है। कदाचित् असंयम और देशसंयम सहित भी होता है।	25. मिथ्या और सम्यक्क्षायोपशमिक भाव है असंयम सहित ही है क्वचित् कदाचित् देशसंयम सहित भी होता है।
26. इससे आत्म साधना में दृढ़ता आती है।	26. इससे आत्मविराधना में दृढ़ता आती है।
27. इससे जीवन स्वच्छ सरल सुखी होता है।	27. इससे जीवन मलिन वक्र और दुःखी होता है।
28. इससे अनेक शत्रु भी मित्र बन जाते हैं।	28. इस ध्यान से अनेक मित्र शत्रु बन जाते हैं।
29. इस ध्यान से बाह्य में आदर सम्मान कीर्ति प्रशंसा प्राप्त होती है।	29. इस ध्यान से जगह जगह अपमान तिरस्कार निंदा और अपकीर्ति प्राप्त होती है।

30. इस ध्यान से आपत्तियां संपत्ति रूप में बदल जाती है	30. इस ध्यान से संपत्ति विपत्ति रूप में बदल जाती है।
31. इससे स्वर्ग की और मोक्ष की प्राप्ति होती है।	31. इससे संसार की और दुर्गतियों की प्राप्ति होती है।
32. इस धर्मध्यान के सैनी पंचेन्द्रिय स्वामी हैं।	32. निदान आर्तध्यान के सैनी असैनी स्वामी हैं।
33. त्रसजीवों के होता है।	33. त्रस और स्थावर जीवों के होता हैं।
34. सैनी पंचेन्द्रिय जीव समास में होता है।	34. चौदह जीव समासों में होता है।
35. सभी योग और वेद मार्गणा में होता है।	35. सभी योग और वेद मार्गणा में होता है।
36. पर्याप्त अवस्था में ही होता है।	36. पर्याप्त अपर्याप्त अवस्था में होता है।
37. मिश्र योगों में नहीं होता है।	37. मिश्र योगों में भी होता है।

प्रश्न– 2385 कर्म के फल का विचार करना विपाक विचय धर्मध्यान है या विचार कर स्थिर होना विपाक विचय धर्मध्यान है?

उत्तर केवल कर्म के फल का विचार करना विपाक विचय धर्मध्यान नहीं है क्योंकि जिसने उदर पूर्ति के लिए, दूसरों को समझाने के लिए, आदर सम्मान, पूजा प्रतिष्ठा के लिए, प्रशंसा के लिए, आजीविका चलाने के लिए, कर्म प्रकृतियों की परिभाषा रट ली है, प्रवचन करना सीख लिया है, कर्म फल का भी विचार करता है तो भी उसके धर्मध्यान नहीं है किन्तु उसके निदान आर्तध्यान है। अतः सम्यक्रत्नत्रय पूर्वक कर्मफल का विचार कर, दृढ़ निश्चय कर, अपने गुण या दोषों को लौकिक प्राणियों पर न थोपने को किन्तु अपने भाग्य और पुरुषार्थ को आधार बनाकर अथवा पंचपरमेष्ठी, महापुरुषर्थी, महात्माओं का उपकार मानकर गुणकीर्तन करने को, कर्म फल का विचार कर स्थिर होने को विपाकविचय धर्मध्यान कहते हैं। केवल विचार करने को पठन पाठन करने को, कराने को विपाकविचय धर्मध्यान नहीं कहते हैं किन्तु आदि की दो चौकड़ी कषायों का अभाव कर रत्नत्रय पूर्वक परिणमन करने को विपाक विचय धर्मध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2386 केवल कर्म के फल का विचार करने को विपाक विचय धर्मध्यान क्यों नहीं कहते हो?

उत्तर नहीं कहते हैं, क्योंकि यदि केवल विचार का नाम धर्मध्यान हो तो अभव्य जीव को, सादि अनादि मिथ्यादृष्टि जीव को, मिथ्याज्ञानी जीव को, मिथ्याचारित्री जीवों को, ख्याति पूजा लाभ की दुर्भावना वालों को भी विपाकविचय धर्मध्यान मानने का प्रसंग आयेगा जो आगम से, तर्क से, अनुमानादि से विरोधपने को प्राप्त होता है। अतः केवल विचार करने का नाम विपाकविचय धर्मध्यान नहीं है किन्तु सम्यक्रत्नत्रय पूर्वक किस कर्म का क्या फल है? यह फल है या यह फल नहीं है इत्यादि विचारकर अपने को मोक्षमार्ग में स्थिर कर लेने को विपाकविचय धर्मध्यान कहते हैं क्योंकि संसार में उत्थान और पतन स्वयं के गुण दोषों पर निर्भर है। अपने में गुण और दोषों के आरोपण करने से, दूसरों का गुणगान करने से, उपकार मानने से, उच्चगोत्र का आश्रव

बंध होता है और दूसरों में दोषों का आरोपण करने से, बुराई बताने से, वैर विरोध करने से, उपकार न मानने से, मोहाधीन होकर निन्दा करने से, नीचगोत्र कर्म का आश्रव बंध होता है। इस कारण केवल विचार करने को धर्मध्यान न कहकर किन्तु विचार कर वस्तु में वस्तुपने का चिन्तन कर स्थिर होने को कर्म विपाक विचय धर्मध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2387 संस्थान विचय धर्मध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर अपनी आत्मा को या आत्मा के प्रदेशों को लोकाकाश के समान, लोकाकाश के बराबर आत्म चिन्तन को संस्थान विचय धर्मध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2388 लोकाकाश के आकार के समान आत्मा के आकार का चिन्तन करने से क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर इस प्रकार चिन्तन करने से अनादिकाल से बंधे हुए कर्मपटल शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं जो कर्म असंख्यात समयों में फल देने वाला था वह एक ही समय में बिना फल दिए नष्ट हो जाता है जैसे गीला कपड़ा सुखाना है तो दो प्रकार से सूखता है एक तो अपने आप भाग्य से सूख गया, दूसरा पुरुषार्थ से समय के पहले शीघ्र ही सुखा दिया गया जैसे कपड़ा गीला किया और जैसा का तैसा रख दिया वह धीरे धीरे वर्षों में सूखेगा, महिनों में सूखेगा या दिनों में सूखेगा। यदि उस वस्त्र को कुछ जल्दी सुखाना है तो उसे निचोड़ दो तो वह कुछ जल्दी सूख जायेगा, फिर निचोड़ने के बाद यदि फैला दिया तो और जल्दी सूख जायेगा, यदि निचोड़कर, फटकार कर, फैलाकर सुखाया तो और जल्दी सूख जायेगा तथा निचोड़ कर, फटकारकर कड़ी धूप में फैलाया तो और भी जल्दी सूख जायेगा या गरम गरम लोहा फेर दिया, प्रेस कर दिया, मशीन से शीघ्र ही धोकर, ड्रायकर सुखा दिया। गीला वस्त्र सूखेगा अवश्य किंतु पुरुषार्थ के द्वारा शीघ्र ही सुखा दिया इसी तरह कर्मपटल संस्थानविचय धर्मध्यान के द्वारा शीघ्र ही नष्ट कर दिये जाते हैं यहाँ तक कि मोहनीय कर्म का समूल क्षय कर देने से आत्मा की शुद्धि हो जाती है इस कारण आत्म प्रदेशों को लोकाकाश के समान फैलाकर चिन्तन करने से कर्मपटल नष्ट हो जाते हैं।

प्रश्न– 2389 संस्थान विचय धर्मध्यान के स्वामी कौन हैं?

उत्तर संस्थान विचय धर्मध्यान के स्वामी एकमात्र समस्त प्रकार से आरम्भ परिग्रह के त्यागी, विषय कषायों को जीतने वाले या विषय कषायों के आधीन नहीं होने वाले ऐसे निर्ग्रन्थ जिनमुद्रा के धारक मुनिजन स्वामी हैं, गृहस्थ नहीं, अणुव्रती नहीं।

प्रश्न– 2390 असंयमी पंडित अणुव्रती भी स्वामी हैं क्योंकि यदि ये ध्यानी नहीं हैं तो इन्होंने शास्त्र कैसे लिखे? अध्यापन कैसे कराते हैं? अनुवाद कैसे किया ध्यानशिबिर कैसे लगाते हैं। ध्यान पर प्रवचन कैसे करते हैं अतः गृहस्थ भी स्वामी हैं ऐसा कहो?

उत्तर यदि ये असंयमी पंडितजन ध्यान करना जानते हैं तो फिर ये असंयमी अंतपर्यन्त विषय भोगों में आकंठ क्यों डूबे रहे हैं देखो ऐसा कौन बुद्धिमान होगा कि रसगुल्ले में मक्खी चिपकी हो और उसे खा लेवे या विष मिश्रित लड्डू खा लेवे? नहीं, उसे भूखा रहना मंजूर है पर मक्खी मिश्रित

लड्डू रसगुल्ला खाना मंजूर नहीं है अथवा रास्ते में गमन करते समय गड्ढा दिख जाय तो बचकर निकल जाते हैं क्या कोई जानकर गड्ढे में गिरता है? नहीं, इसी तरह ये असंयमी पंडित यदि ध्यान के जानकार थे या हैं तो पाप को पाप समझकर पतन के मार्ग को पतन का मार्ग समझकर क्यों नहीं छोड़ा? क्यों नहीं छोड़ते? अतः ये ध्यान के वास्तविक स्वरूप के जानकार नहीं हैं किन्तु आजीविका चलाने के लिए, उदरपूर्ति के लिए, भाषा ज्ञान की प्राप्ति की और भाषा का ज्ञान होने से भाषा में परिवर्तन किया यह वक्तव्य कला है, लेखन कला है, अध्यापन कला है जिसके कारण ये लेखन आदि कार्य सम्पन्न कर लेते हैं किन्तु तद्रूप आत्मस्वभाव को परिणमन नहीं करा सकते हैं, न तद्रूप में स्थिर हो सकते हैं क्योंकि यह संस्थान विचय धर्मध्यान संयमप्रत्यय है मुनियों के होता है, वस्त्रधारी आरंभ परिग्रही गृहस्थों के नहीं होता है किंतु द्रव्य से मुनि और भाव से चौथे पाँचवें गुणस्थान वाले करण परिणामों को कर भूमिका बनाकर अप्रमत्त गुणस्थान को प्राप्त कर भूमिका की अपेक्षा भावी नय से संस्थान विचय धर्मध्यान के स्वामी कह सकते हैं।

प्रश्न– 2391 यह कैसे जाना कि संस्थान विचय धर्मध्यान मुनियों के ही होता है, वस्त्रधारियों के नहीं होता है?

उत्तर किस गुणस्थान में कितने ध्यान होते हैं यह स्वामित्व अधिकार से जाना जाता है कि संस्थान विचय धर्मध्यान मुनियों के ही होता है।

प्रश्न– 2392 पदस्थ धर्मध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर द्रव्य गुण पर्याय वाचक निर्दोष स्वर व्यजंनों के मेल से उत्पन्न हुए गूढ़ अर्थ को बताने वाले अक्षर समूह को मंत्र कहते हैं और इन मंत्रों में अपने उपयोग को केंद्रित कर विषयों में, ज्ञेय पदार्थों में स्थिर होने को पदस्थ धर्मध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2393 पद किसे कहते हैं? मंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर स्वर और व्यजंनों से युक्त अक्षर समूह में संज्ञा प्रत्यय या क्रिया प्रत्यय लगाकर जो बनाये जाते हैं उन्हें पद कहते हैं अथवा भाव पूर्ण गुप्त अर्थ वाले अक्षर समूहों को पद और मंत्र कहते हैं। स्युमंत्र्यंते गुप्तं भाष्यंते मंत्र विद्भिरिति मंत्रा अथवा अकारादि हकारांताः वर्णाः मंत्रा प्रकीर्तिताः। मंत्रज्ञानियों के द्वारा जो विशेष भावों को शब्दों के द्वारा गुप्त रूप से कहा गया है उसे मंत्र कहते हैं अथवा अकार को आदि लेकर हकार पर्यन्त स्वतंत्र असहाय होकर अथवा परस्पर में मिले हुए स्वर व्यजंनों को मंत्र कहते हैं क्योंकि प्रत्येक स्वर व्यंजन अपने आप में अनन्त गुण धर्म शक्तियों को संजोए हुए हैं इसलिए जिनबिम्ब प्रतिष्ठा के समय मूर्ति के सर्वांग में इन्हीं स्वर व्यजंनों का न्यास किया जाता है इनके द्वारा उस मूर्ति में अनन्त शक्तियों की स्थापना की जाती है तभी तो वह मूर्ति भगवानवत् पूजी जाती है अथवा मंत्र पद का पदच्छेद करके अर्थ करना चाहिए। मं कारश्च मनः प्रोक्तं त्र कारं त्राणमुच्यते। मन स्त्राणत्व योगेन मंत्र इत्यभिधीयते। मं का अर्थ मन कामना इष्ट प्राप्ति की इच्छा और त्र का अर्थ रक्षा करना अर्थात् जिसके द्वारा मन की, कामना की, इष्ट की, प्राप्ति की, रक्षा की जाय अर्थात् अपने मनोकामना के रक्षा करने वाले उपाय को मंत्र कहते हैं अथवा इन मंत्रों की विशेष

जानकारी के लिए ब्रह्मचर्य एवं 84 लाख उत्तर गुण मंत्र विधान पुस्तक में पृ.200 के अंतिम शंका समाधान से लेकर पृ.221 तक देखना चाहिए।

प्रश्न— 2394—95 मंत्रों के भेद कितने हैं? किस मंत्र का जप करना चाहिए?

उत्तर पंचपरमेष्ठियों के या अपनी आत्म द्रव्य गुण और पर्यायों के जितने भेद हैं जितने अंश हैं या जितने अंशों में शुद्ध विकास हुआ है उस रत्नत्रय को आदि लेकर संख्यात असंख्यात और अनन्त भेद मंत्रों के हो जाते हैं। जिस मंत्र की आराधना करने से, जप करने से प्रमाद का, विषयवासना कषायों की निर्वृत्ति हो, संयम सहित रत्नत्रय की उत्पत्ति, वृद्धि, रक्षण हो, आत्मशुद्धि हो आरम्भ परिग्रह से दुर्भावनाओं से निर्वृत्ति हो वैराग्य तथा शुक्लपक्ष में दोज के चन्द्रमा की तरह चारित्र में दिन प्रतिदिन वृद्धि हो ऐसे मंत्रों का जाप करना चाहिए।

प्रश्न— 2396 वह कौन सा मंत्र है कि जिसका जाप करने से पदस्थ धर्मध्यान की प्राप्ति, स्थिति, वृद्धि और रक्षण हो?

उत्तर वह मंत्र पंच परमेष्ठी वाचक संक्षिप्त रूप में ॐ तथा विस्तार रूप में पंच नमस्कार मंत्र णमोकार मंत्र है। इसके जाप से पदस्थ धर्मध्यान की उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि और रक्षण होता है।

आकृष्टिं सुरसंपदां विदधते, मुक्ति श्रियोवश्यतां। उच्चाटं विपदां चतुर्गति भुवां विद्वेष मात्मैनसाम्।। स्तम्भं दुर्गमनं प्रति प्रयततो मोहस्य सम्मोहनम्। पायात्पंच नमस्क्रियाक्षरमयी साराधना देवता।।

पंचपरमेष्ठी वाचक अक्षर सहित णमोकार मंत्र आराधना सहित पंचपरमेष्ठी हमको पवित्र करें। इनका जाप करने से यदि अचरम शरीरी हैं तो इंद्रों की सम्पत्ति, अहमिन्द्रों की सम्पत्ति आकृष्ट होती है, प्राप्त होती है। मोक्ष लक्ष्मी वश में होती है। चारों गतियों में उत्पन्न आपदायें नष्ट हो जाती हैं। आत्मा में उत्पन्न पाप विद्वेष को प्राप्त हो जाता है, संबंध टूट जाता है। दुर्गति के गमन का स्तंभन हो जाता है, कीलित हो जाता है, रुक जाता है और मोहकर्म का सम्मोहन हो जाता है अर्थात् आराधना के पहले जो पर पदार्थों के प्रति लगाव झुकाव था अब वह नष्ट होकर अपनी ही शुद्धात्मा में लगाव झुकाव स्थिर हो जाता है।

प्रश्न— 2397 मंत्र सही है या गलत इसकी जानकारी कैसे हो?

उत्तर मुनिराज सुबुद्धि और मुनिराज नरवाहन न्याय, सिद्धान्त, व्याकरण और मंत्रशास्त्र के ज्ञाता थे, जानकार थे, लक्षण शास्त्र के भी ज्ञाता थे जो मंत्र की शुद्धि अशुद्धि की जानकारी स्वयं ने की थी उसी तरह यह मंत्र किसका है, क्या स्वरूप है इसकी भी जानकारी होना जरूरी है अन्यथा संपत्ति की जगह विपत्ति आयेगी जैसे अपनने किसी को फोन लगाया अब यदि उसका नम्बर सही, कोड नं. सही है तो अपने कार्य में सफलता मिलेगी। अन्यथा सही जानकारी न होने से कहीं का कहीं फोन चला जायेगा तो सफलता मिलेगी नहीं किन्तु मूर्खता कहलायेगी बदनामी, निंदा, गालियां और मिलेगी। इसी तरह मंत्र की अजानकारी होने से मंत्र के अर्थ का अनर्थ होगा अथवा निर्दोष आगम से, निर्दोष गुरु के माध्यम से, अभ्यास से या रत्नत्रय पूर्वक निष्पक्ष, निस्वार्थ, अहंकार, ममकार का त्याग कर स्वसंवेदन ज्ञान से जानकारी हो जाती है।

प्रश्न– 2398–99 जप किसे कहते हैं? इन मंत्रों का जाप करने को क्या कहते हैं?

उत्तर 'ज' कारो जन्मः विच्छेदः 'प' कारः पापनाशनः। तस्माज्जपः इतिप्रोक्तः जन्म पाप विनाशकम्।। ज का अर्थ जन्म और प का अर्थ पाप अर्थात् जन्म जरा मरण और पाप के नाश करने वाले को या जिसके द्वारा इनका नाश हो उसे जप कहते हैं और ऐसे बीजाक्षरों का, पंचपरमेष्ठी वाचक नामों का और नाना प्रकार के द्रव्य गुण पर्यायों का सापेक्ष ध्यान करने को, जप करने को पदस्थ धर्मध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2400–01 इस पदस्थ धर्मध्यान का साक्षात् फल क्या है? परम्परा फल क्या है?

उत्तर इस पदस्थ धर्मध्यान का साक्षात् फल संख्यातासंख्यात गुणश्रेणी पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा होना, पाप प्रकृतियों का स्थितिबंध, अनुभागबंध घटना, पुण्य प्रकृतियों के स्थितिबंध, अनुभागबंध में वृद्धि होना, परिणामों में अनन्तगुणी विशुद्धि होना, लोक में आदर सम्मान, कीर्ति, प्रशंसा, नाना पदवी प्राप्त होना, अनेकों में विश्वास पात्र होना, परिणामों में सरलता, स्वच्छता, निस्स्वार्थ, निष्कपट आदि गुणों की प्राप्ति होना साक्षात् फल है और मोक्ष की प्राप्ति यह परम्परा फल है। तत्क्षण प्राप्त होना साक्षात् फल और भविष्य में मिलना परम्परा फल है।

प्रश्न– 2402 पिण्डस्थ धर्मध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर अनन्त गुण और अनन्तानंत पर्यायों के पिण्ड स्वरूप अपनी आत्मा के चिंतन करने को पिण्डस्थ धर्मध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2403–05 शुद्धात्मा का ध्यान करना पिण्डस्थ धर्मध्यान है क्या? अशुद्धात्मा का ध्यान करना पिण्डस्थ धर्मध्यान है क्या? मिश्रात्मा का ध्यान करना पिण्डस्थ धर्मध्यान है क्या?

उत्तर पूर्ण शुद्धात्मा का ध्यान करना शुक्लध्यान है और पूर्ण अशुद्धात्मा का ध्यान आर्त रौद्रध्यान और मिश्र आत्मा का ध्यान करना धर्मध्यान है। रत्नत्रय सहित और कषायों के उदयाभाव में तथा मंदोदय अवस्था में शुद्धात्मा का, अशुद्धात्मा, मिश्रात्मा का ध्यान करना पिंडस्थ ध्यान है।

प्रश्न– 2406 वर्तमान काल में अपनी आत्मा शुद्ध है, अशुद्ध है या मिश्र रूप में है कि जिसका ध्यान किया जा सके? ?

उत्तर वर्तमान में अपनी आत्मा पूर्ण शुद्ध नहीं है जिससे शुक्लध्यान हो। यदि अपने पुरुषार्थ के द्वारा दर्शनमोह और अनन्तानुबन्धी कषाय का उपशम या क्षयोपशम हुआ है तो रत्नत्रय धर्म के साथ संयम पूर्वक होने से मिश्रावस्था है और यदि दर्शनमोह कर्म का अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय चल रहा है तो पूर्ण अशुद्ध है फिर भी अपने को अशुद्ध मानकर शुद्ध बनने के लिए सतत चिन्तन मनन और तदनुकूल आचरण करना चाहिए तथा जीवन में अन्याय और अभक्ष्य भक्षण का सेवन चल रहा है जो नियमतः मिथ्यात्व का सूचक आचरण है क्योंकि कार्य लिंगं हि कारणम् कार्य कारण का नियामक है किन्तु कारण कार्य का नियामक नहीं है। कारण के सद्भाव में कार्य

हो सकता है और नहीं भी हो सकता है। इसका कारण अभी अपनी पूर्ण अशुद्धावस्था है ऐसा विश्वास कर अशुद्धि को हटाने के लिए अंतरंग और बहिरंग से सतत सावधान रहना चाहिए।

प्रश्न– 2407 यदि अपनी आत्मा पूर्ण रूप से अशुद्ध है तो पिण्डस्थ धर्मध्यान नहीं बन सकता है क्या?

उत्तर वर्तमान काल में अपनी आत्मा पूर्ण रूप से अशुद्ध इसलिए है कि अपने जीवन में, आचरण में अन्याय, अभक्ष्य का सेवन है और व्यक्ताव्यक्त मिथ्यात्व परिणाम चला आ रहा है उसीका फल है कि देवशास्त्रगुरु की आज्ञा अपनी दिनचर्या में नहीं आ रही है और दिन प्रतिदिन अमर्यादित भोजन, अनछना पानी, मद्य, मांस और मधु से मिश्रित दवाईयां, मूत्रों से बनी दवाईयां सेवन करते हैं। वैर विरोध की कषायें, पक्षपात, पंथवाद, अध्यात्मवाद की कषायें वर्षों से चली आ रही हैं तथा विषय भोगों की वासना, संस्कार काल, विना कारण के, विना भोग साधन के मन ही मन में धधकती अग्नि के समान अनुभव में आ रही है तब पूर्ण रूप से अशुद्ध है। अतः पिण्डस्थ धर्म ध्यान नहीं बनता है क्योंकि अन्याय, अभक्ष्य के सेवन से मिथ्यात्व का होना अवश्यंभावी है। अंतरंग की मुख्यता से रत्नत्रय कारण है और अन्याय अभक्ष्य भक्षण का त्याग कार्य है तथा बाह्य की मुख्यता से अन्याय अभक्ष्य भक्षण का त्याग कारण है और उत्पन्न हुआ रत्नत्रय कार्य है।

प्रश्न– 2408 जब हमारी आत्मा पूर्ण रूप से अशुद्ध है तो पिण्डस्थ धर्मध्यान कैसे हो सकता है, इसका क्या उपाय है?

उत्तर मिथ्यात्व, अन्याय और अभक्ष्य का पूर्णरूप से त्याग कर, विषय भोगों का निष्कारण, निष्प्रयोजन याद करने का त्याग करना, याद आ जाये तो निन्दा गर्हा करके पुनः त्याग करना, वैर विरोध त्याग कर क्षमायाचना करना और पुनः उस गल्ती को दुहराना नहीं। विषय भोगों का, आरम्भ परिग्रह का समयानुसार त्याग कर फिर पिण्डस्थ धर्मध्यान का चिन्तन करना चाहिए। अन्यथा आर्तध्यान रौद्रध्यान ही होगा जो मोक्षमार्ग के प्रतिकूल है क्योंकि रत्नत्रय रूपी धर्म साधन के विना पिण्डस्थ धर्मध्यान रूपी साध्य हो नहीं सकता कारण साध्य साधन का या साधन साध्य का संबंध अविनाभाव रूप से निराबाध सभी न्यायाचार्य मानते चले आ रहे हैं।

प्रश्न– 2409–10 पिण्डस्थ धर्मध्यान कैसे हो? उदाहरण देकर समझाओ?

उत्तर मिथ्यात्व, अन्याय, अभक्ष्य को छोड़कर, ख्याति पूजा लाभ की दुर्भावना को छोड़कर, रत्नत्रय से परिणत होकर, आत्मा की मिश्रावस्था होकर आत्मा का पिण्डस्थ रूप से चिन्तन करना चाहिए, तद्रूप परिणत होना चाहिए। जैसे भोजन में अनेक पदार्थ मिले हुए हैं फिर भी जिस रस में, स्वाद में अपनी तीव्र रुचि है उसी का आनन्द आता है, शेष का नहीं क्योंकि शेष पदार्थ मिले हुए होने पर भी उपयोग के ओझल होने से अनुभव में नहीं आते। इसी तरह आत्मा में अनेक तरह के विकार होने पर भी उपयोग की धारा के अनुसार अनुभव में आते हैं। जिस विषय में चिन्तन धारा चलती है उसी का अनुभव होता है, शेष का नहीं। अब यदि अपना उपयोग अनन्त धर्मात्मक आत्मा की जिस अवस्था का चिन्तन करेगा उसका अनुभव होगा। अपना लक्ष्य शुद्ध का है या अशुद्ध का है या मिश्रावस्था का है।

प्रश्न– 2411 रूपस्थ धर्मध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर समस्त आत्माओं का ध्यान करने को अथवा समस्त पंच परमेष्ठियों की आत्माओं का चिन्तन करने को रूपस्थ धर्मध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2412 भव्य, अभव्य, सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, एकेंद्रिय आदि जीवों के स्वरूप का ध्यान करने को रूपस्थ धर्मध्यान क्यों कहा?

उत्तर जिस प्रकार घी में कुछ मिलावट न होने को शुद्ध कहते हैं यदि कुछ मिलावट कर दी जाय तो अशुद्ध कहते हैं। उसी प्रकार संसारस्थ जीवों में किसी प्रकार भी मिलावट न कर केवल एक ही चैतन्य के लक्षण स्वरूप में जीव का चिन्तन करने को, उसमें कम ज्यादा, शुद्ध और अशुद्ध का भेद न कर केवल जीव का विचार करने को रूपस्थ धर्मध्यान कहते हैं और कम ज्यादा, मेरा तेरा, अच्छा बुरा विचार करने को धर्मध्यान न कहकर आर्त रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2413 समस्त आत्माओं का अर्थ संसारस्थ चार परमेष्ठियों का ध्यान करना कहा जाय तो क्या आपत्ति है?

उ़त्तर हमें कोई आपत्ति नहीं है यह तो ध्याता का विषय है क्योंकि समस्त द्रव्य, समस्त गुण और उनकी अनन्तानंत पर्यायें ज्ञेय पदार्थ हैं, ध्येय पदार्थ हैं, ध्यान करने योग्य हैं। जैसा जिस रंग का चश्मा होगा वैसा ही दिखाई देगा अन्य तरह दिखाई नहीं देगा, वैसे ही यदि अपना मन साफ स्वच्छ विषयकषायों का त्यागी है तो किसी का भी ध्यान किया जाय तो वस्तु का ही चिन्तन होगा क्योंकि जब समस्त द्रव्य, गुण, पर्याय, गुणस्थान, मार्गणा, जीव समासों पर विश्वास करना सम्यग्दर्शन, इनको जानना सम्यग्ज्ञान कहा है तो इनके तदनुरूप स्थिर होना चारित्र है, ध्यान है इसलिए समस्त चराचर ज्ञेय पदार्थ ध्येय हैं, ध्यान करने योग्य हैं, मिलावट के योग्य नहीं। वह ध्याता चार परमेष्ठियों का ध्यान करे या समस्त संसारी जीवों का अथवा किसी भी द्रव्य गुण पर्याय का ध्यान करे। जब पृथकत्व वितर्क वीचार शुक्लध्यान में अर्थ व्यंजन और योग संक्रांति होती है तब इस रूपस्थ धर्मध्यान में समस्त द्रव्य गुण पर्यायों के चिंतन में कोई आपत्ति नहीं हैं।

प्रश्न– 2414 इस विषय पर क्या उदाहरण है?

उत्तर कोई सज्जन सदाचारी मनुष्य मानवता के साथ निर्विकार भाव पूर्वक अपने उसी हाथ से पत्नी का स्पर्श करता है, उसी हाथ से माँ का, बहिन बेटी का, चाची, मामी, नानी आदि का स्पर्श करता है पर सबके स्पर्श के परिणामों में महान अन्तर है। पत्नी के स्पर्श में भोग का, आलिंगन का परिणाम है और शेष के स्पर्श में पूज्यता का, आदर, बहुमान सम्मान का, सेवा का परिणाम होता है तभी तो लोक में सज्जन दुर्जन, सदाचारी दुराचारी का व्यवहार देखा जाता है अन्यथा समस्त सद् व्यवहारों के लोप का प्रसंग आता है और सभी पापी कहलायेंगे। इसी तरह मोक्षमार्गी समस्त आत्माओं का चिन्तन करता हुआ भी धर्मध्यानी कहलाता है, दुर्ध्यानी नहीं यही विशेषता है।

प्रश्न– 2415 पतित जीवों का ध्यान करने से मोक्षमार्ग और मोक्षमार्गी कैसे बन सकता है?

उत्तर अरे भाई वे जीव पतित हैं, विषय कषायी हैं किन्तु ध्यान ध्याता तो पतित नहीं है तथा लक्ष्य भी

शुद्ध है, शुद्ध प्राप्त करने का है इस कारण पतित जीवों का ध्यान करने से मोक्षमार्ग है, संसार मार्ग नहीं क्योंकि हेतु के अनुसार ही फल प्राप्त होता है। यही राजमार्ग है।

प्रश्न– 2416 शुद्ध का ध्यान करने से शुद्धता की प्राप्ति होती है सो यह ठीक है परन्तु अशुद्ध का ध्यान करने से शुद्ध की प्राप्ति कैसे संभव हैं?

उत्तर आपका प्रश्न सत्य है परन्तु ध्याता के लक्ष्यानुसार फल प्राप्त होता है यदि ध्याता विषयकषायी है तो शुद्ध का ध्यान करके भी अशुद्ध संसार दशा को प्राप्त होता है किन्तु मोक्षफल को नहीं पाता और ध्याता शुद्ध है, लक्ष्य शुद्ध है, चिन्तन धारा भी निर्दोष है तो शुद्ध फल पाता है।

प्रश्न– 2417 रूपातीत धर्मध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर रूप रस गन्ध स्पर्श से तथा इनके परिणामों को अनन्तकाल तक के लिए आत्म ध्यान के द्वारा समूल पृथक् कर दिये हैं, क्षय करके पूर्ण शुद्ध अवस्था को, सिद्धावस्था को प्राप्त हुए हैं ऐसे उन सिद्धों का ध्यान करने को रूपातीत धर्मध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2418 रूपातीत ध्यान में निश्चयनय से समस्त आत्माओं का ध्यान कर सकते हैं क्या?

उत्तर नहीं कर सकते हैं, क्योंकि समस्त आत्माओं का चिन्तन रूपस्थ धर्मध्यान है और इसका नाम रूपातीत है जिसका अर्थ होता है नष्ट हो गया, व्यतीत हो गया है रूप रस गन्ध स्पर्शवाला द्रव्यकर्म नोकर्म और भावकर्म जिसका वह रूपातीत कहलाता है और यह सिद्धात्मा ही हो सकती है अन्य नहीं। यदि इस नाम में अतीतपद नहीं देते तो आप का कहना सत्य हो जाता।

प्रश्न– 2419 रूपातीत धर्मध्यान में अरिहन्तों का ध्यान कर सकते हैं क्या?

उत्तर नहीं, इन अरिहन्तों का ध्यान पदस्थ धर्मध्यान में या रूपस्थ धर्मध्यान में अंतर्भाव को प्राप्त हो जाता है, रूपातीत में नहीं क्योंकि सयोगी अरिहन्तों के 82, 83, 84, 85 अघाति कर्मों की प्रकृतियां मौजूद हैं। बंध, उदय सत्त्व आश्रव बंध और अयोगी अरिहंतों के उदय सत्व चालू है, मिश्रावस्था है, अर्धनारीश्वर कहा है। अतः रूपातीत ध्यान में अरिहन्तों का ध्यान नहीं कर सकते हैं।

प्रश्न– 2420 पिण्डस्थ धर्मध्यान दूसरे नं. का है और रूपातीत धर्मध्यान चौथे नं. का है। पिण्डस्थध्यान में अपनी आत्मा का ध्यान करना बताया जो स्वार्थ रूप है किंतु चौथे ध्यान में सिद्धात्मा का ध्यान बताया जो परार्थ है अतः दूसरा श्रेष्ठ है चौथा नहीं?

उत्तर छत पर पहुंचने के पहले भूमिका रूप विचारावस्था में अपने जंघाबल का, भुजबल का सहारा लो पर छत पर पहुंचने के लिए निकटतम अवस्था में सिढ़ियों का सहारा लेना ही पड़ेगा। बिना सहारे के छत प्राप्त नहीं किया जा सकता है इसी तरह उत्कृष्ट शुक्लध्यान प्राप्त करने की भूमिका में किसी भी प्रकार का धर्मध्यान हो सो ठीक है परन्तु श्रेणी अवस्था की प्राप्ति की निकटतम अवस्था में सिद्ध भगवन्त का या सिद्ध के समान शुद्ध द्रव्य, शुद्धात्मा का आश्रय ही आगे की अवस्था को प्राप्त करायेगा क्योंकि अवलम्बन उनका है पर चिन्तन मनन ध्यान पर्याय तो स्वयं की है, लक्ष्य स्वयं का है और फल भी स्वयं को प्राप्त होगा।

प्रश्न— 2421 उपाय विचय धर्मध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर मोक्ष प्राप्ति का साधन रत्नत्रय धर्म है। यही शुद्धात्मा की प्राप्ति का साधकतम उपाय है इसी रत्नत्रय धर्म में तन्मय होकर स्थिर रहने को, इसी रत्नत्रय धर्म में परिणमन करने को उपाय विचय धर्मध्यान कहते हैं यह आरम्भ परिग्रह के त्यागी मुनियों की अपेक्षा से कहा गया है तथा गृहस्थों की अपेक्षा महान अपकारक विषयकषाय, आरम्भ परिग्रह, शृंगार अलंकार की, ख्याति पूजा लाभ की दुर्भावना से बचने के लिए, दान पूजा, व्रत, उपवास, स्वाध्याय, संयम, तप आदि में मन स्थिर करने को अथवा इन्हीं सत्कार्यों से ही हमारा संसार बंधन से छुटकारा हो सकता है अन्य से नहीं ऐसा चिंतन करने को उपायविचय धर्मध्यान कहते हैं। अर्थात् अपनी पात्रता, साधना के अनुसार मोक्ष प्राप्ति के उपाय में या उपाय के साधनों में लगना चाहिए।

प्रश्न— 2422 जीव विचय धर्मध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर चैतन्य स्वरूप, अनन्तधर्मात्मक, उपयोग लक्षण वाला जो तत्त्व है, द्रव्य है, पदार्थ है, अस्तिकाय है उसका निरन्तर चिंतन करने को, विचार करने को यहाँ शुद्ध अशुद्ध का भेद न करके केवल सामान्य रूप से चिंतन करने को जीव विचय धर्मध्यान कहते हैं।

प्रश्न— 2423 अजीव विचय धर्मध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर चैतन्य लक्षण से विपरीत स्वभाव वाले को अजीव पदार्थ कहते हैं। जैसे पुद्गलद्रव्य धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य। ये भी प्रत्येक वस्तुयें अनन्त अनन्त धर्मात्मक हैं और इनके ये अनन्त धर्म निज के स्वभाव हैं। अनादिकाल से हैं और अनन्तकाल तक रहेंगे। इनमें संकर व्यतिकर दोष नहीं आता। ये अपने निज स्वभाव को कभी नहीं छोड़ते हैं और पर के स्वभाव को ग्रहण नहीं करते हैं आदि प्रकार से सम्यग्रत्नत्रय पूर्वक चिंतन मनन करने को अजीव विचय धर्मध्यान कहते हैं।

प्रश्न— 2424 विरागविचय धर्मध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर संसार के स्वभाव का, शरीर के स्वभाव का, भोग के स्वभाव का यथावत् चिन्तन कर इनमें आकांक्षा रहित, प्रीति रहित, माध्यस्थभाव, तटस्थ भाव धारण कर अपने लक्ष्य में स्थिर होने को विराग विचय धर्मध्यान कहते हैं अथवा मोक्षमार्ग के बाहर विषय भोगों में, साधनभूत सामग्रियों में जिनका राग वीत गया है उनका चिन्तन विराग विचय धर्मध्यान कहलाता है। अर्थात् वीतरागता का चिन्तन मनन तथा वीतरागता में स्थिर होने को विरागविचय धर्मध्यान कहते हैं।

प्रश्न— 2425 भवविचय धर्मध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर जो जीव जिस भव में जिस पर्याय में है उसका उसी रूप में चिन्तन कर उसीमें स्थिर होने को भव विचय धर्मध्यान कहते हैं अथवा मोक्ष प्राप्ति का साक्षात् कारण जो भव है, अंतिम भव है उसका चिन्तन करने को भव विचय धर्मध्यान कहते हैं।

प्रश्न— 2426 पर्याय के चिन्तन को धर्मध्यान क्यों कहा? जिसे आ. श्री कुंदकुंद ने पर्यायरत जीवों को परसमय कहा है?

उत्तर यह मनुष्यभव रत्नत्रय का, मोक्ष प्राप्ति का अनन्य उपाय है इस भव के बिना और दूसरा कोई भव नहीं जो उत्कृष्ट रत्नत्रय की प्राप्ति में साधन हो उपाय हो इस कारण साध्य साधन में अभेद विवक्षा कर मनुष्य भव के चिन्तन करने को भवविचय धर्मध्यान कहा है। मनुष्य भव के अलावा शेष समस्त भव मोक्ष प्राप्ति के साक्षात् साधन उपाय नहीं। जो पर्याय को ही सर्वथा पर्यायी मानकर और पर से निरपेक्ष होकर स्थिर हो रहे हैं उनको आ. श्री कुंदकुंद ने पर्यायरत पर समय रत कहा है। अनेकान्त वादियों को नहीं, स्याद्वादियों को नहीं।

प्रश्न– 2427 कारण विचय धर्मध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर मोक्ष का कारण रत्नत्रय और रत्नत्रय का कारण देवशास्त्र गुरु के स्वरूप का निर्दोष पक्षपात रहित, निस्स्वार्थ, निष्कपट होकर चिन्तन कर स्थिर होने को कारण विचय धर्मध्यान कहते हैं।

प्रश्न– 2428 उपायविचय धर्मध्यान और कारण विचय धर्मध्यान में क्या अन्तर है?

उत्तर प्रथम उपायविचय धर्मध्यान रत्नत्रय स्वरूप है। आत्मा से अभिन्न सत्तावाला है। पूर्ण अंश वाला रत्नत्रय मोक्ष प्राप्ति का साक्षात्, अनन्य, साधकतम साधन है तथा अपूर्ण अंशवाला रत्नत्रय परम्परा साधन है। उत्पन्न होने के बाद अनन्तकाल तक साथ में रहने वाला, सादिअनंत भंग सहित है। निर्विकल्प शुक्लध्यान के लिए उपायविचय धर्मध्यान भी साक्षात् हेतु है। दूसरा कारणविचय धर्मध्यान रत्नत्रय का कारण है। भिन्न सत्तावाला है। मोक्ष प्राप्ति का साधन का साधन है। यह साधन कार्य को उत्पन्न कर हमेशा के लिए अलग हो जाता है। निर्विकल्प ध्यान का साधन है अर्थात् हेतु हेतुमद्भाव को प्राप्त हो जाता है। यह अंतर है। आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थान विचय का कथन पहले कर आये हैं अतः धर्मध्यान के 10 भेदों में उनका पुनः कथन नहीं किया। इस प्रकार अपने बलवीर्य के अनुसार इन धर्मध्यानों का चिन्तन करना चाहिए।

Note- 2356–2391 तक पीछे उक्त चार धर्मध्यानों को प्रश्नोत्तर रूप में देखकर समझना चाहिए।

प्रश्न– 2429 धर्मध्यान का साक्षात् फल और परम्परा फल क्या है?

उत्तर पूर्वबद्ध पापकर्म प्रकृतियों का स्थितिकाण्डकघात, अनुभागकाण्डकघात होना, पुण्य प्रकृतियों में स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध में वृद्धि होना, नवीन पाप प्रकृतियों का द्विस्थानीय स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध होना तथा पुण्य प्रकृतियों का चतुस्थानीय स्थितिबन्ध अनुभागबन्ध होना, लोक में प्रशंसा होना, प्रजा का आज्ञाकारी होना, सब पर प्रभाव पड़ना, अनेकों से आदर सम्मान प्राप्त होना, अनेकों का आपत्ति विपत्ति में सहायक होना, पूर्वबद्ध कर्मों की संख्यात गुण श्रेणी, असंख्यात गुण श्रेणी निर्जरा होना तथा नवीन पाप कर्मों का संवर और पुण्य कर्मों की वृद्धि होना समय प्रति समय आत्म विशुद्धि में वृद्धि होना आदि। यह अचरम शरीरी मोक्षमार्गियों को साक्षात् फल प्राप्त होता है तथा चरम शरीरियों को इन फलों की प्राप्ति के साथ साथ मोहनीय कर्म का प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंध रूप से समूल क्षय होना यह भी साक्षात् उत्कृष्ट फल है और परम्परा भी फल है। जो कर्म सिद्धांत से जाना जाता है।

प्रश्न– 2430 यह धर्मध्यान कहाँ होता है और किन जीवों के होता है?

उत्तर यह धर्मध्यान यथावस्था रूप चारों गतियों में मोक्षमार्गी, सैनी पंचेंद्रिय, पर्याप्त और निर्वृत्यपर्याप्तक जीवों के होता है। चौथे गुणस्थान से लेकर दसवें गुणस्थान तक असंयमी देशसंयमी और सकलसंयमी जीवों के होता है।

प्रश्न– 2431 यह धर्मध्यान निर्वृत्यपर्याप्तक जीवों के कैसे हो सकता है?

उत्तर जिन मुनियों ने, अव्रती, व्रती श्रावकों ने अपने बलवीर्य को न छिपाकर उत्कृष्ट पुरुषार्थ पूर्वक अथवा महामुनियों ने श्रेणी अवस्था में सल्लेखना पूर्वक समाधिमरण किया है तो उनके सौधर्म स्वर्ग से लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त अन्तर्मुहूर्त काल तक निर्वृत्यपर्याप्तकावस्था में धर्मयान होता ही है क्योंकि उत्कृष्ट समाधि मरण में दुर्ध्यान संभव नहीं है। जो अचरम शरीरी श्रेणीगत, धर्म ध्यानी, उपशान्त मोही, यथाख्यात चारित्री, शुक्लध्यानी जब कालक्षय से अथवा चारित्रमोहनीय कर्मोदय से क्रमशः गुणस्थानानुसार प्रतिपात कर समाधि मरण को प्राप्त हुए अथवा आयुकर्म के क्षय से प्रतिपात को प्राप्त होते हैं तो उस समय धर्मध्यान, शुक्लध्यान पर्याय का व्यय, उपशांत गुणस्थान का व्यय तथा अविरत गुणस्थान के अनुसार धर्मध्यान का उत्पाद, अविरत असंयमपने का उत्पाद ये दोनों उत्पाद और व्यय पर्यायें एक ही समय में होती है। इस कारण एक समय के लिए देवों की निर्वृत्यपर्याय में धर्मध्यान और शुक्लध्यान का अस्तित्व स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है। इसी दृष्टि से चौथे गुणस्थान में द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन का अस्तित्व स्वीकार किया है अथवा कर्मभूमिज आर्य मनुष्यायु का व्यय और देवायु का या भोगभूमिज आयु का उत्पाद इन दोनों आयु की पर्यायों का समय एक ही है। इस दृष्टि से भी धर्मध्यान का अस्तित्व चौथे गुणस्थान की निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्था में धर्मध्यान बन जाता है

प्रश्न– 2432 चरमशरीरी मुनियों का भी यथाख्यात संयम तथा यथाख्यातचारित्र और शुक्लध्यान सप्रतिपात हो सकता है क्या?

उत्तर हाँ अवश्य हो सकता है, उनका प्रतिपात मिथ्यात्व गुणस्थान में असंयम सहित नहीं होता है किन्तु यदि चरम शरीरी क्षायिक सम्यग्दृष्टि मुनि ने उपशमश्रेणी आरोहण की है तो यथाख्यात संयम, चारित्र तथा शुक्लध्यान छूटकर चौथे गुणस्थान तक नीचे आ सकते हैं और पुनः करण कर अन्तर्मुहूर्त में या अपने आयुकाल के जीवन में किसी भी समय क्षपकश्रेणी आरोहण कर अब अप्रतिपात अवस्था को प्राप्तकर सिद्ध पद प्राप्त कर लेते हैं अथवा चरमशरीरी हैं और उपशम सम्यक्त्व पूर्वक मुनि बनकर कदाचित् उपशम श्रेणी आरोहण की उपशान्त गुणस्थान में पहुंचकर, यथाख्यात संयम, चारित्र और पृथक्त्ववितर्क, एकत्ववितर्क शुक्लध्यान को प्राप्त कर अन्तर्मुहूर्त काल तक अवस्थित, मणिप्रभा के समान परिणामों में स्थिर रहकर, उपशान्त गुणस्थान का काल पूरा कर क्रमशः पतन करते हुए, अधः पतन करते हुए मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त कर, अन्तर्मुहूर्त ठहरकर पुनः करण पूर्वक क्षायिक सम्यग्दर्शन सहित संयम प्राप्त कर, क्षपक श्रेणी आरोहण कर सकते हैं अथवा श्री आदिनाथजी के साथ में चार हजार राजाओं ने दीक्षा ली थी परंतु तप को निभाने में असमर्थ हो पद छोड़ कर गृहस्थ जीवन स्वीकार कर पुनः उसी भव के कालातंर में मुनिदीक्षा लेकर मोक्ष में जाने के लिए केवल अन्तर्मुहूर्त काल शेष बचा है तब करण परिणामों

को प्राप्त कर संयम सहित अप्रमत्त गुणस्थान को पाकर फिर प्रमत्ताप्रमत्त गुणस्थान में हजारों वार परिवर्तन कर क्षायिक सम्यग्दृष्टि होकर क्षपकश्रेणी आरोहण कर मोक्ष प्राप्त कर लिया।

प्रश्न– 2433 यह धर्मध्यान अवसर्पिणी काल के छहों कालों में होता है या कुछ विशेषता है या सभी क्षेत्रों में, सभी कालों में होता है?

उत्तर भरत क्षेत्र और ऐरावत क्षेत्र में अवसर्पिणी काल के पंचमकाल के अंतिम तीन वर्ष और साढे छह माह शेष रहने पर, छठवाँ काल और उत्सर्पिणी काल के प्रारम्भ से छठवाँ काल तथा पंचम काल के 20 हजार वर्ष तक धर्मध्यान का अभाव होगा, शेष कालों में यथासंभव धर्म और धर्मध्यान भी होगा अथवा चारों गतियों की अपेक्षा छहों कालों में धर्मध्यान संभव है। जैसे सभी नरकों में एकमात्र दुषमादुषमा नामक छठवाँ काल अवस्थित है। वहाँ जो सम्यग्दृष्टि नारकी और तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले सम्यग्दृष्टि नारकी कृतिकर्म सहित धर्मध्यान करते हैं। सभी चतुर्निकाय देवों में हमेशा सुषमासुषमा नाम का पहला काल होता है ये भी अपनी अपनी पर्यायानुसार कृतिकर्म सहित धर्मध्यान करते हैं तथा भोगभूमियों में भी जो उत्तम भोगभूमि देवकुरु उत्तरकुरु में पहला काल, मध्यम भोगभूमि हरिक्षेत्र रम्यक क्षेत्र में दूसरा काल, जघन्य भोगभूमि हैमवत क्षेत्र और हैरण्यवत क्षेत्र में तीसरा काल सदा विद्यमान है। भरतक्षेत्र और ऐरावत क्षेत्र में इन सभी स्थानों में जो सम्यग्दृष्टि हैं वे अपनी अपनी योग्यतानुसार धर्मध्यान करते हैं।

प्रश्न– 2434 योग्यता किसे कहते हैं?

उत्तर आवरण कर्म और वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम होने पर जो आत्मा में जानने की, समझने की, जानकर समझकर धारण करने की शक्ति को और धारण करके प्रसंग आने पर भी कषायोद्रेक न होने को योग्यता कहते हैं अथवा कार्य रूप में परिणमन करने की शक्ति को योग्यता कहते हैं। यह योग्यता चारों गतियों के समस्त शरीरधारी प्राणियों में पायी जाती है। इस कारण सभी कालों में और सभी क्षेत्रों में धर्मध्यान पाया जाता है किंतु मलेच्छ खंडों में, मलेच्छाचरण वालों के धर्मध्यान नहीं पाया जाता क्योंकि वहाँ रत्नत्रय और रत्नत्रय का साधन देवशास्त्रगुरु का सद्भाव नहीं है, मोक्षमार्ग नहीं तो मोक्षमार्ग का साधन धर्मध्यान नहीं होता है इतना निश्चित है अथवा समुद्घातापेक्षया सभी क्षेत्रों में, सभी कालों में धर्मध्यान होता है।

प्रश्न– 2435–36 शुक्लध्यान किसे कहते हैं? स्वामी कौन हैं?

उत्तर मोहनीय कर्म का समूल क्षय या उपशम होने पर शुद्ध स्फटिक के समान निर्मल कर्मों को समूल छेदने में समर्थ, मोक्ष प्राप्त कराने में समर्थ, कारण समस्त ज्ञेय हेय और उपादेय तत्त्वों में समग्र रूप से या एक रूप में चिन्तन, मननकर किसी एक विषय में स्थिर होने को शुक्लध्यान कहते हैं। चरमशरीरी और अचरम शरीरी निकट भव्य मुनियों के होता है अतः ये स्वामी हैं।

प्रश्न– 2437 शुक्लध्यान का काल कितना है?

उत्तर शुक्लध्यान का सामान्यतया अन्तर्मुहूर्तकाल है और विशेषतः एकत्व अवितर्क शुक्लध्यान का तेरहवें गुणस्थान में आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त काल कम एक पूर्वकोटि है शेष समस्त शुक्लध्यानों का पृथक् पृथक् और समुच्चय रूप में भी अन्तर्मुहूर्त काल है।

प्रश्न— 2438 शुक्लध्यान का विषय क्या है?

उत्तर छह द्रव्य हैं अथवा मिश्र द्रव्य की अपेक्षा 7 हैं। चाहे वे शुद्ध हों या अशुद्ध उनके अनन्तगुण और अनन्तानन्त पर्यायें हैं तथा स्वयं की आत्मा भी शुक्लध्यान का विषय है।

प्रश्न— 2439—40 शुक्लध्यान के भेद कितने हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर शुक्लध्यान के चार भेद हैं अथवा पाँच भेद हैं। पृथक्त्ववितर्कशुक्लध्यान, एकत्ववितर्कशुक्लध्यान, सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाती शुक्लध्यान, व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान ये चार नाम हैं अथवा पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान, एकत्ववितर्क शुक्लध्यान, एकत्व अवितर्क शुक्लध्यान, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती शुक्लध्यान व्युपरतक्रिया निवृत्ति शुक्लध्यान ये पाँच नाम हैं।

प्रश्न— 2441 पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर श्रुतज्ञान के द्वारा छहों द्रव्यों का, गुणों का और पर्यायों का, वचनों के द्वारा योग परिवर्तन पूर्वक अलग अलग चिन्तन करने को अर्थात् छहों द्रव्यों में से कभी जीवद्रव्य का तो कभी पुद्गल द्रव्य का तो कभी धर्मद्रव्य आदि का परिवर्तन सहित चिन्तन करना, अनन्त पर्यायों को बदल बदल कर चिन्तन करना, वचनों के परिवर्तन सहित, योगों के परिवर्तन सहित चिन्तन को पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान कहते हैं।

प्रश्न— 2442—44 वीचार किसे कहते हैं? वितर्क किसे कहते हैं? पृथक्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर परिवर्तन को, बदलने को वीचार कहते हैं। श्रुतज्ञान को वितर्क कहते हैं। अलग अलग करने को, होने को तथा रहने को पृथक्त्व कहते हैं।

प्रश्न— 2445 अर्थ संक्रान्ति किसे कहते हैं?

उत्तर अपने क्षयोपशमानुसार जब जीव की नाना अवस्थाओं का, नाना गुणों का चिन्तन पूर्ण हो गया तब उसने किसी दूसरे अजीव द्रव्य का तथा अजीव द्रव्य की नाना अवस्थाओं का चिन्तन प्रारम्भ किया इसे ही अर्थ संक्रान्ति कहते हैं।

प्रश्न— 2446 व्यंजन संक्रान्ति किसे कहते हैं?

उत्तर प्रत्येक स्वर या व्यंजन पर्याय अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद शक्ति से युक्त हैं परन्तु अपने क्षयोपशमानुसार किसी स्वर, व्यंजन का, पद, गाथा का चिन्तन करते हुए पूर्ण हो गया तब दूसरे स्वर व्यंजन का सहारा लिया फिर तीसरे का सहारा लिया इसको व्यंजन संक्रान्ति कहते हैं।

प्रश्न— 2447—48 स्वर किसे कहते हैं? व्यंजन किसे कहते हैं?

उत्तर जो पर निरपेक्ष होकर स्वयं शोभायमान हो विना किसी की सहायता के अपना भाव, अपनी शक्ति का परिचय देने में समर्थ हो, स्वयं स्वतंत्र हों उन्हें स्वर कहते हैं। जो अपना अर्थ बताने में परतंत्र हो, स्वर की अपेक्षा रखता हो, स्वर के साथ ही अपना अर्थ प्रकाशित करने में समर्थ हो उन्हें व्यंजन कहते हैं अथवा शरीरधारी प्राणी मनुष्य तिर्यंच देव नारकी प्राणी अपने आन्तरिक विचारों को सुख दुःख, पुण्य पाप, धर्म अधर्म, संसारमार्ग मोक्षमार्ग आदि को समझाने के लिए जिन संकेतों

का आश्रय सहारा लेता है उसे स्वर व्यंजन कहते हैं।

प्रश्न– 2449 ॐ कार क्या स्वर है या व्यंजन?

उत्तर ॐ कार स्वतंत्र रूप से न स्वर है और न व्यंजन क्योंकि स्वर और व्यंजनों में इस ॐ कार का पाठ नहीं पढ़ा जाता है फिर भी समस्त स्वर व्यंजनों को, समस्त द्वादशांगवाणी को, समस्त द्रव्य, तत्त्व, पदार्थ, अस्तिकायों को, देवशास्त्रगुरु को, पंच परमेष्ठियों को संजोये हुए है। अनंतानंत भावों को अपने आप में भरे हुए है, हाथी के पैर के समान विशाल अनन्त शक्ति सम्पन्न है।

प्रश्न– 2450 ॐ कार पद में क्या क्या अर्थ सन्निहित है?

उत्तर 1. पंचपरमेष्ठी – अरिहन्त का अ + अशरीरी सिद्ध का अ + आचार्य का आ + उपाध्याय का उ + मुनि का म्।

अ + अ + आ + उ + म् = ॐ

2. देव शास्त्र गुरु = आप्त आ + उन्मार्गध्वंसक शास्त्र उ + महाराज मुनि गुरु म्

आ + उ + म् = ॐ

3. ब्रह्मा विष्णु महेश = ब्रह्मा आप्त आत्मा + विष्णु उरगपति + महेश

आ + उ + म् = ॐ

4. 7 तत्त्व = जीव आत्मा + अजीव + आश्रव + संवर अनाश्रव + उपस्थितिबंध = निर्जरा उत्सरण निर्जरा + मोक्ष

आ + अ + आ + अ + उ + उ = ऊ + म् = ॐ

5. छह द्रव्य = जीव आत्मा + अजीव पुद्गल + अधर्मद्रव्य + आकाश द्रव्य + धर्मद्रव्य उद्गमन उत्पतन + काल मरण

आ + अ + अ + आ + उ + म् = ॐ

6. काल = भूतकाल अतीतकाल + भावीकाल उदय + वर्तमान मौजूद

अ + उ + म् = ॐ

7. 3 लोक = अधोलोक + उर्ध्वलोक + मध्यलोक

अ + उ + म् = ॐ

8. इस्लाम धर्म में अल्ला + फरिश्ता उज्ज्वल + मोहम्मद

अल्ला अर्थात् सिद्धात्मा शुद्धात्मा + फरिश्ता उज्जवल अर्थात् ज्ञान + मोहम्मद मुनि या चारित्र अर्थात् देव शास्त्र गुरु या रत्नत्रय।

अ + उ + म् = ॐ

9.आप्त का दिव्य उपदेश दिव्य ध्वनि सर्वभाषामय = ॐ

10. रत्नत्रय आत्मानुभूति सम्यग्दर्शन + उद्योतन ज्ञान + चारित्र मनस्थिरता

आ + उ + म् = ॐ

11. 3 संख्या = अनुत्कृष्ट या अधोः संख्या जघन्य संख्या + उत्कृष्ट संख्या + मध्यम संख्या

अ + उ + म् = ॐ

12. 3 हास्य या आनन्द = अनुत्तम जघन्य हास्य या आनंद + उत्तम हास्य या आनंद + मध्यम हास्य आनंद

अ + उ + म् = ॐ

13. आयु काल = अपरा जघन्य आयु जीवनकाल + परा उत्कृष्ट जीवन काल + मध्यम आयु

अ + उ + म् = ॐ

इस ॐ की सिद्धि के लिए थोड़ा व्याकरण का सहारा लेना चाहिए।

दीर्घसन्धि = समानः सवर्णे दीर्घी भवति परश्च लोपम् = अ + अ, आ + अ, अ + आ, आ + आ = आ। स्वर्ण संज्ञा चार प्रकार से कही जाती है।

उ + उ, ऊ + उ, ऊ + ऊ, + उ + ऊ = ऊ। सवर्ण परे होने पर समान संज्ञक दीर्घ होता है तथा पर स्वर का लोप होता है गुण सन्धि = उवर्णे परे अवर्ण ओ र्भवति परश्च लोपम् = उ वर्ण परे होने पर अवर्ण का ओ हो जाता है तथा पर का लोप होता है। अ + उ या आ + ऊ = ओ हो जाता है। विरामे वा – विराम होने पर पदान्त मकार के स्थान पर विकल्प से अनुस्वार होता है तथा मकार भी होता है = ॐ अथवा ओम् या ऊँ इस प्रकार रूप बनता है।

प्रश्न– 2451–53 योग किसे कहते हैं? योग के कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर आत्म प्रदेशों में कम्पन परिस्पन्दन होने को योग कहते हैं। योग के तीन भेद हैं। मनोयोग वचनयोग और काययोग।

प्रश्न– 2453–1 योगसंक्रान्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर मन वचन और काय योग के परस्पर में परिवर्तन होने को योग संक्रान्ति कहते हैं।

प्रश्न– 2454–55 इन तीनों योगों का द्रव्य और भावरूप पृथक्[2] क्या लक्षण है?

उत्तर मन के द्वारा आत्मा के प्रदेशों में परिस्पन्दन होने को मनोयोग कहते हैं। वचन के द्वारा आत्म प्रदेशों में परिस्पन्दन होने को वचन योग कहते हैं। काय के द्वारा आत्मा के प्रदेशों में परिस्पन्दन होने को काययोग कहते हैं। आत्मप्रदेशों में कंपन होना भाव योग और मनो वर्गणा, भाषा वर्गणा और काय वर्गणाओं में कंपन होना द्रव्य योग है।

प्रश्न– 2456 इन तीनों योगों के स्वामी कौन जीव हैं?

उत्तर गुणस्थानों की अपेक्षा ये तीनों योग पहले से तेरहवें गुणस्थान पर्यन्त होते हैं। इंद्रिय की अपेक्षा एकेंद्रिय जीवों से लेकर पंचेंद्रिय तक काय योग होता है। द्वीद्रिय जीवों से लेकर पंचेंद्रिय पर्यन्त वचन योग होता है तथा सैनी पंचेंद्रिय जीवों के मनयोग होता है। ये तीनों योग पर्याप्तक जीवों के होते हैं किन्तु अपर्याप्तक जीवों के एक काय योग होता है तथा शेष सूक्ष्म कथन धवला आदि ग्रन्थों से समझना चाहिए।

प्रश्न– 2457 पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान के स्वामी कौन हैं?

उत्तर आदि के तीन उत्तम संहनन वाले, उपशम श्रेणी वाले अचरमशरीरी, चरम शरीरी क्षपक श्रेणी

वाले महामुनि स्वामी है।

प्रश्न– 2458–59 पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान का प्रतिपात होता है या नहीं? अप्रतिपात होता है या नहीं?

उत्तर क्षायिक सम्यग्दृष्टि अचरम शरीरी उपशम श्रेणी आरोहण करने वालों का, उपशम सम्यग्दृष्टि उपशम श्रेणी आरोहण करने वाले ऐसे अचरमशरीरी, उपशम सम्यग्दृष्टि चरमशरीरी उपशम श्रेणी आरोहण करने वाले, चरम शरीरी क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशम श्रेणी आरोहण करने वालों का पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान का प्रतिपात होता है और क्षायिक सम्यग्दृष्टि चरमशरीरी क्षपक श्रेणी आरोहण करने वाले वज्रवृषभनाराच संहनन के उदय से सहित मुनियों का पृथक्त्व वितर्क शुक्ल ध्यान अप्रतिपाती होता है। अर्थात् क्षपक श्रेणी वालों का प्रतिपात नहीं होता है किन्तु उपशम श्रेणीवालों का नियम से प्रतिपात होता है। चरमशरीरी महामुनि दोनों प्रकार की उपशम श्रेणी और क्षपकश्रेणी आरोहण कर सकते हैं किन्तु अचरमशरीरी एकमात्र उपशमश्रेणी ही आरोहण करते हैं। क्षायिक सम्यग्दृष्टि दोनों प्रकार की उपशमश्रेणी और क्षपकश्रेणी आरोहण कर सकते हैं किन्तु उपशम सम्यग्दृष्टि एकमात्र उपशम श्रेणी आरोहण करते हैं। आर्यखण्ड के मनुष्य मनुष्यनी ही उभय श्रेणी आरोहण करते हैं। मलेच्छखण्ड के मनुष्य मनुष्यनी उभयश्रेणी आरोहण नहीं करते क्योंकि इनके इस प्रकार के भाव ही पैदा नहीं होते।

प्रश्न– 2460–61 चरमशरीर किसे कहते हैं? चरम शरीरी किसे कहते हैं?

उत्तर जिस शरीर से उसी भव में मोक्ष की प्राप्ति होती है। संसार की अंतिम पर्याय और अंतिमभव है पुनः नवीन माँ बाप नहीं बनाना, न माँ के गर्भ में वास करना है, न जन्म के बाल्यकाल के कष्ट उठाना है, उसी भव से मोक्ष प्राप्त करना है उसे चरमशरीर कहते हैं। यह अवस्था एकमात्र आर्यखण्डोत्पन्न, उत्तमकुल, उत्तम जाति, उत्तम गोत्री मनुष्यों को प्राप्त होती है ऐसे औदारिक शरीर को ही चरमशरीर कहते हैं और ऐसे शरीर से युक्त आत्मा को चरमशरीरी कहते हैं। औदारिक शरीर, गर्भजन्मवाला, सचित्त, मिश्रयोनि से उत्पन्न आर्यखण्ड में उत्तम त्री वर्ण वाले मनुष्य मनुष्यनी को ही चरमशरीरपना प्राप्त होता है।

प्रश्न– 2462–63 प्रतिपात किसे कहते हैं? अप्रतिपात किसे कहते हैं?

उत्तर केवल छूटने का नाम या छोड़ने का नाम प्रतिपात नहीं है क्योंकि ऊपर की अगली अगली अवस्था को प्राप्त करने के लिए भी छोड़ा जाता है जैसे मुनि पद के लिए गृहस्थ पद छोड़ा, मुक्तिपद के लिए संसार का पद छोड़ा इस कारण छूटने का छोड़ने का नाम प्रतिपात नहीं किन्तु छोड़कर नीचे गिरने का नाम प्रतिपात है और ऊपर उठना, आगे बढ़ना, उत्कृष्ट पद पाना, प्राप्त करना इसका नाम उत्थान है। प्राप्त होने के बाद जो कभी भी छूटे नहीं, अनंतानंत काल तक एक जैसा बना रहे अथवा वर्तमान भव की अपेक्षा इस भव के अंतिम क्षण तक न छूटे उसे भी अप्रतिपात कहते हैं।

प्रश्न– 2464 मनुष्य को केवलज्ञान होता है यह समझ में आया किन्तु मनुष्यनी को भी केवलज्ञान की, मोक्ष की प्राप्ति होती है सो यह कैसे?

उत्तर जीव विपाकी गतिनामकर्म प्रधान है, गति की अपेक्षा से कहा है। द्रव्यवेद की अपेक्षा, शरीर की रचना की अपेक्षा से नहीं कहा है अतः भावमनुष्यनी समझना, दूसरी बात यह है कि गतिनामकर्मोदय चौदहवें गुणस्थान तक होता है जबकी भाव वेदकर्म का क्षय नौवें गुणस्थान में हो जाता है इसलिए भाव मनुष्यनी को सभी गुणस्थान, सभी अवस्थायें प्राप्त हो सकती हैं ऐसा मानने में, स्वीकार करने में कोई विरोध नहीं है अन्यथा श्वेताम्बर मत का प्रसंग आता हैं।

प्रश्न— 2465 इस पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान में कितने योग होते हैं? कम से कम और ज्यादा से ज्यादा कितने ज्ञान हो सकते हैं?

उत्तर इस पृथक्त्व वितर्क शुक्लध्यान में मनोयोग वचनयोग काययोग ये तीनों योग पाये जाते हैं और इस ध्यान में शक्तिरूप से आठों ज्ञान पाये जाते हैं क्योंकि अभी इसमें सभी ज्ञानरूप से परिणमन करने की योग्यता मौजूद है। लब्धिरूप में किन्हीं के मतिज्ञान श्रुतज्ञान, किन्ही के मतिज्ञान श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान अथवा मतिज्ञान श्रुतज्ञान और मनः पर्यय ज्ञान ये तीन ज्ञान, मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान ये चार ज्ञान लब्धिरूप में हो सकते हैं तथा एकमात्र श्रुतज्ञान या मतिज्ञान श्रुतज्ञान उपयोग रूप में होते हैं और बारहवें गुणस्थान में श्रुतज्ञान के पूर्ण होने पर केवलज्ञान होता है।

प्रश्न— 2466 इस ध्यान में क्या और किसका चिन्तन किया जाता है?

उत्तर इस ध्यान में प्रत्येक द्रव्य गुण पर्याय का, गुणस्थान आदि का अलग अलग चिन्तन मनन किया जाता है। स्थूल विकल्प नहीं होते हैं किन्तु सूक्ष्म विकल्प होते हैं।

प्रश्न— 2467 इस ध्यान का क्या फल है?

उत्तर आ. श्री वीरसेन स्वामी ने ध.13 में इस पृथक्त्वविर्तक शुक्लध्यान से किसी भी कर्म प्रकृति का समूल क्षय नहीं होता है किन्तु प्रतिसमय अनन्तगुणी शुद्धि विशुद्धि से वृद्धिंगत होते हुए असंख्यातगुणी कर्मों की निर्जरा करते हैं धर्मध्यान से मोहनीय कर्म का क्षय होता है किन्तु अन्य सभी त्यागियों ने एकमात्र इस शुक्लध्यान के द्वारा मोहनीय कर्म का समूल क्षय होता है ऐसा कहा है सो यह अभिप्राय नय विवक्षा हैं, मत भेद नहीं हैं।

प्रश्न— 2468 मोहनीय कर्म का क्षय किससे होता है?

उत्तर मोहनीय कर्म का क्षय धर्मध्यान से होता है और यह परिणाम दसवें गुणस्थान सूक्ष्म साम्पराय नाम के अंत में होता है। इसी परिणाम को आचार्य श्रीवीरसेन स्वामी ने धर्मध्यान नाम से कहा है और शेष आचार्यों ने इसी परिणाम को शुक्लध्यान नाम से कहा है अर्थात् एक ही परिणाम को दो नामों से पुकारा है अतः मतभेद नहीं है किन्तु नय विवक्षा, भेद विवक्षा हैं। आ. श्री वीरसेन स्वामी का कथन वर्तमान नय से समझना चाहिए और शेष आचार्यों के कथन को भावीनय से समझना चाहिए। अतः दोनों कथन व्यवस्थित हैं, निर्दोष हैं।

प्रश्न— 2469 अन्यत्व भावना और पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान में क्या अन्तर है?

उत्तर भावना और ध्यान में विषय की अपेक्षा से कोई अन्तर नहीं है क्योंकि दोनों को भेद विज्ञान के बल पर विषय का, आत्मा का और शरीर का तथा विकार का विभाजन कर अलग अलग कर

पृथक् पृथक् कर चिन्तन करना है। भावना परिवर्तन सहित विकल्पात्मक है और ध्यान स्वस्थान परिवर्तन सहित स्थूल होता हुआ भी स्थिरात्मक है कारण परिवर्तन होना पलटना भावना है और स्थिर होना ध्यान है। अन्यत्व भावना कषाय सहित प्रमादियों के चारों गतियों के मनुष्य, तिर्यंच, देव और नारकियों के तथा सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि, भव्य अभव्य, सैनी पंचेन्द्रियों के होती है और पृथक्त्व वितर्क शुक्लध्यान अकषायी वीतरागियों के होता है यह भी अन्तर है।

प्रश्न– 2470 इस पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान का विषय क्या है कि जिसका मुनि ध्यान करते हैं?

उत्तर इस पृथक्त्व वितर्क शुक्लध्यान का विषय स्वयं की आत्मा, पंचपरमेष्ठी, छहों द्रव्य, सात तत्त्व, नव पदार्थ, पंचास्तिकाय, द्रव्य, गुण, पर्याय, गुणस्थान, मार्गणा, जीवसमास आदि समस्त शुद्ध अशुद्ध ज्ञेय पदार्थ हैं। जिनका उत्तम संहनन वाले, चरम अचरम शरीरी चिन्तन करते हैं।

प्रश्न– 2471 अचेतन द्रव्यों का चिन्तन करने से कर्मों का क्षय या निर्जरा कैसे हो सकती है?

उत्तर अचेतन पुद्गल आदि द्रव्यों से निर्जरा नहीं होती है किन्तु उपयोग की चंचलता और कषायों के अभाव से निर्जरा होती है हो रही है जैसे अग्नि का कार्य जलाना, तपाना, प्रकाश करना, पकाना आदि है, ईंधन का नहीं। यद्यपि अग्नि ईंधन से उत्पन्न होती है फिर भी वह कार्य ईंधन का नहीं, अग्नि का है। यदि ईंधन का माना जाय तो घर में रखा गया ईंधन घर को ही जला देगा, पका देगा पर ऐसा होता नहीं है, न देखा गया है। इसी तरह ध्यानाग्नि से ही कर्मक्षय होते हैं न कि पुद्गलादि से, भले ही वह ध्यान का विषय ध्याता ने बनाया हो, आधार आधेय को अभेदकर या निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध को देखकर बिना क्रिया के भी निर्जरा होती है, कर्मों का क्षय होता है। यदि इस सम्बन्ध को नकारा जाय तो "अधिकरणं जीवाजीवाः" इस सूत्र को भी नकार करना पड़ेगा। आश्रवबन्ध का आधार जीव और अजीव है तो संवर निर्जरा का कारण भी जीव और अजीव है। केवल नय विवक्षा को समझना है तो ही मोक्षमार्ग है, अन्यथा नहीं।

प्रश्न– 2472–73 एकत्ववितर्क शुक्लध्यान किसे कहते हैं? उदाहरण सहित समझाओ?

उत्तर जो पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान का कथन किया है या चिन्तन चल रहा था उस द्रव्य, गुण, पर्याय, गुणस्थान, मार्गणाओं की अंतिम अवस्था में मणिप्रभा के समान स्थिर होना ही एकत्ववितर्क शुक्ल ध्यान है। जैसे दीपक की ज्योति स्थिर न रहकर हिलती, डुलती रहती है किन्तु मणिप्रभा किसी भी कारण से चलायमान नहीं होती है इसी तरह पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान अर्थ व्यजंन और योगों की संक्रान्ति के द्वारा अस्थिर रहता है, परिवर्तन सहित है किन्तु एकत्ववितर्क शुक्लध्यान मणिप्रभा के समान निश्चल, निष्कलंक, एक ही विषय में स्थिर रहता है।

प्रश्न– 2474 एकत्ववितर्क शुक्लध्यान वालों के कौनसा संहनन होता है।

उत्तर एकत्ववितर्क शुक्लध्यान वालों के यदि क्षायिक सम्यग्दृष्टि, चरमशरीरी, क्षपकश्रेणी आरोहण करने वालों के एकमात्र वज्रवृषभ नाराच संहनन होता है किन्तु अचरमशरीरी क्षायिक सम्यग्दृष्टि या उपशमसम्यक्दृष्टि वालों ने जो उपशमसम्यग्श्रेणी आरोहण कर उपशान्तमोह ग्यारहवें गुणस्थान

में प्रवेश कर अवस्थित स्थिर शुक्लध्यान को प्राप्त किया है तो उस शुक्लध्यान का नाम एकत्ववितर्क है और उपशमश्रेणी तीन संहनन वाले वज्रवृषभनाराच संहनन, वज्रनाराच संहनन, नाराचसंहनन वाले आरोहण करते हैं।

प्रश्न– 2475 एकत्ववितर्क शुक्लध्यान प्रतिपाती है या अप्रतिपाती?

उत्तर चरमशरीरी क्षायिक सम्यग्दृष्टि क्षपकश्रेणीआरोहण करने वालों का एकत्ववितर्क शुक्लध्यान अप्रतिपाती है तथा अचरमशरीरी या चरमशरीरी उपशमश्रेणी में उपशान्तमोह गुणस्थान वालों का एकत्ववितर्क शुक्लध्यान प्रतिपाती है छूट जाता है।

प्रश्न– 2476 एकत्ववितर्क शुक्लध्यान का काल कितना है?

उत्तर पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान का जितना काल है उससे कम एकत्ववितर्क शुक्लध्यान का काल है फिर भी अन्तर्मुहूर्त है।

प्रश्न– 2477 एकत्ववितर्क शुक्लध्यान वालों के जघन्य और उत्कृष्ट ज्ञान कितना होता है?

उत्तर एकत्ववितर्क शुक्लध्यान वालों के उत्कृष्ट ज्ञान ग्यारह अंग नौ पूर्व, दस पूर्व या पूर्ण द्वादशांग का ज्ञान होता है तथा जघन्य ज्ञान अष्ट प्रवचन माता पाँच समिति और तीन गुप्तियों का प्रयोग रूप में होता है क्योंकि गुप्तियों से आत्म स्थिरता होती है तथा जब स्थिर नहीं रह पाता तो चर्या समिति पूर्वक करता है, मध्यम कितना भी हो सकता है। उत्कृष्ट ज्ञान द्वादशांग का तथा जघन्य ज्ञान अष्ट प्रवचन माता का है तथा श्रेणी आरोहण करने के प्रारंभ में इतना ज्ञान होता है किन्तु आरोहण करते ही कर्म पटल प्रति समय प्रति समय में असंख्यात गुण श्रेणीरूप से नष्ट होते जाते हैं तब जैसे जैसे कर्मांश क्षय होते जाते हैं वैसे वैसे ज्ञान भी उद्घाटित होता जाता है और 12वें गुणस्थान में पूर्ण द्वादशांग का ज्ञान हो जाता है तब केवल ज्ञान उत्पन्न होता है क्योंकि पूर्णता से ही पूर्णता की प्राप्ती होती है।

प्रश्न– 2478 पृथक्त्व वितर्क शुक्लध्यान और एकत्व वितर्क शुक्लध्यान किस क्षेत्र के मुनियों के होता है?

उत्तर कर्मभूमिज आर्यखण्ड वाले मुनियों के होते हैं मलेच्छखण्ड के जन्मे या मलेच्छ कन्याओं से जन्मे शरीरधारी मुनियों के नहीं होते हैं।

प्रश्न– 2479 इस एकत्ववितर्क शुक्लध्यान में संक्रान्ति परिवर्तन होता है या नहीं?

उत्तर इस ध्यान में परिवर्तन नहीं होता है अर्थात् यहाँ परस्थान परिवर्तन नहीं होता है किन्तु स्वस्थान परिवर्तन होता है। जिस प्रकार पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान में द्रव्य से द्रव्यान्तर, गुण से गुणान्तर, पर्याय से पर्यायान्तर, व्यजंन से व्यंजनान्तर, योग से योगान्तर परिवर्तन होता है क्योंकि द्रव्य गुण पर्याय परिवर्तनशील है, अविभाग प्रतिच्छेद शक्त्यंश है, षट्गुण वृद्धि हानि होती है। इस कारण एकत्ववितर्क शुक्लध्यान में स्वस्थान परिवर्तन होता है, परस्थान परिवर्तन नहीं होता है। अवीचारं द्वितीयम्। एकत्ववितर्क शुक्लध्यान में वीचार नहीं होता है।

प्रश्न— 2480 इस ध्यान में योग कौन सा होता है?

उत्तर पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान के अंतिम क्षण में जो योग होगा वही योग स्थिर रूप में एकत्ववितर्क शुक्लध्यान में होता है।

प्रश्न— 2481 इस ध्यान में एक योग होता है तो उसका क्या नाम है बताओ?

उत्तर नाना जीवों की अपेक्षा तीनों योग होते हैं किसी के मनोयोग होगा, किसी के वचनयोग और किसी के काययोग होता है इसलिए सयोगकेवली के दो मनोयोग, दो वचनयोग और तीन काययोग ये 7 योग तेरहवें गुणस्थान में नाना जीवों की अपेक्षा बताये हैं परन्तु एक जीव की अपेक्षा से एक ही योग होगा वह कोई भी योग हो सकता है अर्थात् पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान के अंतिम क्षण में जो योग है वही योग सम्पूर्ण एकत्ववितर्क या एकत्वअवितर्क शुक्लध्यान के काल में सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातीध्यान के पहले तक होता है परन्तु बाद में सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती ध्यान के प्रारम्भ होते ही काययोग होता है, शेष दो नहीं।

प्रश्न— 2482 इस एकत्ववितर्क शुक्लध्यान का विषय क्या है?

उत्तर पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान के अंतिम क्षण में जो अंतिम विषय चल रहा था उसीके चिन्तन में स्थिर मणिप्रभा के समान हो जाता है अतः यही विषय एकत्ववितर्क शुक्लध्यान का हो जाता है अब विषय परिवर्तन नहीं होता है। केवलज्ञान होने पर ज्ञान के द्वारा समस्त चराचर ज्ञेय पदार्थ स्पष्टरूप से प्रत्यक्षरूप में विषय बन जाते हैं तथा ध्यान एकत्वअवितर्क अवीचार रहता है।

प्रश्न— 2483 क्षीणमोही 12 वें गुणस्थान में 9 योग बताये हैं और यहाँ एकत्व वितर्क शुक्लध्यान में एक योग बताया है सो यह आगम से विरोध है?

उत्तर बारहवें क्षीणमोह नामक गुणस्थान में 4 मनोयोग 4 वचन योग और एक औदारिककाय योग ये 9 योग बताये हैं सो यह कथन नाना जीव और नाना काल की अपेक्षा संग्रह नय से कहा गया है। एक जीव और एक काल की अपेक्षा नहीं अतः एक जीव और एक समय में परिवर्तन रहित एक ही उन नव योगों में से एक योग होता है और वह योग पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान के अंत में था वही यहाँ पर है, अन्य नहीं।

प्रश्न— 2484 एकत्ववितर्क शुक्लध्यान का फल क्या है?

उत्तर उपशम श्रेणी वाले मुनिराज उपशांत गुणस्थान में मरण कर सौधर्म स्वर्ग से लेकर सर्वार्थसिद्धि तक अपने आयु के बंध के अनुसार यथासंभव उत्पन्न होते हैं और आयु पर्यन्त इन्द्रिय सुख, आदर सम्मान आदि वैभव का आनंद लेते हैं। क्षायिक सम्यग्दृष्टि महाव्रती मुनिजन क्षपक श्रेणी पर आरोहण कर दसवें गुणस्थान के अंत में सूक्ष्म लोभ को क्षय कर शेष बचे तीन घातिया कर्मों का क्षय करना यह इसका दूसरा नाना उत्तम फलों में महान फल है। क्षपक श्रेणी वालों का शुक्ल ध्यान अप्रतिपाती है और नियम से केवलज्ञान उत्पन्न कराकर बाद में नियम से मोक्ष प्राप्त करवाता है अर्थात् इस ध्यान का सांसारिक उत्तम भोग प्राप्त होना यह प्रथम फल है और घातिया कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त करना यह दूसरा फल है।

प्रश्न— 2485 तेरहवें सयोगकेवलि नामक गुणस्थान का काल तो लाखों करोड़ों

वर्षो का है और एकत्ववितर्क शुक्लध्यान का काल कुछ ही सैकेंड़ों का है तथा जीवन काल केवल अंतर्मुहूर्त शेष रहने पर सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती शुक्ल ध्यान होता है तब मध्यकाल में कौन सा ध्यान होता है या नहीं?

उत्तर केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद और समुद्घात अवस्था पर्यन्त अथवा इतने काल पर्यन्त एकत्व ध्यान या एकत्व अवितर्क अवीचार ध्यान होता है। तेरहवें गुणस्थान में श्रुतज्ञान तो मान नहीं सकते क्योंकि ''एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्ना चतुर्भ्यः''त. सू. प्र. अ. के इस सूत्र में एक केवलज्ञान कहा है और दो ज्ञान मतिज्ञान और श्रुतज्ञान कहा है अब यदि तेरहवें गुणस्थान में श्रुतज्ञान माना तो मतिज्ञान भी मानने का अनिवार्य प्रसंग आता है और केवलज्ञान के साथ इनका अस्तित्व मानने में विरोध हैं क्योंकि सर्वज्ञपना और छद्मस्थपना एक साथ में रह नहीं सकते क्योंकि दोनों पर्यायें एक ही गुण की हैं ऐसा नियम है कि एक गुण की या एक द्रव्य की एक समय में एक ही पर्याय उत्पन्न होती है तथा इस पर्याय के प्रध्वंसाभाव के होने पर ही दूसरी प्रागभाव रूप पर्याय का उत्पाद होता है अन्यथा इन दोनों अभावों का अभाव मानने पर अर्थात् इन अभावों को स्वीकार नहीं करने पर कार्य द्रव्य और कारण द्रव्य अनादि और अनन्त मानना पड़ेगा जो अनेकान्तवादियों को अभीष्ट नहीं है, न ऐसी वस्तु व्यवस्था है। इस कारण इतने समय तक ध्यान पर्याय का अभाव भी नहीं मान सकते हैं क्योंकि पर्याय का अभाव मानने पर पर्यायी का या आधार का अभाव मानने पर आधेय के अभाव का प्रसंग आता है तथा अर्थ क्रिया के अभाव में द्रव्यगुण का अभाव होना अवश्यंभावी है अथवा नित्य कूटस्थ मानने पर अनेकान्त का और स्याद्वाद का भी व्याघात होता है तथा सांख्यमत का भी प्रसंग आता है। जब यहीं पर इसी काल में ध्यान का अभाव मानेगे तो आगे के दो ध्यान सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती और व्युपरतक्रियानिवृत्ति ध्यान का आगमन या सद्भाव कैसे बनेगा? फिर संवर और असंख्यात गुण श्रेणी कर्मों की निर्जरा, समुद्घात क्रिया कैसे घटित होगी? जैसे समीचीन ध्यान के अभाव में प्राणी पतन को प्राप्त होता है और समीचीन ध्यान के सद्भाव में उत्थान को प्राप्त होता है। इसी तरह केवली के समीचीन निश्चलध्यान न माना जाय तो वे पतन को प्राप्त क्यों न होंगे? इस कारण निश्चल ध्यान में स्थिरता होने से पतन न कर उत्थान स्वरूप मोक्ष को प्राप्त करते हैं। इसलिए केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद समुद्घात क्रिया पर्यन्त सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती ध्यान के पहले तक बीच में एकत्वअवितर्कअवीचार स्थिरता रूप शुक्लध्यान होता है। सो यह मध्यकाल की अवस्था है। विना पर्याय के द्रव्य गुण और द्रव्य गुण के विना पर्याय होती है क्या? अतः द्रव्य गुणों का परस्पर में त्रिकाली तादात्म्य संबंध और पर्यायों का वर्तमान की अपेक्षा तादात्म्य संबंध और अविनाभाव संबंध है।

प्रश्न– 2486 एकत्व अवितर्क शुक्लध्यान का उत्कृष्ट काल और जघन्यकाल कितना हैं?

उत्तर एकत्व अवितर्क शुक्लध्यान का उत्कृष्टकाल आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्व कोटी है तथा जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है मध्यकाल मध्य की आयु प्रमाण समझना चाहिए।

प्रश्न– 2487 किस ध्यान का कौन सा जीव स्वामी है? ध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर छद्मस्थों के ध्यान का लक्षण किसी एक विषय में अपने मन को या उपयोग को केंद्रित कर लेने को ध्यान कहते हैं और केवलियों के योग निरोध को ध्यान कहते हैं। यदि कहो कि योग का निरोध तो चौदहवें गुणस्थान में होता है तो ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा मानने पर फिर संवर भी चौदहवें गुणस्थान में बनेगा तेरहवें गुणस्थान में नहीं बन सकता है। कायवाङ् मनः कर्मयोगः स आश्रवः। आश्रव निरोधः संवरः काय वचन और मन की क्रिया का नाम योग है वह योग ही आश्रव है। आने वाले कर्मों को रोकना संवर है। ऐसा नियम होने से तब सभी कर्म प्रकृतियों के आश्रव मानने का प्रसंग आयेगा सो भी ठीक नहीं है। इसलिए केवली भगवान के एकदेश संवर के कारण स्वरूप प्रति समय योग का निरोधरूप एकत्व का ध्यान कहा है। कार्य लिंगं हि कारणम् कार्य कारण का नियामक है। इसलिए योग का अभाव कर पूर्ण संवर, अठारह हजार शील के भंग तथा चौदहवां गुणस्थान एक साथ एक ही समय में प्राप्त होता है। ऐसा मत समझना कि इन तीन के प्राप्त हो जाने के बाद में योग का अभाव होता है किंतु योग के अभाव का और इन तीन के प्राप्त होने का एक ही समय है।

प्रश्न– 2488–89 सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती शुक्लध्यान किसे कहते हैं? इस ध्यान में योग कौन सा होता है?

उत्तर केवली समुद्घात और बादरकृष्टियां समाप्त हो जाने के बाद में जो मन वचन काय की सूक्ष्म क्रिया शेष रहती है और इस सूक्ष्मक्रिया का प्रतिपात न होने को सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती नामक शुक्ल ध्यान कहते हैं। इसमें एकमात्र काय योग होता है।

प्रश्न– 2490–91 इस ध्यान का काल कितना है? उदाहरण सहित बताओ?

उत्तर इस सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाती शुक्लध्यान का काल उपान्त्य अन्तर्मुहूर्त है जो अनुमानतः वर्तमान में अनेकों ने बड़ी सावधानी पूर्वक जागृत अवस्था में पूर्ण स्वस्थ्य अवस्था में सम्बोधन करने पर स्वयं ने यम सल्लेखना व्रत स्वीकार किया और समाधि के कुछ ही क्षण पूर्व ऊर्ध्व श्वांस चालू हो जाता है उसे समझो योग निरोध की अवस्था अथवा क्षपक मौन व्रत ले लेता है और अपने अभ्यासानुसार लेटे रहते हैं। न कोई इशारा, न वार्तालाप, न करवट बदलना, न मलमूत्र क्षेपण करना यह अवस्था योग निरोध की समझो इसके बाद जब आयु कर्मोदय का काल मिनटों का बचता है तब तीन हिचकी आती है। उसमें प्रथम हिचकी केवली समुद्घात की या बादर कृष्टियों की, दूसरी हिचकी का काल सूक्ष्म कृष्टियों का है जो सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाती नाम के शुक्लध्यान का समय समझना ऐसा अनुमान हमने लगाया है।

प्रश्न– 2492 इस सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती नामक शुक्लध्यान का क्या फल है?

उत्तर इस ध्यान के द्वारा एक भी प्रकृति का समूल क्षय नहीं होता किन्तु संवर और निर्जरा पूर्वक कर्मों का भार कम होता जाता है अथवा समुद्घात क्रिया के द्वारा आयुकर्म की स्थिति के समान शेष तीन अघातिया कर्मों का स्थिति सत्त्व कर दिया जाता है यही इस ध्यान का फल है। ऊर्ध्व श्वांस

क्रिया के चालु होने पर अब पूर्व की स्थिति पुनः प्राप्त नहीं होती है इसलिए इसका नाम सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाती है।

प्रश्न– 2493 नाम कर्म, गोत्रकर्म और वेदनीय कर्म का स्थिति सत्त्व आयु कर्म के समान क्यों होता है? किससे होता है?

उत्तर नामकर्म, गोत्रकर्म, वेदनीय कर्म की स्थिति सत्त्व आयुकर्म के समान न हो तो क्या आयु कर्म के क्षय हो जाने पर शेष तीन अघातिया कर्मों का फल या विकार सिद्धों को भोगना पड़ेगा और सिद्धों में विकार होने से न निर्विकार, न पूर्ण शुद्ध सिद्ध कहलायेंगे। निरंजन, निराकार, मुक्त, निष्कलंक, स्वतंत्र, निश्चल, निष्काम नहीं कहलायेंगे अतः उक्त विशेषणों को प्राप्त करने के लिए समुद्घात के द्वारा तीन अघातिया कर्मों की स्थिति आयु के समान कर देते हैं।

प्रश्न– 2494 इस विषय को उदाहरण देकर स्पष्ट करो।

उत्तर जैसे गीला कपड़ा सूखेगा अवश्य यह सभी जानते हैं पर सावधानी पूर्वक प्रयोग करने से जल्दी सूख जाता है और वह प्रयोग निचोड़ने से, फैलाने से, फटकार कर फैलाने से या लोहा कर देने से या मशीन में ही सुखा देने से शीघ्र ही सूख जाता है। इसी तरह वर्षों में फल देकर झड़ने वाले कर्मों को प्रक्रिया विशेष समुद्घात के द्वारा कर्म शीघ्र ही नष्ट कर दिये जाते हैं अथवा दूसरा उदाहरण इस प्रकार है किसी यात्री को दिल्ली से बोम्बे जाना है तो उसे पैदल चलकर पहुंचने में वर्षों में या छह महिने में पहुंचने की उम्मीद है, साईकिल से जाने पर थोड़ा समय कम लेगा इसी तरह स्कूटर से, मारुतिवेन से, एक्सप्रेस ट्रेन या प्लेन से घंटे दो घंटे में पहुंच जायेगा इसी तरह बिना उपसर्गादि के उदयानुसार अपने समय पर ही मोक्ष प्राप्त करेगा तथा भयंकर, दारुण उपसर्ग, परीषह के उत्पन्न होने पर उदीरणाकरण करके समय के पहले मोक्ष प्राप्त कर लेगा यही समुद्घात क्रिया का फल है।

प्रश्न– 2495 आयुकर्म का उदीरणाकरण कहाँ से कहाँ तक होता है?

उत्तर आयु कर्म की उदीरणा मिथ्यात्व गुणस्थान में, सासादन गुणस्थान में, अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में, देशसंयत और प्रमत्तसंयत गुणस्थान पर्यन्त विशेष दारुण उपसर्ग परीषह या सल्लेखना आदि कारणों से हो जाती है इसके आगे उदीरणा करण का विच्छेद हो जाता है।

प्रश्न– 2496 जब आयु कर्म का उदीरणाकरण प्रमत्त संयत पर्यन्त होता है तो फिर समय के पहले मोक्ष कैसे हो सकता है?

उत्तर जो मुनि वज्रवृषभ नाराच संहनन के धारी हैं, चरमशरीरी हैं, क्षायिक सम्यग्दृष्टि हैं, आयु कर्म ज्यादा है परन्तु दारुण भयंकर उपसर्ग परीषह प्रारम्भ हुआ या सल्लेखना धारण कर आहार पानी का त्याग कर दिया है शरीर जीर्ण शीर्ण हो गया है अब आयु कर्म की प्रमत्तसंयत गुणस्थान में रहकर उदीरणा प्रारम्भ की, उदीरणा होते होते जब केवल आयु कर्म अन्तर्मुहूर्त शेष बचा तब क्षपकश्रेणी आरोहण की। गुणस्थानानुसार क्रमशः कर्मों का क्षय करते हुए केवलज्ञान प्राप्त कर 13वें गुणस्थान में अन्तर्मुहूर्त काल पर्यंत विश्राम लेकर पुनः सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती शुक्लध्यान के द्वारा योग निरोध कर, अभाव कर अयोगी बन शेष कर्मों का क्षय कर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

प्रश्न— 2497 इस ध्यान के स्वामी कौन हैं?

उत्तर इस सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती नामक शुक्लध्यान के स्वामी समुद्घात क्रिया समाप्त होने के बाद सयोगीजिन भगवन्त हैं।

प्रश्न— 2498 आदि के दो शुक्लध्यानों के स्वामी कौन हैं?

उत्तर आदि के दो पृथक्त्ववितर्कवीचार और एकत्ववितर्कअवीचार शुक्लध्यान चरमशरीरी और अचरमशरीरी पूर्व ज्ञानधारी उपशमश्रेणी और क्षपक श्रेणी वाले महामुनि उत्तम संहनन वाले स्वामी है।

प्रश्न— 2499 एकत्ववितर्क शुक्लध्यान और एकत्व भावना में क्या अंतर है?

उत्तर एकत्व वितर्क शुक्लध्यान स्थिर रूप है, वीतरागी मुनियों के होता है, अवस्थित परिणाम है और भावना भव्य अभव्य, सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, गृहस्थ, मुनि आदि के और चारों गतियों में संख्यात असंख्यात प्राणी रागी सरागी स्वामी हैं, अनवस्थित परिणाम है।

प्रश्न— 2500 व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर जिस ध्यान में मन वचन काय के द्वारा जो आत्म प्रदेशों में कम्पन हो रहा है या हो रहा था अब वह पूर्ण रूप से समाप्त हो गया, आश्रव बंध समाप्त हो चुके हैं, आत्म प्रदेशों का कम्पन समाप्त हो चुका है, निश्चल, निष्कंप प्राप्त अवस्था को व्युपरतक्रिया निवृत्ति नामक शुक्लध्यान कहते हैं। इसीसे संसार का अंत और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

प्रश्न— 2501—02 इस व्युपरतक्रियानिवृत्ति नामक शुक्लध्यान में योग कौन सा होता है? काल कितना है?

उत्तर इस ध्यान में, अयोगी 14वें गुणस्थान में किसी प्रकार का योग नहीं होता है तथा काल, ह्रस्व स्वर अ इ उ ऋ लृ इनके उच्चारण में जो समय लगता है उतना काल इस ध्यान का, इस गुणस्थान का समझना चाहिए।

प्रश्न— 2503 इस ध्यान का, गुणस्थान का इतना काल है यह कैसे समझें उदाहरण सहित समझाओ?

उत्तर समाधि के समय में जो अंतिम हिचकी आती है उसी के समान इसका समय समझना चाहिए क्योंकि यहीं पर नाड़ी का कम्पन, हृदय का कम्पन, श्वांस का निरोध, एकसाथ एक समय में समाप्त हो जाता है। ऐसा अनेक समाधियों के समय हमने अनुभव किया है।

प्रश्न— 2504 इस व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान का क्या फल है?

उत्तर इन चार अघातिया कर्मों का समूल क्षय होना या क्षय करना इस व्युपरतक्रियानिवृत्ति नामक शुक्लध्यान का साक्षात् फल निषेध रूप में कहा गया है तथा मोक्ष की प्राप्ति होना, पूर्ण निर्मल स्वच्छ होना, स्वतंत्र होना, शुद्ध होना आदि विधि रूप में साक्षात् फल कहा है।

प्रश्न— 2505 इस ध्यान के द्वारा कर्मों का क्षय क्रम से होता है या अक्रम से?

उत्तर इस ध्यान के द्वारा उत्तर प्रकृतियों का क्षय क्रम से होता है और मूल प्रकृतियों का क्षय अक्रम से एक साथ एक ही समय में होता है।

प्रश्न– 2506–07 उत्तर प्रकृतियों का क्षय किस क्रम से होता है? मूल प्रकृतियों का क्षय अक्रम से कैसे होता है?

उत्तर उपान्त्य समय में और चरम समय की अपेक्षा से क्रम है किन्तु उपान्त्य समय में एक ही परिणाम से एक ही समय में एकसाथ 72 प्रकृतियों का क्षय होता है इसलिए इस दृष्टि से उपान्त्य समय में एकसाथ अक्रम से क्षय होता है तथा चरम समय में 13 या 12 प्रकृतियों का, आयु, वेदनीय, नाम और गोत्रकर्म मूल प्रकृतियों का एकसाथ एक ही चरम समय में एक ही परिणाम से क्षयकर ऊर्ध्वगमन स्वभाव के द्वारा मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

प्रश्न– 2508 इस गुणस्थान में अघातिया कर्मों की सत्ता वालों के कितने भेद हैं?

उत्तर चार भंग होते हैं किन्हीं अयोगी जिनेन्द्र के 85 की, किन्हीं अयोगी जिन के 84 की, किन्हीं अयोगी जिनेन्द्र के 83 की और किन्हीं अयोगी जिनेन्द्र के 82 प्रकृतियों की सत्ता होती है। गुणस्थानानुसार क्रमशः क्षय करते हुए तेरहवें गुणस्थान में 60 प्रकृतियां क्षय को प्राप्त होती हैं सत्त्वपने से पृथक्पने को प्राप्त होती हैं और भूत पर्याय से आये हुए तीर्थंकर प्रकृति की सत्तावालों के नरकायु, तिर्यंचायु और देवायु की सत्ता होती नहीं हैं। तीर्थंकर प्रकृति के बिना 84 प्रकृतियां होती है। तीर्थंकर प्रकृति सहित और आहारक द्विक रहित 83 प्रकृतियां और तीर्थंकर तथा आहारक द्विक रहित 82 प्रकृतियां होती हैं।

प्रश्न– 2509 किस गुणस्थान में या कहाँ से कहाँ तक किन किन प्रकृतियों का क्षय होता है?

उत्तर चौथे गुणस्थान से लेकर सातवें गुणस्थान पर्यन्त मध्य में किसी भी स्थान में 7 कर्म प्रकृतियां दर्शनमोह की तीन और चारित्रमोह की अनन्तानुबन्धी क्रोधादि 4 ये दोनों मिलकर 7 प्रकृतियां क्षय को प्राप्त होती हैं। नौंवे अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में 36 प्रकृतियां और दसवें गुणस्थान में एक सूक्ष्मलोभ क्षय को प्राप्त होता है। बारहवें गुणस्थान के उपान्त्य समय में दो तथा चरम समय में 14 प्रकृतियां क्षय को प्राप्त होती है। इस तरह से 60 प्रकृतियां वर्तमान मनुष्य भव में क्षय को प्राप्त होती है तथा तीन आयुओं का असत्त्व पहले से है।

प्रश्न– 2510 जिस क्रम से कर्म प्रकृतियां क्षय को प्राप्त होती है वह क्रम किस प्रकार है?

उत्तर मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व मोहनीय ये तीन तथा अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान माया और लोभ ये 7 प्रकृतियां, इन प्रकृतियों का मिथ्यात्व गुणस्थान से अप्रमत्त पर्यंत बीच में कहीं भी क्षय हो जाता है। स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, नरकगति, तिर्यंचगति, एकेंद्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रींद्रिय जाति, चौइंद्रिय जाति, नरक गत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण ये सोलह नाम हैं। अप्रत्याख्यानावरण क्रोधमान माया लोभ प्रत्याख्यानावरण क्रोधादि चार ये आठ प्रकृतियां, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, छह नो कषाय, पुरुषवेद, क्रमशः संज्वलन क्रोध मान माया ये तीन, संज्वलन लोभ, निद्रा प्रचला ये दो, 5 ज्ञानावरण, 4 दर्शनावरण, 5 अंतराय ये 14 कोई एक वेदनीय देवगति, 5 शरीर, 5 संघात, 5 बन्धन, 6 संस्थान, तीन आंगोपांग,

6 संहनन, 5 वर्ण, दो गंध, 5 रस, 8 स्पर्श, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति, अपर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, अनादेय अयशस्कीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र ये 72 प्रकृतियां, एक सातावेदनीय,मनुष्यायु, मनुष्यगति, पंचेंद्रिय जाति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, त्रस, बादर, पर्याप्त सुभग, आदेय, यशस्कीर्ति, तीर्थंकर प्रकृति और उच्चगोत्र ये तेरह प्रकृतियां क्षय को प्राप्त होती है।

प्रश्न– 2511–12 कौन सा ध्यान किस गति का हेतु है? हेतु किसे कहते हैं?

उत्तर धर्मध्यान और शुक्लध्यान ये दोनों मोक्ष के हेतु हैं तो पारिशेष न्याय से आर्तध्यान तथा रौद्रध्यान संसार के हेतु हैं। जिसके सद्भाव में कार्य हो और अभाव में कार्य न हो अर्थात् साध्य के साथ अविनाभाव सम्बन्ध को हेतु कहते हैं।

प्रश्न– 2513 उपरोक्त चार प्रकार के ध्यानों में कौन सा ध्यान हेय है? कौन सा ध्यान उपादेय है? कौन सा ध्यान ज्ञेय है?

उत्तर आर्तध्यान और रौद्रध्यान ये दोनों अशुभ होने से हेय हैं छोड़ने योग्य हैं क्योंकि ये संसार के कारण हैं। धर्मध्यान उपादेय है, ग्रहण करने योग्य है क्योंकि यह मोक्ष का कारण है। शुक्लध्यान भी मोक्ष का कारण है इसलिए उपादेय है फिर भी वर्तमान में उत्कृष्ट परिणामों की विशुद्धि, द्रव्य संहनन, भाव संहनन का अभाव होने से ज्ञेय है, जानने योग्य है, ग्रहण करने की, तद्रूप परिणमन करने की सामर्थ्य का अभाव होने से ज्ञेय कहा है। अन्यथा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव उत्तम होने से चौथाध्यान भी उपादेय है क्योंकि मोक्ष का साधन है और धर्मध्यान साधन का साधन है। हेतु हेतुमद्भाव है अथवा दोनों में साध्य साधन भाव है।

प्रश्न– 2514 अशुभ, शुभ और शुद्धध्यान कौन कौन हैं?

उत्तर आर्तध्यान और रौद्रध्यान अशुभ हैं, धर्मध्यान शुभ है और शुक्लध्यान शुद्ध है ऐसा समझना चाहिए। इस प्रकार ध्यान का वर्णन समाप्त हुआ। यदि गृहस्थ तीसरी प्रतिमा वाला है तो वह अपने बलवीर्य के अनुसार धर्मध्यान का पालन करें यदि तीसरी प्रतिमा वाला गृहस्थ का त्यागी गृह त्यागी है तो वह भी धर्मध्यान के मध्यम अंश को प्राप्त कर सकता है या प्राप्त कर लेता है तथा यदि मुनि दीक्षा के संस्कार युक्त पंचम गुणस्थान के परिणामों में से तीसरी प्रतिमा के परिणाम वाला धर्मध्यान से परिणमन कर क्रमशः वृद्धि को प्राप्त हुआ शुक्लध्यान को प्राप्त कर मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। अतः जिसकी जैसी शक्ति हो उसी के अनुसार ध्यान का अभ्यास कर आगे के अंशों को प्राप्त करने का अभ्यास तथा लक्ष्य बनाये रखना चाहिए।

प्रश्न– 2515 सामायिक शिक्षाव्रत और सामायिक प्रतिमा में क्या अन्तर है?

उत्तर सामायिक शिक्षाव्रत में सामायिक कम से कम दो बार करने का नियम है। क्वचिद् कदाचित् अतिचार दोष भी लगते हैं, समय भी आगे पीछे हो सकता है किन्तु सामायिक प्रतिमा में सामायिक को तीन वार करने का नियम है, निरतिचार पालन किया जाता है अथवा चौबीसों घंटे भी वारिषेण कुमार, सेठ सुदर्शन के या जिनदत्त सेठ के समान कर सकते हैं और श्राविकायें आर्यिकाओं के समान एक साड़ी धारण कर एकांत में कर सकती हैं अतः कोई दोष नहीं है।

प्रश्न– 2516 प्रोषधोपवास प्रतिमा किसे कहते हैं?

उत्तर प्रोषध– एकासन। उपवास – प्रत्येक महीने में दो अष्टमी और दो चतुर्दशी के दिन चारों प्रकार के आहार का त्याग। इस प्रकार एकासन पूर्वक उपवास सहित एकासन करने को प्रोषधोपवास प्रतिमा कहते हैं।

प्रश्न– 2517–2518 प्रोषध किसे कहते हैं? उपवास किसे कहते हैं?

उत्तर मन वचन काय की शुद्धि पूर्वक द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुसार आहार की दो बेलाओं में से किसी एक बेला में चरणानुयोगानुसार शुद्ध मर्यादित भोजनपान ग्रहण कर पुनः दुबारा पानी आदि के संकल्प पूर्वक ग्रहण न करने को या त्याग करने को प्रोषध कहते हैं। संकल्प पूर्वक विषय कषायों के त्याग को, विशेष श्रृंगार अलंकार के त्याग को, आरम्भ परिग्रह के त्याग को, अशुभ लेश्याओं के तथा आर्त रौद्रध्यानों के त्याग को, चारों प्रकार के आहार पानी के त्याग को तथा ध्यानाध्ययन में आत्म तत्त्व सम्बन्धी कार्यों के करने को उपवास कहते हैं और यह उपवास आत्मशुद्धि के लिए करना चाहिए न कि कष्ट के लिए, न लौकिक कामना के लिए।

प्रश्न– 2519 एकासन और उपवास करने का क्या फल हैं?

उत्तर एकासन उपवास करने से सर्वप्रथम आत्मशुद्धि होती है, परिणामों में विषय कषाय की भावना न होने से विशेष निर्मलता आती है जिससे विशेष रूप से पाप कर्मों का संवर, निर्जरा, आरंभ परिग्रह से निवृत्ति, मलमूत्र की भी बाधा नहीं होती। धर्मध्यान में, आत्मसाधना में, विशेष समय व्यतीत होना, शरीर की शुद्धि होना, स्वास्थ्य अच्छा रहना आदि फलों के साथसाथ सातिशय मोक्ष के निमित्त उत्कृष्ट पुण्य प्रकृतियों में स्थितिबंध और अनुभाग बंध विशेष होना, लोक में प्रशंसा होना, यश फैलना, गुणकीर्तन होना, आदर सम्मान प्राप्त होना आदि लौकिक और लोकोत्तर फल प्राप्त होता है। अतः समझकर एकासन और उपवास करने में उपयोग लगाना चाहिए।

प्रश्न– 2520 प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत और प्रोषधोपवास प्रतिमा में क्या अन्तर है?

उत्तर प्रत्येक मास के दो अष्टमी और दो चतुर्दशी के दिनों में अथवा अन्य समयों में एकासन पूर्वक उपवास करने को शिक्षाव्रत तथा प्रत्येक प्रत्येक मास के चारों पर्वों में अपनी शक्ति के अनुसार प्रोषध पूर्वक उपवास करने को प्रोषधोपवास कहते हैं तथा शिक्षाव्रत में कुछ हीन परिणाम होने से समय में परिवर्तन हो जाता है, दोषों की संभावना है किन्तु प्रतिमा में अतिचारों की संभावना कम है। शिक्षाव्रत अभ्यास स्वरूप है। फूल के समान है तथा प्रतिमा अभ्यास का फल स्वरूप है। शिक्षाव्रत कारण है और प्रतिमा कार्य स्वरूप है। समय पर उपवास करता ही है और असमय में भी अपनी शक्ति के अनुसार भी कर लेता है यही अंतर है।

प्रश्न– 2521 सचित्त आहार त्याग प्रतिमा किसे कहते हैं?

उत्तर जिस भोजन सामग्री में संख्यात, असंख्यात और अनंत जीव मौजूद हैं या इन जीवों को जन्म देने की योग्यता है, योनिस्थान बन चुका है या बनने वाला है उसे सचित्त आहार कहते हैं तथा सचित्त आहार के त्याग को सचित्त त्याग प्रतिमा कहते हैं। <u>(सचित्ताचित्त की विशेष परिभाषा प्र. सं. 499–517, 814, 827, 831, 867 ।)</u>

प्रश्न– 2522 इस प्रतिमा में सचित्त त्याग स्वनिमित्तक किया जाता है या पर निमित्तक भी त्याग किया जाता है?

उत्तर इस प्रतिमा में सचित्त का त्याग स्वनिमित्तक नव कोटियों से किया जाता है परनिमित्तक नहीं किया है। यदि इस प्रतिमा में सचित्त भोजन पान का त्याग दूसरों को कराने का कर दिया है तो फिर पूरे परिवार को, सगे संबंधियों को भी त्याग करना पड़ेगा तथा यह दान पूजा भी नहीं कर सकता है अतः अपने इंद्रिय और मन को अपने वश में किया हैं दूसरों की नहीं।

प्रश्न– 2523 आत्मगत स्वनिमित्तक नवकोटियां किस प्रकार से होती हैं?

उत्तर मन में कृत– मैं सचित्त भोजनपान नहीं करूंगा या सचित्त का त्याग करता हूँ।

मन में कारित– बहुत गर्मी पड़ रही है या ककड़ी आदि के बीजों में स्वाद अच्छा आता है ऐसा कोई पिला दे या खिला दे इन भावों का त्याग करना अर्थात् कोई पिलाये या खिलाये तो भी नहीं खाऊंगा ऐसा त्याग करना है सो वह मन से कारित।

मन में अनुमोदना– किसी ने मनोनुकूल स्वादिष्ट पौष्टिक सचित्त आहारादि कराया उसके आहारादि कराने पर मन में प्रसन्न होकर प्रशंसा न करना न निन्दा करना इस प्रकार मन में प्रशंसा का त्याग कर माध्यस्थ भाव धारण करना। यह मन की अनुमोदना है।

वचन में कृत– मैं वचन से सचित्त पदार्थ खाने का त्याग करता हूँ।

वचन में कारित– कोई भी किसी ने भी मेरे को वचन से सचित्त खाने पीने को कहा तो भी नहीं खाऊंगा। चाहे कोई भक्ति से कहे या दबाव से तो भी नहीं खाऊँगा।

वचन में अनुमोदना– कदाचित् किसी ने भूलवश खिला पिला दिया तो भी वचन से प्रशंसा वचन न बोलूंगा कि आपने बहुत अच्छा भोजन कराया ऐसे वचन का त्याग करता हूँ।

काय में कृत– स्वयं सचित्त पदार्थ खाने का त्याग करना।

काय से कारित– दूसरों से सचित्त बनवाकर खाने का त्याग करना।

काय से अनुमोदना– अनुकूल सचित्त भोजनपान आदि का सेवन कर शरीर के माध्यम से शरीर से हाथ से प्रशंसा का त्याग।

प्रश्न– 2524 पर निमित्तक परगत नौ कोटियां किस प्रकार से होती हैं?

उत्तर मन से कृत– मन में विचारा कि मैं दूसरों को सचित्त आहार नहीं कराऊंगा।

मन से कारित– दूसरों को वे सचित्त भोजन नहीं कराये इस प्रकार का संकल्प करना।

मन से अनुमोदना– दूसरों को सचित्त भोजन कराने पर मन में प्रसन्न न होना।

वचन से कृत– वचन से बोलकर दूसरों को सचित्त भोजनपान कराने का त्याग करता हूँ।

वचन से कारित– वचन से बोलकर कि तुम ऐसा भोजन नहीं कराना।

वचन से अनुमोदना– वचन से बहुत अच्छा किया ऐसा उच्चारण नहीं करना।

काय से कृत– काय से सचित्त भोजनपान कराने का त्याग करना।

काय से कारित– काय से करवाने का त्याग करना।

काय से अनुमोदना– शरीर से प्रशंसा का त्याग करना।

इस प्रकार स्वगत या परगत नव कोटियों से सचित्त का त्याग किया जाता है।

प्रश्न— 2525 स्वगत और परगत कोटियों का पालन गृहस्थ कर सकता है क्या?

उत्तर पाँचवीं प्रतिमा वाला यदि अगृहस्थ बनकर साधु संघ में चला गया है तो परगत कोटियों का भी पालन कर सकता है क्योंकि संघ में पहुँचने पर दूसरों को खिलाने पिलाने का अवसर बहुत कम आता है अथवा आता भी नहीं है। यदि श्राविका है तो बहुत कुछ अवसर आते हैं तो इनका परगत त्याग का नियम बहुत कम पल पाता है क्योंकि श्राविका या मातृप्रेम के कारण स्वाभाविक खिलाने पिलाने का प्रेम अपने आप जागृत हो जाता हैं और गृहस्थ श्रावक श्राविकायें हैं तो उनका घर के अन्दर सभी प्रकार का परिवार है, पशु पक्षी है, रिश्तेदार नातेदार हैं, उनका आदर सम्मान करना, भोजनपान कराना, अचित्तकर कैसे हो सकता है? अतः स्वगत आत्मगत स्वनिमित्तक कोटियों का पालन तो सर्वत्र हो सकता है किन्तु परगत कोटियों का पालन क्वचित् कदाचित् प्रसंग पाकर कर सकता है यदि परिवार में, सम्बन्धियों को, नौकर चाकरों को सम्हालने वाला है तो अधिकतर अभ्यास कर सकता है। रात्रि में तो पूरी तोर पर पालन कर सकता है।

प्रश्न— 2526 वे कौनसी वस्तुऐं हैं जो सचित्त को अचित्त कर ग्रहण की जाती हैं?

उत्तर जो अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति के बीज, फल, पत्ते, शाखा, प्रतिशाखा, जड़, पानी, लवंग फूल भी है और फल भी है, केशर आदि वस्तुओं को अग्नि से पक्वकर, छिन्न भिन्न कर, पीसकर, तीक्ष्ण नमक, मिर्च मसाला मिलाकर या सूखे हो आदि नियमों से, साधनों से भोज्य वस्तुओं को सचित्त से अचित्तकर ग्रहण कर सकते हैं और त्यागी व्रतियों को करा सकते हैं, अन्यथा नहीं।

प्रश्न— 2527—28 जब सचित्त त्याग प्रतिमा है तो वस्तु को अचित्तकर कैसे ग्रहण कर सकते हैं? करते हैं तो दयामूर्ति क्यों कहा, कैसे कहा?

उत्तर इस पाँचमी प्रतिमा में खाने का त्याग किया है, खिलाने का नहीं। यदि खिलाने का भी त्याग कर दें तो गृहत्याग कर पीछी ग्रहण करनी पड़ेगी। सचित्त को अचित्त करने का त्याग नहीं किया है किन्तु सचित्त खाने का त्याग नव कोटियों से किया है। जिस प्रकार सचित्त खाने का त्याग किया है उसी तरह गृहस्थ यदि खिलाने का, सचित्त को अचित्त करने का त्याग कर दें तो मुनि महाव्रती और अणुव्रती में कोई अंतर न रहा फिर गृहस्थ श्रावक, अणुव्रती दानपूजा नहीं कर सकता है क्योंकि भोज्य सामग्री को सचित्त से अचित्त किये बिना दानपूजा कर नहीं सकता क्या गृहस्थ पानी जलाशय से निकालेगा नहीं, छानेगा नहीं? तो इतना अवश्य है कि उपवास के दिन, पर्व के दिनों में या और भी क्वचित् कदाचित् प्रसंगों पर घर में देखभाल करने वाले होने पर त्याग कर सकता है, शेष दिनों में नहीं तथा बिना व्यवस्था के घर में सपरिवार होने पर यदि नियम ले लें तो क्या परिवार संकट में न पड़ जायेगा? क्या स्वयं का जीवन संकट में न पड़ जायेगा? क्या धर्म न छूट जायेगा? अथवा जीवन अत्यन्त पराधीन हो जायेगा, क्षण क्षण में याचना करनी पड़ेगी, काम नहीं होने पर आकुलता होगी, कषाय की वृद्धि होने से मान सम्मान नष्ट होगा, रात्रि दिन आकुलता होने से व्रत छूटेगा अतः खाने का त्याग किया है खिलाने का नहीं तथा सचित्त को खाने का त्याग किया है, अचित्त करने का त्याग नहीं किया है।

प्रश्न— 2529 आ. श्री समंतभद्रानुसार मूल, कंद, शाखा, पत्ते आदि कच्चे नहीं खा सकते हैं तो अग्नि से पका करके खा सकते हैं क्या?

उत्तर आ. श्री समन्तभद्र स्वामी का यह अभिप्राय नहीं है कि कच्चे न खाकर उबालकर अग्नि से पकाकर खा सकते हैं किंतु उनका यह अभिप्राय है कि जो भक्ष्य पदार्थ हैं, सचित्त हैं उनको भी कच्चे नहीं खाता किन्तु अचित्तकर खाता है, अन्यथा मद्य मांस, मधु, उदम्बर, फल, आलू मूली, गाजर, शकरकंद, अरबी, पिण्डालू, रतालु आदि को अग्नि से पकाकर खाने का प्रसंग आता है फिर दयामूर्ति पना कैसे रह पायेगा? पाँचवीं प्रतिमा के कथन में जो जो नाम दिये हैं उनको कच्चा नहीं खाता तो उबाल के कैसे खा सकता है? बताओ जब कच्चा खाने में पाप है तो उबालकर खाने में पाप क्यों नहीं होगा? तथा यह भी विचार करो कि ये नाम आ. श्री समन्तभद्रस्वामी ने साधारण वनस्पति के कहे हैं या सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति के कहे हैं या अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति के कहे हैं? दिगम्बर जैन परम्परा में अभक्ष्य पदार्थों का त्याग यम रूप से किया जाता है तथा भक्ष्य पदार्थों का त्याग यम और नियम रूप से किया जाता है जो कि आ० श्री समन्तभद्रस्वामीजी ने स्वयं रत्न० में बताया है – त्रसघात, बहुविघात, प्रमादकारक, अनिष्टकारक और अनुपसेव्य। ये पदार्थ सर्वथा अभक्ष्य होने से यमरूप से त्याग करने योग्य हैं। गा० 84–85 में ये नाम गिनाये हैं तथा नियम रूप से त्याग करने योग्य भोग्य पदार्थ भक्ष्य में ही भोजन, वाहन, शयन, स्नान, शृंगार, पुष्प, पान, वस्त्राभूषण, कामसेवन, गीत वादित्र, नाचगान आदि का घड़ी घण्टा आदि से त्याग किया जाता है। अभक्ष्य पदार्थों का त्याग तो सर्वथा मूलगुणों का पालन करते समय तथा सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की भूमिका स्वरूप में अभक्ष्य पदार्थों का त्याग यम रूप से किया जाता हैं अथवा मूलगुणों का, अणुव्रतों का प्रतिमाओं का पालन भी नवकोटियों से किया जाता है अथवा आज के तर्कानुसार यदि व्रती श्रावक श्राविकायें उबालकर आलू, मूली आदि का सेवन कर सकते हैं तो मुनि आर्यिका आदि भी खा सकते हैं क्योंकि आहार की शुद्धि, मर्यादा, भक्ष्याभक्ष्य की व्यवस्था एक ही है, अलग अलग नहीं है। ऐसा नहीं है कि आहार की शुद्धि श्रावकों की अलग हो और त्यागी व्रती, मुनियों की अलग हो। जब व्रती श्रावकों को खाने में पाप नहीं है तो उत्तमपात्र, मध्यमपात्र को दान देने में क्या पाप होगा?

प्रश्न— 2530 त्रसविघात अभक्ष्यपदार्थ किसे कहते हैं?

उत्तर जिन भोज्य पदार्थों के सेवन करने से त्रस जीवों की हिंसा होती है उसे त्रसविघात अभक्ष्य कहते हैं जैसे तीनों मकार, उदम्बर फल, अचार मुरब्बा, बड़ी, पापड़ तथा कम्पनियों के सीरप आदि सड़े गले, घुने, चर्बी मिला देशी घी आदि पदार्थ त्रस विघात पदार्थ हैं।

प्रश्न— 2531 बहुविघात अभक्ष्य किसे कहते हैं?

उत्तर जिस भोजन को करने से संख्यात, असंख्यात और अनन्त जीवों की विराधना हो उसे बहुविघात अभक्ष्य कहते हैं जैसे कंदमूल आलू, मूली, गाजर आदि जमीकन्द तथा बिना मर्यादा के भोजनपान, गीली दवाईयां, रोटी, दाल, शाक, तरकारी आदि अनंतकायिक पदार्थ।

प्रश्न— 2532 प्रमाद कारक अभक्ष्य किसे कहते हैं?

उत्तर जिस भोजन पान से नशा उत्पन्न हो, प्रमाद आलस्य आये उसे प्रमाद कारक अभक्ष्य कहते हैं जैसे शराब, गांजा, भांग, चरस, चाय, तम्बाकू, बीड़ी सिगरेट आदि नशाकारक है। इनके खाने से पीने से नशा चढ़ता है, नशा कारक होने से इनको प्रमाद कारक अभक्ष्य कहते हैं।

प्रश्न– 2533 अनिष्टकारक अभक्ष्य किसे कहते हैं?

उत्तर जिस भोजन पान से स्वास्थ्य की हानि हो, बीमारी उत्पन्न हो उसे अनिष्ट कारक अभक्ष्य कहते हैं जैसे कफ की बीमारी है तो उस व्यक्ति को दूध पीना, शीत है तो फल रस पीना, नींबू का शर्बत पीना, पित्त बन रहा है तो रूखा भोजन, तीक्ष्ण भोजन, मिर्चमसाला, तेल खाना, ऊष्ण वीर्य की सामग्री खाना आदि को अनिष्टकारक अभक्ष्य कहते हैं।

प्रश्न– 2534 अनुपसेव्य अभक्ष्य किसे कहते हैं?

उत्तर मूत्र, लार, थूँक आदि जूंठे पदार्थ अनुपसेव्य अभक्ष्य पदार्थ कहलाते हैं जैसे मूत्रपान सेवन, जिह्वा से जिह्वा लगाकर चुंबन करना, एक ही गिलास से अनेकजन चाय, दूध, पानी पीना, एक ही थाली में अनेकजन बैठकर भोजन करना, एक ही बीड़ी, सिगरेट, हुक्का, शराब को सब मिलकर मुँह लगाकर पी लेना सो यह सब अनुपसेव्य अभक्ष्य हैं।

प्रश्न– 2535 इस अनुपसेव्य भोजन पान से क्या हानि है?

उत्तर इस जूंठे भोजन से आमने सामने बैठकर, खड़े होकर या लेटकर वार्तालाप करने से, भोजन पान करने से, परस्पर में एक दूसरे की हवा के माध्यम से रोग के कीटाणु मुँह के द्वारा, नाक के द्वारा पेट में प्रवेश कर, संक्रमण कर, संक्रामक रोग को पैदा करते हैं जो क्रमशः असाध्यरोग हो जाता है यह हानि है।

प्रश्न– 2536 इसके अलावा और भी 22 अभक्ष्य गिनाये हैं तो उनका भी त्याग क्यों नहीं कराया?

उत्तर 22 अभक्ष्य क्या 22 हजार भी हो तो भी इन सभी अभक्ष्यों का 5 अभक्ष्यो में अन्तर्भाव हो जाता है तथा कर्म सिद्धान्तानुसार अभक्ष्यों के भेद असंख्यात लोकप्रमाण हैं क्योंकि 148 कर्म प्रकृतियों में प्रत्येक के असंख्यात लोक प्रमाण भेद हैं। भावों की अपेक्षा अभक्ष्यों के अनन्त भेद हैं। भाव अभक्ष्य में मिथ्यात्व, विषय कषाय, असंयम, प्रमाद को ग्रहण कर लेना चाहिए।

प्रश्न– 2537 पाँचवी प्रतिमा के कथन में उक्त नाम क्यों गिनाये जब उबालकर नहीं खा सकते हैं?

उत्तर पाँचवीं प्रतिमा के कथन में जो नाम गिनाये हैं वे अनन्तकायिक वनस्पति के नहीं हैं किन्तु अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति के नाम हैं क्योंकि औषधियों में जैसे सतावरी, भिजरा, हल्दी, अदरक, श्वेतमूसरी तथा अनेक वनस्पतियों के पंचक काम में लिये जाते हैं तो उसमें उस वनस्पति के जड़ से लेकर फल तक सर्वांश ग्रहण किया जाता है। अतः अनंतकायिक आलू, मूली, गाजर आदि मत ग्रहण करना क्योंकि औषधि रूप में सूखी सोंठ, हल्दी का प्रयोग करते हैं किन्तु गीली हल्दी का, कच्चा अदरक प्रयोग नहीं करते हैं।

प्रश्न– 2538 जो वस्तु अचित्तकर ग्रहण के योग्य हो जाती है वे कौन कौन हैं?
उत्तर उनके कुछ नाम दिये जा रहे हैं जो समझने योग्य हैं–

<u>अमरकोष भाषाटीका</u> <u>वनौषधि वर्ग–4</u> <u>किस औषधि का क्या नाम है?</u>

पृ० गा०			
52 27	महुवा	वानप्रस्थ	तीसरे नं० वाला आश्रम का भी नाम है।
53 37	टेंटी (खरबूजा)	व्याघ्रपाद्	शिकारी का पैर भी होता है।
53 39	लोध	मोक्ष	समस्त विकारों से छूटने का नाम।
54 45	कोहा	अर्जुन	तीसरे नं० के पाण्डव का भी नाम है।
55 40	तिल	श्रीमत्	अनन्त चतुष्टय के स्वामी तथा लक्ष्मी वान का भी नाम।
55 49	कत्या	गायत्री	एक मंत्र का तथा सम्प्रदाय का भी नाम हैं।
55 50	एरण्ड	व्याघ्रपुच्छ, वर्धमान	जंगली जानवर की पूंछ का भी नाम। तीर्थंकर तथा जिला का भी नाम।
57 69	घुइयां	श्री हस्तिनी	हथनी का भी नाम है।
58 71	जुही वृक्ष	गणिका	वेश्या, संघ की स्वामिनी और मुख्य देवांगना इन्द्रणी का भी नाम ।
73	गवारपाठा	कुमारीमांस	क्वांरी कन्या का भी नाम है।
59 77	घत्रूट	मातुल मदन	मामा और व्यक्तिवाचक भी है।
59 78	धतूरे का फल	मातुल पुनक	मामा का पुत्र भी अर्थ होता है।
82	गिलोय	विशल्या	राजा दशरथ की पत्नि का भी नाम था।
60 82	भारंगी	ब्राह्मणी	ब्राह्मण की पत्नि का नाम।
93	भटकटैया	व्याध्री	जंगली जानवर तिर्यंचनी का भी नाम।
61 96	पीपल	वैदेही	सीता का भी नाम था।
62 107	दाख	गोस्तनी	गाय का भी नाम।
63 116	काकड़ासिंगी	ऋषभ	बैल और आदि तीर्थंकर का भी नाम।
64 119	मेढाशृंगी	अजशृंगी	बकरे के सींग को भी कहते है।
65 134	जटामासी	तपस्विनी	साधवी और पतिव्रता पत्नि का भी नाम।
	चित्रक	चीता	जंगली जानवर का भी नाम है।

इत्यादि अनेक औषधियों के नाम मूलशाखा प्रतिशाखा पत्ते फूल और फलों के नाम तथा पशु पक्षी जानवरों के, मनुष्यों के नाम एक ही है। तो जैसे अन्यमति मांसाहारियों ने औषधियों के नाम पर जानवरों का, पशुपक्षियों का मांस, रक्त खाना पीना प्रारम्भ कर दिया ऐसे ही आलू आदि कंदमूलों के लोलुपी मनुष्यों ने, जैनों ने मूल आदि शब्दों से आलू आदि की पुष्टि कर खाना प्रारम्भ कर

दिया। दोनों के अर्थ विपर्यास में कोई अन्तर नहीं रहा। इसी तरह विषय लोलुपियों ने आध्यात्म का सहारा लेकर विषय भोगों को जड़ की क्रिया मानकर, विषय भोगों से विरक्त न हुए और अंत तक मरते समय भी भोगों का त्याग नहीं किया, न त्यागी व्रती बने किन्तु उसी असंयम के साथ में मरण किया यह सब अर्थ विपर्यास का फल है अतः अर्थविपर्यास नहीं करना चाहिए।

प्रश्न– 2539 भोगोपभोग परिमाणव्रत और अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत के अतिचारों में तथा पाँचवीं प्रतिमा में क्या अंतर है?

उत्तर भोगोपभोग परिमाण गुणव्रत तथा पाँचवीं सचित्त त्याग प्रतिमा इन दोनों व्रतों का पालन स्वयं के लिए करना है अर्थात् न खाना है और कोई खिलाये तो भी नहीं खाना है और कदाचित् किसी ने व्यवस्थित ढंग से अचित्त किये बिना खिला दिया तो प्रसन्न नहीं होना है, अनुमोदना नहीं करना है कि तुमने बहुत अच्छा किया ऐसा नहीं सोचना है। इन दो व्रतों में स्वयं के लिए त्याग किया है स्वयं नहीं खाना है तथा अतिथि संविभाग शिक्षाव्रत में जो दूसरे ग्रहत्यागी, अणुव्रती, महाव्रती हैं उनको सचित्त को अचित्त कर खिलाना है। एक तो यह अंतर आत्मगत और परगत की अपेक्षा से है तथा दूसरा आत्मगत में भी कषाय की तीव्रता और मन्दता की अपेक्षा और परिणामों की विशुद्धि की अपेक्षा महान अंतर है। शिक्षाव्रत अभ्यास स्वरूप है। इसमें दोषों की संभावना अधिक है, हमेशा भी लग सकते हैं और प्रतिमा में अतिचार कम लगते हैं। शिक्षाव्रत साधन है तो प्रतिमा साध्य है यह भी अन्तर है और भी अंतर विचार कर लगा लेना चाहिये।

प्रश्न– 2540 रात्रिभोजन त्याग या दिवामैथुन त्याग नाम की छठवीं प्रतिमा किसे कहते हैं या क्यों कहते हैं?

उत्तर खाद्य, स्वाद, लेह्य और पेय इन चारों प्रकार के आहार को नौ कोटियों से त्याग कर पालन करने को या दिन में काम सेवन को तत्सम्बन्धी वार्तालाप, शृंगार अलंकार, भोजनपान, चर्या आदि का नव कोटियों से त्याग कर पालन करने को तथा व्रत पालन करने को रात्रिभोजन त्याग या दिवामैथुन त्याग प्रतिमा कहते हैं।

प्रश्न– 2541–42 रात्रि किसे कहते हैं? या कितने काल को रात्रि कहते हैं?

उत्तर सूर्यास्त से लेकर सूर्योदय के पूर्व के काल को रात्रि अथवा जहाँ पर नेत्रों से देख कर समिति का पालन न हो उसे रात्रि कहते हैं अथवा जहाँ प्रकाश का प्रतिद्वन्दी अन्धकार हो उसे रात्रि कहते हैं अथवा सूर्योदय के बाद एक मुहूर्तकाल तक तथा सूर्यास्त के पहले एक मुहूर्त काल तक को रात्रिकाल कहते हैं क्योंकि त्यागीव्रती, महाव्रती सूर्योदय के सवा घंटे बाद आहार पानी ग्रहण कर सकते हैं तथा सूर्यास्त के सवा घंटे पहले भोजनपान समाप्त कर देते हैं तथा इसीकाल में दिन या रात्रि संबंधी प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, प्रायश्चित्त आदि क्रियाकर्म करते हैं और किये कराये जाते हैं। शृगाल दिन में पानी पीने के लिए बावड़ी में गया पर सूर्यप्रकाश न होने से रात्रि समझ कर कई बार गया और वापिस आया किंतु प्रतिज्ञा भंग न कर मरण कर प्रीतिंकर कुमार हुआ।

प्रश्न– 2543 दिन या दिवा किसे कहते हैं?

उत्तर सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक के काल को दिन या दिवा कहते हैं अथवा स्वाभाविक अकृत्रिम

प्रकाश के द्वारा देखकर समिति का पालन कर सकें उसे दिन या दिवा अथवा अन्धकार का विनाशक स्वाभाविक प्रकाश हो तो उसे दिन या दिवा अथवा सूर्योदय के एक मुहूर्त या सवा घंटा बाद या सूर्यास्त के एक मुहूर्त पहले या सवा घंटे पहले तक के काल को दिन या दिवा कहते हैं क्योंकि इस काल के अन्दर त्यागी व्रती मुनिजन भी गमनागमन भी कर सकते हैं। सूर्योदय के होते ही प्रकाश प्रारंभ हो गया है पर अभी प्रताप तेज प्राप्त नहीं हुआ है।

प्रश्न– 2544 लाईट के प्रकाश को दिन कह सकते हैं क्या?

उत्तर लाईट के माध्यम से उत्पन्न प्रकाश अवश्य है पर जिस प्रकार सूर्योदय में प्रताप और प्रकाश दोनों मौजूद हैं वैसा प्रताप और प्रकाश लाईट में मौजूद नहीं है यह प्रत्यक्ष इंद्रियगोचर हो रहा है। और जो है सो उससे कीड़े, पतंगे, मच्छर, छिपकली आदि व्यसनी प्राणी हिंसक जीव आ जाते हैं किन्तु सूर्य के प्रताप प्रकाश में ये जन्तु नहीं आ पाते, छिप जाते हैं।

प्रश्न– 2545 आजकल सूर्य चन्द्र के समान लाईटें आ चुकी हैं तब उनको और उनके प्रकाश को दिन मान ले तथा सूर्य चन्द्र भी तो क्या आपत्ति है?

उत्तर नहीं मान सकते हैं क्योंकि जिस प्रकार सूर्योदय के होने पर पतंगे, मच्छर, छिपकली आदि अंधकार में छिप जाते हैं, कमल खिल उठते हैं तथा जितनी मात्रा में सूर्य में गर्मी है वैसी गर्मी और वर्गणायें लाईट से प्राप्त न होने के कारण मच्छर, पतंगे, छिपकली आदि आ जाती हैं और बिजली की गर्मी में आकर जलकर मर जाते हैं तथा बिजली की गर्मी से जलते हुए बल्ब के स्पर्श से मनुष्य भी जलकर मर जाता है पर सूर्योदय से, सूर्य की गर्मी से इस प्रकार के कीड़ों की, पतंगों की मृत्यु नहीं हो जाती है। अतः अकृत्रिम प्रकाश को दिन कहते हैं।

प्रश्न– 2546 प्रतिमा किसे कहते हैं?

उत्तर अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदयाभाव होने पर जो विशेष निर्मल स्वच्छ परिणाम उत्पन्न होते हैं जिनसे विषय भोगों में, शृंगार अलंकार में अरुचि परिणाम होते हैं उसे प्रतिमा कहते हैं अथवा जहाँ पर संयम भाव जागृत हुआ है, विषय भोगों में प्रीति भाव समाप्त हो चुका है तथा संकल्प पूर्वक प्रतिज्ञा स्वीकार कर ली है। उसे प्रतिमा कहते हैं (पीछे प्र. 914–915 देखें)।

प्रश्न– 2547 रात्रिभोजन त्याग मूलगुण में और रात्रिभोजन त्याग प्रतिमा में क्या अन्तर है?

उत्तर जब नाम में अन्तर है तो उनके कार्यों में भी अंतर होना चाहिए और परिणामों में भी अंतर होना ही चाहिए। मूलगुणों में स्वयं के लिए पालन किया जाता है, स्वयं के भोजन का त्याग किया जाता है किन्तु दूसरों को जो अपने आधीन हैं ऐसे पशु पक्षी, नौकर, दासी दास को कदाचित् किसी न किसी कोटि से रात्रि में भोजन करा देता है क्योंकि परिणामों में इतनी कठोरता नहीं आई है और अभ्यास चालू है तथा प्रतिमा में नव कोटियों से रात्रिभोजन का त्याग किया जाता है वह न किसी को खिलाता है, न पिलाता है, न अनुमोदना करता है, न प्रशंसा करता है। उसके परिणामों में इतनी दृढ़ता होती है कि वह चाहे पशु पक्षी हो, दासी दास हो तो भी अपनी प्रतिमा की विराधना नहीं करता है किंतु निर्दोष पालता है।

प्रश्न– 2548 छठवीं प्रतिमा वाली माँ अपने गोद के बच्चे को रात्रि में भोजन स्तनपान करा सकती है या नहीं?

उत्तर स्वयं ने अपने लिये त्याग किया है तथा जो समर्थ हैं, जानकार हैं उनको भोजन कराने का त्याग किया है किन्तु गोद का बच्चा है, असमर्थ है, नासमझ है यदि गोद के बालक को स्तनपान न कराया जाय, दवाई न दी जाय तो रोयेगा, घबरायेगा और मृत्यु को भी प्राप्त हो सकता है। अतः गोद के बच्चे को स्तनपान कराना। औषधि देना आवश्यक हो जाता है अन्यथा माँ बाप को अनन्तगुणी आकुलता हो जायेगी।

प्रश्न– 2549 छठवीं प्रतिमा वाली माँ बच्चे को खिलाये पिलाये सो ठीक है तो छठवीं प्रतिमा वाले पिताजी भोजन करा सकते हैं क्या?

उत्तर क्योंकि दाम्पत्य जीवन है, दोनों के काम पुरुषार्थ का फल है, एक का नहीं। कदाचित् यदि माँ पूर्ण स्वस्थ्य है, समर्थ है तो छठवीं प्रतिमा वाले बाप को जरूरत नहीं पर दाम्पत्य जीवन में माँ बीमार पड़ जाये, गाढ़ निद्रा में सो रही है, किसी कार्यवश बाहर गई, अशक्त बीमार है, माँ के सम्हालने की ताकत नहीं रही, बार बार पुचकारने पर भी चुप नहीं हो रहा है, माँ मृत्यु कर चुकी है तो अब पिताजी का कर्तव्य हो जाता है कि बालक की पूर्णरूप से सुरक्षा करे, सम्हाले तो कोई दोष नहीं है। दाम्पत्य जीवन में एक का कार्य दोनों का माना जाता है क्योंकि उन कार्य कलापों में मन वचन काय, कृत कारित अनुमोदना इन नव कोटियों का सम्बन्ध अवश्य पाया जाता है।

प्रश्न– 2550 पति ने छठवीं प्रतिमा वाली पत्नी से कहा कि जब तुम बच्चे को खिला पिला सकती हो तो हमको भी खिलाओ पिलाओ?

उत्तर नहीं, तुम समर्थ हो, जानकार हो, कष्ट को सहन करने में ताकतवान हो, तुमको बिना खिलाये भी जिन्दा रह सकते हो। तुम्हारा कुछ बिगड़ेगा नहीं, अपनी भूख, प्यास को, बीमारी, वेदना को ज्ञानामृत भोजन से शान्त करो, डरने से क्या? घबराने से क्या? इस कारण बलवीर्य को न छिपाकर ज्ञान से, संयम से वेदना को जीतो उसी से कर्म कटेंगे यदि आपकी आयु समाप्त होने वाली है तो क्या? रात्रि में पानी पीने से, भोजन करने से, औषधि लेने से बच जाओगे? अतः धर्मामृत का भोजनपान करो जिससे रोग बाधायें शान्त हो अतः रात्रि में नहीं खिला पिला सकते।

प्रश्न– 2551 रात्रि में भोजन न कराये सो ठीक है किंतु दवाई तो खिला सकती है?

उत्तर नहीं, न भोजन खिला सकती है, न दवाई खिलापिला सकती है किन्तु हर प्रकार से परिश्रम कर बाह्य उपचार से गर्मी को सर्दी से और सर्दी को गर्मी से दूर कर करा सकती है तथा ज्ञानामृताहार पान कराके संबोधन कर कष्ट का निवारण कर करा सकती है किन्तु पिण्डस्वरूप कवलाहार का नवकोटियों से त्याग होने के कारण नहीं करा सकती किन्तु बच्चे को स्तनपान कराके, दवाई खिलापिला के भी अपनी भूल की निन्दा गर्हा करती या करते हुए दम्पति प्रायश्चित्त ग्रहण करते हैं। जिससे पूर्वबद्धकर्म कमजोर हो जाते हैं और संक्रमण कर जाते है।

प्रश्न– 2552 इस प्रतिमा का दूसरा नाम क्या है?

उत्तर इस प्रतिमा का दूसरा नाम दिवामैथुन त्याग है अर्थात् दिन में नव कोटियों से मैथुन कर्म का त्याग

कहा है क्योंकि जितना संक्लेश या पाप कर्म का आश्रवबंध रात्रिभोजन करने से होता है उतना ही पाप कर्म का आश्रवबंध दिन में मैथुन सेवन करने से होता है अथवा अनन्तगुणा कर्मों का आश्रवबंध होता है क्योंकि मैथुन सेवन करने से 9 लाख पंचेंद्रिय, सैनी, सम्मूर्च्छन, नपुंसक वेदी मनुष्यों की हत्या होती है तथा लिंग के प्रत्येक आघात से असंख्यात करोड़ जीवों की विराधना होती है जिससे कर्मों का विशेष दुखदायक आश्रव बंध होता है।

प्रश्न– 2553 दिन में मैथुन सेवन करने से ही इतना पाप होता है या रात्रि में सेवन करने से भी होता है या नहीं?

उत्तर चाहे रात्रि में मैथुन सेवन करो या दिन में, पर्व के दिनों में या चालू दिनों में, सन्धि काल में या जब कभी भी द्रव्य हिंसा तो बराबर होने से समानता है किन्तु भाव हिंसा में रात्रि की अपेक्षा दिन में ज्यादा राग है क्योंकि जब रात्रि में कामक्रीड़ा करने से तृप्ति न हो पाई तो काम की तीव्रता होने से ही दिन में मैथुन सेवन करने लगा। इस तरह रात्रि की अपेक्षा दिन में अनन्तगुणी कषाय की वृद्धि होती है। अधिक मैथुन सेवन करने से धातु का क्षय होता है, नाना बीमारियां पैदा होती हैं, स्वास्थ्य बिगड़ता है, वीर्य क्षय होने से कमजोरी भी आती है, पशु पक्षी केवल गर्भाधान के लिए मैथुन सेवन करते हैं, हर वक्त नहीं। गर्भाधान होने के बाद कोई भी पशुपक्षी छेड़छाड़ नहीं करता इसलिए सभी पशु पक्षी, जानवर स्वस्थ्य रहते हैं। उनको डॉक्टर, वैद्य और दवाईयों की जरूरत नहीं होती परन्तु मनुष्य इन संज्ञाओं में पशु पक्षीगणों से भी ज्यादा गया बीता हो गया। विवेकहीन, निर्लज्ज, हीन बुद्धि वाला हो गया है। परिवार में भी हीन दृष्टि से देखा जाता है। सन्तानें भी ऐसी माँ बाप की चेष्टाओं से नफरत करने लगती हैं, मानमर्यादा प्रायः समाप्त हो जाती है अतः उभय लोक को सुधारने के लिए दिवामैथुन का त्याग कराया है।

प्रश्न– 2554 दिन में मैथुन का त्याग कराया है सो ठीक है तो क्या विवाहादि कार्य कर सकते हैं करा सकते हैं?

उत्तर नहीं, पहले श्रावकगण रात्रि में विवाह, रात्रि में विवाह की चर्चा, सगाई, सप्तपदी फेरे करते थे कराते थे, करवाते थे जिससे छठवीं प्रतिमा का तथा ब्रह्मचर्याणुव्रत का भी निर्दोष पालन, निरतिचार पालन होता था क्योंकि दिवामैथुनत्याग व्रत का पालन नवकोटि से किया जाता है। इसी तरह विपुलतृषा और अनंगक्रीड़ा अतिचार भी टलते थे। इससे लौकिक कार्य, धर्मकार्य और व्यापारादि कार्य भी सुचारू रूप से चलते रहते थे। लोकव्यवहार में कोई बाधा नहीं आती थी।

प्रश्न– 2555 आजकल दिन में शादी, सगाई, चर्चा आदि का प्रचार हो रहा है धन की आतिशबाजी की भी बचत होती है सो ऐसा कहना ठीक है क्या?

उत्तर यह कार्यक्रम परम्परा के विरुद्ध, प्रतिज्ञा के तथा परिणामों की विशुद्धि के विरुद्ध है, पापवर्द्धक है। दिन में यह कार्यक्रम किया और रात्रि में भोजनपान, पार्टी, शराब का पीना, नाच गान किया अथवा कराया। जबकि रात्रि में यह कार्यक्रम करने से, भोजनपान दिन में करने से पाप नहीं होता था, दिन में व्यापार और रात्रि में व्यवहार परस्पर में अच्छा होता था। धर्म के नियम का पालन होता था। अपना सौन्दर्य वस्त्राभूषणों से छिपा रहता था किन्तु आजकल दिन में शादी रात्रि

में भोजन, नाचगान होने से पाप की वृद्धि होती है, प्रेम व्यवहार टूट जाता है, एक साथ में पंक्तिबद्ध भोजन करने से जाति कुल की शुद्धि अशुद्धि की, आचार विचार की जानकारी हो जाती थी। जो प्रश्नकर्ता ने प्रश्न में कहा है कि धन की, आतिशबाजी की बचत होती है सो ठीक है रात्रि में भी आतिशबाजी मतकरो, दहेज मत मांगो, अपने भाग्य और पुरुषार्थ पर विश्वास नहीं है क्या? यदि है तो दहेज क्यों मागा? शौक श्रृंगार में, नाचगान, पार्टी में ज्यादा चूस लिया, दिन के भोजन में शराब की बोतले, जातिकुल और धर्म विरुद्ध भोजन दिख जाता था परन्तु रात्रि में भोजनपान करने कराने से दृष्टिगोचर न हो पाया और रात्रि में नशाकर, धूम्रपान कर, नाचगान कर सो गये दिन की शादी सगाई से पापाचार तो कम हुआ नहीं किन्तु व्रत नियम संयम धर्माचरण की हानि हुई और पाप की भी वृद्धि हुई।

प्रश्न– 2556 दिन में विवाहादि करने से लाईट का, आतिशबाजी का खर्च तो बच जाता है ऐसा स्वीकार क्यों नहीं करते हो?

उत्तर कुछ कार्यों का पैसा बचाया तो क्या हुआ पर दहेज मांगना, रात्रिभोजन, रात्रि में चाय नाश्ता, शराब पीना, नाचगान, लड़ाई झगड़ा, दहेज में कमी पड़ने पर बहु को निकाल देना, ताड़ना देना, माँ बाप को गालियां देना, जलाकर मार डालना, जहर देकर मार डालना आदि दुष्कर्म तो बन्द नहीं किया, सजावट पूरी की, बैंडबाजों का खर्च पूरा हुआ। अनेक प्रकार के खर्च पूरे हुए। यदि परम्परानुसार धर्म विवाह चालू हो जाय तो अनेकानेक अत्याचार समाप्त हो जाये।

प्रश्न– 2557 वेश्या बनने का या वेश्यागामी बनने का क्या कारण है?

उत्तर जब वर पक्ष वाले या स्वयं वर देखने आया लड़की ने लड़के को पति बनाने के भाव से देखा, वार्तालाप किया, प्रश्न किये, पति बनाने के भाव के अनुसार शरीर की चेष्टायें की, हावभाव दिखायें कि जिससे हम पर मोहित हो जायें, हमको अपनी पत्नी बना लें। ठीक यही विचार लड़के के हुए उसने भी पत्नि के भाव से देखा, वैसा ही वार्तालाप किया, संकेत किया, दोनों ने वार्ता में पति पत्नी का रूप भी भाव पूर्वक धारण कर लिया और तत्क्षण कर्मबन्ध भी होता चला गया, कुछ समय बाद विवाह नहीं हुआ, ऐसे ही प्रसंग अनेकों के साथ में होते हैं, टूट जाते हैं फिर जब यह कर्म अनेकों से सम्बन्ध वाला उदय में आता है तब अनेक पति या अनेक पत्नी रूप अवस्था को प्राप्त कर लेता है अर्थात् वेश्या बन जाती है और वह वेश्यागामी बन जाता है। इस प्रसंग में द्रौपदी के पूर्वभव का आर्यिका अवस्था का कथन समझने योग्य है।

प्रश्न– 2558 तो क्या बालक बालिकायें विवाह के लिए परस्पर में न देखें न वार्तालाप करें?

उत्तर नहीं। नहीं देखें, न वार्तालाप करें क्योंकि पहले नाई या माली वर वधु को देखने जाते थे। फिर कुछ समय के बाद माता पिता लड़के लड़की की योग्य खोजकर लेते थे और उन नवदम्पत्ति का जीवन स्वर्णमय निकलता था किसी प्रकार की परेशानियां नहीं आती थी लोक व्यवहार का जीवन और धर्म का जीवन संयम सहित सुख पूर्वक व्यतीत होता था।

प्रश्न 2559 ऐसा क्यों वे बालक बालिकायें स्वयं क्यों तलाश नहीं कर सकते हैं?

उत्तर जब बालक बालिका को सवा महिने या डेढ़ महीने में माँ बाप लेकर मंदिर में आते हैं तब गुरुजन या गृहस्थाचार्य ने आठ मूलगुणों का संस्कार किया था और पालन कराने का अधिकार माँ बाप को सौंपा था तथा जब आठ वर्ष के हुए तब गुरु के द्वारा प्रदत्तशीलव्रत कुंकुम संस्कार यज्ञोपवीत संस्कार किया था और इनके इन व्रतों का पालन स्वयं के अधिकार में तथा माँ बाप को भी कहा था कि इनके व्रतों का पालन कराना अब पाणिग्रहण के पहले तक का नियम लिया था यदि वे स्वयं पाणिग्रहण की विवाह की योजना बनाकर स्वयं तलाश करते हैं तो नियम कैसा? जब विवाह के विचार होते ही बालक बालिकाओं ने परस्पर में वचन व्यवहार किया, तदनुकूल हाथ आँख का भी संचार हुआ। मन वचन काय की प्रवृत्ति होने से शीलव्रत स्थिर कहाँ रहा? नियम व्रत नष्ट होने से भविष्य में जीवन कैसे सुखी होगा? जो जीव जितनी बार नियम लेकर तोड़ता है तो वह उतनी बार जन से, तन से, धन से, परिवार से, दासीदासों से दुःखी होता है इस कारण कर्म सिद्धांत की अपेक्षा, चरणानुयोग की अपेक्षा बालक बालिकाओं को स्वयं अपने आप खोज न कर माँ बाप खोज करते थे जिससे उनके व्रतों का पालन होता था और निष्प्रयोजन कर्मों का बंध भी नहीं होता था।

प्रश्न 2560 आजकल बालक बालिकायें स्वयं अपने आप शादी की वार्ता या परस्पर की खोज स्वयं कर लेते हैं सो यह दोष है क्या?

उत्तर हाँ, अवश्य ही दोष है जो स्वयं जातिकुल और धर्म की मर्यादा तोड़कर प्रेम विवाह करते हैं उनका सम्बन्ध 95 प्रतिशत अंत पर्यन्त सही एक धारा में नहीं चल पाता किन्तु बीच में ही सुख की धारा टूट जाती है क्योंकि धर्म छोड़ने से, मानमर्यादा का नियम तोड़ने से सुख कैसे होगा?

प्रश्न 2561 यदि दोष है तो पहले भी स्वयंवर होता था तो वह भी दोष होना चाहिए?

उत्तर राजा लोग, सेठ लोग अपनी पुत्रियों की स्वयंवर की व्यवस्था स्वयं करते थे वे पुत्रियां स्वयं स्वयंवर की व्यवस्था नहीं करती थी किन्तु जब मंगनी करने वाले अनेक राजा राजकुमार हैं तो उस समय मैं किससे बुरा बनूं, किसको दूं और किसे न दूं। जिसको कन्या दूंगा वह मित्र और जिसको न दी वह शत्रु बना अतः तब राजा ने जो जो मांगने वाले हैं उन सभी को आमंत्रित कर, मण्डप में बैठाकर, बाद में दासी के साथ कन्या मण्डप में गई, दासी प्रत्येक राजा और राजकुमारों का परिचय देती जाती है उस कन्या का जिस पर मन लगा उसीके गले में वरमाला डाल दी, वहाँ विवाह हो गया किन्तु यहाँ विशेष यह समझना है कि राजकन्या ने या स्वयंवर करने वाली कन्याओं ने पहले से वार्तालाप नहीं किया कि मैं तुमसे करूंगी या तुम मेरे को चाहो और विवाह महिनों बाद या वर्षों बाद हुआ तब तो दोष अवश्य लगा किन्तु स्वयंवर मण्डप में जो दूसरों के द्वारा रचवाया गया है वहाँ विचार होते ही तत्काल वरमाला डाल दी किन्तु आजकल प्रेमविवाह में मान मर्यादा का ध्यान न रख वर्षों से प्रेम बन्धन हो जाता है, भले ही शरीर से न हो अतः जब से विवाह का परिणाम बना तभी से व्रत नष्ट हुआ कहलाया। इस कारण वह व्रतभंगी कहलाया। जो जाति का भंगी है वह उत्थान कर सकता है किन्तु व्रतभंगी, महाभंगी का उत्थान नहीं हो सकता है।

प्रश्न– 2562 चौथे काल में भी विवाह के पहले कुन्ती ने पाण्डु से प्रेम विवाह कर लिया था, रुकमणी ने विवाह के पहले कृष्ण को, चेलना ने श्रेणिक को विवाह के पहले ही पति रूप में स्वीकार कर लिया था तब यह दोष है तो वर्तमान में प्रेम संबंध करना दोष है और यदि वह दोष नहीं है तो अब भी दोष नहीं है ऐसा स्वीकार करने में क्या आपत्ति है?

उत्तर दोष तो दोष ही है चाहे चौथाकाल हो या कोई भी काल हो, कोई भी क्षेत्र हो उक्त उदाहरणों में जो नाम गिनाये हैं उनका जीवन किस प्रकार से कष्ट में व्यतीत हुआ यह भी उनकी जीवन गाथा से समझ लेना चाहिये। उनका जीवन कितना दुःखी हुआ, बदनामी हुई आज भी शास्त्रों में पढ़ने को मिलता है तथा किसी भी दिगम्बर आचार्यों ने इन कार्यों की प्रशंसा नहीं की, न अच्छा कहा किन्तु काम मोह की महिमा बताकर धिक्कारा ही है, मान मर्यादा को नष्ट करने वाला ही कहा है। जैसे उदाहरणोक्तों का जीवन दुःखी था वैसा आज भी हो रहा है यह सबके प्रत्यक्ष है।

प्रश्न– 2563 कामतीव्राभिनिवेष अतिचार में और दिवामैथुन त्याग प्रतिमा में क्या अन्तर है?

उत्तर ब्रह्मचर्याणुव्रत धारण करने के बाद में काम सेवन करते हुए तृप्त न होना पुनः पुनः कबूतर की तरह काम सेवन करते रहना तथा दिवामैथुन त्याग प्रतिमा में रात्रि में काम सेवन करने पर तृप्ति होने से दिन में नहीं करता, क्वचित् कदाचित् दिन में भाव बन गया तो दोष लग गया पर कषाय मंद होने से काय से मैथुन सेवन नहीं करता। इस कारण जितनी भावों की निर्मलता या अशुभपना अणुव्रतों में और अतिचारों में है उससे अनन्त गुणी अधिक विशुद्धि निर्मलता प्रतिमा में रहेगी या प्रतिमा में कषाय तीव्र है तो आगे की प्रतिमाओं में कषाय और मन्द हो चुकी है। इसलिए अशुभपना कम होगा यही अन्तर है क्योंकि पंचम गुणस्थान के असंख्यात लोक प्रमाण भेद हैं फिर भी सामान्यतया 11 भेद प्रतिमानुसार आगम में बताये हैं।

प्रश्न– 2564 और भी अन्तर हो सकते हैं क्या?

उत्तर काम की तीव्र अभिलाषा स्वनिमित्तक स्वयं के लिए होती है वो नव कोटियां स्वयं के लिए होती हैं, पर के लिए नहीं, पर के सम्बन्ध के लिए नहीं परन्तु प्रतिमा में नव कोटियां स्वपर निमित्तक होती हैं यह भी अन्तर है।

प्रश्न– 2565 स्वनिमित्तक नव कोटियां किस प्रकार से होती हैं?

उत्तर मैं मन से स्वयं भोगू कितना आनन्द है या कितना बुरा है यह मन से कृत है। मैं इस प्रकार से भोगूंगा या इस अंग के माध्यम भोगूंगा मन से कारित है। भोगने के बाद मन में ही बहुत अच्छा भोगा, कितना आनन्द आया मन से अनुमोदना है। वचन से कहना कि मैं भोगता हूँ इस प्रकार वचन से कृत है। वचन से मैं इन हस्त पैर आदि के माध्यम से, अवलम्बन से भोगूंगा यह वचन से कारित। वचन से उच्चारण करना कि मैंने बहुत अच्छा भोगा, बहुत आनन्द आया वचन से अनुमोदना। किसी भी प्रकार से शरीर के अंग से क्रीड़ा करता हूँ काय से कृत है। शुभाशुभ

चेष्टायें शरीर के माध्यम से करवा रहा हूँ काय से कारित है। शरीर से कामक्रीड़ा करते हुए प्रसन्न होना, हाथ से, आँख से, मस्तिष्क से सराहना करना काय अनुमोदना है।

प्रश्न 2566 पर निमित्तक नव कोटियां किस प्रकार से होती हैं?

उत्तर मन में ही आप शुभ अशुभ कार्य करे या यह करता है वह करता है यह मन से कृत है। मन में ही तुम ऐसा कार्य करो या शुभाशुभ यह करे वह करे इस प्रकार मन से कारित है। मन में ही इसने या उसने या तुमने शुभ अशुभ कार्य अच्छा किया बहुत अच्छा हुआ मन से अनुमोदना है। वचन से वह या आप शुभाशुभ कार्य करते हैं या कार्य करो यह बोलना वचन से कृत है। वचन से दूसरों को शुभाशुभ कार्य में लगाना वचन से कारित है। वचन से शुभाशुभ कार्य करने पर साधुवाद देना बहुत अच्छा किया वचन से अनुमोदना है। शरीर के अंगों से दूसरों को शुभाशुभ कार्य के लिए प्रेरित करना काय से कृत है। शरीर के संकेतों से दूसरों को या दूसरों से कार्य करवाना काय से कारित है। शरीर से दूसरों के द्वारा किये गए कार्य में हाथ से, आँख से सराहना करना, प्रशंसा करना कार्य से अनुमोदना है। इस प्रकार से नवकोटियां सर्वत्र यथा प्रसंगानुसार लगा लेना चाहिए। जिससे अल्पज्ञानी भी अपने भावों को ये सदोष हैं या निर्दोष समझ सकते हैं और जब अंतरंग भावों से समझ लेंगे तो दोषों को छोड़ने में तथा गुणों को ग्रहण करने में समय नहीं लगेगा क्योंकि कितना ही भूखा व्यक्ति हो भूख को मिटाने के लिए जहर नहीं खाता है अथवा मक्खी चिपकी मिठाई को, रसगुल्ले को कोई समझदार नहीं खाता है क्योंकि वह समझता है कि इसके खाने से कष्ट ज्यादा होगा।

प्रश्न 2567 इस छठवीं प्रतिमा के दो नाम आचार्यों ने क्यों दिये, क्यों बताये?

उत्तर इंद्रियां पाँच होती हैं उनको दो भागों में बांटा गया है– कामेंद्रिय और भोगेंद्रिय। कामेंद्रिय के दो भेद हैं– स्पर्शेंद्रिय और रसनेंद्रिय। भोगेंद्रिय के तीन भेद हैं– घ्राणेंद्रिय, चक्षु इंद्रिय और कर्णेंद्रिय। इस कारण स्पर्शेंद्रिय के द्वारा काम वासना की उत्पत्ति, वृद्धि होती है जिस प्रकार खाद पानी के द्वारा वृक्ष हरा भरा रहता है और खाद पानी के बिना वृक्ष सूख जाता है इसी तरह भोजन पान करने से अधिक मात्रा में रजोवीर्य की उत्पत्ति होने से कामवासना जागृत होती है और भोजन पान नहीं किया तो नवीन उत्पत्ति नहीं होगी तो कामवासना भी एकाएक जागृत नहीं होगी। इस शाकाहार में भी शुद्ध सात्विक भोजन करने वालों को कामवासना कम मात्रा में होती है अतः नव कोटियों से रात्रि में भोजनपान का त्याग कराया। रात्रिभोजन का त्याग करने से समय व आकुलता बची, मलमूत्र क्षेपण करने की भी चिन्ता न होगी। बनाने वालों का भी समय बचा, धोना मांजना, झाड़ू लगाना, पोछा लगाने का समय बचा, जीव जन्तुओं की हिंसा न होगी, स्वास्थ्य भी ठीक रहेगा, समयानुसार सोयेगा उठेगा। ध्यानाध्ययन, तप जप करने से कर्मों का संवर और निर्जरा होगी। आत्मा की शुद्धि होगी तो कामवासना भी उत्पन्न न होगी क्योंकि सीमित भोजन पान, औषधि सेवन करने से सीमित रजोवीर्य की उत्पत्ति होती है जिससे कामवासना कम मात्रा में होती है और असीमित भोजन पान करने से असीमित रजोवीर्य की उत्पत्ति होने से कामवासना भी असीमित होगी तब ध्यानाध्ययन में मन कैसे लगेगा। समय कहाँ से मिलेगा? बताओ। इसीलिए मोक्षमार्गियों में कामवासना की तीव्रता न होने से अणुव्रतों को, महाव्रतों को

धारण करने में, पालन करने में कठिनाई का अनुभव नहीं होता है तथा जिन आचार्यों ने दिन में मैथुन का त्याग कराया है उनका अभिप्राय यह है अब भोजनपान सीमित हो चुका है रसनेंद्रियवश में कर ली है तो स्पर्शेंद्रिय को भी वश में करो। यदि स्पर्शेंद्रिय को वश में नहीं किया तो अधिक वीर्य शक्ति नष्ट होने से शारीरिक बल कमजोर होने से, श्वेत या रक्तप्रदर होने से, शारीरिक परिश्रम होने से, थकावट होने से, तन मन धन और धर्म नष्ट होते हैं इस कारण दिन का त्याग कराया। ध्यानाध्ययन में वृद्धि होने से, पाप की हानि होने से, पुण्य की वृद्धि होने से, वर्तमान में हिंसादि पाप न होने से, लोक में निन्दा न हो, बच्चों में बच्चियों में अच्छे संस्कार पड़े, निर्लज्जपना प्रकट न हो और पुण्य परिणामों की वृद्धि होने से, सत्कार्यों में वृद्धि होने से रात्रि में भी कामचेष्टा न होगी जिससे आत्मशुद्धि होगी। इसलिए सभी आचार्यों का एकमात्र अभिप्राय यह है कि आत्म स्थिरता हो इसी स्थिरता का नाम वास्तविक ब्रह्मचर्य और ब्रह्मचर्य धर्म का, व्रत का पालन करने के लिए, कामेंद्रियों को वश में करने के लिए दो नाम दिये हैं। चिन्तक और भी अर्थ निकाल सकते हैं अतः कोई दोष नहीं।

प्रश्न— 2568 सातवीं प्रतिमा किसे कहते हैं?

उत्तर **ब्रह्मचर्यव्रत या प्रतिमा पालन करने वाले या करने वाली परस्पर में एक दूसरों के अंगों को कैसे देखता है— जो रजोवीर्य से उत्पन्न होता है, इन्हीं से पुष्ट और वृद्धि को प्राप्त होता है, इन्हीं को शरीर से निकालता है, यह शरीर सर्वांग से पसीना आदि धातुओं को निकालता है, दुर्गन्ध युक्त है, मलमूत्र का पिटारा है। इस प्रकार शरीर के स्वभाव को भली भांति जानकर शरीर के प्रति, काम भोग के प्रति हेय बुद्धि रखकर, माध्यस्थ भाव धारण कर विरक्त होने को तथा आत्म सम्मुख अवस्था को ब्रह्मचर्य प्रतिमा कहते हैं। यह सातवें नंबर की है।**

प्रश्न— 2569 ब्रह्मचर्याणुव्रत और ब्रह्मचर्य प्रतिमा में क्या अन्तर है?

उत्तर **ब्रह्मचर्याणुव्रत में तो पाप से भयभीत होकर नवकोटियों से परस्त्री का, वेश्या का त्याग करता है किन्तु निज पत्नी का पूर्ण रूप से त्याग नहीं करता इसी तरह परपुरुष का तो सर्वथा त्याग करती है किन्तु निज पति का पूर्ण रूप से नहीं करती है। ब्रह्मचर्य प्रतिमा में नवकोटियों से पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य का पालन करता है करती है अथवा कामसेवन का, स्त्री मात्र का या पुरुष मात्र का त्याग करता है करती है तथा अणुव्रतों की अपेक्षा प्रतिमाओं में विशुद्धि अनन्तगुणी अधिक होती है। शृंगारालंकार का और नाना तरह के भोजन से विरक्त हो जाता है, संयमधारण करने की रात्रि दिन छटपटाहट लगी रहती है यह अंतर है, और भी हो सकते हैं।**

प्रश्न— 2570 ब्रह्मचर्य प्रतिमा और ब्रह्मचर्य महाव्रत में क्या अन्तर है?

उत्तर **यद्यपि ब्रह्मचर्य प्रतिमा और ब्रह्मचर्य महाव्रत में नवकोटियों से पालन करने की अपेक्षा कोई अंतर नहीं है। निषेध रुप में स्त्रीमात्र या पुरुषमात्र का काम सेवन के लिए त्याग है, स्वप्न में भी आलिंगन की भावना नहीं है फिर भी प्रतिमा की अपेक्षा महाव्रत में संज्वलन कषाय चौकड़ी के बिना शेष कषायों का पूर्णरूप से त्याग होने के कारण परिणामों में तथा दिनचर्या में अनन्तगुणी विशुद्धि होती है तथा चर्या में आकाश पाताल जैसा अन्तर हो जाता है। प्रतिमावाला आरम्भ**

परिग्रह का त्यागी नहीं हो सकता और त्यागी होता भी है। असमर्थ, असहायकों का क्वचित् कदाचित् सम्बन्ध करा सकता है क्योंकि प्रतिमा में आदि की दो चौकड़ी कषायों का अभाव है किन्तु महाव्रती नहीं करा सकता है कारण यह सर्वत्र सर्वथा त्यागी है।

प्रश्न– 2571 जब दोनों नवकोटियों से व्रत का पालन करते हैं तो दोनों एक हुए फिर अलग अलग कैसे या अंतर है तो कैसे?

उत्तर दोनों की नवकोटियों के नामों में अन्तर नहीं है किन्तु कषायों के सद्भाव और असद्भाव की अपेक्षा परिणामों में महान अंतर है क्योंकि प्रतिमावालों के अनंतानुबंधी कषाय का और अप्रत्याख्यानावरण कषाय का अभाव तथा प्रत्याख्यानावरण कषाय का और संज्वलन कषाय का उदय पाया जाता है और महाव्रती को आदि की तीन चौकड़ी कषाय का अभाव होता है अतः नाम की अपेक्षा एकता है और गुणस्थान के परिणामों की अपेक्षा, संवर निर्जरा की अपेक्षा महान अंतर है प्रतिमा का स्वामी गृहस्थ और महाव्रत का स्वामी मुनि है।

प्रश्न– 2572 सातवीं प्रतिमा वाला नव कोटियों से ब्रह्मचर्य का पालन करता है तब दूसरों की शादी कैसे करा सकता है?

उत्तर सातवीं प्रतिमावाला नवकोटियों से ब्रह्मचारी सबका सम्बन्ध नहीं कराता है किन्तु जो हर प्रकार से असमर्थ है, असहाय है, कोई देख रेख, बातचीत करने वाला नहीं है तो धर्म की रक्षा करने के लिए, जातिकुल की मर्यादा की शुद्धि के लिए, सामाजिक परम्परा को सुचारू रूप से निभाने के लिए करा सकता है। अन्यथा संस्कृति बिगड़ेगी, मर्यादा नष्ट हो जायेगी।

प्रश्न– 2573 सातवीं प्रतिमावाला दूसरों का विवाह भले ही कराये तो भी स्वयं के व्रत में दोष लगता ही है क्या?

उत्तर हाँ, दोष अवश्य ही लगता है किन्तु असमर्थ, असहाय का विवाह न कराये तथा वह अपने मन को वश करने के लिए अनुत्साही है, मन नहीं है, वेदकषायों को जीतने में असमर्थ है, विवाह नहीं हुआ तो जीवन पशुवत् बन जायेगा। वेश्या या वेश्यागामी बन जायेगा या पागल हो जायेगा या आत्महत्या कर लेगा। जिससे माँ बाप की, समाज की, धर्म, परम्परा की हानि और बदनामी होगी। अतः समाज की स्थितिकरण के लिए शादी कराना योग्य हो जाता है, आवश्यक हो जाता है। यदि किंचित् दोष के कारण महान गुणों की प्राप्ति हो, महान गुण हो तो थोड़ा दोष भी हानिकारक नहीं माना जाता है जैसे समुद्र में थोड़ी सी विष की कणिका समुद्र को दूषित नहीं कर पाती किन्तु समुद्र अपनी लहरों से विष की कणिका को किनारे में फेंक देता है इसी तरह व्रती दोषों को दूर फेंक देता है क्योंकि समाज की शुद्धि से, मान मर्यादा से ही धर्म की शुद्धि, मान मर्यादा कायम रहती है, क्या पात्र के बिना वस्तु रह सकती है?

प्रश्न– 2574–76 आठवीं प्रतिमा का नाम क्या है? आरम्भ किसे कहते हैं? कितने भेदवाला है?

उत्तर आठवीं प्रतिमा का नाम आरम्भ त्याग है। सांसारिक विषय भोगों की सामग्री को संग्रह करने के

लिए प्राप्त करने के लिए जो साधन किये जाते हैं, उपाय किये जाते हैं उस साधन को, उपाय को आरम्भ कहते हैं। अनेक भेदवाला है जैसे पानी भरना, आग जलाना, खेती करना, भोजन बनाना, व्यापार करना, कपड़े धोना, बर्तन मांजना, नौकरी करना, कपड़े सिलना, नाई धोबी, लुहार, सुनार आदि का आजीविका सम्बन्धी कार्य कूटना पीसना धोना आदि आरम्भ कहलाते हैं।

प्रश्न– 2577 आरम्भ करने से क्या हानि है? क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर आरम्भ से त्रस ही स्थावर जीवों की हिंसा होती है, नरकायु का आश्रवबन्ध होता है, प्रमाद की, कषायों की वृद्धि होती है, आर्तध्यान रौद्रध्यान की, अशुभलेश्याओं की उत्पत्ति होती है, पाप प्रकृतियों का आश्रवबंध होता है, अनेकों में शत्रुता बन जाती है जिसका काम कर दिया उसका मित्र और जिसका नहीं किया उसका शत्रु बन गया। लौकिक कार्य करते हुए भी असंतोष भाव हो गया, अतृप्ति भाव उत्पन्न हुआ इसी भाव से अतृप्त होकर नरकायु को बांध कर जब आयु कर्म उदय में आया तब नरक में उत्पन्न हुआ, तिर्यंच पर्याय में उत्पन्न हुआ वहाँ नाना प्रकार के कष्टों को भोगा आरम्भ का यही फल और यही हानि है।

प्रश्न– 2578 पानी भरना या जल का आरम्भ किस प्रकार से होता है?

उत्तर नदी, तालाब, कुंआ, बावड़ी, समुद्र, झरना आदि जलाशयों से किसी पात्र के द्वारा पानी भरकर अलग कर लेने को, हिलाने डुलाने को, ताड़ित करने को जल का आरम्भ कहते हैं। इससे जल जीवों की तथा जल में रहने वाले त्रस जीवों की विराधना होती है। हिंसा पाप हुआ व्याकुलता होने से आर्तध्यान तथा प्रसन्न होने से रौद्रध्यान उत्पन्न होता है शिकार व्यसन भी कहलाया इंद्रिय जन्य सुख में आसक्त होने से एकेंद्रिय जाति नामकर्म, स्थावर नामकर्म आदि प्रकृतियों का आश्रव बंध होता है।

प्रश्न– 2579 अग्नि जलाने से किस प्रकार का आरम्भ होता है जीव विराधना किस प्रकार से होती है?

उत्तर आग जलाने के लिए सर्वप्रथम ईंधन की तलाश करना, इकट्ठा करना फिर किससे आग जलायें, वह क्या साधन है जिससे आग लगाते हैं उससे ईंधन के जलने से वनस्पति की विराधना, पृथ्वी की विराधना, हवा की विराधना, त्रस स्थावर जीवों की विराधना, अग्निकायिक जीवों की विराधना होती है तथा जहाँ तक अग्नि की लौ, ज्योति या धुआं जायेगा या जाता है वहाँ तक के त्रस स्थावर जीवों की विराधना होती है यहाँ तक कि पशुपक्षी और मनुष्य भी जल मरते हैं।

प्रश्न– 2580 कूटने पीसने से किस प्रकार का आरम्भ होता है कि जिससे हिंसा पाप होता है तथा पापकर्मों का आश्रव बंध भी होता है क्या?

उत्तर मिर्च मसाला, नमक, औषधि कूटने से, धान्य, पीसने से आरम्भ होता है तथा घुना कूटने पीसने से, चक्की चलने से, चलाने से, सिलबट्टा, लोढ़ा के घर्षण से जीवों की विराधना होती है त्रस जीवों की विराधना भी हो जाती है पतंगों के पैर, पंखे भी टूट जाते हैं अतः कूटने से जीव हिंसा होने के कारण आरम्भ कहा और यही परिग्रह होने से अशुभ पाप कर्मों का आश्रव बंध होता है। अतः भोग उपभोग की सामग्री का संचय करने के लिए योग की क्रियाओं को आरंभ कहा है।

प्रश्न– 2581 खेती करने से अनेक जीवों का उपकार होता है फिर भी आरम्भ पूर्वक हिंसा होती है ऐसा क्यों कहा अथवा सावधानी पूर्वक करने से आरम्भी हिंसा कैसे हो सकती है?

उत्तर खेती करने से जीवों का उपकार नहीं होता है किंतु उत्पन्न हुई फसल से उपकार होता है क्योंकि अनेक त्रस जीवों की विराधना या टुकड़े टुकड़े हो जाते हैं जहाँ आरम्भ है वहाँ हिंसा है क्योंकि खेती में हल चलाना, बखर चलाना, खाद पानी डालना, फैलाना, आग लगाना, जहरीली कीटनाशक औषधियां डालना, छिड़कना इससे त्रसजीव कीटाणु शीघ्र ही मर जाते हैं। उपकार तो बाद में होता है किन्तु विराधना, जीव हिंसा तो पहले हो गई। यदि इस खेत के व्यापार में या खेती किसानी के काम में सावधानी वर्ती जाय तो आरम्भी हिंसा होती है और असावधानी वर्ती जाय तो संकल्पी हिंसा हो जाती है। सावधानी वर्तने से भाव हिंसा कम तथा असावधानी होने से भावहिंसा ज्यादा होती है।

प्रश्न– 2582 झाडू लगाने को आरम्भ क्यों कहा? झाडू लगाने से हिंसा कैसे हो सकती है?

उत्तर झाडू लगाने से चर और अचर जीवों की, त्रस स्थावर जीवों की विराधना होने से और परिणामों में राग का सद्भाव होने से विराधना होती है तथा पानी साथ में होने से त्रस जीवों की भी विराधना होती है या सूखी भूमि पर कीड़े, चीटे आदि अनेक जीव जन्तु हो सकते हैं झाडू लगाने से, इकट्ठे करने से जीवों की विराधना होती है। यदि जीव जन्तु हैं तो सर्वप्रथम मुलायम वस्त्र से उन जीवों को अलग करके फिर कचरा झाडू से अलग कर सकते हो परन्तु ऐसा न कर जीव जन्तु देखते हुए भी सीधे सीक झाडू से या खजूर की झाडू से झाड़ दिया जीव मर गये। जीव जन्तुओं को देखते हुए मार दिया तो संकल्पी हिंसा कहलाई और त्रस जीवों की रक्षा करते हुए सफाई की तो आरम्भी हिंसा कहलायेगी।

प्रश्न– 2583 जिस प्रकार आरंभ की आज्ञा देने वाला महापापी है ऐसा आपने कहा है तो इसी प्रकार सत्कार्य की आज्ञा देने वाला कारित से कार्य कराने वाला भी महान धर्मात्मा कहलाया ऐसा है क्या?

उत्तर पाप कार्य के लिए, दुष्कर्म के लिए साम्परायिक आश्रव के 108 भंग पर्याप्त मात्रा में एक समान कर्म का बंध कराते हैं यह सत्य है और फल भी पूर्ण रूप से प्राप्त होगा यह भी सत्य है किंतु पूर्ण पुण्य बंध के लिए या कर्मों को काटने के लिए स्वकृत के समान 107 भंग समर्थ नहीं है क्योंकि जिस प्रकार अहमिन्द्र पद, लौकान्तिक देव, इन्द्र, इन्द्राणी पद और उच्च पद स्वयं की साधना से प्राप्त होते हैं, ऐसे ये पद 107 भंगों से प्राप्त नहीं हो सकते हैं अन्यथा कोई भी संसार में न रहेगा सबको साधना के 107 भंगों के प्रयोग से उच्च पद की मोक्ष की प्राप्ति हो जायेगी सो ऐसा होता नहीं है इसका कारण पाप कर्मों के बंध के लिए 108 भंग पूर्ण समर्थ है किन्तु उच्च पद के लिए, मोक्ष के लिए स्वकृत के समान 107 भंग समर्थ नहीं हैं। इनसे कुछ ही हीन पदों की प्राप्ति हो सकती है, सभी की नहीं अतः आज्ञा देने वाला, कराने वाला सत्कार्य कराने के लिए

महान पुण्यात्मा नहीं कहलायेगा। अन्यथा सभी को 107 भंगों के प्रयोग से मोक्ष की प्राप्ति हो जायेगी फिर वे स्वकृत साधना का कष्ट क्यों उठायें? परिश्रम क्यों करना पड़े?

प्रश्न– 2584 हमतो झाडू पोता लगाते नहीं नौकर लगाता है फिर हमें दोष क्यों लगेगा?

उत्तर बात सत्य है कि आप झाडू पोछा नहीं लगाते हैं पर आज्ञा तो आपने दी है आपकी आज्ञा से नौकर ने झाडू लगाई तब आपको दुगुणा पाप लगा प्रथम तो आपने आज्ञा दी और दूसरा प्रमाद, समिति का पालन नहीं हुआ। यदि अपने हाथ से सफाई करते तो सावधानी रखते और जीवों की हिंसा भी नहीं होती तब महान पाप नहीं होता क्योंकि आज्ञा देने वाला महान पापी है, आज्ञा पालन करने वाला निर्दोष भी हो सकता है। जैसे सेनापति की आज्ञा से सेना मारकाट करती है पर मारकाट का, पाप का अधिकारी सेनापति है सेना नहीं जैसे रावण की आज्ञा से सेना ने रावण के भाई और पुत्रों ने युद्ध किया फिर भी जीतकर, हारकर, विरक्त होकर, दीक्षा धारण कर, तप से कर्मों को क्षयकर मोक्ष प्राप्त किया किन्तु रावण आज्ञा देकर पाप बंध करके नरक गया क्योंकि इसमें कषाय तीव्र है इसी तरह आपने झाडू नहीं लगाई पर आज्ञा मानकर झाडू नौकर ने लगाई इस कारण रावण के समान आप आज्ञा देने वाले हैं। अतः यदि आप पाप से भयभीत हैं तो स्वयं अपने हाथ से झाडू लगाओ नौकर से मत लगवाओ अन्यथा प्रमाद होने से संकल्पी हिंसा का पाप लगता ही है, कोई टाल नहीं सकता।

प्रश्न– 2585 व्यापार को आरम्भीहिंसा में क्यों ग्रहण किया, इस व्यापार को उद्योगी हिंसा कहना चाहिये था?

उत्तर व्यापार करने से ग्राहक और व्यापारी को लेन देन और दलाल को प्रयत्न करना होता है धान्यादि घुने होते हैं। भोज्य सामग्री में कीड़े मकोड़े, चीटीं, लट आदि पड़ जाते हैं और उनका क्रय विक्रय करने से जीवों की विराधना होती है तथा अब दोनों के या तीनों के मन में माया कषाय और लोभ कषाय अथवा सभी कषायें प्रमाद के साथ आ जाती हैं, प्रमाद की उत्पत्ति वृद्धि होती है। खरीदने वाले को ग्राहक कहते हैं। बिक्री करने वाले को व्यापारी कहते हैं दोनों को सहायता पहुँचाने वाले व्यक्ति को दलाल कहते हैं। कहावत है–'**या मरेगा लेवा या मरेगा देवा मौज करै बलदेवा।**' इस कारण इस व्यापार में चारों हिंसायें आ जाती हैं। जैसे व्यापार में उद्योगी हिंसा तो है ही उस व्यापार के साथ कूटना, पीसना, झाडू लगाना आदि होने से आरम्भी हिंसा होती है। कोई चोरी कर ले, व्यापार में कुछ गड़बड़ी कर दे तो विरोधी हिंसा हो जाती है तथा असावधानी होने से संकल्पी हिंसा होती है इसी तरह शेष झूठ पाप, चोरी पाप, कुशील पाप, परिग्रह पाप भी बिना बुलाये आ जाते हैं। इस प्रकार इस आरंभ में प्रसंगानुसार सभी हिंसायें आ जाती है और हिंसाओं में आनंद मानने से सभी रौद्रध्यान भी आ जाते हैं।

प्रश्न– 2586 नौकरी करना, भूमि खोदना, कूटना, पीसना, झाड़ना, बीज बोना काटना आदि को आरम्भ क्यों कहा?

उत्तर ये सभी कार्य उदरपूर्ति के साधन होने से, जीवों की विराधना के साधन होने से आरम्भ कहा है

अथवा हिंसा का, परिग्रह का साधन होने से आरम्भ कहा है। सावधानी पूर्वक होने से आरम्भी हिंसा और असावधानी पूर्वक होने से संकल्पी हिंसा है ऐसा समझना।

प्रश्न– 2587 कसाई कहता है कि परिवार का पालन करना मेरा कर्तव्य है पशुओं को काटकर, बेंचकर, धन कमाकर पालूं या किसी भी तरीके से पालूं?

उत्तर कसाई ने अपने ढंग से जवाब दिया सो ठीक है परिवार का पालन पोषण करना यह भी कर्तव्य है परन्तु कौन सा व्यापार करना इस प्रकार सोचना चाहिए। यदि पशु को काटकर अपने परिवार का पालन पोषण करते हो तो चोर भी कहेगा कि यह चोरी करना, डाका डालना, अपहरण करना मेरा पेशा है, मेरा कर्तव्य है, परिवार का पालन पोषण करना मेरा काम है, मैं कैसे करूं? इसी तरह वेश्या भी कहेगी कि यह भी मेरा व्यापार है मैं यौन व्यापार से अपना और अपने बाल बच्चों का पालन पोषण करती हूँ। इसी तरह हर एक व्यक्ति कह सकता है और कोई न कोई हेतु दे सकता है फिर सम्यक् मिथ्या का कोई निर्णय न हो सकेगा। फिर सरकार का कोई भी कानून न लगेगा क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपना अपना हेतु बता देगा तथा ईश्वर का, अल्ला का भी नाम लेकर कह सकता है कि मेरे को ईश्वर ने, अल्ला ने भेजा है, काम करवाया है और मैंने उनकी आज्ञा से किया है, मैंने स्वयं नहीं किया तब अपराधी कौन? अपराध करने वाला अपराधी है या आज्ञा देने वाला अपराधी? यदि आज्ञा देने वाला अपराधी है तो सरकार को, कोर्ट को चाहिए कि उस आज्ञा देने वाले को पकड़कर जेल में डाले। यदि अपराध करने वाला अपराधी है तो उसे जेल में डालता है तो क्या सरकार कोर्ट ईश्वर को, अल्ला को नहीं मानता है यदि मानता है तो उसकी आज्ञा का पालन करे तो फिर कोर्ट कचहरी किस काम की और कोई भी सरकार, कोर्ट कचहरी ईश्वर को, अल्ला को जेल में डाल नहीं सकता है क्योंकि वह निरंजन, निराकार, अशरीरी है, पकड़ में, बन्धन में आ ही नहीं सकता। इसलिए अपना अहिंसा धर्म, जीवदया धर्म नष्ट कर परिवार का पालन पोषण करना ठीक नहीं है किन्तु धर्म की रक्षा करते हुए, जीव रक्षा करते हुए सरकार के नियमों का उल्लंघन न कर पालन कर समीचीन व्यापार करके परिवार का पालन पोषण करना चाहिए। यदि कसाई मूक पशुओं को काटकर, कमजोर जीवों को काटकर परिवार का पालन पोषण करता है तो इसमें क्या वीरता? सर्वप्रथम समर्थ शक्तिशाली को मारे काटे या अपने ही परिवार के असमर्थ कमजोर को मार काटकर व्यापार कर शेष परिवार का पालन पोषण करे मूक प्राणियों को क्यों मारता है अतः अहिंसक व्यापार के द्वारा पालन पोषण करने का, सबकी रक्षा करने का अपना कर्तव्य समझो। अपने और अपने परिवार के समान समस्त पशु पक्षियों को, प्राणियों को समझो।

प्रश्न– 2588 पाँचों इंद्रियों से नाना क्रियायें की जाती है यदि वे सभी आरम्भ हैं तो इनसे भी क्या हिंसा पाप होता है?

उत्तर स्नान करना, वस्त्र धोना, बर्तन मांजना, तेल साबुन, उबटन लगाकर स्नान करना, उठना बैठना, चलना फिरना, हाथ पैर हिलाना डुलाना, देखना, सूंघना, शब्द सुनना आदि कार्य इंद्रिय विषय कषाय पूर्वक होने से आरम्भ ही है, हिंसादि पाप ही है तभी तो जिनदीक्षा धारण करने के पहले

पाँचों इंद्रियों का मुंडन, वचन का मुंडन, हाथ पैर का मुंडन, शरीर का मुंडन, मन का मुंडन, इन दस मुंडनों के बाद में शिर का मुंडन करने को कहा है। इसलिए आठवीं प्रतिमा वाला उपरोक्त कार्यों को कदाचित् करना पड़े तो दान पूजा आदि धर्म के निमित्त, संयम के निमित्त करता है। लौकिक कार्यों के निमित्त नहीं करता है क्योंकि इसने समस्त आरम्भ का त्याग किया है।

प्रश्न– 2589 दानपूजा, स्वाध्याय, वैयावृत आदि के निमित्त पानी भरना आदि आरंभ है तो इनका भी त्याग कराया है क्या?

उत्तर उक्त कार्य आरम्भ अवश्य हैं किंचित् हिंसा भी होती है फिर भी महान आत्म विशुद्धि के साधन होने से इनका त्याग नहीं कराया है किन्तु जिन आरम्भों से संसार शरीर और भोगों की पुष्टि होती है। एकमात्र पाप का ही आश्रवबंध होता है सो ऐसे आरम्भों का त्याग कराया है, मोक्ष के निमित्त आरम्भों का नहीं। यदि धर्म के निमित्त आरम्भों का त्याग करा देते तो आठवीं प्रतिमा में और मुनिव्रत में कोई भेद नहीं रहता, दोनों एक हो जाते किन्तु दोनों के लक्षणों में अंतरंग बहिरंग में भेद होने से भेद स्पष्ट अनुभव गोचर होता है।

प्रश्न– 2590–2591 नवमीं प्रतिमा का नाम क्या है? लक्षण क्या है?

उत्तर नवमीं प्रतिमा का नाम परिग्रह त्याग है। समस्त आत्म प्रदेशों से या समस्त योनियों में विषय कषायों के द्वारा सम्यक्श्रद्धान के बिना, प्रमाद भावों के द्वारा पर पदार्थों के साथ एक क्षेत्रावगाही रूप से या संयोग संबन्धरूप से ग्रहण करने को, ममत्व परिणाम को परिग्रह कहते हैं तथा ममत्व परिणामों को उत्पन्न कराने वाली बाह्य सामग्री को भी हेतु हेतुमद्भाव से परिग्रह कहते हैं। अंतरंग विकारी परिणाम भावपरिग्रह है और इसका बाह्य परिकर बाह्य परिग्रह है। इन दोनों प्रकार के अंतरंग और बहिरंग परिग्रह के त्याग को परिग्रह त्याग प्रतिमा कहते हैं अथवा अंतरंग में अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदयाभाव और प्रत्याख्यानावरण कषायोदय के सद्भाव तथा मायाकषाय और लोभ कषाय के मंदोदय होने पर तथा इन्हीं के स्थूल रूप से उदयाभाव में जो परिग्रह से निवृत्ति भाव उत्पन्न होता है उसे परिग्रह त्याग प्रतिमा करते हैं।

प्रश्न– 2592 इस प्रकार इस प्रतिमा में सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग हो जाता है या कुछ शेष रहता है और घर में क्यों रहता है?

उत्तर इस प्रतिमा में सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग नहीं होता है किन्तु जितनी चल अचल सम्पत्ति की जरूरत है उतनी ही रखता है, ज्यादा नहीं। अत्यधिक संतोषवृत्ति है, विषय कषायों पर विजय प्राप्त कर चुका है। सम्पूर्ण परिग्रह का, मकान दुकान, परिवार, धन दौलत का प्रत्याख्यानावरण कषायोदय का सद्भाव होने से त्याग नहीं कर पा रहा है।

प्रश्न– 2593 परिग्रहप्रमाण अणुव्रत में और परिग्रह त्याग प्रतिमा में क्या अंतर है?

उत्तर परिग्रह प्रमाणअणुव्रत जीवन पर्यन्त के व्यापार, खेती, आरंभ परिग्रह का, परिग्रह प्रमाण परिवार की अपेक्षा को भी साथ में लेकर किया जाता है क्योंकि संतानों को पढ़ाना, लिखाना, शादी संबंध कराना आदि करना है अतः इस अवस्था में परिग्रह का प्रमाण बहुत बड़ा होता है। परिग्रह त्याग प्रतिमा में त्याग सूक्ष्म हो जाता है, केवल स्वनिमित्तक होता है। आरंभ का, व्यापार का,

गृहकार्यों का बहुत त्याग हो जाता है। प्रत्याख्यानावरण कषाय का अत्यन्त मंद उदय होने से मुनि पद को ग्रहण करने के अत्यन्त निकट में आ जाता है आदि अंतर है।

प्रश्न– 2594 परिग्रह त्याग प्रतिमा और परिग्रह त्याग महाव्रत में क्या अंतर है?

उत्तर प्रथम सागार है तो दूसरा अनगार है। प्रथम अणुव्रती है तो दूसरा महाव्रती है। प्रथम के प्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय है तो दूसरे के प्रत्याख्यानावरण कषाय का उदयाभाव है, संज्वलन कषाय का उदय है। प्रथम के कुछ जरूरत के अनुसार परिग्रह है, आजीविका का साधन है, हीन पुरुषार्थी है किंतु दूसरे के समस्त प्रकार से सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग है तथा उत्कृष्ट पुरुषार्थी है। प्रथम ने संज्ञाओं पर पूर्ण विजय प्राप्त नहीं कर पाया है और दूसरे ने बहुत कुछ विजय प्राप्त कर लिया है। इसके अलावा इनमें और भी अंतर हो सकते हैं।

प्रश्न– 2595 आरम्भ और परिग्रह में क्या अंतर है?

उत्तर जितना अंतर फूल और फलों में है उतना ही अंतर आरम्भ और परिग्रह में है फूल पहले आता है, फल बाद में। इसी तरह पहले आरम्भ और बाद में परिग्रह। आरम्भ में सफलता मिलने पर जो कुछ प्राप्त हुआ उसके फल का नाम परिग्रह है यही अंतर है। इस कारण जो पहले आया उसे पहले भेजा, त्याग किया और जो बाद में आया उसे बाद में भेजा। इस नियम के अनुसार आरम्भ पहले और परिग्रह बाद में अतः आरंभत्याग प्रतिमा आठवीं तो परिग्रह त्याग नाम की प्रतिमा नवमीं है। प्रथम आठवीं प्रतिमा का परिग्रह त्याग प्रतिमा में कारण कार्य संबंध है क्योंकि आरंभ के त्याग के बाद परिग्रह का त्याग बताया है।

प्रश्न– 2596 परिग्रह के 24 भेदों में से नवमीं प्रतिमा में कितने प्रकार के परिग्रह का त्याग है और कितने का सद्भाव है?

उत्तर इस प्रतिमा का नाम परिग्रहत्याग प्रतिमा है। इसमें केवल परिग्रह की मात्रा कम हुई। 24 भेदों में से किसी भी परिग्रह का पूर्णरूप से त्याग नहीं हुआ है अथवा कर्म सिद्धान्त रूप द्रव्यानुयोग की दृष्टि से जिस जीव ने दर्शनमोहनीय कर्म का क्षय उपशम और क्षयोपशम कर दिया है ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव की अपेक्षा अंतरंग परिग्रह रूप मिथ्यात्व का त्याग होने से अंतरंग परिग्रह 13 प्रकार का और बहिरंग परिग्रह 14 प्रकार का मौजूद है अथवा कषायों का, दुर्ध्यानों का, दुर्लेश्याओं का अत्यन्त मंदोदय होने से या हीन होने से गृह त्यागकर संघ में प्रवेश कर जाने से वस्त्र और थोड़ा सा रुपया पैसा रखकर शेष का त्याग कर देता है अथवा रुपया पैसा, सोनाचांदी, मकान दुकान, परिवार का भी त्याग कर देता है अथवा अपने परिणामों के अनुसार केवल वस्त्र रखकर शेष नव प्रकार के परिग्रह का त्याग कर देता है। इस कारण एक प्रकार का बहिरंग परिग्रह और 13 प्रकार का अंतरंग परिग्रह इस तरह नवमीं प्रतिमावाले के 14 प्रकार का परिग्रह रह सकता है अर्थात् संघ में रहने से 14 प्रकार का परिग्रह और घर में रहने से 23 प्रकार का परिग्रह रहता है।

प्रश्न– 2597 आजकल गृहत्यागी बनकर के संघों में रहकर नाना प्रकार से धन संचयकर मंदिर के निमित्त, शास्त्रों के निमित्त, संघ के निमित्त, आहार दान

के निमित्त, यात्रा के निमित्त, धर्मशाला के निमित्त, औषधिशाला के निमित्त, जीर्णोद्धार के निमित्त, आश्रम तथा गुरुकुल के निमित्त रुपया पैसा इकट्ठा कर अधिष्ठाता, मालिक बन जाते हैं तो इन्हें परिग्रह त्यागी गृह त्यागी या महाव्रती कह सकते हैं क्या?

उत्तर उन गृह त्यागी, परिग्रह त्यागी अणुव्रतियों अथवा महाव्रत धारी जीवों का यह कार्य लंगोटी छोड़कर, चड्ढी का त्यागकर धोती पहनने के बराबर है या उल्टी कर पुनः चांटने के बराबर है। सो कैसे? ध्यान से सुनो उन अधिष्ठाताओं ने बाह्य में धर्मायतनों को निमित्त बनाकर अंतरंग में भोग का निमित्त, भोग का साधन बना लिया है तभी तो जिनदीक्षा, मुनिमुद्रा धारण करने के भाव नहीं बन पाते अंत तक दीक्षा नहीं ले पाते इनके रहने का, ठहरने का, बैठने का स्थान साहूकारों जैसा बना होता है, भोजन की व्यवस्था सीमित है, इच्छानुसार भोजन बनाने वाले हैं, जो पगार देकर रखे हुए हैं। जिन्होंने संस्था के लिए रूपया नहीं दिया है, न दिलाया है तो उन त्यागी व्रतियों को, गृहस्थों को रहने की, भोजन की किंचित् भी व्यवस्था नहीं हो पाती है। नाना तरह के लांछन लगाकर निकाल दिया जाता है अथवा पंथवाद या दूसरे संघ का है ऐसा दोष लगाकर जगह नहीं दी जाती है या कमेटी ट्रष्टियों का बहाना बनाकर, मनाकर दिया जाता है। उन स्थानों में केवल अधिष्ठाता, अध्यक्ष, ट्रष्टिगण और सदस्य, दानदाता, आज्ञानुवर्ती गृहस्थों को, शिष्यों को जगह दी जाती है तथा अपने सम्प्रदाय वालों को जगह दी जाती है, भिन्न सम्प्रदाय वालों को नहीं। रुपया पैसा दान के नाम पर सब से ले लिया जायेगा पर जगह सबको नहीं दी जायेगी। यह कैसी विडंबना है। ऐसे मोहियों को संबोधन करते हुए आ. श्री शुभचन्द्रजी ने ज्ञानार्णव में अ. 4 गा. 56 में कहा है– 'यतित्त्वं जीवनोपायं कुर्वन्तः किं न लज्जिताः। मातुः पण्य मिवालम्ब्य यथा केचित् गतघृणाः।।' जिस प्रकार लोक में कोई समर्थ मनुष्य प्रमादी बनकर, अकर्मण्य होकर भी अपनी माँ से वेश्याकर्म कराकर, अपनी आजीविका चलाकर लज्जित क्यों नहीं होता है। माँ पूज्य होती है उससे आजीविका नहीं चलाई जाती है। इसी तरह मुनि पद, आर्यिका, त्यागी, वैरागी पद आदि महान उत्कृष्ट पूज्यपद धारण करके मोक्ष की साधना करनी चाहिए, न कि इन पदों को धारणकर उदर पूर्ति का साधन बनाना चाहिए और जो बना रहे हैं वे लज्जित क्यों नहीं होते? यदि ये नामधारी त्यागी घर में रहते तो इतना धन न कमा पाते, न इतना बड़ा मकान बनवा पाते, न ऐसा भोजन कर पाते परन्तु बगुला जैसा वेष बनाकर आत्मवंचना करते हुए दूसरों को भी ठगते हैं। यदि इन आयतनों के प्रति तीव्र लोभ नहीं है तो त्याग कर पुनः मन, वचन, काय, कृत, कारित अनुमोदना से संस्थाओं से सम्बन्ध तोड़कर अन्यत्र देशान्तरों में विहार कर जायें, पीछे मुड़कर, घूमकर न देखें किन्तु इतना सब कुछ बनने के बाद में विहार करते हैं तो धन संचय के लिए ही, नाना योजनायें बनाकर ही जाते हैं तथा फोन फैक्स आदि के द्वारा सम्बन्ध बनाये ही रखते हैं अतः ऊपर ठीक ही कहा है। इसलिए उनको गृहत्यागी, परिग्रहत्यागी न कहकर धर्म भोगी, धर्म के फल के भोगी कहते हैं यहाँ धर्म से मतलब भोग के निमित्त पुण्य से है, निदान आर्तध्यान से है, मोक्ष के निमित्त पुण्य से नहीं। इस कारण इन

मठाधीशों ने धर्म को, मोक्षमार्ग को, भोग के निमित्त धारण किया है जैसे कि नारायण, प्रतिनारायणों ने पूर्वभव में भोग के निमित्त, संयम पालन कर, मरण कर, स्वर्ग के सुख भोगकर, मरणकर, मनुष्य भव प्राप्त कर, नारायण प्रतिनारायण पदवी पाकर, तत्सम्बन्धी सुख भोगकर मरणकर, नरकगति के पात्र बने। अतः भोग के निमित्त संयम धारण कर दुर्गति के पात्र बनेंगे। अतः संयम को भोग का निमित्त न बनाकर मोक्ष का ही निमित्त बनाना चाहिए। जिससे उभय लोक में जीवन सुख से व्यतीत हो यही समीचीन धर्म का फल है। शेष पाप का फल है।

प्रश्न– 2598 परिग्रह किसे कहते हैं?

उत्तर अखण्ड शुद्ध चैतन्य पिण्ड से भिन्न जो विकारी परिणाम है, विकारी अवस्था है इसके माध्यम से आकर्षण को प्राप्त ज्ञानावरणादि सत्ता में स्थित द्रव्य कर्म, उदय में आकर जो शरीरादि की प्राप्ति नोकर्म इंद्रियगोचर तथा इन्हीं से सम्बन्ध रखने वाली नोकर्म की नोकर्म बाह्य सामग्री जो पुनः पुनः विकार को उत्पन्न करती है अथवा विषयकषायों को विषयवासना तथा इसमें साधक बाधक सामग्री को परिग्रह कहते हैं। इनके त्याग को परिग्रह त्याग प्रतिमा कहते हैं।

प्रश्न– 2599–2600 दसवीं प्रतिमा का नाम क्या है? लक्षण क्या है?

उत्तर दसवीं प्रतिमा का नाम अनुमति त्याग है। आरम्भ परिग्रह में, विषय भोगों में, शृंगार अलंकार में, लौकिक सत्कार पुरस्कार की प्रशंसा में, समस्त लौकिक ख्याति पूजा लाभ और विवाहादि अशुभ कार्यों में, मन वचन काय से साधुवाद देना, प्रशंसा करना, आदर सम्मान करने को पाप की अनुमति कहते हैं और इसके त्याग को अनुमतित्याग नाम की दसवीं प्रतिमा कहते हैं।

प्रश्न– 2601 यहाँ पर अनुमति का त्याग कराया है मन वचन काय कृत कारित का नहीं ऐसा है क्या?

उत्तर ऐसा नहीं है कि जिसने अनुमति का, अनुमोदना करने का त्याग किया है और शेष का त्याग नहीं करें ऐसा हो नहीं सकता जैसे किसी व्यक्ति ने छत पर पहुंचने के लिए अंतिम सीढ़ी पर पैर रखा है, रख लिया है तो उसने पहले की सभी समस्त सिढ़ियों को स्पर्श कर लिया है, पार किया है तभी तो अंत में पहुँचा है अथवा जो लखपति है वह नियम से हजारपति है किन्तु जो हजारपति है वह लखपति हो और न भी हो संभव है। इसी तरह जिसने मन से त्याग किया है वह वचन काय से करे या न करे संभव है किन्तु जिसने काय से त्याग किया है उसने मन से, वचन से नियम पूर्वक त्याग किया है। कृत से त्याग किया है तो वह कारित अनुमोदना त्याग करे न करे संभव है किन्तु अनुमोदना से त्याग किया है तो उसने नियम से कृत कारित का त्याग किया है अतः दसवीं प्रतिमा में नवकोटियों से सांसारिक कार्यों का त्याग कराया है।

प्रश्न– 2602–03 अनुमति किसे कहते हैं? अनुमति के कितने भेद हैं?

उत्तर आपने बहुत अच्छा किया, ऐसा ही करना चाहिए, पुनः भरपूर सराहना करना इस प्रकार करने को अनुमति अनुमोदना कहते हैं। इसके तीन भेद हैं। पाप की अनुमोदना, पुण्य की अनुमोदना और पुण्य पाप की अनुमोदना के बिना तीसरी शुद्ध की अनुमोदना। प्रथम अनुमोदना पतन का दुःख का कारण होने से हेय है, छोड़ने योग्य है। पुण्य की अनुमोदना किंचित् उपादेय है और

शुद्ध अनुमोदना पूर्ण रूप से हमेशा के लिए अनन्तकाल तक के लिए उपादेय है।

प्रश्न— 2604 लौकिक कार्यों का तथा इनमें अनुमति देने का त्याग कराया तो क्या धार्मिक कार्यों में भी अनुमति का त्याग कराया है?

उत्तर मोक्षमार्ग में सर्वप्रथम पाप कर्मों का त्याग कराया जाता है। बाद में प्रशस्त कार्यों का जैसे मलिन श्वेत वस्त्र में नील लगाना है तो सर्वप्रथम उसका मैल धोते हैं, बाद में नील लगाते हैं तो परिश्रम सफल समझा जाता है और लगाने वाले को भी समझदार कहते हैं किन्तु मैल धोये बिना नील लगा दिया तो नील खराब हो जाता है, वस्त्र में स्वच्छता नहीं आती है, सफलता नहीं मिलती है और मूर्ख समझा जाता है। इसी तरह गृहस्थावस्था में पाप का पूर्णरूप से त्याग किये बिना धर्म का, पुण्य का त्याग कर दिया तो एकमात्र पापकर्म का ही आश्रव बंध होगा, नरक निगोद का पात्र बनना होगा अथवा दूध का स्वाद लेना चाहते हैं तो सर्वप्रथम मुँह साफ करें बाद में दूध पियें तो दूध का स्वाद आयेगा, अन्यथा नहीं। इसी तरह धर्म का, पुण्य का या आत्मा का आनन्द लेना चाहते हैं तो सर्वप्रथम अधर्म का, पाप का, विषयानन्द का त्याग करें तो सुख का, धर्म का, पुण्य का, आत्मा का आनन्द आयेगा, अन्यथा नहीं। अतः पहले पाप की, बाद में पुण्य की अनुमति का त्याग कराया।

प्रश्न— 2605 पाप की अनुमोदना किसे कहते हैं?

उत्तर हिंसा आदि पाँच पापों की, जुआ आदि अनेक व्यसनों की, कृष्ण आदि तीन अशुभ लेश्याओं की, ख्याति पूजा लाभ की, विषय भोगों की, शृंगार अलंकार की, वैर विरोध की, विषय भोगों की, आरम्भ परिग्रह की सराहना, प्रशंसा करने को पाप की अनुमोदना कहते हैं।

प्रश्न— 2606 पुण्य की व्यवहार धर्म की अनुमोदना किसे कहते हैं?

उत्तर सत्पात्र दान, पंचपरमेष्ठी, नवदेवताओं का पूजन, तीर्थयात्रा, कल्याणक क्षेत्र, अतिशय क्षेत्र, सिद्धान्त शास्त्र, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, सप्त क्षेत्रों में दान, चतुर्विध संघ की सेवा, वैयावृत, आदर सम्मान, रत्नत्रय आदि की प्रशंसा करने को पुण्य की अनुमोदना कहते हैं।

प्रश्न— 2607 शुद्ध की अनुमोदना या शुद्ध अनुमोदना किसे कहते हैं?

उत्तर समस्त प्रकार के कर्मों को, शरीर को, विकारों को विकार स्वरूप परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभाव को तथा विकार स्वरूप स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव को क्षय करके इनको आत्मा से पृथक् करने के बाद में जो आत्मा की अवस्था होती है उसे शुद्ध कहते हैं। उस शुद्धात्मा का गुणगान करना, चिन्तन करना, प्रशंसा करने को अनुमोदना कहते हैं। इस प्रकार अनुमोदना तीन प्रकार की होती है। आदि की दो अनुमोदनायें तारतम्यता से संसार के साधन हैं तथा नयापेक्षया मोक्ष के भी साधन हैं। यदि बाहुबली की तरह पापकर्म पुण्यकर्म या इनकी अनुमोदना वैराग्य उत्पन्न कराकर मोक्षमार्ग में स्थापित करा दे तो वह सर्वोत्तम है। प्रथम अनुमोदना समस्त प्राणियों के पाई जाती है। पुण्य की अनुमोदना मोक्षमार्ग में सहायक होती है। इसलिए असंख्यात प्राणियों के पाई जाती है और शुद्ध अनुमोदना साक्षात् मोक्षकी साधन होने से, ध्यानस्वरूप होने से, प्रतिक्षण असंख्यात गुण श्रेणी कर्मों की निर्जरा का साधन होने से, पाप कर्म का और पुण्य कर्म

का संवर का साधन होने से, संयम सहित होने से, आत्मज्ञान स्वरूप होने से, आत्मानन्द स्वरूप होने से शुद्ध अनुमोदना सर्वत्र उपादेय है।

प्रश्न— 2608—09 उद्दिष्टत्याग प्रतिमा किसे कहते हैं? यह किस नम्बर की है?

उत्तर जो अत्यन्त इष्ट, प्रिय,भोग सामग्री, आहार है, लोलुपता को, गृद्धता को बढ़ाने वाला हैं ऐसे आहार के त्याग को उद्दिष्ट आहार त्याग प्रतिमा कहते हैं। वह प्रतिमा ग्यारहवें नम्बर की है।

प्रश्न— 2610 उद्दिष्ट आहार किसे कहते हैं?

उत्तर स्वयं के स्वाद और आशक्ति पूर्वक आहार के लिए जो नवकोटियों में से किसी भी कोटि से भोजन से सम्बन्ध जोड़ता है तो उसे उद्दिष्ट आहार कहते हैं अथवा उत्कृष्ट, अत्यन्त प्रिय, लोलुपता बढ़ाने वाले आहार को उद्दिष्ट आहार कहते हैं।

प्रश्न— 2611 उद्देश्य किसे कहते हैं?

उत्तर किसी भी कार्य के अभिप्राय को या अभिप्रायानुसार वचनोच्चारण को या काय चेष्टा को उद्देश्य कहते हैं अथवा लक्ष्य को, ध्येय को उद्देश्य कहते हैं।

प्रश्न— 2612 उद्देश्य के कितने भेद हैं?

उत्तर उद्देश्य के अनंत भेद हैं क्योंकि संकल्प, अभिप्राय अनंत प्रकार के होते हैं फिर भी यहाँ पर दान का प्रकरण होने से दान सम्बन्धी उद्देश्य ग्रहण करना चाहिए। खाने पीने का, आने जाने का, पढ़ने लिखने का, लेन देन आदि उद्देश्य के अनेक भेद हैं।

प्रश्न— 2613 दान सम्बन्धी उद्देश्य किसे कहते हैं?

उत्तर उत्तम, मध्यम, जघन्य पात्र को आहारादि देने के विचारों को तथा विचारानुसार आहारादि तैयार करने को दान संबंधी उद्देश्य कहते हैं। आहार दान, औषधिदान, ज्ञानदान, अभयदान आदि अनेक प्रकार के दानों में दाता, श्रावक जिस दान को देने का विचार करेगा सो उसी दान के संबंध में वह उद्देश्य कहलायेगा या समझना चाहिये।

प्रश्न— 2614 यह उद्देश्य दोष केवल आहार के सम्बन्ध में किया जाता है या सभी लौकिक लोकोत्तर दानों में समझना क्या?

उत्तर हाँ, सभी लौकिक और लाकोत्तर दानों के संबंध में दाता उद्देश्य बनाता है, संकल्प बनाता है क्योंकि बिना उद्देश्य के संसार में कोई मंद से मंद बुद्धि वाला प्राणी भी कार्य के प्रति प्रवृत्ति नहीं करता तब समीचीन या असमीचीन दाता क्या बिना प्रयोजन के कार्य कर सकता है अर्थात् नहीं कर सकता है अतः शुद्धि के निमित्त सभी मोक्षमार्ग में सहायक ज्ञान ध्यान तप में वृद्धिकारक दानों के सम्बन्ध में उद्देश्य के अनुसार दाता प्रवृत्ति करता है।

प्रश्न— 2615 गृह त्यागियों के उद्देश्य से बनाया गया आहार, औषधि आदि सदोष होने से उद्देश्य दोष क्यों न कहा जाय?

उत्तर नहीं, यदि उद्देश्य दोष है तो अतिथि संविभाग शिक्षाव्रत को भी सदोष मानने का प्रसंग आयेगा। अतः उद्देश्य दोष नहीं है किन्तु हाँ इतना अवश्य है यदि दाता ने किसी एक व्यक्ति विशेष किसी

नाम वाले पात्र विशेष को लक्ष्य बनाकर कि मैं इन्हीं को दूंगा अन्य को नहीं दूंगा तो अवश्य ही दोष है परन्तु ऐसा न कर कोई भी यथावसर उत्तम, मध्यम, जघन्य पात्र आ गया उसको दान दूंगा तो कोई दोष नहीं है किन्तु गुण है, कर्तव्य का पालन है, प्रतिज्ञा को निभाना है।

प्रश्न– 2616–17 उद्देश्य का स्वामी कौन है? कौन नहीं है?

उत्तर उद्देश्य के स्वामी आरम्भ परिग्रह सहित अव्रती या देशव्रती गृहस्थ श्रावक हैं तथा दानानुसार मुनिजन भी स्वामी हैं जैसे आहार के सम्बन्ध में गृहस्थ दाता समस्त कोटियों से स्वामी है तो मुनिजन कुछ कोटियों की अपेक्षा उद्देश्य के स्वामी हैं। ज्ञानदान के सम्बन्ध में मुनिजन पूर्ण कोटियों से स्वामी हैं तो गृहस्थ कुछ ही कोटियों से स्वामी हैं। अभयदान में यथावसर दोनों ही पूर्ण कोटियों से स्वामी हैं। इसी तरह औषधि दान में समझना क्योंकि करुणा दोनों के मन में उत्पन्न हुई है। दोनों ही सुखी है और समस्त प्राणियों को सुख के मार्ग में लगा रहे हैं इसलिए मोक्ष मार्गानुसार उद्देश्य के दोनों स्वामी हैं।

प्रश्न– 2618 उद्दिष्ट दोष का स्वामी कौन है?

उत्तर उद्दिष्ट दोष के स्वामी आरम्भ परिग्रह के त्यागी गृह त्यागी ऐसे ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका, आर्यिका, मुनि, उपाध्याय, आचार्य। यदि ये स्वयं के लिए कि मेरे को खाना है, मेरे को चाहिए इस भावना पूर्वक किसी भी कोटि से या किसी भी कोटि का प्रयोग करते हैं तो अवश्य ही ये त्यागी उद्दिष्ट दोष के अधिकारी हैं क्योंकि यह दोष एक मात्र गृहत्यागी का है।

प्रश्न– 2619 उद्देश्य और उद्दिष्ट दोष में क्या अन्तर है?

उत्तर उद्देश्य गुणरूप में हो या दोष रूप में हो इसका स्वामी एकमात्र गृहस्थ दाता है तथा उद्दिष्ट दोष का स्वामी गृह त्यागी, आरम्भ परिग्रह का त्यागी ऐसा अणुव्रती या महाव्रती होता है। इसका स्वामी गृहरागी गृहस्थ नहीं है अर्थात् उद्देश्य गुण और दोष दोनों रूप हैं तथा उद्दिष्ट दोष ही है यही अन्तर है शेष विचार कर लेना चाहिए।

प्रश्न– 2620 आजकल श्रावकगण शुद्ध आहार नहीं करते हैं, साधु के निमित्त ही बनाते हैं तो यह उद्दिष्ट दोष लगता ही है?

उत्तर भले ही ये नामधारी श्रावकगण आगम विहित शुद्ध आहार नहीं करते हैं, पर इतना अशुद्ध भी नहीं खाते हैं कि जो मद्य मांस हो तथा कुछ को छोड़कर शेष श्रावकगण बिना मर्यादा का खाते हैं। अचार, मुरब्बा, बड़ी, पापड़, जमीकंद खाते हैं फिर भी त्यागियों को इस प्रकार भोजन नहीं कराते हैं तथा कुछ श्रावकगण व्रती हैं उनका अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत है वे देते हैं और अन्य जिनके स्वयं के जीवन में सदाचार न होने पर भी साधुओं के प्रति समर्पण भाव रहता ही है। जो या जिनका शुद्ध मर्यादित भोजन करने का नियम है उनके हाथ से आहार दिलवाते हैं अतः साधु का, गृहत्यागी व्रती का दोष नहीं है। हाँ आहार से संबंध जोड़कर ग्रहण करता है तो दोष अवश्य ही लगता है।

प्रश्न– 2621 त्यागी व्रती भी साधुओं के निमित्त से ही आहार बनाते हैं तो यह उद्दिष्ट दोष क्यों नहीं लगता?

उत्तर नहीं, श्रावकगण या जैन और अशुद्ध आहार ये दोनों बातें परस्पर में विरुद्ध हैं क्योंकि जो रत्नत्रय सहित है वह श्रावक तथा जिनदेव की आज्ञा का पालन करने वाला जैन कहलाता है और यह अशुद्ध आहार करे तो श्रावक कैसा? जैन कैसा? वह कुपुत्रवत् है। लक्षण के बिना लक्ष्य कैसा? जो अभक्ष्य अशुद्ध आहार का त्यागी है वही तो जैन है, श्रावक है। पानी छानकर पीना, रात्रि भोजन नहीं करना, देवदर्शन करना जैन का लक्षण है, चिह्न है। इनके बिना श्रावक कैसे कह सकते हैं? बताओ इस कारण निमित्त दोष भी जब माना जाता है जब नैमित्तिक भाव उत्पन्न हो जाय अन्यथा नहीं। यदि बलात् दोष मानते ही हो तो अरिहन्त सिद्धों को भी दोष लगेगा ही ऐसा प्रसंग आता है फिर श्रावकों का कर्तव्य क्या रहा, फिर अतिथि संविभाग शिक्षाव्रत क्यों? यदि गृहत्यागी स्वयं आहार करने के पहले या बाद में किसी भी कोटी से आहार के लिए संबंध बनाता है तो अवश्य ही पाप का भागी है, दोष का अधिकारी है, अन्यथा श्रावक का, दाता का, कर्तव्य है, व्रत है, बिना उद्देश्य के निर्देश होता नहीं। इस कारण श्रावक का दान के संबंध में उद्देश्य होना हानिकारक नहीं किन्तु लाभदायक है।

प्रश्न– 2622 उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा के कितने भेद हैं?

उत्तर दो भेद हैं। ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका ये ग्यारहवीं प्रतिमा के भेद हैं। ये गृहत्यागी हैं, मुनि के लघुनन्दन हैं।

प्रश्न– 2623 ऐलक किसे कहते हैं?

उत्तर जो केवल एक लंगोटी मात्र वस्त्र रखकर शेष वस्त्रों का त्याग कर देते हैं। करपात्र में खड़े होकर या बैठकर एक ही घर में भोजन ग्रहण करते हैं, केशलोंच करते हैं, पैदल विहार करते हैं, तीनों बेलाओं में यथाजात रूप धारण कर ध्यान सामायिक करते हैं। यज्ञोपवीत 11 लड़ी का, 11 तार का रखते हैं, अत्यधिक चर्या मुनियों के समान पालते हैं, कर्म सिद्धान्त रूप द्रव्यानुयोग की अपेक्षा पंचम गुणस्थानवर्ती, देशव्रती उत्कृष्ट श्रावक कहलाते हैं। चरणानुयोग की अपेक्षा मध्यम पात्र कहलाते हैं, गुरु के साथ में रहकर अल्प परिग्रह भी न रखकर निवास करते हैं, ध्यानाध्ययन में समय व्यतीत करते हैं, विकथायें नहीं करते हैं, वैरविरोध न करते कराते हैं, समाज में पंथवादों का, पक्षपातों का पक्ष न लेकर केवल आगम का पक्ष लेते हैं क्योंकि आगम पर विश्वास करना सम्यग्दर्शन कहा है, समाज की मान्यता पर विश्वास करना सम्यग्दर्शन नहीं कहा, स्नान के त्यागी होते हैं। एक ही बार आहार दूसरों के द्वारा दिया गया ग्रहण करते हैं। कदाचित् दान पूजा भी द्रव्य से, भाव से कर सकते हैं क्योंकि श्रावक पद है उत्कृष्ट पुरुषार्थी होते हैं। ये आठ मूलगुणों का पालन करते हैं। परम उत्कृष्ट श्रावक हैं।

प्रश्न– 2624 क्षुल्लक किसे कहते हैं?

उत्तर क्षुल्लक शरीर पर केवल एक समय में बिना रंग की सफेद एक लंगोटी और दुपट्टा रखते हैं, दो नहीं। दूसरा आहार चर्या के लिए बदलने को होता है इसके अलावा शेष परिग्रह का, वस्त्रों का त्याग होता है। बैठकर करपात्र में, थाली में, कटोरे में, एक ही घर में, एक ही जगह पर एक ही घर का या पंक्तिबद्ध सात घरों का आहार ग्रहण करते हैं, कर सकते हैं केशलोंच भी करते

हैं और कैंची से भी बनवाते हैं, पैदल विहार करते हैं। तीनों संध्याओं में यथाजात रूप धारण कर ध्यान, सामायिक करते हैं। यज्ञोपवीत ग्यारह लड़ी का, तार का रखते हैं। अनेक चर्यायें मुनियों के समान होती हैं कुछ में अंतर है। पंचम गुणस्थानवर्ती, उत्कृष्ट श्रावक, मध्यम पात्र कहलाते हैं। गुरु के साथ में रहकर ध्यानाध्ययन, पठनपाठन करते हुए निवास करते हैं। विकथायें, विरोध, लड़ाई झगड़ा तथा नारद का काम नहीं करते हैं। सामाजिक कार्यक्रमों में भाग नहीं लेते हैं। ना सामाजिक पक्षपात में पंथवाद में भाग लेते हैं किन्तु आगम का पक्ष लेते हैं, जिनेंद्र मार्ग का अनुशरण करते हैं। इसी तरह समस्त मोक्षमार्गी जिनेंद्र के पंथ का ही अनुशरण करते हैं, शेष का नहीं। आगम पर विश्वास करना सम्यग्दर्शन कहा है न कि सामाजिक मान्यता पर, स्नान करते हैं और नहीं भी करते हैं, कैंची उस्तरा से भी बाल निकलवा लेते हैं दूसरे श्रावकों के द्वारा दिया गया आहार ग्रहण करते हैं। कदाचित् द्रव्य से दान पूजा भी कर लेते हैं। कोई भी गृहत्यागी व्रती संस्थायें न चलाते है न चलवाते हैं क्योंकि आरम्भ परिग्रह के त्यागी होते हैं। ये अनुत्कृष्ट पुरुषार्थी होते हैं, गृहस्थों से ज्यादा संपर्क नहीं रखते हैं गुरु की आज्ञा का पालन करते हैं। अपने निज कर्तव्य का और आठ मूलगुणों का पालन करते हैं। सतत सावधान रहते हैं।

प्रश्न–2624(अ) क्षुल्लिका किसे कहते है?

उत्तर **ऐलक, क्षुल्लक द्रव्य से शरीर से पुरुषवेदी होते हैं और भाववेद की अपेक्षा तीनों वेद वाले होते हैं तथा क्षुल्लिका भी द्रव्य से स्त्रीवेदी होती है तथा भावों से तीनों वेदवाली हो सकती है। शरीर पर सोलह हाथ की एक साड़ी और शरीर के प्रमाण से कुछ कम छोटा दुपट्टा रहता है तथा एक जोड़ी कपडे बदलने के लिए होती है, शेष वस्त्रों का त्याग होता है ये भी करपात्र में या थाली में या कटोरे में एक स्थान पर बैठकर एक बार उदरपूर्ति तक शुद्धि सहित मौन से श्रावक के द्वारा दिया गया एक घर का अथवा रास्ता कटा हुआ न हो, जहाँ आम जनता का आवागमन न हो, रास्ते की भी शुद्धि हो, रास्ते में मूत्रमल आदि घृणास्पद सामग्री न पड़ी हो ऐसे पंक्तिबद्ध सात घरों में जाकर भोजन लाकर एक स्थान पर स्थिर बैठकर आहार ग्रहण कर लेती है परन्तु आजकल क्षुल्लक क्षुल्लिकाओं की आहारचर्या अनेक घरों से न लाकर एक ही घर की होती है। वस्त्र सहित एक ही जगह पर बैठकर आहार लेती है। स्नान करती है और नहीं भी करती है पैदल विहार करती है, तीनों कालों में सामायिक करती है, पंचम गुणस्थानवर्ती उत्कृष्ट श्राविका, मध्यम पात्र है,गुरु के या मुख्य आर्यिका के पास में रहती है। लड़ाई, वैरविरोध, शृंगारालंकार, रंगीन वस्त्र धारण नहीं करती है, नारद का काम नहीं करती हैं आदि सभी नियम ऐलक क्षुल्लक के समान समझना चाहिए। ये भी आठ मूलगुणों का पालन करती हैं।**

प्रश्न– 2625 आर्यिका पूज्य नहीं हो सकती क्योंकि वस्त्रधारिणी है देशसंयती है?

उत्तर **नहीं, आर्यिका पूज्य है, वस्त्रधारिणी नहीं है क्योंकि परिग्रहत्याग महाव्रत का संस्कार आचार्य श्री ने किया है। अतः वस्त्रधारिणी न कहकर शरीर को ढकने वाली उपकरण धारिणी महाव्रती है।** आ० श्री कुंदकुंद ने मू० गाथा– एसो अज्जाणंपि अ सामाचारो जहक्खिओ पुव्वं। सव्वह्मि अहोरत्ते विभासिदव्वो जधाजोग्गं।।187।। अर्थः– पूर्व में जैसा मुनियों का कथन किया है वैसा ही यह समाचार आर्यिकाओं को भी संपूर्ण अहोरात्रि में यथायोग्य करना चाहिये। ''एवं

विधाण चरियं चरंति जे साधवो व अज्जाओ। ते जगपुज्जं कित्तिं सुहं च लद्धूण सिज्झंति।।''196 इस प्रकार जो साधू और (व–अथवा) आर्यिकायें चारित्र का पालन करते हैं, करती हैं वे जगत में पूज्य होती हैं। कीर्ति और सुख को पाकर, भोगकर मोक्ष प्राप्त करती हैं। अतः आर्यिका पूज्य है अपूज्य नहीं। मुनि के समान उत्तम पात्र है।

प्रश्न– 2626 जब आर्यिका परमेष्ठी पद पर नहीं है तो उसकी पूजा करने से अनर्घपद की प्राप्ति कैसे हो सकती है?

उत्तर क्या आपको अनर्घपद की प्राप्ति पर के माध्यम से होगी या स्वयं के माध्यम से होगी? बाह्य में दिगम्बर मुद्रा है, सदाचार सद्विचार से युक्त है, परंतु गुणस्थान मिथ्यात्व है वे सादि मिथ्यादृष्टि, अनादि मिथ्यादृष्टि भव्य, दूरानुदूर भव्य मिथ्यादृष्टि और अभव्य मिथ्यादृष्टि भी हो सकते हैं। तब इनकी भक्ति से अनर्घपद की प्राप्ति होती है या नहीं। यदि नहीं होती है तो इनकी आराधना, नवधाभक्ति क्यों करना? तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले बालक का, इनके माता पिता का चौथा गुणस्थान है तो इन्द्र इन्द्राणी किस पद की प्राप्ति के लिए अभिषेक पूजापाठ करते हैं। लौकिक पद की या लोकोत्तर अनर्घपद की प्राप्ति के लिए करते हैं ये इन्द्र इन्द्राणी सांसारिक पद की प्राप्ति के लिए तो कर नहीं सकते हैं क्योंकि सम्यग्दृष्टि हैं, एकभवावतारी हैं, एकमात्र अनर्घपद की प्राप्ति के लिए ही अभिषेक, पूजा पाठ, गुणस्तवन आदि करते हैं। इसी तरह जब दीक्षा लेने जाते हैं तो लौकान्तिक देव पालकी उठाते हैं तो क्या समझकर उठाते हैं यह आप बताओ। आजकल प्रतिष्ठाओं में यहाँ पर प्रतिमा धारी ब्रह्मचारी, दसवीं प्रतिमा वाले तक भी अपने आपमें लौकान्तिक देव बनकर पालकी उठाते हैं। वे राजा हों, युवराज हों, राजकुमार हों गुणस्थान पंचम है, सातवीं प्रतिमा भी नहीं, अखण्ड ब्रह्मचर्य भी नहीं फिर ये आरम्भ त्यागी, परिग्रह त्यागी प्रतिमा वाले इनकी पालकी किस भाव से उठाते हैं? अपने को लौकान्तिक देव मानते हैं। क्या इन प्रतिमाधारियों की यह साम्परायिक आश्रव की समादान क्रिया नहीं है? वैरागी आत्मा को भगवान मानते हैं फिर अचेतन स्वरूप क्षेत्रों की, काल की पूजा से मोक्षपद की अनर्घपद की प्राप्ति नहीं हो सकती है। जब जड़ पदार्थों के चिंतन से कर्म नष्ट हो सकते हैं तो महाव्रत धारिणी आर्यिकाओं की पूजा करने से कर्मक्षय क्यों नहीं हो सकते हैं?
क्षेत्र पूजा :– अतिशय क्षेत्र, सिद्ध क्षेत्र आदि की पूजा।
काल पूजा :– पर्व दिन दीपावली आदि की पूजा।

प्रश्न– 2627 चेतन पंचपरमेष्ठी की पूजा आराधना से ही अनर्घ्य पद की प्राप्ति हो सकती है अन्य से नहीं ऐसा है क्या?

उत्तर ठीक है, यदि आपकी ऐसी मान्यता है तो फिर उन पंचपरमेष्ठियों की मूर्तियों की अभिषेक पूजा आरती आदि करने से अनर्घ्यपद की प्राप्ति नहीं हो सकती है। यदि आप अचेतन मूर्तियों की पूजा आराधना से अनर्घ्यपद की प्राप्ति मानते हो तो आपकी चेतन की आराधना से ही अनर्घ्यपद की प्राप्ति होती है इस प्रतिज्ञा की हानि होती है। फिर नवदेवताओं की पूजा आराधना करना व्यर्थ है मिथ्या है। मन्दिर क्यों बनवाया? प्रतिष्ठा क्यों कराना? फोटुओं का निरावरण क्यों

कराना? अखण्ड दीपक क्यों जलाना आदि कार्य मिथ्या सिद्ध क्यों न होंगे? यदि कहो कि प्राण प्रतिष्ठा, स्थापना निक्षेप की अपेक्षा मूर्ति चेतन है तो फिर चेतन मूर्ति का अभिषेक क्यों? मूर्ति को बिना आधार के रहना चाहिए। देवों को, देवांगनाओं को, समवशरण का आकार, मंगलद्रव्य, प्रातिहार्य आदि मूलगुणों को दिखाना चाहिए। समवशरण की रचना तदनुकूल बताना चाहिए फिर दिगम्बरों में मतभेद क्यों? विसंवाद क्यों? समाज का बंटवारा क्यों?

प्रश्न– 2628 जिसप्रकार ऐलक के एक लंगोटी होती है उसी प्रकार आर्यिका के एक सोलह हाथ की साड़ी होती है अतः ऐलिका कहना चाहिए। जैसे क्षुल्लक तो क्षुल्लिका वैसे ऐलक तो ऐलिका। ऐलक की तरह ही आर्यिका करपात्र में आहार करती हैं, केशलोंच करती है पैदल विहार करती हैं अतः सामनता है। अतः आर्यिका को ऐलिका कहना उपयुक्त है।

उत्तर आपका कहना सत्य है किन्तु आचार्यों ने ऐसा नहीं कहा, भिन्न प्रकार से कहा है।

आर्यिका और ऐलक की सारणी

आर्यिका	ऐलक
1. महाव्रतों के संस्कार होने से महाव्रती है,	1. अणुव्रतों के संस्कार होने से अणुव्रती है।
2. गृहस्थ लिंग नहीं है किन्तु अर्यिका है	2. श्रावक है, गृहस्थ लिंग है।
3. अनगारी हैं।	3. अगारी है।
4. उत्तम पात्र हैं।	4. मध्यम पात्र है।
5. करपात्र आहार और केशलोंच ये मूलगुण हैं।	5. इसके ये मूलगुण नहीं है किन्तु अभ्यास रूप हैं
6. संयत आदि मुनिवाचक पदों में आ ई प्रत्यय लगाकर आर्यिका को संबोधित किया है।	6. जबकि ऐलक को ऐसे किसी भी पद से संकेत नहीं किया ।
7. अट्ठाईस मूलगुण होते हैं।	7. आठ मूलगुण होते हैं।
8. चौतीस उत्तरगुण होते हैं।	8. बारह उत्तरगुण होते हैं।
9. निर्विकार होती है।	9. विकार युक्त होता है।

यदि कहो कि ऐलक को मुनि का लघुनन्दन कहा है, आर्यिका को नहीं कहा सो आपने ठीक ही कहा है। ऐलक को मुनि का लघुनन्दन ही, छोटा भाई ही कहा है, बराबर का नहीं पर आर्यिका को छोटी बहन नहीं कहा बराबर की कहा है अपने समान कहा है। अपने समान ही गुरु ने दीक्षा के संस्कार किये, मूलगुणों को धारण कराया और पंचाचार का पालन कराया क्योंकि आचार्य के लक्षण में कहा है ''अप्पं परं च जुंझई सो आइरियो मुणि झेयो''। जो स्वयं पंचाचार का पालन करते हैं और शिष्यों से करवाते उन्हें आचार्य कहते हैं अतः आचार्य आर्यिकाओं से गणिनी आर्यिका से पालन करवाते हैं किंतु ऐलक से नहीं क्योंकि ऐलक के 8 मूलगुण हैं और आर्यिका के 28 हैं। आर्यिका का चरम पुरुषार्थ है ऐलक का चरम पुरुषार्थ नही

हीन पुरुषार्थ है। यदि आप निष्पक्ष होकर दोनों के परिणामों की और प्रतिज्ञा की तुलना करेंगे तो फिर कुछ नया ही मक्खन के समान नया अर्थ परिभाषित होगा यदि मन पूर्वाग्रह से ग्रसित है तो सत्यता उद्घाटित नहीं होगी।

प्रश्न– 2629 आर्यिका श्राविका हो सकती है क्या?

उत्तर आर्यिका के 28 मूलगुण होते हैं। आर्यिका की पूर्ण चर्या मुनियों के समान होती है। मुनि दीक्षा विधि ही आर्यिका दीक्षा विधि है। द्रव्य स्त्रीवेद की अपेक्षा उत्कृष्ट पुरुषार्थी है। उत्तम पात्र है। सोलह हाथ की एक साड़ी रखती है। स्नान नहीं करती है। पैदल विहार करती है। समस्त आरम्भ परिग्रह की त्यागिनी है क्योंकि परिग्रह त्याग महाव्रत है जबकि श्राविका के आठ मूलगुण होते हैं । अणुव्रती है। ग्यारह प्रतिमाओं का पालन करती है। क्षुल्लकों के समान चर्या होती है। क्षुल्लक दीक्षा विधि ही श्राविका की दीक्षा विधि है। आर्यिकाओं के कर्तव्य का कथन आचारांग में हैं तो श्राविकाओं का कथन उपासकाध्ययनांग में है। समवशरण में आर्यिका का और श्राविकाओं का एक स्थान होने से यदि एक मानते हो तो एक ही कोठे में सबको एक मान लो फिर तीन परमेष्ठी मानना, अलग–अलग मुनियों में भेद करना कैसे संभव हो सकेगा जो अनिष्ट आपत्ति है, गुरु शिष्य का भेद भी नहीं रहेगा क्योंकि सबका स्थान एक है, एक समान है। यदि कहो कि जैसे यहां पर गुरु का आसन ऊंचा और शिष्यों का आसन नीचा होता है तो इसी तरह समवशरण में आपके कथनानुसार ही गणिनी आर्यिका का आसन ऊंचा शेष आर्यिकाओं का आसन नीचा और श्राविकाओं का और नीचा ऐसा आप भी समझ लो तो क्या आपत्ति है? चरणानुयोग में मुद्रा प्रमाण होती है, गुणस्थान नहीं। आपके पास में क्या प्रमाण है कि ये मुनि भव्य हैं या अभव्य, सम्यग्दृष्टि हैं या मिथ्यादृष्टि। सर्वप्रथम सामने वाले में गुणस्थान देखो बाद में उनकी नवधाभक्ति करो। बिना जाने पहचाने आपने नवधा भक्ति की तो मिथ्यादृष्टिपने का प्रसंग आता है। भव्य, अभव्य, सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि के गुणस्थानों का निर्णय करने के लिए परमावधि, सर्वावधि, विपुलमती, ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान केवलज्ञान चाहिए यह प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय है, परोक्ष ज्ञान का नहीं अतः वर्तमान में आप सर्वप्रथम मुनियों में गुणस्थान को देखो बाद में फिर नवधाभक्ति करो अन्यथा अनायतन सेवा मूढ़ता का भी प्रसंग आता है क्योंकि आपने भी देखा देखी की किन्तु आपके पास प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं केवल आप ढोल में पोल की तरह वार्तालाप कर रहे हैं। अतः आर्यिका श्राविका नहीं श्राविका के समान नहीं।

प्रश्न– 2630 सत्शूद्र स्पर्शशूद्र को भी क्षुल्लक दीक्षा दी जाती थी ऐसा पढ़ा जाता है सो ठीक है क्या?

उत्तर कुछ पूर्वाचार्यों ने, टीकाकरों ने विधान अवश्य किया है कि सत्शूद्र, स्पर्शशूद्र क्षुल्लक दीक्षा लेता है और ले सकता है, दी जाती थी पर इस शूद्र ने दीक्षा ली है या इस शूद्र को दीक्षा दी है दी थी नाम सहित उल्लेख नहीं किया है। क्या जन्मजात शूद्र लेना है या जिसने सामाजिक अपराध या धार्मिक अपराध किया है तथा उसको उसके परिवार को समाज में रोटी बेटी व्यवहार पंक्ति भोजन बन्द कर दिया और समाज ने बहिष्कार कर दिया है राजा से कलंकित है तो उसी

को ही सत्शूद्र संज्ञा देकर पुनः प्रायश्चित्त के योग्य है तो प्रायश्चित्त देकर समाज में मिला लिया अन्यथा उनको उसी ही की तरह कार्य करने वालों को लोहरीसेन, दस्सा, विनेकवाल या अपने अपने क्षेत्रानुसार नाम देकर स्वतंत्र जाति नाम देकर उनका उनकी जाति के अन्दर ही रोटी बेटी का व्यवहार कराकर उनको ही सत्शूद्र नाम देकर दीक्षा का विधान किया हो क्योंकि जिन लोगों ने विवाह पद्धति, रोटी बेटी सम्बन्ध अन्य सदाचार तथा नाम नहीं बदला उनको भी यह नाम दिया हो सम्भव है जैसे अंजन चोर, विद्युत्चोर, गजकुमार आदि। गो. क. **'उच्चंणीचंचरणं उच्चंणीचं हवे गोदं' उच्च आचरण करने वालों को उच्चगोत्री तथा नीच आचरण करने वालों को नीच गोत्री कहा है। इस कारण उदाहरणोक्त आचरण करने वाले नीचगोत्री हैं तथा जन्मपरम्परागत उच्चगोत्री क्षत्री हैं तभी तो दीक्षा लेकर, घोर तपश्चरण कर, कर्मों को क्षयकर मोक्षप्राप्त किया। अतः अलग रहने वाले जाति कुल से बहिष्कृत प्राणियों को सत्शूद्र स्पर्शशूद्र संज्ञा दी है। पं. कैलाशचन्द्र जी अनगारधर्मामृत की प्रस्तावना पृ. 31.32 पर ज्ञानपीठ से प्रकाशित आ० श्री सोमदेव ने नीतिवाक्यामृत त्रयीसमुद्देश (हि.अनु.आ.विजयामति) में कहा है। सकृत परिणयन व्यवहाराः सच्छूद्राः।।11।। आचारअनवद्यत्वरं शुचिरूपस्करः शारीरी च विशुद्धिः करोति शूद्रमपि देव द्विज तपस्वी परिकर्मसु योग्यम् ।।12।। एकबार विवाह करने वाले को सत्शूद्र कहते हैं। आचार की निर्दोषता, घर और उपकरणों की पवित्रता शारीरिक विशुद्धि शूद्र को भी देव द्विज और तपस्वी जनों के परिकर्म के योग्य बनाती है। इसका अभिप्राय यह है कि जिन शूद्रों में पुनर्विवाह नहीं होता है तथा खान पान और रहन सहन भी पवित्र है वे जैनधर्म का पालन करते हुए मुनियों को आहारदान दे सकते हैं क्योंकि उपासकाध्ययनांग में** ''दीक्षायोग्यास्त्रयो वर्णाश्चत्त्वारश्च विधोचिताः मनो वाक्काय धर्माय मताः सर्वेपि जन्तवः''।।791।। **ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य तीन ही वर्ण जिन दीक्षा के योग्य हैं किन्तु आहारदान के योग्य चारों वर्ण हैं क्योंकि सभी प्राणियों को मानसिक, वाचनिक और कायिक धर्म पालन करने के अनुमति है। किन्तु जो रात्रिभोजी है अनछना पानी पीते हैं, अभक्ष्य भोजन करते हैं, चमड़े का, मांस का, मधु का, शराब का व्यापार करते हैं। सप्त व्यसनों में आसक्त हैं अनर्गल आचार विचार की धारा में बह रहे हैं उनके पास न सत्संस्कार हैं, न सदाचार हैं, विश्वास भी सही नहीं हैं तो उनसे कैसे आहार लिया जाय दीक्षा कैसे दी जाये? आप ही बताओ।**

प्रश्न— 2631—33 शूद्र किसे कहते हैं? शूद्रों के कितने भेद हैं? नाम कौन[2] हैं?

उत्तर **नीच गोत्र कर्म के उदय से प्राप्त पर्याय को नीच गोत्र या शूद्र कहते हैं अथवा मुनिव्रत जिनकल्पी अवस्था के धारण करने वाले कुलों के विरुद्ध कुलों में जन्म धारण करने वालों को शूद्र कहते हैं या शूद्रों के समान मद्य, मांस, मधु का और अनिष्ट आचरण पालन करने वालों को शूद्र कहते हैं। तीन भेद हैं। नाम — 1. सत्शूद्र 2. स्पर्शशूद्र 3. अस्पर्श शूद्र।**

प्रश्न— 2634 सत्शूद्र किसे कहते हैं?

उत्तर **जो आर्य हैं, उच्च कुलीन हैं, शूद्रों के समान आचरण का पालन करते हैं। क्वचित् कदाचित् सदाचार का पालन करते हैं किन्तु किसी कारणवश जीवन कलंकित हो चुका है, रोटी बेटी दूषित**

कर ली है, दूषित रजोवीर्य से जन्म धारण किया है या दूषित रजोवीर्य से जन्म देने वाले हैं। उन्हें सत्शूद्र कहते हैं अथवा जिनाज्ञा के प्रतिकूल आचार विचार वालों को सत्शूद्र कहते हैं।

प्रश्न– 2635 इन उच्चकुलीन वालों को भी सत्शूद्र संज्ञा क्यों दी?

उत्तर ये जन्म की अपेक्षा, जाति कुल की अपेक्षा उच्चकुलीन है पर इनकी आजीविका का साधन, आचार विचार शूद्रों के समान होने से, नीच आचरण होने से नीच कुलीन या सत्शूद्र नाम दिया। अन्याय अभक्ष्य का भरपूर सेवन कर रहे हैं जैसे रात्रिभोजन, अनछना पानी, मद्य, मांस, मधु से युक्त भोजनपान, ऐंसी दवाईयाँ, अचार, मुरब्बा, कन्दमूल आदि का सेवन करने वालों को सत्शूद्र नाम से पुकारा है। जैसे आम का पत्ता किसी भी अवस्था में हो चाहे वह सड़ जाये, गल जाये, फट जाये। जल जाये, कितना पुराना हो जाये, दूर देश चला जाये पर उसे आम का पत्ता ही कहेंगे दूसरे वृक्षों का नहीं इसी तरह वह व्यक्ति जन्म की अपेक्षा उच्चकुलीन होने पर भी, सर्वश्रेष्ठ होने पर भी आचरण से अत्यन्त पतित होने के कारण ही सत्शूद्र पने का ज्ञान कराया है क्योंकि शूद्रों जैसा आचरण है। अतः जन्म की अपेक्षा उच्च गोत्री आर्य, सज्जन तथा आचरण की अपेक्षा नीच कुलीन, नीच गोत्री, अनार्य, अत्याचारी, दुराचारी कहा है सत्शूद्र कहा है।

प्रश्न– 2636 स्पर्श शूद्र किसे कहते हैं?

उत्तर जिसके स्पर्श होने पर या स्पर्श करने पर लोक में घृणा नहीं होती है। ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य कुल के बिना चौथे वर्ण वाले हैं। सदाचारी, सद्विचारी है, लोक व्यवहार में, क्रियाकलापों में बाधा नहीं आती है तथा प्रायश्चित्त नहीं लेना पड़ता है किन्तु क्वचित् कदाचित् शास्त्र और गुरु को स्पर्श करने में ग्लानि होने लगती है, भोजनपान के वस्त्रों को बदलने की जरूरत होती है, किन्तु ये मद्य मांस अण्डे नहीं खाते हैं, वेश्यागामी नहीं होते हैं अतः इन्हें स्पर्शशूद्र कहते हैं जैसे माली, नाई, सुनार, बढ़ाई, लुहारादि। सत्शूद्रों में एक बार विवाह कहा है परन्तु त्यक्ताविवाह विधवा विवाह जैनों में चालू हो रहा है सो वह उसे स्पर्श शूद्र बनाना है परस्त्री व्यसन सेवन तथा वेश्या सेवन व्यसन का प्रचार करना हैं, नीच गोत्री बनाना है। यदि ये ही सप्त व्यसन सेवन करने लगे मद्य मांस का मधु का सेवन करने लगे तो अस्पर्श शूद्र कहलाते हैं।

प्रश्न– 2637 अस्पर्श शूद्र किसे कहते हैं?

उत्तर जो अशिष्ट रजोवीर्य से उत्पन्न हुए हैं, स्पर्श के अयोग्य हैं, सप्तव्यसनों का सेवन करते हैं, असदाचारी हैं, क्वचित् कदाचित् सदाचार का पालन करते हैं। सद्विचारी भी है, अधिकतर हीनाचारी भी हैं इस कारण इनके स्पर्श करने पर वस्त्र बदलना, स्नान करना, प्रायश्चित्त लेना आदि होता है उसे अस्पर्शशूद्र कहते हैं जैसे चतुर्थ वर्ण के व्यक्ति आदि।

प्रश्न– 2638 अपनी दिनचर्या के द्वारा आपकी सेवा करते हैं फिर उनको अस्पर्श शूद्र कहकर घृणा करना सम्यग्दर्शन का दोष नहीं है क्या?

उत्तर उन अपने सेवकों का तिरस्कार करना, अपमान करना, हीन दृष्टि से देखना सम्यग्दर्शन का दोष कहलाता है जो अपने ही मोक्षमार्ग को नष्ट करता है किन्तु जो विवेकवान है, ज्ञानी है, सम्यग्दृष्टि है, वे उनका अपमान तिरस्कार नहीं करते हैं न हीन दृष्टि से देखते हैं यदि देखने लगें तो

सज्जन दुर्जन में भेद न रहा अतः सावधानी वर्ती जा रही है, विवेकपूर्वक कार्य किया जा रहा है, यदि ऐसा न माना जाये तो अपने शरीर से या इन्द्रिय द्वारों से मल मूत्र बाहर आता है तो क्या सभी मल एक हैं यदि एक ही हैं तो जैसे नाक का मल, कान का मल, आँख का मल निकालने पर केवल हाथ धोने से काम चल जाता है, घृणा भी ज्यादा नहीं आती, कहीं पर भी बैठे बैठे निकाल देते हैं। हाँ, नाक के मल में कुछ घृणा आती है, उसके लिए स्थान देखना पड़ता है। थूँक के लिए, खंखार के लिए भी घृणा आती है, स्थान भी देखना होता है, किंचित् घृणा भी होती है, लोगों के सामने भी निकाल देते हैं किन्तु मूत्र और गुदा मल के लिए गुप्त स्थान देखते हैं। सबके सामने नहीं करते हैं, मूत्रक्षेपण में जितनी शुद्धि करने पड़ती है, केवल पानी से धोने पर योनि लिंग की धोने से भी शुद्धि हो जाती है किन्तु गुप्त स्थान में शौच जाने पर गुदा की शुद्धि करना, स्नान करना, वस्त्र बदलना । अतः अपने ही शरीर में शरीर के मलों में अंतर है, भेद है, घृणा नहीं आती है क्वचित् आती भी है तो कालान्तर में विवेक रूप में परिणमन कर जाती है अतः सावधानी रहती है इस तरह उन सेवकों की घृणा नहीं है किन्तु विवेक है। विवेक पूर्वक कार्य किया जा रहा है। उनके शरीर की रचना जिस रजोवीर्य से हुई है जो उनसे बचने बचाने के लिए आचार विचार का पालन कर रहे हैं उपाय किया जाता है ताकि उसकी आत्मा का भला हो सम्पर्क में आने पर उनको भी पाप का त्याग कराया जाता है। सदाचार सद्विचार को समझाकर पालन कराया जाता है। धनादि से उनकी व्यवस्था की जाती है। उनके आचार विचार से परहेज किया जाता है यदि इस परहेज को ही अपमान तिरस्कार माना जाये तो डॉक्टर मरीज को देखते समय, ऑपरेशन के समय अपना पूरा वेष बदल लेते हैं तथा अपने हाथों को भी बार बार धोते हैं। साफ करते हैं तो इसे भी आप मरीज का तिरस्कार अपमान समझ लो तो क्या अयोग्य नहीं है?

प्रश्न– 2639 तो फिर आजकल स्पर्श शूद्रों को दीक्षा क्यों नहीं दी जाती है?

उत्तर आजकल समाज में घृणा बहुल जीव हैं कदाचित् किसी आचार्य ने दीक्षा दे भी दी तो उसकी भी निन्दा करेंगे तथा नवदीक्षित साधू के लघुनंदन की आहारचर्या नहीं बन सकती है तथा समाज भी विवेकहीन चारित्रहीन होती जा रही है। सर्वप्रथम वो दीक्षा लेने को तैयार नहीं होंगे क्योंकि उसमें सदाचार की, सद्विचार की बहुत कमी आ गई है सामान्य सद्गृहस्थ के नियम आठ मूलगुण नहीं पालते, आवश्यक नहीं पालते फिर आगे के उत्कृष्ट व्रत कैसे पालेंगे? शिक्षा संगति और संस्कारहीन होने से जिनधर्म को पालन करने में असमर्थ है इस कारण वर्तमान में उनकी भी दीक्षा लेने की तैयारी नहीं तथा दीक्षाचार्य की भी तैयारी नहीं। इसलिए दीक्षा स्पर्शशूद्र को नहीं दी जाती है। क्योंकि जिस सदोष निर्दोष रजोवीर्य से मस्तिष्क की रचना हुई है वह शुभाशुभ संस्कार अंत तक रहता है। बीच में बदलता नहीं न समाप्त होता है।

प्रश्न– 2640 यदि आगम पर विश्वास है तो स्पर्शशूद्र को दीक्षा देना चाहिए?

उत्तर आगम पर विश्वास है पर उसकी तैयारी नहीं है तथा कदाचित् तैयार भी हो गया तो दीक्षा लेने के बाद निभाने में असमर्थ है। अहंकारी, ममकारी बनकर समाज को धर्म को दूषित कर देता है यदि कर्मठ है तो देश, क्षेत्र बदलकर दूसरे देश में, क्षेत्र में जाकर दीक्षा देना चाहिए जैसे म.प्र.

के श्रावक को उ.प्र. में दीक्षा देना योग्य है, म.प्र. के व्यक्ति को कर्नाटक में महाराष्ट्र में दीक्षा देना और कर्नाटक महाराष्ट्र के श्रावक को म.प्र., उ.प्र. में दीक्षा देना योग्य है।

प्रश्न– 2641–42 इनकी आहारचर्या किस प्रकार से होती है? घृणा करने से क्या हानि प्राप्त होती है?

उत्तर श्रावक श्राविकाओं ने जहाँ जिस स्थान पर आहार सामग्री तैयार की है तथा जहाँ पर उत्तम मध्यम पात्र को तथा जघन्य पात्र को आहार कराना है उस स्थान को छोड़कर बाहर स्थान पर चंदोवा लगाकर, नवधाभक्ति पूर्वक, घृणा छोड़कर, उत्साह सहित आहार देना चाहिए। यह शूद्र है ऐसा समझकर घृणा नहीं करना चाहिए क्योंकि धर्मशूद्र नहीं है। शरीर पहले शूद्र था ऐसा समझकर घृणा करना धर्म से घृणा करना है। मोक्ष से, मोक्षमार्ग से और आत्मधर्म से घृणा करना है। जब हम दूसरों से घृणा करेंगे तो अपने से भी कोई घृणा करेगा तब अनुभव होगा कि घृणा करने का क्या फल है।

प्रश्न– 2643 उच्च आचरण किसे कहते हैं?

उत्तर विश्वासघात नहीं करना, वस्तु स्वरूप का सम्यक् अनेकान्त रूप से विश्वास नहीं करना, परस्पर विरोधी, पूर्वापर विरोधी, अनुमान विरोधी, प्रत्यक्ष विरोधी लोकव्यवस्था को, लोक व्यवहार को जो बिगाड़ने वाला है ऐसा मिथ्यात्व, जिनाज्ञा से प्रतिकूल आचार विचार, अन्याय तथा विना मर्यादा का भोजनपान, जिस भोजनपान में संख्यात, असंख्यात तथा अनन्त जीव उत्पन्न होते हैं, मरते हैं ऐसा अभक्ष्य भोजन इनका त्यागकर, ख्याति पूजा लाभ की भावना का त्याग, दुर्लेश्याओं का त्याग, दुर्ध्यानों आदि का त्याग ही अच्छा उच्च आचरण है।

प्रश्न– 2644 नीच आचरण किसे कहते हैं?

उत्तर मिथ्यात्व, अन्याय और अभक्ष्य का सेवन करने वाला, ख्याति पूजा लाभ से परिणमन करने वाला, रात्रिभोजन करने वाला, अनछना पानी पीने वाला, मद्य मांस मधु का सेवन करने वाला, कन्दमूल, उदम्बर फलों का सेवन करने वाला, सप्त व्यसनों का सेवन करने वाला, निरपराधी जीवों को ताड़ना देने वाला, विश्वासघात करने वाला, दूसरों के द्वारा किये गये उपकार को भूलने वाला, उपकार नहीं मानने वाला कृतघ्नी व्यक्ति का आचरण नीच आचरण कहलाता है इस आचरण से धर्म की, समाज की, परिवार की, स्वयं की बदनामी होती है।

प्रश्न– 2645 भ्रष्टाचार शिथिलाचार किसे कहते है?

उत्तर भ्रष्टाचार, शिथिलाचार, हीनाचार, कदाचार, दूषिताचार, मिथ्याचार, पतिताचार, दुराचार, अत्याचार ये सब एकार्थवाची हैं। पतित आचरण को बताने वाले हैं, केवल नाम में या क्रिया विशेषण में अन्तर है, भाव में अन्तर नहीं, एक ही बात है परन्तु आजकल सबको मालूम है कि सर्वत्र भ्रष्टाचार, शिथिलाचार फैल रहा है, चाहे राज्य हो या देश हो, चाहे ग्राम हो या नगर हो, समाज हो, परिवार हो या धार्मिक समाज हो, साधु संत हो या साध्वी संन्यासिनी समुदाय हो इनमें भरपूर धर्म के नाम पर भ्रष्टाचार का प्रचार प्रसार हो रहा है तथा कुछ लोग इनको दूर करने का नारा भी लगाते हैं, विज्ञापन भी पत्रिकाओं के, टी०वी० के माध्यम से बताया जाता है, दिखाया जाता है या पढ़ाया भी जाता है कि भ्रष्टाचार, शिथिलाचार बन्द करो परन्तु जितना विरोध हो रहा है

उससे कहीं अधिकगुणी वृद्धि हो रही है क्योंकि इसका भी प्रचार प्रसार और साधन सामग्री भरपूर उत्पादन को प्राप्त हो रही है जगह जगह पर उपलब्ध हो जाती है अतः नाम का विरोध हो रहा है और कार्य का प्रचार प्रसार हो रहा है तब कैसे सफलता प्राप्त हो? न राज्य में सफलता मिल सकती है, न समाज में, न धर्म और न धर्मात्माओं में सफलता मिल सकती है।

प्रश्न—2646 तो फिर किस आचरण का नाम भ्रष्टाचार, शिथिलाचार है?

उत्तर अपने जिस आचरण से आत्मा अनंत संसार में भटके, नाना प्रकार के दुःखों को प्राप्त हो तथा व्यवहार धर्म, परिवार, समाज, सामान्य प्रजा, ग्राम नगर, देश जाति तथा कुल निन्दा का पात्र बने, बदनामी हो सो उस आचरण का, विचारों का नाम भ्रष्टाचार शिथिलाचार है जैसे लोक में जुआ खेलना, सट्टा खेलना, मद्यपान, मांसहार, परस्त्री सेवन, वेश्या सेवन, चोरी करना, डाका डालना, अपहरण करना, अण्डे खाना, रक्तपान करना, पशु हत्या तथा मनुष्य हत्या करना, चमड़े का प्रयोग करना, धातु उपधातु से निर्मित वस्तुओं को प्रयोग में लाना, धूम्रपान करना इसका नाम लोक में भ्रष्टाचार है। ऐसे आचरण के उन्मूलन करने को किसी का भी कदम उठ नहीं रहा किन्तु प्रतिफल में जगह जगह मांस की, अण्डों की, शराब की दुकानें, वेश्या बाजार, अपहरण काण्ड, डाका डालना आदि दुष्कर्म दिन प्रतिदिन प्रतिक्षण वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं। अहिंसावादी समाज में रात्रिभोजन करना, अनछना पानी पीना, कन्दमूल भक्षण, मकारों का सेवन करना, गर्भपात, परिवार नियोजन या गर्भ निरोध, विधवा विवाह, त्यक्ता विवाह, परस्त्री विवाह का प्रचार प्रसार भरपूर हो रहा है, दहेजप्रथा के कारण हत्याऐं हो रही हैं, तलाक हो रहे हैं, रोटी बेटी बिगड़ रही है। अहिंसावादी जैन लोग भी एक तरफ से शिथिलाचार का विरोध करते हैं तो दूसरी तरफ से प्रोत्साहन देते हैं। नाम का विरोध करते हैं ये दुष्कार्य जीवन में उतारे हुये हैं उसको दूर करने के लिए कदम नहीं उठाते और सहायता पहुंचाते हैं। जब स्वयं के जीवन के शिथिलाचार को दूर करने के लिए नियम लेने की बात करते हैं तो कहीं काल का बहाना, कहीं अकेलेपन का बहाना, कहीं कमजोरी का बहाना, कहीं भौतिकता का बहाना करके बच निकलने की कोशिश करते हैं, स्वयं को नियम लेने से बचा लेते हैं तब कैसे सफलता प्राप्त हो? आजकल जैनों में केवल प्रतिमाधारी गृहस्थ को छोड़कर एक भी ऐसा गृहस्थ नहीं मिलेगा कि जिसने अपने अव्रती जीवन में अन्याय और अभक्ष्य का त्याग कर लिया हो। 100 प्रतिशत अन्याय अभक्ष्य का त्याग करने वाले नहीं हैं इसीका नाम भ्रष्टाचार, शिथिलाचार है।

प्रश्न— 2647 उच्च आचरणों से क्या लाभ है? नीच आचरणों से क्या हानि है?

उत्तर उच्च आचरण से मोक्षमार्ग की भूमिका, मोक्षमार्ग की प्राप्ति, परिणामों की विशुद्धि, स्वास्थ्य लाभ, निरोगता की प्राप्ति, परिवार में प्रेम, समाज में प्रेम, विश्वास, धन की रक्षा, आचार विचारों में उच्चता की प्राप्ति, आदर सम्मान, पूजा प्रतिष्ठा, नाना प्रकार की पदवियों की प्राप्ति, स्वर्ग और भोगभूमि के सुखों की प्राप्ति आदि लाभ है तथा नीच आचरण से संसार की, संसार मार्ग की प्राप्ति, स्वास्थ्य की हानि, धन की हानि, प्रतिष्ठा की हानि, रोग वृद्धि, परिवार में कलह, समाज में कलह, अविश्वास, आचार विचार की हानि, लोक में बदनामी, नीचता, नीचगोत्र का आश्रव बंध, नरक, तिर्यंच के दुःखों की प्राप्ति होना आदि हानि प्राप्त होती है।

प्रश्न– 2648 गोत्रकर्म किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? नाम कौन कौन हैं?

उत्तर उच्चता नीचता का कारण गोत्रकर्म है उच्च आचरण उच्चगोत्र और नीच आचरण नीचगोत्र नाम हैं। कहीं कहीं आचार्यों ने गोत्र कर्म का कथन जन्म परम्परा से किया है और कहीं कहीं वर्तमान के आचरण से, आजीविका के साधनों से गोत्रकर्म का निरूपण किया है और यह वर्तमान का आचरण ही भविष्य का या भविष्य के लिए गोत्रकर्म नाम पाता है। दो भेद हैं। नामः– उच्चगोत्र और नीचगोत्र।

प्रश्न– 2649–50 इस कर्म का आश्रव किस परिणाम से होता है? स्वामी कौन है?

उत्तर दूसरों की निन्दा और अपनी प्रशंसा करने से, दूसरों के सद्गुणों का लोप करने से तथा अपने में गुण नहीं हैं फिर भी मैं गुणवान हूँ ऐसा कथन करने से नीचगोत्र का आश्रव होता है। नीचगोत्र का आश्रव बन्ध मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थान में होता हैं। ये जीव स्वामी हैं। उदय की अपेक्षा पंचमगुण स्थानवर्ती तक स्वामी हैं तथा सत्व चौदहवें गुणस्थान तक रहता है। उच्चगोत्र का आश्रव बन्ध 10वें गुणस्थान तक, उदय और सत्व चौदहवें गुणस्थान पर्यन्त होता है। जन्म की अपेक्षा गोत्रकर्म की व्यवस्था आयु पर्यन्त तथा आजीविका और आचरण की अपेक्षा आगन्तुक होने से समय सीमा तक या बीच में भी समाप्त हो जाती है या अंत तक भी रहती है।

प्रश्न– –2651 कुछ प्रश्न पुनः पुनः क्यों लिखे गये या कहे गये हैं?

उत्तर प्रसंग प्राप्त होने से पुनः पुनः प्रश्नोत्तर कहे गये हैं या भूमिकारूप में कहे गये हैं या कर्तव्यरूप में अथवा संबोधनरूप में कहे गये हैं अतः कोई दोष नहीं हैं। यह पुनरुक्त दोष सूक्ष्म तत्त्व प्रतिपादक न्याय ग्रंथों में लगता है, शेष अनुयोगों में, ग्रंथों में नहीं लगता है।

उपसंहार क्षमायाचना

इस प्रकार सम्यग्दर्शन या रत्नत्रय की प्राप्ति की भूमिका से प्रारम्भ कर अन्त में श्रावक धर्म की चरमसीमा तक ध्यान का कथन अपने क्षयोपशमानुसार किया है। यदि शब्द रचना में कहीं कुछ गलत प्रयोग हुआ हो तो बुद्धिमान जन सुधारकर अध्ययन करें तथा यदि आगम और तर्क के आलोक में कहीं पर शब्द रचना में गड़बड़ी हो तो हमको सम्बोधन करें ताकि आगे सुधार हो सके, कर सकें और शुद्धिपत्र भी तैयार कर भेज देवें।

समाप्ति प्रशस्ति

आ० श्री प. पू. आदिसागरजी महाराज के शिष्य 18 भाषा भाषी श्री महावीरकीर्तिजी महाराज के शिष्य आ. श्री विमलसागरजी महाराज इनके प्रथम शिष्य बा. ब्र. आ. श्री पार्श्वसागरजी महाराज कोटला वालों के शिष्य बा.ब्र. आ. वासुपूज्यसागर ने जिला बहराइच उ.प्र. भगवान सम्भवनाथजी की जन्मस्थली श्रावस्ती के पास 47 कि.मी. पर रात्रि 8:25 पर पूर्ण किया दिन सोमवार फाल्गुन वदी 12 ता. 7.3.2005 महावीर जिनालय में तीन वेदियां हैं। दिगम्बर जैन अग्रवाल समाज के करीब 80 घर है जो करीब सभी परिवार जन धन आचार विचार से सम्पन्न हैं धर्मप्रेमी हैं। अधिकतर श्रावकगण समयानुसार श्रावकोचित् सदाचार का पालन करते हैं वि. सं. 2061 वीर निर्वाण सम्वत् 2531।

परिशिष्ट

प्र.1– संघ में एक मूर्ति रखने से काम चल सकता है फिर अधिक मूर्ति क्यों रखना?

उत्तर– आपका कहना ठीक है जरा सोचो अपने प्रश्नानुसार आप भी किसी एक नेता में या सामाजिक एक कार्यकर्ता में सभी नेताओं और कार्यकर्ताओं की स्थापना कर संकल्प कर आदर सम्मान कर लो, माला मुकुट पहना दो। सभी नेताओं और सभी कार्यकर्ताओं को क्यों बुलाना? अलग अलग क्यों स्थान देना? जब आप अपने कार्यक्रमों में सुंदरता लाने के लिए सबको बुलाते हो और यथा स्थान सभी को आसनदान देते हो तब इसी तरह आचार्यों ने षडावश्यकों में स्तुति और वंदना ये दो मूलगुण बतलाये हैं अब तुम्हीं बतलाओ इनका पालन कैसे हो? आप भी 24 तीर्थंकरों की पूजा अलग अलग क्यों करते हो? अलग अलग पूजायें बनाने की क्या आवश्यकता है? अलग अलग मूर्तियां रखने की क्या आवश्यकता है? जब आप अलग अलग आराधना करने के लिए मूर्तियां विराजमान करते हैं, 24 तीर्थंकर की अलग अलग पूजायें करते हैं तो यदि संघों में स्तुति और वंदना इन दोनों मूलगुणों का पालन करने के लिए 24 तीर्थंकरों की पृथक् पृथक् प्रतिमायें हों तो क्या आपत्ति है? चौबीसों भगवान के निर्वाण कल्याणक भी अलग अलग हैं फिर किसीका निर्वाण कल्याणक किसीके सामने मनाने का मतलब है अपने झूठ का पोषण करना, मायाचार का पोषण करना है। जैसे यहाँ पर किसी की पुण्य तिथी हो और इसके स्थान पर दूसरे की मनाना या किसी साधु आदि परमेष्ठी का समाधि दिवस हो और उस समय किसी दूसरे का समाधि दिवस मनाना क्या न्याय है? नहीं, अन्याय है इसीतरह जिस तीर्थंकर का कल्याणक का दिन है तो उन्हीं के सामने उन्हीं का कल्याणक मनाना न्याय है अतः संघ सहित चैत्यालय होना और अनेक मूर्तियां होना दोषदायक नहीं हैं किंतु गुण का ही स्थान है। यदि संघ में चैत्यालय है तो उसका विनय या अविनय संघ के हाथ में है न कि आपके हाथ में?

स्तुतिः– चौबीस तीर्थंकरों का गुणगान करना, पूजा आराधना करना।

वंदनाः– किसी एक तीर्थंकर की पूजा आराधना करना, गुणगान करना।

प्र.2– जब आर्यिका प्रतिमाधारिणी, अणुव्रती न होने से श्राविका नहीं है और नग्न दिगम्बरावस्था न होने से अनगारी भी नहीं है तो फिर कौन हैं?

उत्तर–आपका प्रश्न सही है कि आर्यिका प्रतिमाधारिणी नहीं है, अणुव्रती नहीं है क्योंकि गृहस्थों की साधना और परिणामों की विशुद्धि के अनुसार दर्शन प्रतिमा से लेकर उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा पर्यंत 11 मानी गई हैं। दीक्षाचार्य, दिगम्बराचार्य ने आर्यिका दीक्षा देते समय प्रतिमाओं के, अणुव्रत गुणव्रत और शिक्षाव्रतों के संस्कार नहीं किये हैं किंतु 5 महाव्रत, 5 समिति, आदि 28 मूलगुणों के संस्कार किये हैं इस कारण प्रतिमाधारिणी नहीं हैं अतः श्राविका नहीं कह सकते क्योंकि इन 28 मूलगुणों के परिणामों को प्रत्याख्यानावरणीय कषाय के तीव्रोदय का अभाव होने से तथा आदि की दो चौकड़ी कषायों का उदयाभाव रूप क्षय होने से गृहस्थों के योग्य परिणामों का उल्लंघन कर मुनियों के योग्य परिणामों को प्राप्त कर चुकीं हैं क्योंकि जब आचार्यों ने सामायिकादि कालों में स्थित वस्त्र धारी श्रावक को निरीहवृत्ति होने के कारण 'याति यति भावम्' मुनिपने के भावों

को प्राप्त होता है ऐसा कहा है तो आर्यिका सर्वकाल, सर्वत्र साड़ी में निरीहवृत्ति होने से उस आर्यिका को अनगारिणी क्यों न कहा जाये? क्योंकि **'देशतः अणुः अणुव्रतोऽगारी'** हिंसादि पापों के थोड़े रूप में त्याग करने को अणुव्रत और अणुव्रती को अगारी कहा है। 'सर्वतः महतिः महाव्रतोऽनगारी' उन हिंसा आदि पाँचों पापों का पूर्णरूप से त्याग करने को महाव्रत और महाव्रती को अनगारी कहा है इस कारण आचार्यों ने आर्यिका दीक्षा देते समय परिग्रहत्याग नामक महाव्रत का संस्कार किया है। जब बाह्य परिग्रह का नौ कोटियों से त्याग कराया है तो नग्नत्व मूलगुण भी अपने आप संस्कार पूर्वक आ ही गया यदि ऐसा कहो कि साड़ी होने से नग्नपना नहीं है तो पग्रिह त्याग महाव्रत भी मत कहो फिर क्या आचार्य भगवंत ने दीक्षा देते समय चार ही महाव्रतों के संस्कार करने से आर्यिका के चार ही महाव्रत कहलाये? बाह्य परिग्रह के दस भेदों में से दूसरे नं० के परिग्रह का नाम वास्तु, अगार है और इसका त्याग होने से आर्यिका अनगारी ही है, महाव्रती है, अणुव्रती नहीं।

प्र.3– आर्यिका को उपचार से महाव्रती कहा है, वास्तव में नहीं क्योंकि उपचार नाम व्यवहार का है आप ऐसा स्वीकार क्यों नहीं करते हो?

उत्तर–मुख्य के अभाव होने पर प्रयोजन आदि की सिद्धि के लिए उपचार की प्रवृत्ति होती है जैसे जहाँ सिंह नहीं होता है तो वहाँ बिल्ली के बच्चे से सिंह का ज्ञान कराते हैं अतः बिल्ली के बच्चे को सिंह कहते हैं, इसी तरह यहाँ समझना। यहाँ पर अभाव का अर्थ त्रिकाल में सर्वत्र अस्तित्त्व नहीं है ऐसा अर्थ न करना, न समझना। जैसे बांझ के त्रिकाल में, त्रिलोक में सर्वत्र किसी भी प्रकार से संतान पैदा नहीं होती है तो बांझ के संतान का उपचार भी नहीं किया जाता है फिर भी अंतरंग में संतान का भाव होने से तथा बाह्य में किसी की संतान को गोद में ले लेने से स्वयं की संतानवत् उसके अंतरंग बहिरंग चर्या चर्चा, आचार विचार, सूतक पातक विधि जैसी की तैसी मानी जाती है इसी तरह आर्यिका के अंतरंग में प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदयाभाव में उत्पन्न होने वाले मुख्यरूप से महाव्रतों का अभाव होने पर भी अंतरंग में प्रत्याख्यानावरण कषाय के तीव्रोदय का अभाव होने से, बाह्य में महाव्रतों का संस्कार होने से, तदनुकूल प्रतिज्ञा होने से, प्रतिज्ञा का पालन करने से आर्यिका को मुनिवत् महाव्रती कहा है अतः आर्यिका को अंतरंग में प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदयाभाव में उत्पन्न हुए सकलसंयम पूर्वक महाव्रत न होने से उपचार से महाव्रती कहा है किंतु दीक्षा के संस्कार, प्रतिज्ञा, प्रतिज्ञा का पालन और लक्ष्य/उद्देश्य आदि की अपेक्षा यथार्थ में महाव्रती कहा है। ये दीक्षा के संस्कार उपकरणादि उपचार से नहीं हैं किंतु वास्तविक हैं।

प्र. 4 –मुनियों के महाव्रत और आर्यिकाओं के महाव्रत में क्या अंतर है?

उत्तर–मुनियों के महाव्रत प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध आदि कषायों के उदयाभाव में और आर्यिकाओं के प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध आदि कषायों की तीव्रता के अभाव में उत्पन्न होते हैं यही अंतर है।

प्र. 5–यदि आर्यिकाओं के महाव्रत प्रत्याख्यानावरणीय कषाय के मंदोदय से होते हैं तो आर्यिकाओं के महाव्रतों को औदयिक भाव क्यों नहीं कहा?

उत्तर–नहीं, आर्यिकाओं के महाव्रत प्रत्याख्यानावरणीय क्रोधादि कषायों की तीव्रता के अभाव में होते हैं इसलिए औदयिक भाव नहीं कहा। यदि मंदोदय होने पर उत्पन्न होते तो अवश्य ही महाव्रतों को

औदयिक भाव कहा जाता। यदि यहाँ इनके महाव्रतों को औदयिक भाव कहा है तो अणुव्रतों को भी औदयिकभाव मानने में क्या आपत्ति है? क्या औदयिक भाव का नाम अणुव्रत महाव्रत है? क्या मोक्षमार्ग है? क्या औदयिक भावों से कर्मों की असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा, नवीन कर्मों का संवर तथा मोक्षमार्ग हो सकता है? जबकि आचार्य ने त.सू. अ. 2 सूत्र–**3, 4, 5 में चारित्र को औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक इन तीन भावों रूप में कहा है औदयिक भाव नहीं तभी तो मोक्षमार्ग बनता है अन्यथा नहीं क्योंकि कर्मों के सर्वघाती स्पर्धकों के उदय होने पर आत्म गुणों का किंचित् मात्र भी विकास नहीं होता है ऐसा कर्म सिद्धांत का नियम है।**

प्र. 6–आर्यिका की 16 हाथ की साड़ी की अपेक्षा ऐलक की लंगोटी एक हाथ से भी कम होती है इसलिए आर्यिका की अपेक्षा ऐलक को बड़ा क्यों न कहा जाये?

उत्तर–नहीं, बाहर में वस्त्र की मात्रा ज्यादा या कम होने से छोटे बड़े का भेद नहीं है किंतु परिणामों की अपेक्षा बड़ेपन छोटेपन का, पूज्यता अपूज्यता का भेद है। ऐलक में अंतरंग बहिरंग भय लज्जा मौजूद है, हीनपुरुषार्थी है, अणुव्रती है जबकि आर्यिका उत्कृष्ट पुरुषार्थी है, अंतरंग में भय लज्जा नहीं है, महाव्रती है। इस कारण ऐलक की अपेक्षा आर्यिका पूज्य है, श्रेष्ठ है।

प्र.7 –जिस प्रकार तीर्थंकरों ने, गणधरों ने मुनियों के लिये आचारांग और श्रावकों के लिये उपासकाध्ययनांग का स्वतंत्र उपदेश दिया उसी प्रकार आर्यिकाओं और श्राविकाओं के लिये क्यों नहीं दिया?

उत्तर–नहीं, मुनियों के कथन के साथ में कुछ अंतर को छोड़कर आर्यिकाओं का कथन किया है। व्रती श्रावकों के साथ श्राविकाओं का कथन किया है स्वतंत्रता से, अलग से कोई उपदेश नहीं दिया क्योंकि जहाँ पर अंतर है वहाँ पर तीर्थंकरों ने और आचार्यों ने अलग से कथन कर दिया है बाकी शेष कथन मुनियों के समान आर्यिकाओं का तथा श्रावकों के समान श्राविकाओं का कथन किया है यदि ऐसा न माना जाय तो आपको ही बताना चाहिये कि द्वादशांग वाणी के किस अनुयोग में, किन ग्रंथों में आर्यिकाओं का, श्राविकाओं का स्वतंत्रता से कथन किया है जबकी आगम चक्खु साहू मोक्षमार्ग की साधना करने वालों का आगम ही नेत्र है और संसार मार्गियों का इन्द्रियां ही नेत्र हैं या इनकी कोई दिनचर्या ही नहीं होती है या केवल लौकिक दिनचर्या ही होती है फिर मोक्षमार्गी कैसे? अव्रतियों की दिनचर्याओं का कथन क्रिया विशाल पूर्व में है।

प्र.8 –यदि ऐसा है तो महाव्रत की परिभाषा इस प्रकार से क्यों बताई?

"प्रत्याख्यानतनुत्वान् मंदतराश्चरण मोहपरिणामाः।
सत्वेन दुरवधारा महाव्रताय प्रकल्प्यन्ते।।71।। आ० श्री समंतभद्र

उत्तर–र०श्रा० में गृहस्थ धर्म का वर्णन है और गृहस्थों को संबोधन किया गया है। अतः गृहस्थों को उत्साहित करने के लिए कषायों के मंदरूप सरल परिणामों को महाव्रत कहा है। अतः र०श्रा० के अनुसार आर्यिकाओं के महाव्रतों को मत समझना किंतु मूलाचारानुसार समझना।

प्र. 9–आर्यिकाओं को आपने 28 मूलगुण धारिणी कहा है किंतु उनके अचेलकपना नहीं है, बैठकर आहार लेती हैं और स्नान भी कर लेती हैं अतः ये तीन कम होने से 25 कहना चाहिये फिर 28 कैसे हुए?

उत्तर–आर्यिकाओं के संस्कार 28 मूलगुणों के होने से वास्तविक हैं। प्रतिज्ञा और प्रायश्चित्त वास्तविक है, उपचार से नहीं है केवल आर्यिकाओं के प्रमत्ताप्रमत्त गुणस्थान न होने से उपचार कहा है। यदि संस्कार, प्रतिज्ञा, प्रायश्चित्त की अपेक्षा भी उपचार मानोगे तो मुनियों को भी उपचार से महाव्रती मानने का प्रसंग आयेगा। अतः आँखों से देखने पर लगता है कि आर्यिकाओं के तीन मूलगुण कम हैं किंतु ऐसा नहीं है किंतु उनकी यह पर्यायगत प्रतिज्ञा है।

सम्मेद शिखरजी,
झारखंड।

बा ब्र. रेवती बहिनजी दोशी की आर्यिका आर्यिका ही है मुनि के समान नहीं है क्या ऐसी शंका निवारणार्थ आ. श्री का समाधान।

बा ब्र. रेवती बहिनजी दोशी को आ. वासुपूज्य सागर का मंगलमय आशीर्वाद।

अत्रकुशलं तत्रास्तु ।

विशेष समाचार यह है कि आपने जो आर्यिका, आर्यिका है मुनि के समान नहीं इसका समाधान किया है।

यह अत्युत्तम कार्य किया है। इस संबंध में कुछ साधु और श्रावकों के सुझाव आये कि समाधान करो, कुछ लेख लिखो फिर भी हम उसको टालते रहे परन्तु अब आपके द्वारा लिखा लेख परमेष्ठी नातेपुते वालों के द्वारा प्राप्त हुआ तब लिखने का विचार किया है।

आ. श्री अकलंक ने तत्त्वार्थवार्तिक में 9वें अ. सू. 1 – असंयमस्त्रिविधोऽनंतानुबंध्य प्रत्याख्यानप्रत्याख्यानोदयविकल्पात्।। का. 26 में असंयम तीन प्रकार का कहा है। रत्नत्रय के बिना दर्शन मोहनीय कर्म की सर्वघाती प्रकृति तथा अनंतानुबंधी कषाय के उदय के साथ जो भी दिनचर्या होती है वह पहला असंयम है। दूसरा असंयम जो अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय के साथ में दिनचर्या होती है। तीसरा असंयम महाव्रतों की अपेक्षा कहा गया है यद्यपि प्रतिमाधारियों को देशसंयमी कहा है फिर भी महाव्रत, मुनिव्रत, निर्ग्रन्थ लिंग न होने से देशसंयम होने पर भी असयंम कहा है। उदाहरण लाख रुपया में एक पैसा भी कम है तो उसे लखपति न कहकर हजारपति कहते हैं, पैसे वाला कहते हैं ठीक वैसे ही देशसंयमी के सकल संयम न होने से असंयमी कहा है। अतः आर्यिका सर्वथा न असंयमी है, न सर्वथा संयमी है।

चरणानुयोग में बाह्य मुद्रा प्रमाण होती है, गुणस्थान नहीं होते यदि चरणानुयोग में गुणस्थान पूज्य माना जाय तो अनादि भव्य मिथ्यादृष्टि, सादि भव्य मिथ्यादृष्टि, दूरानुदूर भव्य मिथ्यादृष्टि तथा अभव्य जीव मुनिदीक्षा लेते हैं उनका गुणस्थान तो मिथ्यात्व ही होगा फिर उनका आदर सम्मान, पूजा कैसे होगी? पहले गुणस्थान की जानकारी करें बाद में पूजना चाहिए पर ऐसा होता नहीं है। दीक्षा देते समय आर्यिका की अट्ठाइस मूलगुणों की, सोलह संस्कारों की विधि होती है। यदि आर्यिका नग्न नहीं रह सकती है, स्नान करती है और बैठकर आहार लेती है। इन तीन मूलगुणों का पालन नहीं कर सकती है। तब आचार्य इन तीन मूलगुणों का संस्कार क्यों करते हैं? 25 मूलगुणों का ही संस्कार करना चाहिए तथा आचार्य को

प्रतिज्ञा कराना चाहिए और आर्यिकाओं को भी 25 मूलगुणों की प्रतिज्ञा करना चाहिए। जब प्रायश्चित्त मांगती हैं तब 28 मूलगुण बोलती हैं या 25 मूलगुण बोलकर प्रायश्चित्त मांगती हैं? एक वस्त्रधारी को नग्न कहा जाता है इसलिए एक वस्त्र पहनकर किसी भी श्रावक श्राविका को अभिषेक पूजा करने का अधिकार आगम में नहीं बताया है किन्तु निषेध ही किया है। दान पूजा करने वाले श्रावक श्राविकाओं के पास अध ोा वस्त्र और उत्तरीय वस्त्र चाहिए। आहार दान देने के लिए क्षुल्लक क्षुल्लिकाओं को तो कहा है किन्तु

णग्गो य – नग्नः पटादि आवरण रहितो गृहस्थः। समणी – श्रमणिका आर्यिका। वस्त्र आदि आवरण रहित गृहस्थ नग्न कहलाते हैं। आर्यिका आदि से आहार नहीं लेते हैं। ये दायक दोष बतलाये हैं। आर्यिका स्नान करती हैं यह कहा जाता है सो ठीक नहीं है कारण कोई भी श्रावक जब पानी देता है तो कहता है लो माताजी शुद्धि करो, स्नान करो ऐसा नहीं बोलता है। केवल हाथ पैर शिर पर पानी डालने को स्नान कहा जाय तो मुनि का भी मूलगुण नहीं बनेगा क्योंकि मुनिजन भी हाथ पैर शिर और पेट धोते हैं। आ. जयसेन ने धर्मरत्नाकर में स्नान पाँच प्रकार का कहा है। पादजानुकटि ग्रीवा शिरः पर्यंत संश्रयम्। स्नानं पंचविधं ज्ञेयं यथादोषं शरीरिणाम्।।12।। अधि. 15 पृ. 301। 1. शिर से 2. गर्दन से 3. कमर से 4. घुटने से 5. एड़ी से। आहार के समय श्रावक श्राविकायें पाद प्रक्षालन करती हैं करते हैं। तो क्या यह मूलगुण की विराधना है? केवल पानी डालना शिर से यह स्नान नहीं हैं। स्नान तो वह है जो उबटन, साबुन, पाउडर चूर्ण आदि से मसल मसल कर शारीरिक मैल धोना। अतः शुद्धि के लिए पानी दिया जाता है न कि स्नान के लिए जब मुनि को कोई मांसाहारी, शराबी, चांडाल, सूतक पातक वाला व्यक्ति, चमडा, रजस्वला स्त्री आदि से स्पर्श हो जाने पर दंड स्नान करते हैं तो भी इससे मूलगुण की विराधना हो जायेगी क्या? नहीं यह तो विराधना नहीं है किन्तु साधना है, प्रायश्चित्त है। प्रायश्चित्त किसी भी प्रकार का हो सकता है, दिया जा सकता है। यह तो गुरु ही जानते हैं। व्यवहार शुद्धि आठ प्रकार की मानी जाती है, उसमें एक जल शुद्धि है। पुनः आर्यिका को जो साड़ी दी जाती है यह उपकरण दान है, परिग्रह नहीं क्योंकि परिग्रह का ग्रहण गृहस्थ के होता है महाव्रती को नहीं होता है क्योंकि आर्यिका के परिग्रह त्याग नाम का महाव्रत है। यदि साड़ी परिग्रह है तो उसके परिग्रह त्याग नाम का महाव्रत कैसे? वो तो भ्रष्ट हो गयी तब तो एक मूलगुण और कम करना पड़ेगा आज कल लोगों की कैसी विडम्बना है कि आर्यिका को परिग्रह त्यागी महाव्रती तो माने पर नग्न नहीं माने। आ. अमृतचंद्र ने पु. सि. गाथा 170 द्रव्यं तदेव देयं सुतपः स्वाध्यायवृद्धि करम्। पात्र को द्रव्य वही देना चाहिए जिससे समीचीन तप और स्वाध्याय की वृद्धि हो। इसलिए आर्यिका की साड़ी परिग्रह नहीं है किन्तु उपकरण है कारण परिग्रह पाप का साध ान है और उपकरण मोक्षमार्ग का साधन है। पुनः यदि साड़ी परिग्रह हो तो दाता श्रावक ने आर्यिका को पद से भ्रष्ट किया तो पद से गिराने वाला क्या स्थितिकरण अंग का पालन करने वाला कहलाया? नहीं वह तो मिथ्यादृष्टि है। अतः यही निश्चय करना चाहिये कि साड़ी परिग्रह नहीं है किन्तु उपकरण है। आर्यिका उत्तम पात्र है, या जघन्य पात्र है? आर्यिका जघन्य पात्र है यह तो कोई भी नहीं मानता है। मध यम पात्र यदि मानते हैं तो उसे अणुव्रती श्राविका मानना पड़ेगा अतः मध्यम पात्र भी नहीं है किन्तु उत्तम पात्र है क्योंकि उपचार से महाव्रती है। आर्यिका गुणस्थान की अपेक्षा उपचार से महाव्रती है, संस्कार की अपेक्षा नहीं यदि संस्कार से भी आर्यिका को उपचार से महाव्रती माना जाय तो मुनि को भी उपचार से महाव्रती मानना पड़ेगा क्योंकि दोनों की दीक्षा संस्कार विधि और उपकरण दान पीछी कमंडलु और शास्त्र समान है। वास्तविक है और आर्यिका उपचार से उत्तम पात्र है तो उपचार से आर्यिका की नवधा भक्ति

करना इसमें क्या आपत्ति है। बारसणुवेक्खा आ. कु. 17 एकत्व भावना

उत्तम पत्तं भणियं सम्मत्त गुणेण संजुदो साहू।
सम्मादिट्ठी सावय मज्झिमपत्तो हु विण्णेओ।।

अर्थः— सम्यक्त्व गुण से सहित साधु को उत्तम पात्र कहा है और सम्यग्दृष्टि श्रावक को मध्यम पात्र कहा है। श्री मू. चा. की उत्पत्ति आचारांग से हुई है। सूत्र पाहुड बोध पाहुड की उत्पत्ति दृष्टिवाद अंग के अवान्तर भेदों से हुई है। मू. चा. की वक्तव्यता स्वसमय है तो दृष्टिवाद अंग की वक्तव्यता तदुभय है। दृष्टिवाद अंग में परमत का खंडन कर स्वमत का मंडन किया जाता है इसलिए आ. श्री कुन्दकुन्द ने बोधपाहुड में जो स्त्री के प्रव्रज्या नहीं होती है तासिं कह होई पव्वज्जा गा 24 कहा है यह कथन नग्नता की अपेक्षा कहा गया है किन्तु वे ही आ. कुंदकुंद अविकार वत्थवेसा जल्ल मलविलित्तचत्तदेहाओ। धम्मकुलकित्तिदिक्खापडिरूपविसुद्ध चरियाओ।190।। मू. चा. अर्थः— विकार रहित, रंग रहित श्वेत वस्त्र और वेष को धारण करने वाली, पसीना युक्त मैल और धूली से लिप्त रहती हुई ये शरीर संस्कार रहित रहती हैं। धर्म, कुल, कीर्ति और दीक्षा के अनुकूल निर्दोष चर्या का पालन करती हुई रहती हैं। प्रव्रज्या जातुचित्प्राज्ञैः प्रतिषेद्धुं न युज्यते । न हि खादापतन्ती चेद् रत्नवृष्टि र्निवार्यते।।17।। क्षत्र चू. अ.11 अर्थः— यहाँ पर रानी विजया की या जीवंधर कुमार की माता की पद्माश्री आर्यिका के द्वारा प्रव्रज्या दीक्षा हुई। अर्थात् इनमें आर्यिका दीक्षा का विधान किया है अतः आ. श्री कुंदकुंद दो प्रकार की बातें नहीं लिखते तथा वर्तमान में भी दीक्षा के नाम से ही पत्रिका छपती है, प्रशस्ति भी दीक्षा की लिखी जाती है समाचार विधि करते समय दीक्षा काल भी पूछा जाता है। प्रव्रज्या और दीक्षा शब्द एकार्थवाची, पर्यायवाची हैं। अतः श्वेताम्बर समाज वस्त्र सहित स्त्रियों को मोक्ष बताते हैं उनके निराकरण करने के लिए तासिं कह होई पवज्जा ऐसा कहा है। सू. पा. में यह भी कहा है कि सुत्तत्थ पद विणट्ठो मिच्छाइट्ठी हु सो मुणेयव्वो। खेडेवि ण कायव्वं पाणिपत्तं सचेलस्स।। 6।। में जो सूत्र और अर्थ पद से भ्रष्ट हो उसे मिथ्यादृष्टि जानना चाहिए तथा वस्त्र धारी को खेल में भी पाणि पात्र द्वारा भोजन नहीं करना चाहिए। तो क्या कोई साधु या आचार्य या श्रावक आर्यिका को थाली में आहार करायेगा? जब श्रावक प्रतिक्रमण में उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा धारी के लिए कहा है कि करपत्ते एयठाणम्मि। उत्कृष्ट श्रावक उद्दिष्ट त्यागी एक स्थान में ठहरकर करपात्र में आहार करने को कहा है। अब आप ही बताओ कि ऐलक क्षुल्लक करपात्र में आहार करें और आर्यिका नहीं करे यह न्याय है क्या? मू. चा. 182 में सलिंगं वा— समानं लिंगं सलिंगं व्रतादिकं कुलं वा तद्विद्यते यस्याः सा सलिंगिनी तां।। अथवा सह लिंगेन वर्तते इति सलिंगा तां स्वदर्शनेऽन्यदर्शने वा प्रव्रजितां। अर्थः— समान लिंग व्रतादि अथवा कुल जिसके है वह सलिंगिनी है अथवा लिंग वेष सहित स्त्री सलिंगिनी है वह चाहे अपने संप्रदाय की आर्यिका हो या अन्य संप्रदाय की साध्वी हो। अतः आर्यिका उत्तम पात्र है इसलिए नवधा भक्ति पूरी करना चाहिए।

अब 108, 105 आदि के संबंध में विचार किया जाता है। यह कोई गुणों से संबंध रखने की संख्या नहीं है किंतु लोक व्यवहार में अल्प बहुत्व — छोटा बड़ा बताने के लिए यह संकेत है। यदि गुण कृत भेद माना जाए तो जिस प्रकार मुनि को 108 लगाते हैं तब आचार्य उपाध्याय के मूलगुण 36 और 25 होते हैं तो आचार्य को 116 तथा उपाध्याय को 105 लगाना होगा क्योंकि दोनों परमेष्ठियों का गुणस्थान एक होने पर मूलगुण अलग अलग हैं। पद अलग अलग है तथा तीनों के कार्य भी अलग अलग हैं तथा आर्यिका, क्षुल्लक, क्षुल्लिका, ऐलक तथा पंचों को भी 105 लगाते हैं तब इनमें क्या समानता है? आर्यिका के 28 मूलगुण हैं, ऐलक क्षुल्लक क्षुल्लिका के 8 मूलगुण होते हैं। पंचों के कितने मूलगुण होते हैं यह

हमको मालुम नहीं है फिर भी क्या मूलगुण एक हो सकते हैं? यदि नग्न नहीं रहना, बैठकर भोजन करना, स्नान करना ये तीन मूलगुण कम करते हैं तो परिग्रह त्याग नामक मूलगुण भी नहीं है क्योंकि साड़ी है यह एक और कम करना पड़ेगा तथा परिग्रह है तो आरंभ भी है और अंतिम परिग्रह त्याग महाव्रत नहीं तो बीच के कहाँ से रहेंगे? तथा जब महाव्रत नहीं है तो समिति नहीं और जब समिति नहीं तो आगे के शेष व्रत कहाँ से रहेंगे? अतः आर्यिका को क्या संख्या लगानी इस पर विचार करे। अब आर्यिका बैठकर आहार लेती हे इस पर थोड़ा विचार करते हैं– आ. कुन्दकुन्द ने द. पा. में **उब्भसणे दंसणं होई।।14। जहाँ खड़े होकर आहार किया जाता है वहाँ सम्यग्दर्शन होता है तो इस वाक्य से ऐसा समझना क्या कि जो बैठकर गृहस्थ त्यागी व्रती भोजन करते हैं वो सब मिथ्यादृष्टि है। आ. श्री का ऐसा अभिप्राय नहीं है। आ. श्री जयसेन ने धर्म रत्नाकर में कहा है न स्वर्गाय स्थिति भुक्ति र्न श्वभ्रायास्थितेमता। किन्तु संयमिलोकस्य सा प्रतिज्ञार्थमिस्यते।।**

43 12 – अ. 10 पृ. 2. खड़े होकर आहार करने से न तो मोक्ष प्राप्त होता है और बैठकर भोजन करने से न नरक मिलता है किन्तु यह केवल संयमीजनों की अपनी शक्ति के अनुसार प्रतिज्ञा होती है। अतः मुनियों की प्रतिज्ञा खड़े होकर आहार करने की तथा आर्यिकाओं के प्रतिज्ञा बैठकर आहार करने की होती है इसमें कोई दोष नहीं है तथा इसमें दोष देना ही मूर्खता है।

जो आर्यिकाएं या क्षुल्लिकायें मासिक धर्म के समय तीन दिन के लिए पीछी छोड़ देती हैं उसके संबंध में थोड़ा सा विचार करते हैं – हालांकि कुछ ग्रन्थकारों ने क्षुल्लक क्षुल्लिकाओं के लिए मृदु वस्त्र से प्रतिलेखन करने को कहा है किन्तु वर्तमान में दीक्षा दायक आचार्य दीक्षा देते समय उपकरण दान में मयूर पंख की पीछी ही देते हैं तथा नारियल का कमंडलु दिया जाता प्रतिलेखन के लिए वस्त्र नहीं दिया जाता है फिर आर्यिका को प्रतिलेखन के लिए वस्त्र का विधान नहीं है फिर भी आजकल जिन जिन संघों में आर्यिकाओं को, क्षुल्लिकाओं को मासिक के तीन दिनों में पीछी अलग करवाते, छुड़वाते हैं उनका क्या हेतु है? क्या बिना पीछी के संयम रह सकता है? यदि रह सकता है तो फिर कभी भी नहीं देना चाहिए तथा निपिच्छ संघ को जैनभास क्यों कहा? पुनर्पुनः प्रतिमास दीक्षा का संस्कार करना होगा और 27 दिन की ही दीक्षा माननी होगी। बिना पीछी के प्रतिष्ठापन समिति कैसे बनती है? यदि बनती है तो मुनियों को भी पीछी नहीं रखना चाहिए और जब मासिक के समय पीछी छोड़ती है तो कमंडलु और साड़ियां भी छोड़ना चाहिए तथा कमंडलु की जगह लोटा आदि से, साड़ी की जगह दूसरी साड़ियों से काम लेना चाहिए। तब जो दो साड़ी का नियम दिया जाता है यह भी गलत है। अतः बुद्धिमानों को जहाँ संशोधन करना है वहीं करना चाहिए। अन्यथा करने से अनेक विडम्बनायें उपस्थित होगी और जैनधर्म ही पतन की ओर जा रहा है तथा चला जायेगा।

उपसंहार – अरिहंत और सिद्धों में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, निर्लेपत्व, सलेपत्व आदि की अपेक्षा से भेद होने पर भी पूजा आराधना में भेद नहीं है तथा आचार्य उपाध्याय और साधुओं में पदवी की अपेक्षा, चर्या की अपेक्षा भेद होने पर भी पूजा, भक्ति, दान आदि समान रूप से की जाती है। तो क्या ये सब एक हो जायेंगे? ऐसे ही प्रतिमाधारियों के तथा आर्यिकाओं का गुणस्थान एकेला पाँचवां ही होने पर भी इनकी चर्याओं में महान अन्तर है कहाँ भोगी कहाँ गृहत्यागी। कहाँ आरंभ परिग्रह सहित और कहाँ इनसे रहित, कहाँ सन्तान पैदा करने वाला और कहाँ इसका त्यागी आदि कार्यों में स्पष्टतया भेद हैं और गुणस्थान पाँचवां है तो गुणस्थान पाँचवां होने पर इनको एक स्थान पर बैठा सकते हैं क्या? कोई इनको चरणानुयोग की अपेक्षा एक समान आदर, विनय, भक्ति, आहार दान दे सकता है? ठीक इसी प्रकार मुनि और आर्यिका

की एक समान नवधा भक्ति करने से क्या दोनों एक हो जायेंगे? अतः चरणानुयोग की अपेक्षा मुनि आर्यिका समान लिंग, समान चर्या वाले होने से दोनों उत्तम पात्र हैं। अतः नवधा भक्ति में अन्तर नहीं होना चाहिए।

ऐलक क्षुल्लक को 105 लगाते हैं उसमें कौन कौन से गुण होते हैं?

आर्यिकाओं को 105 लगाते हैं उसमें कौन कौन से गुण होते हैं?

यदि दोनों में गुणधर्म व्रत समान हुए तो दोनों में अन्तर नहीं होना चाहिए तथा यदि ऐलक क्षुल्लक और आर्यिकाओं में अन्तर है तो संख्या में भी अन्तर करना चाहिए।

भक्ति आदि कार्यों में व्यर्थ का विवाद नहीं करना चाहिए। तीर्थंकर प्रकृति सहित अरिहंतों को 1008 लगाते हैं किन्तु सामान्य केवलियों के कितनी संख्या लगानी पड़ेगी क्योंकि सामान्य केवलियों के अनन्त चतुष्टय तो होते हैं और शारीरिक 900 व्यंजन तथा अतिशय होते हैं या नहीं यह हमको मालुम नहीं है इसलिए सामान्य केवलियों के चार मूलगुण एवं सिद्धों के आठ मूलगुण होते हैं पुनः सिद्धों के पूर्ण शुद्धात्मा होने से स्वभाव की अपेक्षा अनन्त संख्या तथा आठ कर्मो के क्षय की अपेक्षा 8 संख्या लगानी चाहिए क्या?

एवं विधाण चरियं चरंति जे साधवो व अज्जाओ।
ते जगपुज्जं कित्तिं सुखं च लद्धूण सिज्झंति।।

मू. चा. अ. 4 गा. 196 समा. उपर्युक्त विधानरुप चर्या का जो साधु और आर्यिकायें आचरण करते हैं वे जगत में पूजा को, यश को और सुख को प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करते हैं। रादिणिये ऊणरादिणिए अज्जासु चेव गिहिवग्गो। विणओ जहारिओ सो कायव्वो अप्पमत्तेण। अ. 5 गा. 384 पंचा।
जो दीक्षा में एक रात्रि भी अधिक हैं, जो एक रात्रि भी दीक्षा में कम हैं ऐसे मुनियों के प्रति, आर्यिकाओं और गृहस्थों के प्रति आचार्यों के द्वारा यथायोग्य अप्रमादी होकर विनय करना चाहिए। आ. समंतभद्र र. श्रा. में

मातंगो धनदेवश्च वारिषेणस्ततः परः।
नीली जयश्च संप्राप्ताः पूजातिशय मुत्तमम्।।64।।

अर्थः– जब ये पाँचों गृहस्थ एक एक व्रत के प्रभाव से पूजा के उत्तम अतिशय को प्राप्त हुये तो अनेक व्रतों का पालन करने वाली आर्यिका पूजा के उत्तम अतिशय को प्राप्त कर ले तो क्या आश्चर्य है।

गृहस्थो व यतिर्वापिजैनं समय मास्थितः।।
यथा कालमनुप्राप्तः पूजनीयः सुदृष्टिभिः।। अ. 18 गा. 33 –1 आ. जयसेन धर्मरत्नाकर। सम्यग्दृष्टियों के द्वारा जिनधर्म में स्थित गृहस्थ या मुनियों के यथासमय प्राप्त होने पर पूजा आदर सत्कार करना चाहिए। ये वाक्य आचार्यों के हैं।

नर नारी चर्या करे धरम की दुष्कृत दुष्कर हो जाये।
वैर पाप अभिमान छोड़ नित्य नये मंगल गावे।।
सर्वे सुखिनः भवन्तु शेषशुभम्।

आ. वासुपूज्य सागर
(शिष्य आ. पार्श्वसागरजी कोटलावालों के)

परम पूज्य आचार्य
श्री १०८ वासुपूज्य सागर जी महाराज का संक्षिप्त जीवन परिचय

गृहस्थ नाम	दयाचन्द्र
जन्म स्थान	महेबा, जिला पन्ना (म.प्र.)
जन्म तारीख	संवत 2011 मार्गशीर्ष कृ. 3 शनिवार 13.11.1954
पिता का नाम	श्री कालीचरण जी जैन
माता का नाम	श्रीमती रामा देवी (स्व. आर्यिका श्रेणीमती माता जी)
जाति व शिक्षा	समस्त सिद्धान्त न्याय व्याकरण (जाति गोलालारे)
भाषा ज्ञान	हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, मराठी, गुजराती, बुन्देलखण्डी आदि
ब्रह्मचर्य व्रत	18 वर्ष की आयु में सन् 1973
सप्तम प्रतिमा	अवागढ़ (एटा) में सन् 1974, श्रावण सुदी सप्तमी
मुनि दीक्षा	सन् 1976 मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी
दीक्षा स्थान	सागवाड़ा, जिला डूंगरपुर (राज.)
दीक्षा गुरु	समाधिस्थ आचार्य श्री पार्श्वसागर जी महाराज (कोटला वाले)
आचार्य पद	सन् 1988 अक्षय तृतीया (वसगड़े जि. कोल्हापुर, महा.)
प्रा. व प्रौढ़ शिक्षा गुरु	प. प्यारेलाल जी व प. पन्नालाल जी उदयपुर वाले
भाई-बहन	तीन भाई एवं तीन बहन
अब तक विहार	राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, बिहार, बंगाल, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड